महावीर-वाणी

भगवान् श्री रजनीश

संकलन :
मा योग लक्ष्मी
सम्पादन :
स्वामी कृष्ण कबीर
स्वामी योग चिन्मय

जीवन जागृति आन्दोलन प्रकाशन, बम्बई
१९७२

प्रकाशक :
ईश्वरलाल एन० शाह,
(अब साधु ईश्वर समर्पण)
मंत्री, जीवन जागृति केंद्र,
३१, इजरायल मोहल्ला,
भगवान भुवन, मस्जिद बंदर रोड,
बम्बई-९ फोन : ३२१०८५

प्रथम संस्करण : जुलाई १९७२
प्रतियाँ : ५०००

मूल्य : रुपये ३०.००

मुद्रक :
अनंत जे. शाह,
लिपिका प्रेस,
कुर्ला रोड, अंधेरी,
बम्बई–५८.

महावीर-वाणी

पर्युषण व्याख्यानमाला के अन्तर्गत दिनांक १८ अगस्त, १९७१ से ४ सितम्बर, १९७१ तक भगवान् श्री रजनीश द्वारा बम्बई में दिये गये १८ प्रवचनों का संकलन।

आमुख

चौबीस तीर्थंकरों की शक्तिशाली, गूढ़ व गहन अध्यात्म-परम्परा ने जीवन और जगत के सम्बन्ध में प्रचुर ज्ञान व साधन-सामग्री प्रदान की है। साधना और ज्ञान का ऐसा शृंखलाबद्ध विकास अन्यत्र दुर्लभ रहा है।

लेकिन चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् श्री महावीर के बाद यह अध्यात्म-शृंखला अपने विकास के चरम शिखर पर आकर फिर बिखरने लगी। और इधर पिछली कुछ शताब्दियों से तो अनुभवी, ज्ञानी एवं योगयुक्त जैन आचार्यों एवं मुनियों के अभाव के कारण जैन-साधना के सारे गूढ़ सूत्र खोते चले जा रहे हैं। परिणाम स्वरूप तीर्थंकरों, अरिहन्तों एवं सिद्धों के जगत से जैन-साधकों के लगभग सारे सम्बन्ध टूट गये हैं।

तीर्थंकरों की इस लुप्त हो रही ज्ञान व साधना-सम्पदा को पुनरुज्जीवित करने के लिए भगवान् श्री रजनीश प्रेरित हुए हैं।

सितम्बर १९६९ को कश्मीर में एक १६ दिवसीय शिविर में भगवान् श्री ने महावीर की जीवनी, साधना व शिक्षा (देशना) के अनेक अज्ञात एवं गूढ़ आयामों का प्रथम बार उद्घाटन किया था। वे प्रवचन अब **"महावीर : मेरी दृष्टि में"** नामक ६९० पृष्ठीय विशालकाय ग्रंथ के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं।

इसमें भगवान् श्री ने संकेत दिये हैं कि वे २४ तीर्थंकरों के दिव्य-चेतना-जगत से सदियों से टूट गये सम्बन्ध को पुनर्स्थापित करने में सक्षम हैं और तत्सम्बन्धी साधनागत् प्रयोगों की लुप्त-कुंजियों की जानकारी उन्हें है। उन्होंने इस सम्बन्ध में अस्तित्वगत प्रयोगों के लिए खोजी साधकों को "महावीर : मेरी दृष्टि" के माध्यम से आह्वान भी दिया है।

इस दिशा में उनका दूसरा कदम है : चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् श्री महावीर के चुने हुए ३१४ वचनों पर अनुभवयुक्त, साधनायुक्त एवं योगयुक्त प्रतिसंवेदन (Response) प्रस्तुत करना।

१८ अगस्त १९७१ से ४ सितम्बर १९७१ तक पर्युषण व्याख्यानमाला के रूप में दिये गये प्रस्तुत १८ प्रवचन इस विराट ऐतिहासिक कार्य का प्रथम चरण है। प्रस्तुत प्रवचनमाला में वे नमोकार सुत्त पर और धम्म सुत्त के मात्र प्रथम श्लोक पर चर्चा कर सके हैं।

लेकिन पाठक इसमें पायेंगे कि तीर्थंकरों के अगाध अध्यात्म-सागर के दुर्लभ गुह्य रत्नों को प्रगट करने में वे सफल हुए हैं। "महावीर-वाणी" के इस प्रथम खण्ड में उन्होंने तीर्थंकरों की अपरा व परा विद्या का समग्र सार सामने रख दिया है। भविष्य में धीरे-धीरे अनेक प्रवचनमालाओं में वे शेष ३१३ वचनों पर चर्चाएं करेंगे।

इन प्रवचनों को पढ़ने वाले पाठक इस बात की स्पष्ट झलक पा सकेंगे कि भगवान् श्री रजनीश मात्र कोरे विचारक, दार्शनिक या व्याख्याकार पण्डित नहीं, हैं, वरन् वे एक अनुभवयुक्त परमयोगी, रहस्यदर्शी ऋषि और संत हैं।

चेतना के जिस तल और ऊंचाइयों से वे प्रवचन कर रहे हैं उससे भास होता कि तीर्थंकरों, अरिहन्तों, आचार्यों एवं उपाध्यायों के लोक से उनका सीधा एकात्म्य और सम्बन्ध है। लगता है कि उन दिव्य चेतनाओं की अनुभूतियों व भगवान् श्री की अनुभूतियों में एकरसता व एकरूपता है।

कहना ठीक होगा कि भगवान् श्री एक ऐसे परम शून्य दर्पण हैं जिनमें "महावीर-वाणी" हजार गुने विस्तीर्ण होकर—अपने पूरे वैभव में प्रतिसंवादित हो रही है।

इस प्रवचनमाला की अनूठी विशेषता यह है कि इसमें जैन-साधना के परमगूढ़ एवं लुप्तप्राय साधनाओं एवं योग के रहस्यों को आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में पुनर्विश्लेषित किया गया है।

इस ग्रंथ की एक और अनूठी विशेषता है, इसकी विनोद-प्रियता और आनन्द, उल्लास व मुक्त-हास्य। इतनी गम्भीर और गूढ़ बातों पर प्रकाश डालते समय भी भगवान् श्री अपनी विनोद-प्रियता और लीला-भाव को रोकने व अप्रकट रखने में असमर्थ रहे हैं।

साधु, सन्तों, महात्माओं व ज्ञानियों के इतिहास में ऐसी विनोद-प्रियता दुर्लभ ही है।

हास्य नेता मुल्ला नसरुद्दीन के माध्यम से भगवान् श्री श्रोताओं को उनकी स्वयं की आंतरिक स्थितियों के प्रति सजग करते रहे हैं। साथ ही मुक्त-अट्टहासों के तुरन्त बाद के क्षणों में वे मूल विषय के सूक्ष्मतम स्पंदनों को को श्रोताओं के गहरे हृदय तक पहुँचाने में आश्चर्यजनक रूप से सफल हुए हैं।

आशा है कि भगवान् श्री रजनीश के इन प्रवचनों एवं सैकड़ों-हजारों साधना प्रयोगों के माध्यम से तीर्थंकरों की अध्यात्म-शृंखला में निहित अनेकान्तयुक्त अध्यात्म-रहस्य पुनरुज्जीवित होकर प्रथम वार विश्व के कोने-कोने में गूंज उठेंगे।

इस आशा, प्रेरणा एवं आह्वान के साथ प्रस्तुत है—"महावीर - वाणी"।

—योग चिन्मय के प्रणाम

सम्पादक के दो शब्द



"महावीर-वाणी" रूढ़ अर्थों में प्राय: निकलती रहने वाली धार्मिक व्याख्या-पुस्तकों में से एक नहीं है, यह नवीन वैज्ञानिक तथ्यों और विश्वव्यापी स्तर पर अनेक ताजा वैज्ञानिक प्रयोगों से समर्थित चिन्तन की ताजगी का एक दस्तावेज है, परम्परा के नव-मूल्यांकन की एक घटना है, जो पर्युषण व्याख्यानमाला के रूप में घटित हुई है।

इन व्याख्यानों का सम्पादन करते हुए मैं जिस वैचारिक और निर्विचारिक आनन्द से गुजरा हूँ, उसे इस ग्रन्थ का हर पाठक अनुभव कर सके इसकी पूरी चेष्टा की गयी है।

"धम्मो मंगलमुक्किट्ठम्, अहिंसा सन्जमो तवो' के प्रत्येक शब्द की गंभीर, चिन्तनपूर्ण, विज्ञानसम्मत, सहज, बोधगम्य व्याख्या के ये अठरह प्रवचन आपको विचारों की एक ऐसी दुनिया में ला छोड़ेंगे, जहाँ जीवन को समग्रता में जी सकने की आपकी ललक सन्तोष का अनुभव करेगी और उलझावों से भरे इस जटिल जीवन में आप अपने लिए सहज रास्ता खोज सकने में समर्थ होंगे। अनेक वैज्ञानिक उपलब्धियों की जानकारी आपके चिन्तन की रुँधी हुई खिड़कियों पर दस्तक देगी और चिन्तन की नयी दिशाएँ उद्घाटित करेगी।

हो सकता है, ग्रन्थ में कतिपय पाठकों को पुनरुक्ति का दोष भी दिखे, किन्तु उन्हें जानबूझ कर बरकरार रखा गया है ताकि प्रवचन की मूल-धारा तिरोहित न होने पाये, साथ ही पाठक इसे न केवल पढ़े, बल्कि इस छपे हुए में उसी प्रकार बहे, जिस प्रकार इन्हें सुनते हुए श्रोतागण बहे थे। इस प्रकार यह पुनरुक्ति आपके और वक्ता के बीच की दूरी मिटाकर अन्तराल को तोड़ने में सहायक सिद्ध होगी ऐसी आशा है।

सम्पादक के दो शब्द



"महावीर-वाणी" रूढ़ अर्थों में प्रायः निकलती रहने वाली धार्मिक व्याख्या-पुस्तकों में से एक नहीं है, यह नवीन वैज्ञानिक तथ्यों और विश्वव्यापी स्तर पर अनेक ताजा वैज्ञानिक प्रयोगों से समर्थित चिन्तन की ताजगी का एक दस्तावेज है, परम्परा के नव-मूल्यांकन की एक घटना है, जो पर्युषण व्याख्यानमाला के रूप में घटित हुई है।

इन व्याख्यानों का सम्पादन करते हुए मैं जिस वैचारिक और निर्वेचारिक आनन्द से गुजरा हूं, उसे इस ग्रन्थ का हर पाठक अनुभव कर सके इसकी पूरी चेष्टा की गयी है।

'धम्मो मंगलमुक्किट्ठम्, अहिन्सा सन्जमो तवो' के प्रत्येक शब्द की गंभीर, चिन्तनपूर्ण, विज्ञानसम्मत, सहज, बोधगम्य व्याख्या के ये अठरह प्रवचन आपको विचारों की एक ऐसी दुनिया में ला छोड़ेंगे, जहां जीवन को समग्रता में जी सकने की आपकी ललक सन्तोष का अनुभव करेगी और उलझावों से भरे इस जटिल जीवन में आप अपने लिए सहज रास्ता खोज सकने में समर्थ होंगे। अनेक वैज्ञानिक उपलब्धियों की जानकारी आपके चिन्तन की रुंधी हुई खिड़कियों पर दस्तक देगी और चिन्तन की नयी दिशाएं उद्घाटित करेगी।

हो सकता है, ग्रन्थ में कतिपय पाठकों को पुनरुक्ति का दोष भी दिखे, किन्तु उन्हें जानबूझ कर बरकरार रखा गया है ताकि प्रवचन की मूल-धारा तिरोहित न होने पाये, साथ ही पाठक इसे न केवल पढ़े, बल्कि इस छपे हुए में उसी प्रकार बहे, जिस प्रकार इन्हें सुनते हुए श्रोतागण बहे थे। इस प्रकार यह पुनरुक्ति आपके और वक्ता के बीच की दूरी मिटाकर अन्तराल को तोड़ने में सहायक सिद्ध होगी ऐसी आशा है।

मुख्य शीर्षक एवं उपशीर्षकों के देने के पीछे यह दृष्टि रही है कि उस अध्याय के अन्तर्गत व्याख्यायित वस्तु का परिचय भी मिल सके और चिन्तन की ताजगी तथा रूढ़ से हटकर व्यक्त विचारों का स्पष्ट आभास मिल सके। उपशीर्षकों के माध्यम से पाठ्य-सामग्री की रोचकता का आभास भर दिया जा सका है, जिन पर निगाह टिकेगी तो विश्वास है ग्रंथ पढ़ने की प्रेरणा जागे बिना नहीं रहेगी।

इत्यलम् !



भूल सुधार की सूचना



पृष्ठ १५१-अ से पृष्ठ १८२-अ तक की ३२ पृष्ठ-संख्याएँ तथा उसके बाद की १५१ से १८२ तक की ३२ पृष्ठ-संख्याएँ डबल छप गई हैं। लेकिन प्रवचन-सामग्री का प्रवाह (क्रम) सही है। पृष्ठ २२२ के बाद इन डबल हुए ३२ पृष्ठों को जोड़कर पृष्ठ संख्या एकदम से २५५ पृष्ठ संख्या छाप दी गई है।

अन्तर्वस्तु अनुक्रम





पहला प्रवचन

पर्युषण व्याख्यान-माला, बंबई, दिनांक १८ अगस्त, १९७१

दिव्य-लोक की कुंजी : पंच नमोकार सूत्र

नमो अरिहंताणं ।

नमो सिद्धाणं ।

नमो आयरियाणं ।

नमो उवज्झायाणं ।

नमो लोए सव्वसाहूणं ।

एसो पंच नमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥

अर्थ—

अरिहंतों (अर्हतों) को नमस्कार ।
सिद्धों को नमस्कार ।
आचार्यों को नमस्कार ।
उपाध्यायों को नमस्कार ।
लोक में सर्व साधुओं को नमस्कार ।

ये पांच नमस्कार सर्व पापों के नाशक हैं तथा सर्व मंगलों में प्रथम मंगल रूप हैं ।

(जैसे सुबह सूरज निकले, और कोई पक्षी आकाश में उड़ने के पहले अपने घोंसले के पास परों को तौले, सोचे, साहस जुटाये या जैसे कोई नदी सागर में गिरने के करीब हो, स्वयं को खोने के निकट—पीछे लौटकर देखे, सोचे क्षण भर। ऐसे ही महावीर की वाणी में प्रवेश के पहले दो क्षण सोच लेना जरूरी है।)

जैसे पर्वतों में हिमालय है या शिखरों में गौरीशंकर, वैसे ही व्यक्तियों में महावीर हैं। बड़ी है चढ़ाई। जमीन पर खड़े होकर भी गौरीशंकर के हिमाच्छादित शिखर को देखा जा सकता है। लेकिन जिन्हें चढ़ाई करनी हो और शिखर पर पहुंचकर ही शिखर को देखना हो, उन्हें बड़ी तैयारी की जरूरत है। दूर से भी देख सकते हैं महावीर को, लेकिन दूर से जो परिचय होता है वह वास्तविक परिचय नहीं है। महावीर में तो छलांग लगाकर ही वास्तविक परिचय पाया जा सकता है। उस छलांग के पहले जो जरूरी है, वे बातें कुछ आप से कहूँ।

(१) चरम निष्पत्तियाँ और खो गये रास्ते

बहुत बार ऐसा होता है कि हमारे हाथ में निष्पत्तियाँ रह जाती हैं, 'कंक्लूजन्स' रह जाते हैं। प्रक्रियाएँ खो जाती हैं। (मंजिल रह जाती है, रास्ते खो जाते हैं। शिखर तो दिखायी पड़ता है लेकिन वह पगडंडी दिखायी नहीं पड़ती, जो वहाँ तक पहुंचाती है।) ऐसा ही यह नमोकार मंत्र भी है। यह निष्पत्ति है। इसे पच्चीस सौ वर्ष से लोग दोहराते चले आ रहे हैं। यह शिखर है, लेकिन पगडंडी, जो नमोकार मंत्र तक पहुंचा दे, वह न मालूम कब की खो गयी है। इसके पहले कि हम मंत्र पर बात करें, उस पगडंडी पर थोड़ा-

सा मार्ग साफ कर लेना उचित होगा। क्योंकि जब तक प्रक्रिया दिखाई न पड़े, तब तक निष्पत्तियाँ व्यर्थ हैं और जब तक मार्ग न दिखाई पड़े, तब तक मंजिल व्यर्थ होती हैं और जब तक सीढ़ियाँ न दिखाई पड़ें, तब तक दूर दिखते हुए शिखरों का कोई भी मूल्य नहीं, वे स्वप्नवत् हो जाते हैं। वे हैं भी या नहीं, इसका भी निर्णय नहीं किया जा सकता।) कुछ दो चार मार्गों से नमोकार के रास्ते को समझें।

(२) पत्थर पर 'ग्रूव्ज'

१९३७ में तिब्बत और चीन के बीच बोकाम पर्वत की एक गुफा में ७१६ पत्थर के रिकार्ड मिले—पत्थर के। और वे रिकार्ड हैं महावीर से दस हजार साल पुराने। यानी आज से कोई साढ़े बारह हजार साल पुराने। बड़े आश्चर्य के हैं वे, क्योंकि वे रिकार्ड ठीक वैसे ही हैं जैसे ग्रामोफोन का रिकार्ड होता है। ठीक उनके बीच में छेद है और पत्थर पर ग्रूव्ज हैं, जैसे कि ग्रामोफोन के रिकार्ड पर होते हैं। अब तक यह राज तो नहीं खोला जा सका है कि वे किस यंत्र पर बजाये जा सकेंगे, लेकिन एक बात तय हो गयी है। रूस के एक बड़े वैज्ञानिक डा० सजिएव ने वर्षों तक मेहनत करके यह प्रमाणित किया है कि वे हैं तो रिकार्ड ही। किस यंत्र पर और किस सुई के माध्यम से वे पुनरुज्जीवित हो सकेंगे, यह अभी तय नहीं हो सका। अगर एकाध पत्थर का टुकड़ा होता तो सांयोगिक भी हो सकता, सात सौ सोलह हैं। सब एक जैसे, जिनमें बीच में छेद हैं। सब पर ग्रूव्ज हैं और उनकी पूरी तरह सफाई की गयी, धूल-धुआंस जब अलग कर दी गयी और जब विद्युत यंत्रों से उनकी परीक्षा की गयी तो बड़ी हैरानी हुई। उनसे प्रतिपल विद्युत की किरणें विकीर्णित हो रही हैं। लेकिन क्या आदमी के पास आज से बारह हजार साल पहले ऐसी कोई व्यवस्था थी कि वह पत्थरों में कुछ रिकार्ड कर सके? तब तो हमें सारा इतिहास और ढंग से लिखना पड़ेगा।

जापान के एक पर्वत शिखर पर पच्चीस हजार वर्ष पुरानी मूर्तियों का एक समूह है। वे मूर्तियाँ 'दोबु' कहलाती हैं। उन मूर्तियों ने बहुत हैरानी खड़ी कर दी, क्योंकि अब उन मूर्तियों को समझना संभव नहीं हुआ है। जिस दिन हमारे यात्री अंतरिक्ष में गये, उसी दिन 'दोबु' मूर्तियों का रहस्य खुल गया, क्योंकि दोनों मूर्तियाँ उसी तरह के वस्त्र पहने हुए हैं जैसे अंतरिक्ष का यात्री पहनता है। अंतरिक्ष में यात्रियों ने — रूसी या अमरीकी ऐस्ट्रोनाट्स ने — जिन

वस्तुओं का उपयोग किया, वे ही उन मूर्तियों के ऊपर हैं। पत्थर में खुदे हैं। वे मूर्तियाँ पच्चीस हजार साल पुरानी हैं और अब इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है मानने का, कि पच्चीस हजार साल पहले आदमी ने अंतरिक्ष की यात्रा की है। या अंतरिक्ष से किन्हीं और ग्रहों से आदमी जमीन पर आता रहा है। आदमी जो आज जानता है, वह पहली बार जान रहा है, ऐसी भूल में पड़ने का अब कोई कारण नहीं है। आदमी बहुत बार जान लेता है और भूल जाता है। बहुत बार शिखर छू लिये गये हैं और खो गये हैं। सभ्यताएँ उठती हैं और आकाश को छूती हैं, लहरों की तरह और विलीन हो जाती हैं। जब भी कोई लहर आकाश को छूती है तो सोचती है, उसके पहले किसी और लहर ने आकाश को नहीं छुआ होगा।)

महावीर एक बहुत बड़ी संस्कृति के अंतिम व्यक्ति हैं – जिस संस्कृति का विस्तार कम से कम दस लाख वर्ष है। महावीर, जैन विचार और परंपरा के अंतिम तीर्थंकर हैं – चौवीसवें। शिखर की, लहर की आखिरी ऊँचाई और महावीर के बाद वह लहर और सभ्यता और वह संस्कृति सब बिखर गयी। आज उन सूत्रों को समझना इसलिए कठिन है, क्योंकि वह पूरा का पूरा मिल्यू, वह वातावरण जिसमें वे सूत्र सार्थक थे, आज कहीं भी नही है। ऐसा समझें कि कल तीसरा महायुद्ध हो जाय। सारी सभ्यता बिखर जाय, सीधी लोगों के पास याददाश्त रह जायेगी कि लोग हवाई जहाजों में उड़ते थे। हवाई जहाज तो बिखर जायेंगे, याददाश्त रह जायेगी। यह याददाश्त हजारों साल तक चलेगी और बच्चे हँसेंगे। कहेंगे कि कहाँ है हवाई जहाज? जिनकी तुम बात करते हो? ऐसा मालूम होता है, कहानियाँ हैं, पुराण कथाएँ हैं, मिथ हैं।

(३) आदमी की ऊंचाई और गुरुत्वाकर्षण

चौबीस जैन तीर्थंकरों की ऊँचाई, शरीर की ऊँचाई बहुत काल्पनिक मालूम पड़ती है। उसमें महावीर भर की ऊँचाई आदमी की ऊँचाई है। बाकी तेईस तीर्थंकर बहुत ऊँचे हैं। इतनी ऊँचाई हो नहीं सकती। ऐसा ही वैज्ञानिकों का अब तक ख्याल था, लेकिन अब नहीं है। क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं, जैसे-जैसे जमीन सिकुड़ती गयी है वैसे-वैसे जमीन पर ग्रेवीटेशन, गुरुत्वाकर्षण भारी होता गया। और जिस मात्रा में गुरुत्वाकर्षण भारी होता है, लोगों की ऊँचाई कम होती जाती है। आपकी दीवाल की छत पर

छिपकली चलती है, आप कभी सोच नहीं सकते कि छिपकली आज से दस लाख साल पहले हाथी से बड़ा जानवर थी। वह अकेली बची, उसकी जाति के सारे जानवर खो गये। उतने बड़े जानवर अचानक क्यों खो गये? अब वैज्ञानिक कहते हैं कि जमीन के गुरुत्वाकर्षण में कोई छिपा हुआ राज मालूम पड़ता है। अगर गुरुत्वाकर्षण और सघन होता गया तो आदमी और छोटा होता चला जायेगा। अगर आदमी चाँद पर रहने लगे तो आदमी की ऊँचाई चौगुनी हो जायेगी। क्योंकि चाँद पर चौगुना कम है गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी से। अगर हमने कोई और तारे, और ग्रह खोज लिये, जहाँ गुरुत्वाकर्षण और कम हो, तो ऊँचाई और बड़ी हो जायेगी। इसलिए आज एकदम कथा कह देने में बहुत कठिन है। नमोकार को जैन परंपरा ने महामंत्र कहा है। पृथ्वी पर दस पांच ऐसे मंत्र हैं जो नमोकार की हैसियत के हैं। असल में प्रत्येक धर्म के पास एक महामंत्र अनिवार्य है, क्योंकि उसके इर्दगिर्द ही उसकी सारी व्यवस्था, सारा भवन निर्मित होता है।

ये महामंत्र करते क्या हैं, इनका प्रयोजन क्या है, इनमें क्या फलित हो सकता है? आज साउण्ड इलेक्ट्रानिक्स, ध्वनि विज्ञान बहुत से नये तथ्यों के करीब पहुँच रहा है। उसमें एक तथ्य यह है कि इस जगत् में पैदा की गयी कोई भी ध्वनि कभी भी नष्ट नहीं होती। वह अनंत आकाश में संग्रहीत होती चली जाती है। ऐसा समझें कि जैसे आकाश भी रिकार्ड करता है। आकाश पर भी किसी सूक्ष्म तल पर ग्रूव्ज बन जाते हैं। इस पर रूस ने इधर पन्द्रह वर्षों में बहुत काम किया है। उस काम पर दो तीन बातें ख्याल में ले लें, तो आसानी हो जायेगी।

(४) सद्भाव का पेड़-पौधों पर प्रभाव

अगर एक सद्भाव से भरा हुआ व्यक्ति, मंगल कामना से भरा हुआ व्यक्ति आँख बंद करके अपने हाथ में जल से भरी हुई एक मटकी ले ले और कुछ क्षण सद्भावों के साथ उस जल की मटकी को हाथ में लिये रहे, तो वह जल गुणात्मक रूप से परिवर्तित हो जाता है। रूसी वैज्ञानिक कामेनियोव और अमरीकी वैज्ञानिक डा० रुडाल्फ किर इन दो व्यक्तियों ने बहुत से प्रयोग करके यह प्रमाणित किया है। यद्यपि केमिकली कोई फर्क नहीं होता। उस भले, भावनाओं से भरे हुए, मंगल आकांक्षाओं से भरे हुए व्यक्ति के हाथ में जल का स्पर्श, जल में कोई केमिकल, कोई रासायनिक परिवर्तन नहीं करता, लेकिन उस जल में फिर भी कोई गुणात्मक परिवर्तन हो जाता है।

और वह जल अगर बीजों पर छिड़का जाय तो वे जल्दी अंकुरित होते हैं। साधारण जल की बजाय उसमें बड़े फूल आते हैं। बड़े फल लगते हैं, वे पौधे ज्यादा स्वस्थ होते हैं, साधारण जल की बजाय ज्यादा। कामेनियोव ने साधारण जल भी उन्हीं बीजों पर वैसे ही भूमि में छिड़का है और यह विशेष जल भी। और रुग्ण, विक्षिप्त, निगेटिव इमोशन से भरे हुए व्यक्ति, निषेधात्मक भाव से भरे हुए व्यक्ति, हत्या का विचार करने वाले, दूसरे को नुकसान पहुंचाने का विचार करने वाले, अमंगल की भावनाओं से भरे हुए व्यक्ति के हाथ में दिया गया जल भी बीजों पर छिड़का है। या तो वे बीज अंकुरित ही नहीं होते, या अंकुरित होते हैं तो रुग्ण अंकुरित होते हैं।

पन्द्रह वर्ष के हजारों प्रयोगों के बाद यह निष्पत्ति की जा सकी कि जल में जब तक हम सोचते थे कि केमिस्ट्री ही सब कुछ है, लेकिन केमिकली तो कोई फर्क नहीं होता, रासायनिक रूप से तीनों जलों में कोई फर्क नहीं होता। फिर भी कोई फर्क हो जरूर जाता है। वह फर्क क्या है? और वह फर्क जल में कहाँ से प्रवेश करता है। निश्चित ही वह फर्क, जब तक जो भी हमारे पास उपकरण हैं, उनसे नहीं जाँचा जा सकता है। लेकिन वह फर्क होता है, यह परिणाम से सिद्ध होता है। क्योंकि तीनों जलों का आत्मिक रूप बदल जाता है। केमिकल रूप तो नहीं बदलता, लेकिन तीनों जलों की आत्मा में कुछ रूपान्तरण हो जाता है। अगर जल में यह रूपान्तरण हो सकता है तो हमारे चारों ओर फैले हुए आकाश में भी हो सकता है। मंत्र की प्राथमिक आधारशिला यही है। मंगल भावनाओं से भरा हुआ मंत्र हमारे चारों ओर आकाश में गुणात्मक अंतर पैदा करता है, क्वालिटेटिव ट्रांसफार्मेशन करता है। और उस मंत्र से भरा हुआ व्यक्ति भी जब आपके पास से गुजरता है, तब भी वह अलग तरह के आकाश में गुजरता है। उसके चारों तरफ शरीर के आसपास एक भिन्न तरह का आकाश, ए डिफरेन्ट क्वालिटी आफ स्पेस पैदा हो जाती है।

(५) किरलियान की फोटोग्राफी

एक दूसरे रूसी वैज्ञानिक किरलियान ने हाई फ्रिक्वेंसी की फ़ोटोग्राफी विकसित की। वह शायद आने वाले भविष्य में सबसे अनूठा प्रयोग सिद्ध होगा। अगर मेरे हाथ का चित्र लिया जाय हाई फ्रिक्वेंसी की फोटोग्राफी से, जो कि बहुत संवेदनशील प्लेट्स पर होती है, तो मेरे हाथ का ही चित्र

सिर्फ नहीं आता। मेरे हाथ के आसपास जो किरणें मेरे हाथ से निकल रही हैं, उनका चित्र भी आता है। और आश्चर्य की बात तो यह है कि अगर मैं निषेधात्मक विचारों से भरा हुआ हूँ तो मेरे हाथ के आसपास जो विद्युत ऐटम्स हैं, जो विद्युत-जाल है उसका जो चित्र आता है वह रुग्ण, बीमार, अस्वस्थ और केआटिक, अराजक होता है, विक्षिप्त होता है। जैसे किसी पागल आदमी ने लकीर खींची हो। अगर मैं शुभ भावनाओं से, मंगल भावनाओं से भरा हुआ हूँ, आनंदित हूँ, पाजिटिव हूँ, प्रफुल्लित हूँ, प्रभु के प्रति अनुग्रह से भरा हुआ हूँ, तो मेरे हाथ के आसपास जो किरणों का चित्र आता है किरलियान की फोटोग्राफी से, वह रिद्मिक, लयबद्ध, सुन्दर, सिमिट्रिकल, सानुपातिक और एक और ही व्यवस्था में निर्मित होता है। किरलियान का प्रयोग यानी तीस वर्षों की मेहनत।

किरलियान का कहना है कि बहुत जल्दी ही वह समय आने वाला है जब बीमारी के छः महीने पहले ही हम बताने में समर्थ हो जायेंगे कि आदमी बीमार होने वाला है। क्योंकि इसके पहले कि शरीर पर बीमारी उतरे, वह जो विद्युत का वर्तुल है उस पर बीमारी उतर जाती है। मरने के पहले, इसके पहले कि आदमी मरे, वह विद्युत का वर्तुल सिकुड़ना शुरू हो जाता है और मरना शुरू हो जाता है। इसके पहले कि कोई आदमी हत्या करे किसी की, उस विद्युत के वर्तुल में ही हत्या के लक्षण शुरू हो जाते हैं। इसके पहले कि कोई आदमी किसी के प्रति करुणा से भरे, उस विद्युत के वर्तुल में करुणा प्रवाहित होने के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं। किरलियान का कहना है कि कैंसर पर हम तभी विजय पा सकेंगे, जब शरीर को पकड़ने के पहले हम कैंसर को पकड़ लें। और यह पकड़ा जा सकेगा। इसमें कोई विधि सम्बन्धी भूल अब नहीं रह गयी है, सिर्फ प्रयोगों के और फैलाव की जरूरत है। प्रत्येक मनुष्य अपने आसपास एक आभामंडल लेकर, एक ऑरा लेकर चलता है। आप अकेले ही नहीं चलते, आपके आसपास एक विद्युत वर्तुल, एक इलेक्ट्रोडायनेमिक फील्ड प्रत्येक आदमी के आसपास चलता है। व्यक्ति के आसपास ही नहीं, पशुओं के आसपास भी, पौधों के आसपास भी।

असल में रूसी वैज्ञानिकों का कहना है कि जीव और अजीव में एक ही फ़र्क किया जा सकता है। जिसके आसपास आभामंडल है वह जीवित है और जिसके पास आभामंडल नहीं है वह मृत है। जब आदमी मरता है तो मरने के साथ ही आभामंडल क्षीण होना शुरू हो जाता है। बहुत आश्चर्य

और संयोग की बात है कि जब भी कोई आदमी मरता है तो तीन दिन लगते हैं उसके आभामंडल को विसर्जित होने में। हजारों साल से सारी दुनिया में मरने के बाद तीसरे दिन का बड़ा मूल्य रहता है। जिन लोगों ने उस तीसरे दिन को इतना मूल्य दिया था, उन्हें किसी न किसी तरह इस बात का अनुभव होना ही चाहिए, क्योंकि वास्तविक मृत्यु तीसरे दिन घटित होती है। इन तीन दिनों के बीच किसी भी दिन वैज्ञानिक उपाय खोज लेंगे, तो आदमी को पुनरुज्जीवित किया जा सकता है। जब तक आभामंडल नहीं खो गया तब तक जीवन अभी शेष है। हृदय की धड़कन बंद हो जाने से जीवन समाप्त नहीं होता। इसलिए पिछले महायुद्ध में रूस में छः व्यक्तियों को हृदय की धड़कन बंद हो जाने के बाद पुनरुज्जीवित किया जा सका।

जब तक आभामंडल चारों तरफ है, तब तक व्यक्ति सूक्ष्म तल पर अभी भी जीवन में वापिस लौट सकता है। अभी सेतु कायम है, अभी रास्ता बना है वापस लौटने का। जो व्यक्ति जितना जीवन्त होता है उसके आसपास उतना बड़ा आभामंडल होता है। हम महावीर की मूर्ति के आसपास अगर एक आभामंडल निर्मित करते हैं, या कृष्ण, या राम, या क्राइस्ट के आसपास; तो वह सिर्फ कल्पना नहीं है, वह आभामंडल देखा जा सकता है। और अब तक तो केवल वे ही देख सकते थे, जिनके पास थोड़ी गहरी और सूक्ष्म दृष्टि हो, यानी मिस्टिक्स, सन्त। लेकिन १९३० में एक अंग्रेज वैज्ञानिक ने केमिकल, रासायनिक प्रक्रिया निर्मित कर दी, जिससे प्रत्येक व्यक्ति उस माध्यम से, उस यंत्र के माध्यम से दूसरे के आभामंडल को देख सकता है।

(६) मंत्र का क्या काम होता है?

आप सब यहाँ बैठे हैं। प्रत्येक का अपना एक निजी आभामंडल है। जैसे आपके अंगूठे की छाप निजी है, वैसे ही आपका आभामंडल भी निजी है। और आपका आभामंडल आपके संबंध में वह सब कुछ कहता है, जो आप भी नहीं जानते। आपका आभामंडल आपके संबध में वे बातें भी कहता है, जो भविष्य में घटित होंगी। आपका आभामंडल वे बातें भी कहता है जो अभी आपके गहन अचेतन मन में निर्मित हो रही हैं, बीज की भांति कल खिलेंगी और प्रकट होंगी। मंत्र आभामंडल को बदलने की आमूल प्रक्रिया है। आपके आसपास की स्पेस, और आपके आसपास की इलेक्ट्रोडायनेमिक फील्ड बदलने की प्रक्रिया है। और प्रत्येक धर्म के पास एक महामंत्र है। जैन

सिर्फ नहीं आता। मेरे हाथ के आसपास जो किरणें मेरे हाथ से निकल रही हैं, उनका चित्र भी आता है। और आश्चर्य की बात तो यह है कि अगर मैं निषेधात्मक विचारों से भरा हुआ हूँ तो मेरे हाथ के आसपास जो विद्युत ऐटम्स हैं, जो विद्युत-जाल है उसका जो चित्र आता है वह रुग्ण, बीमार, अस्वस्थ और केआटिक, अराजक होता है, विक्षिप्त होता है। जैसे किसी पागल आदमी ने लकीर खींची हो। अगर मैं शुभ भावनाओं से, मंगल भावनाओं से भरा हुआ हूँ, आनंदित हूँ, पाजिटिव हूँ, प्रफुल्लित हूँ, प्रभु के प्रति अनुग्रह से भरा हुआ हूँ, तो मेरे हाथ के आसपास जो किरणों का चित्र आता है किरलियान की फोटोग्राफी से, वह रिद्मिक, लयबद्ध, सुन्दर, सिमिट्रिकल, सानुपातिक और एक और ही व्यवस्था में निर्मित होता है। किरलियान का प्रयोग यानी तीस वर्षों की मेहनत।

किरलियान का कहना है कि बहुत जल्दी ही वह समय आने वाला है जब बीमारी के छः महीने पहले ही हम बताने में समर्थ हो जायेंगे कि आदमी बीमार होने वाला है। क्योंकि इससे पहले कि शरीर पर बीमारी उतरे, वह जो विद्युत का वर्तुल है उस पर बीमारी उतर जाती है। मरने के पहले, इसके पहले कि आदमी मरे, वह विद्युत का वर्तुल सिकुड़ना शुरू हो जाता है और मरना शुरू हो जाता है। इसके पहले कि कोई आदमी हत्या करे किसी की, उस विद्युत के वर्तुल में ही हत्या के लक्षण शुरू हो जाते हैं। इसके पहले कि कोई आदमी किसी के प्रति करुणा से भरे, उस विद्युत के वर्तुल में करुणा प्रवाहित होने के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं। किरलियान का कहना है कि कैंसर पर हम तभी विजय पा सकेंगे, जब शरीर को पकड़ने के पहले हम कैंसर को पकड़ लें। और यह पकड़ा जा सकेगा। इसमें कोई विधि सम्बन्धी भूल अब नहीं रह गयी है, सिर्फ प्रयोगों के और फैलाव की जरूरत है। प्रत्येक मनुष्य अपने आसपास एक आभामंडल लेकर, एक ऑरा लेकर चलता है। आप अकेले ही नहीं चलते, आपके आसपास एक विद्युत वर्तुल, एक इलेक्ट्रोडायनेमिक फील्ड प्रत्येक आदमी के आसपास चलता है। व्यक्ति के आसपास ही नहीं, पशुओं के आसपास भी, पौधों के आसपास भी।

असल में रूसी वैज्ञानिकों का कहना है कि जीव और अजीव में एक ही फ़र्क किया जा सकता है। जिसके आसपास आभामंडल है वह जीवित है और जिसके पास आभामंडल नहीं है वह मृत है। जब आदमी मरता है तो मरने के साथ ही आभामंडल क्षीण होना शुरू हो जाता है। बहुत आश्चर्य

और संयोग की बात है कि जब भी कोई आदमी मरता है तो तीन दिन लगते हैं उसके आभामंडल को विसर्जित होने में। हजारों साल से सारी दुनिया में मरने के बाद तीसरे दिन का बड़ा मूल्य रहता है। जिन लोगों ने उस तीसरे दिन को इतना मूल्य दिया था, उन्हें किसी न किसी तरह इस बात का अनुभव होना ही चाहिए, क्योंकि वास्तविक मृत्यु तीसरे दिन घटित होती है। इन तीन दिनों के बीच किसी भी दिन वैज्ञानिक उपाय खोज लेंगे, तो आदमी को पुनरुज्जीवित किया जा सकता है। जब तक आभामंडल नहीं खो गया तब तक जीवन अभी शेष है। हृदय की धड़कन बंद हो जाने से जीवन समाप्त नहीं होता। इसलिए पिछले महायुद्ध में रूस में छः व्यक्तियों को हृदय की धड़कन बंद हो जाने के बाद पुनरुज्जीवित किया जा सका।

जब तक आभामंडल चारों तरफ है, तब तक व्यक्ति सूक्ष्म तल पर अभी भी जीवन में वापिस लौट सकता है। अभी सेतु कायम है, अभी रास्ता बना है वापस लौटने का। जो व्यक्ति जितना जीवन्त होता है उसके आसपास उतना बड़ा आभामंडल होता है। हम महावीर की मूर्ति के आसपास अगर एक आभामंडल निर्मित करते हैं, या कृष्ण, या राम, या क्राइस्ट के आसपास; तो वह सिर्फ कल्पना नहीं है, वह आभामंडल देखा जा सकता है। और अब तक तो केवल वे ही देख सकते थे, जिनके पास थोड़ी गहरी और सूक्ष्म दृष्टि हो, यानी मिस्टिक्स, सन्त। लेकिन १९३० में एक अंग्रेज वैज्ञानिक ने केमिकल, रासायनिक प्रक्रिया निर्मित कर दी, जिससे प्रत्येक व्यक्ति उस माध्यम से, उस यंत्र के माध्यम से दूसरे के आभामंडल को देख सकता है।

(६) मंत्र का क्या काम होता है?

आप सब यहाँ बैठे हैं। प्रत्येक का अपना एक निजी आभामंडल है। जैसे आपके अंगूठे की छाप निजी है, वैसे ही आपका आभामंडल भी निजी है। और आपका आभामंडल आपके संबंध में वह सब कुछ कहता है, जो आप भी नहीं जानते। आपका आभामंडल आपके संबध में वे बातें भी कहता है, जो भविष्य में घटित होंगी। आपका आभामंडल वे बातें भी कहता है जो अभी आपके गहन अचेतन मन में निर्मित हो रही हैं, बीज की भांति कल खिलेंगी और प्रकट होंगी। मंत्र आभामंडल को बदलने की आमूल प्रक्रिया है। आपके आसपास की स्पेस, और आपके आसपास की इलेक्ट्रोडायनेमिक फील्ड बदलने की प्रक्रिया है। और प्रत्येक धर्म के पास एक महामंत्र है। जैन

परंपरा के पास नमस्कार है। आश्चर्यजनक घोषणा :—एसो पंच नमुक्कारो, सव्व पावप्पणासणो। सब पापों का नाश कर दे, ऐसा महामंत्र है नमोकार। ठीक नहीं लगता। नमोकार से कैसे पाप नष्ट हो जायेगा ! नमोकार से सीधा पाप नष्ट नहीं होता है। लेकिन नमोकार से आपके आसपास इलेक्ट्रोडायनेमिक फील्ड रूपान्तरित होता है और पाप करना असम्भव हो जाता है। क्योंकि पाप करने के लिए आप के आसपास एक खास तरह का आभामंडल चाहिए। उसके बिना आप पाप नहीं कर सकते। वह आभामंडल अगर रूपान्तरित हो जाये, तो असम्भव हो जायेगा पाप करना। यह नमोकार कैसे उस आभामंडल को बदलता होगा ?

(यह नमोकार जो है वह नमन का भाव है। नमन का अर्थ है समर्पण। यह शाब्दिक नहीं है, यह 'नमो अरिहंताणम्, अरिहंतों को नमस्कार करता हूं' शाब्दिक नहीं है। ये शब्द नहीं हैं। यह भाव है। अगर प्राणों में यह भाव सघन हो जाय कि अरिहंतों को नमस्कार करता हूँ तो इसका अर्थ क्या होता है ? इसका अर्थ होता है, जो जानते हैं उनके चरणों में सिर रखता हूँ। जो पहुंच गये हैं, उनके चरणों में समर्पित करता हूँ। जो पा गये हैं उनके द्वार पर मैं भिखारी बनकर खड़ा होने को तैयार हूं।)

किरलियान की फोटोग्राफी ने यह भी बताने की कोशिश की है कि आपके भीतर जब भाव बदलते हैं तो आप के आसपास का विद्युतमंडल बदलता है। और अब तो यह फोटोग्राफ उपलब्ध है। अगर आप अपने भीतर विचार कर रहे हैं चोरी करने का, तो आपका आभामंडल और तरह का हो जाता है, उदास, रुग्ण, खूनी रंगों से भर जाता है। आप किसी गिर गये को उठाने जा रहे हैं, आपके आभामंडल के रंग तत्काल बदल जाते हैं।

(७) 'स्लीपिंग प्रॉफेट'

रूस में एक महिला है नेल्या मिखायलोवा। इस महिला ने पिछले पंद्रह वर्षों में रूस में आमूल क्रांति खड़ी कर दी। और यह जान कर हैरानी होगी कि मैं रूस के इन वैज्ञानिकों के नाम क्यों ले रहा हूँ। कुछ कारण हैं। आज से चालीस साल पहले अमरीका के एक बहुत बड़े प्रोफेट एडगर कायसी, जिनको अमरीका का 'स्लीपिंग प्रॉफेट' कहा जाता है, जो कि सो जाते थे गहरी तंद्रा में, जिसे हम समाधि कहें और उसमें वह जो भविष्यवाणियां करते थे, वे अब तक सभी सही निकली थीं। उस प्रोफेट ने थोड़ी भविष्य-

वाणियां नहीं कीं, दस हजार भविष्यवाणियां कीं। उसकी एक भविष्यवाणी, चालीस साल पहले की, सुन कर उस वक्त सब लोग हैरान हुए। उसने यह भविष्यवाणी की थी कि आज से चालीस साल बाद धर्म का एक नवीन वैज्ञानिक आविर्भाव रूस से प्रारंभ होगा। और एडगर कायसी चालीस साल पहले गये रूस जबकि वहां धर्म नष्ट किया जा रहा था, चर्च गिराये जा रहे थे, मंदिर हटाये जा रहे थे, पादरी, पुरोहित साइबेरिया भेजे जा रहे थे। उन क्षणों में कल्पना भी नहीं की जा सकती कि रूस में धर्म का नया जन्म होगा। रूस अकेली भूमि थी उस समय जमीन पर, जहां धर्म पहली दफे व्यवस्थित रूप से नष्ट किया जा रहा था। जहां पहली दफा नास्तिकों के हाथ में सत्ता थी। पूरी मनुष्य जाति के इतिहास में। जहां पहली बार नास्तिकों ने एक संगठित प्रयास किया था, आस्तिकों के संगठित प्रयास तो रहते हैं पर यह नास्तिकों का प्रयास था। और कायसी की यह घोषणा कि चालीस साल बाद रूस से ही जन्म होगा।

जीवन का एक नियम है कि जीवन एक तरह का संतुलन निर्मित करता है। जिस देश में बड़े नास्तिक पैदा होने बंद हो जाते हैं उस देश में बड़े आस्तिक भी पैदा होने बन्द हो जाते हैं। जीवन एक सन्तुलन है। और जब रूस में इतनी प्रगाढ़ नास्तिकता थी तो अंडरग्राउंड, छिपे मार्गों से आस्तिकता ने पुनः आविष्कार करना शुरू कर दिया। स्टालिन के मरने तक भारी खोजबीन छिप के चलती थी। स्टालिन के मरने के बाद वह खोजबीन प्रकट हो गई। स्टालिन खुद भी बहुत हैरान था।

(८) ध्यान से वस्तु गतिमान

वह बात स्पष्ट करूं कि मिखायलोवा पंद्रह वर्ष से रूस में सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व है। क्योंकि मिखायलोवा सिर्फ ध्यान से किसी भी वस्तु को गतिमान कर पाती है। हाथ से नहीं, शरीर के किसी प्रयोग से नहीं। वहां दूर, छः फीट दूर रखी हुई कोई भी चीज हो, मिखायलोवा सिर्फ उसपर एकाग्रचित होकर उसे गति दे देती है या तो उसे अपने पास खींच पाती है, वस्तु चलना शुरू कर देती है या अपने से दूर हटा पाती है या मेगनेटिक नीडिल लगी हो तो उसे घुमा पाती है या घड़ी हो तो उसके कांटे को तेजी से चक्कर दे पाती है, या घड़ी हो तो बन्द कर पाती है। सैंकड़ों प्रयोग। लेकिन एक बहुत हैरानी की बात है कि अगर मिखायलोवा प्रयोग कर रही हो और आसपास सन्देहशील लोग हों, तो उसे पांच घंटे लग जाते हैं, तब वह हिला

पाती है। अगर आसपास मित्र हों, सहानुभूतिपूर्ण हों तो वह आधे घंटे में हिला पाती है। आसपास श्रद्धा से भरे हुए लोग हों तो पांच मिनिट में। और एक मजे की बात है कि जब उसे पांच घंटे लगते हैं किसी वस्तु को हिलाने में, तो उसका कोई दस पौंड वजन कम हो जाता है। जब उसे आधा घंटा लगता है तब कोई तीन पौंड वजन कम होता है। और जब पांच मिनट लगते हैं तो उसका कोई वजन कम नहीं होता है।

पंद्रह सालों में बड़े वैज्ञानिक प्रयोग किये गये हैं। दो नोबेल प्राइज विनर वैज्ञानिक डा० वासिलिएव और कामिनिएव और चालीस और चोटी के वैज्ञानिकों ने हजारों प्रयोग कर के इस बात की घोषणा की है कि मिखायलोवा जो कर रही है, वह तथ्य है। और तब उन्होंने यंत्र विकसित किये हैं जिनके द्वारा मिखायलोवा के आसपास क्या घटित होता है वह रेकार्ड हो जाता है। तीन बातें रेकार्ड होती हैं। एक तो जैसे ही मिखायलोवा ध्यान एकाग्र करती है उसके आसपास का आभामंडल सिकुड़कर एक धारा में बहने लगता है। जिस वस्तु के ऊपर वह ध्यान करती है, उसके आसपास। लेसर रे की तरह, एक विद्युत की किरण की तरह संग्रहीत हो जाता है। और उसके चारों तरफ किरलियान की फोटोग्राफ़ी से, जैसे कि समुद्र में लहरें उठती हैं ऐसा उसका आभामंडल तरंगित होने लगता है। और वे तरंगें चारों तरफ़ फैलने लगती हैं। उन्हीं तरंगों के धक्के से वस्तुएँ हटती हैं या पास खींची जाती हैं। सिर्फ भावना कि वस्तु मेरे पास आ जाय, वस्तु पास आ जाती है उसका भाव कि दूर हट जाये, वस्तु दूर चली जाती है।

इससे भी हैरानी की बात जो तीसरी है वह यह है कि रूसी वैज्ञानिकों का ख्याल है कि यह जो इनर्जी है, यह चारों तरफ जो ऊर्जा फैलती है, इसे संग्रहीत किया जा सकता है। इसे यंत्रों में संग्रहीत किया जा सकता है। निश्चित ही जब इनर्जी है तो संग्रहीत की जा सकती है। कोई भी ऊर्जा संग्रहीत की जा सकती है। और इस प्राण ऊर्जा का, जिसको योग प्राण कहता है, यह ऊर्जा अगर यंत्रों में संग्रहीत हो जाये, तो उस समय जो मूल भाव था व्यक्ति का, वह गुण उस संग्रहीत शक्ति में भी बना रहता है। जैसे-जैसे मिखायलोवा अगर किसी वस्तु को अपनी तरफ खींच रही है उस समय उसके शरीर से जो ऊर्जा गिर रही है जिसमें उसका तीन पौंड या दस पौंड वजन कम हो जाय, वह ऊर्जा संग्रहीत की जा सकती है। ऐसे रिसेप्टिव यंत्र तैयार किये गये हैं कि वह ऊर्जा उन यंत्रों में प्रवेश कर जाती है, और

संग्रहीत हो जाती है। फिर यदि उस यंत्र को इस कमरे में रख दिया जाय और आप कमरे के भीतर आयें तो वह यंत्र आपको अपनी तरफ खींचेगा। आपका मन होगा उसके पास जायें। यंत्र है, आदमी वहाँ नहीं है।

मंत्र की भी यही मूल आधारशिला है। शब्द में, विचार में, तरंग में भाव संग्रहीत और समाविष्ट हो जाता है। जब कोई व्यक्ति कहता है नमो अरिहंताणम्, मैं उन सबको जिन्होंने जीता और जाना अपने को, उनकी शरण में छोड़ता हूं, तब उसका अहंकार तत्काल विगलित होता है। और जिन-जिन लोगों ने इस जगत् में अरिहंतों के शरण में अपने को छोड़ा है, उस महाधारा में उनकी शक्ति सम्मिलित होती है। उस गंगा में वह भी एक हिस्सा हो जाता है। और चारों तरफ आकाश में इस अरिहंत के भाव के आसपास जो गूञ्ज निर्मित हुए हैं, स्पेस में, आकाश में जो तरंगें संग्रहीत हुई हैं, उन संग्रहीत तरंगों में आपकी तरंग भी चोट करती है। आपके चारों तरफ एक वर्षा हो जाती है जो आपको दिखाई नहीं पड़ती। आपके चारों ओर एक और दिव्य धारा, भगवत् धारा का लोक निर्मित हो जाता है। इस लोक के साथ, इस भावलोक के साथ आप दूसरे तरह के व्यक्ति हो जाते हैं।

महामंत्र स्वयं के आसपास की आभा को स्वयं के आसपास के आभामंडल को बदलने की कीमिया है। और अगर कोई व्यक्ति दिन-रात, जब भी उसे स्मरण का अवसर मिले, तभी नमोकार में डूबता रहे तो वह एक दूसरा व्यक्ति हो जायेगा। वह वही व्यक्ति नहीं रह सकता, जो होता है। पांच नमस्कार हैं। अरिहंत को नमस्कार। अरिहंत का अर्थ होता है जिसके सारे शत्रु विनष्ट हो गये, जिसके भीतर अब कुछ ऐसा नहीं रहा है जिससे उसे लड़ना पड़ेगा। लड़ाई समाप्त हो गयी। भीतर अब क्रोध नहीं, जिससे लड़ना पड़े, भीतर काम नहीं, जिससे लड़ना पड़े, भीतर अब लोभ नहीं जिससे लड़ना पड़े, अहंकार नहीं जिससे लड़ना पड़े, अज्ञान नहीं जिससे लड़ना पड़े। वे सब समाप्त हो गये, जिनसे लड़ाई थी।

(६) अरिहंत को नमस्कार

अब एक नानकानफ्लिक्ट, एक निर्द्वंद अस्तित्व शुरू हुआ। अरिहंत शिखर है, जिसके आगे यात्रा नहीं है। अरिहंत मंजिल है, जिसके आगे फिर कोई यात्रा नहीं है। कुछ करने को न बचा जहाँ, कुछ पाने को न बचा जहाँ, कुछ छोड़ने को भी न बचा जहाँ, जहाँ सब समाप्त हो गया। जहाँ शुद्ध

अस्तित्व रह गया, प्योर एक्ज़िस्टेंस जहाँ रह गया, जहाँ गंध मात्र रह गया, जहाँ होना मात्र रह गया, उसे कहते हैं अरिहंत। अद्‌भुत है यह बात भी कि इस महामंत्र ने किसी व्यक्ति का नाम नहीं लिया। महावीर का नहीं, पार्श्वनाथ का नाम नहीं, किसी का नाम नहीं। जैन-परंपरा का भी कोई नाम नहीं। क्योंकि जैन-परम्परा यह स्वीकार करती है कि अरिहंत जैन-परम्परा में ही नहीं हुए, और सब परंपराओं में भी हुए हैं। इसलिए अरिहंतों को नमस्कार है, किसी अरिहंत को नहीं। (यह नमस्कार बड़ा विराट् है। संभवत: विश्व के किसी धर्म ने ऐसा महामंत्र, इतना सर्वांगीण, इतना सर्वस्पर्शी महामंत्र विकसित नहीं किया है। व्यक्ति का जैसे ख्याल भी नहीं है, केवल शक्ति का ख्याल है। रूप पर ध्यान ही नहीं है, वह जो अरूप सत्ता है, उसी का ध्यान है। अरिहंतों को नमस्कार।)

महावीर को जो प्रेम करता है, उसे कहना चाहिए महावीर को नमस्कार। बुद्ध को जो प्रेम करता है, कहना चाहिए बुद्ध को नमस्कार। राम को जो प्रेम करता है, कहना चाहिए राम को नमस्कार। पर यह मंत्र बहुत अनूठा है, बेजोड़ है। और किसी परम्परा में ऐसा मंत्र नहीं है, जो सिर्फ इतना कहता है अरिहंतों को नमस्कार, उन सबको नमस्कार जिनकी मंजिल आ गयी है। असल में मंजिल को नमस्कार। वह जो पहुंच गये उनको नमस्कार।

लेकिन अरिहंत शब्द निगेटिव है, नकारात्मक है। उसका अर्थ है जिनके शत्रु समाप्त हो गये। यह पाजिटिव नहीं है, वह विधायक नहीं है। असल में इस जगत् में जो श्रेष्ठतम अवस्था है, उसको निषेध से ही प्रकट किया जा सकता है, नेति-नेति से उसको विधायक शब्द नहीं किया जा सकता। उसका कारण है। सभी विधायक शब्दों में सीमा आ जाती है, निषेध में सीमा नहीं होती। अगर मैं कहता हूं ऐसा है, तो एक सीमा निर्मित होती है। अगर मैं कहता हूं कि ऐसा नहीं है, तो कोई सीमा नहीं है। 'नहीं' की कोई सीमा नहीं, 'है' की तो सीमा है। तो 'है' तो बड़ा छोटा शब्द है। 'नहीं' बहुत विराट् है। इसलिए परम शिखर पर रखा है अरिहंत को। सिर्फ इतना ही कहा है कि जिनके सब शत्रु समाप्त हो गये, जिनके अंतर्द्वंद्व विलीन हो गये, नकारात्मक हो गये। जिनमें लोभ नहीं, मोह नहीं, काम नहीं। क्या है यह नहीं कहा, क्या नहीं है जिनमें वह कहा।

(१०) सिद्ध कौन है ?

इसलिए अरिहंत बहुत वायवीय, ऐवस्ट्रैक्ट शब्द है और शायद पकड़ में न आये। इसलिए ठीक दूसरे शब्द में पाजिटिव का उपयोग किया है :—नमो सिद्धाणम्। सिद्ध का अर्थ होता है वे जिन्होंने पा लिया। अरिहंत का अर्थ होता है वे, जिन्होंने कुछ छोड़ दिया। सिद्ध बहुत पाजिटिव शब्द है। सिद्धि, उपलब्धि, एचीवमेंट—जिन्होंने पा लिया। लेकिन ध्यान रहे, जिन्होंने खो दिया उनको ऊपर रखा है। जिन्होंने पा लिया, उनको नंबर दो पर रखा है। क्यों ? सिद्ध अरिहंत से छोटा नहीं होता, सिद्ध वहीं पहुंचता है जहाँ अरिहंत पहुँचता है। लेकिन भाषा में पाजिटिव नम्बर दो पर रखा जायेगा। लेकिन सिद्ध के सम्बन्ध में भी सिर्फ इतनी ही सूचना है कि पहुँच गये, और कुछ नहीं कहा है। कोई विशेषण नहीं जोड़ा। पर पहुँच गये कहने भर से भी हमारी समझ में नहीं आयेगा। अरिहंत भी हमें बहुत दूर लगता है—जो शून्य हो गये, निर्वाण को पा गये, मिट गये, नहीं रहे। सिद्ध भी बहुत दूर है। सिर्फ इतना ही कहा है कि जिन्होंने पा लिया। लेकिन क्या ? और पा लिया तो हम कैसे जानें ? क्योंकि सिद्ध होना अनभिव्यक्ति भी हो सकता है, अनमेनिफेस्ट भी हो सकता है।

बुद्ध से कोई पूछता है कि आपके ये दस हजार भिक्षु हैं, आप बुद्धत्व को पा गये। इनमें से और कितनों ने बुद्धत्व को पा लिया। बुद्ध कहते हैं बहुतों ने। लेकिन वह पूछने वाला कहता है, दिखायी नहीं पड़ते। तो बुद्ध कहते हैं मैं प्रकट होता हूँ, वे अप्रकट। वे अपने में ही छिपे हैं जैसे बीज में वृक्ष छिपा हो। तो सिद्ध तो बीज जैसा है, पा लिया। और बहुत बार ऐसा होता है कि पाने की घटना घटती है और वह इतनी गहन होती है कि प्रकट करने की चेष्टा भी उससे पैदा नहीं होती। इसलिए सभी सिद्ध बोलते नहीं, सभी अरिहंत बोलते नहीं। सभी सिद्ध, सिद्ध होने के बाद जीते भी नहीं। इतनी लीन भी हो सकती है चेतना उस उपलब्धि में कि तत्क्षण शरीर छूट जाय। इसलिए हमारी पकड़ में सिद्ध भी न आ सकेगा। और मंत्र तो ऐसा चाहिए जो पहली सीढ़ी से लेकर आखिरी शिखर तक जहाँ जो है, वहीं से पकड़ में आ जाय। जो जहाँ खड़ा हो वहीं से यात्रा कर सके। इसलिए तीसरा सूत्र कहा है आचार्यों को नमस्कार।

(११) आचार्य वह जिसने..........

आचार्य का अर्थ है वह जिसने पाया भी और आचरण से प्रकट भी किया। आचार्य का अर्थ है जिसका ज्ञान और आचरण एक है। ऐसा नहीं

कि सिद्ध का आचरण ज्ञान से भिन्न होता है। लेकिन शून्य हो सकता है। आचरण शून्य ही हो जाये। ऐसा भी नहीं कि अरिहंत का आचरण भिन्न होता है। लेकिन अरिहंत इतना निराकार हो जाता है कि हो सकता है आचरण हमारी पकड़ में न आये। हमें फ्रेम चाहिए जिसमें पकड़ना आ जाय। आचार्य से शायद निकटता मालूम पड़ेगी ज्ञान और आचरण के अर्थों में। हम ज्ञान को भी न पहचान पायेंगे, आचरण को पहचान लेंगे। इससे खतरा भी हुआ। क्योंकि आचरण ऐसा भी हो सकता है जैसा ज्ञान न हो। एक आदमी अहिंसक न हो तो अहिंसा का आचरण कर सकता है। एक आदमी अहिंसक हो तो हिंसा का आचरण नहीं कर सकता। वह तो असंभव है। लेकिन एक आदमी लोभी हो तो अलोभ का आचरण कर सकता है। इससे एक खतरा भी पैदा हुआ। आचार्य हमारी पकड़ में आता है, लेकिन जहाँ से हमारी पकड़ शुरू होती है वहीं से खतरा शुरू होता है। खतरा यह है कि कोई आदमी आचरण ऐसा कर सकता है कि आचार्य मालूम पड़े। मजबूरी है हमारी। जहाँ से सीमाएँ बननी शुरू होती हैं वहीं से हमें दिखाई पड़ता है और जहाँ से हमें दिखाई पड़ता है वहीं से हमारे अंधे होने का डर है।

पर मंत्र का प्रयोजन यही है कि हम उनको नमस्कार करते हैं, जिनका ज्ञान उनका आचरण है। यहाँ भी कोई विशेषण नहीं है। आखिर वे कौन ? वे कोई भी हों।

एक ईसाई फकीर जापान गया था। और जापान के एक झेन भिक्षु से मिलने गया। उसने पूछा झेन भिक्षु से कि जीसस के सम्बन्ध में आपका क्या ख्याल है। उस भिक्षु ने कहा मुझे जीसस का कुछ भी पता नहीं है तुम कुछ कहो ताकि मैं ख्याल बना सकूं। तो उसने कहा, जीसस ने कहा है जो तुम्हारे गाल पर एक चांटा मारे तो तुम दूसरा गाल उसके सामने कर देना। तो उस झेन फकीर ने कहा, आचार्य को नमस्कार। वह ईसाई फकीर कुछ समझ न सका। उसने कहा जीसस ने कहा है कि जो अपने को मिटा देगा वही पायेगा। उस झेन फकीर ने कहा सिद्ध को नमस्कार। वह कुछ समझ न सका। उसने कहा, क्या कह रहे हैं। उस ईसाई फकीर ने कहा कि जीसस ने अपने को सूली पर मिटा दिया। वे शून्य हो गये। मृत्यु को उन्होंने चुपचाप स्वीकार कर लिया। वे निराकार में खो गये। उस झेन फकीर ने कहा अरिहंत को नमस्कार। आचरण और ज्ञान जहाँ एक हो जाये, उसे हम आचार्य कहते हैं। वह सिद्ध भी हो सकता है, वह अरिहंत भी हो सकता है।

(१२) महावीर और इलेक्ट्रोमैग्नेटिक फील्ड

लेकिन हमारी पकड़ में वह आचरण से आता है। यह जरूरी भी नहीं, क्योंकि आचरण बड़ी सूक्ष्म बात है। और हम बड़ी स्थूल बुद्धि के लोग हैं। आचरण बड़ी सूक्ष्म बात है। उसका पकड़ पाना भी आसान नहीं। जैसे कि महावीर का नग्न खड़ा हो जाना निश्चित ही लोगों को अच्छा नहीं लगा। गाँव-गाँव से महावीर को खदेड़कर भगाया गया। गाँव-गाँव महावीर पर पत्थर फेंके गये। हम ही लोग थे, हम ही यह सब करते रहे। कोई और नहीं था। महावीर की नग्नता लोगों को भारी पड़ी, क्योंकि लोगों ने कहा यह तो आचरणहीनता है, यह कैसा आचरण! तो आचरण बहुत सूक्ष्म है। महावीर का नग्न हो जाना इतना निर्दोष आचरण है, जिसका कोई हिसाब लगाना कठिन है। हिम्मत अद्‌भुत है। महावीर इतने सरल हो गये कि छिपाने को कुछ न बचा। और महावीर को इस चमड़ी और हड्डी की देह का बोध मिट गया और वह, जिसको रूसी वैज्ञानिक इलेक्ट्रोमैग्नेटिक फील्ड कहते हैं, उस प्राण शरीर का बोध इतना सघन हो गया कि उस पर से कपड़े गिर गये। ऐसा नहीं कि महावीर ने कपड़े छोड़े। कपड़े गिर गये।

एक दिन एक राह से गुजरते हुए एक झाड़ी में चादर उलझ गयी। अब इसलिए कि झाड़ी के फूल न गिर जायँ, पत्ते न टूट जायँ, कांटों को चोट न लग जाय, आधी चादर फाड़कर वहीं छोड़ दिये। आधी रह गयी शरीर पर। फिर वह भी गिर गयी। वह कब गिर गयी, उसका महावीर को पता न चला। लोगों को पता चला कि महावीर नग्न खड़े हैं। आचरण सहना मुश्किल हो गया। आचरण के रास्ते सूक्ष्म हैं। और हम सबके आचरण के संबंध में बंधे-बंधाये ख्याल हैं। ऐसा करो—और जो ऐसा न करने को राजी हो जाते हैं वे करीब-करीब मुर्दा लोग हैं। जो आपको मानकर आचरण कर लेते हैं उन मुर्दों को आप काफी पूजा देते हैं। इसलिए कहा है, आचार्यों को नमस्कार। आप आचरण तय नहीं करेंगे उनका ज्ञान ही उनका आचरण तय करेगा। और ज्ञान परम स्वतंत्रता है। जो व्यक्ति आचार्य को नमस्कार कर रहा है, वह यह भाव कर रहा है कि मैं नहीं जानता क्या है ज्ञान, क्या है आचरण। लेकिन जिनका भी आचरण उनके ज्ञान से उपजता है और बहता है, उनको मैं नमस्कार करता हूँ। अभी भी बात सूक्ष्म है इसलिए चौथे चरण में उपाध्यायों को नमस्कार। उपाध्याय का अर्थ है आचरण ही नहीं, उपदेश भी। उपाध्याय का अर्थ है ज्ञान ही नहीं, आचरण ही नहीं, उपदेश भी। वे

जो जानते हैं, जानकर वैसा जीते हैं और जैसा वे जीते हैं और जानते हैं वैसा वताते भी हैं। उपाध्याय का अर्थ है वह जो वताता भी है। क्योंकि हम मौन से न समझ पायें तो ! आचार्य मौन हो सकता है। वह मान सकता है कि आचरण काफी है और अगर तुम्हें आचरण दिखाई नहीं पड़ता, तो तुम जानो। उपाध्याय आप पर और भी दया करता है, वह वोलता भी है। वह आपको कह कर भी वताता है।

(१३) चार की परिधि से परे

ये चार स्पष्ट रेखाएँ हैं। लेकिन जानने वाले इन चार के वाहर भी छूट जायेंगे। क्योंकि जानने वालों को केटैगरी से वाँधा नहीं जा सकता। इसलिए पांचवें चरण में एक सामान्य नमस्कार है। नमो लोए सव्व साहुणंम्। लोक में जो भी साधु हैं उन सवको नमस्कार। जगत् में जो भी साधु हैं, उन सवको नमस्कार। जो इन चार में कहीं भी छूट गये हों उनके प्रति भी हमारा नमन न छूट जाये क्योंकि उन चार में वहुत लोग छूट सकते हैं। जीवन वहुत रहस्यपूर्ण है। 'केटैगराइज' नहीं किया जा सकता है, खांचों में नहीं वांटा जा सकता है। इसलिए जो शेष रह जायेंगे उनको सिर्फ साधु कहा है। वे जो सरल हैं। साधु का एक अर्थ और भी है। इतना सरल भी हो सकता है कोई कि उपदेश देने में संकोच करे। इतना सरल भी हो सकता है कोई कि आचरण को भी छिपाये। पर उसको भी हमारे नमस्कार पहुंचने चाहिए। सवाल यह नहीं है कि हमारे नमस्कार से उनको कुछ फायदा होगा। सवाल यह है कि हमारा नमस्कार हमें रूपान्तरित करता है। न अरिहंतों को कोई फायदा होगा, न सिद्धों को, न आचार्यों को, न उपाध्याओं को, न साधुओं को। पर आपको फायदा होगा। यह वहुत मजे की वात है कि हम सोचते हैं कि शायद इस नमस्कार में हम सिद्धों के लिए अथवा अरिहंतों के लिए कुछ कर रहे हैं। तो इस भूल में न पड़ें। आप उनके लिए कुछ भी न कर सकेंगे या आप जो भी करेंगे उपद्रव ही करेंगे। आपकी इतनी ही कृपा काफी है कि आप उनके लिए कुछ न करें। आप गलत ही कर सकते हैं। तो यह नमस्कार अरिहंतों के लिए नहीं है। अरिहंतों की तरफ है। लेकिन आपके लिए है। इसके जो परिणाम हैं, वे आप पर होने वाले हैं, जो फल हैं वे आप पर वरसेंगे। अगर कोई व्यक्ति इस भाँति नमन से भरा हो, तो क्या आप सोचते हैं उस व्यक्ति में अहंकार टिक सकेगा ? असभंव है।

लेकिन नहीं, हम वहुत अद्भुत लोग हैं। अगर अरिहंत सामने खड़ा हो तो हम पहले इस वात का पता लगायेंगे कि अरिहंत हैं भी ? महावीर के वारे

में भी लोग यही पता लगाते-लगाते जीवन नष्ट करते रहे। अरिहंत हैं भी ? तीर्थंकर हैं भी ? उन बातों का आपको पता नहीं है। इसलिए आप सोचते हैं कि सब तय हो गया। महावीर के वक्त में बात इतनी तय न थी। और भी भीड़ें थीं, और भी लोग थे, जो कह रहे थे ये अरिहंत नहीं हैं। अरिहंत और हैं। गोषालक हैं अरिहंत। ये तीर्थंकर नहीं हैं। यह दावा झूठा है।

लेकिन महावीर का तो कोई दावा नहीं था। हां, जो महावीर को जानते थे, वे दावे से बच भी नहीं सकते थे। उनकी भी अपनी कठिनाई है। महावीर के समय चारों ओर यही विवाद था। लोग जाँच करने आते कि महावीर अरिहंत हैं या नहीं, तीर्थंकर हैं या नहीं, वे भगवान् हैं या नहीं ! बड़ी आश्चर्य की बात है—आप जाँच भी कर लेंगे और सिद्ध भी हो जायगा कि महावीर भगवान् नहीं हैं तो आपको क्या मिलेगा ? लेकिन महावीर भगवान् न भी हों और आप उनके चरणों में सिर रखें और कह सकें कि 'नमो अरिहंताणम्' तो आपको कुछ मिलेगा। महावीर के भगवान् होने से कोई फर्क नहीं पड़ता।

असली सवाल यह नहीं है कि महावीर भगवान् हैं या नहीं। असली सवाल यह है कि कहीं भी आपको भगवान् दिख सकते हैं या नहीं। कहीं भी-पत्थर में, पहाड़ में। कहीं भी आपको दिख सकें तो आप नमन को उपलब्ध हो जायें। असली राज तो नमन में है, असली राज तो झुक जाने में है। वह जो झुक जाता है, उसके भीतर सब कुछ बदल जाता है। वह आदमी दूसरा हो जाता है। यह सवाल नहीं है कि कौन सिद्ध है, कौन सिद्ध नहीं है और इसका कोई उपाय भी नहीं है कि किसी दिन यह तय हो सके। लेकिन यह बात ही इर्रेलिवेंट है, असंगत है। इससे कोई संबंध ही नहीं है। न रहे हों महावीर भगवान् इससे क्या फर्क पड़ता है। लेकिन अगर आपके लिए झुकने के लिए निमित्त बन सकते हैं तो बात पूरी हो गयी। महावीर सिद्ध हैं या नहीं, यह वे सोचें और समझें। वे अरिहंत अभी हैं या नहीं, यह उनकी अपनी चिंता हो। आपके लिए चिंतित होने का कोई भी तो कारण नहीं हैं। आपके लिए चिंतित होने का अगर कोई कारण है तो एक ही कारण है कि कहीं कोई कोना है इस अस्तित्व में, जहां आपका सिर झुक जाय। अगर ऐसा कोई कोना है तो आप नये जीवन को उपलब्ध हो जायेंगे।

(यह नमोकार इसकी चेष्टा है कि अस्तित्व में कोई कोना न बचे। जहां-जहां सिर झुकाया जा सके, अज्ञात, अनजान, अपरिचित हर कोना।

पता नहीं कौन साधु है इसलिए नाम नहीं लिये। पता नहीं कौन अरिहंत है। पर इस जगत् में जहां अज्ञानी हैं वहां ज्ञानी भी हैं। क्योंकि जहां अंधेरा है वहां प्रकाश है। जहां रात-सांझ होती है वहां सुबह भी होती है। जहां सूरज अस्त होता है वहां सूरज उगता भी है। यह अस्तित्व द्वंद्व की व्यवस्था है तो जहां इतना सघन अज्ञान है वहां इतना सघन ज्ञान भी होगा ही। यह श्रद्धा है। और इस श्रद्धा से भरकर जो ये पांच नमन कर पाता है वह एक दिन कह पाता है निश्चय ही मंगलमय हैं यह सूत्र। इससे सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं।

(१४) चरण और नमन का आचरण

ध्यान में रख लें, मंत्र आपके लिए है। मंदिर में जब मूर्ति के चरणों में आप सिर रखते हैं, तब सवाल यह नहीं होता है कि वे चरण परमात्मा के हैं या नहीं। सवाल इतना ही होता है कि वह जो चरण के समक्ष झुकनेवाला सिर है वह परमात्मा के समक्ष झुक रहा है या नहीं। वे चरण तो निमित्त हैं। उन चरणों का कोई प्रयोजन नहीं है। वह तो आपको झुकने की कोई जगह बनाने के लिए व्यवस्था है। लेकिन झुकने में पीड़ा होती है। इसलिए जो भी वैसी पीड़ा है उस पर क्रोध आता है। जीसस पर या महावीर पर या बुद्ध पर जो क्रोध आता है वह भी स्वाभाविक मालूम पड़ता है। क्योंकि झुकने में पीड़ा होती है। अगर महावीर आयें और आपके चरण पर सिर रखें तो चित्त बड़ा प्रसन्न होगा। फिर आप महावीर को पत्थर न मारेंगे। मारेंगे? नहीं, फिर आप महावीर के कानों में खीलें न ठोकेंगे। लेकिन महावीर आपके चरणों में सिर रख दें तो आपको कोई लाभ नहीं होता, नुकसान होता है। आपकी अकड़ और गहन हो जायेगी।

महावीर ने अपने साधुओं से कहा है कि वे गैर साधुओं को नमस्कार न करें। बड़ी अजीब-सी बात है। साधु को तो विनम्र होना चाहिए। इतना निरहंकारी होना चाहिए कि सभी के चरणों में सिर रखे। तो साधु, गैर साधु को, गृहस्थ को नमस्कार न करे, यह तो महावीर की बात अच्छी नहीं मालूम पड़ती। लेकिन प्रयोजन करुणा का है। क्योंकि साधु निमित्त बनना चाहिए कि आपका नमस्कार पैदा हो। और साधु आपको नमस्कार करे तो निमित्त तो बनेगा ही, लेकिन आपकी अस्मिता और अहंकार को और मजबूत कर देगा। कई बार दिखती है बात कुछ और, होती है कुछ और।

असल में साधु का तो लक्षण यही है कि जिसका सिर अब सबके चरणों पर है। फिर भी साधु आपको नमस्कार नहीं करता है। क्योंकि निमित्त बनना चाहता है। लेकिन अगर साधु का सिर आप सबके चरणों पर न हो और फिर वह आपको अपने चरणों पर झुकाने की कोशिश करे, तब वह आत्महत्या में लगा है। पर फिर भी आपको चिंतित होने की कोई भी जरूरत नहीं है। क्योंकि आत्महत्या का प्रत्येक को हक है। अगर वह अपने नरक का रास्ता तय कर रहा है तो उसे करने दें। लेकिन नर्क जाता हुआ आदमी भी अगर आपके स्वर्ग के इशारे के लिए निमित्त बनता हो तो अपना निमित्त बना लें, अपने मार्ग पर बढ़ जायें। पर मजेदार (बात है कि हमें इसकी चिंता कम है कि हम कहां जा रहे हैं। हमें इसकी चिंता है कि दूसरा कहां जा रहा है।)

नमोकार नमन का सूत्र है। यह पांच चरणों में है। समस्त जगत् में जिन्होंने भी कुछ पाया है, जिन्होंने भी कुछ जाना है, जिन्होंने भी कुछ जिया है वे जीवन के अन्तर्तम गुह्य रहस्य से परिचित हुए हैं, जिन्होंने मृत्यु पर विजय पायी है, जिन्होंने शरीर के पार कुछ पहचाना है उन सबके प्रति नमस्कार। समय और क्षेत्र दोनों में लोक दो अर्थ रखता है। लोक का अर्थ-विस्तार में जो होंगे स्पेस में, आकाश में, जो आज हैं वे। लेकिन जो कल थे वे भी और जो कल होंगे वे भी। लोक में, सर्व लोक में, सव्वसाहूणं, समस्त साधुओं को—समय के अन्तराल के पीछे जो कभी हुए होंगे, भविष्य में जो होंगे और आज जो हैं वे, समय या क्षेत्र में कहीं भी, जब भी कहीं कोई ज्ञान-ज्योति जगी हो, उस सबके लिए नमस्कार। इस नमस्कार के साथ ही आप तैयार होंगे। तब फिर महावीर की वाणी को समझना आसान होगा। इस नमन के बाद ही, इस झुकने के बाद ही आपकी झोली फैलेगी और महावीर की संपदा उसमें गिर सकती है।

नमन है रिसेप्टिविटी, ग्राहकता। जैसे ही आप नमन करते हैं वैसे ही आपका हृदय खुलता है और आप भीतर किसी को प्रवेश देने के लिए तैयार हो जाते हैं। क्योंकि जिसके चरणों में आपने सिर रखा, उसको आप भीतर आने में बाधा न डालेंगे। निमंत्रण देंगे। जिसके प्रति आपने श्रद्धा प्रकट की है, उसके लिए आपका द्वार, आपका घर खुला हो जायेगा। वह आपके घर में आपका हिस्सा होकर जी सकता है। लेकिन अगर 'ट्रस्ट' नहीं है, भरोसा नहीं है, तो नमन असंभव है। और नमन असंभव है तो समझ असंभव है। नमन के साथ ही अंडरस्टैंडिंग है, नमन के साथ ही समझ का जन्म है।

(१५) ग्राहकता वनाम कृत्रिम पुनर्जन्म

इस ग्राहकता के संवंध में एक बात और आपसे कहूं। मास्को यूनिवर्सिटी में १९६६ तक एक अद्भुत व्यक्ति था डा० वासिलिएव। वह ग्राहकता पर प्रयोग कर रहा था। माइंड की रिसेप्टिविटी, मन की ग्राहकता कितनी हो सकती है। यह करीव-करीव ऐसा हाल है जैसे कि एक बड़ा भवन हो और उसमें एक छोटा-सा छेद कर रखा हो, और उस छेद से हम बाहर के जगत् को देखते हों। यह भी हो सकता है कि भवन की सारी दीवालें गिरा दी जायें और हम खुले आकाश के नीचे समस्त रूप से ग्रहण करने वाले हो जायें। वताया गया कि इस पर वासिलिएव ने एक वहुत हैरानी का प्रयोग किया है और पहली दफा किया है। उस तरह के बहुत से प्रयोग पूरव में, विशेपकर भारत में, और सर्वाधिक विशेषकर महावीर ने किये थे। लेकिन उनका डाइमेंशन, उनका आयाम अलग था। महावीर ने जाति-स्मरण के प्रयोग किये थे। प्रत्येक व्यक्ति को आगे अगर ठीक यात्रा करनी हो, तो उसे अपने पिछले जन्मों को स्मरण और याद कर लेना चाहिए। उसको पिछले जन्म याद आ जायें, स्मरण आ जायें तो आगे की यात्रा आसान हो जायेगी।

लेकिन वासिलिएव ने एक और अनूठा प्रयोग किया है। उस प्रयोग को वे कहते हैं 'आर्टिफिशियल रिइनकारनेशन।' आर्टिफिशियल रिइनकारनेशन, कृत्रिम पुनर्जन्म, कृत्रिम पुनरुज्जीवन, यह क्या है? वासिलिएव और उसके साथी एक व्यक्ति को वेहोश करेंगे। वीस दिन तक निरंतर सम्मोहित करके उसको गहरी वेहोशी में ले जायेंगे। और जब वह गहरी वेहोशी में आने लगेगा तो ई. जी. नाम के यंत्र पर, जिससे जाँच की जा सकती है कि नींद की गहराई कितनी है, अल्फा नाम की 'वेव्स' पैदा होनी शुरू हो जाती हैं। जव व्यक्ति चेतन मन से गिर के अचेतन में चला जाता है, तो यंत्र पर जैसे कि कार्डियोग्राम पर ग्राफ वन जाता है वैसा ग्राफ ई. जी. भी वना लेता है कि अब सपना देख रहा है, अब सपने भी बंद हो गये, अव यह नींद में है, अव यह गहरी नींद में है। अव यह असल गहराई में उतर गया है। जैसे ही कोई व्यक्ति असल गहराई में डूब जाता है, उसे सुझाव देता था वासिलिएव। समझ लें कि वह एक चित्रकार है, छोटा मोटा चित्रकार है, या चित्रकला का विद्यार्थी है तो वासिलिएव उसे समझायेगा कि तुम पिछले जन्म के माइकलेंजलो या वानगाग हो। कवि है तो वह समझायेगा कि तुम शेक्सपियर हो या कोई और हो। और तीस दिन तक निरंतर गहरी अल्फा वेव्स की हालत

में उसको सुझाव दिया जायेगा कि वह कोई और है पिछले जन्म का। तीस दिन में उसका चित्त इसको ग्रहण कर लेगा।

तीस दिन के बाद बड़ी हैरानी के अनुभव हुए कि वह व्यक्ति जो साधारण सा चित्रकार था, जब उसके भीतर भरोसा हो गया कि मैं माइकलेंजलो हूँ, तो तत्काल वह विशेष चित्रकार हो गया। अगर वह साधारण सा तुकबंद था और जब उसे भरोसा हो गया कि मैं शेक्सपियर हूँ तो शेक्सपियर की हैसियत की कविताएँ उस व्यक्ति से पैदा होने लगीं। आखिर हुआ क्या? वासिलिएव तो कहता है यह आर्टिफ़िशियल रिइनकारनेशन है। वह कहता है कि हमारा चित्त तो बहुत बड़ी चीज है। छोटी सी खिड़की खुली है, उतने से हमने अपने को समझ रखा है कि हम यह हैं, क्योंकि उतनी ही खुली है। अगर हमें भरोसा दिला दिया जाये कि हम और बड़े हैं तो खिड़की बड़ी हो जाती है। हमारी चेतना उतना काम करने लगती है।

वासिलिएव का कहना है कि आने वाले भविष्य में हम जीनियस निर्मित कर सकेंगे। कोई कारण नहीं है कि जीनियस पैदा ही हो। सच तो यह है कि वासिलिएव के अनुसार सौ में से कम से कम नब्बे बच्चे प्रतिभा की, जीनियस की क्षमता लेकर पैदा होते हैं, हम उनकी खिड़की छोटी करते हैं। मां-बाप, स्कूल, शिक्षक सब मिलजुलकर उनकी खिड़की छोटी करते जाते हैं। बीस-पच्चीस साल तक हम एक साधारण आदमी खड़ा कर देते हैं जो कि क्षमता बड़ी लेकर आया था। लेकिन हम उसका द्वार छोटा करते जाते हैं, फिर छोटा करते जाते हैं। वासिलिएव कहता है सभी बच्चे जीनियस की तरह पैदा होते हैं। कुछ जो हमारी तरकीबों से बच जाते हैं वे जीनियस बन जाते हैं। बाकी नष्ट हो जाते हैं। पर उसका कहना है कि असली सूत्र है रिसेप्टिविटी। इतना ग्राहक हो जाना चाहिए चित्त, कि जो उसे कहा जाये, वह उसके भीतर गहनता में प्रवेश कर जाये।

इस नमोकार मंत्र के साथ हम शुरू करते हैं महावीर की वाणी पर चर्चा। क्योंकि गहन होगा मार्ग, सूक्ष्म होंगी बातें। अगर आप ग्राहक हैं, नमन से भरे, श्रद्धा से भरे, तो आपकी उस अतल गहराई में बिना किसी यंत्र की सहायता के अल्फा वेव्स पैदा हो जाती हैं। जब कोई श्रद्धा से भरता है तो अल्फा वेव्स पैदा हो जाती हैं। आप हैरान होंगे जानकर कि गहन सम्मोहन में, गहरी निद्रा में, ध्यान में या श्रद्धा में ई. जी. की जो

मशीन है, वह एक सा ग्राफ बनाती है। श्रद्धा से भरा हुआ चित्त उसी शांति की अवस्था में होता है जिस शांति की अवस्था में गहन ध्यान में होता है। या उसी शांति की अवस्था में होता है जैसा गहन निद्रा में होता है। या बहुत 'रिलेक्जेशन' की अवस्था में होता है। जिस व्यक्ति पर वासिलिएव काम करता था वह है निकोलिएव नाम का युवक, जिस पर उसने वर्षो काम किया। निकोलिएव के अन्दर दो हजार मील दूर से भेजे गये विचारों को पकड़ने की क्षमता आ गयी। सैकड़ों प्रयोग किये गये हैं जिनमें वह दो हजार मील दूर तक के विचारों को पकड़ पाता है। उससे जब पूछा जाता है, उसकी तरकीब क्या है? तब वह कहता है कि मैं आधा घंटा पूर्ण 'रिलैक्स', शिथिल होकर पड़ जाता हूँ और 'एक्टिविटी,' सक्रियता छोड़ देता हूँ। 'पैसिव' हो जाता हूँ। पुरुष की तरह नहीं, स्त्री की तरह हो जाता हूँ। कुछ भेजता नहीं, कुछ आता हो तो ले लेने को राजी हो जाता हूँ। और आधा घंटे में जब ई. जी. की मशीन बता देती है कि अल्फा वेव्स शुरू हो गयीं, तब वह दो हजार मील दूर से भेजे गये विचारों को पकड़ने में समर्थ हो जाता है। लेकिन जब तक इतना रिसेप्टिव नहीं होता तब तक यह नहीं हो पाता।

(१६) वासिलिएव और पनडुब्बी में प्रयोग

वासिलिएव और दो कदम आगे गया है। उसने कहा—आदमी ने तो बहुत तरह से अपने को विकृत किया है। अगर आदमी में यह क्षमता है तो पशुओं में और भी शुद्ध होगी। इस सदी का अनूठे से अनूठा प्रयोग वासिलिएव ने किया कि एक मादा चूहे को, चुहिया को ऊपर रखा और उसके आठ बच्चों को, पानी के भीतर, पनडुब्बी के भीतर हजारों फीट नीचे सागर में भेजा। पनडुब्बी का इसलिए प्रयोग किया कि पानी के भीतर से कोई रेडियो वेव्स बाहर नहीं आतीं, न बाहर से भीतर जाती हैं। अब तक जानी गयी जितनी वेव्स वैज्ञानिकों को पता हैं, जितनी तरंगें हैं, वे कोई भी पानी के भीतर उतनी गहराई तक प्रवेश नहीं करती। एक गहराई के बाद सूर्य की किरण भी पानी में प्रवेश नहीं करती। तो उस गहराई के नीचे पनडुब्बी को भेज दिया गया। इलेक्ट्रोड्स लगाकर ई. जी. से जोड़ दिये गये कि चुहिया के मस्तिष्क में जो वेव्स चलती हैं उनको नीचे रिकार्ड करें। और बड़ी अद्भुत बात हुई, हजारों फीट नीचे पानी के भीतर एक-एक करके उसके बच्चों को मारा गया, और एक खास-खास मूवमेंट पर नोट किया गया कि जैसे ही वहाँ बच्चा मरता है वैसे ही यहाँ उसकी ई. जी. वेव्स बदल जाती हैं

दुर्घटना घटित हो गयी। ठीक छः घंटे में उसके बच्चे मारे गये। खास-खास समय पर, नियत समय पर। उस नियत समय का ऊपर कोई पता नहीं है। देखा गया कि जिन मिनट और सेकंड पर नीचे चुहिया के बच्चे मारे गये, उसकी माँ ने अपने मस्तिष्क में उस वक्त धक्के अनुभव किये। वासिलिएव का कहना है कि जानवरों के लिए टेलिपैथी सहज-सी घटना है। आदमी भूल गया है। लेकिन जानवर अभी भी टेलिपैथिक जगत् में जी रहे हैं।

मंत्र का उपयोग है आप को वापस टेलिपैथिक जगत् में प्रवेश कराने के लिए। अगर आप अपने को छोड़ पायें हृदय से और उस गहराई से कह पायें जहाँ कि आपकी अचेतना में डूब जाता है सब—नमो अरिहंताणम्, नमो सिद्धाणम्, नमो आयरियाणम्, नमो उवज्झायाणम्, नमो लोए सव्वसाहूणम्। यह भीतर उतर जाय तो आप अपने अनुभव से कह पायेंगे 'सव्व-पावप्पणासणो'। यह सब पापों का नाश करने वाला महामंत्र है।

दूसरा प्रवचन

पर्युषण व्याख्यानमाला, बम्बई, दिनांक १६ अगस्त, १६७१

भाव-जगत के रहस्य और मंगल व लोकोत्तम सूत्र

अरिहंता मंगलं ।
सिद्धा मंगलं ।
साहू मंगलं ।
केवलिपन्नत्तो धम्मो मंगलं ॥

अरिहंता लोगुत्तमा ।
सिद्धा लोगुत्तमा ।
साहू लोगुत्तमा ।
केवलिपन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो ॥

अर्थ :—

अरिहंत मंगल हैं।
सिद्ध मंगल हैं।
साधु मंगल हैं।
केवलीप्ररूपित अर्थात् आत्मज्ञकथित धर्म मंगल है।

अरिहंत लोकोत्तम हैं।
सिद्ध लोकोत्तम हैं।
साधु लोकोत्तम हैं।
केवलीप्ररूपित अर्थात् आत्मज्ञकथित धर्म लोकोत्तम है।

(१) भाव से प्रारंभ कर अनुभव की ओर

महावीर ने कहा है जिसे पाना हो उसे देखना शुरू करना चाहिये। क्योंकि हम उसे ही पा सकते हैं जिसे हम देखने में समर्थ हो जाएँ। जिसे हमने देखा नहीं, उसे पाने का भी कोई उपाय नहीं। (जिसे खोजना हो, उसकी भावना करनी प्रारम्भ कर लेनी चाहिए। क्योंकि इस जगत् में हमें वही मिलता है, जिसके लिए मिलने के भी पहले हम अपने हृदय में जगह बना लेते हैं। अतिथि घर आता हो तो हम इन्तजाम कर लेते हैं उसके स्वागत का। अरिहंत को निर्मित करना हो स्वयं में, सिद्ध को पाना हो कभी, किसी क्षण स्वयं भी केवली बन जाना हो तो उसे देखने, उसकी भावना करने, उसकी आकांक्षा और अभीप्सा की तरफ चरण उठाने शुरू करने जरूरी हैं।) महावीर से ढाई हजार साल पहले चीन में एक कहावत प्रचलित थी। वह कहावत लाओत्से के द्वारा कही गयी थी और बाद में संग्रहीत की गयी चिंतन की धारा का पूरा का पूरा सार है। वह कहावत थी 'दि सुपीरियर फिजिशियन क्योर्स दि इलनेस बिफोर इट इज मैनिफेस्टेड' जो श्रेष्ठ चिकित्सक है वह बीमारी के प्रकट होने के पहले उसे ठीक कर देता है। 'दि इनफीरियर फिजिशियन ओनली केअर्स फार दि इलनेस व्हिच ही वाज नाट एबुल टु प्रिवेंट':— जो साधारण चिकित्सक है वह केवल बीमारी को दूर करने में थोड़ी बहुत सहायता पहुँचाता है, जिसे वह रोकने में समर्थ नहीं था।

हैरान होंगे आप यह बात जानकर कि महावीर से ढाई हजार साल पहले यानी आज से पाँच हजार साल पहले चीन में चिकित्सक को बीमारी

के ठीक करने के लिए कोई पुरस्कार नहीं दिया जाता था। वह उल्टा ही रिवाज था या यों समझें कि हम जो कर रहे हैं, वह उल्टा है। चिकित्सक को पैसे दिये जाते थे इसलिए कि वह किसी को बीमार न पड़ने दे। और अगर कभी कोई बीमार पड़ जाता था तो चिकित्सक को उल्टे उसे पैसे चुकाने पड़ते थे। इसलिए हर व्यक्ति नियमित अपने चिकित्सक को पैसे देता था, ताकि वह बीमार न पड़े। और बीमार पड़ जाये तो चिकित्सक को उसे ठीक भी करना पड़ता और पैसे भी देने पड़ते। जब तक वह ठीक न हो जाता, तब तक उस बीमार को फीस मिलती चिकित्सक के द्वारा। यह जो चिकित्सा की पद्धति चीन में थी, उसका नाम है—आक्युपंक्चर। इस चिकित्सा की पद्धति को नया वैज्ञानिक समर्थन मिलना शुरू हुआ है।

(२) बीमारी के छह महीने पहले सूचना

रूस में इस पर बड़े प्रयोग हो रहें हैं और उनकी दृष्टि है कि इस सदी के पूरे होते-होते रूस में चिकित्सक को बीमार को बीमार न पड़ने देने की तनख्वाह देनी शुरू की जायगी। और जब भी कोई बीमार पड़ेगा तो चिकित्सक जिम्मेवार और अपराधी होगा। आक्युपंक्चर की यह मान्यता है कि शरीर में खून ही नहीं बहता, विद्युत ही नहीं बहती, एक और तीसरा प्रवाह है, प्राण ऊर्जा का। वह प्रवाह भी शरीर में बहता है। सात सौ स्थानों पर शरीर के अलग-अलग वे प्रवाह हैं, वे चमड़ी को स्पर्श करते हैं। इसलिए आक्युपंक्चर में चमड़ी पर जहाँ-जहाँ प्रवाह अव्यवस्थित हो गया है, वहाँ सुई चुभो कर उस प्रवाह को संतुलित करने की कोशिश की जाती है। बीमारी के आने के छह महीने पहले उस प्रवाह में असंतुलन शुरू हो जाता है। यह जानकर आपको हैरानी होगी कि नाड़ी की जानकारी भी वस्तुतः खून के प्रवाह की जानकारी नहीं है। नाड़ी के द्वारा भी उसी जीवन प्रवाह को समझने की कोशिश की जाती रही है। और छह महीने पहले नाड़ी अस्त-व्यस्त होनी शुरू हो जाती है। बीमारी के आने के छह महीने पहले।

हमारे भीतर जो प्राण–शरीर है, उसमें पहले बीज रूप में चीजें पैदा होती हैं और फिर वृक्ष रूप में हमारे भौतिक शरीर तक फैल जाती हैं। चाहे शुभ को जन्म देना हो, चाहे अशुभ को, चाहे स्वास्थ्य को जन्म देना हो;

चाहे बीमारी को, सबसे पहले प्राण-शरीर में बीज आरोपित करने होते हैं। यह जो मंगल की स्थिति है : अरिहंत मंगल है, यह प्राण-शरीर में बीज डालने का उपाय है। क्योंकि जो मंगल है उसकी कामना स्वाभाविक हो जाती है। हम वही चाहते हैं जो मंगल है। जो अमंगल है वह हम नहीं चाहते। इसमें चाह की तो बात ही नहीं की गयी है, सिर्फ मंगल का भाव है।

अरिहंत मंगल है, सिद्ध मगल है, साहू मंगल है। केवलिपन्नत्तो धम्मो मंगलम् : जिन्होंने स्वयं को जाना और पाया, उनके द्वारा विरूपित धर्म मंगल है। सिर्फ मंगल का भाव है। यह जानकर हैरानी होगी कि मन का नियम है जो भी मंगल है, ऐसा भाव गहन हो जाये तो उसकी आकांक्षा शुरू हो जाती है। आकांक्षा को पैदा नहीं करना पड़ता। मंगल की धारणा को पैदा करना पड़ता है। आकांक्षा मंगल की धारणा के पीछे छाया की भांति चली जाती है। धारणा पतंजलि योग के आठ अंगों में कीमती अंग है, जहां से अंतर्यात्रा शुरू होती है। धारणा, ध्यान, समाधि। छठवां सूत्र है धारणा, सातवां ध्यान, आठवां समाधि। यह जो मंगल की धारणा है, यह पतंजलि योग का छठवां सूत्र है। और महावीर के योगसूत्र का पहला। क्योंकि महावीर का मानना यह है कि धारणा से सब शुरू हो जाता है। धारणा जैसे ही हमारे भीतर गहन होती है, हमारी चेतना रूपान्तरित होती है। न केवल हमारी, हमारे पड़ोस में जो बैठा है, उसकी भी। यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि आप अपनी ही धारणाओं से प्रभावित नहीं होते, आपके निकट जो धारणाओं के प्रवाह बहते हैं उनसे भी होते हैं। इसलिए महावीर ने कहा है अज्ञानी से दूर रहना मंगल है, ज्ञानी के निकट रहना मंगल है। चेतना जिसकी रुग्ण है, उससे दूर रहना अमंगल है। चेतना जिसकी स्वस्थ है उसके निकट सान्निध्य में रहना मंगल है। संघ का, इतना ही अर्थ है कि जहां शुभ धारणाएं हों, उस मिल्यू में, उस वातावरण में रहना मंगल है।

(२) जरूरी नहीं आपका क्रोध आपका ही हो

रूस के एक विचारक, जो आक्युपंक्चर पर काम कर रहे हैं उनका नाम है डा० सिलीव। उन्होंने यांत्रिक आविष्कार किये हैं, जिनसे इसकी जांच की जा सकती है कि पड़ोसी की धारणा आपको कब प्रभावित करती है

और कैसे प्रभावित करती हैं। आप पूरे समय पड़ोसी की धारणाओं से इम्पोज किये जा रहे हैं। आपको पता ही नहीं कि आपको जो क्रोध आया है, जरूरी नहीं कि आपका ही हो। वह आपके पड़ोसी का भी हो सकता है। भीड़ में बहुत मौकों पर आपको ख्याल नहीं रहता। भीड़ में एक आदमी जम्हाई लेता है, दस आदमी उसी क्षण अलग-अलग कोनों में बैठे हुए जम्हाई लेना शुरू कर देते हैं। सिलोव का कहना है कि जो धारणा एक के मन में पैदा हुई, उसके वर्तुल आसपास चले गये और जाकर दूसरों को पकड़ लिया। अब इसके लिए उसने यंत्र निर्मित किये हैं, जो बताते हैं कि धारणा आपको कब पकड़ती है और कब आपमें प्रवेश कर जाती है। अपनी धारणा से तो व्यक्ति का प्राण-शरीर प्रभावित होता ही है, दूसरे की धारणा से भी प्रभावित होता है।

(४) मैसिंग का चमत्कार या धारणा का असर

१९१० में जर्मनी की एक ट्रेन में एक पंद्रह-सोलह वर्ष का युवक बेंच के नीचे छिपा पड़ा था। उसके पास टिकट नहीं था। वह घर से भाग खड़ा हुआ था। उसके पास पैसा भी नहीं था। फिर तो बाद में वह बहुत प्रसिद्ध आदमी हुआ और हिटलर ने उसके सिर को काट लाने पर दो लाख मार्क की घोषणा की थी। स्टालिन और आइंस्टीन और गांधी सब उससे मिलकर आनंदित और प्रभावित हुए थे। उस आदमी का बाद में नाम हुआ वुल्फ-मैसिंग। लेकिन १९१० तक तो उसे कोई नहीं जानता था। वुल्फ मैसिंग ने अभी अपनी आत्मकथा लिखी है "एबाउट माई सेल्फ," जो रूस में प्रकाशित हुई है और बड़ा समर्थन मिला है। उसमें उसने लिखा है कि उस दिन मेरी जिन्दगी बदल गयी। उस ट्रेन में नीचे फर्श पर छिपा हुआ पड़ा था बिना टिकट के कारण। मैसिंग ने लिखा है कि वे शब्द मुझे कभी नहीं भूलते—टिकट चेकर का कमरे में प्रवेश, उसके जूतों की आवाज और मेरी सांस का ठहर जाना और मेरी घबराहट और पसीने का छूट जाना, ठंडी सुबह और फिर उसका मेरे पास आकर पूछना—यंग मैन, योर टिकट।

मैसिंग के पास तो टिकट थी नहीं। लेकिन अचानक पास में पड़ा हुआ एक कागज का टुकड़ा, अखबार की रद्दी का टुकड़ा मैसिंग ने हाथ में उठा लिया। आंखें बन्द कीं और संकल्प किया कि यह टिकट है और उसे उठाकर टिकट चेकर को दे दिया। मन में उस समय सोचा कि हे परमात्मा उसे टिकट दिखायी पड़ जाय।

उसने उस कागज को पंक्चर किया, टिकट वापस लौटायी और कहा कि "ह्वेन यू हेव गाट दि टिकट, ह्वाई यू आर लाइंग अंडर दि सीट ?' पागल हो ! जब टिकट तुम्हारे पास है तो नीचे क्यों पड़े हो ? मैंसिग को खुद भी भरोसा नहीं आया, लेकिन इस घटना ने उसकी पूरी जिन्दगी बदल दी। इस घटना के बाद पिछले पचास वर्षों में जमीन पर वह सबसे महत्वपूर्ण आदमी रहा, जिसे धारणा के सम्बन्ध में सर्वाधिक अनुभव थे।

मैंसिग की परीक्षा दुनिया में बड़े-बड़े लोगों ने ली। १९४६ में एक नाटक के मंच पर, जहाँ वह लोगों में विचार संक्रमित करने का अपना प्रयोग दिखला रहा था, अचानक पुलिस ने आकर मंच का पर्दा गिरा दिया और लोगों से कहा कि यह कार्यक्रम समाप्त हो गया। क्योंकि मैंसिग गिरफ्तार कर लिया गया है। मैंसिग को तत्काल बंदगाड़ी में डालकर क्रेमलिन ले जाया गया और स्टालिन के सामने मौजूद किया गया। स्टालिन ने कहा कि मैं मान नहीं सकता कि कोई किसी दूसरे की धारणा को सिर्फ आन्तरिक धारणा से प्रभावित कर सके। क्योंकि अगर ऐसा हो सकता है तो फिर आदमी सिर्फ पदार्थ नहीं रह जाता। मैंने तुम्हें इसलिए पकड़ कर बुलाया है कि तुम मेरे सामने सिद्ध करो।

मैंसिग ने कहा—आप जैसा चाहें। स्टालिन ने कहा कि कल दो बजे तक यहाँ बन्द रहो। दो बजे. आदमी तुम्हें ले जायेंगे मास्को के बड़े बैंक में। तुम क्लर्क से एक लाख रुपया सिर्फ धारणा के द्वारा निकलवा कर ले आओ।

पूरा बैंक मिलिटरी से घेरा गया। दो आदमी पिस्तौलें लिये हुए मैंसिग के पीछे-पीछे। ठीक दो बजे उसे बैंक में ले जाया गया। उसे कुछ पता नहीं कि किस काउंटर पर उसे ले जाया जायगा। और ट्रेजरर के सामने उसको खड़ा कर दिया गया। उसने उन दोनों आदमियों के सामने कोरा कागज निकाला। कोरे कागज को दो क्षण देखा, ट्रेजरर को दिया। ट्रेजरर ने कई बार उस कागज को देखा, चश्मा लगाया, वापस गौर से देखा और फिर एक लाख रूबल निकालकर मैंसिग को दे दिये। मैंसिग ने रूबल बैग में अन्दर रखे और स्टालिन को जाकर दे दिये। हैरानी ! वापस मैंसिग लौटा। जाकर क्लर्क के हाथ में वे रूबल वापस किये और कहा मेरा कागज वापस लौटा दो। जब क्लर्क ने वापस कागज देखा तो वह खाली था। उसे हार्ट अटैक का दौरा

और कैसे प्रभावित करती हैं। आप पूरे समय पड़ोसी की धारणाओं से इम्पोज किये जा रहे हैं। आपको पता ही नहीं कि आपको जो क्रोध आया है, जरूरी नहीं कि आपका ही हो। वह आपके पड़ोसी का भी हो सकता है। भीड़ में बहुत मौकों पर आपको ख्याल नहीं रहता। भीड़ में एक आदमी जम्हाई लेता है, दस आदमी उसी क्षण अलग-अलग कोनों में बैठे हुए जम्हाई लेना शुरू कर देते हैं। सिलोव का कहना है कि जो धारणा एक के मन में पैदा हुई, उसके वर्तुल आसपास चले गये और जाकर दूसरों को पकड़ लिया। अब इसके लिए उसने यंत्र निर्मित किये हैं, जो बताते हैं कि धारणा आपको कब पकड़ती है और कब आपमें प्रवेश कर जाती है। अपनी धारणा से तो व्यक्ति का प्राण-शरीर प्रभावित होता ही हैं, दूसरे की धारणा से भी प्रभावित होता है।

(४) मैसिंग का चमत्कार या धारणा का असर

१९१० में जर्मनी की एक ट्रेन में एक पंद्रह-सोलह वर्ष का युवक बेंच के नीचे छिपा पड़ा था। उसके पास टिकट नहीं था। वह घर से भाग खड़ा हुआ था। उसके पास पैसा भी नहीं था। फिर तो बाद में वह बहुत प्रसिद्ध आदमी हुआ और हिटलर ने उसके सिर को काट लाने पर दो लाख मार्क की घोषणा की थी। स्टालिन और आइंस्टीन और गांधी सब उससे मिलकर आनंदित और प्रभावित हुए थे। उस आदमी का बाद में नाम हुआ वुल्फ-मैसिंग। लेकिन १९१० तक तो उसे कोई नहीं जानता था। वुल्फ मैसिंग ने अभी अपनी आत्मकथा लिखी है "एबाउट माई सेल्फ," जो रूस में प्रकाशित हुई है और बड़ा समर्थन मिला है। उसमें उसने लिखा है कि उस दिन मेरी जिन्दगी बदल गयी। उस ट्रेन में नीचे फर्श पर छिपा हुआ पड़ा था बिना टिकट के कारण। मैसिंग ने लिखा है कि वे शब्द मुझे कभी नहीं भूलते—टिकट चेकर का कमरे में प्रवेश, उसके जूतों की आवाज और मेरी सांस का ठहर जाना और मेरी घबराहट और पसीने का छूट जाना, ठंडी सुबह और फिर उसका मेरे पास आकर पूछना—यंग मैन, योर टिकट।

मैसिंग के पास तो टिकट थी नहीं। लेकिन अचानक पास में पड़ा हुआ एक कागज का टुकड़ा, अखबार की रद्दी का टुकड़ा मैसिंग ने हाथ में उठा लिया। आँखें बन्द कीं और संकल्प किया कि यह टिकट है और उसे उठाकर टिकट चेकर को दे दिया। मन में उस समय सोचा कि हे परमात्मा उसे टिकट दिखायी पड़ जाय।

उसने उस कागज को पंक्चर किया, टिकट वापस लौटायी और कहा कि 'ह्वेन यू हेव गाट दि टिकट, ह्वाई यू आर लाइंग अंडर दि सीट ?' पागल हो ! जब टिकट तुम्हारे पास है तो नीचे क्यों पड़े हो ? मैंसिग को खुद भी भरोसा नहीं आया, लेकिन इस घटना ने उसकी पूरी जिन्दगी बदल दी। इस घटना के बाद पिछले पचास वर्षों में जमीन पर वह सबसे महत्वपूर्ण आदमी रहा, जिसे धारणा के सम्बन्ध में सर्वाधिक अनुभव थे।

मैंसिग की परीक्षा दुनिया में बड़े-बड़े लोगों ने ली। १९४६ में एक नाटक के मंच पर, जहाँ वह लोगों में विचार संक्रमित करने का अपना प्रयोग दिखला रहा था, अचानक पुलिस ने आकर मंच का पर्दा गिरा दिया और लोगों से कहा कि यह कार्यक्रम समाप्त हो गया। क्योंकि मैंसिग गिरफ्तार कर लिया गया है। मैंसिग को तत्काल बंदगाड़ी में डालकर क्रेमलिन ले जाया गया और स्टालिन के सामने मौजूद किया गया। स्टालिन ने कहा कि मैं मान नहीं सकता कि कोई किसी दूसरे की धारणा को सिर्फ आन्तरिक धारणा से प्रभावित कर सके। क्योंकि अगर ऐसा हो सकता है तो फिर आदमी सिर्फ पदार्थ नहीं रह जाता। मैंने तुम्हें इसलिए पकड़ कर बुलाया है कि तुम मेरे सामने सिद्ध करो।

मैंसिग ने कहा—आप जैसा चाहें। स्टालिन ने कहा कि कल दो बजे तक यहाँ बन्द रहो। दो बजे आदमी तुम्हें ले जायेंगे मास्को के बड़े बैंक में। तुम क्लर्क से एक लाख रुपया सिर्फ धारणा के द्वारा निकलवा कर ले आओ।

पूरा बैंक मिलिटरी से घेरा गया। दो आदमी पिस्तौलें लिये हुए मैंसिग के पीछे-पीछे। ठीक दो बजे उसे बैंक में ले जाया गया। उसे कुछ पता नहीं कि किस काउंटर पर उसे ले जाया जायगा। और ट्रेजरर के सामने उसको खड़ा कर दिया गया। उसने उन दोनों आदमियों के सामने कोरा कागज निकाला। कोरे कागज को दो क्षण देखा, ट्रेजरर को दिया। ट्रेजरर ने कई बार उस कागज को देखा, चश्मा लगाया, वापस गौर से देखा और फिर एक लाख रूबल निकालकर मैंसिग को दे दिये। मैंसिग ने रूबल बैग में अन्दर रखे और स्टालिन को जाकर दे दिये। हैरानी ! वापस मैंसिग लौटा। जाकर क्लर्क के हाथ में वे रूबल वापस किये और कहा मेरा कागज वापस लौटा दो। जब क्लर्क ने वापस कागज देखा तो वह खाली था। उसे हार्ट अटैक का दौरा

पड़ गया और वह वहीं नीचे गिर पड़ा। वेहोश हो गया। उसकी समझ के बाहर हो गयी बात कि क्या हुआ।

(५) स्टालिन के कमरे में मैसिंग !

लेकिन स्टालिन इतने से राजी न हुआ। कोई जालसाजी हो सकती है। क्लर्क और उसके बीच कोई तालमेल हो सकता है। तो क्रेमलिन के एक कमरे में उसे बन्द किया गया। हजारों सैनिकों का पहरा लगाया गया और कहा गया कि ठीक बारह बज कर पाँच मिनट पर वह सैनिकों के पहरे से बाहर हो जाय। वह ठीक बारह बजकर पाँच मिनट पर बाहर हो गया। सैनिक अपनी जगह खड़े रहे, वह स्टालिन के सामने जाकर मौजूद हो गया। इस पर भी स्टालिन को भरोसा नहीं आया। और भरोसा आने जैसा था भी नहीं। क्योंकि स्टालिन की पूरी फिलॉसफी, पूरा चिन्तन, कम्युनिज्म की पूरी धारणा सब बिखेर दिये थे उसने। लेकिन स्टालिन प्रभावित जरूर इतना हुआ कि उसने तीसरे प्रयोग के लिए और प्रार्थना की। उसकी दृष्टि में जो सर्वाधिक कठिन बात हो सकती थी वह यह थी कि उसने कहा, कल रात बारह बजे मेरे कमरे में तुम मौजूद हो जाओ, बिना किसी अनुमति पत्र के।

सचमुच यह सर्वाधिक कठिन बात थी। क्योंकि स्टालिन जितने गहन पहरे में रहता था उतना पृथ्वी पर दूसरा कोई आदमी कभी नहीं रहा। पता भी नहीं होता था कि स्टालिन किस कमरे में है क्रेमलिन के। रोज कमरा बदल दिया जाता था, ताकि कोई खतरा न हो, कोई बम न फेंका जा सके, कोई हमला न किया जा सके। सिपाहियों की पहली कतार जानती थी कि पाँच नम्बर कमरे में है, दूसरी कतार जानती थी कि छह नम्बर के कमरे में है, तीसरी कतार जानती थी कि आठ नम्बर के कमरे में है। अपने सिपाहियों से भी बचने की जरूरत स्टालिन को थी। खुद स्टालिन की पत्नी भी स्टालिन के कमरे का पता नहीं रख सकती थी। क्रेमलिन के सारे कमरे, जिनमें स्टालिन अलग अलग होता था, करीब-करीब एक जैसे थे, जिनमें वह कहीं भी, किसी भी क्षण हट सकता था। सारा इन्तजाम हर कमरे में था।

ठीक रात बारह बजे पहरेदार पहरा देते रहे और मैसिंग जाकर स्टालिन की मेज के सामने खड़ा हो गया, स्टालिन भी कांप गये। बोले कि तुमने यह किया कैसे ? यह असंभव है।

मैसिंग ने कहा मैं नहीं जानता। मैंने कुछ ज्यादा नहीं किया, मैंने सिर्फ एक ही काम किया है कि दरवाजे पर आया और कहा कि आई ऐम वैरिया। वैरिया, जो रूसी पुलिस का सबसे बड़ा आदमी था, स्टालिन के बाद नंबर दो की ताकत का आदमी। बस मैंने सिर्फ इतना ही भाव किया कि मैं वैरिया हूँ और तुम्हारे सैनिक मुझे सलाम बजाने लगे और मैं भीतर आ गया।

स्टालिन ने सिर्फ मैंसिंग को आज्ञा दी कि वह रूस में घूम सकता है। यह प्रमाणिक है। १९४० के बाद अगर रूस में इस तरह के लोगों की हत्या नहीं की जा सकी तो वह सिर्फ मैंसिंग के कारण। १९४० तक रूस में कई लोग जिन्होंने इस तरह के दावे किये थे मार डाले गये। अगर धारणा इतनी महत्वपूर्ण हो सकती है तो स्टालिन ने अपने वैज्ञानिकों को आज्ञा दी कि मैंसिंग की बात को पूरा समझने की कोशिश करो, क्योंकि इसका युद्ध में भी उपयोग हो सकता है। और जो आदमी मैंसिंग का अध्ययन करता रहा, उस नामोर नामक आदमी ने कहा है कि जो अल्टिमेट वीपन, युद्ध का आखिरी अस्त्र सिद्ध होगा, वह मैंसिंग के अध्ययन से निकलेगा। क्योंकि जिस राष्ट्र के हाथ में धारणा को प्रभावित करने के मौलिक सूत्र आ जायेंगे, उस राष्ट्र को अणु की शक्ति से हराया नहीं जा सकता। सच तो यह है कि जिनके हाथ में अणु बम हों, उनको भी धारणा से प्रभावित किया जा सकता है कि वे अपने ऊपर ही फेंक लें। एक हवाई जहाज बम फेंकने आ रहा हो, उसके पायलट को प्रभावित किया जा सकता है कि वापस लौट जाय और अपनी ही राजधानी में बम गिरा दे।

नामोर ने कहा कि दि अल्टीमैट वीपन इन वार इज गोइंग टु वी साईकिक पावर। यह धारणा की जो शक्ति है, वह आखिरी अस्त्र सिद्ध होगी। इस पर रोज काम बढ़ता चला जाता है। स्टालिन जैसे लोगों की उत्सुकता तो निश्चित ही विनाश की तरफ होगी, पर महावीर जैसे लोगों की उत्सुकता निर्माण और सृजन की ओर रही। इसलिए मंगल की धारणा है। महावीर ने कहा है—भूलकर भी, स्वप्न में भी कोई बुरी धारणा मत करना, क्योंकि वह वैसा ही परिणाम ला सकती है।

आप राह से गुजर रहे हैं। मन में ख्याल भर आ गया कि इस आदमी की हत्या कर दूँ। आपने कुछ किया नहीं, बस ख्याल आया या यह सोचा इस

दुकान से फलां चीज चुरा लूं। आप चोरी करने नहीं भी गये, लेकिन क्या आप निश्चिन्त हो सकते हैं कि राह पर किसी चोर ने आपकी धारणा न पकड़ ली होगी ?

(६) सावधान, कहीं मोनेन आपके पीछे तो नहीं चल रहा

मास्को में एक हवा पिछले दो साल में प्रचलित हुई है कि कोई भी आदमी अपनी गर्दन खुजलाने से पहले चारों तरफ देख लेता है। क्योंकि यह प्रयोग दो साल से चल रहा हैं। मोनेन नाम का वैज्ञानिक सड़कों पर प्रयोग कर रहा है। वह आपके पीछे आकर मन में कहेगा—आपकी गर्दन पर कीड़ा चल रहा है, अपनी गर्दन खुजलाओ जल्दी; और लोग खुजलाने लगते हैं। उसने हजारों लोगों पर प्रयोग किया है—राह के चौरस्तों पर खड़े होकर, होटल में बैठकर, ट्रेन में चढ़कर। और मोनेन इतना सफल हुआ है कि ६८ प्रतिशत सही होता है। जिसके पीछे खड़े होकर वह भावना करता है कि गर्दन खुजला रही है, कीड़ा चल रहा है, जल्दी खुजलाओ; वह जल्दी खुजलाता है। अब तो लोगों को पता चल गया है। सच में भी कीड़ा चढ़ा हो, तो लोग पहले देख लेते हैं कि वह मोनेन नाम का आदमी आस-पास तो नहीं है। जब से मोनेन का प्रयोग सफल हुआ है, तब से मस्तिष्क के बाबत एक नयी जानकारी मिली है और वह यह है कि मस्तिष्क सामने से जितनी शक्ति रखता है उसकी चौगुनी शक्ति मस्तिष्क के पीछे के हिस्से में है।

तो पीछे से व्यक्ति को जल्दी प्रभावित किया जा सकता है। सामने सिर्फ एक हिस्सा है, चार गुना पीछे है। और मैसिंग या नेत्या (नेत्या नाम की महिला जो वस्तुओं को सरका सकती है) जैसे लोगों के मस्तिष्क के अध्ययन से पता चला है कि इनका मस्तिष्क पीछे पचास गुनी शक्ति से भरा हुआ है। सामने एक, तो पीछे पचास। योग की निरन्तर धारणा रही है कि मनुष्य का असली मस्तिष्क पीछे छिपा हुआ पड़ा है। और जब तक वह सक्रिय नहीं होता तब तक मनुष्य अपनी पूर्ण गरिमा को उपलब्ध नहीं होता।

यह भी हैरानी की बात है कि अगर आप कोई बुरा विचार करते हैं, तो प्रकृति का यह अद्भुत नियम है कि आप मस्तिष्क के अगले हिस्से से करते हैं। मस्तिष्क का प्रत्येक हिस्सा अलग-अलग काम करता है। अगर आपको हत्या करनी है, तो उसका विचार आपके मस्तिष्क के ऊपरी सामने के हिस्से में चलता है। और अगर आपको किसी की सहायता करनी है तो यह विचार

पीछे, अन्तिम हिस्से में चलता है। प्रकृति ने इन्तजाम किया हुआ है कि शुभ की ओर आपको ज्यादा शक्ति दी हुई है। अशुभ की ओर कम शक्ति दी हुई है। लेकिन शुभ जगत् में दिखाई नहीं पड़ता और अशुभ जगत् में बहुत दिखायी पड़ता है। हम शुभ की कामना ही नहीं करते। या अगर हम कामना भी करते हैं तो हम तत्काल विपरीत कामना करके उसे काट देते हैं। जैसे एक मां अपने बच्चे के जीने की कितनी कामना करती है कि बड़ा हो, जिये। लेकिन किसी क्षण क्रोध में कह देती है कि वह तो होते ही मर जाता, तो ठीक था। उसे पता नहीं है कि चार दफा उसने कामना की है शुभ की और एक दफा अशुभ की। तो भी विषाक्त हो जाता है सब, कट जाती है कामना।

(७) जहां मात्र जानना रह जाता है

महावीर अपने साधुओं से कहते थे कि मंगल की कामना में डूबे रहो, चौबीस घंटे। उठते, बैठते, स्वांस लेते, छोड़ते। स्वभावतः मंगल की कामना शिखर से शुरू करनी चाहिए। इसलिए वे कहते हैं अरिहंत मंगल हैं। वे जिनके आंतरिक समस्त रोग समाप्त हो गये, वे मंगल है। सिद्ध मंगल हैं, साधु मंगल हैं। और जाना जिन्होंने, जैन परम्परा उन्हें केवली कहती है, जो जानने की दिशा में उस जगह पहुँच गये, जहाँ जाननेवाला भी नहीं रह जाता। जानी जानेवाली वस्तु भी नहीं रह जाती। सिर्फ जानना रह जाता है, सिर्फ केवल ज्ञान मात्र रह जाता है, ओनली नोइंग। जो केवल ज्ञान को उपलब्ध हो गया। मात्र ज्ञान रह गया है जहां। जहाँ न कोई जाननेवाला बचा, जहाँ कोई ज्ञेय न बचा, जहाँ कोई तू न बचा। जहाँ सिर्फ जानने की शुद्ध क्षमता रह गयी। प्योर कैपेसिटी टु नो।

इसे ऐसे समझें कि हम एक कमरे में दिया जलायें। अब दिये की बाती है, तेल है, दिया है। फिर कमरे में दिये का प्रकाश है। और उस प्रकाश से प्रकाशित होती चीजें हैं, कुर्सी है, फर्नीचर है, दीवाल है, आप हैं। अगर हम ऐसी कल्पना कर सकें कि कमरा शून्य हो गया है, न दीवाल है, न फर्नीचर है। कुछ भी नहीं है। दिये में तेल भी न रहा, दिये की देह भी न रही, सिर्फ ज्योति रह गयी। प्रकाश मात्र रह गया। न तो दिया बचा और न प्रकाशित वस्तुएँ बचीं। मात्र प्रकाश रह गया। आलोक स्रोतरहित। और ऐसा आलोक जो किसी पर नहीं पड़ रहा है, सूक्ष्म फैल रहा है। ऐसी धारणा है जैन चिन्तन की केवली के सम्बन्ध में। जो परम ज्ञान को उपलब्ध होता है, वहाँ ज्ञान

अकारण हो जाता है। कोई स्रोत नहीं होता है। जैन परम्परा कहती है कि जिस चीज का भी स्रोत होता है, वह कभी न कभी चुक जाती है, चुक ही जायेगी। कितना ही बड़ा स्रोत क्यों न हो। सूर्य भी चुक जायेगा एक दिन। बड़ा है स्रोत, अरबों वरसों से रोशनी दे रहा है। वैज्ञानिक कहते हैं अभी और अंदाजन चार-पाँच हजार साल रोशनी देगा। लेकिन चुक जायेगा। कितना ही बड़ा स्रोत हो, स्रोत की सीमा है। चुक जायेगा।

(८) लेकिन चेतना स्रोतरहित है

महावीर कहते हैं, यह जो चेतना है, अनंत है। यह कभी चुक नहीं सकती। यह स्रोतरहित है। इसमें जो प्रकाश है, वह किसी मार्ग से नहीं आता। वह बस है। इट जस्ट इज। कहीं से आता नहीं, अन्यथा एक दिन चुक जायेगा। कितना ही बड़ा हो, चुक जायेगा। सागर भी चम्मचों से उलीच के सुखाये जा सकते हैं। कितना ही लम्बा समय लगे, महासागर भी चम्मचों से उलीच के चुकाया जा सकता है। एक चम्मच थोड़ा तो कम कर ही जाती है। फिर और ज्यादा कम होता जायेगा। महावीर कहते हैं, चेतना स्रोतरहित है। इसलिए महावीर ने ईश्वर को मानने से इन्कार कर दिया। क्योंकि अगर ईश्वर को मानें तो ईश्वर स्रोत हो जाता है और हम सब उसी के स्रोत से जलने वाले दिये हो जाते हैं जो चुक जायेंगे।

सच है यह कि महावीर से ज्यादा प्रतिष्ठा आत्मा को इस पृथ्वी पर किसी व्यक्ति ने कभी नहीं दी है। इतनी प्रतिष्ठा कि उन्होंने कहा कि परमात्मा अलग नहीं, आत्मा ही परमात्मा है। इसका स्रोत अलग नहीं है। यह ज्योति ही स्वयं स्रोत है। यह जो भीतर जलने वाला जीवन है, यह कहीं से शक्ति नहीं पाता। यह स्वयं ही शक्तिवान् है। यह किसी के द्वारा निर्मित नहीं है, न किसी के द्वारा नष्ट हो सकेगा। यह किसी पर निर्भर नहीं है, नहीं तो मोहताज रहेगा। यह किसी से कुछ नहीं पाता। यह स्वयं में समर्थ और सिद्ध है। जिस दिन ज्ञान उस सीमा पर पहुंचता है, जहाँ हम स्रोत-रहित प्रकाश को उपलब्ध होते हैं, सोर्सलेस, उसी दिन हम मूल को उपलब्ध होते हैं। जैन परंपरा ऐसे व्यक्ति को केवली कहती है। वह व्यक्ति कहीं भी पैदा हो। वह क्राइस्ट हो सकते हैं, बुद्ध हो सकते हैं, कृष्ण हो सकते हैं, वह लाओत्से हो सकते हैं। इसलिए इस सूत्र में यह नहीं कहा गया कि महावीर मंगलम् या कृष्ण मंगलम्। जैन धर्म मंगल है या हिंदू धर्म मंगल है ऐसा भी

नहीं कहा। केवलिपन्नत्तो धम्मो मंगलम्। वे जो केवल ज्ञान को उपलब्ध हो गये, उनके द्वारा जो भी प्ररूपित धर्म है, वह मंगल है। जिन्होंने भी शुद्ध ज्ञान को पा लिया, उन्होंने जो कहा है, वह मंगल है।

यह मंगल की धारणा गहन प्राणों के अतल में बैठ जाये, तो अमंगल की संभावना कम होती चली जाती है। जैसी जो भावना करता है, धीरे-धीरे वैसा ही हो जाता है। जैसा ही हम सोचते हैं, वैसे ही हम हो जाते हैं। जो हम मांगते हैं, वह मिल जाता है। लेकिन हम सदा गलत मांगते हैं। वही हमारा दुर्भाग्य है। हम उसी की तरफ आंख उठाकर देखते हैं, जो हम होना चाहते हैं। अगर आप एक राजनीतिक नेता के आसपास भीड़ लगाकर इकट्ठे हो जाते हैं, तो यह सिर्फ इसकी सूचना नहीं है कि राजनीतिक नेता आया है। गहन रूप से इस बात की सूचना है कि आप कहीं राजनीतिक पद पर होना चाहते हैं। हम उसी को आदर करते हैं, जो हम होना चाहते हैं। जो हमारे भविष्य का माडल मालूम पड़ता है, जिसमें हमें दिखाई पड़ता है कि काश मैं ऐसा हो जाऊँ, हम उसी के आसपास इकट्ठे हो जाते हैं। अगर सिने अभिनेता के पास भीड़ इकट्ठी हो जाती है तो वह आपकी भीतरी आकांक्षा की खबर देती है। आप भी वही हो जाना चाहते हैं। अगर महावीर ने कहा कि कहो—अरिहंत मंगलम्, सिद्ध मंगलम्, साधु मंगलम्, तो वे यह कह रहे हैं कि तुम कह ही तब पाओगे, जब तुम अरिहंत होना चाहोगे। या जब तुम यह कहना शुरू करोगे, तो तुम्हारे अरिहंत होने की यात्रा शुरू हो जायेगी। और बड़ी से बड़ी यात्रा बड़े छोटे कदम से शुरू होती है। और पहले कदम से कुछ भी पता नहीं चलता। धारणा पहला कदम है।

कभी आपने सोचा कि आप क्या होना चाहते हैं ?

नहीं भी सोचा होगा सचेतन रूप से, तो अचेतन में घूमता रहता है कि आप क्या होना चाहते हैं। जो आप होना चाहते हैं, उसी के प्रति आपके मन में आदर पैदा होगा। न केवल आदर, जो आप होना चाहते हैं, उसी के संबंध में आपके मन में चिंतन के वर्तुल बनते हैं। वही आपके स्वप्नों में उतर आता है, वही आपकी सांसों में समा जाता है, वही आपके खून में प्रवेश करता है। और जब मैं कह रहा हूं खून में प्रवेश कर जाता है, तो मैं कोई साहित्यिक बात नहीं कह रहा, बिलकुल मेडिकल, शारीरिक बात कह रहा हूं।

(९) मंगल भावना और खून के कण

इधर अनेक प्रयोग किये गये हैं और चकित करने वाली सूचनाएँ मिली हैं। आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में डिलावार प्रयोगशाला में यह प्रयोग किया गया है कि विचार का खून पर क्या प्रभाव है। आपकी अपनी धारणा को छोड़ दें, आपकी धारणा का तो पड़ेगा ही, दूसरे की धारणा का यानी अप्रकट धारणा का भी आपके खून पर क्या प्रभाव पड़ता है? डिलावार लेबोरेटरी के प्रयोग का दस वर्ष का निष्कर्ष यह है कि यदि आप ऐसे व्यक्ति के पास जाते हैं जो आपके प्रति मंगल की भावना रखता है, तो आपके खून में सफेद कण १५०० की तादात में तत्काल बढ़ जाते हैं। दरवाजे के बाहर आपके खून की परीक्षा की जाये और फिर भीतर आ जायें और मंगल की कामना से भरे हुए व्यक्ति के पास बैठ जायें और फिर आपके खून की परीक्षा की जाये, तो व्हाइट ब्लड सेल्स १५०० बढ़ जाते हैं। जो व्यक्ति आपके प्रति दुर्भाव रखता है, उसके पास जाकर १६०० कम हो जाते हैं तत्काल, इमीजिएट कम हो जाते हैं। और मेडिकल साइंस कहती है कि आपके स्वास्थ्य की रक्षा का मूल आधार सफेद कणों की अधिकता है। वे जितने ज्यादा आपके शरीर में होते हैं, उतना ही आपका स्वास्थ्य सुरक्षित है। वे आप के पहरेदार हैं। आपने देखा होगा मगर ख्याल नहीं किया होगा कि चोट लग जाती है तो चोट लगकर पक जाने पर जो मवाद पड़ जाती है, वह मवाद सिर्फ रक्षक है आपके शरीर के खून के सफेद कणों की। वे सफेद कण फौरन एक पर्त पहरेदारी की खड़ी कर देते हैं। जिसको आप मवाद समझते हैं वह मवाद आपकी दुश्मन नहीं है। वे खून के सफेद कण हैं जो तत्काल दौड़ कर घाव को चारों तरफ से घेर लेते हैं जैसे कि पुलिस ने पहरा लगा दिया हो। क्योंकि उनके पर्त को पार करके कोई भी कीटाणु शरीर में प्रवेश नहीं कर सकता है, वे कण रक्षक हैं।

डिलावार प्रयोगशाला में किये गये प्रयोगों ने चकित कर दिया है वैज्ञानिकों को कि क्या शुभ की भावना से भरे व्यक्ति का इतना परिणाम हो सकता है कि दूसरे के खून का अनुपात बदल जाये? आयतन बदल जाय? खून की गति बदल जाय? हृदय की गति बदल जाय? रक्तचाप बदल जाय? यह संभव है। अब तो इससे इंकार करना कठिन है।

(१०) पौधे भी आपके साथ हंसते-गाते हैं

डा० जगदीशचंद्र बसु के बाद दूसरा एक बड़ा नाम एक अमेरिकन का है, क्लीव बेकस्टर का। जगदीशचंद्र ने तो कहा था कि पौधों में प्राण है।

वेकस्टर ने सिद्ध किया है कि पौधों में भावना है और पौधे अपने मित्रों को पहचानते हैं और शत्रुओं को भी। पौधा अपने मालिक को भी पहचानता है और माली को भी। और अगर मालिक मर जाता है तो पौधे की प्राण-धारा क्षीण हो जाती है, वह बीमार हो जाता है। पौधों की स्मृति को भी वेकस्टर ने सिद्ध किया है कि उनकी भी मेमोरी है। जब आप अपने गुलाब के पौधे के पास जाकर प्रेम से खड़े हो जाते हैं, तो वह कल फिर उसी समय आपकी प्रतीक्षा करता है। वह याद रखता है कि आज आप नहीं आये। या जब आप पौधे के पास प्रेम से भरकर खड़े हो जाते हैं और फिर अचानक एक फूल तोड़ लेते हैं तो पौधे को बड़ी हैरानी होती है, बड़ा कन्फ्यूज़न हो जाता है। इस सबकी प्राण धाराओं को रिकार्ड करने वाले यंत्र तैयार किये गये हैं कि पौधा एकदम कन्फ्यूज्ड हो जाता है। उसकी समझ में नहीं आता है कि जो आदमी इतने प्रेम से खड़ा था, उसने फूल कैसे तोड़ लिया। पौधे की समझ में बिलकुल नहीं आता कि यह हो क्या गया। वेकस्टर कहता है कि हमने हजारों पौधों को कन्फ्यूज किया, उनको बड़ी परेशानी में डाला। वे समझ ही नहीं पाते कि यह हो क्या रहा है? जिसको मित्र की तरह अनुभव कर रहे थे वह एकदम शत्रु की तरह हो जाता है। वेकस्टर का यह भी कहना है कि जिन पौधों को हम प्रेम करते हैं, वे हमारी तरफ बड़ी पॉजिटिव भावनाएँ छोड़ते हैं।

वेकस्टर ने सुझाव दिया है अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन को, कि शीघ्र ही हम विशेष तरह के मरीजों को विशेष तरह के पौधे के पास ले जाकर ठीक करने में समर्थ हो जायेंगे—अगर उन पौधों को हमने प्रेम से, भाव से, संगीत से, प्रार्थना से, ध्यान से उनको इतना प्राणशक्ति से भर दिया कि उनके पास विशेष तरह के मरीज ले जाने से फायदा होगा। फिर हर पौधे में अपनी-अपनी प्राण-ऊर्जा की विशेषताएँ हैं। जैसे रेड रोज यानी कि लाल गुलाब क्रोधी लोगों के लिए बड़े फायदे का है। हो सकता है पंडित नेहरू को इसीलिए उससे प्रेम रहा हो। वेकस्टर के हिसाब से क्रोध के लिए रेड रोज बहुत फायदे का है। वह क्रोध को कम करता है। वह अक्रोध की धारणा को अपने चारों तरफ फैलाता है। उसका अपना आभामंडल है। पौधों के पास भी हृदय है, माना कि वे अशिक्षित हैं, लेकिन उनके पास हृदय है। आदमी बहुत शिक्षित होता चला जाता है, लेकिन हृदय खोता चला जाता है।

यह धारणा, मंगल की धारणा हृदय को जन्माने का आधार बन सकती है।

निश्चित ही हम इतने कमजोर हैं और अमंगल हमें इतना सहज है कि हम अरिहंत पर भी मंगल धारणा कर पायें, तो चमत्कार है। हम यह भी कह पायें कि अरिहंत मंगल हैं, तो भी मिरैकल है। पत्थर मंगल है, यह कहने में तो कठिनाई पड़ेगी। दुश्मन मंगल है, इसके कहने में तो बहुत कठिनाई पड़ेगी। महावीर आपको भलीभांति जानते हैं कि जो श्रेष्ठतम है उस पर भी आपको मंगल की धारणा करने में कठिनाई पड़ेगी। इसलिए वे उससे शुरू करते हैं कि अरिहंत, सिद्ध, साधु और जिन्होंने जाना, उनके द्वारा प्ररूपित धर्म मंगल है।

(११) आखिर धर्म है क्या ?

धर्म का जैन परंपरा में ऐसा अर्थ नहीं है जैसा अंग्रेजी के रिलीजन का है या उर्दू के मजहब का। और वैसा अर्थ भी नहीं है जैसा हिन्दू के धर्म का। जैन परंपरा में धर्म का जो अर्थ है वह समझ लेना चाहिए। वह बहुत खूबी का है, विशिष्ट है और जैन दृष्टि को एक नये आयाम में फैलाता है। मजहब का अर्थ तो होता है क्रीड, एक मत, एक पंथ। अंग्रेजी के रिलीजन शब्द का अर्थ करीब-करीब वही है, जो योग का अर्थ होता है। वह जिस सूत्र से बना है, रिलिगेयर से उसका अर्थ होता है जोड़ना। आदमी को परमात्मा से जोड़ना। योग का भी वही अर्थ होता है, आदमी को परमात्मा से जोड़ना। लेकिन जैन चिन्तन परमात्मा के लिए जगह ही नहीं रखता। इसलिए आप यह जानकर हैरान होंगे कि जैन योग का अच्छा अर्थ नहीं मानते। जैन कहते हैं केवली अयोगी होता है—अयोगी, योगी नहीं। इसलिए महावीर को कुछ भूल से भरे लोग नासमझी में महायोगी कहते हैं। गलत कहते हैं। जैन परंपरा के शब्द का उन्हें पता नहीं। महावीर कहते हैं जोड़ना नहीं है किसी से। जो गलत है उससे टूटना है, अलग होना है—अयोग, संसार से अयोग; तो स्वरूप उपलब्ध हो जाता है। योग कहता है परमात्मा से मिलन, तो स्वरूप उपलब्ध होता है। महावीर कहते हैं स्वरूप तो उपलब्ध ही है। जो हमें पाना है, वह हमें मिला ही हुआ है। सिर्फ हम गलत चीजों से चिपके खड़े हैं, इसलिए दिखायी नहीं पड़ रहा है। जरूरत है कि गलत को छोड़ दें, अयुक्त हो जायें। इसलिए जैन परंपरा में अयोग का वही मूल्य है जो हिन्दू परंपरा में योग का है। धर्म का बड़ा अनूठा अर्थ जैनों का है। महावीर कहते हैं कि वस्तु का जो स्वभाव है, 'नेचर' है, वही धर्म है। धर्म का महावीर का वही अर्थ है, जो लाओत्से के ताओ का है।

(१२) कौन कहता है धुआं आग से पैदा होता है

वस्तु का जो स्वभाव है, जो उसकी स्वयं की अपनी परिणति है, वही धर्म है। अगर कोई व्यक्ति बिना किसी से प्रभावित हुए सहज आचरण कर पाये, तो धर्म को उपलब्ध हो जाता है। इसलिए प्रभाव को महावीर अच्छी बात नहीं मानते हैं। किसी से भी प्रभावित होना बँधना है। सब इंप्रेसंस बाँधने वाले हैं। पूर्णतया अप्रभावित हो जाना, निज हो जाना है, स्वयं हो जाना है। इस निजता को, इस स्वयं होने को वे धर्म कहते हैं। केवली प्ररूपित धर्म का अर्थ होता है, जब कोई व्यक्ति केवल ज्ञान मात्र रह जाता है, चेतना मात्र रह जाता है तब वह जैसे जीता है, वही धर्म है। उसका जीवन, उसका उठना, उसका बैठना, उसका हलन-चलन, उसका सोना, उसकी आंख की पलक का उठना, हिलना, उसके समस्त अस्तित्व में प्रकट होती हुई जो भी किरणें हैं, वही धर्म है। जैसे अग्नि अगर अपने शुद्ध रूप में जलती हो, तो धुआं पैदा नहीं होता। आप कहेंगे, अग्नि तो जहाँ भी जलती है, वहाँ धुआं पैदा होता है। तर्क की किताबों में लिखा हुआ है, जहाँ-जहाँ धुआं वहाँ-वहाँ अग्नि। लेकिन धुआं अग्नि से पैदा नहीं होता, केवल ईंधन के गीलेपन से पैदा होता है। अग्नि से उसका लेना-देना नहीं है। अगर ईंधन बिल्कुल गीला न हो, तो धुआं नहीं पैदा होगा। धुआं अग्नि का स्वभाव नहीं है, ईंधन का प्रभाव है। ईंधन गीला होता है तो पैदा होता है, इसलिए कहना चाहिए कि धुआं पानी से पैदा होता है, वह अग्नि से पैदा नहीं होता। अग्नि जब अपने शुद्ध रूप में होती है जब उसमें कोई दूसरा विजातीय तत्व, फारेन एलिमेन्ट नहीं होता, उसमें कोई धुआं नहीं होता।

महावीर कहते है जब कोई धुआं नहीं है तब अग्नि अपने धर्म में है। जब चेतना बिल्कुल शुद्ध होती है और पदार्थ का कोई प्रभाव नहीं होता, शरीर का पता नहीं होता, तब महावीर कहते हैं कि जान लेना चेतना अपने धर्म में है। इसलिए महावीर कहते हैं, प्रत्येक का अपना धर्म होता है। अग्नि का अपना है, जल का अपना है, पदार्थ का अपना है, चेतना का अपना है। शुद्ध हो जाना अपने धर्म में, आनन्द है। अशुद्ध रहना अपने धर्म में, दुःख है। तो धर्म का यहाँ अर्थ है स्वभाव। अपने स्वभाव में चले जाना, धार्मिक हो जाना है। और अपने स्वभाव के बाहर भटकते रहना अधार्मिक बने रहना है।

इस सूत्र में इन चारों को लोक में उत्तम भी कहा गया है। अरिहंत उत्तम है लोक में, सिद्ध उत्तम है लोक में, साधु उत्तम है लोक में, केवली प्ररूपित

धर्म उत्तम है लोक में। लेकिन मंगल कह देने के बाद उत्तम कहने की क्या जरूरत है? कारण है हमारे भीतर। ये सारे सूत्र हमारे मनस् के ऊपर आधारित हैं। ये हमारे मन की गहराइयों के अध्ययन पर आधारित हैं। मंगल कहने के बाद भी, हम इतने नासमझ हैं कि जो उत्तम नहीं है, उसे भी हम मंगलरूप मान सकते हैं। हमारी वासनाएँ ऐसी हैं कि जो योग में निकृष्ट है उसी की तरफ बहती है। ऐसा भी कह सकते हैं कि वासना का अर्थ है नीचे की तरफ बहाव। जो निकृष्ट है उसकी तरफ बहाव।

रामकृष्ण कहा करते थे कि चील आकाश में भी उड़े तो यह मत समझना कि उसका ध्यान आकाश में होता है। वह आकाश में उड़ती है लेकिन उसकी नजर नीचे किसी कूड़े-कबाड़ पर, किसी कचरा घर में पड़े मांस पर, किसी सड़ी मछली पर लगी रहेगी। उड़ती रहेगी आकाश में, और उसकी दृष्टि कहीं नीचे, किसी मांस के टुकड़े पर रहेगी। इसलिए रामकृष्ण कहते थे कि भूल में मत पड़ जाना कि चील आकाश में उड़ रही है इसलिए आकाश में ध्यान होगा। ध्यान तो उसका नीचे लगा है। इसलिए महावीर का यह जो मंगलसूत्र है, यह तत्काल जोड़ता है—अरिहंत लोगुत्तमा। अरिहंत उत्तम हैं। सिद्ध उत्तम हैं, साधु उत्तम हैं। उत्तम का अर्थ है कि शिखर हैं जीवन के। श्रेष्ठ हैं, पाने योग्य हैं, चाहने योग्य हैं, होने योग्य हैं। सवित्जर से किसी ने पूछा, सवित्जर क्या है पाने योग्य, क्या है आनन्द? तो सवित्जर ने कहा—टू बी मोर ऐण्ड मोर, टु बी डीप ऐण्ड डीप, टु बी इन एण्ड इन, एण्ड कांस्टैंटली टर्निंग इन टू समथिंग मोर एण्ड मोर। कुछ ज्यादा रूपान्तरित होते रहना, कुछ श्रेष्ठ में बदलते रहना, कुछ गहरे और गहरे जाते रहना, कुछ ज्यादा और ज्यादा होते रहना। लेकिन हम ज्यादा तभी हो सकते हैं, जब ज्यादा की, श्रेष्ठ की, उत्तम की धारणा हमारे निकट हो। शिखर दिखायी पड़ता हो, तो यात्रा भी हो सकती है। शिखर ही न दिखाई पड़ता हो, तो यात्रा का कोई सवाल नहीं। भौतिकवाद कहता है, कोई आत्मा नहीं है। यानी वह शिखर को तोड़ देता है। और जब कोई ऐसा मान लेता है कि आत्मा नहीं है, तो आत्मा को पाने का कोई सवाल ही नहीं रह जाता।

(१३) अपराध से मुक्ति—या अपराध भाव से

फ्रायड यदि कह देता है कि आदमी वासना के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, तो आदमी तो वासना है ही। वह तत्काल मान लेता है। फिर वह कहता है, जब वासना के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं, तो बात खत्म हो गयी।

एक व्यक्ति किसी से कह रहा था कि मैं बहुत परेशान था, क्योंकि मेरी कांसियस मुझे बहुत पीड़ा देती थी, मेरा अंतःकरण बहुत पीड़ा देता था। झूठ बोलूं तो, चोरी करूँ तो, किसी स्त्री की तरफ देखूं तो, बड़ी पीड़ा होती थी। फिर मैं मनोचिकित्सक के पास गया और इलाज करवाया, मैं दो साल में बिल्कुल ठीक हो गया।

उसके मित्र ने पूछा कि क्या अब चोरी का भाव नहीं उठता है? स्त्री को देखकर वासना नहीं जगती है? सुन्दर को देखकर पाने का भाव पैदा नहीं होता?

उसने कहा—नहीं, नहीं; तुम मुझे गलत समझे। दो साल में मनोचिकित्सक ने मुझे मेरी कांसियंस से छुटकारा दिला दिया। अब पीड़ा नहीं होती, अब चिन्ता नहीं होती, अब अपराध अनुभव नहीं करता हूँ।

पिछले पचास सालों में पश्चिम का मनोचिकित्सक लोगों को अपराध से मुक्त नहीं करवा रहा है, अपराध के भाव से मुक्त करवा रहा है। वह कह रहा है, यह तो स्वाभाविक है। यह तो बिल्कुल स्वाभाविक है, यह तो होगा ही। अगर आज पश्चिम में जीवन ऐसे नीचे तल पर सरक रहा है, (चल रहा है कहना ठीक नहीं, सरक रहा है—जैसे साँप सरकता है) तो उसका बड़े से बड़ा जिम्मा पश्चिम के मनोवैज्ञानिक को है। क्योंकि वह निकृष्ट को कहता है कि यही स्वभाव है। और कठिनाई यह है कि निकृष्ट को स्वभाव मान लेना हमें आसान है, क्योंकि हम उससे परिचित हैं और वह दलील हमें ठीक लगती है।

जब महावीर कहते हैं, अरिहंत लोगुत्तमा, तो समझ नहीं पड़ता लोगों को। अरिहंत को हम जानते नहीं, सिद्ध को हम जानते नहीं। कौन हैं ये? अपने भीतर तो हमने सिद्ध जैसा कभी कोई क्षण अनुभव नहीं किया। अरिहंत जैसी हमने कभी कोई लहर नहीं जानी। साधु जैसा हमने कभी कोई भाव नहीं जाना, केवलीप्ररूपित धर्म में हमने कभी प्रवेश नहीं किया। क्या ये हवा की बातें हैं? और अगर हम मान भी लें तो मजबूरी में मानते हैं। उस मजबूरी का नाम हमने धर्म रखा हुआ है। किसी धर्म में पैदा हो गये, मान लीजिए जैन घर में पैदा हो गये तो मजबूरी है, आपका कोई क़ाय नहीं है। पर्युषण है, मजबूरी है। आप जाते हैं मन्दिर में, नमस्कार करते हैं, उपवास कर लेते हैं, व्रत कर लेते हैं, मजबूरी है। किसी का कसूर नहीं, आप पैदा हो गये जैन घर में। इसमें किसी का कोई हाथ तो है नहीं। बचपन से सुनाया जा रहा है वह

खोपड़ी में भर गया है, उसको निपटा लेते हैं। बाकी कहीं स्फुरणा नहीं है उसमें, कहीं कोई ऐसा सहज भाव नहीं है। क्या आपने कभी ख्याल किया है कि मन्दिर जाते वक्त आपके पैर, और सिनेमा में जाते वक्त आपके पैरों की गति में बुनियादी भेद होता है गुणात्मक, क्वालिटेटिव भेद। मन्दिर जैसे आप घसीटे जाते हैं। सिनेमागृह वैसे नहीं जाते हैं। मन्दिर जैसे एक मजबूरी है, एक काम है। प्रफुल्लता नहीं है चरण में, नृत्य नहीं है चरण में जाते समय। किसी तरह पूरा कर देना है।

(१४) नसीहत नसरुद्दीन की

सुना है मैंने मुल्ला नसरुद्दीन जिस दिन मरा, उस दिन पुरोहित उसे परमात्मा की प्रार्थना कराने लाये और कहा कि मुल्ला, पश्चात्ताप करो, रिपेन्ट करो उन पापों का जो तुमने किये।

मुल्ला ने आँख खोली और कहा कि मैं दूसरा ही पश्चात्ताप कर रहा हूँ। जो पाप मैं नहीं कर पाया, उनका पश्चात्ताप मैं कर रहा हूँ। अब मर रहा हूँ। कुछ और पाप करने का मन था, वह नहीं कर पाया।

वह पुरोहित फिर भी नहीं समझ पाया, क्योंकि पुरोहितों से कम समझदार आदमी आज जमीन पर दूसरे नहीं हैं। उसने कहा, मुल्ला, यह तुम क्या कहते हो? अगर तुम्हें दोबारा जन्म मिले, तो क्या तुम वही पाप करोगे? वैसा ही जिओगे जैसा अभी जिये?

मुल्ला ने कहा कि नहीं, बहुत फर्क करूँगा। मैंने इस जिन्दगी में पाप बड़ी देर से शुरू किये थे, अगली जिन्दगी में जरा जल्दी शुरू करना है।

यह मुल्ला हम सब मनुष्यों की बाबत खबर दे रहा है। यह व्यंग्य है, यह आदमी पूरा व्यंग्य है हम सब पर। हमारी यही मनोदशा है। मरते वक्त हमें भी पश्चात्ताप होगा। पश्चात्ताप होगा उन औरतों का, जो नहीं मिलीं; पश्चात्ताप होगा उस धन का, जो नहीं पाया; पश्चात्ताप होगा उन पदों का, जो चूक गये; पश्चात्ताप होगा उस सबका जो निकृष्ट था, जो पाने योग्य नहीं था। लेकिन क्या मरते वक्त पश्चात्ताप होगा कि अरिहंत न मिले? केवलीप्ररूपित धर्म में प्रवेश न मिला?

हो सकता है नमोकार आपके आस-पास पढ़ा जा रहा हो। लेकिन आपके भीतर उसका कोई प्रवेश नहीं हो पायेगा। क्योंकि जिन्होंने जीवन भर

उसके प्रवेश की तैयारी नहीं की, वे अगर सोचते हों कि क्षण में उसका प्रवेश हो जायेगा, तो वे नासमझ हैं। जिन्होंने जीवन भर उस मेहमान के आने के लिए इन्तजाम नहीं किया और वे सोचते हों कि अचानक वह मेहमान भीतर आ जायेगा, तो वे गलती पर हैं। वे दुराशाएँ कर रहे हैं, वे हताश होंगे। लेकिन जो व्यक्ति निरंतर 'अरिहंत मंगल हैं, लोक में उत्तम हैं,' ऐसा सूत्र ख्याल में रखता है, भले ही बिना उसे समझे रिचुअलिस्टिक रिपिटीशन करता हो, ऐसे ही दोहराये चला जाता है, तो भी गूञ्ज बनते हैं, चित्त पर निशान बनते हैं। वे निशान किसी भी क्षण, किसी भी प्रकाश के क्षण में सक्रिय हो सकते हैं। जिसने निरंतर कहा है कि अरिहंत लोक में उत्तम हैं, उसने अपने भीतर एक धारा प्रवाहित की है। कितनी ही क्षणिक हो, लेकिन जब वह अरिहंत होने के विपरीत जाने लगेगा, तो उसके भीतर कोई उससे कहेगा कि तुम जो कर रहे हो वह उत्तम नहीं है, वह लोक में श्रेष्ठ नहीं है। जिसने कहा है साधु लोक में उत्तम हैं, उसको किसी क्षण असाधु होते वक्त यह स्मरण रोकनेवाला बन सकता है। जानकर, समझकर किया गया, तब तो परिणामदायी है ही। न जानकर, न समझकर किया हुआ भी परिणामदायी हो जाता है। क्योंकि रिचुअल रिपिटीशन भी, सिर्फ पुनरुक्ति भी हमारे चित्त में रेखाएँ छोड़ जाती हैं। किसी भी क्षण वे सक्रिय हो सकती हैं। यह नियमित पाठ के लिए है, यह नियमित भाव के लिए है, यह नियमित धारणा के लिए है।

(१५) भगवान् का अर्थ और भगवान् महावीर

इसमें अन्तिम बात थोड़ा और ठीक से समझ लें। महावीर ने जिस परंपरा और जिस स्कूल, जिस धारा का उपयोग किया है, उसमें श्रेष्ठतम पर मनुष्य की ही शुद्ध आत्मा को रखा है। मनुष्य की ही शुद्ध आत्मा को परमात्मा माना है। इसलिए महावीर के हिसाब से इस जगत् में जितने लोग हैं, उतने भगवान् हो सकते हैं। जितने लोग हैं, लोग ही नहीं, जितनी चेतनाएँ हैं, वे सभी भगवान् हो सकतीं हैं। महावीर की दृष्टि में भगवान् का एक होने का जो ख्याल है, वह नहीं है। अगर ठीक से समझें तो दुनिया के सारे धर्मों में भगवान् की जो धारणा है, वह अरिस्टोक्रेटिक है—एक की। सिर्फ महावीर का धर्म है, वह डेमोक्रेटिक है—सब की। प्रत्येक व्यक्ति स्वभाव से भगवान् है। वह जाने, न जाने; वह पाये, न पाये; वह जन्म-जन्म भटके, अनन्त जन्म भटके फिर भी इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, वह भगवान् है। और किसी न

किसी दिन वह, जो उसमें छिपा है, प्रकट होगा। और किसी न किसी दिन जो बीज है वह वृक्ष होगा, जो संभावना है वह सत्य बनेगी। महावीर अनंत भगवत्ताओं को मानते हैं, इनफिनिट डीटीज। और जिस दिन सारा जगत् अरिहंत तक पहुंच जाये, उस दिन जगत् में अनन्त भगवान् होंगे। महावीर का अर्थ भगवान् से है, जिसने अपने स्वभाव को पा लिया। स्वभाव भगवान् है। भगवान् की यह अनूठी धारणा है। जगत् को बनानेवाले या जगत् को चलाने वाले का सवाल नहीं है भगवान् से। वे कहते हैं, कोई बनानेवाला नहीं है। क्योंकि महावीर कहते हैं कि बनाने की धारणा ही बचकानी है। और बचकानी इसलिए है कि उससे कुछ हल नहीं होता है। हम कहते हैं जगत् को भगवान् ने बनाया। फिर सवाल खड़ा हो जाता हैं कि भगवान् को किसने बनाया। सवाल वहीं का वहीं बना रह जाता है। एक कदम और हट जाता है। भगवान् ने जगत् को बनाया, लेकिन भगवान् को किसी नें नहीं बनाया। महावीर कहते हैं कि जब भगवान् को किसी ने नहीं बनाया, ऐसा मानना ही पड़ता है कि जो कुछ है अनबना है, अनक्रिएटेड है, तो फिर सारे जगत् को ही अनक्रिएटेड मानने में कौन-सी अड़चन हैं? अड़चन एक ही थी मन को कि बिना बनाये कोई चीज कैसे बनेगी? इसलिए यह समझ लेने जैसा है कि महावीर के पास नास्तिक के लिए जो उत्तर है, वह तथाकथित ईश्वरवादी के पास नहीं है। क्योंकि नास्तिक ईश्वरवादी से यही कहता है कि तुम्हारे भगवान् ने क्यों बनाया? बड़ी कठिनाई खड़ी होती हैं। ईश्वरवादी को मानना पड़ता है कि उसमें वासना उठी जगत् को बनाने की। जब भगवान् तक में वासना उठती है, तो आदमी को वासना से मुक्त करने का फिर कोई उपाय नहीं है। भगवान् ने चाहना की, डिजायर पैदा हुई, यानी भगवान् भी चाहता है और भगवान् भी बिना चाह के शान्त नहीं रह सकता, तो फिर आदमी को अचाह में कैसे ले जाओगे? क्या भगवान् परेशान था, जगत् नहीं था तो? कोई पीड़ा होती थी उसे? वैसे ही जैसे एक चित्रकार को चित्र न बने तो होती है, या एक कवि को कविता निर्मित न हो पाये तो होती है? क्या ऐसा ही परेशान और चिंतित होता है भगवान्? क्या उसमें भी चिन्ता और तनाव घर करते हैं।

ईश्वरवादी दिक्कत में रहता है। उसको स्वीकार करना पड़ता है कि भगवान् ने चाहा। और तब बहुत बेहूदी बातें उसको स्वीकार करनी पड़ती हैं। उसे स्वीकार करना पड़ता है, ब्रह्मा ने स्त्री को जन्म दिया और फिर उसी को चाहा। क्योंकि उस ब्रह्मा और चाह में कोई तालमेल बिठाना पड़ेगा। फिर

बहुत एब्सर्ड घटना घटी। वह यह कि ब्रह्मा ने जिसे पैदा किया, उसका पिता हो गया। फिर उसने अपनी बेटी को चाहा, फिर वह संभोग के लिए आतुर हो गया। और फिर वह अपनी बेटी के पीछे भागने लगा। फिर बेटी उससे बचने के लिये गाय बन गयी, तो वह बैल हो गया। फिर बेटी उससे बचने के लिये कुछ और हो गयी, तो वह कुछ और हो गया। वह बेटी जो-जो होती चली गयी उसी-उसी जाति का नर होता चला गया। अगर ब्रह्मा भी चाह में ऐसा भाग रहा हो, तो आप सिनेमागृह में जाते हैं तो बिल्कुल ब्रह्मस्वरूप हैं, बिल्कुल ठीक चले जा रहे हैं। आपको कोई अड़चन नहीं होनी चाहिए। आप उचित ही कर रहे हैं। स्त्री फिल्म अभिनेत्री हो गयी, तो आप फिल्म दर्शक हो गये। तब फिर सारा जगत् वासना का फैलाव हो जाता है।

महावीर ने इसे जड़ से काट दिया। महावीर ने कहा कि अगर लोगों को भगवान् बनाना है, तो भगवान् की धारणा को अलग करो। बहुत अजीब बात है। क्योंकि महावीर ने कहा कि भगवान् में भी चाह को रख दोगे पहले, 'डिजायर' को रख दोगे पहले। क्योंकि उसके बिना तो जगत् का निर्माण न होगा। तो फिर आदमी की चाह को शून्य करने का कारण क्या बचेगा? इसलिए महावीर ने कहा, जगत् अनिर्मित है, अनक्रिएटेड है। किसी ने बनाया नहीं है। विज्ञान के लिये भी यही लॉजिकल है, तर्कयुक्त मालूम पड़ता है। क्योंकि जगत् में कोई चीज बनायी नहीं मालूम पड़ती है। और न इस जगत् में कोई चीज नष्ट होती मालूम पड़ती है और न कोई चीज निर्मित होती मालूम पड़ती है, सिर्फ रूपान्तरित होती मालूम पड़ती है। इसलिये महावीर ने पदार्थ की जो परिभाषा की है, वह इस जगत् में की गयी सर्वाधिक वैज्ञानिक परिभाषा है। मैटर के लिए अद्‌भुत शब्द महावीर ने खोजा है—पुद्‌गल। ऐसा शब्द जगत् की किसी भाषा में नहीं है। उन्होंने पदार्थ नहीं कहा, नया शब्द कहा—पुद्‌गल। पुद्‌गल का अर्थ है, जो बनता और मिटता रहता है और फिर भी है। जो प्रतिपल बन रहा है और मिट रहा है, और है। जैसे नदी प्रतिपल भागी जा रही है, चली जा रही है, हुई जा रही और फिर भी है। फ्लोइंग ऐण्ड इज। वह रही है और है। महावीर ने कहा जो चीज बन रही है, मिट रही है। न बन के सृजन होता है उसका, न मिटकर समाप्त होती है। बिकमिंग, पुद्‌गल का अर्थ है 'बिकमिंग'। नेवर बीइंग ऐण्ड आलवेज बिकमिंग। कभी भी है की स्थिति में नहीं आती पूरी, कि ठहर जाय, बस होती रहती है। और महावीर ने कहा पुद्‌गल वह है जो प्रतिपल जन्म रहा है, प्रतिपल मर रहा है।

फिर भी कभी निर्मित नहीं होता, फिर भी कभी समाप्त नहीं होता। चलता रहता है। गत्यात्मक पदार्थ है।

(१६) मैटर, प्रासेस और पुद्गल

अंग्रेजी का मैटर भी डैड वर्ड है, मरा हुआ शब्द है। अंग्रेजी के मैटर का कुल मतलब होता है जो नापा जा सके। वह मेजर से बना हुआ शब्द है। संस्कृत या हिन्दी के पदार्थ का अर्थ होता है जो अर्थवान है, अस्तित्ववान है, पुद्गल का अर्थ है जो हो रहा है। इन दि प्रोसेस है। प्रोसेस का नाम पुद्गल है, क्रिया का नाम पुद्गल है। जैसे आप चल रहे हैं। एक कदम उठाया, दूसरा रखा। दोनों कभी आप ऊपर नहीं उठाते। एक उठता है तो दूसरा रख जाता है। इधर एक बिखरता है तो उधर दूसरा तत्काल निर्मित हो जाता है। प्रोसेस चलता रहता है। पदार्थ का एक कदम हमेशा बढ़ रहा है और एक कदम हमेशा मिट रहा है। जिस कुर्सी पर आप बैठे हैं वह मिट रही है। नहीं तो पचास साल बाद राख कैसे हो जायेगी। जिस शरीर में आप बैठे हैं, वह मिट रहा है। लेकिन बन भी रहा है। चौबीस घंटे आप उसको खाना दे रहे हैं, वायु दे रहे हैं। वह निर्मित हो रहा है। निर्मित होता चला जा रहा है और बिखरता भी चला जा रहा है। लाइफ ऐण्ड डेथ बोथ साइमलटेनियसली। जीवन और मरण एक साथ, दो पैर की तरह चल रहे हैं। महावीर ने कहा यह जगत् पुद्गल है। इसमें सब चीजें सदा से हैं, बन रही हैं, मिट रही हैं। ट्रांसफार्मेशन चलता रहता है, न कोई चीज कभी समाप्त होती है न निर्मित होती है। इसलिए निर्माता का कोई सवाल नहीं है। इसलिए परमात्मा में वासना की कोई जरूरत नहीं है।

(सारे धर्म परमात्मा को जगत् के पहले रखते हैं। महावीर परमात्मा को जगत् के अन्त में रखते हैं। इसका फर्क समझें। सारे धर्म परमात्मा को कहते हैं 'काज', कारण है। महावीर कहते हैं 'इफेक्ट', परिणाम है। महावीर का अरिहंत अंतिम मंजिल है। व्यक्ति भगवान् तब होता है जब कि उसने सब पा लिया। पहुँच गया वहाँ, जिसके आगे और कोई यात्रा नहीं है। दूसरे धर्मों का भगवान् बिगनिंग में है, दुनिया जब शुरू होती है वहाँ। जहाँ दुनिया समाप्त होती है, महावीर की भगवत्ता की धारणा वहाँ है। सब कहते हैं कि दुनिया को बनाने वाला भगवान् है। महावीर कहते हैं दुनिया को पार कर

जाने वाला भगवान् है। बन हू गोज वियांड। महावीर उसे प्रथम नहीं रखते, अंतिम रखते हैं। 'काज' नहीं 'इफैक्ट', कारण नहीं कार्य मानते हैं।

दुनिया का भगवान् बीज की तरह है, महावीर का भगवान् फूल की तरह है। दुनिया कहती है, भगवान् से सब चीज पैदा होती है। महावीर कहते हैं जहाँ जाकर सब खुल जाता है, प्रकट हो जाता है, खिल जाता है, वहाँ भगवान् है। इस तरह महावीर की जो अरिहंत की, सिद्ध की, भगवान् की, भगवत्ता की धारणा है, वह चेतना के पूरे खिल जाने की फ्लावरिंग की है, जहाँ सब खिल जाता है। इस खिले हुए फूल से जो सुवास झरती है, इस खिले हुए फूल से जो आनन्द प्रकट होता है, इस खिले हुए फूल का जो स्वभाव है, 'केवलिपन्नत्तो धम्मो' है, वह केवली द्वारा प्ररूपित धर्म है। और उसे कहते हैं कि लोक में उत्तम है। वह जो फूल की तरह अंत में खिला है, क्लाइमेक्स है, शिखर है।

शास्त्र में लिखा हुआ धर्म लोक में उत्तम है, ऐसा महावीर नहीं कहते। वेद को मानने वाला कहता है, वेद में जो प्ररूपित धर्म है वह लोक में उत्तम है। बाइबिल को मानने वाला कहता है, बाइबिल में जो धर्म प्ररूपित है वह उत्तम है। कुरान को मानने वाला कहता है, कुरान में जो धर्म प्ररूपित है वह उत्तम है। गीता को मानने वाला कहता है, गीता में जो धर्म की प्ररूपना हुई है, वह उत्तम है। महावीर कहते हैं केवलिपन्नत्तो धम्मो। नहीं, शास्त्र में कहा हुआ नहीं। केवल ज्ञान के क्षण में जो झरता है वही। जीवन्त। लिखे हुए का मूल्य है। लिखा हुआ पहले तो बहुत सिकुड़ जाता है। शब्द में बांधना पड़ता है।

जीवन्त धर्म क्या है?

इसके बहुत अर्थ होंगे। केवलिप्ररूपित जो धर्म है, वह शास्त्र में लिख लिया गया है। तो जैन उस शास्त्र को वैसे ही सिर पर ढोये चले जाते हैं, जैसे कुरान को कोई ढोता है, गीता को कोई ढोता है। यह महावीर के साथ ज्यादती है। ज्यादती इसलिए है कि महावीर ने कभी नहीं कहा कि शास्त्र में 'प्ररूपित धर्म'। ऐसा भी नहीं कहा कि मेरे शास्त्र में कहा हुआ धर्म। बड़ी कठिनाई है। महावीर ने खुद कोई शास्त्र निर्मित नहीं किया। महावीर ने कुछ लिखवाया भी नहीं। महावीर के मरने के सैकड़ों वर्ष बाद महावीर के वचन लिखे गये। और भी कठिन बात है और वह यह है कि महावीर तो मौन रहे,

महावीर तो बोले नहीं । तो महावीर की जो वाणी है वह कही हुई नहीं है, सुनी हुई है। महावीर का जो धर्म का प्ररूपण है वह मौन, टेलिपैथिक ट्रांसमिशन है। बात पुराण जैसी जरूर लगती है लेकिन वैज्ञानिक आधार उसको मिलते चले जाते हैं। महावीर जब बोलते थे तो बोलते नहीं थे, बैठते थे। होठ का भी उपयोग वे नहीं करते थे, कंठ का भी नहीं। उनके अंतर आकाश में जरूर ध्वनि गूंजती थी।

(१७) महावीर की टेलिपैथी

अगर एक साधारण व्यक्ति मैसिंग, जो कोई अरिहंत नहीं है, एक कागज के टुकड़े को सिर्फ अन्तरवाणी के द्वारा कह सकता है कि यह टिकट है और टिकट कलेक्टर ने, चेकर ने जाना, सुना कि यह टिकट है; या अगर एक कोरे कागज पर लाख रुपये दिये जा सकते हैं जो पढ़ा तो गया, लिखा नहीं गया, ट्रेजरर ने पढ़ा कि लाख रुपये देने हैं, तो महावीर का टेलिपैथिक कम्युनिकेशन उससे भी गहन प्रयोग था। वे बोले नहीं, सुने गये। ही वाज हर्ड। वे मौन बैठे, और पास बैठे लोगों ने उन्हें सुना। जो जिस भाषा में समझ सकता था, उसने उस भाषा में सुना।

इसमें भी थोड़ा समझ लेना जरूरी है। क्योंकि हम जो भाषा नहीं समझते हैं, उसको कैसे सुनेंगे। वहाँ जानवर भी इकट्ठे थे, पशु भी इकट्ठे थे और पौधे भी खड़े थे। कथा कहती है कि उन्होंने भी सुना। बेकस्टर भी तो कहता है कि पौधों के भाव हैं और वे समझते हैं आपकी भावनाएँ। आप जब दु:खी होते हैं, पौधों को प्रेम करने वाला व्यक्ति जब दु:खी होता है तो वे दु:खी होते हैं। और जब घर में उत्सव मनाया जाता है तो वे प्रफुल्लित हो जाते हैं। जब आप उनके पास खड़े होते हैं, तो उनमें आनन्द की धाराएँ बहती हैं। जब घर में कोई मर जाता है, तो वे भी मातम मनाते हैं। इसके जब वैज्ञानिक प्रमाण हैं तो यह समझने में क्या बहुत कठिनाई है कि महावीर के हृदय का सन्देश पौधों की स्मृति तक पहुँच गया हो ? इस सारी दुनिया में जो प्रयोग किए जा रहे हैं, अनकांसेस पर, अचेतन पर, उनसे सिद्ध होता है कि हम अचेतन में कोई भी भाषा समझ सकते हैं। जैसे आपको बेहोश किया जाये, गहन रूप में हिप्नोटाइज किया जाये, इतना बेहोश किया जाय कि आप को अपना कोई पता न रह जाये, और फिर आपसे किसी भी भाषा में बोला जाये, तो आप उसे समझेंगे।

(१८) अचेतन मन और भाषा के प्रयोग

एक चेक वैज्ञानिक डा० राज डेक इस पर काम करता है, भाषा और अचेतन पर। वह एक महिला को, जो चेक भाषा नहीं जानती है, बेहोश करके बहुत दिन तक उससे चेक भाषा में बातें करता रहा। और वह समझती थी। जब वह बेहोश होती तो उससे वह चेक भाषा में कहता कि उठकर वह पानी का गिलास लाओ, तो वह ले आती। लेकिन बड़ी हैरानी की बात है कि जब वह होश में आती और तब उससे कहा जाता तो वह नहीं सुनती।

उसने उस महिला से पूछा कि बात क्या है ? जब तू बेहोश होती है तब तू पूरा समझती है। जब तू होश में आती है तब तू कुछ नहीं समझती है।

उस महिला ने कहा, मुझे भी थोड़ा-थोड़ा ख्याल रहता है बेहोशी का कि मैं समझती थी, लेकिन जैसे-जैसे मैं होश में आती हूँ तो मुझे सुनाई पड़ता है, चाह चाह चाह, और कुछ समझ में नहीं आता। तुम जो बोलते हो उसमें चाह, चाह, चाह मालूम पड़ता है। और कुछ भी नहीं मालूम पड़ता।

तो राज डेक का कहना है कि आदमी की भाषा का अध्ययन उसके अचेतन के अध्ययन से यह खबर लाता है कि हम महासागर से निकले हुए छोटे-छोटे द्वीपों की भांति हैं। ऊपर से अलग - अलग, नीचे उतर जायें तो जमीन पर जुड़े हुए हैं। ऊपर हमारी सबकी भाषाएँ अलग-अलग हैं। लेकिन जितने गहरे उतर जायें, उतनी एक हैं। आदमी ही नहीं, और गहरे उतर जायें तो पशु की भी भाषा एक है, और गहरे उतर जायें तो पशु ही नहीं, पौधों की भी एक है। जितने हम अपने नीचे गहरे उतरते हैं उतने हम जुड़े हुए हैं, एक महा कांटिनेंट से, एक महाद्वीप से जीवन के और वहां हम सब एक भाषा समझते हैं। तो महावीर का यह जो प्रयोग था निःशब्द विचार-संचरण का, टेलिपैथी का, यह आनेवाले बीस वर्षों में विज्ञान बतायेगा कि पुराण कथा नहीं है। इस पर काम तेजी से चल रहा है। और स्पष्ट होती जाती हैं बहुत सी अँधेरी गलियां, बहुत से गलियारे, जो साफ नहीं थे। इसका अर्थ यह हुआ कि अगर हमें किसी व्यक्ति को दूसरी भाषा सिखानी हो तो चेतन नहीं, अचेतन का सहारा उपयुक्त होगा। राज डेक कहता है कि चेतन रूप से सिखाने में व्यर्थ कठिनाइयां उठाते हो। इसलिए राज डेक ने एक संस्था खोली है। और एक दूसरा वैज्ञानिक है बल्गेरिया में डा० लोरेंजो। उसने एक इंस्टीट्यूट खोली है—इंस्टीट्यूट आफ सजेस्टोलाजी। अगर हम उसका ठीक से अनुवाद

महावीर तो बोले नहीं । तो महावीर की जो वाणी है वह कही हुई नहीं है, सुनी हुई है। महावीर का जो धर्म का प्ररूपण है वह मौन, टेलिपैथिक ट्रांसमिशन है। बात पुराण जैसी जरूर लगती है लेकिन वैज्ञानिक आधार उसको मिलते चले जाते हैं। महावीर जब बोलते थे तो बोलते नहीं थे, बैठते थे। होठ का भी उपयोग वे नहीं करते थे, कंठ का भी नहीं। उनके अंतर आकाश में जरूर ध्वनि गूंजती थी।

(१७) महावीर की टेलिपैथी

अगर एक साधारण व्यक्ति मैसिंग, जो कोई अरिहंत नहीं है, एक कागज के टुकड़े को सिर्फ अन्तरवाणी के द्वारा कह सकता है कि यह टिकट है और टिकट कलेक्टर ने, चेकर ने जाना, सुना कि यह टिकट है; या अगर एक कोरे कागज पर लाख रुपये दिये जा सकते हैं जो पढ़ा तो गया, लिखा नहीं गया, ट्रेजरर ने पढ़ा कि लाख रुपये देने हैं, तो महावीर का टेलिपैथिक कम्युनिकेशन उससे भी गहन प्रयोग था। वे बोले नहीं, सुने गये। ही बाज हुई। वे मौन बैठे, और पास बैठे लोगों ने उन्हें सुना। जो जिस भाषा में समझ सकता था, उसने उस भाषा में सुना।

इसमें भी थोड़ा समझ लेना जरूरी है। क्योंकि हम जो भाषा नहीं समझते हैं, उसको कैसे सुनेंगे। वहाँ जानवर भी इकट्ठे थे, पशु भी इकट्ठे थे और पौधे भी खड़े थे। कथा कहती है कि उन्होंने भी सुना। बेकस्टर भी तो कहता है कि पौधों के भाव हैं और वे समझते हैं आपकी भावनाएँ। आप जब दुःखी होते हैं, पौधों को प्रेम करने वाला व्यक्ति जब दुःखी होता है तो वे दुःखी होते हैं। और जब घर में उत्सव मनाया जाता है तो वे प्रफुल्लित हो जाते हैं। जब आप उनके पास खड़े होते हैं, तो उनमें आनन्द की धाराएँ बहती हैं। जब घर में कोई मर जाता है, तो वे भी मातम मनाते हैं। इसके जब वैज्ञानिक प्रमाण हैं तो यह समझने में क्या बहुत कठिनाई है कि महावीर के हृदय का सन्देश पौधों की स्मृति तक पहुँच गया हो ? इस सारी दुनिया में जो प्रयोग किए जा रहे हैं, अनकांसेस पर, अचेतन पर, उनसे सिद्ध होता है कि हम अचेतन में कोई भी भाषा समझ सकते हैं। जैसे आपको बेहोश किया जाये, गहन रूप में हिप्नोटाइज किया जाये, इतना बेहोश किया जाय कि आप को अपना कोई पता न रह जाये, और फिर आपसे किसी भी भाषा में बोला जाये, तो आप उसे समझेंगे।

(१८) अचेतन मन और भाषा के प्रयोग

एक चेक वैज्ञानिक डा० राज डेक इस पर काम करता है, भाषा और अचेतन पर। वह एक महिला को, जो चेक भाषा नहीं जानती है, बेहोश करके बहुत दिन तक उससे चेक भाषा में बातें करता रहा। और वह समझती थी। जब वह बेहोश होती तो उससे वह चेक भाषा में कहता कि उठकर वह पानी का गिलास लाओ, तो वह ले आती। लेकिन बड़ी हैरानी की बात है कि जब वह होश में आती और तब उससे कहा जाता तो वह नहीं सुनती।

उसने उस महिला से पूछा कि बात क्या है? जब तू बेहोश होती है तब तू पूरा समझती है। जब तू होश में आती है तब तू कुछ नहीं समझती है।

उस महिला ने कहा, मुझे भी थोड़ा-थोड़ा ख्याल रहता है बेहोशी का कि मैं समझती थी, लेकिन जैसे-जैसे मैं होश में आती हूँ तो मुझे सुनाई पड़ता है, चाह चाह चाह, और कुछ समझ में नहीं आता। तुम जो बोलते हो उसमें चाह, चाह, चाह मालूम पड़ता है। और कुछ भी नहीं मालूम पड़ता।

तो राज डेक का कहना है कि आदमी की भाषा का अध्ययन उसके अचेतन के अध्ययन से यह खबर लाता है कि हम महासागर से निकले हुए छोटे-छोटे द्वीपों की भांति हैं। ऊपर से अलग - अलग, नीचे उतर जायें तो जमीन पर जुड़े हुए हैं। ऊपर हमारी सबकी भाषाएँ अलग-अलग हैं। लेकिन जितने गहरे उतर जायें, उतनी एक हैं। आदमी ही नहीं, और गहरे उतर जायें तो पशु की भी भाषा एक है, और गहरे उतर जायें तो पशु ही नहीं, पौधों की भी एक है। जितने हम अपने नीचे गहरे उतरते हैं उतने हम जुड़े हुए हैं, एक महा कांटिनेंट से, एक महाद्वीप से जीवन के और वहां हम सब एक भाषा समझते हैं। तो महावीर का यह जो प्रयोग था निःशब्द विचार-संचरण का, टेलिपैथी का, यह आनेवाले बीस वर्षों में विज्ञान बतायेगा कि पुराण कथा नहीं है। इस पर काम तेजी से चल रहा है। और स्पष्ट होती जाती हैं बहुत सी अंधेरी गलियाँ, बहुत से गलियारे, जो साफ नहीं थे। इसका अर्थ यह हुआ कि अगर हमें किसी व्यक्ति को दूसरी भाषा सिखानी हो तो चेतन नहीं, अचेतन का सहारा उपयुक्त होगा। राज डेक कहता है कि चेतन रूप से सिखाने में व्यर्थ कठिनाइयाँ उठाते हो। इसलिए राज डेक ने एक संस्था खोली है। और एक दूसरा वैज्ञानिक है बल्गेरिया में डा० लोरेंजो। उसने एक इंस्टीट्यूट खोली है—इंस्टीट्यूट आफ सजेस्टोलाजी। अगर हम उसका ठीक से अनुवाद

करें तो उसका अर्थ होगा, मंत्र महाविद्यालय। सजेस्टोलॉजी का अर्थ होता है मंत्र। आप जानते हैं ना, सलाह देनेवाले को हम मंत्री कहते हैं, सुझाव देनेवाले को मंत्री कहते हैं। मंत्र का अर्थ है सुझाव, सजेशन। लोरेंजो की इंस्टीट्यूट सरकार के द्वारा स्थापित है और बल्गेरियन सरकार कम्युनिस्ट है। इसमें तीस वैज्ञानिक लोरेंजो के साथ काम कर रहे हैं। और लोरेंजो का कहना है कि दो साल का कोर्स हम बीस दिन में पूरा करवा देते हैं, कोई भी दो साल का कोर्स। जो भाषा आप दो साल में सीखेंगे चेतन रूप से, वह लोरेंजो आपको सम्मोहित हालत में बीस दिन में सिखा देता है।

और भी एक नयी शिक्षा की पद्धति लोरेंजो ने विकसित की है, जिसे जल्दी ही सारी दुनिया पकड़ लेगी। जो अभी आप करवा रहे हैं, उससे वह बिल्कुल उल्टी है उसके हिसाब से, और मैं मानता हूँ कि वह ठीक है, मेरे हिसाब से भी। हम जिसको शिक्षा कह रहे हैं वह शिक्षा नहीं है, निपट नासमझी है। लोरेंजो ने जो स्कूल खोला है, उस स्कूल में बच्चों को बैठने के लिए आराम कुर्सियाँ हैं। कुर्सियां नहीं, आराम कुर्सियाँ, जैसी कि हवाई जहाज में होती हैं जिन पर वे आराम से लेट जाते हैं। डिफ्यूज कर दिया जाता है प्रकाश जैसे कि हवाई जहाज जब उड़ता है, तब कर दिया जाता है। और विशेष संगीत कमरे में बजता रहता है। भला कोई स्कूल रहा यह, मामला सब खराब हो गया न ? लेकिन वहाँ पूरे वक्त संगीत बजता रहता है। विद्यार्थियों से कहा जाता है कि आँख चाहे आधी बन्द कर लो चाहे पूरी बन्द कर लो, और संगीत पर ध्यान दो—केवल संगीत पर। शिक्षक पढ़ा रहा है उस पर ध्यान मत दो, डोंट गिव एनी अटेंशन ऐट दी टीचर। शिक्षक पर भूल कर मत ध्यान देना, उसी से गड़बड़ हो जाती है। तुम तो संगीत सुनते रहना, तुम शिक्षक को सुनना ही मत।

अब तो यह उल्टा हो गया। क्योंकि शिक्षक बेचारा यही तो परेशान है कि विद्यार्थी हमको सुन नहीं रहे, तो डंडा बजा रहा है पूरे वक्त कि हमें सुनो। लेकिन लड़के कहीं बाहर देख रहे हैं। कहीं पक्षियों को सुन रहे हैं, कहीं कुछ और कर रहे हैं और शिक्षक कह रहा है कि हमें सुनो। वह जो तीन हजार साल का शिक्षक और विद्यार्थी का झगड़ा है, वह अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया है कि हमें सुनो। और लोरेंजो कहता है कि जब कोई व्यक्ति सचेतन रूप से सुनता है, तो उसका ऊपरी मन सुनता है। इसीलिए वह कहता है कि ऊपरी मन को तो लगा दो संगीत सुनने में तब भीतरी मन का द्वार सुनता रहेगा।

और इस तरह दो साल का कोर्स वह बीस दिन में पूरा कर देता है किसी भी भाषा का कोर्स।

बात क्या है? बात कुल इतनी ही है कि नीचे गहरे में हमारी बड़ी क्षमताएँ छिपी हैं। आप अपने घर से यहाँ तक आये हैं। अगर आप पैदल चलकर आये हों, तो क्या आप बता सकते हैं कि रास्ते पर कितनी बिल्डिगें और खम्भे पड़े? आप कहेंगे मैं कोई पागल हूँ? मैं उनकी कोई गिनती नहीं करता। लेकिन आपको बेहोश करके पूछा जाये, तो आप संख्या बता सकते हैं, बिल्कुल ठीक संख्या बता सकते हैं। आप जब चले आ रहे थे इधर, तो आपका ऊपरी मन तो इधर आने में लगा था। हार्न बज रहा था, उसमें लगा था, कोई टकरा न जाये उसमें लगा था। लेकिन आपके नीचे का मन सब कुछ रिकार्ड कर रहा था। और रास्ते पर पड़े हुए लैम्प पोस्ट भी, लोग निकले वे भी, हार्न बजा वह भी, कार का नम्बर दिखलायी पड़ा वह भी। वह सब नोट करता रहा। वही सब आपको याद हो गया। आपके चेतन को कोई पता नहीं। कहना चाहिए कि आपको कोई पता नहीं। वह जो पानी के ऊपर निकला हुआ द्वीप, 'आइलैंड' है, उसको कुछ पता नहीं है, लेकिन नीचे जो जुड़ी हुई भूमि का विस्तार है, उसे सब पता है।

(१९) महावीर को सुनने की कीमत

महावीर बोले नहीं, चुपचाप बैठे। और यही कारण है कि महावीर का धर्म बहुत व्यापक नहीं हो पाया। बहुत लोगों तक नहीं पहुँच पाया। क्योंकि महावीर बोलते तो सबकी समझ में आता। महावीर नहीं बोले, तो उनकी ही समझ में आया, जो उतने गहरे जाने को तैयार थे। इसलिए महावीर के श्रावक 'चोजेन फ्यू' हैं। जो उस जगत् में महावीर के वक्त श्रेष्ठतम लोग थे, वे ही महावीर को सुन पाये। वे श्रेष्ठतम चाहे पौधों में हों, चाहे पशुओं में हों, चाहे आदमियों में। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। महावीर को सुनने के पहले बड़े प्रशिक्षण से गुजरना पड़ता था। ध्यान की प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता था, ताकि जब आप महावीर के सामने बैठें, तब आपका वाचाल मन, वह जो निरन्तर उपद्रव से ग्रस्त बीमार मन है, वह शान्त हो जाये। और आपकी जो गहन आत्मा है, वह महावीर के सामने आ जाये। संवाद हो सके उस आत्मा से। इसलिए महावीर की वाणी को पाँच सौ वर्ष तक फिर रिकार्ड नहीं किया गया। तब तक रिकार्ड नहीं किया गया, जब तक ऐसे लोग

मौजूद थे, जो महावीर के शरीर के गिर जाने के बाद भी महावीर के सन्देश लेने में समर्थ थे। जब ऐसे लोग भी समाप्त होने लगे, तब घबराहट फैली; और तब संग्रहीत करने की कोशिश की गयी। इसलिए जैनों का एक वर्ग—दिगम्बर—महावीर की किसी भी वाणी को आथेंटिक नहीं मानता।

उसका मानना है कि चूँकि वह उन लोगों के द्वारा संग्रहीत की गयी है जो दुविधा में पड़ गये थे और जिन्हें शक पैदा हो गया था कि महावीर से अब संबंध जोड़ना संभव है या नहीं, इसलिए वह प्रामाणिक नहीं कही जा सकती। इसलिए दिगम्बर जैनों के पास महावीर का कोई शास्त्र नहीं है। श्वेताम्बरों के पास भी जो शास्त्र हैं, वे भी पूर्ण नहीं हैं। क्योंकि जिन्होंने संग्रहीत किया, उन्होंने कहा—हम थोड़ी सी बातें भर प्रामाणिक लिख सके हैं, बाकी और अंग खो गये हैं। उनको जाननेवाले कोई भी नहीं हैं। इसलिए वह भी अधूरा है।

लेकिन महावीर की पूरी वाणी को कभी भी पुनः पाया जा सकता है। उसके पाने का ढंग यह नहीं होगा कि महावीर के ऊपर जो किताबें लिखी रखी हैं, उनमें खोजा जाये। इसके पाने का यही होगा—वैसा ग्रुप, वैसा स्कूल, वैसे थोड़े से लोग जो चेतना को उस गहराई तक ले जा सकें, जहाँ से महावीर से आज भी संबंध जोड़ा जा सकता है। इसलिए महावीर ने कहा—केवलिपन्नत्तो धम्म, शास्त्र नहीं। वही धर्म उत्तम है, जो तुम केवली से संबंधित होकर जान सको। बीच में शास्त्र से संबंधित होकर नहीं। और केवली से कभी भी संबंधित हुआ जा सकता है। शास्त्र बाजार में मिल जाते हैं। केवली से संबंधित होना हो तो बड़ी गहरी कीमत चुकानी पड़ती है। स्वयं के भीतर बहुत कुछ रूपांतरित करना पड़ता है। महावीर कहते थे, बिना कीमत चुकाये कुछ भी नहीं मिलता है। और जितनी बड़ी चीज पानी हो, उतनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है।

इसलिए जब वे बार-बार कहते हैं कि अरिहंत उत्तम हैं, सिद्ध उत्तम हैं, साधु उत्तम हैं, केवली प्ररूपित धर्म उत्तम है, तब वे यह कह रहे हैं कि इतने उत्तम को पाने के लिए सब कुछ चुकाने की तैयारी रखना। क्योंकि इसका

मूल्य हैं, मुफ्त नहीं मिल सकेगा। हम सब मुफ्त लेने के आदी हैं। हम कुछ भी चुकाने को तैयार नहीं हैं। सड़ी-गली चीज को खरीदने के लिए हम सब कुछ चुकाने को तैयार हैं। धर्म मुफ्त मिलना चाहिए। असल में इससे पता चलता है कि हम मुफ्त उसी चीज को लेने को तैयार होते हैं, जिसको हम लेने को आग्रहशील नहीं हैं। जिसको हम कहते हैं कि मुफ्त देते हैं तो दे दें, वरना क्षमा करें। महावीर कहते हैं कि जो इतना उत्तम है, लोक में जो सर्व-श्रेष्ठ है, उसे पाने के लिए सब कुछ खोना पड़ेगा, स्वयं को भी। और जब भी कोई स्वयं को खोने को तैयार होता है, तो केवली प्ररूपित धर्म से सीधा, डाइरेक्ट संयुक्त हो जाता है। वही धर्म जो जाननेवाले से सीधा मिलता हो, बिना मध्यस्थ के प्राप्त होता हो, वही श्रेष्ठ है।



तीसरा प्रवचन

पर्युषण व्याख्यान-माला, बम्बई, दिनांक २० अगस्त, १९७१

शरण आये हैं हम तुम्हारी

"अरिहंते सरणं पवज्जामि।
सिद्धे सरणं पवज्जामि।
साहू सरणं पवज्जामि।
केवलिपन्नत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।"

अर्थ—

अरिहंत की शरण स्वीकार करता हूँ।
सिद्धों की शरण स्वीकार करता हूँ।
साधुओं की शरण स्वीकार करता हूँ।

केवलीप्ररूपित अर्थात् आत्मज्ञ-कथित धर्म की शरण स्वीकार करता हूँ।

(१) मैं शरण में आता हूँ

कृष्ण ने गीता में कहा—'सर्व धर्मान् परित्यज्य, माम् एकम् शरणम् व्रज' अर्जुन तू सब धर्मों को छोड़कर एक मेरी ही शरण में आ। कृष्ण जिस युग में बोल रहे थे, वह युग अत्यन्त सरल, मृदुल श्रद्धा का युग था। किसी के मन में ऐसा नहीं हुआ कि कृष्ण कैसे अहंकार की बात कह रहे हैं, कि तू सब छोड़कर मेरी शरण में आ। अगर कोई घोषणा अहंकारग्रस्त मालूम हो सकती है, तो इससे ज्यादा अहंकारग्रस्त घोषणा दूसरी मालूम नहीं होगी। अर्जुन से यह कहना कि छोड़ दे सब, आ मेरी शरण में। लेकिन वह युग अत्यन्त श्रद्धा का युग रहा है, जब कृष्ण बेझिझक सरलता से ऐसी बात कह सके और अर्जुन ने सवाल भी नहीं उठाया कि क्या कहते हैं आप? आपकी शरण में, और मैं आऊँ? आप अहंकार से भरे हुए मालूम पड़ते हैं। लेकिन बुद्ध और महावीर तक आदमी की चित्त-दशा में बहुत फर्क है। इसलिए जहाँ हिन्दू चिन्तन 'मामेकम् शरणम् व्रज' पर केन्द्र मानकर खड़ा है, वहाँ बुद्ध और महावीर को अपनी दृष्टि में आमूल परिवर्तन करना पड़ा। महावीर ने नहीं कहा कि तुम सब छोड़कर मेरी शरण में आ जाओ, न बुद्ध ने कहा। दूसरे छोर से पकड़ना पड़ा सूत्र को। जो बुद्ध का सूत्र है, वह साधक की तरफ से है; जो महावीर का सूत्र है वह भी साधक की तरफ से है। सिद्ध की तरफ से नहीं। अरिहंत की शरण स्वीकार करता हूँ, सिद्ध की शरण स्वीकार करता हूँ, केवलीप्ररूपित धर्म को स्वीकार करता हूँ—यह दूसरा छोर है शरणागत का। दो ही छोर हो सकते हैं। या तो सिद्ध कहे कि मेरी शरण में आओ, या साधक कहे कि मैं आपकी शरण में आता हूँ।

(२) शरण में जाने से पहले

हिन्दू और जैन विचार में मौलिक भेद यही है। हिन्दू विचार में सिद्ध कह रहा है आ जाओ मेरी शरण में—जैन विचार में साधक कहता है कि मैं आपकी शरण में आता हूँ। इससे बहुत बातों का पता चलता है। पहली तो इसी बात का पता चलता है कि कृष्ण जब बोल रहे थे, तब बहुत श्रद्धा का युग था। और जब महावीर बोल रहे हैं, तब बड़े तर्क का युग है। महावीर कहें, मेरी शरण में आ जाओ, तो तत्काल लोगों को लगेगा कि बड़े अहंकार की बात है।

दूसरे छोर से बात शुरू करनी पड़ेगी। बुद्ध की परंपरा में भी सूत्र है—बुद्धम् शरणम् गच्छामि, संघम् शरणम् गच्छामि, धम्मम् शरणम् गच्छामि। धर्म की शरण में जाता हूँ, बुद्ध की शरण में जाता हूँ, संघ की शरण में जाता हूँ। लेकिन महावीर और बुद्ध के सूत्र में भी थोड़ा फर्क है, वह ख्याल में ले लेना जरूरी है। ऊपर की ओर से देखने पर दोनों एक से मालूम पड़ते हैं। गच्छामि हो या पवज्जामि हो, शरण में जाता हूँ या स्वीकार करता हूँ, एक से ही मालूम पड़ते हैं, पर यह भेद है। जब कोई कहता है—बुद्धम् शरणम् गच्छामि, बुद्ध की शरण जाता हूँ तो यह शरण में जाने की शुरुआत है, पहला कदम है और जब कोई कहता है कि 'अरिहंते शरणम् पवज्जामि' तब यह शरण जाने की अन्तिम स्थिति है। शरण स्वीकार करता हूँ। अब इसके आगे और कोई गति नहीं है। जब कोई कहता है कि शरण में आता हूँ, तो वह पहला कदम उठता है। और जब कोई कहता है शरण स्वीकार करता हूँ, तो वह अन्तिम कदम उठाता है। जब कोई कहता है शरण में आता हूँ, तो बीच से लौट भी सकता है। यह भी हो सकता है, यात्रा का प्रारम्भ है, यात्रा पूरी न हो, यात्रा के बीच में व्यवधान हो जाये। यात्रा के मध्य में ही कोई तर्क समझाये और वापस लौटा दे। क्योंकि तर्क शरण में जाने का नितान्त विरोधी है। बुद्धि शरण में जाने के नितांत विरोध में है; बुद्धि कहती है, तुम और किसी की शरण ? बुद्धि कहती है सबको अपनी शरण ले आ। किसी की शरण में आ जाओ तो अहंकार को पीड़ा होती है।

(३) प्वाइंट आफ नो रिटर्न

महावीर का सूत्र है अरिहंत की शरण स्वीकार करता हूँ। इससे लौटना नहीं हो सकता। यह प्वाइंट आफ नो रिटर्न है। इसके पीछे लौटने का उपाय

नहीं है। यह टोटल है। यह समग्र छलांग है। शरण में जाता हूँ कहें, तो अभी काल का व्यवधान होगा। अभी समय लगेगा शरण तक पहुँचते-पहुँचते। अभी बीच में समय व्यतीत होगा। आज जो कहता है शरण में जाता हूँ, हो सकता है वह कितने जन्मों के बाद शरण में पहुँच सके। अपनी-अपनी गति पर निर्भर होगा और अपनी-अपनी मति पर निर्भर होगा। लेकिन पहुँच जाने के सूत्र की खूबी यही है कि वह सडेन जम्प है। इसमें बीच में फिर समय का व्यवधान नहीं है। 'स्वीकार करता हूँ' यानी जिसने शरण स्वीकार की, उसने स्वयं को तत्काल अस्वीकार किया। ये दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं। अगर आप अपने को स्वीकार करते हैं, तो शरण को स्वीकार नहीं कर सकेंगे। अगर आप शरण को स्वीकार नहीं करते हैं, तो आप अपने को स्वीकार कर सकते हैं, करना ही होगा। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

शरण की स्वीकृति अहंकार की हत्या है। धर्म का जो भी विकास है चेतना में, वह अहंकार के विसर्जन से शुरू होता है। जब युग होते हैं श्रद्धा के, तो सिद्ध कहते हैं कि मेरी शरण में आ जा, और जब युग होते हैं अश्रद्धा के, तो फिर साधक को ही कहना पड़ता है कि मैं आपकी शरण स्वीकार करता हूँ'। महावीर बिलकुल चुप हैं। वे यह भी नहीं कहते कि तुममें जो मेरी शरण आये हैं, मैं उन्हें अंगीकार करता हूँ। वे यह भी नहीं कहते, क्योंकि खतरा तर्क के युग में यह है कि अगर महावीर ने इतना भी कहा, सिर भी हिला दिया कि हां स्वीकार करता हूँ, तो भी दूसरे का अहंकार फिर खड़ा हो जाता है कि यह तो अहंकार हो गया। महावीर चुप ही रह जाते हैं। एकतरफा है, साधक की तरफ से।

निश्चित ही बड़ी कठिनाई होगी। इसलिए जितना आसान कृष्ण के युग में सत्य को उपलब्ध कर लेना है, उतना आसान महावीर के युग में नहीं रह जाता और हमारे युग में तो अत्यधिक कठिनाई खड़ी हो जाती है। न सिद्ध कह सकता है कि मेरी शरण में आ, न साधक कह सकता है कि मैं आपकी शरण आता हूँ। महावीर चुप रह गये। आज अगर साधक किसी सिद्ध की शरण में जाये और सिद्ध मौन रहे, इन्कार नहीं करे कि नहीं किसी की शरण में जाने की जरूरत नहीं, तो साधक समझेगा अच्छा है। मौन सम्मति का लक्षण है। इस पर आप शरण स्वीकार करते हैं।

आज महावीर अगर चुप भी बैठ जायें और आप जाकर कहें कि अरिहंत की शरण आता हूँ और महावीर चुप रहें, तो आप घर लौट कर सोचेंगे

कि यह आदमी चुप रह गया। इसका मतलब रास्ता देखता था कि मैं शरण आऊँ, प्रतीक्षा करता था। मौन तो सम्मति का लक्षण है। मतलब कि यह आदमी तो अहंकारी है। तब फिर अरिहंत कैसे होगा? नहीं, उन्हें एक कदम और नीचे उतरना पड़ेगा। महावीर को कहना पड़ेगा कि नहीं तुम किसी की शरण मत जाओ। जब महावीर जोर देकर इन्कार करें कि नहीं, शरण में आने की जरूरत नहीं, तो ही वह साधक समझेगा कि अहंकारी नहीं हैं। लेकिन उसे पता नहीं कि इस अस्वीकार में साधक के सब द्वार बन्द हो जाते हैं।

कृष्ण कहते है सब धर्म छोड़कर मेरी शरण में आ जाओ। हमारा युग आध्यात्मिक दृष्टि से किसी को सहयोग पहुंचाने की दृष्टि से बड़ी कठिनाई का युग है। बुलाकर सहयोग देना तो कठिन है, जैसे कृष्ण देते है। और आये हुए को तो सहयोग देना और भी कठिन है, जैसे महावीर देते हैं। और कुछ आश्चर्य न होगा कि और थोड़े दिनों बाद सिद्ध को कहना पड़े साधक से, कि आपकी शरण में आता हूँ, स्वीकार करो। शायद तभी साधक माने कि ठीक है, यह आदमी ठीक है। यह आध्यात्मिक स्वीकृति है। शरण का उतना मूल्य क्या है! इसे हम दो तीन दिशाओं से समझने की कोशिश करें।

(४) कभी आपने सोचा कि आप लेटते क्यों हैं?

पहले तो शरीर को ही समझने की कोशिश करें। मैं बल्गेरियन डाक्टर लोज़ानोव के इन्स्टीट्यूट आफ सजेस्टोलाजी की बात कर चुका हूँ। लोज़ानोव ने शिक्षा पर अनूठे प्रयोग किये हैं। उससे जब पिछले एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में पूछा गया कि तुम्हें इस अद्भुत क्रान्तिकारी शिक्षा के आयाम का कैसे स्मरण आया, किस दिशा से तुम्हें संकेत मिला? तो लोज़ानोव ने कहा कि मैं योग के, भारतीय योग के शवासन का प्रयोग करता था। उसी से मुझे यह दृष्टि मिली।

शवासन की खूबी क्या है? शवासन का अर्थ है पूर्ण समर्पित शरीर की दशा, जब आदमी ने शरीर को बिल्कुल छोड़ दिया हो। जब आप शरीर को पूरा 'रिलैक्स' की स्थिति में छोड़ देते हैं। और शरीर को अगर पूरा रिलैक्स्ड छोड़ना हो, तो जमीन पर जो भारतीयों की पुरानी पद्धति है साष्टांग प्रणाम की, उस स्थिति में पड़कर ही छोड़ा जा सकता है। यह शरणागति की स्थिति है शरीर के लिए। अगर आप भूमि पर सीधा पड़ जायें सब

हाथ पैर ढीले छोड़कर सारे अंग भूमि को छूने लगें तो यह सिर्फ नमस्कार की एक विधि नहीं है, यह बहुत ही अद्भुत वैज्ञानिक सत्यों से भरा हुआ प्रयोग है। लोज़ानोव कहता है कि रात निद्रा में हमें विश्राम और शक्ति मिलती है, उसका मूल कारण हमारा पृथ्वी के साथ समतुल लेट जाना है। लोज़ानोव कहता है कि जब हम समतुल पृथ्वी के साथ समानान्तर लेट जाते हैं तो जगत् की शक्ति हममें सहज ही प्रवेश कर जाती है। जब हम खड़े होते हैं तो शरीर ही खड़ा नहीं होता, भीतर अहंकार भी इसके साथ खड़ा हो जाता है। जब हम लेट जाते हैं तो शरीर ही नहीं लेटता है, उसके साथ अहंकार भी लेट जाता है। हमारे डिफेन्स के तत्त्व गिर जाते हैं, हमारी जो सुरक्षा के आयोजन हैं जिनसे हम जगत् को रेसिस्ट करते हैं वे गिर जाते हैं।

चेक यूनिवर्सिटी प्राग में एक व्यक्ति अनूठे प्रयोगों पर पिछले दस वर्षों से अनुसंधान कर रहा है। वह व्यक्ति है राबर्ट पावलिटा। थके हुए आदमी को पुनः शक्ति देने के उसने अनूठे प्रयोग किये हैं। आप बिलकुल थके टूटे पड़े हैं। वह आपको स्वस्थ गाय के नीचे लिटा देता है जमीन पर। पांच मिनट वह आपसे कहता है, सब छोड़कर पड़े रहो और भाव करो कि स्वस्थ गाय से आपके ऊपर शक्ति गिर रही है। पाँच मिनट में यंत्र बताना शुरू कर देते हैं कि उस आदमी की थकान समाप्त हो गयी। वह ताजा होकर गाय के नीचे से बाहर आ गया। पावलिटा से बार-बार पूछा गया कि अगर हम गाय नीचे बैठें तो ? पावलिटा ने कहा कि जो काम लेटकर क्षणभर में होगा, वह बैठकर घंटों में भी नहीं हो सकता। पावलिटा कहता है, जैसे ही आप लेटते हैं, आपका जो रैसिस्टेन्स है आपके चारों ओर, आपने अपने व्यक्तित्व के आस-पास जो सुरक्षा की दीवालें खड़ी कर रखी है, वह गिर जाती है। वैज्ञानिक कहते हैं कि मनुष्य की बुद्धि विकसित हुई उसके खड़े होने से। यह सच है। सभी पशु पृथ्वी के समानान्तर जीते हैं। आदमी पैर पर वर्टिकल खड़ा हो गया, जब कि सभी पशु पृथ्वी की दूरी से समानान्तर होते हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी का पैर पर खड़ा हो जाना ही उसकी तथाकथित बुद्धि का विकास है। लेकिन साथ ही बुद्धि तो जरूर विकसित हो गयी। पर जीवन के अन्तर्तम से कॉसमिक जागतिक शक्तियों से उसके सब गहरे सम्बन्ध शिथिल और क्षीण हो गये। उसे वापिस लेटकर वह संबंध पुनः स्थापित करना पड़ा। इसलिए अगर मंदिरों में मूर्तियों के सामने, गिरिजाघरों में, मस्जिदों में लोग झुककर जमीन पर लेट जा रहे हैं तो उसका वैज्ञानिक कारण है। झुककर, लेटकर ही डिफेन्स

कि यह आदमी चुप रह गया। इसका मतलब रास्ता देखता था कि मैं शरण आऊँ, प्रतीक्षा करता था। मौन तो सम्मति का लक्षण है। मतलब कि यह आदमी तो अहंकारी है। तब फिर अरिहंत कैसे होगा ? नहीं, उन्हें एक कदम और नीचे उतरना पड़ेगा। महावीर को कहना पड़ेगा कि नहीं तुम किसी की शरण मत जाओ। जब महावीर जोर देकर इन्कार करें कि नहीं, शरण में आने की जरूरत नहीं, तो ही वह साधक समझेगा कि अहंकारी नहीं हैं। लेकिन उसे पता नहीं कि इस अस्वीकार में साधक के सब द्वार बन्द हो जाते हैं।

कृष्ण कहते है सब धर्म छोड़कर मेरी शरण में आ जाओ। हमारा युग आध्यात्मिक दृष्टि से किसी को सहयोग पहुंचाने की दृष्टि से बड़ी कठिनाई का युग है। बुलाकर सहयोग देना तो कठिन है, जैसे कृष्ण देते हैं। और आये हुए को तो सहयोग देना और भी कठिन है, जैसे महावीर देते हैं। और कुछ आश्चर्य न होगा कि और थोड़े दिनों बाद सिद्ध को कहना पड़े साधक से, कि आपकी शरण में आता हूँ, स्वीकार करो। शायद तभी साधक माने कि ठीक है, यह आदमी ठीक है। यह आध्यात्मिक स्वीकृति है। शरण का उतना मूल्य क्या है ! इसे हम दो तीन दिशाओं से समझने की कोशिश करें।

(४) कभी आपने सोचा कि आप लेटते क्यों हैं ?

पहले तो शरीर को ही समझने की कोशिश करें। मैं बल्गेरियन डाक्टर लोज़ानोव के इन्स्टीट्यूट आफ सजेस्टोलाजी की बात कर चुका हूँ। लोज़ानोव ने शिक्षा पर अनूठे प्रयोग किये हैं। उससे जब पिछले एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में पूछा गया कि तुम्हें इस अद्‌भुत क्रान्तिकारी शिक्षा के आयाम का कैसे स्मरण आया, किस दिशा से तुम्हें संकेत मिला ? तो लोज़ानोव ने कहा कि मैं योग के, भारतीय योग के शवासन का प्रयोग करता था। उसी से मुझे यह दृष्टि मिली।

शवासन की खूबी क्या है ? शवासन का अर्थ है पूर्ण समर्पित शरीर की दशा, जब आदमी ने शरीर को बिल्कुल छोड़ दिया हो। जब आप शरीर को पूरा 'रिलैक्स' की स्थिति में छोड़ देते हैं। और शरीर को अगर पूरा रिलैक्स्ड छोड़ना हो, तो जमीन पर जो भारतीयों की पुरानी पद्धति है साष्टांग प्रणाम की, उस स्थिति में पड़कर ही छोड़ा जा सकता है। वह शरणागति की स्थिति है शरीर के लिए। अगर आप भूमि पर सीधा पड़ जायें सब

हाथ पैर ढीले छोड़कर सारे अंग भूमि को छूने लगें तो यह सिर्फ नमस्कार की एक विधि नहीं है, यह बहुत ही अद्भुत वैज्ञानिक सत्यों से भरा हुआ प्रयोग है। लोज़ानोव कहता है कि रात निद्रा में हमें विश्राम और शक्ति मिलती है, उसका मूल कारण हमारा पृथ्वी के साथ समतुल लेट जाना है। लोज़ानोव कहता है कि जब हम समतुल पृथ्वी के साथ समानान्तर लेट जाते हैं तो जगत् की शक्ति हममें सहज ही प्रवेश कर जाती है। जब हम खड़े होते हैं तो शरीर ही खड़ा नहीं होता, भीतर अहंकार भी इसके साथ खड़ा हो जाता है। जब हम लेट जाते हैं तो शरीर ही नहीं लेटता है, उसके साथ अहंकार भी लेट जाता है। हमारे डिफेन्स के तत्त्व गिर जाते हैं, हमारी जो सुरक्षा के आयोजन हैं जिनसे हम जगत् को रेसिस्ट करते हैं वे गिर जाते हैं।

चेक यूनिवर्सिटी प्राग में एक व्यक्ति अनूठे प्रयोगों पर पिछले दस वर्षों से अनुसंधान कर रहा है। वह व्यक्ति है राबर्ट पावलिटा। थके हुए आदमी को पुनः शक्ति देने के उसने अनूठे प्रयोग किये हैं। आप बिल्कुल थके टूटे पड़े हैं। वह आपको स्वस्थ गाय के नीचे लिटा देता है जमीन पर। पांच मिनट वह आपसे कहता है, सब छोड़कर पड़े रहो और भाव करो कि स्वस्थ गाय से आपके ऊपर शक्ति गिर रही है। पाँच मिनट में यंत्र बताना शुरू कर देते हैं कि उस आदमी की थकान समाप्त हो गयी। वह ताजा होकर गाय के नीचे से बाहर आ गया। पावलिटा से बार-बार पूछा गया कि अगर हम गाय नीचे बैठें तो ? पावलिटा ने कहा कि जो काम लेटकर क्षणभर में होगा, वह बैठकर घंटों में भी नहीं हो सकता। पावलिटा कहता है, जैसे ही आप लेटते हैं, आपका जो रैसिस्टेन्स है आपके चारों ओर, आपने अपने व्यक्तित्व के आस-पास जो सुरक्षा की दीवालें खड़ी कर रखी है, वह गिर जाती है। वैज्ञानिक कहते हैं कि मनुष्य की बुद्धि विकसित हुई उसके खड़े होने से। यह सच है। सभी पशु पृथ्वी के समानान्तर जीते हैं। आदमी पैर पर वर्टिकल खड़ा हो गया, जब कि सभी पशु पृथ्वी की दूरी से समानान्तर होते हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी का पैर पर खड़ा हो जाना ही उसकी तथाकथित बुद्धि का विकास है। लेकिन साथ ही बुद्धि तो जरूर विकसित हो गयी। पर जीवन के अन्तरतम से कॉसमिक जागतिक शक्तियों से उसके सब गहरे सम्बन्ध शिथिल और क्षीण हो गये। उसे वापिस लेटकर वह संबंध पुनः स्थापित करना पड़ा। इसलिए अगर मंदिरों में मूर्तियों के सामने, गिरिजाघरों में, मस्जिदों में लोग झुककर जमीन पर लेट जा रहे हैं तो उसका वैज्ञानिक कारण है। झुककर, लेटकर ही डिफेन्स

टूट जाते हैं। इसलिए फ्रायड ने पहली बार जब मनःचिकित्सा शुरू की तो उसने अनुभव किया कि अगर बीमार को बैठाकर बात की जाये, तो बीमार अपने 'डिफेन्स मेजर' नहीं छोड़ता। इसलिए फ्रायड ने ऐसे कोच विकसित किये, जहाँ मरीज को लिटा दिया जाता है और वह डिफेन्सलेस हो जाता है। फिर फ्रायड ने अनुभव किया कि अगर उसके सामने बैठा जाये तो लेटकर भी वह थोड़ा अकड़ा रहता है। तो एक पर्दा डालकर फ्रायड पर्दे के पीछे बैठ गया। कोई मौजूद नहीं रहा। मरीज लेटा हुआ है। वह पाँच-सात मिनट में अपने डिफेन्स छोड़ देता है। वह ऐसी बातें बोलने लगता है, जो बैठकर वह कभी नहीं बोल सकता था। वह अपने ऐसे अपराध स्वीकार कर लेता है जो खड़े होकर उसने कभी भी स्वीकार नहीं किये होते।

अभी अमरीका के कुछ वैज्ञानिक फ्रायड की खोज के खिलाफ आंदोलन चला रहे हैं। वे यह आन्दोलन चला रहे हैं कि यह आदमी को बहुत असहाय अवस्था में डालने की तरकीब है। उनका कहना ठीक है। आदमी असहाय अवस्था में पड़ जाता है। लेटकर असहाय इसलिए हो जाता है कि उसने अपनी तरफ सुरक्षा का जो इन्तजाम किया था, वह गिर जाता है। शरणागति को हमने बहुत मूल्य दिया है। अगर परमात्मा की तरफ, अरिहंत की तरफ, सिद्ध की तरफ, भगवान् की तरफ़ शरणागति हो, तो वह सदा पर्दे के पीछे ही है एक अर्थ में। अगर महावीर मौजूद भी हों, तो महावीर की चेतना पर्दे के पीछे होती है। और कोई जब समर्पण कर देता है तो वह अपने को सब भाँति छोड़ देता है, ऐसे जैसे कोई नदी की धार में अपने को छोड़ दे और धार बहाने लगे; तैरे नहीं, बहने लगे। तो शरणागति बहाव है, फ्लोटिंग है। और जैसे ही कोई बहता है, वैसे ही चित्त के सब तनाव छूट जाते हैं।

(५) भविष्य में दुनिया के अस्पतालों का आकार क्या होगा ?

एक फ्रेंच खोजी इजिप्ट के पिरामिडों में दस वर्षों तक खोज करता रहा है। उस आदमी का नाम है बोविस। वह एक वैज्ञानिक और इंजीनियर है। वह यह देखकर बहुत हैरान हुआ कि कभी-कभी पिरामिड में भूल से कोई चूहा या बिल्ली घुस जाती है, तो फिर निकल नहीं पाती है। भटक जाती है और मर जाती है। पर पिरामिड के भीतर जब भी कोई प्राणी मर जाता है, तो सड़ता नहीं है। और सड़ता नहीं, इसलिए दुर्गन्ध नहीं आती। वह ममीफाइड हो जाता है, सूख जाता है, सड़ता नहीं है। यह हैरानी की घटना

है और बहुत अद्‌भुत है। पिरामिड के भीतर इसके होने का कोई कारण नहीं। और ऐसे पिरामिड के भीतर, जो कि समुद्र के किनारे है, जहाँ कि ह्यूमीडिटी काफी है, जहाँ कि कोई भी चीज सड़ना ही चाहिए, उस पिरामिड के भीतर भी कोई मर जाये तो सड़ता नहीं। मांस ले जाकर रख दिया जाये तो सूख जाता है, दुर्गन्ध नहीं देता। मछली डाल दी जाये तो सूख जाती है, सड़ती नहीं।

बहुत चकित हो गया वह। इसका तो कोई कारण नहीं दिखायी पड़ता है। बहुत खोजबीन की। आखिर यह ख्याल में आना शुरू हुआ कि शायद पिरामिड का जो 'शेप' है, वही कुछ कर रहा है। लेकिन भला आकार कुछ कर सकता है? तो उसने उस छोटा-सा पिरामिड का माडल बनाया। छोटा-सा तीन-चार फीट का बेस लेकर, और उसमें एक मरी हुई बिल्ली रख दी। वह चकित हुआ, वह ममीफाइड हो गयी, वह सड़ी नहीं। तब तो एक बहुत नये विज्ञान का जन्म हुआ और वह नया विज्ञान कहता है—ज्यामिति की जो आकृतियाँ हैं, उनका ऊर्जाओं से बहुत सम्बन्ध है। और अब बोविस की सलाह पर यह कोशिश की जा रही है कि सारी दुनिया के अस्पताल पिरामिड की शक्ल में बनाये जायें। उनमें मरीज जल्दी स्वस्थ होगा।

(६) सरदर्द है तो जोकर की टोपी लगाइए

आपने सर्कस के जोकर को, जो टोपी लगाये देखी है, वह 'फूल्स कैप' कहलाती है। और अभी बोविस ने प्रयोग किया है फूल्स कैप के ऊपर। उसका कहना है कि जिन लोगों को भी सिर दर्द होता है, वे पिरामिड के आकार की टोपी लगायें, तत्क्षण उनका सिरदर्द दूर हो सकता है। जिनको भी मानसिक विकार है, वे पिरामिड के आकार की टोपी लगायें उनके मानसिक विकार दूर हो सकते हैं। अनेक चिकित्सालयों में जहाँ मानसिक चिकित्सा की जाती है, बोविस की टोपी का प्रयोग किया जा रहा है और प्रमाणित हुआ है कि वह ठीक कहता है।

क्या टोपी के भीतर का आकार इतना भेद ला सकता है? और अगर बाह्य आकृतियाँ इतना भेद ला सकती हैं, तो आन्तरिक आकृतियों से कितना अन्तर पड़ सकेगा, वह मैं आपसे कहना चाहता हूँ। शरणागति आन्तरिक आकृति को बदलने की चेष्टा है, इनर, ज्योमेट्रिकल चेष्टा। जब आप खड़े होते हैं तो आपके भीतर की चित्त-आकृति और होती है और जब आप पृथ्वी पर

शरण में लेट जाते हैं तो आपके भीतर की चित्त-आकृति और होगी। चित्त में भी ज्योमेट्रिकल फिगर्स होते हैं। चित्त की विशेष आकृतियाँ हैं। आपके खड़े होने का ख्याल जमीन से नब्बे अंश का कोण बनाता है और जब आप जमीन पर लेट जाते हैं, तो आप जमीन से कोई कोण नहीं बनाते; पैरेलल, समानान्तर हो जाते हैं। अगर कोई परिपूर्ण भाव से कह सके कि मैं अरिहंत की शरण आता हूँ, सिद्ध की शरण आता हूँ, धर्म की शरण आता हूँ, तो यह भाव उसकी आन्तरिक आकृति को बदल देता है और आन्तरिक आकृति बदलते ही आपके जीवन में रूपान्तरण शुरू होता है। आपके अन्तर में आपकी चेतना भी रूप लेती है। आप जिस तरह का भाव करते हैं, चेतना उसी तरह का रूप लेती है।

(७) शून्य में टँगा हुआ एक आधुनिक त्रिशंकु

चार साल पहले पश्चिम के सारे वैज्ञानिक एक घटना से जितना धक्का खाये, उतना शायद पिछले २०० वर्षों में किसी घटना से नहीं खाये। विनित्री दोजनोव नाम का एक चेक किसान जमीन से चार फुट ऊपर उठ जाता है और दस मिनट तक जमीन से चार फुट ऊपर गुरुत्वाकर्षण के पार रुका रह जाता है। सैंकड़ों वैज्ञानिकों के समक्ष अनेकों बार यह प्रयोग विनित्री कर चुका है। सब तरह की जांच-पड़ताल कर ली गयी है कि कोई धोखा तो नहीं है, कोई तरकीब तो नहीं है।

विनित्री से पूछा जाता है कि तेरे इस उठने का राज़ क्या है, तो वह दो बातें करता है। वह कहता है एक राज तो मेरा समर्पण भाव है। मैं परमात्मा से कहता हूँ कि मैं तेरे हाथ में अपने को सौंपता हूँ, तेरी शरण आता हूँ। मैं अपनी ताकत से ऊपर नहीं उठता, उसकी ताकत से ऊपर उठता हूँ। जब तक मैं रहता हूँ, तब तक मैं ऊपर नहीं उठ पाता।

दो तीन बार उसके प्रयोग असफल भी गये। पसीना-पसीना हो गया। सोचिए, सैंकड़ों लोग दूर से देखने आये हैं, बहुत दूर-दूर से और वह ऊपर नहीं उठ पा रहा है। आखिर में उसने कहा कि क्षमा करें। लोगों ने कहा कि क्यों ऊपर नहीं उठ पा रहे?

उसने कहा—इसलिए कि मैं अपने को भूल नहीं पा रहा हूँ। और जब तक मुझे अपना जरा-सा ख्याल भी बना रहे, तब तक ग्रेविटेशन काम करता है, तब तक जमीन मुझे नीचे खींचे रहती है। जब मैं अपने को भूल जाता हूँ,

मुझे याद ही नहीं रहता कि मैं हूँ, ऐसा ही याद रह जाता है कि परमात्मा है तो तत्काल मैं ऊपर उठ जाता हूँ।

शरणागति का अर्थ ही समर्पण है। विनित्री जो कह रहा है, क्या परमात्मा पर छोड़ देने पर जीवन के साधारण नियम भी अपना काम करना छोड़ देते हैं ? जमीन अपनी कशिस छोड़ देती है ? अगर जमीन अपनी कशिस छोड़ देती है तो क्या आश्चर्य होगा कि जो व्यक्ति अरिहंत की शरण जाये तो सेक्स की कशिस उसके भीतर से छूट जाये, जीवन का सामान्य नियम छूट जाये, शरीर की जो मांग है, वह छूट जाये। क्या यह हो सकता है कि शरीर भोजन मांगना बन्द कर दे ? क्या यह हो सकता है कि शरीर बिना भोजन के वर्षों रह जाये ? क्यों नहीं, अगर जमीन कशिस छोड़ सकती है, अगर प्रकृति का एक नियम टूट सकता है, तो सब नियम टूट सकते हैं।

विनित्री फिर दूसरी बात यह कहता है कि जब मैं ऊपर उठ जाता हूँ, तब ऊपर उठ जाने के बाद जब तक मैं नीचे न आ जाऊँ, मेरे शरीर की जो आकृति होती है उसमें मैं जरा भी फर्क नहीं कर सकता। अगर मेरा हाथ घुटने पर रखा है, तो मैं उसे हिला नहीं सकता, उठा नहीं सकता। मेरा सिर जैसे है, फिर उसको मैं आड़ा-तिरछा नहीं कर सकता। मेरा शरीर उस आकृति में बिल्कुल बँध जाता है। और न केवल मेरा शरीर, बल्कि उसके भीतर चेतना भी उसी आकृति में बँध जाती है।

आपको ख्याल में नहीं होगा (क्योंकि हमारे पास ख्याल जैसी चीज ही नहीं बची है) आपके विचार में भी नहीं आया होगा कि सिद्धासन पिरामिड का ही आकृति पैदा करना है शरीर में। बुद्ध की, महावीर की सारी मूर्तियाँ जिस आसन में हैं, वह पिरामिडिकल है। जमीन पर दोनों पैर की बेस बड़ी हो जाती है और ऊपर सब छोटा होता जाता है। सिर पर शिखर हो जाता है। एक ट्राएंगल बन जाता है। उस अवस्था में ऐसे आसन को सिद्धासन कहा है। क्यों ? क्योंकि उस आसन में सरलता से प्रकृति के नियम अपना काम छोड़ देते हैं और प्रकृति के ऊपर जो परमात्मा के गहन सूक्ष्म नियम हैं, वे काम करना शुरू कर देते हैं। वह आकृति महत्वपूर्ण है। विनित्री कहता है कि जमीन से उठ जाने के बाद फिर मैं आकृति नहीं बदल सकता। कोई उपाय नहीं, मेरा कोई वश नहीं रह जाता है। जमीन पर लौटकर ही आकृति बदल सकता हूँ।

(८) शरणागति की ज्योमेट्री

शरणागति की अपनी आकृति है, अहंकार की अपनी आकृति है। अहंकार को आप जमीन पर लेटा हुआ सोच सकते हैं ? 'कंसीव' भी नहीं कर सकते। अहंकार को सदा खड़ा हुआ ही सोच सकते हैं। बैठा हुआ अहंकार, सोया हुआ अहंकार कोई अर्थ नहीं रखता। अहंकार सदा खड़ा हुआ होता हैं। शरण के भाव को आप खड़ा हुआ सोच सकते हैं ? शरण का भाव लेट जाने का भाव है, किसी विराटतर शक्ति के समक्ष अपने को छोड़ देने का भाव है। मैं नहीं तू—यह भावना इसमें गहरी है !

मैंने आपसे कहा है कि प्रकृति के नियम काम करना छोड़ देते हैं, अगर हम परमात्मा के नियम में अपने को समाविष्ट करने में समर्थ हो जायें। इस सम्बन्ध में कुछ बातें कहनी जरूरी हैं। महावीर के सम्बन्ध में कहा जाता है— २५०० साल में महावीर के पीछे चलनेवाला कोई भी व्यक्ति नहीं समझ पाया कि इसका राज़ क्या है कि महावीर ने १२ वर्षों में केवल ३६५ दिन भोजन किया। इसका अर्थ हुआ कि ११ वर्ष भोजन नहीं किया। कभी तीन महीने के बाद एक दिन किया, कभी महीने बाद एक दिन किया। बारह वर्ष के लम्बे समय में सब मिलाकर ३६५ दिन, कुल एक वर्ष भोजन किया। अनुपात अगर लें तो बारह दिन में एक दिन भोजना किया और ११ दिन भूखे रहे। लेकिन महावीर से ज्यादा स्वस्थ शरीर खोजना मुश्किल है, उतना शक्तिशाली शरीर खोजना मुश्किल है। बुद्ध या क्राइस्ट या कृष्ण या राम में से शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से महावीर के सामने कोई भी नहीं टिकता है। बहुत हैरानी की बात है कि १२ साल में यह आदमी कुल ३६५ दिन भोजन करता है। इसके शरीर को तो गिर जाना चाहिए कभी का। लेकिन क्या हुआ है कि शरीर गिरता नहीं ?

मैंने अभी नाम लिया राबर्ट पावलिता का। उसकी प्रयोगशाला में बहुत अनूठे प्रयोग किये जा रहे हैं। उनमें एक प्रयोग सम्मोहन के द्वारा भोजन हो जाने का भी है। जो व्यक्ति इस प्रयोगशाला में काम कर रहा है, उसने चकित कर दिया है। पावलिता की प्रयोगशाला में कुछ लोगों को दस-दस साल तक सम्मोहित किया गया है। वह दस साल तक सम्मोहन में रहेगी, उठेगी, बैठेगी, काम करेगी, खायेगी, पियेगी; लेकिन उसका सम्मोहन नहीं तोड़ा जायेगा। वह गहरी सम्मोहन की अवस्था बनी रहेगी। और कुछ लोगों ने

तो अपना पूरा जीवन सम्मोहन के लिए दे दिया है। जो पूरे जीवन के लिए सम्मोहित किये गये हैं, उनका सम्मोहन जीवन भर नहीं तोड़ा जायेगा। उनमें एक व्यक्ति है बरफिलाव। उसको तीन सप्ताह के लिए पिछले वर्ष सम्मोहित किया गया। और तीन सप्ताह पूरे समय उसे बेहोश सम्मोहित रखा गया। और उसे तीन सप्ताह में बार-बार सम्मोहन में झूठा भोजन दिया गया। जैसे उससे बेहोशी में कहा गया कि तुझे एक बगीचे में ले जाया जा रहा है, देख कितने सुगंधित फूल और कितने फल लगे हैं, सुगन्ध आ रही है? उस व्यक्ति ने जोर से श्वास खींची और कहा, अद्भुत सुगन्ध है। प्रतीत होता है सेव पक गये हैं। पावलिसा ने उन झूठे, काल्पनिक, फैन्टेसी के बगीचों से फल तोड़े। उस आदमी को दिये और कहा कि लो बहुत स्वादिष्ट हैं। उस आदमी ने शून्य में शून्य से लिये गये शून्य सेवों को खाया। कुछ था नहीं वहाँ, लेकिन स्वाद लिया, आनन्दित हुआ। १५ दिन तक उसे इसी तरह का भोजन दिया गया। असली पानी भी नहीं। झूठा पानी कहें, झूठा भोजन कहें। दस डाक्टर उसका अध्ययन करते थे। उन्होंने बताया कि रोज़ उसका शरीर और भी स्वस्थ होता चला गया। उसको जो शारीरिक तकलीफ थी, वह पाँच दिन के बाद विलीन हो गयी। उसका शरीर अपने मैक्जिमम स्वास्थ्य की हालत में आ गया। सातवें दिन के बाद शरीर की सामान्य क्रियाएं बन्द हो गयीं। पेशाब या पाखाना, मल-मूत्र विसर्जन सब विदा हो गया। क्योंकि उसके शरीर में से कुछ जाने को ही नहीं रह गया। तीन सप्ताह के बाद जो सबसे बड़े चमत्कार की बात थी, वह यह थी कि वह परिपूर्ण स्वस्थ होकर, अपनी बेहोशी के बाहर आया।

आप कल्पना भी नहीं कर सकते हैं कि उसका वजन बढ़ गया था। यह असंभव है। जो वैज्ञानिक वहां अध्ययन कर रहा था डा० रेजलिव, उसने कहा कि दिस इज साइन्टिफ़िकली इम्पासिबल। लेकिन इम्पासिबल हो या न हो, असंभव हो या न हो, फिर भी यह हुआ है। मैं मौजूद था। और दस रात और दस दिन पूरे वक्त पहरा था कि उस आदमी को कुछ खिला न दिया जाये, किसी तरकीब से उसको इंजेक्शन न लगा दिया जाये, कोई दवा न डाल दी जाये। कुछ भी उसके शरीर में नहीं डाला गया और वजन भी बढ़ गया। रेजलिव उस पर साल भर से काम कर रहा है। उसका कहना है कि मानना पड़ेगा कि देयर इज समथिंग लाइक ऐन अननोन एक्स-फोर्स। कोई है एक शक्ति अज्ञात, 'एक्स' नाम की, जो हमारी वैज्ञानिक रूप से जानी गयी किन्हीं शक्तियों में

समाविष्ट नहीं होती, वही काम कर रही है। उसे हम भारत में प्राण कहते रहे हैं।

इस प्रयोग के बाद महावीर को समझना आसान हो जायेगा। इसलिए मैं कहता हूँ कि जिन लोगों को भी उपवास करना हो, वे तथाकथित जैन साधुओं के उपवास के पागलपन में न पड़ें। उन्हें कुछ भी पता नहीं है। वे सिर्फ भूखे मरवा रहे हैं। अनशन को उपवास कह रहे हैं। उपवास की तो कोई और ही वैज्ञानिक प्रक्रिया है। और अगर उस भाँति प्रयोग किया जाये, तो वजन नहीं गिरेगा, वजन बढ़ भी सकता है। पर महावीर का वह सूत्र खो गया। सम्भव है वैज्ञानिक उस सूत्र को चेकोस्लोवाकिया में फिर से पैदा कर लें। लेकिन हम अभागे लोग हैं। हम धर्म की बातों और विवादों मे इतना समय नष्ट करते और करवाते हैं कि सार्थक को करने के लिए समय और सुविधा नहीं बच रहती और हम ऐसी बँधी हुई अन्धी गलियों में भटकते रहते हैं, जहाँ रोशनी की कोई किरण ही नहीं।

प्रकृति के नियम के बाहर जाने की महावीर की तरकीब क्या होगी ? क्योंकि महावीर तो सम्मोहित या बेहोश नहीं थे। पावलित का जो प्रयोग है वह तो एक बेहोश और सम्मोहित आदमी पर है। महावीर तो पूर्ण जाग्रत पुरुष थे। वे तो बेहोश नहीं थे। वे तो उन जाग्रत लोगों में से थे जो कि निद्रा में भी जाग्रत रहे, जो नींद में भी सोते नहीं, जिन्हें नींद में भी पूरा होश रहता है।

(९) सम्मोहन और महावीर का सूत्र

तो महावीर ने कैसे किया होगा ? महावीर का सूत्र क्या है ? असल में सम्मोहन में और महावीर के सूत्र में एक आंतरिक सम्बन्ध है। सम्मोहित व्यक्ति बेहोशी में विवश होकर समर्पित हो जाता है, उसका अहंकार खो जाता है। अपने जान में वह नहीं खोता, इसलिए उसे बेहोश करना पड़ता है, बेहोशी में खो जाता है। महावीर जानकर उस अस्मिता को, उस अहंकार को खो देते हैं और समर्पित हो जाते हैं। अगर आप होशपूर्वक भी, जागे हुए भी समर्पित हो सकें, कह सकें 'अरिहंत शरणम् पवज्जामि', तो आप उसी रहस्य लोक में प्रवेश कर जाते हैं जहाँ रेजलिव और पावलिता का प्रयोग करता है। केवल बेहोशी में प्रवेश कर पाते हैं। होश में आने पर तो उस आदमी को भी भरोसा नहीं रह जाता कि यह हो सकता है। बताये जाने पर उसने

कहा—कुछ-न-कुछ गड़बड़ हुई होगी। मैं नहीं मान सकता। होश में आने के बाद तो वह एक दिन भी बिना भोजन के नहीं रह सका। उसने कहा कि मैं मर जाऊँगा। अहंकार वापस आ गया। अहंकार अपने सुरक्षा-आयोजन को लेकर फिर खड़ा हो गया। उस आदमी को समझा रहा है डाक्टर कि नहीं मरेगा क्योंकि २१ दिन तक हम देख चुके, तेरा स्वास्थ्य और बढ़ा है। उस आदमी ने कहा कि मुझे कुछ पता नहीं, मुझे भोजन दें। उसका भय लौट आया।

ध्यान रहे, मनुष्य के चित्त में जब तक अहंकार है, तब तक भय होता है। भय और अहंकार एक ही ऊर्जा के नाम हैं। जो जितना भयभीत आदमी, उतना ही अहंकारी; जितना अहंकारी उतना ही भयभीत। यदि आप सोचते हों कि अहंकारी बहुत निर्भय होता है, तो आप गलती में हैं। अहंकारी अत्यंत भयातुर होता है। यद्यपि अपने भय को प्रकट न होने देने के लिए वह निर्भयता के कवच ओढ़े रहता है, तलवारें लिए रहता है हाथ में, एकदम सँभल कर रहता है। महावीर कहते हैं कि अभय तो वही हो सकता है, जो समर्पित है, शरणागत है, जिसने अपने को छोड़ा उसके भय का कोई कारण नहीं रहा।

(१०) शरणागति : ऊर्जा का खुला हुआ द्वार

यह सूत्र शरणागति का है। इस सूत्र के साथ नमोकार पूरा हो जाता है। नमस्कार से शुरू होकर वह शरणागति पर पूरा होता है और इस अर्थ में नमोकार पूरे धर्म की यात्रा बन जाता है।

शरणागति का पहला तो संबंध है आन्तरिक ज्यामिति से, जो आपके भीतर की चेतना की आकृति बदलती है। दूसरा सम्बन्ध है—आप प्रकृति के साधारण नियमों के बाहर चले जाते हैं, किसी गहन अर्थ में आप दिव्य हो जाते हैं, शरण में जाते हैं, तो आप अतिक्रमण कर जाते हैं, साधारण तथाकथित नियमों का, जो हम बाँधे हुए हैं। और तीसरी बात—शरणागति आपके जीवन द्वारों को परम ऊर्जा की तरफ खोल देती है। जैसे कि कोई अपनी आँख को सूरज की तरफ उठा ले। सूरज की तरफ पीठ करने की भी हमें स्वतंत्रता है। सूरज की तरफ पीठ करके भी हम खड़े हो सकते हैं, सूरज की तरफ मुंह करके भी आँख बन्द रख सकते हैं। सूरज का अनन्त प्रकाश बरसता रहेगा और हम वंचित रह जायेंगे। लेकिन एक आदमी सूरज की तरफ घूम जाता है, जैसे कि सूर्यमुखी का फूल घूम गया हो, आँख खोल लेता

समाविष्ट नहीं होती, वही काम कर रही है। उसे हम भारत में प्राण कहते रहे हैं।

इस प्रयोग के बाद महावीर को समझना आसान हो जायेगा। इसलिए मैं कहता हूँ कि जिन लोगों को भी उपवास करना हो, वे तथाकथित जैन साधुओं के उपवास के पागलपन में न पड़ें। उन्हें कुछ भी पता नहीं है। वे सिर्फ भूखे मरवा रहे हैं। अनशन को उपवास कह रहे हैं। उपवास की तो कोई और ही वैज्ञानिक प्रक्रिया है। और अगर उस भाँति प्रयोग किया जाये, तो वजन नहीं गिरेगा, वजन बढ़ भी सकता है। पर महावीर का वह सूत्र खो गया। सम्भव है वैज्ञानिक उस सूत्र को चेकोस्लोवाकिया में फिर से पैदा कर लें। लेकिन हम अभागे लोग हैं। हम धर्म की बातों और विवादों मे इतना समय नष्ट करते और करवाते हैं कि सार्थक को करने के लिए समय और सुविधा नहीं बच रहती और हम ऐसी बँधी हुई अन्धी गलियों में भटकते रहते हैं, जहाँ रोशनी की कोई किरण ही नहीं।

प्रकृति के नियम के बाहर जाने की महावीर की तरकीब क्या होगी? क्योंकि महावीर तो सम्मोहित या बेहोश नहीं थे। पावलित का जो प्रयोग है वह तो एक बेहोश और सम्मोहित आदमी पर है। महावीर तो पूर्ण जाग्रत पुरुष थे। वे तो बेहोश नहीं थे। वे तो उन जाग्रत लोगों में से थे जो कि निद्रा में भी जाग्रत रहे, जो नींद में भी सोते नहीं, जिन्हें नींद में भी पूरा होश रहता है।

(९) सम्मोहन और महावीर का सूत्र

तो महावीर ने कैसे किया होगा? महावीर का सूत्र क्या है? असल में सम्मोहन में और महावीर के सूत्र में एक आंतरिक सम्बन्ध है। सम्मोहित व्यक्ति बेहोशी में विवश होकर समर्पित हो जाता है, उसका अहंकार खो जाता है। अपने ज्ञान में वह नहीं खोता, इसलिए उसे बेहोश करना पड़ता है, बेहोशी में खो जाता है। महावीर जानकर उस अस्मिता को, उस अहंकार को खो देते हैं और समर्पित हो जाते हैं। अगर आप होशपूर्वक भी, जागे हुए भी समर्पित हो सकें, कह सकें 'अरिहंत शरणम् पवज्जामि', तो आप उसी रहस्य लोक में प्रवेश कर जाते हैं जहाँ रेजलिव और पावलिता का प्रयोग करता है। केवल बेहोशी में प्रवेश कर पाते हैं। होश में आने पर तो उस आदमी को भी भरोसा नहीं रह जाता कि यह हो सकता है। बताये जाने पर उसने

कहा—कुछ-न-कुछ गड़बड़ हुई होगी। मैं नहीं मान सकता। होश में आने के बाद तो वह एक दिन भी बिना भोजन के नहीं रह सका। उसने कहा कि मैं मर जाऊँगा। अहंकार वापस आ गया। अहंकार अपने सुरक्षा-आयोजन को लेकर फिर खड़ा हो गया। उस आदमी को समझा रहा है डाक्टर कि नहीं मरेगा क्योंकि २१ दिन तक हम देख चुके, तेरा स्वास्थ्य और बढ़ा है। उस आदमी ने कहा कि मुझे कुछ पता नहीं, मुझे भोजन दें। उसका भय लौट आया।

ध्यान रहे, मनुष्य के चित्त में जब तक अहंकार है, तब तक भय होता है। भय और अहंकार एक ही ऊर्जा के नाम हैं। जो जितना भयभीत आदमी, उतना ही अहंकारी; जितना अहंकारी उतना ही भयभीत। यदि आप सोचते हों कि अहंकारी बहुत निर्भय होता है, तो आप गलती में हैं। अहंकारी अत्यंत भयातुर होता है। यद्यपि अपने भय को प्रकट न होने देने के लिए वह निर्भयता के कवच ओढ़े रहता है, तलवारें लिए रहता है हाथ में, एकदम सँभल कर रहता है। महावीर कहते हैं कि अभय तो वही हो सकता है, जो समर्पित है, शरणागत है, जिसने अपने को छोड़ा उसके भय का कोई कारण नहीं रहा।

(१०) शरणागति : ऊर्जा का खुला हुआ द्वार

यह सूत्र शरणागति का है। इस सूत्र के साथ नमोकार पूरा हो जाता है। नमस्कार से शुरू होकर वह शरणागति पर पूरा होता है और इस अर्थ में नमोकार पूरे धर्म की यात्रा बन जाता है।

शरणागति का पहला तो संबंध है आन्तरिक ज्यामिति से, जो आपके भीतर की चेतना की आकृति बदलती है। दूसरा सम्बन्ध है—आप प्रकृति के साधारण नियमों के बाहर चले जाते हैं, किसी गहन अर्थ में आप दिव्य हो जाते हैं, शरण में जाते हैं, तो आप अतिक्रमण कर जाते हैं, साधारण तथाकथित नियमों का, जो हम बाँधे हुए हैं। और तीसरी बात—शरणागति आपके जीवन द्वारों को परम ऊर्जा की तरफ खोल देती है। जैसे कि कोई अपनी आँख को सूरज की तरफ उठा ले। सूरज की तरफ पीठ करने को भी हमें स्वतंत्रता है। सूरज की तरफ पीठ करके भी हम खड़े हो सकते हैं, सूरज की तरफ मुंह करके भी आँख बन्द रख सकते हैं। सूरज का अनन्त प्रकाश बरसता रहेगा और हम वंचित रह जायेंगे। लेकिन एक आदमी सूरज की तरफ घूम जाता है, जैसे कि सूर्यमुखी का फूल घूम गया हो, आँख खोल लेता

है, द्वार खुला छोड़ देता है, तो सूर्य का प्रकाश उसके रोवें-रोवें, रग-रग तक पहुँच जाता है। उसके हृदय के अन्धकारपूर्ण कक्षों तक भी प्रकाश की खबर पहुंच जाती है। वह नया और ताजा, पुनरुज्जीवित हो जाता है। ठीक ऐसे ही विश्व ऊर्जा के स्रोत हैं और इन विश्व ऊर्जा के स्रोतों की तरफ स्वयं को खोलना हो तो शरण में जाने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

(११) हमें अहंकारी पर दया आनी चाहिए

इसलिए अहंकारी व्यक्ति दीन से दीन व्यक्ति हैं, जिसने अपने को समस्त स्रोतों से तोड़ लिया है। जो सिर्फ अपने पर ही भरोसा कर रहा है। वह ऐसा फल है, जिसने जड़ों से अपने संबंध त्याग दिये, और जिसने सूरज की तरफ मुँह फेरने में अकड़ दिखायी। वर्षा आती है तो अपनी पंखुड़ियां बन्द कर लेता है। वह सड़ेगा। उसका जीवन सिर्फ सड़ने का एक क्रम होगा। उसका जीवन मरने की एक प्रक्रिया है होगी। उसका जीवन परम जीवन का मार्ग नहीं बनेगा। लेकिन रस पाता है फूल जड़ों से, सूर्य से, चाँद-तारों से। अगर फूल समर्पित है तो प्रफुल्लित हो जाता है। सब द्वारों से उसे रोशनी और प्रकाश, जीवन मिलता है।

शरणागति का जो तीसरा और गहनतम रूप है वह है प्रकाश अथवा जीवन ऊर्जा के जो परम स्रोत हैं, जो एनर्जी सोर्सेज हैं, उनकी तरफ अपने को खोलना। पावलिता का मैंने नाम लिया, इसके नाम से एक यंत्र वैज्ञानिक जगत् में प्रसिद्ध है। वह कहलाता है पावलिता जैनरेटर। बड़े छोटे-छोटे उसमें यंत्र बनाये गये हैं। बहुत संवेदनशील पदार्थों से बहुत छोटी-छोटी चीजें बनाई गयी हैं और अभूतपूर्व काम उन यंत्रों से पावलिता करवा रहा हैं। वह कहता है कि आप सिर्फ अपनी आँख उन यंत्रों पर गड़ाकर खड़े हो जायें पाँच क्षण के लिए; कुछ न करें, सिर्फ आँख गड़ाकर यंत्रों के सामने खड़े हो जायें, यंत्र आपकी शक्ति को संग्रहीत कर लेगा और तत्काल उस शक्ति का उपयोग किया जा सकता है। जो काम आपका मन कर सकता था, बहुत दूर तक वही काम अब वह यंत्र कर सकता है।

पांच मिनट पहले आप उस यंत्र को हाथ में उठाते, तो वह मुर्दा था। पाँच मिनट बाद उसको हाथ में उठायें, तो आपके हाथ में उस शक्ति का अनुभव होगा। आप जिसे प्रेम करते हैं पांच मिनट पहले अगर आपने वह यंत्र

उसके हाथ में दिया होता तो वह कहता या वह स्त्री कहती कि ठीक है एक यंत्र है। लेकिन पाँच मिनट आप उसे गौर से देखें और आपकी ऊर्जा उससे संयुक्त हो जाये, तब आप उस यंत्र को अपने प्रेमी के हाथ में दें, वह फौरन पहचानेगा कि आपकी प्रतिध्वनि उस यंत्र से आ रही है। अगर क्रोध और घृणा से भरा हुआ व्यक्ति उस यंत्र को देख ले, तो आप उसको हाथ से अलग करना चाहेंगे। अगर प्रेम, दया, सहानुभूति से भरा व्यक्ति देख ले, तो आप उसे संभाल कर रखना चाहेंगे।

(१२) भीड़ को भगाने का नया वैज्ञानिक यंत्र

पावलिता ने एक बहुत अद्भुत घोषणा की है। उसने कहा, बहुत-सी भीड़ों को छांटने के लिए गोली और लाठी की जरूरत न होगी। हम ऐसे यंत्र बना सकेंगे कि अगर १५ मिनट वहां भीड़ खड़ी कर दी जाये, तो लोग भाग जायेंगे। इतनी घृणा उनसे विकीर्णित की जा सकेगी। अभी तक उसने जो प्रयोग बताये हैं लोगों को करके, वे सफल हुए हैं। जब उसने नवीनतम जो यंत्र बनाया है, वह ऐसा है कि आपको देखने की भी जरूरत नहीं है। आप सिर्फ एक विशेष सीमा के भीतर उसके पास से गुजर जायें, वह आपको पकड़ लेगा।

(१३) बिना देख छूकर बताइए कि........

मैंने बताया है कि स्टालिन ने एक आदमी की हत्या करवा दी थी—कार्लआटोविच झीलिंग की १९३७ में। वह आदमी १९३७ में यही काम कर रहा था, जो पावलिता अब कर पाया है। बीस साल, तीस साल व्यर्थ पिछड़ गयी बात। झीलिंग अद्भुत व्यक्ति था। वह अंडों को हाथ में रखकर बता सकता था कि इस अंडे से मुर्गी पैदा होगी या मुर्गा, और इसमें उससे कभी कोई गलती नहीं हुई। पर यह तो बड़ी बात नहीं, क्योंकि अंडे में आखिर भीतर जो प्राण है, उसकी स्त्री और पुरुष की विद्युत् में फर्क है, उनके विद्युत् कम्पन में फर्क है। वह निगेटिव, पोजिटिव का फर्क है। तो अण्डे के ऊपर अगर संवेदनशील व्यक्ति हाथ न रखे तो ऊर्जा कण निकलते रहते हैं, उनसे वह बता सकता है। लेकिन झीलिंग ढँके हुए चित्र पर हाथ रखकर बता सकता था कि यह चित्र नीचे स्त्री का है कि पुरुष का। झीलिंग का कहना था कि जिसका चित्र लिया गया है उसके विद्युतकण उस चित्र में इतनी देर में समाविष्ट हो जाते

हैं जितनी देर में वह लिया जाता है। और इसलिए समाविष्ट हो जाते हैं कि जब किसी का चित्र लिया जाता है तो वह कैमरा कांसेस हो जाता है। उसका ध्यान कैमरे पर अटक जाता है और धारा प्रवाहित हो जाती है। पावलिता कह रहा है कि एक तरफ देखने से आपकी ऊर्जा चली जाती है। इसी तरह आपके चित्र में भी आपकी ऊर्जा चली जाती है। पर यह तो कुछ भी नहीं है। झोलिंग की जो सबसे अद्भुत बात थी वह यह है कि किसी आईने पर हाथ रख कर वह बता सकता था कि आखिरी जो व्यक्ति इस आईने के सामने से निकला, वह स्त्री थी या पुरुष। क्योंकि आईने के सामने भी आप मिरर कांसेस हो जाते हैं। आप आईने के सामने आते हैं तो जितने एकाग्र होते हैं शायद और कहीं होते। आपके बाथरूम में लगा आईना आपके संबंध में किसी दिन इतनी बातें कह सकेगा कि आपको अपना आईना बचाना पड़ेगा कि कोई ले न जाय उठाकर। वे सब रहस्य खुल जायेंगे जो आपने किसी को नहीं बताया। जो सिर्फ आपका बाथरूम और आपके बाथरूम का आईना जानता है। क्योंकि जितने ध्यानमग्न होकर आप आईने को देखते हैं शायद किसी चीज को नहीं देखते। इससे आपकी ऊर्जा प्रविष्ट हो गयी।

(१४) क्या सागर गंगोत्री की तरफ बह सकता है?

अगर आपकी ऊर्जा प्रविष्ट होती है ध्यानमग्न होने से, तो क्या इससे विपरीत नहीं हो सकता? वह विपरीत ही शरणागति का राज है। बहुत छोटे ऊर्जा के केन्द्र हैं आप। और अगर आपसे भी ऊर्जा प्रवाहित हो जाती है, तो क्या परम शक्ति के प्रति आप समर्पित होकर उसकी ऊर्जा को अपने में समाविष्ट नहीं कर सकते? ऊर्जा के प्रवाह हमेशा दोनों तरफ होते हैं। जो ऊर्जा आपसे बह सकती है, वह आपकी तरफ़ भी बह सकती है। और अगर गंगा सागर की तरफ बहती है तो क्या सागर गंगा की तरफ नहीं बह सकता? यह शरणागति सागर को गंगा की गंगोत्री की तरफ बहाने की प्रक्रिया है। हम सब तो बह-बह कर सागर में गिर ही जाते हैं लड़-लड़ कर बचने की कोशिश में। जीसस ने कहा है जो भी अपने को बचायेगा वह मिट जायेगा। और धन्य हैं वे जो अपने को मिटा देते हैं। क्योंकि उनको मिटाने की फिर किसी की सामर्थ्य नहीं है। गंगा तो लड़ती होगी, झगड़ती होगी सागर में गिरने के पहले (सभी झगड़ते और लड़ते हैं) भयभीत होती होगी कि मिटी जाती है। मौत से हमारा डर यही तो है। मौत का मतलब सागर के किनारे पहुंच गयी गंगा।

मरने से बचाने में लड़ते-लड़ते गिर जाते हैं। तब गिरने का जो मजा था, उससे भी चूक जाते हैं और पीड़ा भी पाते हैं। शरणागति कहती है लड़ो मत, गिर जाओ। और तुम पाओगे कि जिसकी शरण में तुम गिर गये हो, उससे तुमने कुछ खोया नहीं, पाया है कि सागर गंगोत्री की तरफ आया। वह जो अमृत का स्रोत है चारों तरफ, जीवन का रहस्य स्रोत है—अरिहंत, सिद्ध, साधु तो प्रतीक शब्द हैं। हमारे पास आकृति हैं उस अनन्त स्रोत की। परमात्मा निराकार में खड़ा है।)

(१५) जब हम भूलें तलाशने लगते हैं

लेकिन आकार में भी परमात्मा की छवि बहुत बार दिखायी पड़ती है। कभी किसी महावीर में, कभी किसी बुद्ध में, कभी किसी क्राइस्ट में, उस परमात्मा की, उस निराकार की छवि दिखायी पड़ती है। लेकिन हम उस निराकार को तब भी चूकते हैं, क्योंकि हम आकृति में कोई भूल निकाल लेते हैं। कहते हैं—जीसस की आकृति थोड़ी कम लम्बी है, यह परमात्मा की नहीं हो सकती। महावीर को तो बीमारी पकड़ती है, ये परमात्मा कैसे हो सकते हैं? बुद्ध भी तो मर जाते हैं, ये परमात्मा कैसे हो सकते हैं? आपको ख्याल नहीं कि ये आप आकृति की भूलें निकाल रहे हैं। और आकृति के बीच जो मौजूद था, उससे चूके जा रहे हैं। आप वैसे आदमी हैं कि जो कि दीये की मिट्टी की भूलें निकाल रहे हैं, तेल की भूलें निकाल रहे हैं और वह जो ज्योति चमक रही है उससे चूके जा रहे हैं। होगी दिये में भूल, नहीं बना होगा पूरी तरह सुघर, पर प्रयोजन क्या है? वह जो ज्योति काफी सुघड़ बीच में जल रही है, वह जो निराकार स्रोतरहित ज्योति है, वह मुख्य है। पर उसे देखना कठिन है। यद्यपि उसे भी देखा जा सकता है, लेकिन अभी तो प्रारंभिक चरण में उसे अरिहंत में, सिद्ध में, साधु में, उसे जाने हुए लोगों के द्वारा कहे गये धर्म में देखने की कोशिश करनी चाहिए। लेकिन हम ऐसे लोग हैं कि अगर कृष्ण बोल रहे हों तो हम यह फिक्र कम करेंगे कि उन्होंने क्या कहा। हम इसकी फिक्र करेंगे कि कोई व्याकरण की भूल तो नहीं थी।

हम ऐसे लोग हैं। हम जिद्द किये बैठे हैं चूकने की। हम चूकते ही चले जायेंगे। असल में जिनको हम बुद्धिमान कहते हैं उनसे ज्यादा बुद्धिहीन खोजना मुश्किल है, क्योंकि वे चूकने में सर्वाधिक कुशल होते हैं। वे महावीर के पास जाते हैं तो कहते हैं कि सब लक्षण पूरे हुए कि नहीं? पहला लक्षण जो शास्त्र

आपको शरण जाना है तो एक पत्थर की मूर्ति में आप कारण खोज सकते हैं कि शरण में जाने योग्य है। और मजा यह है कि शरण में जायें, तो पत्थर की मूर्ति भी आपके लिए उसी परम स्रोत का द्वार खोल देगी। और शरण न जायें तो खुद महावीर सामने खड़े रहें, तो भी द्वार बन्द रहेगा। धार्मिक आदमी मैं उसे कहता हूँ कि जो कहीं भी शरण में जाने का कारण खोजता ही रहता है। जहाँ भी उसे लगता है कि यहाँ शरण जाने योग्य है, जहां भी मौका मिलता है, वह अपने को छोड़ता और तोड़ता और मिटाता है, बचाता नहीं। एक दिन निश्चित ही उसकी गंगोत्री में सागर गिरना शुरू हो जाता है। और जिस दिन सागर गिरता है, उसी दिन उसे पता चलता है कि शरणागति का पूरा रहस्य क्या था ! इसकी पूरी कीलियाँ, इसका पूरा चमत्कार क्या था !

(१७) शरणागति तो तब होती है

एक बात आखिरी है कि अगर जीसस सूली पर चमत्कार दिखा दें और तब आप शरण में जायें तो, ध्यान रखना, वह शरणागति नहीं है। अगर बुद्ध किसी मुर्दे को जिन्दा कर दें और तब आप उनकी शरण पकड़ लें तो समझ लेना कि वह शरणागति नहीं है। क्योंकि उसमें कारण बुद्ध हैं, कारण आप नहीं हैं। वह सिर्फ चमत्कार को नमस्कार है। उसमें कोई शरणागति नहीं है। शरणागति तो तब है, जब कारण आप हों, बुद्ध नहीं। इस फर्क को ठीक से समझ लें, नहीं तो सूत्र का राज चूक जायेगा। शरणागति तो तब होती है, जब आप शरण गये हैं। और शरणागति उसी मात्रा में गहन होती है, जिस मात्रा में शरणागति जाने का कोई कारण नहीं होता। अगर कारण होता है, तो वह तो बारगेन हो जाता है, सौदा हो जाता है, शरणागति नहीं रह जाती। अगर बुद्ध मुर्दे को उठा रहे हैं, तो उसे नमस्कार तो करना ही पड़ेगा। लेकिन इसमें आपकी खूबी नहीं है, इसमें तो कोई भी नमस्कार कर लेगा। इसमें अगर कोई खूबी है तो बुद्ध की है। आपका उसमें कुछ भी नहीं है। खूबी आपकी होनी शुरू हो जाती है, अगर शरण अकारण हो। जितनी ही वह अकारण होगी, शरण की भावना उतनी गहरी होगी। जितनी सकारण होगी, उतनी उथली हो जाती है शरण। जब कारण बिल्कुल साफ होते हैं, तो बिल्कुल तर्कयुक्त हो जाते हैं। उसमें कोई छलांग नहीं रह जाती। और जब बिल्कुल कारण नहीं होता, तभी छलांग घटित होती है।

तरतोलियन एक ईसाई फकीर ने कहा कि मैं परमात्मा को मानता हूँ, क्योंकि उसके मानने का कोई भी कारण नहीं है, कोई प्रमाण नहीं है, कोई तर्क

नहीं है। अगर तर्क होता, प्रमाण होता, कारण होता, तो जैसे आप कमरे में रखी कुर्सी को मानते हैं, उससे ज्यादा मूल्य परमात्मा का भी नहीं होता। मार्क्स मजाक में कहा करता था कि मैं तब तक परमात्मा को नहीं मानूंगा, जब तक प्रयोगशाला में टेस्ट ट्यूब में उसे पकड़कर सिद्ध करने पर कोई प्रमाण न मिल जाये। अब प्रयोगशाला में उसकी जांच-परख कर लेंगे, थर्मामीटर लगाकर सब तरफ से नाप तौल कर लेंगे, मैजरमेण्ट ले लेंगे, तराजू पर रख कर तौल लेंगे, एक्सरे से बाहर-भीतर सब उसको देख लेंगे, तब मैं मानूंगा। लेकिन ध्यान रखना, अगर हम परमात्मा के साथ यह सब कर सके, तो एक बात तय है कि वह परमात्मा नहीं रह जायेगा, वह एक साधारण वस्तु हो जायेगा। क्योंकि वस्तु का तो पूरा प्रमाण है।

लेकिन इससे क्या होगा ? महावीर के सामने खड़े हों तो, शरीर तो पूरी तरह होता है, दिखायी पड़ रहा होता है, पूरे प्रमाण होते हैं, लेकिन वह जो भीतर जलती ज्योति है, वह तो दिखायी नहीं पड़ती। उसमें तो आपको छलांग लगानी पड़ती है, तर्क के बाहर, कारण के बाहर। और जिस मात्रा में वह आपको नहीं दिखायी पड़ती है और छलांग लगाने की आप सामर्थ्य जुटाते हैं, उसी मात्रा में आप शरण जाते हैं। अन्यथा सौदे में जाते हैं। एक आदमी आपके बीच आकर खड़ा हो जाय, मुर्दों को जिला दे, कोई बीमार हो तो ठीक कर दे, इशारों से घटनाएँ घटने लगें तो आप सब उसके पैरों पर गिर जायेंगे। लेकिन वह शरणागति नहीं है। परन्तु जब महावीर जैसा आदमी खड़ा हो जाता है, जिसमें कोई चमत्कार नहीं है, कुछ भी ऐसा नहीं है कि आप ध्यान दें, कुछ भी ऐसा नहीं है जिससे आपको तत्काल लाभ दिखायी पड़े, कुछ भी ऐसा नहीं जो आपके सिर पर पत्थर की चोट जैसा प्रमाण बन जाये, और आप शरण चले जाते हैं, तो आपके भीतर क्रान्ति घटित होती है। आप अहंकार से नीचे गिरते हैं। सब तर्क, सब प्रमाण, सब चलाकी की बातें अहंकार के ईर्द-गिर्द हैं, अतवर्य विचार के बाहर छलांग अकारण समर्पण के ईर्द-गीर्द है।

(१८) चरण तो बहाना है

बुद्ध के पास एक युवक आया था। चरणों में उनके गिर गया। बुद्ध ने उससे पूछा कि मेरे चरण में क्यों गिरते हो ?

उस युवक ने कहा, इस गिरने में बड़ा राज है। आपके चरण में नहीं गिरता, आपके चरण तो मात्र बहाना है; मैं गिरता हूँ, क्योंकि खड़े रहकर बहुत देख लिया और सिवाय पीड़ा के और दुःख के कुछ भी नहीं पाया।

बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा कि भिक्षु, देखो! अगर तुम मुझे मानते हो कि मैं भगवान् हूँ और तब मेरे शरण में गिरते हो तो तुम्हें उतना लाभ न होगा, जितना लाभ यह युवक मुझे बिना भगवान् माने उठाये लिये जा रहा है। यह कह रहा है कि मैं गिरता हूँ, क्योंकि गिरने का बड़ा आनन्द है। और अभी मेरी इतनी सामर्थ्य नहीं है कि शून्य में गिर पाऊँ इसलिये मैंने आपको निमित्त बना लिया है। किसी दिन जब मेरी सामर्थ्य आ जायेगी तब मैं शून्य में गिर पाऊँगा, उन चरणों में जो दिखायी भी नहीं पड़ते, उन चरणों में जिन्हें छुआ भी नहीं जा सकता, फिर भी वे चरण चारों तरफ मौजूद हैं, तब मैं उस काज-मिक, विराट अस्तित्व के निराकार में सीधा ही गिर पाऊँगा। पर अभी जरा मुझे गिरने का आनन्द ले लेने दें। अगर इन दिखायी पड़ते हुए चरणों में इतना आनन्द है, उसका मुझे थोड़ा स्वाद आ जाने दें, तो फिर मैं उस विराट में भी गिर पाऊँगा। इसलिए बुद्ध का जो सूत्र है—'बुद्धम् शरणम् गच्छामि'—वह बुद्ध से शुरू होता है। व्यक्तियों से। फिर 'संघम् शरणम् गच्छामि' यानी समूह पर चढ़ता है। संघ का अर्थ है उन सब साधुओं की शरण में, उन सब साधुओं के चरणों में। और फिर धर्म पर—'धम्मम् शरणम् गच्छामि'। फिर वह समूह से भी हट जाता है। फिर वह सिर्फ स्वभाव में, निराकार में खो जाता है। वहीं आता है कि अरिहंत की शरण में गिरता हूँ, स्वीकार करता हूँ अरिहंत की शरण, सिद्ध की शरण स्वीकार करता हूँ, साधु की शरण स्वीकार करता हूँ। और अन्त में—केवलिपन्नत्तं धम्मम् सरणम् पवज्जामि, धर्म की, जाने हुए लोगों के द्वारा बताये गये ज्ञान की शरण स्वीकार करता हूँ। सारी बात इतनी है कि अपने को अस्वीकार करता हूँ। और जो अपने को अस्वीकार करता है, वह स्वयं को पा लेता है। और जो स्वयं को ही पकड़ कर बैठा रहता है वह सब तो खो देता है, अन्त में स्वयं को भी नहीं पाता। स्वयं को पाने की यह प्रक्रिया बड़ी पैराडाक्सिकल, बड़ी विपरीत दिखायी पड़ेगी। स्वयं को पाना हो तो स्वयं को छोड़ना पड़ता है। और स्वयं को मिटाना हो, तो स्वयं को खूब जोर से पकड़े रखना पड़ता है।

दो सूत्र अब तक विकसित हुए हैं, जैसा मैंने कहा है, एक सिद्ध की तरफ से कि मेरी शरण आ जाओ। दूसरा साधक की तरफ से कि मैं तुम्हारी

शरण आता हूँ। तीसरा कोई सूत्र नहीं है। लेकिन हम तीसरे की तरफ बढ़ रहे हैं। और इस बढ़ने में हमारे कदम जीवन में जो भी शुभ है, जीवन में जो भी सुन्दर है, जीवन में जो भी सत्य है उसे खोने की तरफ बढ़ रहे हैं। समर्पण यानी श्रद्धा, समर्पण यानी शरणागति, समर्पण यानी अहंकार विसर्जनम्। नमोकार इस पर पूरा होता है।

अब आगे हम महावीर की वाणी में प्रवेश करेंगे। लेकिन वे ही प्रवेश कर पायेंगे उसमें, जो अपने भीतर शरण की आकृति निर्मित कर पायेंगे। २४ घंटे के लिए प्रयोग करना। जब भी ख्याल आये तो मन में कहना—अरिहंते सरणम् पवज्जामि, सिद्धे सरणम् पवज्जामि, साहू सरणम् पवज्जामि, केवलिपन्नत्तं धम्मं सरणम् पवज्जामि। इसे दोहराते रहना २४ घंटे। रात सोते समय इसे दोहराकर सो जाना। रात नींद टूट जाये तो फिर दोहरा लेना। सुबह नींद खुले तो पहले इसे दोहरा लेना। महावीर वाणी पर प्रवेश के लिए आते वक्त इसे दोहराना। अगर शरण की आकृति भीतर बन जाये, तो महावीर की वाणी में हम किसी और ढंग से प्रवेश कर सकेंगे, जैसा २५०० वर्ष में सम्भव नहीं हुआ है।



चौथा प्रवचन

पर्युषण व्याख्यान-माला, बम्बई, दिनांक २१ अगस्त, १६७१

धर्म : अहिंसा और अनुपस्थित हो जाने के आयाम

धम्मो मंगलमुक्किट्ठम्, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति, जस्स धम्मे सया मणो॥

अर्थ :—

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन-सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तप-रूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

(१) मनुष्य की पीड़ा क्या है ?

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। तो अमंगल क्या है, दुःख क्या है, मनुष्य की पीड़ा और सन्ताप क्या है ? इसे यदि यों न समझेंगे तो—धर्म मंगल है, शुभ है, आनन्द है—यह समझना आसान नहीं होगा। महावीर कहते हैं धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। जीवन में जो भी आनन्द की सम्भावना है वह धर्म के द्वार से ही प्रवेश करती है। जीवन में जो भी स्वतंत्रता उपलब्ध होती है वह धर्म के आकाश से ही उपलब्ध होती है। जीवन में जो भी सौन्दर्य के फूल खिलते हैं, वे धर्म की जड़ों में ही पोषित होते हैं। और जीवन में जो भी दुःख है वह किसी न किसी रूप में धर्म से च्युत हो जाने में या अधर्म में संलग्न हो जाने में है। महावीर की दृष्टि में धर्म का अर्थ है जो मैं हूँ। उस होने में ही जीना, जो मैं हूँ उससे जरा भी च्युत न होना ही धर्म है।

जो मेरा अस्तित्व है उससे जहाँ मैं बाहर जाता हूँ, सीमा का उल्लंघन करता हूँ, जहाँ मैं विजातीय से सम्बन्धित होता हूँ, जहाँ मैं उससे संबंधित होता हूँ जो मैं नहीं हूँ, वहीं दुःख का प्रारंभ हो जाता है। और दुःख का प्रारंभ इसलिए हो जाता है, क्योंकि जो मैं नहीं हूँ, उसे मैं कितना ही चाहूँ तब भी वह मेरा नहीं हो सकता। जो मैं नहीं हूँ उसे मैं कितना ही बचाना चाहूँ, उसे मैं बचा नहीं सकता। वह खोयेगा ही। जो मैं नहीं हूँ उस पर मैं कितना ही श्रम और मेहनत करूँ, अन्ततः मैं पाऊँगा कि वह मेरा नहीं सिद्ध हुआ। श्रम हाथ लगेगा, चिन्ता हाथ लगेगी, जीवन का अपव्यय होगा और अन्त में मैं पाऊँगा कि मैं खाली का खाली रह गया हूँ। मैं केवल उसे ही पा सकता हूँ, जिसे मैंने किसी गहरे अर्थ में सदा से पाया हुआ है। मैं केवल उसका ही

(१) मनुष्य की पीड़ा क्या है ?

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। तो अमंगल क्या है, दुःख क्या है, मनुष्य की पीड़ा और सन्ताप क्या है ? इसे यदि यों न समझेंगे तो—धर्म मंगल है, शुभ है, आनन्द है—यह समझना आसान नहीं होगा। महावीर कहते हैं धर्म सर्व श्रेष्ठ मंगल है। जीवन में जो भी आनन्द की सम्भावना है वह धर्म के द्वार से ही प्रवेश करती है। जीवन में जो भी स्वतंत्रता उपलब्ध होती है वह धर्म के आकाश से ही उपलब्ध होती है। जीवन में जो भी सौन्दर्य के फूल खिलते हैं, वे धर्म की जड़ों में ही पोषित होते हैं। और जीवन में जो भी दुःख है वह किसी न किसी रूप में धर्म से च्युत हो जाने में या अधर्म में संलग्न हो जाने में है। महावीर की दृष्टि में धर्म का अर्थ है जो मैं हूँ। उस होने में ही जीना, जो मैं हूँ उससे जरा भी च्युत न होना ही धर्म है।

जो मेरा अस्तित्व है उससे जहाँ मैं बाहर जाता हूँ, सीमा का उल्लंघन करता हूँ, जहाँ मैं विजातीय से सम्बन्धित होता हूँ, जहाँ मैं उससे संबंधित होता हूँ जो मैं नहीं हूँ, वहीं दुःख का प्रारंभ हो जाता है। और दुःख का प्रारंभ इसलिए हो जाता है, क्योंकि जो मैं नहीं हूँ, उसे मैं कितना ही चाहूँ तब भी वह मेरा नहीं हो सकता। जो मैं नहीं हूँ उसे मैं कितना ही बचाना चाहूँ, उसे मैं बचा नहीं सकता। वह खोयेगा ही। जो मैं नहीं हूँ उस पर मैं कितना ही श्रम और मेहनत करूँ, अन्ततः मैं पाऊँगा कि वह मेरा नहीं सिद्ध हुआ। श्रम हाथ लगेगा, चिन्ता हाथ लगेगी, जीवन का अपव्यय होगा और अन्त में मैं पाऊँगा कि मैं खाली का खाली रह गया हूँ। मैं केवल उसे ही पा सकता हूँ, जिसे मैंने किसी गहरे अर्थ में सदा से पाया हुआ है। मैं केवल उसका ही

मालिक हो सकता हूँ, जिसका मैं जाने न जाने अभी भी मालिक हूँ। मृत्यु जिसे मुझसे नहीं छीन सकेगी, वही केवल मेरा है। देह मेरी गिर जायेगी, फिर भी जो न गिरेगा, वही केवल मेरा है। रुग्ण हो जायेगा सब कुछ, दीन हो जायेगा सब कुछ, नष्ट हो जायेगा सब कुछ, फिर भी जो नहीं विलीन होगा, वही मेरा है। गहन अन्धकार छा जाये, अमावस आ जाये जीवन में चारों तरफ, फिर भी जो अन्धेरा नहीं होगा, वही मेरा प्रकाश है। लेकिन हम सब, जो 'मैं नहीं हूँ' उसी में खोजते हैं स्वयं को। वहीं से विफलता, वहीं से फ्रस्ट्रेशन, वहीं से विषाद जन्मता है। जो भी हम चाहते हैं वह स्वयं को छोड़कर सब चाहते हैं, यह हैरानी की बात है। इस जगत् में बहुत कम लोग हैं जो स्वयं को चाहते हैं। शायद आपने इस भाँति नहीं सोचा होगा कि आपने स्वयं को कभी नहीं चाहा, सदा किसी और को चाहा।

(२) स्वयं की पहचान है कि नहीं

वह 'और कोई' व्यक्ति हो सकता है, वस्तु भी हो सकती है, कोई पद भी हो सकता है, कोई स्थिति भी हो सकती है; लेकिन सदा कोई और है, अन्य है—दि अदर। स्वयं को होने की किसी ने भी कभी नहीं चाहा। लगता है जगत् में केवल एक ही संभावना है कि हम स्वयं को पा सकते हैं और कुछ पा नहीं सकते। सिर्फ दौड़ सकते हैं। उससे दुःख आयेगा, उससे डिसइल्यूजनमेन्ट होगा, कहीं न कहीं भ्रम टूटेगा और तास के पत्तों का घर गिर जायेगा। कहीं न कहीं नाव डूबेगी, क्योंकि वह कागज की थी। कहीं न कहीं हमारे स्वप्न बिखरेंगे और आंसू बन जायेंगे। क्यों? क्योंकि वे स्वप्न थे। सत्य केवल एक है और वह यह कि मैं स्वयं के अतिरिक्त इस जगत् में और कुछ भी नहीं पा सकता हूँ। हाँ, पाने की कोशिश कर सकता हूँ, पाने का श्रम कर सकता हूँ, पाने की आशा बाँध सकता हूँ, पाने के स्वप्न देख सकता हूँ। और कभी-कभी ऐसा भी अपने को भरमा सकता हूँ कि पाने के बिल्कुल करीब पहुँच गया हूँ। लेकिन कभी पहुँचा नहीं। कभी पहुँच ही नहीं सकता हूँ। अधर्म का अर्थ है स्वयं को छोड़कर और कुछ भी पाने का प्रयास। अधर्म का अर्थ है स्वयं को छोड़कर 'परे' पर दृष्टि। और हम सब 'दि अदर ओरिएन्टेड' हैं। हमारी दृष्टि सदा दूसरे पर लगी है। यहाँ तक कि कभी अगर हम अपनी शक्ल भी देखते हैं तो वह भी दूसरे के लिए। अगर आईने के सामने खड़े होकर अपने को देखते हैं तो यह भी किसी के लिए है; कोई जो हमें देखेगा।

स्वयं को हम सीधा कभी नहीं चाहते। और धर्म तो स्वयं को सीधा चाहने से उत्पन्न होता है, क्योंकि धर्म का अर्थ है स्वभाव, दि अल्टीमेट नेचर। वह जो अन्ततः, अन्ततोगत्वा मेरा होना है, जो मैं हूँ।

(३) 'दि अदर इज़ हेल'

सार्त्र ने बहुत कीमती सूत्र कहा है। कहा है :—दि अदर इज हेल। वह जो दूसरा है, वही नर्क हैं हमारा। सार्त्र ने किसी और अर्थ में कहा है। लेकिन महावीर भी किसी और अर्थ में राजी हैं। वे भी कहते हैं कि दि अदर इज हेल, बट दि इम्फेसिस इज नॉट आन दि अदर इज हेल, बट आन वनसेल्फ ऐज़ दि हेवेन। दूसरा नर्क है, सीधे यह महावीर नहीं कहते हैं क्योंकि इतना कहने में भी दूसरे को चाहने की आकांक्षा और फिर विफलता छिपी है। सार्त्र के इस वचन को थोड़ा समझ लें। सार्त्र का जोर है यह कहने में कि दूसरा नर्क है। लेकिन दूसरा नर्क क्यों मालूम पड़ता है, यह शायद सार्त्र ने नहीं सोचा। दूसरा नर्क इसीलिए मालूम पड़ता हैं, क्योंकि हमने दूसरे को स्वर्ग मानकर खोज की। हम दूसरे के पीछे गये, जैसे कि वहाँ स्वर्ग है। वह चाहे पति हो, चाहे पत्नी, चाहे बेटा हो, चाहे बेटी, चाहे मित्र, चाहे धन, चाहे यश, कुछ भी हो दूसरा, वह सब, जो मुझसे अन्य हैं। सार्त्र कहता है कि दूसरा नर्क है, क्योंकि दूसरों में स्वर्ग खोजने की कोशिश की गयी है। और जब स्वर्ग नहीं मिलता, तो नर्क मालूम पड़ता है। महावीर नहीं कहते कि दूसरे नर्क हैं। महावीर कहते हैं कि धम्मो मंगल मुक्किट्ठम्—धर्म मंगल है। धर्म अमंगल है, ऐसा नहीं कहते हैं, दूसरा नर्क है ऐसा भी नहीं कहते हैं। असल में स्वयं का होना मुक्ति है, मोक्ष है, मंगल है, श्रेयस्कर है।

इन दोनों में फर्क है। इसमें फर्क यह है कि दूसरे नर्क हैं यह जानना दूसरे में स्वर्ग को मानने से दिखाई पड़ता है। अगर मैंने दूसरे से कभी सुख नहीं चाहा, तो मुझे दूसरे से कभी दुःख नहीं मिल सकता। हमारी अपेक्षाएं ही दुःख बनती हैं। 'ऐक्सपेक्टेशन इज़ इल्यूज़न'। अपेक्षाओं का भ्रम जब टूटता है, तो विपरीत हाथ लगता है। यानी 'दूसरा' नर्क है नहीं। इसलिए अगर महावीर को ठीक समझें, तो सार्त्र से इतना कहना पड़ेगा कि दूसरा नर्क नहीं है। तुमने चूंकि दूसरे को स्वर्ग माना। इसलिए दूसरा नर्क हो जाता है। लेकिन तुम तो स्वयं स्वर्ग हो।

और स्वयं को स्वर्ग मानने की जरूरत नहीं है। स्वयं का स्वर्ग होना स्वभाव है। दूसरे को स्वर्ग मानना पड़ता है और इसीलिए फिर दूसरे को नर्क भी मानना ही पड़ता है। यह हमारे में ही भाव हैं। जैसे कोई रेत से तेल निकालने में लग गया हो, तो इसमें रेत का तो कोई कसूर नहीं है। जैसे कोई दीवाल को दरवाजा मानकर निकलने की कोशिश करने लगे तो दीवाल का तो कोई दोष नहीं है। और अगर दीवाल दरवाजा न सिद्ध हो और सिर टूट जाये, आप लहूलुहान हो जायें, तो क्या आप नाराज होंगे? और कहेंगे कि दीवाल दुष्ट है? सार्त्र यही कह रहा है। वह कह रहा है दूसरा नर्क है। इसमें दूसरों का कन्डेमनेशन है, इसमें दूसरे की निन्दा और दूसरे पर क्रोध छिपा है।

महावीर यह नहीं कहते। महावीर का वक्तव्य बहुत पाजिटिव है। महावीर कहते है धर्म मंगल है, स्वभाव मंगल है, स्वयं का होना मोक्ष है और स्वयं को मानने की जरूरत नही है कि मोक्ष है। ध्यान रहे, मानना हमें वहीं पड़ता है जहाँ नहीं होता। समझना हमें वहीं पड़ता है जहाँ नहीं होता। कल्पनाएँ हमें वहीं करनी होती हैं, जहाँ कि सत्य कुछ और है। स्वयं को सत्य या स्वयं को धर्म या स्वयं को आनन्द मानने की जरूरत नहीं हैं। स्वयं का होना आनन्द है। लेकिन हम जो दूसरे पर दृष्टि को बांधे जीते हैं, तो हमें यह पता भी कैसे चले कि स्वयं कहाँ है। हमें वही पता चलता है, जहाँ हमारा ध्यान होता है; ध्यान की धारा, ध्यान का फोकस, ध्यान की रोशनी जहां पड़ती है वही प्रकट होता है। दूसरे की ओर हम दौड़ते हैं, दूसरे पर ध्यान की रोशनी पड़ती है तो नर्क प्रकट होता है। स्वयं पर ध्यान की रोशनी पड़े तो स्वर्ग प्रकट हो जाता हैं। दूसरा हमें मानना पड़ता है, और इसीलिए एक दिन भ्रम टूटता है टूटता ही है। कोई कितनी देर भ्रम को खींच सकता है, यह उसकी अपने भ्रम को खींचने की क्षमता पर निर्भर है। बुद्धिमान का क्षण भर में टूट जाता हैं, बुद्धिहीन देर लगा देता है। और एक से छूटता है भ्रम हमारा, तो तत्काल हम दूसरे की तलाश में लग जाते हैं। जन्मों-जन्मों तक यही पुनरुक्ति होती है। स्वयं में है मोक्ष—यह तब दिखायी पड़ना शुरू होता है, जब ध्यान की धारा दूसरे से हट जाती है और स्वयं पर लौट आती है। धर्म मंगल है—यह जानना हो तो जहां-जहां अमंगल दिखायी पड़े, वहाँ से विपरीत की ओर ध्यान को ले जाना। दि अपोजिट इज़ दि डाइरेक्शन, वही जो विपरीत है। धन में अगर नहीं दिखाई पड़े, मित्र में अगर न दिखायी पड़े, पति-

पत्नी में अगर न दिखायी पड़े, बाहर अगर दिखायी नहीं पड़े दूसरे में, अगर दिखायी नहीं पड़े, तो सबस्टीट्यूट खोजने में मत लग जाना कि इस पत्नी में नहीं मिलता है तो दूसरी पत्नी में मिल सकेगा, इस मकान में नहीं बनता है स्वर्ग, तो दूसरे मकान में बन सकेगा, इस वस्त्र में नहीं मिलता तो दूसरे वस्त्र में मिल सकेगा, इस पद पर नहीं मिलता, तो थोड़ी और दो सीढ़ियाँ चढ़कर मिल सकेगा। वह एक सब्स्टीट्यूट है।

(४) एक डूबती हुई नाव से दूसरी पर

यदि एक कागज की नाव कहीं डूबती नहीं, तो हम दूसरी कागज की नाव पर सवार होने की तैयारी करने लगते हैं, बिना यह सोचे हुए कि जो धर्म का खण्डन हुआ है वह इस नाव से नहीं हुआ, वह कागज की नाव से हुआ है। वह इस पत्नी से नहीं हुआ, वह पत्नी मात्र से हो गया है। वह इस पुरुष से नहीं हुआ, वह पुरुष मात्र से हो गया है। वह इस घर से नहीं हुआ, वह घर मात्र से हो गया है। महावीर की घोषणा कि धर्म मंगल है, कोई हाइपोथिटिक, कोई परिकल्पनात्मक सिद्धान्त नहीं है, और न ही यह घोषणा कोई फिलॉसफिक, कोई दार्शनिक वक्तव्य है। महावीर कोई दार्शनिक नहीं हैं पश्चिम के अर्थ में। जिस अर्थ में हीगल या कांट या बर्ट्रेन्ड रसेल दार्शनिक हैं, उस अर्थ में महावीर दार्शनिक नहीं हैं। महावीर का यह वक्तव्य सिर्फ एक अनुभव, एक तथ्य की सूचना है।

महावीर सोचते नहीं कि धर्म मंगल है, महावीर जानते हैं कि धर्म मंगल है। इसलिए यह वक्तव्य बिना कारण के दिया गया वक्तव्य है।

और जब पहली बार पूरब के मनुष्यों के विचार पश्चिम में अनूदित हुए तो उन्हें बहुत हैरानी हुई। क्योंकि पश्चिम के सोचने का जो ढंग था अरस्तू से लेकर आज तक, अभी भी वही है। वह यह है कि तुम जो कहते हो, उसका कारण भी तो बताओ। इस वक्तव्य में कहा गया है :—धम्मो मंगल मुक्किट्ठम्—धर्म मंगल है। अगर पश्चिम में किसी दार्शनिक ने यह कहा होता तो दूसरा वक्तव्य होता—क्यों, ह्वाय ? लेकिन महावीर का दूसरा वक्तव्य ह्वाय नहीं है, ह्वाट है, महावीर कहते हैं धर्म मंगल है। कौन सा धर्म ? अहिंसा संजमो तवो। वह यह नहीं कहते कि क्यों ? अगर पश्चिम में अरस्तू ऐसा कहता तो अरस्तू तत्काल बताता कि क्यों मैं कहता हूँ कि धर्म मंगल है। महावीर कहते हैं कि मैं कहता हूँ कि धर्म मंगल है। कौन-सा धर्म—अहिंसा, संयम और तप

वाला धर्म मंगल है। कोई कारण नहीं दिया जा रहा है, कोई कारण नहीं बताया जा रहा है। कोई प्रमाण नहीं दिया जा रहा। अनुभूति के लिए कोई प्रमाण नहीं होता, सिद्धान्तों के लिए प्रमाण होते हैं, सिद्धान्तों के लिए तर्क होते हैं। अनुभूति स्वयं ही अपना तर्क है। अनुभूति को जानना हो कि वह सही है या गलत, तो अनुभूति में उतरना पड़ता है। सिद्धान्त को जानना हो कि सही है या गलत, तो सिद्धान्त की जो तर्क सरणी है, उसमें उतरना पड़ता है। हो सकता है तर्क-सरणी बिल्कुल सही हो और सिद्धान्त बिल्कुल गलत हो। और हो सकता है प्रमाण बिल्कुल ठीक मालूम पड़े। लेकिन जिसके लिए दिये गये हैं, वह बिल्कुल ठीक न हो। गलत बातों के लिए भी ठीक प्रमाण दिये जा सकते हैं। सच तो यह है कि गलत बातों के लिए ही ठीक प्रमाण खोजने पड़ते हैं। क्योंकि गलत बातें अपने पैर से खड़ी नहीं हो सकतीं। उनके लिए ठीक प्रमाणों की सहायता की जरूरत पड़ती है।

(५) प्रमाण कौन देता है ?

महावीर जैसे लोग प्रमाण नहीं देते, सिर्फ वक्तव्य देते हैं। वे कहते हैं—ऐसा है। उनके वक्तव्य वैसे ही वक्तव्य हैं जैसे कि आइंस्टीन के या किसी और वैज्ञानिक के। आइंस्टीन से अगर हम पूछें कि पानी हाइड्रोजन और ऑक्सीजन से मिलकर क्यों बना है, तो आइंस्टीन कहेगा कि क्यों का कोई सवाल नहीं है। बना है, इट इज सो। यह हम नहीं जानते हैं कि क्यों बना है। हम इतना ही कह सकते हैं कि ऐसा है। तो जिस भाँति आइंस्टीन कह सकता है कि पानी का अर्थ है एच टू ओ—हाइड्रोजन के दो-दो अणु और एक अणु ऑक्सीजन का, इनका जोड़ पानी है; वैसे ही महावीर कहते हैं कि धर्म अहिंसा, संयम और तप का जोड़ है। यह 'अहिंसा संजमो तवो' वैसा ही सूत्र है जैसे—एच टू ओ है। यह ठीक वैसा ही वैज्ञानिक वक्तव्य है। विज्ञान दूसरे के यानी पर के संबंध में वक्तव्य देता है। धर्म स्वयं के संबंध में वक्तव्य देता है। इसलिए अगर वैज्ञानिक के वक्तव्य को जाँचना हो तो तर्क से नहीं जाँचा जा सकता, उसके लिए प्रयोगशाला में जाना पड़ेगा। स्वभावतः उसकी प्रयोगशाला बाहर है, क्योंकि उसके वक्तव्य पर के संबंध में हैं। और अगर महावीर जैसे व्यक्ति का वक्तव्य जाँचना हो तो भी प्रयोगशाला में जाना पड़ेगा। निश्चित ही महावीर की प्रयोगशाला बाहर नहीं है, वह प्रत्येक व्यक्ति के अपने भीतर है।

थोड़ा-बहुत हम तो यह जानते हैं कि महावीर जो कहते होंगे, ठीक कहते होंगे। हमें यह तो पता नहीं है कि धर्म मंगल है, लेकिन हमें यह भली भाँति

पता है कि अधर्म अमंगल है। कम से कम हमें इतना पता है। यह भी कुछ कम पता नहीं है, काफी है और अगर बुद्धिमान आदमी हो तो इतने ज्ञान से परज्ञान तक पहुँच सकता है। हमें यह पूरी तरह पता है कि अधर्म अमंगल है, क्योंकि अधर्म हमने किया है। अधर्म को हम जानते हैं। इसे थोड़ा सोचें। क्या आपको पता है कि जब भी आपके जीवन में कोई दुःख आता है तो दूसरे के द्वारा आता है? दूसरे के द्वारा आता हो या नहीं आता हो, आपके लिए सदा दूसरे के द्वारा आता हुआ मालूम पड़ता है। क्या आपके जीवन में जब कोई चिन्ता आती है तो कभी आपने ख्याल किया है कि चिन्ता भीतर से नहीं, बाहर से आती मालूम पड़ती है? क्या कभी आप भीतर से चिन्तित हुए हैं? सदा बाहर से चिन्तित हुए हैं। सदा चिन्ता का केन्द्र कुछ और रहा है, आपको छोड़कर कुछ अन्य। वह धन हो, बीमार मित्र हो, टूटती हुई दूकान हो, हारा हुआ चुनाव हो, कुछ भी हो, सदा दूसरा ही होता है। कुछ और आपके अलावा आपके दुःख का कारण बनता है।

(६) पता है, दुःख को आप बुलाते हैं!

लेकिन एक भ्रान्ति हमारे मन में है, वह टूट जानी जरूरी है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि दूसरा सुख का भी कारण बनता है। उसी से सब उपद्रव जारी रहता है। ऐसा तो लगता है कि दूसरा दुःख का कारण बनता है, लेकिन ऐसा भी लगता है कि दूसरा सुख का कारण बनता है। चिन्ता तो दूसरे से आती है, दुःख भी दूसरे से आता है, लेकिन सुख भी दूसरे से आते हुए मालूम पड़ते हैं। ध्यान रखें वह जो दूसरे से दुःख आता है वह इसीलिए आता है कि आप इस भ्रांति में जीते हैं कि दूसरे से सुख आ सकता है। ये संयुक्त बातें हैं। और अगर आप आधे पर ही समझते रहें कि दूसरे से दुःख आता है और यह मानते चले जायें कि दूसरे से सुख आता है तो दूसरे से दुःख आता चला जायेगा। दूसरे से दुःख आता ही इसलिए है कि दूसरे से हमने एक भ्रांति का संबंध बना रखा है कि सुख आ सकता है। आता कभी नहीं। आ सकता है इसकी संभावना हमारे आस-पास खड़ी रहती है। आ सकता है, सदा भविष्य में होता है। इसे भी थोड़ा खोजें तो आपके अनुभव में कारण मिल जायेंगे।

कभी किसी क्षण में आपने जाना कि दूसरे से सुख आ रहा है? सदा ऐसा लगता है कि आयेगा। आता कभी नहीं। जिस मकान को सोचते हैं मिल जाने से सुख आयेगा, वह जब तक नहीं मिला है तब तक संभावना रहती है। वह

जिस दिन मिल जायेगा, उसी दिन आप पायेंगे कि उस मकान की अपनी चिन्ताएं हैं और अपने दुःख हैं, वे आ गये। और सुख अभी नहीं आया। और थोड़े दिन में आप पायेंगे कि आप भूल ही गये यह बात कि इस मकान से कितना सुख सोचा था कि आयेगा, वह बिल्कुल नहीं आया।

लेकिन मन बहुत चालाक है वह लौटकर नहीं देखता। वह रिट्रास्पेक्टिवली कभी नहीं सोचता कि जिन-जिन चीजों से हमने सोचा था कि सुख आयेगा, उनमें से कुछ आ गयीं, लेकिन सुख नहीं आया। इसीलिए अगर किसी दिन पृथ्वी पर ऐसा हो सका कि आप जो-जो सुख चाहते हैं वह आपको तत्काल मिल जाये तो पृथ्वी कितनी दुःखी हो जायेगी। उतनी जितनी इसके पहले कभी नहीं थी। इसलिए जिस मुल्क में जितनी सुख की सुविधा बढ़ती जाती है उसमें उतना ही दुःख बढ़ता जाता है। गरीब मुल्क कम दुःखी होते हैं, अमीर मुल्क ज्यादा दुखी होते हैं। गरीब आदमी कम दुखी होता है। मेरे ऐसा कहने से आपको थोड़ी हैरानी होगी, क्योंकि हम सब मानते हैं कि गरीब बहुत दुखी होते हैं। पर मैं आप से कहता हूँ कि गरीब कम दुःखी होता है, क्योंकि अभी उसकी आशाओं का पूरा का पूरा जाल जीवित है। अभी वह आशाओं में जी सकता है। अभी सपने देख सकता है, कल्पना नष्ट नहीं हुई। कल्पना उसे सँभाले रखती है। लेकिन जब उसे सब मिल जाये, जो-जो उसने चाहा था; तो बस, सब आशाओं के सेतु टूट गये। भविष्य नष्ट हुआ।

वर्तमान में सदा दुःख है दूसरे के साथ। दूसरे के साथ सिर्फ सुख होता है भविष्य में। तो अगर सारा भविष्य नष्ट हो जाये, जो-जो भविष्य में मिलना चाहिए वह आपको अभी मिल जाये, इसी क्षण; तो आप सिवाय आत्महत्या करने के और कुछ भी नहीं कर सकेंगे। इसलिए जितना सुख बढ़ता है उतनी आत्महत्याएँ बढ़ती हैं, जितना सुख बढ़ता है, उतनी ही विक्षिप्तता बढ़ती है। यह बड़ी उल्टी बात है, क्योंकि सब वैज्ञानिक कहते हैं कि साधन बढ़ जायेंगे तो आदमी बहुत सुखी हो जायेगा। लेकिन अनुभव नहीं कहता। आज अमरीका जितना दुखी है, उतना कोई भी देश दुखी नहीं है। महावीर अपने घर में जितने दुःखी हुए, महावीर के घर के सामने से जो रोज भीख मांगते चला जानेवाला भिखारी होगा, वह भी उतना दुखी नहीं था। महावीर का दुःख पैदा हुआ है इस बात से, कि जो भी उस युग में मिल सकता था वह मिला हुआ था। महावीर के लिए कोई भविष्य नहीं बचा था, न फ्यूचर। और जब भविष्य

न बचे, तो सपने कहाँ खड़े करियेगा ? जब भविष्य न बचे तो कागज की नाव किस सागर में चलाइयेगा ? भविष्य के ही सागर में चलती कागज की नाव। अगर भविष्य नहीं बचे तो किस भूमि पर ताशों का भवन बनाइयेगा ? अगर ताशों का भवन बनाना हो, तो भविष्य की नींव चाहिए। तो महावीर का जो त्याग है वह त्याग असल में भविष्य की समाप्ति से पैदा होता है। जब कोई भविष्य न बचा, तो महावीर अब कहां जाये ? किस पद पर चढ़ें जहाँ सुख मिलेगा ? किस स्त्री को खोजें जहाँ सुख मिलेगा ? किस धन की राशि पर खड़े हों जहाँ सुख होगा ?

(७) टूटा हुआ भविष्य : महावीर का विषाद

इस सबसे महावीर के फ्रस्टेशन को, महावीर के विषाद को हम सोच सकते हैं और हम उन नासमझों की बात भी सोच सकते हैं जो महावीर के पीछे दूर तक गाँव के बाहर गये और समझाते रहे कि इतना सुख छोड़कर कहाँ जा रहे हो ? यह वे लोग थे जिनका भविष्य है। वे कह रहे थे कि पागल हो गये हो ? जिस महल के लिए हम दीवाने हैं और सोचते हैं कि किसी दिन मिल जायेगा, तो मोक्ष मिल जायेगा, उसे छोड़कर जा रहे हो ? दिमाग तो खराब नहीं हो गया है ? सभी सयाने लोगों ने महावीर को समझाया, मत जाओ छोड़कर। लेकिन महावीर और उनके बीच भाषा का संबंध टूट गया था। वे दोनों अब एक ही भाषा नहीं बोल सकते थे, क्योंकि उनका भविष्य अभी बाकी था। और महावीर का कोई भविष्य नहीं रहा।

हमें भी अनुभव है, लेकिन हम पीछे लौटकर नहीं देखते हैं। हम आगे ही देखे चले जाते हैं। जो आदमी आगे ही देखे चला जाता है, वह कभी धार्मिक नहीं हो सकेगा। क्योंकि अनुभव से वह कभी लाभ नहीं ले सकेगा। भविष्य में कोई अनुभव नहीं है। अनुभव तो अतीत में है, जब आदमी पीछे लौटकर देखेगा। लेकिन पीछे लौटकर देखने में भी हम यह भूल जाते हैं कि हमने पीछे उन स्थानों पर तब क्या सोचा था ? आदमी की स्मृति भी बहुत अद्भुत् है। आपको ख्याल नहीं रहता है कि जो कपड़ा आज आप पहने हुए हैं, कल वह कपड़ा आपके पास नहीं था। वह किसी और के पास था या किसी दूकान पर था या किसी शो-विन्डो में था और आप रात भर नहीं सो सके थे। और न मालूम कितनी गुदगुदी मालूम पड़ी थी भीतर कि कल जब यह कपड़ा आपके शरीर पर होगा, तो मालूम नहीं कौन-सी क्रान्ति घटित हो जायेगी और कौन

सा स्वर्ग उतर आयेगा ! आप भूल ही गये हैं बिल्कुल। तब वह कपड़ा आपके शरीर पर है। कोई स्वर्ग नहीं उतरा है, कोई क्रांति घटित नहीं हुई। आप उतने के उतने ही दुखी हैं। हाँ, अब दूसरे दूकान की शो-विन्डो में आपका सुख लटका हुआ है। आप अभी भी वहीं हैं। अब किसी दूसरी दूकान की शो-विन्डो आपकी नींद खराब कर देगी। पीछे लौटकर अगर देखें तो आप पायेंगे कि जिन-जिन सुखों को सोचा था वे सभी दुःख सिद्ध हो गये। आप एक भी ऐसा सुख नहीं बता सकेंगे जो आपने सोचा था कि सुख सिद्ध होगा और सुख सिद्ध हुआ हो। फिर भी आश्चर्य कि आदमी फिर भी वही पुनरुक्ति किये चले जाता है और कल के लिए फिर योजनाएँ बनाता है। कल की बीती सब योजनाएं गिर गयीं, लेकिन वह कल के लिए फिर वही योजनाएँ बनाता है। अगर महावीर ऐसे व्यक्तियों को मूढ़ कहें तो तथ्य की ही बात है। हम मूढ़ हैं। मूढ़ता और क्या होगी ? कि मैं जिस गड्ढे में कल गिरा था आज फिर उसी गड्ढे की तलाश करता हूँ किसी दूसरे रास्ते पर। और ऐसा नहीं कि कल ही गिरा था, रोज-रोज गिरा हूँ, फिर भी वही करता रहता हूँ।

(८) किस मंजिल पर रहते हो ?

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक रात ज्यादा शराब पीकर घ लौटा। टटोलता था रास्ता घर का, मिलता नहीं था। एक भले आदमी ने देखकर कि बेचारा राह नहीं खोज पा रहा है हाथ पकड़ा। पूछा कि इसी मकान में रहते हो ?

मुल्ला ने कहा, हां।

किस मंजिल पर रहते हो ?

दूसरी मंजिल पर।

उस भले आदमी ने बमुश्किल करीब-करीब बेहोश आदमी को किसी तरह सीढ़ियों से घसीटते-घसीटते दूसरी मंजिल तक पहुँचाया। फिर यह सोचकर कि कहीं मुल्ला की पत्नी का सामना न करना पड़े—वह सोचेगी कि तुम भी संगी साथी हो, कहीं उपद्रव न हो—पूछा, यही तेरा दरवाजा है ?

मुल्ला ने कहा, हां।

उसने दरवाजे के भीतर धक्का दिया और सीढ़ियों से नीचे उतर गया।

नीचे जाकर बहुत हैरान हुआ कि ठीक वैसा ही आदमी थोड़ी और बुरी

हालत में फिर दरवाजा टटोल रहा है, ठीक वैसा ही आदमी ! थोड़ा चकित हुआ। अपनी भी आंखों पर हाथ फेरा कि मैं भी तो कहीं नशे में नहीं हूँ। फिर जाकर पूछा कि क्यों भाई तुम भी ज्यादा पी गये हो ?

उस आदमी ने कहा—हाँ।

इसी मकान में रहते हो ?

उसने कहा—हाँ।

किस मंजिल पर रहते हो ? उसने कहा—दूसरी पर।

इस बार और कठिनाई हुई, क्योंकि वह आदमी और भी लस्त-पस्त था। उसे ऊपर पहुंचाकर कहा, इसी दरवाजे में रहते हो ?

उसने कहा—हाँ।

वह आदमी बहुत हैरान हुआ कि क्या नसेड़ियों के साथ थोड़ी सी देर में मैं भी नशे में हो गया हूँ ? फिर धक्का दिया और नीचे उतर आया। देखा कि तीसरा आदमी और भी थोड़ी बुरी हालत में है। सड़क के किनारे पड़ा रास्ता खोज रहा है। लेकिन ठीक वैसा ही। उसे डर भी लगा कि भाग जाना चाहिए यह झंझट की बात मालूम पड़ती है। यह कब तक चलेगा ? लेकिन आदमी वही मालूम पड़ता है, वही कपड़े हैं, ढंग वही है। थोड़ा परेशान हुआ। पूछा कि भाई इसी मकान में रहते हो ?

उसने कहा—हाँ।

किस मंजिल पर ?

दूसरी मंजिल पर।

ऊपर जाना चाहते हो ?

उसने कहा—हाँ।

उसने कहा बड़ी मुसीबत है; लेकिन चलो इसको और पहुँचा दें। ले जाकर दरवाजे पर धक्का दिया, भागकर नीचे आया कि चौथा न मिल जाये; लेकिन चौथा आदमी नीचे मौजूद था। उसमें हिलने-चलने की भी गति नहीं थी। लेकिन जैसे ही वह पास आया, उस आदमी ने चिल्लाया कि मुझे बचाओ। यह आदमी मुझे मार डालेगा।

मैं तुझे मार डालने की कोशिश नहीं कर रहा हूँ। तू है कौन ?

उसने कहा, तुम मुझे बार-बार ले जाकर दरवाजे से धक्का देकर नीचे पटक रहे हो।

सा स्वर्ग उतर आयेगा! आप भूल ही गये हैं बिल्कुल। तब वह कपड़ा आपके शरीर पर है। कोई स्वर्ग नहीं उतरा है, कोई क्रांति घटित नहीं हुई। आप उतने के उतने ही दुखी हैं। हाँ, अब दूसरे दूकान की शो-विन्डो में आपका सुख लटका हुआ है। आप अभी भी वहीं हैं। अब किसी दूसरी दूकान की शो-विन्डो आपकी नींद खराब कर देगी। पीछे लौटकर अगर देखें तो आप पायेंगे कि जिन-जिन सुखों को सोचा था वे सभी दुःख सिद्ध हो गये। आप एक भी ऐसा सुख नहीं बता सकेंगे जो आपने सोचा था कि सुख सिद्ध होगा और सुख सिद्ध हुआ हो। फिर भी आश्चर्य कि आदमी फिर भी वही पुनरुक्ति किये चले जाता है और कल के लिए फिर योजनाएँ बनाता है। कल की बीती सब योजनाएं गिर गयीं, लेकिन वह कल के लिए फिर वही योजनाएँ बनाता है। अगर महावीर ऐसे व्यक्तियों को मूढ़ कहें तो तथ्य की ही बात है। हम मूढ़ हैं। मूढ़ता और क्या होगी? कि मैं जिस गड्ढे में कल गिरा था आज फिर उसी गड्ढे की तलाश करता हूँ किसी दूसरे रास्ते पर। और ऐसा नहीं कि कल ही गिरा था, रोज-रोज गिरा हूँ, फिर भी वही करता रहता हूँ।

(८) किस मंजिल पर रहते हो?

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक रात ज्यादा शराब पीकर घर लौटा। टटोलता था रास्ता घर का, मिलता नहीं था। एक भले आदमी ने देखकर कि बेचारा राह नहीं खोज पा रहा है हाथ पकड़ा। पूछा कि इसी मकान में रहते हो?

मुल्ला ने कहा, हाँ।

किस मंजिल पर रहते हो?

दूसरी मंजिल पर।

उस भले आदमी ने बमुश्किल करीब-करीब बेहोश आदमी को किसी तरह सीढ़ियों से घसीटते-घसीटते दूसरी मंजिल तक पहुँचाया। फिर यह सोचकर कि कहीं मुल्ला की पत्नी का सामना न करना पड़े—वह सोचेगी कि तुम भी संगी साथी हो, कहीं उपद्रव न हो—पूछा, यही तेरा दरवाजा है?

मुल्ला ने कहा, हाँ।

उसने दरवाजे के भीतर धक्का दिया और सीढ़ियों से नीचे उतर गया। नीचे जाकर बहुत हैरान हुआ कि ठीक वैसा ही आदमी थोड़ी और बुरी

हालत में फिर दरवाजा टटोल रहा है, ठीक वैसा ही आदमी ! थोड़ा चकित हुआ। अपनी भी आंखों पर हाथ फेरा कि मैं भी तो कहीं नशे में नहीं हूँ। फिर जाकर पूछा कि क्यों भाई तुम भी ज्यादा पी गये हो ?

उस आदमी ने कहा—हाँ।

इसी मकान में रहते हो ?

उसने कहा—हाँ।

किस मंजिल पर रहते हो ? उसने कहा—दूसरी पर।

इस बार और कठिनाई हुई, क्योंकि वह आदमी और भी लस्त-पस्त था। उसे ऊपर पहुंचाकर कहा, इसी दरवाजे में रहते हो ?

उसने कहा—हाँ।

वह आदमी बहुत हैरान हुआ कि क्या नसेड़ियों के साथ थोड़ी सी देर में मैं भी नशे में हो गया हूं ? फिर धक्का दिया और नीचे उतर आया। देखा कि तीसरा आदमी और भी थोड़ी बुरी हालत में है। सड़क के किनारे पड़ा रास्ता खोज रहा है। लेकिन ठीक वैसा ही। उसे डर भी लगा कि भाग जाना चाहिए यह झंझट की बात मालूम पड़ती है। यह कब तक चलेगा ? लेकिन आदमी वही मालूम पड़ता है, वही कपड़े हैं, ढंग वही है। थोड़ा परेशान हुआ। पूछा कि भाई इसी मकान में रहते हो ?

उसने कहा—हाँ।

किस मंजिल पर ?

दूसरी मंजिल पर।

ऊपर जाना चाहते हो ?

उसने कहा—हाँ।

उसने कहा बड़ी मुसीबत है; लेकिन चलो इसको और पहुँचा दें। ले जाकर दरवाजे पर धक्का दिया, भागकर नीचे आया कि चौथा न मिल जाये; लेकिन चौथा आदमी नीचे मौजूद था। उसमें हिलने-चलने की भी गति नहीं थी। लेकिन जैसे ही वह पास आया, उस आदमी ने चिल्लाया कि मुझे बचाओ। यह आदमी मुझे मार डालेगा।

मैं तुझे मार डालने की कोशिश नहीं कर रहा हूँ। तू है कौन ?

उसने कहा, तुम मुझे बार-बार ले जाकर दरवाजे से धक्का देकर नीचे पटक रहे हो।

वस आदमी ने पूछा कि भले आदमी तीन बार पटक चुका, तुमनें कहा क्यों नहीं ?

शायद अब की बार न पटकें यह सोचकर—नसरुद्दीन ने कहा।

असल में दूसरा पटकता है, तो हम हंसते हैं, लेकिन हम अपने को ही पटकते चले जाते हैं। जिन्दगी भर ऐसा चलता है। आखिर में दुःख के घाव के अतिरिक्त हमारी कोई उपलब्धि नहीं होती है। घाव ही घाव रह जाते हैं। पीड़ा ही पीड़ा रह जाती है। इतना हम जानते हैं कि अधर्म है, अमंगल है। और अधर्म से मतलब समझ लेना—दूसरे में सुख खोजने की आकांक्षा। दुःख है, यही अमंगल है। और कोई अमंगल नहीं। जब भी दुःख आपको मिले तो आप जानना कि आपने दूसरे से कहीं सुख पाना चाहा। अगर मैं अपने शरीर से ही सुख पाना चाहता हूँ तो ही मुझे दुःख मिलेगा—कल बीमारी आयेगी, कल शरीर रुग्ण होगा, कल बुड्ढा होगा, परसों मरेगा। यह शरीर जो इतना निकट मालूम होता है, फिर भी पराया है। महावीर से अगर हम पूछने जायें तो वे कहेंगे कि जिससे भी दुःख मिल सकता है, जानना कि वह और है। इसे काइटीरियन, इसे मापदंड समझ लेना कि जिससे भी दुःख मिल सके जानना कि वह और है, वह तुम नहीं हो। तो जहाँ-जहाँ दुःख मिले, वहाँ-वहाँ जानना कि मैं नहीं हूँ।

(९) अपने से जुड़ने का वह सुख-क्षण

सुख अपरिचित है, क्योंकि हमारा सारा परिचय 'पर' से है, दूसरे से है। सुख सिर्फ कल्पना में ही एक अनुभव है। लेकिन दुःख, जो कि अनुभूत है, उसे हम भुलाये जाते हैं और सुख जो कि कल्पना है उसके लिए हम दौड़े चले जाते हैं। महावीर का यह सूत्र इस पूरी बात को बदल देना चाहता है कि धम्मो मंगल मुक्किट्ठं ! धर्म मंगल है। आनन्द की तलाश स्वभाव में है। कभी अगर आपके जीवन में कोई किरण आनन्द की छोटी-मोटी उतरी होगी, तो वह तभी उतरी है, जब आप अनजाने-जाने किसी भाँति एक क्षण को स्वयं के संबंध में पहुँच जाते हैं। लेकिन हम ऐसे भ्रांत हैं कि वहाँ भी हम दूसरे को ही कारण समझते हैं। सागर के तट पर बैठे हैं, साँझ हो गयी, सूर्यास्त होता है। ढलते सूरज में, सागर की लहरों की आवाजों में एकांत में अकेले तट पर बैठे हैं। एक क्षण को लगता है जैसे सुख की कोई किरण कहीं उतरी। तो

मन होता है कि शायद इस सागर, इस डूबते सूरज में सुख है। कल फिर आकर बैठेंगे। फिर वह किरण उतनी नहीं नहीं उतरेगी। परसों फिर आकर बैठेंगे। अगर रोज आकर बठते रहें, तो सागर का शोरगुल सुनायी पड़ना बन्द हो जायेगा। सूरज का डूबना दिखायी नहीं पड़ेगा।

वह जो पहले दिन अनुभव हमें आया था वह सागर और सूरज की वजह से नहीं था, वह तो केवल एक अजनबी स्थिति में, आप पराये से ठीक से सम्बन्धित नहीं हो सके और थोड़ी देर को अपने से सबंधित हो गये थे। इसीलिए परिवर्तन अच्छा लगता है एक क्षण को। क्योंकि परिवर्तन का, संक्रमण का, ट्रांजिशन का जो क्षण है उस क्षण में आप दूसरों से संबंधित होने के पहले और पिछले से टूटने के पहले बीच में थोड़े से अंतराल में अपने से गुजरते हैं।

(१०) 'जस्ट ए चेंज'

एक मकान को बदल के दूसरे मकान में जा रहे हैं। इस मकान को बदलने और दूसरे मकान में ऐडजस्ट होने के बीच एक क्षण को अव्यवस्थित हो जायेंगे आप, न यह मकान होगा, न वह मकान होगा और बीच में क्षण भर को उस मकान में पहुँच जायेंगे जो आप के भीतर है। क्षणभर को उस बीच जो थोड़ी सी सुख की झलक मिलेगी आप सोचेंगे कि नये मकान में आने से मिली है या इस पहाड़ पर आने से मिली है, इस एकान्त में आने से मिली है, इस संगीत की कड़ी को सुनने से मिली है, इस नाटक को देखने से मिली है। आप भ्रांति में हैं। अगर इस नाटक को देखने से मिला है सुख, तो फिर रोज इस नाटक को देखें, जल्दी ही पता चल जायेगा। कल नहीं मिलेगा, क्योंकि कल आप ऐडजस्ट हो चुके होते हैं। कल यह नाटक परिचित हो चुका होगा, परसों वही नाटक तकलीफ देने लगेगा। और दो चार दिन देखते गये, तो ऐसा लगेगा अपने साथ हिंसा कर रहे हैं, एक पत्नी को बदल कर दूसरी पत्नी के साथ जो क्षण भर को सुख दिखायी पड़ रहा है, वह सिर्फ बदलाहट है। और बदलाहट भी सिर्फ इसलिए कि दो चीजों के बीच से क्षण भर को आपको अपने भीतर से गुजरना पड़ता है। बस और कोई कारण नहीं है।

अनिवार्य है कि जब मैं एक से टूटूं और दूसरे जुड़ूँ तो टूटने और जुड़ने के बीच में जो गैप है, जो अन्तराल है, उसमें कहीं तो रहूँगा। उसमें मैं अपने में रहूँगा। वही अपने में रहने का क्षण प्रतिफलित होगा और लगेगा कि दूसरे में सुख मिला। सभी बदलाहट अच्छी

लगती है। बस बदलाहट यानी 'चेन्ज' का जो सुख है, वह अपने से क्षण भर को अचानक गुजर जाने का सुख है। इसलिए आदमी शहर जंगल भागता है, जंगल का आदमी शहर आता है, भारत का आदमी यूरोप जाता है और यूरोप का आदमी भारत आता है। भारतीय को हैरानी होती है पश्चिमी को देखकर अपने बीच में, कि इधर आये हो सुख की तलाश में? इधर हम जैसा सुख पा रहे हैं हम ही जानते हैं। पश्चिमात्य को भारतीय को वहाँ देखकर हैरानी होती है कि तुम यहाँ आये हो सुख की तलाश में? यहाँ जो सुख मिल रहा है उससे हम किस तरह बचें, हम इसकी चेष्टा में लगे हैं। पर दोनों को क्षण भर को सुख मिलता है। वैज्ञानिक कहते हैं नयों को भी चीज से व्यवस्थित होने में थोड़ा अंतराल पड़ता है। एक रिद्म है हमारे जीवन में।

(११) अस्तित्व की घड़ी उर्फ कॉँजामिक क्लॉक

गाकलिन ने एक किताब लिखी है 'दि कॉजमिक क्लॉक'। लिखा है कि सारा अस्तित्व एक घड़ी की तरह चलता है। अद्भुत किताब है, वैज्ञानिक आधार पर। वह कहता है मनुष्य का व्यक्तित्व एक घड़ी की तरह चलता है। जल्दी कोई परिवर्तन होता है तो घड़ी डगमगा जाती है। अगर आप पूरब से पश्चिम की तरह यात्रा कर रहे हैं, तो आपके व्यक्तित्व की पूरी घड़ी गड़बड़ा जाती है, क्योंकि सब बदलता है। सूरज के उगने का समय बदल जाता है, सूरज के डूबने का समय बदल जाता है। वह इतने तेजी से बदलता है कि आपके शरीर को पता ही नहीं चलता। इसलिए भीतर एक अराजकता का क्षण उपस्थित हो जाता है। सभी बदलाहटें आपके भीतर एक ऐसी स्थिति ला देती हैं कि आपको अनिवार्य रूपेण कुछ देर को अपने भीतर से गुजरना पड़ता है। उसका ही रिफलेक्शन, उसका ही प्रतिबिम्ब आपको सुख मालूम पड़ता है। और जब क्षण भर गुजरते भी आपको सुख मालूम पड़ता है तो जो सदा अपने भीतर जीने लगते हैं, उन्हें?

अगर महावीर कहते हैं, वे मंगल को, परम मंगल को, आनन्द को उपलब्ध हो जाते हैं, तो हम नाप सकते हैं, हम अनुमान कर सकते हैं। हमारा अनुभव अगर प्रगाढ़ होता चला जाये कि जिसे हमने जीवन समझा है वह दुःख है, जिस चीज के पीछे हम दौड़ रहे हैं वह हमें सिर्फ नर्क में उतार जाती है, अगर हमें यह स्पष्ट हो जाये तो हमें महावीर की वाणी का आधा हिस्सा हमारे अनुभव से स्पष्ट हो जायेगा। और ध्यान रहे कोई भी सत्य आधा

सत्य नहीं होता। सत्य तो पूरा ही सत्य होता है। अगर उसमें से आधा भी सत्य दिखायी पड़ जाये, तो शेष आधा आज नहीं कल दिखायी पड़ जायेगा, और समझ में आ जायेगा।

आधा सत्य हमारे पास है कि 'दूसरा' ही दुःख है। कामना-वासना दुःख है, क्योंकि कामना और वासना सदा दूसरे की तरफ दौड़नेवाले चित्त का नाम है। वासना का अर्थ है दूसरे की तरफ दौड़ती हुई चेतन धारा। वासना का अर्थ है भविष्य की ओर उन्मुख जीवन की नौका। अगर दूसरा दुःख है तो दूसरे की तरफ ले जानेवाला जो सेतु है, वह नर्क का सेतु है। उसको वासना कहते हैं महावीर। उसको बुद्ध तृष्णा कहते हैं। उसे हम कोई भी नाम दें। दूसरे को चाहने की जो हमारे भीतर दौड़ है, हमारी ऊर्जा का वर्तन है दूसरे की तरफ, उसका नाम वासना है, वही दुःख है।

और जो मंगल है, आनन्द है, धर्म है, स्वाभाव है, निश्चित ही वह उस क्षण में मिलेगा, जब हमारी वासना कहीं भी न दौड़ रही होगी। वासना का न दौड़ना आत्मा का हो जाना है। वासना का दौड़ना आत्मा का खो जाना है। आत्मा उस शक्ति का नाम है, जो नहीं दौड़ रही है, अपने में खड़ी है। वासना उस आत्मा का नाम है, जो दौड़ रही है अपने से बाहर किसी और के लिए। इसलिए इसी सूत्र के दूसरे हिस्से में महावीर कहते हैं—कौन सा धर्म? अहिंसा, संयम और तप। यह अहिंसा, संयम और तप दौड़ती हुई ऊर्जा को ठहराने की विधियों के नाम हैं। यह जो वासना दौड़ती है दूसरे की तरफ, वह कैसे रुक जाये? न दौड़े दूसरे की तरफ? रुक जाये तो स्वयं में रमेगी, स्वयं में ठहरेगी, स्थिर होगी। जैसे कोई ज्योति हवा के कम्प में कंपे नहीं, वैसी। उसका उपाय महावीर कहते हैं कि धर्म है। धर्म के दो रूप हैं। धर्म स्वभाव है और धर्म विधि है स्वभाव तक पहुँचने की। धर्म का आत्यन्तिक जो रूप है वह है स्वभाव, स्वधर्म। और क्योंकि हम स्वभाव से भटक गये हैं इसलिए कहने की जरूरत पड़ती है। स्वस्थ व्यक्ति तो नहीं पूछता चिकित्सक से, कि मैं स्वस्थ हूँ या नहीं। अगर स्वस्थ व्यक्ति भी पूछता है कि मैं स्वस्थ हूँ या नहीं, तो समझ लो वह बीमार हो चुका है।

(१२) लाओत्से ने कहा:

लाओत्से के पास कन्फ्यूसियस गया था और उसने कहा था धर्म को लाने का कोई उपाय करें। तो कन्फ्यूसियस से लाओत्से ने कहा धर्म को लाने का

उपाय तभी करना होता है, जब अधर्म आ चुका होता है। तुम कृपा करके अधर्म को छोड़ने का उपाय करो, धर्म आ जायेगा। तुम धर्म को लाने का उपाय मत करो। इसलिए स्वास्थ्य को लाने का कोई उपाय नहीं किया जा सकता, सिर्फ केवल बीमारियों को छोड़ने का उपाय किया जा सकता है। जब बीमारियां छूट जाती हैं तो जो शेष रह जाता है, दि रिमेनिंग, वह स्वास्थ्य !

तो धर्म का आखिरी सूत्र, परम सूत्र है स्वभाव। लेकिन वह स्वभाव तो चूक गया है। वह तो हमने खो दिया है। तो हमारे लिए धर्म का दूसरा अर्थ महावीर कहते हैं जो प्रयोगात्मक है, प्रक्रिया का है, साधन का है। पहली परिभाषा साध्य के अन्त की। दूसरी परिभाषा साधन की, 'मीन्स' की। तभी महावीर कहते हैं—कौन सा धर्म ? अहिंसा संजमो तवो। इतना छोटा सूत्र शायद ही जगत् से किसी और ने कहा हो, जिसमें सारा धर्म आ जाये—अहिंसा, संयम, तप। इन तीन की पहले हम व्यवस्था समझ लें, फिर तीन के भीतर हमें प्रवेश करना पड़ेगा।

अहिंसा धर्म की आत्मा है, कहें केन्द्र है धर्म का, सेन्टर है। तप धर्म की परिधि है, सर्कमफरेन्स है और संयम केन्द्र को परिधि से जोड़नेवाला बीच का सेतु है। ऐसा समझ लें कि अहिंसा आत्मा है, तप शरीर है और संयम प्राण है, वह दोनों को जोड़ता है, श्वांस है। श्वांस टूट जाये तो शरीर भी होगा, आत्मा भी होगी, लेकिन आप न होंगे। संयम टूट जाये तो तप भी हो सकता है, अहिंसा भी हो सकती है, लेकिन धर्म नहीं हो सकता। वह व्यक्तित्व बिखर जायेगा। श्वांस की तरह संयम है इसे थोड़ा सोचना पड़ेगा। इसके पहले हम व्यवस्था को समझ लें फिर एक-एक की गहराई में उतरना आसान होगा।

अहिंसा आत्मा है महावीर की दृष्टि से। अगर महावीर से हम पूछें कि एक ही शब्द में कह दें कि धर्म क्या है, तो वे कहेंगे—अहिंसा है। कहा है उन्होंने—अहिंसा परम धर्म है। अहिंसा पर क्यों महावीर इतने जोर देते हैं ! किसी ने ऐसा नहीं कहा अहिंसा को। कोई कहेगा परमात्मा, कोई कहेगा आत्मा, कोई कहेगा सेवा, कोई कहेगा ध्यान, कोई कहेगा समाधि, कोई कहेगा योग, कोई कहेगा प्रार्थना, कोई कहेगा पूजा। लेकिन महावीर से अगर हम पूछें तो उनके अंतरतम में एक ही शब्द बचता है और वह है *अहिंसा*। क्यों ? लेकिन जिसको महावीर के मानने वाले *अहिंसा* कहते हैं, अगर इतनी ही अहिंसा

है, तो गलती में हैं, तब बहुत क्षुद्र बात कही जा रही है। महावीर को मानने वाला अहिंसा से जैसा मतलब समझता है, उससे ज्यादा बचकाना, चाइल्डिश, कोई बात मालूम नहीं हो सकती। उससे वह मतलब समझता है कि दूसरे को दुःख मत दो। महावीर का यह अर्थ नहीं है। क्योंकि धर्म की परिभाषा में दूसरा आये, यह महावीर बर्दाश्त नहीं करेंगे। इसे थोड़ा समझें।

(१३) क्या आप किसी को दुःख दे सकते हैं ?

धर्म की परिभाषा स्वभाव है। यदि धर्म की परिभाषा दूसरे से करनी पड़े कि दूसरे को दुःख मत दो, तो यह धर्म भी दूसरे पर ही निर्भर है और दूसरे पर ही केन्द्रित हो गया है। फिर स्व कहाँ रहा ? महावीर यह भी नहीं कहेंगे कि दूसरे को सुख देना ही धर्म है, क्योंकि फिर वह दूसरा आ खड़ा हुआ। महावीर कहते हैं धर्म तो वहीं है जहाँ दूसरा है ही नहीं। इसलिए दूसरे की व्याख्या से नहीं बनेगा। दूसरे को दुःख मत दो—यह महावीर की परिभाषा इसलिए भी नहीं हो सकती है, क्योंकि महावीर मानते ही नहीं कि तुम दूसरे को दुःख दे सकते हो, जब तक कि दूसरा लेना ही नहीं चाहे। इसे थोड़ा समझ लें, यह भ्रांति है कि मैं दूसरे को दुःख दे सकता हूँ। और यह भ्रांति इसी पर खड़ी है कि मैं दूसरे से दुःख पा सकता हूँ। मैं दूसरे से सुख पा सकता हूँ, मैं दूसरे को सुख दे सकता हूँ, ये सब भ्रांतियाँ एक ही आधार पर खड़ी हैं। अगर आप दूसरे को दुःख दे सकते हैं तो क्या आप सोचते हैं कि आप महावीर को दुःख दे सकते हैं ? और अगर आप महावीर को दुःख दे सकते हैं तो फिर बात खत्म हो गयी।

नहीं, आप महावीर को दुःख नहीं दे सकते। क्योंकि महावीर दुःख लेने को तैयार ही नहीं हैं। आप उसी को दुःख दे सकते हैं जो दुःख लेने को तैयार है। और आप हैरान होंगे यह जानकर कि हम इतने उत्सुक हैं दुःख लेने को, जिसका कोई हिसाब नहीं है, आतुर हैं, प्रार्थना कर रहे हैं कि कोई दुःख दे। अगर एक आदमी आपकी २४ घंटे प्रशंसा करे, तो आपको सुख नहीं मिलेगा और एक गाली दे दे, तो जन्म भर के लिए दुःख मिल जायेगा। एक आदमी आपकी बरसों सेवा करे, आपको सुख नहीं मिलेगा और एक दिन आपके खिलाफ एक शब्द बोल दे, तो आपको इतना दुःख मिल जायेगा कि वह सब सुख व्यर्थ हो गया। इससे क्या सिद्ध होता है ?

(१४) दुःख लेने की यह भागादौड़ी !

इससे यह सिद्ध होता है कि आप सुख लेने को इतने आतुर नहीं दिखायी पड़ते हैं जितना दुःख लेने को आतुर दिखायी पड़ते हैं। यानी आपकी उत्सुकता जितनी दुःख लेने में है, उतनी सुख लेने में नहीं है। अगर मुझे किसी ने १६ बार नमस्कार किया और एक वार नमस्कार नहीं किया, तो १६ बार नमस्कार से मैंने जितना सुख नहीं लिया है, एक वार नमस्कार न करने से उतना दुःख ले लूंगा। आश्चर्य है ! असल में मुझे कहना चाहिए था कोई वात नहीं, हिसाब अभी भी वहुत बड़ा है। कम से कम वीस बार नमस्कार नहीं करे, तब बराबर होगा हिसाब। लेकिन नहीं जरा सी बात दुःख दे जाती है।

हम इतने सेंसिटिव हैं दुःख के लिए, उसका कारण क्या है ? इसका कारण यह है कि हम दूसरे से सुख चाहते हैं। इतना ज्यादा कि वही चाह उससे हमें दुःख मिलने का द्वार बन जाती है और तब दूसरे से सुख तो मिलता नहीं (मिल नहीं सकता), दुःख मिल सकता है सो उसको हम लेते चले जाते हैं। महावीर नहीं कह सकते कि अहिंसा का अर्थ है दूसरे को दुःख न देना। दूसरे को कौन दुःख दे सकता है अगर दूसरा लेना न चाहे तो। और जो लेना चाहता है उसको कोई भी न दे तो भी वह ले लेगा--यह भी मैं आपसे कह देना चाहता हूँ। वह आपके लिए रुका नहीं रहेगा कि आपने नहीं दिया, तब दुःख कैसे ले। लोग आसमान से दुःख ले रहे हैं। जिन्हें दुःख लेना है वे बड़े इनवेंटर हैं। वे इस ढंग से दुःख लेते हैं, इतना आविष्कार करते हैं कि जिसका हिसाब नहीं है। वे आपके उठने से दुःख ले लेंगे, आपके बैठने से दुःख ले लेंगे, आपके चलने से दुःख ले लेंगे—किसी भी चीज से दुःख ले लेंगे। अगर आप बोलेंगे तो दुःख ले लेंगे, अगर आप चुप बैठेंगे तो दुःख ले लेंगे कि आप चुप क्यों बैठे हैं इसका क्या मतलब है ?

(१५) बताइए, बोलूँ कि न बोलूँ

एक महिला मुझसे पूछती थी कि मैं क्या करूँ अपने पति के लिए। अगर बोलती हूँ तो विवाद, उपद्रव खड़ा होता है। अगर नहीं बोलती हूँ तो पूछता है क्या बात है, और तब न बोलने से विवाद खड़ा होता है। अगर न बोलूं तो वे समझते हैं कि नाराज है। अगर बोलूं तो नाराजगी थोड़ी देर में आने ही वाली है, कुछ न कुछ निकल ही आयेगा। तो मैं क्या करूँ ? बोलूं कि न

बोलूं ? अब मैं उसको क्या सलाह दूं ? जितने दुःख आपको मिल रहे हैं, उनमें से ९९ प्रतिशत आपके आविष्कार हैं। ९९ प्रतिशत ! जरा खोजें किस-किस तरह आप आविष्कार करते हैं दुःख का ! कौन-कौन सी तरकीब आपने बिठा रखी है ! असल में बिना दुःखी हुए आप रह नहीं सकते। क्योंकि दो ही उपाय हैं—या तो आदमी सुखी हो तो रह सकता है या दुःखी हो तो रह सकता है। अगर दोनों न रह जाये तो जी नहीं सकता है। दुःख भी जीने के लिए काफी बहाना है। दुखी लोग देखते हैं कि आप कितने रस से जीते हैं ? इसको जरा देखना पड़ेगा कि दुःखी लोग कितने रस से जीते हैं और अपने दुःख की कथा कितने रस से कहते हैं ! दुःखी आदमी की कथा सुनें, कैसा रस लेता है और कथा को कैसा मैग्नीफाई करता है ! सुई लग जाये तो तलवार से कम नहीं लगती उसे।

कभी आपने ख्याल किया है कि आप किसी डाक्टर के पास जायें और वह आपसे कह दे कि नहीं, आप बिल्कुल बीमार नहीं हैं, तो कैसा दुःख होता है ? लगता है— यह डाक्टर ठीक नहीं मालूम पड़ता है, किसी और बड़े एक्सपर्ट को खोजना पड़ेगा, इससे काम नहीं चलेगा। यह कैसा डाक्टर है ! आप जैसे बड़े आदमी और आपको कोई बीमारी ही नहीं ?

या कोई छोटी-मोटी बीमारी बता दे और कह दे—गर्म पानी पी लेना, ठीक हो जाओगे; तो भी मन में तृप्ति नहीं मिलती। इसलिए डाक्टरों बेचारों को अपनी दवाइयों के नाम लैटिन में रखने पड़ते हैं, चाहे उसका मतलब होता हो अजवाइन का सत। लेकिन लैटिन में जब नाम होता है, तब मरीज अकड़ कर घर लौटता है, प्रेस्क्रिप्शन लेकर। तो जियेंगे कैसे अगर दुःख न हो ? या तो आनन्द हो तो जीने की वजह होती है। आनन्द न हो, तो दुःख तो है ही।

(१६) बड़ी तीखी है तटस्थता की मार

मार्क ट्वेन अनुभवी आदमी था और मन के गहरे में उतरने की क्षमता और दृष्टि थी उसमें। उसने कहा है कि तुम चाहे मेरी प्रशंसा करो या मेरा अपमान करो, लेकिन तटस्थ मत रहो, उससे बहुत पीड़ा होती है। तुम चाहो तो गाली भी दे जाना, क्योंकि उससे भी तुम मुझे मानते हो कि मैं कुछ हूँ; लेकिन तुम मुझे बिना देखे ही निकल जाओ, न मुझे गाली दो, न मेरा सम्मान करो, तुम मुझे ऐसी चोट पहुँचाते हो संघातक, कि तब मैं उसका बदला लिये

(१४) दुःख लेने की यह भागादौड़ी !

इससे यह सिद्ध होता है कि आप सुख लेने को इतने आतुर नहीं दिखाया पड़ते हैं जितना दुःख लेने को आतुर दिखायी पड़ते हैं। यानी आपकी उत्सुकता जितनी दुःख लेने में है, उतनी सुख लेने में नहीं है। अगर मुझे किसी ने १६ बार नमस्कार किया और एक बार नमस्कार नहीं किया, तो १६ बार नमस्कार से मैंने जितना सुख नहीं लिया है, एक बार नमस्कार न करने से उतना दुःख ले लूंगा। आश्चर्य है! असल में मुझे कहना चाहिए था कोई बात नहीं, हिसाब अभी भी बहुत बड़ा है। कम से कम बीस बार नमस्कार नहीं करे, तब बराबर होगा हिसाब। लेकिन नहीं जरा सी बात दुःख दे जाती है।

हम इतने सेंसिटिव हैं दुःख के लिए, उसका कारण क्या है? इसका कारण यह है कि हम दूसरे से सुख चाहते हैं। इतना ज्यादा कि वही चाह उससे हमें दुःख मिलने का द्वार बन जाती है और तब दूसरे से सुख तो मिलता नहीं (मिल नहीं सकता), दुःख मिल सकता है सो उसको हम लेते चले जाते हैं। महावीर नहीं कह सकते कि अहिंसा का अर्थ है दूसरे को दुःख न देना। दूसरे को कौन दुःख दे सकता है अगर दूसरा लेना न चाहे तो। और जो लेना चाहता है उसको कोई भी न दे तो भी वह ले लेगा--यह भी मैं आपसे कह देना चाहता हूं। वह आपके लिए रुका नहीं रहेगा कि आपने नहीं दिया, तब दुःख कैसे ले। लोग आसमान से दुःख ले रहे हैं। जिन्हें दुःख लेना है वे बड़े इनवेंटर हैं। वे इस ढंग से दुःख लेते हैं, इतना आविष्कार करते हैं कि जिसका हिसाब नहीं है। वे आपके उठने से दुःख ले लेंगे, आपके बैठने से दुःख ले लेंगे, आपके चलने से दुःख ले लेंगे—किसी भी चीज से दुःख ले लेंगे। अगर आप बोलेंगे तो दुःख ले लेंगे, अगर आप चुप बैठेंगे तो दुःख ले लेंगे कि आप चुप क्यों बैठे हैं इसका क्या मतलब है?

(१५) बताइए, बोलूँ कि न बोलूँ

एक महिला मुझसे पूछती थी कि मैं क्या करूँ अपने पति के लिए। अगर बोलती हूं तो विवाद, उपद्रव खड़ा होता है। अगर नहीं बोलती हूं तो पूछता है क्या बात है, और तब न बोलने से विवाद खड़ा होता है। अगर न बोलूं तो वे समझते हैं कि नाराज है। अगर बोलूं तो नाराजगी थोड़ी देर में आने ही वाली है, कुछ न कुछ निकल ही आयेगा। तो मैं क्या करूँ? बोलूं कि न

बोलूं ? अब मैं उसको क्या सलाह दूं ? जितने दुःख आपको मिल रहे हैं, उनमें से ९९ प्रतिशत आपके आविष्कार हैं। ९९ प्रतिशत ! जरा खोजें किस-किस तरह आप आविष्कार करते हैं दुःख का ! कौन-कौन सी तरकीब आपने बिठा रखी है ! असल में बिना दुःखी हुए आप रह नहीं सकते। क्योंकि दो ही उपाय हैं—या तो आदमी सुखी हो तो रह सकता है या दुःखी हो तो रह सकता है। अगर दोनों न रह जाये तो जी नहीं सकता है। दुःख भी जीने के लिए काफी बहाना है। दुखी लोग देखते हैं कि आप कितने रस से जीते हैं ? इसको जरा देखना पड़ेगा कि दुःखी लोग कितने रस से जीते हैं और अपने दुःख की कथा कितने रस से कहते हैं ! दुःखी आदमी की कथा सुनें, कैसा रस लेता है और कथा को कैसा मैग्नीफाई करता है ! सुई लग जाये तो तलवार से कम नहीं लगती उसे।

कभी आपने ख्याल किया है कि आप किसी डाक्टर के पास जायें और वह आपसे कह दे कि नहीं, आप बिल्कुल बीमार नहीं हैं, तो कैसा दुःख होता है ? लगता है— यह डाक्टर ठीक नहीं मालूम पड़ता है, किसी और बड़े एक्सपर्ट को खोजना पड़ेगा, इससे काम नहीं चलेगा। यह कैसा डाक्टर है ! आप जैसे बड़े आदमी और आपको कोई बीमारी ही नहीं ?

या कोई छोटी-मोटी बीमारी बता दे और कह दे—गर्म पानी पी लेना, ठीक हो जाओगे; तो भी मन में तृप्ति नहीं मिलती। इसलिए डाक्टरों बेचारों को अपनी दवाइयों के नाम लैटिन में रखने पड़ते हैं, चाहे उसका मतलब होता हो अजवाइन का सत। लेकिन लैटिन में जब नाम होता है, तब मरीज अकड़ कर घर लौटता है, प्रेस्क्रिप्शन लेकर। तो जियेंगे कैसे अगर दुःख न हो ? या तो आनन्द हो तो जीने की वजह होती है। आनन्द न हो, तो दुःख तो है ही।

(१६) बड़ी तीखी है तटस्थता की मार

मार्क ट्वेन अनुभवी आदमी था और मन के गहरे में उतरने की क्षमता और दृष्टि थी उसमें। उसने कहा है कि तुम चाहे मेरी प्रशंसा करो या मेरा अपमान करो, लेकिन तटस्थ मत रहो, उससे बहुत पीड़ा होती है। तुम चाहो तो गाली भी दे जाना, क्योंकि उससे भी तुम मुझे मानते हो कि मैं कुछ हूं; लेकिन तुम मुझे बिना देखे ही निकल जाओ, न मुझे गाली दो, न मेरा सम्मान करो, तुम मुझे ऐसी चोट पहुँचाते हो संघातक, कि तब मैं उसका बदला लिये

विना नहीं रह सकता । उपेक्षा का बदला लोग जितना लेते हैं उतना दुःख का नहीं लेते । आप भी अपने ऊपर ख्याल करेंगे तो आपको पता चल जायेगा कि आपको सबसे ज्यादा पीड़ा वह आदमी पहुँचाता है, जो आपकी उपेक्षा करता है, इसलिए अगर महावीर या जीसस जैसे लोगों को हमने बहुत सताया, तो उसका एक कारण उनका इंडिफरेंस था । यह बहुत गहरा कारण था । वे इंडिफरेंट थे । आपने उनको पत्थर भी मारे तो वे ऐसे खड़े रहे कि चलो कोई बात नहीं है । इससे बहुत दुःख होता है, इससे बहुत पीड़ा होती है ।

नीत्से ने कहा (और मनुष्य के इतिहास में बहुत थोड़े से लोग आदमी के भीतर नीत्से इतनी गहराई में उतरते हैं) । उसने कहा कि जीसस ! मैं तुमसे कहता हूं कि अगर कोई तुम्हारे गाल पर एक चांटा मारे तो तुम दूसरा उसके सामने मत करना । उससे उसको बहुत चोट लगेगी । जब कोई दूसरा आदमी तुम्हारे गाल पर एक चांटा मारे जीसस, तो मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम दूसरा गाल उसके सामने मत करना, तुम उसे एक करारा चांटा देना, जिससे उसको इज्जत मिले । जब तुम दूसरा गाल उसके सामने कर दोगे तो वह कीड़ा-मकोड़ा जैसा हो जायेगा । इतना अपमान मत करना । इसे हम न सह सकेंगे । इसीलिए तुम्हें सूली पर लटकाया गया ।

यह कभी हम सोच नहीं सकते, लेकिन यह सच । और सच ऐसे स्ट्रेंज होते हैं कि हम कल्पना भी न कर पाते, इतने विचित्र होते हैं । अगर कोई आपकी उपेक्षा करे, तो वह शत्रु से भी ज्यादा शत्रु मालूम पड़ता है । क्योंकि शत्रु आपकी उपेक्षा नहीं करता । वह आपको काफी मान्यता देता है । हम दुःख के लिए भी उत्सुक हैं——कम से कम दुःख तो दो अगर सुख नहीं दे सको, कुछ तो दो, दुःख भी दोगे तो चलेगा, लेकिन दो । इसलिए हम आतुर हैं चारों ओर संवेदनशील हैं । हम सारी इंद्रियों को चारों तरफ सजग रखते हैं एक ही काम के लिए । कि कहीं से दुःख आ रहा हो तो चूक न जायें । उसे जल्दी से ले लें । कहीं और कोई न ले ले । कहीं अवसर न खो जाय । यह दुःख हमारे रहने की वजह है, जीने की वजह है । तो महावीर की अहिंसा का यह अर्थ नहीं है कि दूसरे को दुःख मत देना । क्योंकि महावीर तो कहते हैं कि दूसरे को न तो कोई दुःख दे सकता है और न कोई सुख दे सकता है । महावीर की अहिंसा का यह भी अर्थ नहीं है कि दूसरे को मारना मत, मार मत डालना । क्योंकि महावीर भलीभाँति जानते हैं कि इस जगत् में कौन किसको मार सकता है, मार डाल सकता है । महावीर से ज्यादा बेहतर और कौन जानता होगा

कि मृत्यु असम्भव है। मरता नहीं कुछ। तो महावीर का यह मतलब कभी नहीं हो सकता है कि मारना मत, मार मत डालना। क्योंकि महावीर तो भली-भाँति जानते हैं। और अगर इतना भी नहीं जानते तो महावीर के महावीर होने का अर्थ नहीं रह जाता।

(१७) अहिंसा और चींटी

लेकिन महावीर के पीछे चलने वालों ने बहुत साधारण-साधारण परिभाषाओं का ढेर इकट्ठा कर दिया है। क्या अहिंसा का अर्थ यही है कि मुँह में पट्टी बाँध लेना? अहिंसा का अर्थ यही है कि सँभलकर चलना कि कोई कीड़ा न मर जाये? कि रात पानी मत पी लेना, कि कहीं कोई हिंसा न हो जाय? यह सब ठीक है, मुंह पर पट्टी बाँधना कोई हर्जा नहीं है, पानी छानकर पी लेना बहुत अच्छा है, पैर सँभल कर रखना भी बहुत अच्छा है; लेकिन इस भ्रम में नहीं कि आप किसी को मार सकते हैं। मत देना किसी को दुःख, बहुत अच्छा है; लेकिन इस भ्रम में नहीं कि आप किसी को दुःख दे सकते हैं। मेरे फर्क को आप समझ लेना। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि आप जाना और मारना और काटना (क्योंकि मार तो कोई सकते नहीं) यह मैं नहीं कह रहा हूँ आप से। महावीर की अहिंसा का अर्थ ऐसा नहीं है। महावीर की अहिंसा का अर्थ ठीक ऐसा है जैसे बुद्ध के तथाता का। तथाता का अर्थ है टोटल एक्सेप्टिबिलिटी—जो जैसा है, वैसा ही हमें स्वीकार है। हम कुछ हेर-फेर नहीं करेंगे। मान लो एक चींटी चल रही है रास्ते पर। हम कौन हैं जो उसके रास्ते में किसी तरह का हेर-फेर करने जायें? वह चींटी अभी जाती थी, अपने बच्चों के लिए शायद भोजन जुटाने जा रही हो। पता नहीं उसकी अपनी योजनाओं का जगत् है। महावीर कहते हैं कि मैं अपनी तरफ से बीच में न आऊँ। जरूरी नहीं है कि मैं ही चींटी पर पैर रखूँ तब वह मरे। चींटी खुद मेरे पैर के नीचे आकर मर सकती है। वह चींटी जाने और उसकी योजना जाने। महावीर मानते हैं कि जीवन के पथ पर प्रत्येक अपनी योजना में संलग्न है। योजना छोटी नहीं है, वह योजना बहुत बड़ी है, जन्मों-जन्मों की है। वह कर्मों का बड़ा विस्तार है। उसके अपने कर्मों की, फलों की लम्बी यात्रा है। मैं किसी की यात्रा में किसी भी कारण से बाधा न बनूँ। मैं चुपचाप अपनी पग-डंडी पर चलता रहूँ। मेरे कारण निमित्त के लिए भी किसी के मार्ग पर कोई व्यवधान खड़ा न हो। मैं ऐसा हो जाऊँ, जैसे हूँ ही नहीं।

(१८) उपस्थिति बताने की गहन चेष्टाएँ

अहिंसा का महावीर का अर्थ है कि मैं ऐसा हो जाऊँ, जैसे मैं हूँ ही नहीं। यह चींटी यहाँ से ऐसे ही गुजर जाती है जैसे कि मैं इस रास्ते पर चला ही नहीं था। और यह पक्षी इन वृक्षों पर ऐसे ही बैठे रहता है जैसे कि मैं इन वृक्षों के नीचे बैठा ही नहीं था। ये लोग इस गाँव के ऐसे ही जीते रहते हैं, जैसे मैं इस गाँव से गुजरा ही नहीं था, जैसे मैं हूँ ही नहीं। महावीर अहिंसा का जो गहनतम अर्थ है वह हैं ऐसेंस, जैसे मैं नहीं हूँ, मेरी प्रजेंस को कहीं अनुभव ही न हो, मेरी उपस्थिति कहीं प्रगाढ़ न हो जाये, मेरा होना कहीं किसी के होने में जरा सा भी अड़चन, व्यवधान न बने। मैं ऐसे हो जाऊँ जैसे कि मैं नहीं हूँ। मैं जीते जी मर जाऊँ।

लेकिन इसके लिए हमारी सबकी चेष्टा कम है। अब इसे थोड़ा और समझें, तो ख्याल में आसानी से आ जायेगा। हम सबकी चेष्टा क्या है कि हमारी उपस्थिति अनुभव हो। दूसरा जाने कि मैं हूँ, मौजूद हूँ। हमारे सारे उपाय यह हैं कि हमारी उपस्थिति प्रतीत हो। राजनीतिक ढंग से आपकी उपस्थिति जितनी प्रतीत हो सकती है, और किसी ढंग से नहीं हो सकती है, इसलिए राजनीति पूरे जीवन पर छा जाती है। अगर हम राजनीति का ठीक-ठीक अर्थ करें तो उसका अर्थ है इस बात की चेष्टा कि मेरी उपस्थिति अनुभव हो, मैं कुछ हूँ—ना कुछ नहीं हूँ इसे लोग जानें, मैं चुभूँ, मेरे काँटे जगह-जगह अनुभव हों, लोग ऐसे न गुजर जायें कि जैसे मैं नहीं था। और महावीर कहते हैं कि मैं ऐसे गुजर जाऊँ कि पता चले कि मैं नहीं था, था ही नहीं।

अब अगर हम इसे ठीक से समझें तो हाजिर, उपस्थित अनुभव करवाने की कोशिश का नाम हिंसा है, वायलेंन्स है। जब भी हम किसी को अनुभव करवाने की कोशिश करवाते हैं कि मैं हूँ, तभी हिंसा होती है। चाहे पति अपनी पत्नी को बतला रहा हो कि समझ लें कि मैं हूँ, चाहे पत्नी समझा रही हो कि क्या तुम समझ रहे हो कि कमरे में अखबार पढ़ रहे हो तो तुम अकेले हो? मैं यहाँ हूँ। पत्नी अखबार की दुश्मन हो सकती है, क्योंकि अखबार आड़ बन सकता है। इससे उसकी अनुपस्थिति हो जाती है। वह अखबार को फाड़-कर फेंक सकती है, किताबें हटा सकती है, रेडियो बन्द कर सकती है। और पति बेचारा इसलिए रेडियो खोले है, अखबार आड़ किये हुए हैं कि कृपा करके तुम्हारी उपस्थिति अनुभव न हो। तो हम सब इस चेष्टा में लगे हैं कि मेरी

उपस्थिति दूसरे को अनुभव हो और दूसरे की उपस्थिति मुझे अनुभव न हो। यही हिंसा है, और यह एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

जब मैं चाहूँगा कि मेरी उपस्थिति आपको पता चले, तो मैं यह भी चाहूँगा कि आपकी उपस्थिति मुझे पता न चले, क्योंकि दोनों एक साथ नहीं हो सकता। मेरी उपस्थिति आपको पता चले, वह तभी हो सकता है जब आपकी उपस्थिति को मैं ऐसे मिटा दूं जैसे आप हैं ही नहीं। हम सब की कोशिश यह है कि दूसरे की उपस्थिति मिट जाये और हमारी उपस्थिति कंडेंस्ड हो जाये। यही हिंसा है।

अहिंसा इससे विपरीत है। दूसरा उपस्थित हो और इतनी अच्छी तरह उपस्थित हो कि मेरी उपस्थिति से उसकी उपस्थिति में कोई बाधा न पड़े। मैं ऐसे गुजर जाऊँ भीड़ से कि किसी को भी पता न चले कि मैं था। अहिंसा का गहन अर्थ यही है—अनुपस्थित व्यक्तित्व। इसे हम ऐसा कह सकते हैं और महावीर ने ऐसा कहा है—अहंकार हिंसा है, निरहंकारिता अहिंसा है। मतलब वही है। दूसरे को अपनी उपस्थिति प्रतीत करवाने की जो चेष्टा हैं, उसी कोशिश में हम लगे हैं। शायद सारी कोशिश यही है, ढँग कोई भी हो। चाहे हम हीरे का हार पहन कर खड़े हो गये हों और चाहे हमने लाखों के वस्त्र डाल रखे हों और चाहे हम नग्न खड़े हो गये हों। कोशिश यही है कि दूसरा अनुभव करे कि मैं हूँ। मैं चैन से बैठने नहीं दूंगा। तुम्हें मानना ही पड़ेगा कि मैं हूँ। छोटे-छोटे बच्चे इस हिंसा में निष्णात होना शुरू हो जाते हैं। कभी आपने ख्याल किया होगा कि छोटे-छोटे बच्चे भी अगर घर में मेहमान हों तो ज्यादा गड़बड़ शुरू कर देते हैं। घर में कोई न हो तो अपने बैठे रहेंगे। क्यों? आपको हैरानी होगी कि यह बच्चा वैसे तो शान्त बैठा था, लेकिन घर में कोई आ गया तो वह २५ सवाल उठाता है, बार-बार लौट कर आता है, कोई चीज गिराता है। वह कर क्या रहा है? वह सिर्फ अटेंशन के लिए प्रयोग कर रहा है। वह कह कह रहा है कि हम भी यहां हैं। मैं भी हूँ। और आप उससे कह रहे हैं कि शान्त बैठो। आप यह कोशिश कर रहे हैं कि तुम नहीं हो। यानी वह बूढ़ा भी वही कर रहा है, और बच्चा भी वही कर रहा है। जब बच्चे से कहा जाता है—शान्त बैठो, वह बच्चा भी हैरान होता है कि जब घर में कोई नहीं होता है तो एक बार नहीं कहता है कि शान्त बैठो। कितना ही चिल्लाओ, घूमो, फिरो, यह आदमी चुप बैठा रहता है। लेकिन घर में कोई मेहमान आते हैं तभी यह

कहता है कि शान्त बैठो। आखिर बात क्या है? घर में जब मेहमान आते हैं तभी तो वक्त है न शान्त बैठने का।

दोनों के बीच जो संघर्ष है, वह इस बात का है कि बच्चा असर्ट करना चाहता है। वह भी घोषणा करना चाहता है कि मैं भी यहाँ हूँ, महाशय, यहाँ मैं भी हूँ। इसलिए कभी-कभी बच्चे मेहमानों के सामने ऐसी जिद पकड़ जाते हैं कि माँ बाप हैरान होते हैं कि ऐसी जिद इसने कभी नहीं पकड़ी। उनके सामने वह दिखाना चाहता है कि इस घर में मालिक कौन है, किसकी चलती है। आखिर में कौन निर्णायक है। छोटे-छोटे बच्चे भी पालिटिक्स भली-भाँति सीखने लगते हैं। उसका कारण यह है कि हमारा पूरा का पूरा आयोजन, हमारा पूरा समाज, हमारी पूरी संस्कृति अहंकार की संस्कृति है, अधर्म की। सारी दुनिया में वही है। आदमी अब तक धर्म की संस्कृति विकसित ही न कर पाया। अब तक हम कोशिश ही नहीं जाहिर कर पाये ऐसी. हम सुनते ही नहीं हैं महावीर वगैरह की, जो कि इस तरह की संस्कृति के स्रोत बन सकते थे। वे कहते हैं कि नहीं, उपस्थिति तुम्हारी जितनी पता न चले, उतना ही मंगल है। तुम्हारे लिए भी। दूसरे के लिए भी। तुम ऐसे हो जाओ जैसे हो ही नहीं।

(१६) महावीर घर से जाने लगे

महावीर घर छोड़कर जाना चाहते थे तो माँ ने कहा मत जाओ। मुझे दुःख होगा। महावीर नहीं गये, क्योंकि इतनी भी जाने की जिद से होने का पता चलता है। आग्रह था कि नहीं, जाऊँगा। अगर महावीर की जगह कोई भी होता, तो उसका त्याग और जोश मारता। उसका जोश और बढ़ता। वह कहता कौन? कौन माँ, कौन पिता? सब सम्बन्ध बेकार हैं। यह अजब संसार है। यानी जितना समझाते, उतना वह शिखर पर चढ़ते। अधिक संन्यासी, अधिक त्यागी आपके समझाने की वजह से हो गये। भूल के भी मत समझाना। वह कहें—जाता हूँ, तो कहना नमस्कार। तो वह आदमी जाने से २५ दफा सोचेगा कि जाना कि नहीं जाना। आप घेरा बाँधकर खड़े हो गये, आपने अटेंशन देना शुरू कर दिया, आपने कुछ कहा और उधर उसका जाना महत्वपूर्ण हो गया, जरूरी हो गया। अब यह व्यक्तित्व की लड़ाई शुरू हो गयी। इतने त्यागी न हों दुनिया में, अगर आस-पास के लोग इतना आग्रह न करें। ये त्यागी एकदम कम हो जायें। इसमें से ६० प्रतिशत तो बिल्कुल हो न हों।

और तब दुनिया का बहुत हित हो। क्यों ? इसीलिए कि जो दस प्रतिशत बचे, उनके त्याग की एक गरिमा हो। उनका एक अर्थ हो। लेकिन आप रोकते हैं, वही कारण बन जाता है।

महावीर रुक गये। माँ भी थोड़ी चकित हुई होंगी। फिर महावीर ने दोबारा नहीं कहा कि एक दफा और निवेदन करता हूँ कि जाने दो। बात ही छोड़ दी। माँ के मरने तक फिर बोले ही नहीं। कहा ही नहीं कुछ। माँ ने भी सोचा होगा, जरूर सोचा होगा कि यह कैसा त्याग है! क्योंकि त्यागी तो एकदम बांधकर खड़ा हो जाता है। माँ मर गयी। घर लौटते वक्त अपने बड़े भाई से महावीर ने कहा मरघट से लौटते वक्त, कि अब मैं जा सकता हूँ। क्योंकि माँ कहती थीं मुझे दुःख होगा। अब तो बात समाप्त हो गयी। अब वह हैं ही नहीं।

भाई ने कहा, तू आदमी कैसा है। इधर इतने बड़े दुःख का पहाड़ टूट पड़ा हमारे ऊपर कि माँ मर गयी और तू अभी छोड़कर जाने की बात करता है। भूलकर ऐसी बात मत करना।

महावीर चुप हो गये। फिर दो वर्ष तक भाई भी हैरान हुआ कि यह त्याग कैसा। क्योंकि वे तो अब चुप हो ही गये। उन्होंने फिर दोबारा बात न कही। उपस्थिति को इतना हटा लेने का नाम अहिंसा है।

दो वर्ष में घर के लोगों को खुद चिन्ता होने लगी कि कहीं ज्यादती तो नहीं करते हैं। भाई को पीड़ा होने लगी, क्योंकि देखा कि महावीर घर में हैं तो, लेकिन करीब-करीब ऐसे जैसे न हों—एक घोस्ट एक्जिस्टेंस रह गया, शैडो एक्सिजटेंस। कमरे से ऐसे गुजरते हैं कि पैर की आवाज न हो। घर में किसी को कुछ कहते नहीं हैं, किसी को कोई सलाह नहीं देते, कोई उपदेश नहीं देते, बैठे देखते रहते हैं। जो हो रहा है वह हो रहा है। उसमें वे सिर्फ साक्षी हो गये हैं। कई-कई दिनों तक घर के लोगों को ख्याल ही नहीं आता कि महावीर कहाँ हैं। बड़ा महल था। फिर खोजबीन करते कि महावीर कहाँ हैं तो पता चलता।

तो भाई ने उस समय बैठकर सोचा कि हम कहीं ज्यादती तो नहीं कर रहे हैं, कहीं हम भूल तो नहीं कर रहे हैं। हम सोचते हैं कि हम रोकते हैं, इसलिए रुक जाता है। लेकिन हमें ऐसा लगता है कि वह इसलिए रुक जाता है कि

नाहक इतनी भी उपस्थिति हमें क्यों अनुभव हो, हमें इतनी पीड़ा भी क्यों हो कि हमारी बात तोड़कर गया है। लेकिन लगता हमें ऐसा है कि वह जा चुका है। अब वह घर में है नहीं।

सब ने मिलकर कहा (और यह पृथ्वी पर घटी हुई अकेली घटना है) उन सबने, घर के लोगों ने मिलकर कहा कि आप तो जा ही चुके हैं एक अर्थ में। अब ऐसा लगता है कि पार्थिव देह पड़ी रह गयी है, आप इस घर में नहीं हैं तो हम आपके मार्ग से हट जाते हैं। क्योंकि हम अकारण आपको रोकने का कारण न बनें।

महावीर उठे और चल पड़े।

(२०) तथाता बनाम महावीर की अहिंसा

यह अहिंसा है। अहिंसा का अर्थ है गहनतम अनुपस्थिति। इसलिए मैंने कहा कि बुद्ध का जो तथाता का भाव है, वही महावीर की अहिंसा का भाव है। तथाता का अर्थ है, जैसा है स्वीकार है। अहिंसा का भी यही अर्थ है कि हम परिवर्तन के लिए जरा भी चेष्टा न करेंगे। जो हो रहा है ठीक है। जो हो जाये, ठीक है। जीवन रहे तो ठीक, मृत्यु आ जाये तो ठीक। हमारी हिंसा किस बात से पैदा होती है? इससे कि जो हो रहा है वह नहीं, जो हम चाहते हैं वह हो तो हिंसा पैदा होती है। हिंसा है क्या? इसलिए युग में जितनी ज्यादा परिवर्तन की आकांक्षा भरती है, युग उतने हिंसक होते चले जाते हैं। आदमी जितना चाहता है कि ऐसा हो, उतनी हिंसा बढ़ जायेगी।

(२१) दूसरा गाल सामने करना भी उत्तर है

महावीर की अहिंसा का अर्थ—अगर हम गहरे में खोलें, गहरे में उघाड़ें, उसकी डेप्थ में जायें—तो उसका अर्थ यह है कि जो है उसके लिए हम राजी हैं। हिंसा का कोई सवाल नहीं है, कोई बदलाहट नहीं करनी है। आपने चाँटा मार दिया, ठीक है, हम राजी हैं। हमें अब और कुछ भी नहीं करना है। बात समाप्त हो गयी। हमारा कोई प्रत्युत्तर नहीं है। इतना भी नहीं, जितना जीसस का है। जीसस कहते हैं, दूसरा गाल सामने कर दो। महावीर इतना भी नहीं कहते कि जो चाँटा मारे तुम दूसरा गाल उसके सामने करना। क्योंकि यह भी एक उत्तर है, ए सार्ट आफ आन्सर। चाँटा मारना भी

एक उत्तर है। बात जितनी थी उतने से तुमने कुछ न कुछ किया। महावीर कहते हैं करना ही हिंसा है, कर्म ही हिंसा है, अकर्म अहिंसा है। चांटा मार दिया ठीक। जैसे एक वृक्ष से सूखा पत्ता गिर गया है, ठीक है, आप अपनी राह चले गये। एक आदमी ने चांटा मार दिया, आप अपनी राह चले गये। एक आदमी ने गाली दी और आपने सुनी और आगे बढ़ गये। क्षमा करने का सवाल नहीं है, क्योंकि वह भी कृत्य है। कुछ करने का सवाल नहीं। पानी में उठी लहर अपने आप बिखर जाती है। ऐसे ही चारों तरफ लहरें उठती रहेंगी कर्म की, बिखरती रहेंगी, तुम कुछ मत करना। तुम चुपचाप गुजरते जाना। पानी में लहर उठती है, मिटानी तो नहीं पड़ती है, अपने आप मिट जाती है। इस जगत् में जो तुम्हारे चारों तरफ हो रहा है उसे होते रहने देना, वह अपने से उठेगा और गिर जायेगा। उसके उठने के नियम हैं। उसके गिरने के नियम हैं। तुम व्यर्थ बीच में मत आना। तुम चुपचाप दूर ही रह जाना, तुम तटस्थ ही रह जाना, तुम ऐसा ही जानना कि तुम नहीं थे। जब कोई चांटा मारे तो तुम ऐसा ही जानना कि तुम नहीं हो, तो उत्तर कौन देगा, गाल भी कौन करेगा, गाली कौन देगा? क्षमा कौन करेगा? तुम ऐसा जानना कि तुम नहीं हो। तुम्हारे ऐवसेंस में, तुम्हारी अनुपस्थिति में जो भी कर्म की धारा उठेगी, वह अपने से पानी में उठी लहर की तरह खो जायेगी। तुम उसे छूने भी मत जाना। हिंसा का अर्थ है कि मैं चाहता हूं कि ऐसा हो।

(२२) मेरा वश चले तो......

उमर खय्याम ने कहा है, मेरा वश चले और प्रभु तू मुझे शक्ति दे तो तेरी सारी दुनिया को तोड़कर मैं दूसरी बना दूं। अगर आपका भी वश चले तो दुनिया को आप ऐसी ही रहने देंगे, जैसे है? अरे, दुनिया तो बहुत बड़ी चीज है। छोटा-मोटा भी जैसा हो वैसा न रहने देंगे। उमर खय्याम के इस वक्तव्य में सारे मनुष्यों की कामना तो प्रगट हुई ही है, और हिंसा भी। अगर महावीर से कहा जाये कि अगर आपको पूरी शक्ति दे दी जाये तो दुनिया कैसी हो, तो महावीर कहेंगे जैसी है वैसी हो। ऐज़ इट इज़। मैं कुछ भी नहीं करूंगा।

लाओत्से ने कहा है:—श्रेष्ठतम सम्राट वह है जिसका प्रजा को पता ही नहीं चलता कि वह है भी या नहीं। महावीर की अहिंसा का अर्थ है कि ऐसे हो जाओ कि तुम्हारा पता ही नहीं चले और हमारी सारी चेष्टा ऐसी है कि हम इस भांति कैसे हो जायें कि कोई न बचे, जिसे हमारा पता न हो। कोई न

बचे जिससे हमारा पता न चले। सारी अटेंशन हम पर फोकस हो जाये। सारी दुनिया हमें देखे, हम हों उन आँखों के बीच में, सब आँखें हम पर मुड़ जायें, यही हिंसा है। और यही हिंसा है कि हम पूरे वक्त चाह रहे हैं कि ऐसा हो, और ऐसा न हो। हम पूरे वक्त चाह रहे हैं। क्यों चाह रहे हैं? चाहने का कारण है। कारण वही है जो धर्म की व्याख्या में मैंने आप से कहा है। दौड़ रहे हैं वह मकान मिले, वह धन मिले, वह पद मिले तो हिंसा से गुजरना पड़ेगा। वासना हिंसा के बिना नहीं हो सकती। किसी भी वासना की दौड़ हिंसा के बिना नहीं हो सकती है और हम ऐसा समझ सकते हैं कि वासना के लिए जिस ऊर्जा की जरूरत पड़ती है, वह हिंसा का रूप लेती है। इसलिए समझिये कि जितना वासनाग्रस्त आदमी, उतना वायलेंट, उतना ही हिंसक। जितना वासनामुक्त आदमी उतना ही अहिंसक। इसलिए जो लोग समझते हैं कि महावीर कहते हैं कि अहिंसा इसलिए है कि तुम मोक्ष पा लोगे, वे गलत समझते हैं। क्योंकि अगर मोक्ष पाने की वासना है तो आपकी अहिंसा भी हिंसक हो जायेगी। और बहुत से लोगों की अहिंसा हिंसक है। अहिंसा भी हिंसक हो सकती है। आप इतने जोर से अहिंसा के पीछे पड़ सकते हैं कि आपका पड़ना बिल्कुल हिंसक हो जायेगा। जो मोक्ष की वासना से अहिंसा के पीछे जायेगा, उसकी अहिंसा हिंसक हो जायेगी। इसलिए तथाकथित अहिंसक साधकों को अहिंसक नहीं कहा जा सकता। वे इतने जोर से लगे हैं उसके पीछे कि पा के ही रहेंगे। सब दाँव पर लगा देंगे, लेकिन पाकर ही रहेंगे। वह जो पाकर रहने का भाव है, उसमें बहुत गहरी हिंसा है। महावीर कहते हैं पाने को कुछ भी नहीं है। जो पाने योग्य है, वह पाया ही हुआ है। बदलने को कुछ भी नहीं हैं। क्योंकि यह जगत् अपने ही नियम से बदलता रहता है। क्रांति करने का कोई कारण नहीं है। क्रांति होती ही रहती है। कोई क्रांति-क्रान्ति करता नहीं, क्रान्ति होती रहती है। लेकिन क्रान्तिकारी को ऐसा लगता है कि वह क्रान्ति कर रहा है। उसका लगना वैसा ही है जैसे सागर में एक बड़ी लहर उठे और एक बहता हुआ तिनका लहर के मौके पड़ जाये और ऊपर चढ़ जाये और ऊपर चढ़कर कहे कि लहर मैंने ही उठायी है।

✓(२३) रथ के आगे चलता हुआ कुत्ता

सुना है मैंने कि जगन्नाथ का रथ निकलता था, तो एक बार एक कुत्ता रथ के आगे हो लिया। बड़े फूल बरसते थे, बड़ी नमस्कार होती थी। लोग

लोट-लोट कर जमीन पर प्रणाम करते थे। कुत्ते की अकड़ बढ़ती गयी। उसने कहा आश्चर्य है, न केवल लोग नमस्कार कर रहे हैं, बल्कि मेरे पीछे स्वर्ण रथ भी चलाया जा रहा है। हम सबका चित्त भी ऐसा ही है।

रूस में चीजेवस्की को स्टालिन ने कारागृह में डलवा दिया और मरवा डाला, क्योंकि उसने यह कहा कि क्रांतियाँ आदमियों के किये नहीं होतीं, सूरज के प्रभाव से होती हैं। और उसके कहने का कारण ज्योतिष का वैज्ञानिक अध्ययन था। उसने हजारों साल की क्रान्तियों के सारे ब्योरों की जांच पड़ताल की और सूरज के ऊपर होनेवाले परिवर्तनों की जांच पड़ताल की। फिर उसने कहा हर साढ़े ११ वर्ष में सूरज पर इतना बड़ा परिवर्तन होता है कि उसके परिणाम से पृथ्वी पर रूपान्तरण होते हैं और हर ९० वर्ष में फिर उस पर इतने बड़े परिवर्तन होते हैं कि उसके परिणाम पर पृथ्वी पर क्रांतियाँ घटित हो जाती हैं। उसने सारी क्रांतियाँ, सारे उपद्रव, सारे युद्ध सूरज पर होनेवाले कॉजमिक परिणामों से सिद्ध किये हैं। और सारी दुनिया के वैज्ञानिक मानते हैं कि चीजेवस्की ठीक कह रहा था। लेकिन स्टालिन कैसे माने। अगर चीजेवस्की ठीक कह रहा है तो १९१७ की क्रांति सूरज पर हुई किरणों के फर्क से हुई। फिर लेनिन और स्टालिन और ट्राटस्की का क्या होगा। चीजेवस्की को मरवा डालने जैसी बात थी। लेकिन स्टालिन के मरने के बाद चीजेवस्की का फिर रूस में काम शुरू हो गया। और रूस के ज्योतिष-विज्ञानी कह रहे हैं कि वह ठीक कहता है। पृथ्वी पर जो भी रूपान्तरण होते हैं, उनके कारण कॉजमिक हैं, उनके कारण में जागतिक हैं। सारे जगत् में जो रूपान्तरण होते हैं, उनके कारण जागतिक है।

(२४) ज्योतिष से बर्थ कंट्रोल

आप जानकर हैरान होंगे कि एक बहुत बड़ा प्रयोगशाला प्राग में चेक गवर्नमेण्ट ने बनाया है। जो एस्ट्रोनामिकल बर्थ कंट्रोल का काम कर रही है। और उनके परिणाम ९८ प्रतिशत सही आये। और जो आदमी मेहनत कर रहा है वहाँ इस पर, उस आदमी का दावा है कि आनेवाले १५ वर्षों में किसी तरह की गोली, किसी तरह के और कृत्रिम साधन की, बर्थ कंट्रोल के लिए जरूरत नहीं रहेगी। वह स्त्री जिस दिन पैदा हुई है, जिस दिन उसका स्वयं का गर्भाधारण हुआ था, इसकी तारीखें और सूर्य पर और चाँद तारों पर

धम्मो मंगलमुक्किट्ठम्, अहिंसा संजमो तवो।
देवो वि तं नमंसन्ति, जस्स धम्मे सया मणो॥

अर्थ :—

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन-सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तप-रूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

धर्म मंगल है। कौन सा धर्म? अहिंसा, संयम और तप। अहिंसा धर्म की आत्मा है। कल अहिंसा पर थोड़ी बातें मैंने आप से कहीं, थोड़े और आयामों से अहिंसा को समझ लेना जरूरी है।

हिंसा पैदा ही क्यों होती है? हिंसा जन्म के साथ ही क्यों जुड़ी है? हिंसा जीवन की पर्त-पर्त पर क्यों फैली है? जिसे हम जीवन कहते हैं, वह हिंसा का ही तो विस्तार है। ऐसा क्यों है? पहली बात, और अत्यधिक आधारभूत बात—वह है जीवेषणा। जीने की जो आकांक्षा है, उससे ही हिंसा जन्मती है। और जीने को हम सब आतुर हैं। अकारण भी जीने को आतुर हैं। जीवन से कुछ फलित भी न होता हो, तो भी जीना चाहते हैं। जीवन से कुछ न भी मिलता हो, तो भी जीवन को खींचना चाहते हैं। सिर्फ राख ही हाथ लगे जीवन में, तो भी हम जीवन को दोहराना चाहते हैं।

(१) जीवेषणा बनाम जीने का पागलपन

विन्सेंट वानगाग के जीवन पर एक बहुत अद्भुत किताब लिखी गयी है। किताब का नाम है 'लस्ट फार लाइफ'—जीवेषणा। अगर महावीर के जीवन पर कोई किताब लिखनी हो तो लिखना पड़ेगा, 'नो लस्ट फार लाइफ'—जीवेषणा नहीं। जीने का एक अत्यन्त पागल, विक्षिप्त भाव है हमारे मन में। मरने के आखिरी क्षण तक भी हम जीना ही चाहते हैं। और यह जो जीने की कोशिश है, यह जितनी ही विक्षिप्त होती है, उतना ही हम दूसरे के जीवन के मूल्य पर भी जीना चाहते हैं। अगर ऐसा विकल्प आ जाये कि सारे जगत् को को मिटा कर मुझे बचने की सुविधा प्राप्त हो सकती है, तो मैं राजी हो

जाऊँगा। सबको विनाश कर दूं, फिर भी मैं बच सकता हूँ तो मैं सबके विनाश के लिए तैयार हो जाऊँगा। जीवेषणा की इस विक्षिप्तता से ही हिंसा के सब रूप जनमते हैं। मरने की आखिरी घड़ी तक भी आदमी जीवन को जोर से पकड़ लेना चाहता है। बिना यह पूछे हुए कि किस लिए? जीकर भी क्या होगा? जीकर भी क्या मिलेगा?

मुल्ला नसरुद्दीन को फाँसी की सजा हो गयी थी। जब उसे फांसी के तख्ते के पास ले जाया गया तो उसने तख्ते पर चढ़ने से इन्कार कर दिया। सिपाही बहुत चकित हुए। उन्होंने कहा कि क्या बात है?

उसने कहा कि सीढ़ियाँ बहुत कमजोर मालूम पड़ती हैं। अगर गिर जाऊँ तो तुम्हारे हाथ पैर टूटेंगे कि मेरे? फाँसी के तख्ते पर चढ़ना है। सीढ़ियाँ कमजोर हैं। इन सीढ़ियों पर मैं नहीं चढ़ सकता। नयी सीढ़ियाँ लाओ।

उन सिपाहियों ने कहा, पागल हो गये हो। मरने वाले आदमी को इससे क्या प्रयोजन है?

नसरुद्दीन ने कहा, अगले क्षण का क्या भरोसा! शायद बच जाऊँ, तो लँगड़ा होकर नहीं बचना चाहता। और एक बात पक्की है कि जब तक मैं मर ही नहीं गया हूँ, तब तक मैं जीने की कोशिश करूँगा। सीढ़ियाँ नयी चाहिए।

नयी सीढ़ियाँ लगायी गयीं, तब वह चढ़ा। तिस पर भी बहुत सँभल कर चढ़ा। जब उसके गले में फन्दा ही लगा दिया गया, और मजिस्ट्रेट ने कहा, नसरुद्दीन तुझे कोई आखिरी बात तो नहीं कहनी है?

नसरुद्दीन ने कहा, 'यस, आई हैव टु से समथिंग। दिस इज गोइंग टु बी ए लैसन टु मी।' यह जो फाँसी लगायी जा रही है, यह मेरे लिए एक शिक्षा सिद्ध होगी।

मजिस्ट्रेट समझा नहीं, उसने कहा कि अब शिक्षा से भी क्या फायदा होगा।

नसरुद्दीन ने कहा कि अगर दोबारा जीवन मिला, तो जिस वजह से फाँसी लग रही है, वह काम जरा मैं सँभल कर करूँगा। दिस इज गोइंग टु बी ए लैसन टु मी। गले में फंदा लगा हो, तो भी आदमी दूसरे जीवन की बात सोचता है। दूसरा जीवन मिले, तो इस बार जिस भूल-चूक से पकड़े गये हैं और फाँसी लग रही है, वह भूल चूक नहीं करनी है, ऐसा नहीं; सँभल कर करनी है।

(२) अहिंसक बनना है तो जीवेषणा त्यागो

ऐसा ही हमारा मन है। किसी भी कीमत पर जीना है। महावीर यही पूछते हैं कि जीना क्यों है? बड़ा गहन सवाल उठाते हैं। शायद जगत् क्यों है, सृष्टि किसने रची, मोक्ष कहाँ है, ये सवाल इतने गहरे नहीं हैं। ये सवाल तो बहुत ऊपरी हैं। लेकिन महावीर पूछते हैं—जीना ही क्यों है? ह्वाई दिस लस्ट फार लाइफ? और इसी प्रश्न से महावीर का सारा चिंतन और सारी साधना निकलती है।

महावीर कहते हैं कि यह जीने की बात ही पागलपन है। जीने की आकांक्षा ही पागलपन है। और इस जीने की आकांक्षा से जीवन बचता हो, ऐसा नहीं है, केवल दूसरों के जीवन को नष्ट करने की दौड़ पैदा होती है। जीवन बच जाता तो भी ठीक था। बचता भी नहीं है। कितना भी चाहो बचना, मौत खड़ी है और आ जाती है। कितने लोग इस जमीन पर हमसे पहले जीने की कोशिश कर चुके हैं! आखिर अन्ततः मौत ही हाथ लगती है। इसीलिए महावीर कहते हैं, जीवन का पागलपन इतना है कि हम दूसरे को विनष्ट करने को तैयार हैं और अन्त में मौत ही हाथ लगती है। महावीर कहते हैं, ऐसे जीवन के पागलपन को मैं छोड़ता हूं, जिसके लिए दूसरों के जीवन को नष्ट करने के लिए तैयार होता हूँ और अपना बचा भी नहीं पाता। जो व्यक्ति जीवेषणा छोड़ देता है, वही अहिंसक हो सकता है। क्योंकि जब उसे कोई आग्रह ही नहीं है कि जीऊँ ही, तब वह किसी का विनाश करने के लिए तैयार नहीं हो सकता। इसलिए महावीर की अहिंसा के प्राण में प्रवेश करना हो, तो वह प्राण है जीवेषणा का त्याग। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि महावीर मरने की आकांक्षा रखते हैं। यहाँ यह भ्रांति हो सकती है।

फ्रायड ने इस सदी में मनुष्य के भीतर दो आकांक्षाओं को पकड़ा है। एक तो जीवेषणा और एक मृत्युएषणा। एक को वह कहता है इरोज—जीवन की इच्छा, और एक को कहता है थानाटोस, मृत्यु की इच्छा। वह कहता है कि जब जीवन की इच्छा रुग्ण हो जाती है तो मृत्यु की इच्छा में बदल जाती है। यह बात ठीक है। लोग आत्महत्याएं भी तो करते हैं। तो क्या महावीर राजी होंगे और आत्महत्या करने वालों को कहेंगे कि ठीक थे तुम? अगर जीवेषणा गलत है तो फिर मृत्यु की आकांक्षा और मृत्यु को

लाने की कोशिश ठीक होनी चाहिए। फ्रायड कहता है जिन लोगों की जीवेषणा रुग्ण हो जाती है, वे फिर मृत्युएषणा से भर जाते हैं। फिर वे अपने को मारने में लग जाते हैं। लेकिन फ्रायड को उतनी गहरी समझ नहीं है, जितनी महावीर को है। महावीर कहते हैं आत्महत्या करने वाला भी जीवेषणा से ही पीड़ित है।

(३) आत्महत्या : मरने के लिए नहीं, जीने के लिए

इसे थोड़ा समझना पड़ेगा। कभी आपने किसी आदमी को इस भाँति आत्महत्या करते देखा है, जिसकी जीवेषणा नष्ट हो गयी हो ? नहीं। मैं चाहता हूँ एक स्त्री मुझे मिले और नहीं मिलती, मैं आत्महत्या के लिए तैयार हो जाता हूँ। अगर वह मुझे मिल जाये, तो मैं आत्महत्या के लिए तैयार नहीं हूँ। मैं चाहता हूँ कि एक बड़ी प्रतिष्ठा, यश और इज्जत के साथ जीऊँ। मेरी इज्जत चली जाती है, मेरी प्रतिष्ठा गिर जाती है, तो मैं आत्महत्या करने को तत्पर हो जाता हूँ। मेरी वह प्रतिष्ठा वापस लौटती हो, मुझे वह इज्जत फिर मिलती हो, तो मैं मौत के आखिरी किनारे से वापस लौट कर आ सकता हूँ। किसी का धन खो जाता है, पद खो जाता है, तो वह मरने को तैयार है। आखिर उसका अर्थ क्या है।

महावीर कहते हैं कि यह मृत्युएषणा नहीं है। वह केवल जीवन का इतना प्रबल आग्रह है कि मैं इस ढंग से ही जीऊँगा। अगर यह ढंग मुझे नहीं मिलता, तो मैं मर जाऊँगा। इसे थोड़ा और ठीक से समझें। मैं कहता हूँ, मैं इस स्त्री के साथ ही जीऊँगा। यह जीने की आकांक्षा इतनी आग्रहपूर्ण है कि इस स्त्री के बिना मैं न जीऊँगा। मैं इस धन, इस भवन, इस पद के साथ ही जीऊँगा। अगर यह पद और धन नहीं है, तो मैं नहीं जीऊँगा। जीने की आकांक्षा ने एक विशिष्ट आग्रह पकड़ लिया है। वह आग्रह इतना गहरा है कि व्यक्ति अपने से विपरीत भी जा सकता है। वह मरने तक को तैयार हो सकता है। लेकिन गहरे में यह जीवन की ही आकांक्षा है इसलिए महावीर इस जगत् में अकेले चिन्तक हैं, जिन्होंने कहा कि मैं तुम्हें मरने की आज्ञा भी दूंगा, अगर तुममें जीवेषणा बिल्कुल न हो। वे सिर्फ अकेले विचारक हैं सारी पृथ्वी पर, अकेले धार्मिक चिन्तक हैं जिन्होंने कहा, मैं तुम्हें मरने की भी आज्ञा दूंगा, अगर तुममें जीवन की आकांक्षा बिल्कुल न रहे। लेकिन जिनमें जीवन की आकांक्षा नहीं है वह मरना तो चाहेगा। तो मरने

की चाह के पीछे भी जीवन की आकांक्षा ही होगी। उल्टे लक्षणों से बीमारियाँ नहीं बदल जातीं।

(४) लक्षण एक, बीमारी अनेक

आज से सौ साल पहले चिकित्सा शास्त्रों में एलोपैथी की एक बीमारी का नाम था ड्राप्सी, जो सौ साल में खो गया। अब उस बीमारी का नाम मेडिकल किताबों में नहीं है। हालांकि उस बीमारी के मरीज अब भी अस्पतालों में हैं, खो नहीं गये। यानी मरीज तो हैं, लेकिन वह बीमारी खो गयी। वह बीमारी इसलिए खो गयी कि पाया गया कि वह बीमारी एक नहीं है, वह सिर्फ सिम्प्टमैटिक है। ड्राप्सी उस बीमारी को कहते थे, जिसमें मनुष्य के शरीर का तरल हिस्सा किसी एक अंग में इकट्ठा हो जाता है। जैसे पैरों में सारी तरलता इकट्ठी हो गयी या पेट में सारा तरल द्रव्य इकट्ठा हो गया। सब पानी पैरों में बह गया है, या सब तरलता पेट में इकट्ठी हो गयी है। सारा शरीर सूखने लगा और पेट बढ़ने लगा क्योंकि सारी तरलता पेट में आ गयी। उसको ड्राप्सी कहते थे। अगर अस्पताल में जायें और देखें कि एक आदमी के दोनों पैरों में तरल द्रव्य इकट्ठा हो गया और एक आदमी के ऐब्डामिन में सारा तरल इकट्ठा हो गया, तो लक्षण तो एक है। सौ साल तक यही समझा जाता था कि बीमारी एक है। लेकिन पीछे पता चला कि इस तरल द्रव्य इकट्ठे होने के अनेक कारण हैं। बीमारियाँ अलग-अलग हैं। यह हृदय की खराबी से भी इकट्ठा हो सकता है। यही किडनी की खराबी से भी इकट्ठा हो सकता है। और जब किडनी की खराबी से इकट्ठा होता है, तब बीमारी दूसरी है। और जब हृदय की खराबी से इकट्ठा होता है तो बीमारी दूसरी है। इसलिए वह ड्राप्सी की बीमारी का नाम समाप्त हो गया। अब पच्चीस बीमारियाँ हैं, उनके अलग-अलग नाम हैं। यह भी हो सकता है कि लक्षण बिल्कुल एक हों और बीमारी एक हो। और यह भी हो सकता है बीमारियाँ दो हों और लक्षण बिलकुल एक हों। लक्षणों से बहुत गहरे नहीं जाया जा सकता।

महावीर ने संथारा की आज्ञा दी। महावीर ने कहा, किसी व्यक्ति में अगर जीवन की आकांक्षा शून्य हो गयी हो तो वह मृत्यु में प्रवेश कर सकता है। लेकिन पहले वह भोजन छोड़ दे, पानी छोड़ दे—भोजन और पानी छोड़ कर भी आदमी ९० दिन तक नहीं मरता। कम से कम ९० दिन जी सकता है (साधारण स्वस्थ आदमी हो तो) और जिस व्यक्ति की जीवन की आकांक्षा चली गयी

लाने की कोशिश ठीक होनी चाहिए। फ्रायड कहता है जिन लोगों की जीवेषणा रुग्ण हो जाती है, वे फिर मृत्युएषणा से भर जाते हैं। फिर वे अपने को मारने में लग जाते हैं। लेकिन फ्रायड को उतनी गहरी समझ नहीं है, जितनी महावीर को है। महावीर कहते हैं आत्महत्या करने वाला भी जीवेषणा से ही पीड़ित है।

(३) आत्महत्या : मरने के लिए नहीं, जीने के लिए

इसे थोड़ा समझना पड़ेगा। कभी आपने किसी आदमी को इस भाँति आत्महत्या करते देखा है, जिसकी जीवेषणा नष्ट हो गयी हो ? नहीं। मैं चाहता हूँ एक स्त्री मुझे मिले और नहीं मिलती, मैं आत्महत्या के लिए तैयार हो जाता हूँ। अगर वह मुझे मिल जाये, तो मैं आत्महत्या के लिए तैयार नहीं हूँ। मैं चाहता हूँ कि एक बड़ी प्रतिष्ठा, यश और इज्जत के साथ जीऊँ। मेरी इज्जत चली जाती है, मेरी प्रतिष्ठा गिर जाती है, तो मैं आत्महत्या करने को तत्पर हो जाता हूँ। मेरी वह प्रतिष्ठा वापस लौटती हो, मुझे वह इज्जत फिर मिलती हो, तो मैं मौत के आखिरी किनारे से वापस लौट कर आ सकता हूँ। किसी का धन खो जाता है, पद खो जाता है, तो वह मरने को तैयार है। आखिर उसका अर्थ क्या है।

महावीर कहते हैं कि यह मृत्युएषणा नहीं है। वह केवल जीवन का इतना प्रबल आग्रह है कि मैं इस ढंग से ही जीऊँगा। अगर यह ढंग मुझे नहीं मिलता, तो मैं मर जाऊँगा। इसे थोड़ा और ठीक से समझें। मैं कहता हूँ, मैं इस स्त्री के साथ ही जीऊँगा। यह जीने की आकांक्षा इतनी आग्रहपूर्ण है कि इस स्त्री के बिना मैं न जीऊँगा। मैं इस धन, इस भवन, इस पद के साथ ही जीऊँगा। अगर यह पद और धन नहीं है, तो मैं नहीं जीऊँगा। जीने की आकांक्षा ने एक विशिष्ट आग्रह पकड़ लिया है। वह आग्रह इतना गहरा है कि व्यक्ति अपने से विपरीत भी जा सकता है। वह मरने तक को तैयार हो सकता है। लेकिन गहरे में यह जीवन की ही आकांक्षा है इसलिए महावीर इस जगत् में अकेले चिन्तक हैं, जिन्होंने कहा कि मैं तुम्हें मरने की आज्ञा भी दूंगा, अगर तुममें जीवेषणा बिल्कुल न हो। वे सिर्फ अकेले विचारक हैं सारी पृथ्वी पर, अकेले धार्मिक चिन्तक हैं जिन्होंने कहा, मैं तुम्हें मरने की भी आज्ञा दूंगा, अगर तुममें जीवन की आकांक्षा बिल्कुल न रहे। लेकिन जिनमें जीवन की आकांक्षा नहीं है वह मरना तो चाहेगा। तो मरने

को चाह के पीछे भी जीवन की आकांक्षा ही होगी। उल्टे लक्षणों से बीमारियाँ नहीं बदल जातीं।

(४) लक्षण एक, बीमारी अनेक

आज से सौ साल पहले चिकित्सा शास्त्रों में एलोपैथी की एक बीमारी का नाम था ड्राप्सी, जो सौ साल में खो गया। अब उस बीमारी का नाम मेडिकल किताबों में नहीं है। हालांकि उस बीमारी के मरीज अब भी अस्पतालों में हैं, खो नहीं गये। यानी मरीज तो हैं, लेकिन वह बीमारी खो गयी। वह बीमारी इसलिए खो गयी कि पाया गया कि वह बीमारी एक नहीं है, वह सिर्फ सिम्प्टमैटिक है। ड्राप्सी उस बीमारी को कहते थे, जिसमें मनुष्य के शरीर का तरल हिस्सा किसी एक अंग में इकट्ठा हो जाता है। जैसे पैरों में सारी तरलता इकट्ठी हो गयी या पेट में सारा तरल द्रव्य इकट्ठा हो गया। सब पानी पैरों में बह गया है, या सब तरलता पेट में इकट्ठी हो गयी है। सारा शरीर सूखने लगा और पेट बढ़ने लगा क्योंकि सारी तरलता पेट में आ गयी। उसको ड्राप्सी कहते थे। अगर अस्पताल में जायें और देखें कि एक आदमी के दोनों पैरों में तरल द्रव्य इकट्ठा हो गया और एक आदमी के ऐब्डामिन में सारा तरल इकट्ठा हो गया, तो लक्षण तो एक है। सौ साल तक यही समझा जाता था कि बीमारी एक है। लेकिन पीछे पता चला कि इस तरल द्रव्य इकट्ठे होने के अनेक कारण हैं। बीमारियाँ अलग-अलग हैं। यह हृदय की खराबी से भी इकट्ठा हो सकता है। यही किडनी की खराबी से भी इकट्ठा हो सकता है। और जब किडनी की खराबी से इकट्ठा होता है, तब बीमारी दूसरी है। और जब हृदय की खराबी से इकट्ठा होता है तो बीमारी दूसरी है। इसलिए वह ड्राप्सी की बीमारी का नाम समाप्त हो गया। अब पच्चीस बीमारियाँ हैं, उनके अलग-अलग नाम हैं। यह भी हो सकता है कि लक्षण बिल्कुल एक हों और बीमारी एक हो। और यह भी हो सकता है बीमारियाँ दो हों और लक्षण बिलकुल एक हों। लक्षणों से बहुत गहरे नहीं जाया जा सकता।

महावीर ने संथारा की आज्ञा दी। महावीर ने कहा, किसी व्यक्ति में अगर जीवन की आकांक्षा शून्य हो गयी हो तो वह मृत्यु में प्रवेश कर सकता है। लेकिन पहले वह भोजन छोड़ दे, पानी छोड़ दे—भोजन और पानी छोड़ कर भी आदमी ९० दिन तक नहीं मरता। कम से कम ६० दिन जी सकता है (साधारण स्वस्थ आदमी हो तो) और जिस व्यक्ति की जीवन की आकांक्षा चली गयी

होती है, वह असाधारण रूप से स्वस्थ होता है। क्योंकि हमारी सारी बीमारियाँ जीने की आकांक्षा से पैदा होती हैं। इस तरह ९० दिन तक तो वह मर ही नहीं सकता। महावीर ने कहा—वह पानी छोड़ दे, भोजन छोड़ दे, लेट जाये, बैठा रहे। आत्म हत्याएँ जितनी भी की जाती हैं, क्षण के आवेश में की जाती हैं। क्षण खो जाये, तो आत्महत्या नहीं हो सकती।

क्षण का एक आवेश होता है। उस आवेश में आदमी इतना पागल होता है कि कूद पड़ता है नदी में, आग लगा लेता है। शायद आग लगाकर जब शरीर जलता है तब पछताता है, लेकिन तब हाथ के बाहर हो गयी होती है बात। जहर पी लेता है, और जब जहर फैलने लगता है तो तड़फन होती है, तब पछताता है। लेकिन तब शायद हाथ के बाहर हो गयी होती है बात। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर आत्महत्या करने वाले को हम क्षण भर के लिए रोक सकें तो वह आत्महत्या नहीं कर पायेगा। क्योंकि उस मेडनेस की जो तीव्रता है, वह तरल हो जाती है, विरल हो जाती है, क्षीण हो जाती है।

महावीर कहते हैं, मैं आज्ञा देता हूँ ध्यानपूर्वक मर जाने के लिए। भोजन-पानी छोड़ देना ६० दिन। अगर उस आदमी में जरा सी भी जीवेषणा होगी, तो भाग खड़ा होगा, लौट जायेगा। अगर जीवेषणा बिल्कुल न होगी तो ही ६० दिन वह रुक पायेगा। ९० दिन लम्बा समय है। मन एक ही अवस्था में ६० दिन रह जाय, यह आसान घटना नहीं है। ६० क्षण नहीं रह पाता। सुबह सोचते थे मर जायेंगे, साँझ सोचते हैं कि दूसरे को मार डालेंगे। इसलिए फ्रायड को मानने वाले मनोवैज्ञानिक कहेंगे कि महावीर में कहीं न कहीं 'स्युसायडल' तत्व हैं, कहीं न कहीं आत्महत्या वाले तत्व हैं। लेकिन मैं आप से कहता हूँ, ऐसी बात नहीं है। असल में जिस व्यक्ति में जीवेषणा नहीं है, उसमें मरने की एषणा भी नहीं होगी। मृत्यु की एषणा जीवेषणा का दूसरा पहलू है (विरुद्ध नहीं है, उसी का अंग है) इसलिए महावीर ने मृत्यु की कोई चेष्टा नहीं की। जिसकी जीवन की चेष्टा ही नहीं रही हो, उसकी मृत्यु की चेष्टा भी नहीं रह जाती! महावीर कहते हैं, एक हिस्से को हम फेंक दें, दूसरा हिस्सा उसके साथ ही चला जाता है। संथारा का महावीर का अर्थ है, आत्महत्या नहीं, जीवेषणा का इतना खो जाना कि पता ही न चले और व्यक्ति शून्य में लीन हो जाये। आत्महत्या की इच्छा नहीं क्योंकि जहाँ तक इच्छा है, वहाँ तक जीवन की भी इच्छा होगी।

इसे ठीक से समझ लें। 'डिजायर इज आलवेज डिजायर फार दि लाइफ—आलवेज।' मृत्यु की कोई इच्छा ही नहीं होती। मृत्यु की इच्छा में ही जीवन की इच्छा भी छिपी होती है, जीवन का कोई आग्रह छिपा होता है। तो महावीर कोई आत्मघाती नहीं हैं। उतना बड़ा आत्मज्ञानी नहीं हुआ आज तक, आत्मघाती होने का तो सवाल ही नहीं है।

(५) महावीर के पीछे आत्मघाती अनुयायी

लेकिन यह बात जरूर सच है कि महावीर के विचार में बहुत से आत्मघाती उत्सुक हुए, बहुत से आत्मघाती महावीर से आकर्षित हुए। और उन आत्मघातियों ने महावीर के पीछे एक परम्परा खड़ी की, जिसका महावीर से कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसे लोग जरूर उत्सुक हुए महावीर के पीछे, जिनको लगा कि ठीक है, मरने की इतनी सुगमता और कहाँ मिलेगी, मरने का इतना सहयोग कहाँ मिलेगा, मरने की इतनी सुविधा और कहाँ मिलेगी! इसलिए महावीर के पीछे ऐसे लोग जरूर आये जिनका चित्त रुग्ण था, जो मरना चाहते थे। जीवन की आकांक्षा के त्याग से वे महावीर के करीब नहीं आये थे, मरने की आकांक्षा के कारण वे महावीर के करीब आ गये। लक्षण बिलकुल एक से हैं, लेकिन भीतर व्यक्ति बिलकुल अलग थे। जो मरने की इच्छा से आये, वे महावीर की परम्परा में बहुत आग्रणी हो गये। स्वभावतः जो मरने को तैयार है उसको नेता होने में कोई असुविधा नहीं होती। क्या असुविधा हो सकती है उसे! जो मरने को तैयार है वह पंक्ति में कभी भी आगे खड़ा होने को तैयार है और जो अपने को सताने को तैयार है वह लगा कि बड़ा त्यागी है। ध्यान रहे, इससे महावीर कें विचार को आज की दुनिया में पहुंचने में बड़ी कठिनाई हो गयी। क्योंकि महावीर का विचार मालूम होता है मैसोचिस्ट है, अपने को सतानेवाला है, आत्मपीड़क है। लेकिन महावीर की देह को देखकर ऐसा नहीं लगता है कि इस आदमी ने अपनी देह को सताया होगा। महावीर की प्रफुल्लता देखकर ऐसा नहीं लगता है कि इस आदमी ने अपने को सताया होगा। महावीर का खिला हुआ कमल देखकर ऐसा नहीं लगता कि इस आदमी ने अपनी जड़ों के साथ ज्यादती की होगी। मैं मानता हूँ कि महावीर रंचमात्र भी आत्मपीड़क नहीं हैं। लेकिन महावीर के पीछे आत्मपीड़कों की परम्परा इकट्ठी हुई, यह जरूर सच है। वे अपने को सता सकते थे या सताने के लिए उत्सुक थे, बहुत उत्सुक थे।

(६) सताने वालों का मजा

इस जगत् में दो तरह की हिंसाएँ हैं। एक वह, जिसे दूसरे को सताने में उत्सुक लोग करते हैं और एक और तरह की हिंसा है, जिसे अपने को सताने के लिए उत्सुक लोग करते हैं। अपने को सताने में कुछ लोगों को उतना ही मजा आता है जितना कि दूसरे को सताने में। बल्कि सच पूछा जाये तो दूसरे को सताने में आपको कभी इतना अधिकार नहीं होता है, इतनी सुविधा और स्वतंत्रता नहीं होती है, जितनी अपने को सताने में होती है। कोई विरोध ही करने वाला नहीं है। आप दूसरे को काँटे पर लिटायें, तो वह अदालत में मुकदमा चलायेगा। आप खुद को काँटों पर लिटायें, तो मुकदमा नहीं चल सकता है, वरन् सम्मान मिल सकता है। आप दूसरे को भूखा मारें तो आप झंझट में पड़ सकते हैं, आप अपने को भूखा मारें तो जुलूस निकल सकता है, शोभायात्रा निकल सकती है। लेकिन ध्यान रखें, सताने का जो सुख है, वह एक ही है। महावीर कहते हैं कि जो अपने को सता रहा है, वह भी दूसरे को सता रहा है। क्योंकि वह अपने में दो हिस्से कर लेता है। वह शरीर को सताने लगता है, जो कि वस्तुतः दूसरा है। यह शरीर, जो मेरे आसपास है, उतना ही दूसरा है मेरे लिए, जितना आपका शरीर जो जरा दूर है। इसमें भेद नहीं है। यह शरीर मेरे निकट है, इसलिए मैं नहीं है। और आपका शरीर जरा दूर है, तो तू हो गया! मैं आपके शरीर में काँटे चुभाऊँ तो लोग कहेंगे यह आदमी दुष्ट है। और मैं अपने शरीर में काँटे चुभाऊँ तो लोग कहेंगे कि यह आदमी महात्यागी है!

लेकिन शरीर दोनों ही स्थिति में दूसरा है। यह मेरा शरीर उतना ही दूसरा है, जितना आपका शरीर। सिर्फ फर्क इतना है कि अपने शरीर को सताते वक्त कोई कानूनी बाधा नहीं पड़ेगी, कोई नैतिकता बाधा नहीं बनेगी। इसलिए जो होशियार हैं, कुशल हैं, वे सताने का मजा अपने ही शरीर को सताकर लेते हैं। लेकिन सताने का मजा एक ही है। क्या है मजा? जिसको हम सता पाते हैं, लगता है, उसके हम मालिक हो गये हैं, उसके हम स्वामी हो गये हैं। जिसकी हम गर्दन दबा पाते हैं, लगता है, हम उसके स्वामी हो गये हैं। महावीर के पीछे मेसोचिस्ट इकट्ठे हो गये। उन्हीं ने महावीर की पूरी परम्परा को विषाक्त किया, जहर डाल दिया।

यद्यपि महावीर का कारण कुछ और था, लेकिन इन्हें वह कारण अपील किया, जंचा। कारण यह था कि महावीर कहते थे कि जब तक मैं जीवन के लिए पागल हूँ तब तक अंधेपन में देख न पाऊँगा। क्योंकि दूसरे के जीवन को नष्ट करने के लिए ही आतुर हो गया हूँ। और जीवन के लिए पागल होना व्यर्थ है। क्योंकि जीवन का बचना असम्भव है। जीवन को बचाया नहीं जा सकता है। जन्म के साथ ही मृत्यु प्रवेश कर जाती है। इसलिए जो इम्पासिबुल हैं, उसके पीछे सिर्फ पागलपन है। जो असम्भव है, उसके पीछे सिर्फ पागलपन खड़ा होता है। मृत्यु होगी ही। वह उसी दिन तय हो गयी, जिस दिन जीवन हुआ। इसलिए महावीर कहते हैं, जीवन के लिए इतनी आकांक्षा ही हिंसा बन जाती है। इसे समझना है। इसे समझते ही जीवेषणा शून्य होने लगती है। और जब जीवेषणा शून्य होने लगती तो मृत्यु की इच्छा पैदा नहीं होती है। मृत्यु का स्वीकार पैदा होता है। इसमें भेद है।

मृत्यु की इच्छा तो पैदा होती है जीवेषणा को चोट लगे तब, और मृत्यु का स्वीकार पैदा होता है जब जीवेषणा क्षीण हो तब, शान्त हो तब। महावीर मृत्यु को स्वीकार करते हैं। मृत्यु को स्वीकार करना अहिंसा है। मृत्यु को अस्वीकार करना हिंसा है। और जब मैं अपनी मृत्यु अस्वीकार करता हूँ, तो मैं दूसरे की मृत्यु को स्वीकार करता हूँ। और जब मैं अपनी मृत्यु को स्वीकार करता हूँ, तो मैं सबके जीवन को स्वीकार करता हूँ। यह गणित है। अपने जीवन को स्वीकार करता हूँ, तो मैं दूसरे के जीवन को इंकार करने के लिए तैयार हूँ। और जब मैं अपनी मृत्यु को परिपूर्ण भाव से स्वीकार करता हूँ कि ठीक है वह तो नियति है, तब मैं किसी के जीवन को चोट पहुँचाने के लिए जरा भी उत्सुक नहीं रह जाता। उसके जीवन को भी चोट पहुँचाने के लिए उत्सुक नहीं रह जाता, जो मेरे जीवन को चोट पहुंचाये। क्योंकि मेरे जीवन को चोट पहुँचाकर ज्यादा से ज्यादा वह क्या कर सकता है। मृत्यु तो होने ही वाली है, वह सिर्फ निमित्त बन सकता है। अगर कोई तुम्हारी हत्या भी कर जाय तो वह सिर्फ निमित्त है, कारण नहीं है। कारण तो मृत्यु है, जो जीवन के भीतर ही छिपी है। इसलिए उस पर नाराज होने की भी कोई जरूरत नहीं है। ज्यादा से ज्यादा धन्यवाद दिया जा सकता है। जो होने ही वाला था, उसमें यह सहयोगी हो गया। अगर यह एक बात हमें ख्याल में आ जाये कि यह होने ही वाला था, तो हम फिर किसी पर नाराज नहीं हो सकते।

महावीर कहते हैं मृत्यु का अंगीकार करो। मृत्यु का अंगीकार इसलिए नहीं कि मृत्यु कोई महत्वपूर्ण चीज है। बल्कि इसलिए ही कि मृत्यु बिलकुल ही गैरमहत्वपूर्ण चीज है। जब जीवन ही गैरमहत्वपूर्ण है, तो फिर मृत्यु महत्वपूर्ण कैसे हो सकती है। ध्यान रहे, मृत्यु का उतना ही आपके मन में मूल्य होता है जितना जीवन का मूल्य होता है। मृत्यु को जो मूल्य मिलता है, वह रिफलेक्टेड वैल्यु है। आप जीवन को जितना मूल्य देते हैं उतना ही मूल्य मृत्यु को देते हैं। अगर आप कहते हैं कि जीना ही है किसी कीमत पर, तो आप कहेंगे कि मरना नहीं है किसी कीमत पर। यह बात साथ-साथ चलेगी। आप कहते हैं, चाहे कुछ भी हो जाये, लेकिन मैं जीऊँगा ही, तो फिर आप यह भी कह सकते हैं कि चाहे कुछ भी हो जाये, मैं मरूँगा ही। आप जितना जीवन को मूल्य देते हैं, उतना ही मूल्य मृत्यु में स्थापित हो जाता है। और ध्यान रहे जितना मूल्य मृत्यु में स्थापित हो जाता है, उतने ही आप मुश्किल में पड़ जाते हैं। महावीर कहते हैं, जीवन में मूल्य कोई नहीं है तो मृत्यु का भी मूल्य समाप्त हो जाता है। और जिसके चित्त में न जीवन का मूल्य है न मृत्यु का, क्या वह आपको मारने आयेगा? क्या वह आपको सताने में रस लेगा? क्या वह आप को समाप्त करने में उत्सुक होगा? हम कितना मूल्य किसी चीज को देते हैं, उस पर ही सब निर्भर करता है।

(७) नसरुद्दीन और चार चोरों की दास्तान

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक अँधेरी रात में एक गाँव से गुजर रहा था। चार चोरों ने उस पर हमला कर दिया। वह जी तोड़ कर लड़ा। इस बुरी तरह लड़ा कि अगर वे चार न होते तो एकाध की हत्या हो जाती। वे चार थोड़ी ही देर में अपने को बचाने में लग गये, आक्रमण भूल गये। फिर भी चार थे। बामुश्किल घंटों लड़ाई के बाद किसी तरह मुल्ला पर कब्जा पा सके। और जब उसकी जेब टटोली, तो केवल एक पैसा मिला। वे बहुत हैरान हुए और कहा कि मुल्ला एक पैसे में तो यह हाल था, अगर एकाध आना तुम्हारे खीसे में होता, तो हम चारों की जान की खैरियत न थी। एक पैसे के लिए तुम इतना लड़े कि हद कर दी। हमने तुम जैसा आदमी नहीं देखा। चमत्कार हो तुम।

मुल्ला ने कहा, उसका कारण है। पैसे का सवाल नहीं है। आई डोंट वांट टू एक्सपोज माई पर्सनल फाइनेंसियल पोजीशन टू अवाइट स्ट्रेंजर्स। मैं बिल्कुल

अजनबियों के सामने अपनी माली हालत प्रकट नहीं करना चाहता था। यह सवाल माली हालत के प्रकट करने का है। और तुम ठहरे अजनबी। सवाल पैसे का नहीं है, सवाल पैसे के मूल्य का है। एक पैसा है कि करोड़, यह सवाल नहीं है। अगर पैसे में मूल्य है तो एक में भी मूल्य है और करोड़ में भी मूल्य है। और अगर करोड़ में भी मूल्य है तो एक में भी मूल्य होगा।

सुना है मैंने कि मुल्ला एक अजनबी देश में गया, एक अपरिचित देश में। एक लिफ्ट में सवार होकर जा रहा था। एक अकेली सुन्दर औरत उसके साथ थी। उसने उस स्त्री से कहा कि क्या ख्याल है। सौ रुपये में सौदा पट सकता है?

उस स्त्री ने चौंक कर देखा। उसने कहा कि ठीक है।

मुल्ला ने कहा कि पाँच रुपए में बात बनेगी?

उस स्त्री ने कहा, तुम समझते क्या हो मुझे?

मुल्ला ने कहा, 'दैट वी हैव डिसाइडेड। नाउ इज दि क्वेश्चन आफ द वैल्यू, प्राइज।' वह तो हमने तय कर लिया है कि कौन हो तुम, वह तो मैंने सौ रुपये पूछ कर तय कर लिया। अब हम कीमत तय कर रहे हैं। अगर सौ रुपये में एक स्त्री बिक सकती है तो यह सवाल नहीं कि पाँच रुपये में क्यों नहीं बिक सकती? वह तो तय हो गया कि तुम कौन हो, उसके बावत चर्चा करने की जरूरत नहीं। अब मैं अपनी जेब पर ख्याल करता हूँ कि अपने पास पैसे कितने हैं। उसके अनुसार मूल्य तय करूँ।

(८) जीवन और मृत्यु : मूल्य का समीकरण

हमारी जिन्दगी में जो भी मूल्य है, वह करोड़ का है या एक पैसे का, यह सवाल नहीं है। धन का मूल्य है तो फिर एक पैसे में भी मूल्य है, करोड़ में भी मूल्य है। मूल्य ही नहीं है, तो फिर पैसे में भी नहीं है, और करोड़ में भी नहीं है। एक पैसे में जितना मूल्य है, उसके खोने में उतनी ही पीड़ा है। वह पीड़ा भी उतनी ही मूल्यवान है। अगर जीवन ही निर्मूल्य है तो मृत्यु में क्या मूल्य रह जाता है! अथवा जीवन से संबंधित जो सारा विस्तार है, उसमें क्या मूल्य रह जाता है! जिसके लिए जीवन ही निर्मूल्य है, उसके लिए धन का कोई मूल्य होगा? क्योंकि धन का सारा मूल्य जीवन की सुरक्षा के लिए

महावीर कहते हैं मृत्यु का अंगीकार करो। मृत्यु का अंगीकार इसलिए नहीं कि मृत्यु कोई महत्वपूर्ण चीज है। बल्कि इसलिए ही कि मृत्यु बिलकुल ही गैरमहत्वपूर्ण चीज है। जब जीवन ही गैरमहत्वपूर्ण है, तो फिर मृत्यु महत्वपूर्ण कैसे हो सकती है। ध्यान रहे, मृत्यु का उतना ही आपके मन में मूल्य होता है जितना जीवन का मूल्य होता है। मृत्यु को जो मूल्य मिलता है, वह रिफलेक्टेड वैल्यु है। आप जीवन को जितना मूल्य देते हैं उतना ही मूल्य मृत्यु को देते हैं। अगर आप कहते हैं कि जीना ही है किसी कीमत पर, तो आप कहेंगे कि मरना नहीं है किसी कीमत पर। यह बात साथ-साथ चलेगी। आप कहते हैं, चाहे कुछ भी हो जाये, लेकिन मैं जीऊँगा ही, तो फिर आप यह भी कह सकते हैं कि चाहे कुछ भी हो जाये, मैं मरूँगा ही। आप जितना जीवन को मूल्य देते हैं, उतना ही मूल्य मृत्यु में स्थापित हो जाता है। और ध्यान रहे जितना मूल्य मृत्यु में स्थापित हो जाता है, उतने ही आप मुश्किल में पड़ जाते हैं। महावीर कहते हैं, जीवन में मूल्य कोई नहीं है तो मृत्यु का भी मूल्य समाप्त हो जाता है। और जिसके चित्त में न जीवन का मूल्य है न मृत्यु का, क्या वह आपको मारने आयेगा? क्या वह आपको सताने में रस लेगा? क्या वह आप को समाप्त करने में उत्सुक होगा? हम कितना मूल्य किसी चीज को देते हैं, उस पर ही सब निर्भर करता है।

(७) नसरुद्दीन और चार चोरों की दास्तान

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक अंधेरी रात में एक गाँव से गुजर रहा था। चार चोरों ने उस पर हमला कर दिया। वह जी तोड़ कर लड़ा। इस बुरी तरह लड़ा कि अगर वे चार न होते तो एकाध की हत्या हो जाती। वे चार थोड़ी ही देर में अपने को बचाने में लग गये, आक्रमण भूल गये। फिर भी चार थे। बामुश्किल घंटों लड़ाई के बाद किसी तरह मुल्ला पर कब्जा पा सके। और जब उसकी जेब टटोली, तो केवल एक पैसा मिला। वे बहुत हैरान हुए और कहा कि मुल्ला एक पैसे में तो यह हाल था, अगर एकाध आना तुम्हारे खीसे में होता, तो हम चारों की जान की खैरियत न थी। एक पैसे के लिए तुम इतना लड़े कि हद कर दी। हमने तुम जैसा आदमी नहीं देखा। चमत्कार हो तुम।

मुल्ला ने कहा, उसका कारण है। पैसे का सवाल नहीं है। आई डोंट वांट टू एक्सपोज माई पर्सनल फाइनेंसियल पोजीशन टू स्ट्रैंजर्स। मैं बिल्कुल

अजनबियों के सामने अपनी माली हालत प्रकट नहीं करना चाहता था। यह सवाल माली हालत के प्रकट करने का है। और तुम ठहरे अजनबी। सवाल पैसे का नहीं है, सवाल पैसे के मूल्य का है। एक पैसा है कि करोड़, यह सवाल नहीं है। अगर पैसे में मूल्य है तो एक में भी मूल्य है और करोड़ में भी मूल्य है। और अगर करोड़ में भी मूल्य है तो एक में भी मूल्य होगा।

सुना है मैंने कि मुल्ला एक अजनबी देश में गया, एक अपरिचित देश में। एक लिफ्ट में सवार होकर जा रहा था। एक अकेली सुन्दर औरत उसके साथ थी। उसने उस स्त्री से कहा कि क्या ख्याल है। सौ रुपये में सौदा पट सकता है?

उस स्त्री ने चौंक कर देखा। उसने कहा कि ठीक है।

मुल्ला ने कहा कि पाँच रुपए में बात बनेगी?

उस स्त्री ने कहा, तुम समझते क्या हो मुझे?

मुल्ला ने कहा, 'दैट वी हैव डिसाइडेड। नाउ इज दि क्वेश्चन आफ द वैल्यू, प्राइज।' वह तो हमने तय कर लिया है कि कौन हो तुम, वह तो मैंने सौ रुपये पूछ कर तय कर लिया। अब हम कीमत तय कर रहे हैं। अगर सौ रुपये में एक स्त्री बिक सकती है तो यह सवाल नहीं कि पाँच रुपये में क्यों नहीं बिक सकती? वह तो तय हो गया कि तुम कौन हो, उसके बाबत चर्चा करने की जरूरत नहीं। अब मैं अपनी जेब पर ख्याल करता हूँ कि अपने पास पैसे कितने हैं। उसके अनुसार मूल्य तय करूँ।

(८) जीवन और मृत्यु : मूल्य का समीकरण

हमारी जिन्दगी में जो भी मूल्य है, वह करोड़ का है या एक पैसे का, यह सवाल नहीं है। धन का मूल्य है तो फिर एक पैसे में भी मूल्य है, करोड़ में भी मूल्य है। मूल्य ही नहीं है, तो फिर पैसे में भी नहीं है, और करोड़ में भी नहीं है। एक पैसे में जितना मूल्य है, उसके खोने में उतनी ही पीड़ा है। वह पीड़ा भी उतनी ही मूल्यवान है। अगर जीवन ही निर्मूल्य है तो मृत्यु में क्या मूल्य रह जाता है! अथवा जीवन से संबंधित जो सारा विस्तार है, उसमें क्या मूल्य रह जाता है! जिसके लिए जीवन ही निर्मूल्य है, उसके लिए धन का कोई मूल्य होगा? क्योंकि धन का सारा मूल्य जीवन की सुरक्षा के लिए

है। जिसके लिए जीवन ही निर्मूल्य हैं, उसके लिए महल का कोई मूल्य होगा ? क्योंकि महल का सारा मूल्य ही जीवन की सुरक्षा के लिए है। जिसके लिए जीवन का कोई मूल्य नहीं, उसके लिए पद का कोई मूल्य होगा ? क्योंकि पद का सारा मूल्य ही जीवन के लिए है। जीवन का मूल्य शून्य हुआ कि सारे विस्तार का मूल्य शून्य हो जाता है, सारी माया गिर जाती है। और जब जीवन का ही मूल्य न रहा तो मृत्यु का क्या मूल्य होगा ? क्योंकि मृत्यु में उतना ही मूल्य था, जितना जीवन में हम डालते हैं। जितना लगता था कि जीवन को बचाऊँ, उतना मृत्यु से बचने का सवाल उठता था। जब जीवन को बचाने की कोई बात न रही, तो मृत्यु हो या न हो, बराबर हो गया। जिस दिन मेरे जीवन का कोई मूल्य नहीं रह गया, उस दिन मेरी मृत्यु शून्य हो जाती है। और महावीर कहते हैं कि उसी दिन अमृत के द्वार खुलते हैं, महाजीवन के, परम जीवन के; जिसका कोई अन्त नहीं है। इसलिए महावीर कहते हैं, अहिंसा धर्म का प्राण है। उसी से अमृत का द्वार खुलता है। उसी से हम उसे जान पाते हैं कि जिसका कोई अन्त नहीं, जिसका कोई प्रारंभ नहीं, जिस पर कभी कोई बीमारी नहीं आती और जिस पर कभी दुःख और पीड़ा नहीं उतरती। जहाँ कोई संताप नहीं, जहाँ कोई मृत्यु भी घटित नहीं होती, जहाँ रंचमात्र अंधकार के उतरने की कोई सुविधा नहीं, जहाँ प्रकाश ही प्रकाश है। इसलिए महावीर को मृत्युवादी नहीं कहा जा सकता। उनसे बड़ा अमृत का तलाशी नहीं है कोई। लेकिन अमृत की तलाश में उन्होंने जीवेषणा को सबसे बड़ी बाधा पाया ?

जीवेषणा इसलिए बाधा है कि जीवेषणा के चक्कर में आप वास्तविक जीवन की खोज से वंचित रह जाते हैं। जीने की इच्छा और जीने की कोशिश आप पता ही नहीं लगा पाते कि जीवन क्या है।

(९) मुल्ला व्याख्यान देने चले

मुल्ला भागा जा रहा है एक गांव में। उसे व्याख्यान देना है। वह मस्जिद में धर्म के संबंध में, ईश्वर के संबंध में बोलने जा रहा है। एक आदमी उससे पूछता है कि मुल्ला, ईश्वर के संबंध में तुम्हारा क्या विचार है ?

मुल्ला कहता है, अभी विचार करने की फुरसत नहीं, अभी मैं व्याख्यान देने जा रहा हूँ। 'आई हैव नो टाइम टु थिंक नाउ।' व्याख्यान देने जा रहा हूँ, अभी बकवास में मत डालो।

बोलने की फिक्र में अक्सर आदमी सोचना भूल जाते हैं और दौड़ने के इन्तजाम में अक्सर आदमी मंजिल भूल जाते हैं। कमाने की चिन्ता में अक्सर आदमी भूल जाते हैं कि किसलिए ? जीने की कोशिश में ख्याल ही नहीं आता कि क्यों ? सोचते हैं—पहले कोशिश तो कर लें, फिर 'क्यों' की तलाश कर लेंगे। किसलिए बचा रहे हैं, यह ख्याल ही मिट जाता है। जो बचा रहे हैं उसमें ही इतने संलग्न हो जाते हैं कि वही 'एंड अनटु इटसेल्फ', अपना अपने में ही अन्त बन जाता है।

एक आदमी धन इकट्ठा करता चला जाता है। पहले वह शायद सोचता भी रहा होगा कि यह संग्रह किसलिए ? फिर धन इकट्ठा करना ही लक्ष्य हो जाता है और उसे याद नहीं रहता कि किसलिए। वह मर जाता है इकट्ठा करता-करता। लेकिन नहीं बता सकता कि किसलिए इकट्ठा कर रहा है। इतना ही कह सकता है कि अब इकट्ठा करने में मजा आने लगा है। इसी तरह जीने में भी मजा आने लगता है। किसलिए जीना है, क्यों जीना है, जीवन क्या है, यह सब भूल जाता है। महावीर कहते हैं जीवेषणा जीवन की वास्तविक तलाश से वंचित कर देती है। वह सिर्फ मरने से बचने का इंतजाम बन जाती है, अमृत को जानने का नहीं। यानी सिर्फ हम डिफेंस की हालत में लगे हैं चौबीस घंटे। मर न जायें बस इतनी ही कोशिश है। सब कुछ करने को तैयार हैं, कि मर न जायें। लेकिन जीकर करेंगे क्या ? तो हम कहते हैं पहले मरने का बचाव हो जाये, फिर सोच लेंगे। इस तरह मृत्यु से बचने की कोशिश अमृत से बचाव हो जाती है। जीवन बचाने की कोशिश जीवन के वास्तविक रूप को, परम रूप को जानने में रुकावट बन जाती है। महावीर मृत्युवादी नहीं हैं। महावीर इस जीवेषणा की दौड़ को रोकते ही इसलिए हैं ताकि हम उस परम जीवन को जान सकें, जिसे बचाने की कोई जरूरत नहीं है, जो बचा ही हुआ है। जिसे कोई मिटा नहीं सकता, क्योंकि उसके मिटने का कोई उपाय भी नहीं है। उस जीवन को जानकर व्यक्ति अभय हो जाता है। और जो अभय हो जाता है, वह दूसरे को भयभीत नहीं करता।

(१०) महावीर के अर्थ में अहिंसा

हिंसा दूसरे को भयभीत करती हैं। आप अपने को बचाते हैं, दूसरे में भय पैदा करके। आप दूसरे को दूर रखते हैं फासले पर। अपने और दूसरे के बीच में अनेक तरह की तलवारें आप अटका रखते हैं। और जरा सा भी किसी ने आप की सीमा का अतिक्रमण किया कि आपकी तलवारें उसकी छाती में घुस जाती हैं। अतिक्रमण न भी किया हो, बस आप शंकित भर हो गये हों कि अतिक्रमण किया है तो भी तलवारें घुस जाती हैं। व्यक्ति भी ऐसे ही जीते हैं, समाज भी ऐसे ही जीते हैं, राष्ट्र भी ऐसे ही जीते हैं। इसलिए सारा जगत् हिंसा में जीता है, भय में जीता है। महावीर कहते हैं सिर्फ अहिंसक ही अभय को उपलब्ध हो सकता है। और जिसने अभय नहीं जाना, वह अमृत को कैसे जानेगा? भय को जानने वाला मृत्यु को ही जानता रहता है। महावीर की अहिंसा का आधार है जीवेषणा से मुक्ति। जीवेषणा से मुक्ति मृत्यु की एषणा से भी मुक्ति हो जाती हैं। और इसके साथ ही जो घटित होता है चारों तरफ, हमने उसी को मूल्यवान समझ रखा है। महावीर एक चींटी पर पैर नहीं रखते हैं। इसलिए नहीं कि महावीर बहुत उत्सुक हैं चींटी को बचाने को। महावीर इसलिए चींटी पर पैर नहीं रखते, या सांप पर पैर नहीं रखते, या बिच्छू पर भी पैर नहीं रखते हैं; क्योंकि महावीर अब अपने को बचाने को बहुत उत्सुक नहीं हैं। उत्सुक ही नहीं हैं। अब उनका किसी से कोई संघर्ष ही न रहा, क्योंकि सारा संघर्ष इसी बात में था कि मैं अपने को बचाऊँ। अब वे तयार हैं; जीवन तो जीवन, मृत्यु तो मृत्यु; उजाला तो उजाला, अँधेरा तो अँधेरा। अब वे हर बात के लिए तैयार हैं। उनकी स्वीकृति परम है। इसलिए मैंने कहा कि बुद्ध ने जिसे तथाता कहा है महावीर उसे ही अहिंसा कहते हैं। लाओत्से ने जिसे 'टोटल एक्सेप्टिबिलिटी' कहा है कि सब स्वीकार करता हूँ, उसे ही महावीर ने अहिंसा कहा है। जिसे सब स्वीकार है, वह हिंसक कैसे हो सकेगा? हिंसक न होने का कोई निषेधात्मक कारण नहीं है, विधायक कारण है, क्योंकि सब स्वीकार है। इसलिए निषेध का कोई कारण नहीं है। किसी को मिटाने का, किसी को मिटाने की तैयारी करने का

कोई कारण नहीं है। हाँ अगर कोई मिटाने आता हो, तो महावीर उसके लिए तैयार हैं। इस तैयारी में भी ध्यान रखें कि कोई प्रयत्न नहीं है महावीर का, कि वे सँभल कर तैयार हो जायेंगे कि ठीक है मारो। वे खड़े ही रहेंगे। जैसे कि वे थे ही नहीं, अनुपस्थित थे।

(११) मेरे की चहारदीवारी में घिरा मैं

इसके एक हिस्से पर और ख्याल कर लेना जरूरी है। जितने जोर से हम अपने को बचाना चाहते हैं, हमारा वस्तुओं का बचाव उतना ही प्रगाढ़ हो जाता है। जीवेषणा 'मेरे' का फैलाव बनती है। यह मेरा है, ये पिता मेरे हैं, यह माँ मेरी है, यह भाई मेरा है, यह पत्नी मेरी है, यह मकान मेरा है, यह धन मेरा है—हम मेरे का एक जाल खड़ा करते हैं अपने चारों तरफ। वह इसलिए खड़ा करते हैं कि उसके भीतर ही हमारा मैं बच सकता है। अगर मेरा कोई भी नहीं तो मैं निपट अकेला महसूस करके बहुत भयभीत हो जाऊँगा। कोई मेरा है, तो सहारा है, सेफ्टी है, सुरक्षा है। इसलिए जितनी ज्यादा चीजें आप इकट्ठी कर लेते हैं, उतने ही आप अकड़ कर चलने लगते हैं। लगता है कि जैसे अब आप का कोई कुछ बिगाड़ न सकेगा। एक चीज भी आपके हाथ से छूटती है, तो किन्हीं गहरे अर्थों में आपको मृत्यु का अनुभव होता है। अगर आपकी कार टूट जाती है तो सिर्फ कार नहीं टूटती है, आपके भीतर भी कुछ टूटता है। आपकी पत्नी मरती है तो पत्नी नहीं मरती, पति के भीतर भी कुछ मर जाता है, खाली हो जाता है। असली पीड़ा पत्नी के मरने से नहीं होती है। असली पीड़ा मेरे के फैलाव के कम हो जाने से होती है कि एक जगह और टूट गयी। एक मोर्चा असुरक्षित हो गया। एक जगह पहरा कम हो गया। वहाँ से अब खतरा आ सकता है।

(१२) पत्नी की तस्वीरें : यह प्रेम है या पहरा

एक मित्र हैं मेरे। पत्नी मर गयी है उनकी। तो उन्होंने पत्नी की तस्वीरें सारे मकान में, बैठक, दरवाजे, सब जगह लगा रखी हैं। किसी से मिलते-जुलते नहीं, तस्वीरें ही देखते रहते हैं। उनके किसी मित्र ने मुझसे कहा कि ऐसा प्रेम पहले नहीं देखा। अद्भुत प्रेम है।

(१०) महावीर के अर्थ में अहिंसा

हिंसा दूसरे को भयभीत करती हैं। आप अपने को बचाते हैं, दूसरे में भय पैदा करके। आप दूसरे को दूर रखते हैं फासले पर। अपने और दूसरे के बीच में अनेक तरह की तलवारें आप अटका रखते हैं। और जरा सा भी किसी ने आप की सीमा का अतिक्रमण किया कि आपकी तलवारें उसकी छाती में घुस जाती हैं। अतिक्रमण न भी किया हो, बस आप शंकित भर हो गये हों कि अतिक्रमण किया है तो भी तलवारें घुस जाती हैं। व्यक्ति भी ऐसे ही जीते हैं, समाज भी ऐसे ही जीते हैं, राष्ट्र भी ऐसे ही जीते हैं। इसलिए सारा जगत् हिंसा में जीता है, भय में जीता है। महावीर कहते हैं सिर्फ अहिंसक ही अभय को उपलब्ध हो सकता है। और जिसने अभय नहीं जाना, वह अमृत को कैसे जानेगा? भय को जानने वाला मृत्यु को ही जानता रहता है। महावीर की अहिंसा का आधार है जीवेषणा से मुक्ति। जीवेषणा से मुक्ति मृत्यु की एषणा से भी मुक्ति हो जाती हैं। और इसके साथ ही जो घटित होता है चारों तरफ, हमने उसी को मूल्यवान समझ रखा हैं। महावीर एक चींटी पर पैर नहीं रखते हैं। इसलिए नहीं कि महावीर बहुत उत्सुक हैं चींटी को बचाने को। महावीर इसलिए चींटी पर पैर नहीं रखते, या सांप पर पैर नहीं रखते, या बिच्छू पर भी पैर नहीं रखते हैं; क्योंकि महावीर अब अपने को बचाने को बहुत उत्सुक नहीं हैं। उत्सुक ही नहीं हैं। अब उनका किसी से कोई संघर्ष ही न रहा, क्योंकि सारा संघर्ष इसी बात में था कि मैं अपने को बचाऊँ। अब वे तयार हैं; जीवन तो जीवन, मृत्यु तो मृत्यु; उजाला तो उजाला, अँधेरा तो अँधेरा। अब वे हर बात के लिए तैयार हैं। उनकी स्वीकृति परम है। इसलिए मैंने कहा कि बुद्ध ने जिसे तथाता कहा है महावीर उसे ही अहिंसा कहते हैं। लाओत्से ने जिसे 'टोटल एक्सेप्टिबिलिटी' कहा है कि सब स्वीकार करता हूँ, उसे ही महावीर ने अहिंसा कहा है। जिसे सब स्वीकार है, वह हिंसक कैसे हो सकेगा? हिंसक न होने का कोई निषेधात्मक कारण नहीं है, विधायक कारण है, क्योंकि सब स्वीकार है। इसलिए निषेध का कोई कारण नहीं है। किसी को मिटाने का, किसी को मिटाने की तैयारी करने का

कोई कारण नहीं है। हाँ अगर कोई मिटाने आता हो, तो महावीर उसके लिए तैयार हैं। इस तैयारी में भी ध्यान रखें कि कोई प्रयत्न नहीं है महावीर का, कि वे सँभल कर तैयार हो जायेंगे कि ठीक है मारो। वे खड़े ही रहेंगे। जैसे कि वे थे ही नहीं, अनुपस्थित थे।

(११) मेरे की चहारदीवारी में घिरा मैं

इसके एक हिस्से पर और ख्याल कर लेना जरूरी है। जितने जोर से हम अपने को बचाना चाहते हैं, हमारा वस्तुओं का बचाव उतना ही प्रगाढ़ हो जाता है। जीवेषणा 'मेरे' का फैलाव बनती है। यह मेरा है, ये पिता मेरे हैं, यह माँ मेरी है, यह भाई मेरा है, यह पत्नी मेरी है, यह मकान मेरा है, यह धन मेरा है—हम मेरे का एक जाल खड़ा करते हैं अपने चारों तरफ। वह इसलिए खड़ा करते हैं कि उसके भीतर ही हमारा मैं बच सकता है। अगर मेरा कोई भी नहीं तो मैं निपट अकेला महसूस करके बहुत भयभीत हो जाऊँगा। कोई मेरा है, तो सहारा है, सेफ्टी है, सुरक्षा है। इसलिए जितनी ज्यादा चीजें आप इकट्ठी कर लेते हैं, उतने ही आप अकड़ कर चलने लगते हैं। लगता है कि जैसे अब आप का कोई कुछ बिगाड़ न सकेगा। एक चीज भी आपके हाथ से छूटती है, तो किन्हीं गहरे अर्थों में आपको मृत्यु का अनुभव होता है। अगर आपकी कार टूट जाती है तो सिर्फ कार नहीं टूटती है, आपके भीतर भी कुछ टूटता है। आपकी पत्नी मरती है तो पत्नी नहीं मरती, पति के भीतर भी कुछ मर जाता है, खाली हो जाता है। असली पीड़ा पत्नी के मरने से नहीं होती है। असली पीड़ा मेरे के फैलाव के कम हो जाने से होती है कि एक जगह और टूट गयी। एक मोर्चा असुरक्षित हो गया। एक जगह पहरा कम हो गया। वहाँ से अब खतरा आ सकता है।

(१२) पत्नी की तस्वीरें : यह प्रेम है या पहरा

एक मित्र हैं मेरे। पत्नी मर गयी है उनकी। तो उन्होंने पत्नी की तस्वीरें सारे मकान में, बैठक, दरवाजे, सब जगह लगा रखी हैं। किसी से मिलते-जुलते नहीं, तस्वीरें ही देखते रहते हैं। उनके किसी मित्र ने मुझसे कहा कि ऐसा प्रेम पहले नहीं देखा। अद्भुत प्रेम है।

मैंने कहा, प्रेम नहीं, वह आदमी अब डरा हुआ है। अब कोई भी दूसरी स्त्री उसके जीवन में प्रवेश कर सकती है। और ये तस्वीरें लगाकर वह पहरा लगा रहा है।

उन्होंने कहा, आप कैसी बात करते हैं।

मैंने कहा—मैं चलूंगा उनके पास।

और जब मैंने उन मित्र के पास जाकर पूछा कि सच बोलो, सोच कर, ठीक से विचार करके बोलो कि अब तुम दूसरी स्त्रियों से भयभीत तो नहीं हो?

उन्होंने कहा आपको यह कैसे पता चला? यही डर मेरे मन में है कि कहीं मैं अपनी पत्नी के प्रति अब विश्वासघाती न सिद्ध हो जाऊँ। इसलिए उसकी याद को चारों तरफ इकट्ठा करके बैठा हुआ हूं। किसी स्त्री से मिलने में भी डरता हूं। आदमी का मन बहुत जटिल है। और अब यह हवा चारों तरफ फैल गयी है कि पत्नी के प्रति उनका इतना प्रेम है कि दो साल पहले पत्नी मर गयी, फिर भी उसको वे जिलाये हुए हैं अपने मकान में। यह हवा भी उनकी सुरक्षा का कारण बन गयी है। यह हवा भी उन्हें रोकेगी, यह प्रतिष्ठा भी उन्हें रोकेगी।

मैंने उन मित्र के मित्र से कहा कि ज्यादा देर नहीं चलेगी यह सुरक्षा। जब असली पत्नी नहीं बच सकी, तो ये तस्वीरें कितनी देर बचेंगी?

अभी हाल ही में मुझे निमंत्रण पत्र आया है कि उनका विवाह हो रहा है। इसलिए मैं कहता हूं कि यह ज्यादा दिन नहीं बच सकता। इतना भयभीत, असुरक्षित आदमी ज्यादा दिन तक नहीं बच सकता है।

वस्तुओं पर, व्यक्ति पर जो हम 'मेरे' का फैलाव करते हैं, महावीर उसको भी हिंसा कहते हैं। महावीर परिग्रह को हिंसा कहते हैं। महावीर का वस्तुओं से कोई विरोध नहीं है। और न महावीर को इससे कोई प्रयोजन है कि आपके पास कोई वस्तु है या नहीं। महावीर का इससे जरूर प्रयोजन है कि आपका उसमें कितना मोह है। कितना उसको पकड़े हुए हैं। कितना आपने उस वस्तु को अपनी आत्मा बना लिया है।

(१२) मुल्ला साहब आये मगर छाता भूल आये

यह मुल्ला नसरुद्दीन बड़ा प्यारा आदमी है। इसके जीवन में बहुत सी घटनाएँ हैं। एक होटल में ठहरा हुआ था। छोड़ रहा था होटल, नीचे टैक्सी

में सब सामान रख आया। तब उसे ख्याल आया कि छाता कमरे में भूल आया। सीढ़ियाँ चढ़कर वापस आया चार मंजिल ऊपर, तो देखा कि कमरा तो किसी नवविवाहित जोड़े को दिया जा चुका है। दरवाजा बन्द है, अन्दर कुछ बातें चल रही हैं। छाता बिना लिये जा नहीं सकता। और अब जो यह बातें चल रही हैं, इसको भी बिना सुने नहीं जा सकता। इसलिए 'की होल' पर, चाबी के छेद पर कान लगाकर सुनने लगा। युवक अपनी पत्नी से कह रहा है, 'तेरे ये सुन्दर बाल, ये आकाश में घिरी हुई घटाओं की तरह बाल, ये किसके हैं?'

देवी ने कहा, 'तुम्हारे, और किसके?'

'ये तेरी आखें, मछलियों की तरह चंचल।' उस पुरुष ने पूछा, 'देवी, ये आखें किसकी हैं?'

उस स्त्री ने कहा, 'तुम्हारी और किसकी?'

मुल्ला कुछ बेचन हुआ। उसने कहा, 'ठहरो भाई, मुझे पता नहीं भीतर आप कौन हैं। लेकिन जब छाते का नम्बर आये तो ख्याल रहना कि छाता मेरा है। उसकी बेचैनी स्वाभाविक है कि इस तरह एक-एक चीज करके आयेगा ही छाते का नम्बर।

सारी जिन्दगी उठते-बैठते, यही फिक्र है कि क्या मेरा है। कहीं कोई और तो उस मेरे पर कब्जा नहीं कर रहा है? कहीं और तो उस मेरे का मालिक नहीं बन रहा है? सवाल यह बड़ा नहीं है कि वह वस्तु किसकी हो जायेगी। महावीर कहते हैं, वस्तु किसी की नहीं होती है। इसका कभी पता नहीं चलता कि वह किसकी है। तुम लड़ते हो, मरते हो, समाप्त हो जाते हो और वह वस्तु अपनी जगह पड़ी रह जाती है। वही जमीन का टुकड़ा जिसको आप अपना कह रहे हैं, कितने लोग अपना कह चुके। कभी हिसाब किया है? कितने लोग उसके दावेदार हो चुके? और जमीन के टुकड़े को जरा भी पता नहीं कि दावेदार आप हैं। आप चले जाते हैं, जमीन का टुकड़ा अपनी जगह पड़ा रहता है। दावे सब काल्पनिक हैं, इमैजिनरी हैं।

आप भी दावा करते हैं। आप भी दूसरे दावेदारों से लड़ लेते हैं। मुकदमें हो जाते हैं, सिर खुल जाते हैं। हत्याएं हो जाती हैं। वह जमीन का टुकड़ा अपनी जगह पड़ा रहता है। जमीन के टुकड़े को पता भी नहीं है। या अगर पता होता तो पता दूसरे ढंग से होगा। तब जमीन का टुकड़ा कहता होगा

कि यह आदमी मेरा है, जो कह रहा है कि जमीन मेरी है। कौन जाने जमीनों में मुकदमे चलते हों। आपस में संघर्ष हो जाता हो कि यह आदमी मेरा है, तुमने कैसे कहा कि मेरा है। अगर कोई जमीन को पता होता होगा तो उसको अपनी मालकियत का पता होगा। ध्यान रहे कि हम सबको अपनी मालकियत का पता है। और मालकियत के लिए हम इतने उत्सुक हैं कि अगर जिन्दा आदमी के हम मालिक न हो सके, तो उसे मारकर भी मालिक होना चाहते हैं।

(१४) मालकियत का मसला असली जड़ है

हमारे जीवन की अधिकतर हिंसा इसीलिए है। जब तक पति एक स्त्री का मालिक होता है, उसे पत्नी बना लेता है तो उसमें स्त्री तो करीब-करीब ९० प्रतिशत मर ही जाती है। बिना मारे मालिक होना मुश्किल है। क्योंकि दूसरा भी मालिक होना चाहता है। अगर वह जिन्दा रहेगा, तो वह मालिक होने की कोशिश करेगा। इसलिए अब ध्यान रखें भविष्य में स्त्री पर पुरुषों की मालकियत की सम्भावना कम होती जाती है। अगर हमने स्त्रियों को समानता का हक दिया तो पत्नी बच नहीं सकती। पत्नी तभी तक बच सकती थी, जबतक स्त्री को कोई हक नहीं था। हक को बिलकुल मार डालते, तो ही पत्नी बच सकती थी। वह बिलकुल नगण्य हो जाये, तो ही पति हो सकता है। अगर उसे बराबर कर देंगे, तो पति होने के अवसर नहीं रह जायेंगे। तब मित्र होने से ज्यादा की संभावना नहीं रह जायेगी। क्योंकि दोनों अगर समान हैं तो मालकियत कैसे टिक सकती है? लेकिन समानता भी टिकानी बहुत मुश्किल है। डर तो यह है कि स्त्री ज्यादा दिन समान नहीं रहेगी। थोड़े दिन में पुरुष को आन्दोलन चलना पड़ेगा कि हम स्त्रियों के समान हैं। क्योंकि स्त्री बहुत दिन असमान रह ली। यह तो पहला कदम है समान होने का। अब इसके ऊपर जाने का दूसरा कदम उठना शुरू हो गया। बहुत जल्दी ही जगह-जगह पुरुष जुलूस निकाल रहे होंगे, घेराव कर रहे होंगे कि हम स्त्रियों के समान हैं, कौन कहता है कि हम उनसे नीचे हैं? तो समानता ज्यादा दिन टिक नहीं सकती। क्योंकि जहाँ मालकियत और हिंसा गहन है, वहाँ किसी न किसी को असमान होना ही पड़ेगा, किसी न किसी को नीचे होना ही पड़ेगा। मजदूर लड़ेगा, पूंजीपति को नीचे कर देगा। कल

पायेगा कि कोई और ऊपर बैठ गया है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। महावीर कहते हैं जब तक जगत् में मालकियत की आकांक्षा है, (और यह जीवेषणा इतनी पागल है कि वह बिना मालिक हुए राजी नहीं होती) तब तक दुनिया में कोई समानता संभव नहीं है।

लेकिन नहीं, महावीर समानता में उत्सुक नहीं हैं, अहिंसा में उत्सुक हैं। वे कहते हैं अगर अहिंसा फैल जाय, तो ही समानता संभव है। मालकियत का रस ही खत्म हो जाये, तो ही दुनिया से मालकियत मिटेगी, अन्यथा मालकियत नहीं मिट सकती। सिर्फ मालिक बदल सकते हैं। मालिक बदलने से कोई फर्क नहीं पड़ता। बीमारी अपनी जगह बनी रहती है। उपद्रव अपनी जगह बने रहते हैं। हमारे जीवन में हिंसा का जो वास्तविक क्रियमान रूप है, वह मालकियत है। महावीर ने जो महल छोड़ा, तो हमें लगता है महल छोड़ा, धन छोड़ा, परिवार छोड़ा। लेकिन सच यह है कि महावीर ने सिर्फ हिंसा छोड़ी। अगर गहरे में जायें तो सिर्फ हिंसा छोड़ी। यह सब हिंसा का फैलाव है। ये पहरेदार जो दरवाजे पर खड़े हैं, वे पत्थर की मजबूत दीवालें जो महल को घेरे थीं, यह धन और ये तिजोरियाँ—यह सब आयोजन हैं। यह मेरे और तेरे का भेद, सब आयोजन का ही हिस्सा है। महावीर जिस दिन खुले आकाश के नीचे आकर नग्न खड़े हो गये उस दिन बोले कि अब मैं हिंसा को छोड़ता हूँ इसलिए सब सुरक्षा को छोड़ता हूँ, इसलिए आक्रमण के सब उपाय छोड़ता हूँ। अब मैं निहत्था, निरस्त्र, शून्यवत् भटकूंगा इस खुले आकाश के नीचे। अब मेरी कोई सुरक्षा नहीं, अब मेरा कोई आक्रमण नहीं, अब मेरी कोई मालकियत नहीं। हो भी कैसे सकती है? अहिंसक की कोई मालकियत नहीं हो सकती। अगर कोई अपनी लंगोटी पर भी मालकियत बताता है कि मेरी है तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। महल मेरा है और लंगोटी मेरी है, दोनों के मूल में मालकियत का भाव है और मालकियत हिंसा है। इस लंगोटी पर भी गर्दनें कट सकती हैं। और यह मालकियत बहुत सूक्ष्म होती चली जाती हैं। धर्म तक में प्रवेश कर जाती है।

(१५) महावीर पर भी मालकियत!

मेरे एक मित्र अभी एक दो दिन पहले एक जैन साधु के पास गये होंगे। मैं महावीर के संबंध में क्या कह रहा हूँ, यह मित्र ने उन्हें बताया होगा। उन

साधु ने कहा कि वे कोई और महावीर होंगे, जो उनके होंगे। हमारे महावीर नहीं। वे जिस महावीर के संबंध में बोल रहे हैं, वे हमारे महावीर नहीं हैं। तो मालकियत बड़ी सूक्ष्म है। महावीर पर भी मालकियत है! यानी हिंसा को हम वहाँ तक भी नहीं छोड़ेंगे। कहेंगे कि यह धर्म मेरा है, यह शास्त्र मेरा है, यह सिद्धान्त मेरा है। जहाँ-जहाँ मेरा है, वहाँ-वहाँ हिंसा है। जो 'मेरे' को सब भांति छोड़ देता है, (धन पर ही नहीं, धर्म पर भी, महावीर, कृष्ण और बुद्ध पर भी), जिस दिन कोई कह पाता है कि मेरा कुछ भी नहीं, उसी दिन "मैं कौन हूं" इसे जान पाता है। इससे पहले नहीं जान पाता है। उसके पहले 'मेरे' के फैलाव में उलझा रहता है, परिधि पर। इसलिए मैं के केन्द्र का कोई पता नहीं चलता है। इसे ऐसा समझ लें कि अहिंसा सूत्र है, आत्मा को जानने का। क्योंकि 'मेरे' का जब सारा भाव गिर जाता है, तब फिर 'मैं' ही बचता है, और कोई नहीं बचता। बचता है निपट 'मैं', अकेला 'मैं'। और तभी व्यक्ति यह जान पाता है कि मैं क्या हूं, कौन हूं, कहाँ से हूं, कहाँ के लिए हूं। तब रहस्य के सारे द्वार खुल जाते हैं।

महावीर ने अकारण ही अहिंसा को परम धर्म नहीं कह दिया है। परम धर्म कहा है इसलिए कि उस कुंजी से जीवन के रहस्य के सारे द्वार खुल सकते हैं।

एक और यानी तीसरी दृष्टि से अहिंसा को समझ लें, तो अहिंसा की धारणा स्पष्ट, पूरी हो जायेगी।

(१६) अनेकांत का सिद्धांत

महावीर ने कहा है कि सब हिंसा आग्रह है। यह अति सूक्ष्म बात है। आग्रह हिंसा है, अनाग्रह अहिंसा है। और इसी कारण महावीर ने जिस विचारसरणी को जन्म दिया है, उसका नाम है अनेकांत। वह अहिंसा का विचार के जगत् में फैलाव है। अनेकांत की दृष्टि जगत् में कोई दूसरा व्यक्ति नहीं दे सका, क्योंकि अहिंसा की दृष्टि को कोई दूसरा व्यक्ति इतनी गहनता में समझ नहीं सका, समझा नहीं सका। अनेकांत महावीर से पैदा हुआ। उसका कारण है कि महावीर की अहिंसा की दृष्टि को जब उन्होंने विचार के जगत् पर लगाया, वस्तुओं के जगत् पर लगाया, तो परिग्रह फलित हुआ।

जीवन के जगत् पर लगाया, तो मृत्यु का स्वीकार फलित हुआ और हमारा बहुत सूक्ष्म संग्रह है विचार का जगत्। धन बहुत स्थूल संग्रह हैं। चोर उसे ले जा सकते हैं। विचार बहुत सूक्ष्म संग्रह है, चोर उसे नहीं चुरा सकते। फिलहाल अभी तक तो नहीं चुरा सकते। यह सदी पूरे होते-होते चोर आपके विचार चुरा सकेंगे। क्योंकि आप के मस्तिष्क को आप के विना जाने पढ़ा जा सकेगा। और क्योंकि आप के मस्तिष्क से कुछ हिस्से भी निकाले जा सकते हैं, जिनका आप को पता ही नहीं। और आप के मस्तिष्क के भीतर भी इलेक्ट्रोड रखे जा सकते हैं। और आपसे ऐसे विचार करवाये जा सकते हैं जो आप नहीं कर रहे, लेकिन आप को लगे कि आप कर रहे हैं।

(१७) अब दुश्मन की खोपड़ी में इलेक्ट्रोड रखे जायेंगे

अभी अमरीका में डा० ग्रीन और दूसरे लोगों ने जानवरों की खोपड़ी में इलेक्ट्रोड रख कर जो प्रयोग किये हैं, वे सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। एक घोड़े की या एक सांड़ की खोपड़ी में इलेक्ट्रोड रख दिया और इलेक्ट्रोड रखने के बाद वायरलेस से उसकी खोपड़ी के भीतर के स्नायुओं को संचालित किया जा सकता है, जैसा चाहें वैसा। डा० ग्रीन के ऊपर हमला करता है वह सांड़। वे लाल छतरी लेकर उसके सामने खड़े हैं और हाथ में उनके ट्रांजिस्टर है छोटा-सा, जिससे वे उसकी खोपड़ी को संचालित करेंगे। वह दौड़ता है पागल की तरह। लगता है, हत्या कर डालेगा। सैकड़ों लोग घेरा लगा कर खड़े हैं। सांड़ विल्कुल सामने आ जाता है। ग्रीन बटन दबाता है अपने ट्रांजिस्टर की, और सांड़ ठंडा हो जाता है, वापस लौट जाता है। यह आदमी के साथ भी हो सकेगा। इसमें कोई बाधा नहीं रहेगी, इसका वैज्ञानिक काम पूरा हो गया है। कुछ कहा नहीं जा सकता, हो सकता है, तानाशाही सरकारें हर बच्चे की खोपड़ी में बचपन से ही इलेक्ट्रोड रख दें। अगर कभी उपद्रव हो, तो एक बटन दबायी जाये और पूरा मुल्क एकदम जय-जयकार करने लगे। मिलिट्री के दिमाग में तो यह रखा ही जायेगा। बटन दबा दी और लाखों लोग मर जायेंगे बिना भयभीत हुए, कूद जायेंगे आग में बिना चिन्ता किये हुए। हालांकि यह पहले से भी किया जा रहा है, लेकिन करने के वे पुराने ढंग मुश्किल के थे।

एक आदमी को समझाना पड़ता है कि अगर तू देश के लिए मरेगा तो स्वर्ग जायेगा। इसको बहुत समझाना पड़ता है, तब उसकी खोपड़ी में घुसता है। इलेट्रोड की तरह यह भी घुसाना ही है। इसको भी बचपन से राष्ट्रभक्ति की और जमाने भर के पागलपन की गाथाएँ सुना-सुनाकर इसके दिमाग को तैयार किया जाता है। और फिर एक दिन वर्दी पहना कर इसको कवायद करवायी जाती है चार साल तक। इसकी खोपड़ी में डालने का यह उपाय भी इलेक्ट्रोड ही है, लेकिन यह पुराना है, बैलगाड़ी के ढंग से चलता है। फिर एक दिन यह आदमी जाता है और मर जाता है युद्ध के मैदान में छाती खोल कर। और सोचता है कि यह मैं मर रहा हूँ और सोचता है कि यह बलिदान मैं दे रहा हूँ, सोचता है कि ये विचार मेरे हैं, यह देश मेरा है और यह झंडा मेरा है। जब कि ये सब बातें उसके दिमाग में किन्हीं और ने रखी हैं। और जिन्होंने रखी हैं, वे राजधानियों में बैठे हुए हैं। वे कभी किसी युद्ध पर नहीं जाते। अब इतनी परेशानी करने की जरूरत क्या है। इलेक्ट्रोड रखने से आसासी से काम हो जायेगा। अड़चन कम होगी, भूलचूक कम होगी। बहुत जल्दी विचार की संपदा पर भी चोर पहुँच जायेंगे, खतरे वहाँ हो जायेंगे।

लेकिन अब तक कम से कम विचार की संपदा सूक्ष्म रही है। महावीर कहते हैं कि विचार की संपदा को भी मेरा मानना हिंसा है। क्योंकि जब भी आप किसी विचार को कहते हैं कि मेरा है, तभी आप सत्य से च्युत हो जाते हैं जब भी मैं कहता हूँ कि यह मेरा विचार है, इसलिए ठीक है, तभी मैं सत्य से विलग हो जाता हूँ। और हम सब यही कहते हैं। प्रकट में चाहे कहते हों, या न कहते हों।

(१८) महावीर कहेंगे कि यह भी हो सकता है

और जब हम कहते हैं यही है सत्य तो हम यह नहीं कहते कि जो मैं कह रहा हूँ वह सत्य है, असल में तब हम कहते हैं कि जो कह रहा है, वह सत्य है। जब मैं सत्य हूँ, तो मेरा विचार सत्य होगा ही। जितने विवाद हैं जगत् में, वे सत्य के विवाद नहीं हैं, वे सब 'मैं' के विवाद हैं। जब आप किसी से विवाद में पड़ जाते हैं और कोई बात चलती है और आप कहते हैं यह ठीक है, तो दूसरा कहता है यह ठीक नहीं है, तब जरा भीतर झांककर देखना।

थोड़ी देर में आपको पक्का पता चल जायेगा कि अब सवाल विचार का नहीं है। सब सवाल यह है कि मैं ठीक हूँ कि तुम ठीक हो। महावीर ने कहा कि यह बहुत सूक्ष्म हिंसा है। इसलिए महावीर ने अनेकांत को जन्म दिया।

महावीर से अगर आकर कोई बिल्कुल महावीर के विपरीत भी बात करता तो महावीर कहते थे—यह भी ठीक हो सकता है। बहुत हैरानी की बात है, इस लिहाज से यह आदमी अकेला था। पूरी पृथ्वी पर ज्ञात इतिहास के पास यह अकेला आदमी है जो अपने विरोधी से भी कहता है कि यह भी ठीक हो सकता है—ठीक उससे, जो बिल्कुल विपरीत बात कह रहा है। महावीर कहते हैं कि आत्मा है और कोई चारवाक की विचारसरणी को मानने वाला आकर उनसे कहेगा कि आत्मा नहीं है, तो महावीर यह नहीं कहेंगे कि तू गलत है। महावीर कहेंगे कि यह भी हो सकता है, यह भी सही हो सकता है, इसमें भी सत्य होगा। क्योंकि महावीर कहते हैं कि ऐसी तो कोई भी चीज नहीं हो सकती कि जिसमें सत्य का कोई भी अंश न हो। नहीं तो वह होती ही कैसे। स्वप्न भी सही है क्योंकि स्वप्न होता तो है। स्वप्न में क्या होता है वह सत्य भले न हो, लेकिन स्वप्न होता है, इतना तो सत्य है ही। उसका अस्तित्व तो है ही। असत्य का तो कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। महावीर कहते हैं, जब एक आदमी कह रहा है कि आत्मा नहीं है, तो इस न होने में कुछ सत्य तो होगा ही। इसलिए महावीर ने किसी का विरोध नहीं किया। इसका अर्थ यह नहीं था कि महावीर को कुछ पता नहीं था, कि सत्य क्या है। महावीर को सत्य का पता था। लेकिन महावीर का चित्त इतना अनाग्रहपूर्ण था कि वे अपने सत्य में विपरीत सत्य को भी समाविष्ट कर पाते थे। महावीर कहते थे, सत्य इतनी बड़ी घटना है कि यह अपने से विपरीत को भी समाविष्ट कर सकता है। सत्य बहुत बड़ा है, सिर्फ असत्य छोटे-छोटे होते हैं। उनकी सीमा होती है। लेकिन सत्य इतना बड़ा है, इतना असीम है कि अपने से विपरीत को भी समाविष्ट कर लेता है। यही वजह है कि महावीर का विचार बहुत ज्यादा दूर तक, ज्यादा लोगों तक नहीं पहुँच सका। क्योंकि सभी लोग निश्चित वक्तव्य चाहते हैं—'डागमेटिक।' सभी लोग यह चाहते हैं, क्योंकि सोचना कोई नहीं चाहता। सोचने में तकलीफ,

अड़चन होती है। सब लोग उधार चाहते हैं। कोई तीर्थंकर खड़ा होकर कह दे कि जो मैं कहता हूँ यह सत्य है, तो जो सोचने से बचना चाहते हैं, वे कहेंगे बिल्कुल ठीक है, मिल गया सत्य, अब झंझट मिटी। महावीर इतनी निश्चिन्तता किसी को नहीं देते। महावीर के पास जो बैठा रहेगा वह सुबह जितना कन्फ्यूज्ड था, शाम तक और ज्यादा कन्फ्यूज्ड हो जायेगा। वह जितना परेशान आया था, साँझ तक और परेशान होकर लौटेगा। क्योंकि महावीर को दिन में वह ऐसी बातें कहते हुए सुनेगा, ऐसे-ऐसे लोगों को हाँ भरते सुनेगा कि उसके सारे के सारे जो-जो निश्चित आधार हैं, सबके सब डगमगा जायेंगे। उसकी भवन की सारी रूप-रेखा गिर जायेगी। महावीर कहते थे अगर सत्य तक तुम्हें पहुँचना है तो तुम्हारे विचारों के समस्त आग्रह गिर जायें तभी पहुँच सकते हो। जब तुम कहते हो कि यही सत्य, तब तुम हिंसा करते हो, तब तुम सत्य तक पर मालकियत कर लेते हो। तब तुम सत्य तक को भी सिकोड़ लेते हो, अपने तक बाँध लेते हो। सत्य तक का परिग्रह कर लेते हो। इसलिए महावीर कहते थे कि दूसरा जो कुछ कहता है, वह भी सत्य हो सकता है। इस कारण तुम जल्दी मत करना कि दूसरा गलत है।

(१९) सभी गलत हैं, मैं ठीक हूँ

मुल्ला नसरुद्दीन को उस मुल्क के सम्राट ने बुलाया क्योंकि लोगों ने खबर दी कि वह अजीब आदमी है। आप बोलो, उसके पहले ही खंडन शुरू कर देता है।

सम्राट ने कहा, यह तो ज्यादती है। दूसरे को मौका मिलना चाहिए। सम्राट ने नसरुद्दीन को बुलाया और कहा कि मैंने सुना है कि तुम दूसरे की सुनते ही नहीं और बिना जाने कि वह क्या कहता है, तुम बोलना शुरू कर देते हो!

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, ठीक सुना है।

सम्राट ने कहा, मेरे विचारों के संबंध में क्या ख्याल है, यद्यपि उसने कुछ विचार बताया नहीं था।

मुल्ला ने कहा, सरासर गलत है।

सम्राट ने कहा, लेकिन तुमने विचार तो सुने भी नहीं।

मुल्ला ने कहा, यह सवाल नहीं है। विचार तुम्हारे हैं, इसलिए गलत हैं। सिर्फ मेरे ठीक होते हैं। इर्रेलेवेंट है यह बात कि तुम क्या सोचते हो। इससे कोई संगति ही नहीं है। तुम सोचते हो, यह काफी है गलत होने के लिए। मैं सोचता हूँ, काफी है सही होने के लिए। हम सब ऐसे ही हैं। आप इतने हिम्मतवर नहीं हैं कि दूसरे को बिना सुने गलत कहें। लेकिन जब आप सुनकर भी गलत कहते हैं, तब आप पहले से ही जान लेते होंगे। इसका साफ मतलब है कि सुन कर आप भी नहीं कहते। आप पहले से जानते थे कि वह गलत हैं। सिर्फ धीरज, संकोच, शिष्टता आप को रोकती रही है कि कम-से-कम सुन तो लो, गलत तो है ही। मुल्ला नसरुद्दीन आप से ज्यादा ईमानदार आदमी है। वह कहता है सुनने के लिए समय क्यों खराब करना। हम जानते ही हैं कि तुम गलत हो, क्योंकि सभी गलत हैं सिर्फ मैं ठीक हूँ।

(२०) तरकारी की तारीफ उर्फ सम्राट-मुल्ला संवाद

सारे विवाद जगत् के यही हैं। सम्राट मुल्ला से बहुत प्रसन्न हो गया और उसने कहा कि तुम हमारे ही दरबार में रह जाओ। और मुल्ला को तनख्वाह मिलने लगी। मुल्ला को जिस दिन से तनख्वाह मिलने लगी, सम्राट बहुत हैरान हुआ कि वह जो भी कहता, मुल्ला कहता, बिल्कुल ठीक है, एकदम सही है, यही सही है। सम्राट के साथ खाने पर बैठता था कोई सब्जी बनी थी।

सम्राट ने कहा, मुल्ला सब्जी बहुत स्वादिष्ट है।

मुल्ला ने कहा, यह अमृत है। और मुल्ला ने बहुत बखान किया उस सब्जी का। इतना बखान किया कि सम्राट ने दूसरे दिन भी बनवायी।

लेकिन दूसरे दिन उतनी अच्छी नहीं लगी। दूसरे दिन रसोइये ने देखा कि इतनी अमृत जैसी चीज लगी थी सम्राट को, तो उसने तीसरे दिन भी बना दी। सम्राट ने हाथ मार कर थाली नीचे गिरा दी और कहा कि क्या बद-तमीजी है, रोज-रोज वही सब्जी!

मुल्ला ने कहा, जहर है।

सम्राट ने कहा, लेकिन मुल्ला तुमने तीन दिन पहले कहा था कि अमृत है।

मुल्ला ने कहा, मैं आप का नौकर हूँ, सब्जी का नहीं। तनख्वाह तुम देते हो कि सब्जी देती है।

सम्राट ने कहा, लेकिन इसके पहले जब तुम मुझसे मिलने नहीं आये थे, तो तुम अपने को ही सही कहते थे।

मुल्ला ने कहा, तब तक मैं बिन बिका था और तुम मुझे कोई तनख्वाह नहीं देते थे। और जिस दिन तुम तनख्वाह देना बंद कर दोगे उस दिन से फिर मैं ही सही हो जाऊँगा। ध्यान रखना सही तो मैं ही हूँ, यह तो सिर्फ तनख्वाह की वजह से मैं कहे जाता हूं।

लेकिन महावीर कहते हैं, दूसरा भी सही है। दूसरा भी सही हो सकता है। तुम्हारा विरोधी भी सत्य को लिए है। आग्रह मत करो, अनाग्रही हो जाओ। आग्रह ही मत करो। इसलिए महावीर ने किसी सिद्धांत का आग्रह नहीं किया। महावीर ने जितनी तरल बातें कही हैं, उतनी तरल बातें किसी दूसरे ने नहीं कही हैं। इसलिए महावीर ने अपने हर वक्तव्य के सामने स्यात् लगा दिया है। वे कहते थे, 'परहैप्स'। अभी आप का तो विचार उन्हें पता भी नहीं है। लेकिन आप अगर उनसे पूछते कि आत्मा है, तो महावीर कहते—स्यात्, परहैप्स। वे कहते—हो सकता है। इसलिए कि अगर कोई उसके विपरीत हो, तो उसे चोट न पहुँच जाय। आप पूछते कि मोक्ष है, तो महावीर कहते—स्यात्।

ऐसा नहीं कि महावीर को पता नहीं है। महावीर को पता है कि मोक्ष है, लेकिन महावीर को यह भी पता है कि अहिंसक वक्तव्य स्यात् के साथ ही हो सकता है। और महावीर को यह भी पता है कि स्यात् कहने से शायद आप समझने को ज्यादा आसानी से तैयार हो जायेंगे। अगर महावीर कहें कि हां, मोक्ष है, तो महावीर जितने अकड़ के कहेंगे—मोक्ष है, तत्काल आपके भीतर उतनी ही अकड़ प्रतिध्वनित होगी। वह प्रतिध्वनित होगी। वह प्रति-ध्वनि कहती है कि कौन कहता है? मोक्ष नहीं है, बिल्कुल नहीं है और संघर्ष मैं का शुरू हो जाता है। यानि कि सारे विवाद मैं के विवाद हैं। महावीर के सब वक्तव्य अनाग्रह से भरे हैं। इसीलिए पंथ बनाना बहुत मुश्किल हुआ। अगर कोई गोशालक के पास जाता, महावीर के प्रतिद्वंद्वी के पास, तो गोशालक कहता—महावीर गलत हैं, मैं सही हूं। वही आदमी महावीर के पास आता तो महावीर कहते—गोशालक सही हो सकता है।

अगर आप ही होते तो सोचिए, आप गोशालक के पीछे जाते कि महावीर के ? मेरा ख्याल है आप गोशालक के पीछे जाते। क्योंकि आप सोचते कि यह आदमी कम-से-कम निश्चिन्त तो है, इसे पता तो है; लेकिन महावीर कहते हैं, गोशालक भी शायद सही हो। अभी उन्हें खुद ही पक्का पता नहीं है, खुद ही साफ नहीं है ! इनके पीछे अपनी नाव क्यों बाँधनी और डुबानी ? पता ही नहीं, वे कहाँ जा रहे हैं। शायद जा भी रहे है कि नहीं जा रहे हैं ! शायद पहुँचेंगे कि नहीं पहुँचेंगे !

इसलिए महावीर के पास अत्यन्त बुद्धिमान वर्ग ही आ सका। बुद्धिमान मैं कहता हूँ उन व्यक्तियों को, जो सत्य के संबंध में अनाग्रहपूर्ण हैं। जिन्होंने समझा महावीर के साहस को। जिन्होंने देखा कि यह बहुत साहस की बात है, वे ही महावीर के पास आ सके। लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता है, लोग आग्रहपूर्ण हो जाते हैं और उनके आग्रह खतरनाक हो जाते हैं।

(२१) शायद ठीक; शायद नहीं ठीक

एक बहुत बड़े जैन पंडित मुझसे मिलने आये थे। उन्होंने स्यात्‌वाद पर किताब लिखी है, इसी अनेकांत पर। मैं उनसे बड़ी देर बात करता रहा। मैंने उनसे कहा कि स्यात्‌वाद का अर्थ यह होता है कि शायद ठीक हो, शायद ठीक न हो।

उन्होंने कहा—हाँ।

फिर थोड़ी बात-चीत आगे बढ़ी। जब वे भूल गये तो मैंने उनसे पूछा कि स्यात्‌वाद पूर्णरूप से ठीक है या नहीं ?

उन्होंने कहा—ठीक है, पूर्णरूप से ठीक है। यानी स्यात्‌वाद पर किताब लिखनेवाला आदमी भी कहता है कि स्यात्‌वाद पूर्णरूप से ठीक है ! इसमें कोई गलती नहीं है, इसमें भूल हो ही नहीं सकती। यह सर्वज्ञ की वाणी है। महावीर को माननेवाले कहते हैं कि यह सर्वज्ञ की वाणी है। इसमें कोई भूलचूक नहीं हो सकती। यह बिल्कुल ठीक है। ऐब्सोल्यूटली, पूर्णरूपेण निरपेक्ष। और महावीर जिन्दगी भर कहते रहे कि पूर्ण सत्य की अभिव्यक्ति हो ही नहीं सकती। जब भी हम सत्य को बोलते हैं, तभी वह अपूर्ण हो जाता है। बोलते ही अपूर्ण हो जाता है। वक्तव्य देते ही अपूर्ण हो जाता है। कोई वक्तव्य पूर्ण नहीं हो सकता। क्योंकि वक्तव्य की सीमाएँ हैं, भाषा, तर्क, बोलने वाला,

सुनने वाला—ये सब सीमाएँ हैं। जरूरी नहीं कि जो मैं बोलूं, वही आप सुनें। जरूरी नहीं है कि जो मैं जानूं, वही मैं बोल पाऊँ। और जरूरी नहीं कि जो मैं बोल पाऊँ, वह वही हो जो मैं बोलने की कोशिश कर रहा हूँ। यह कतई जरूरी नहीं है। उसमें तत्काल सीमाएँ लगनी शुरू हो जाती हैं, क्योंकि वक्तव्य समय की धारा में प्रवेश करता है और सत्य समय की धारा के बाहर है—ऐसे ही जैसे हम एक लकड़ी को पानी में डालें तो वह तिरछी दिखायी पड़ने लगे और बाहर निकालें तो सीधी हो जाये। महावीर कहते हैं कि जैसे ही हम भाषा में किसी सत्य को डालते हैं, वह तिरछा हो जाता है। भाषा के बाहर निकालते ही वह शुद्ध हो जाता है, शून्य में ले जाते ही वह पूर्ण हो जाता है। लेकिन जैसे ही वक्तव्य देते हैं वैसे ही वह अपूर्ण हो जाता है। इसलिए महावीर कहते हैं, कोई भी वक्तव्य स्यात् के बिना न दिया जाये। कहा जाये कि शायद सही है। यह अनिश्चिय नहीं है, यह केवल अनाग्रह है। यह अनसर्टेन्टी नहीं है। यह कोई ऐसा नहीं है जो महावीर को पता नहीं है कि संज्ञा दी जा सके। महावीर को पता है और इतना पता है, इतना साफ पता है कि यह भी उन्हें पता चलता है कि वक्तव्य धुंधला होता है। महावीर की अहिंसा का जो अंतिम प्रयोग है, वह अनाग्रहपूर्ण विचार है। यानी कि विचार भी मेरा नहीं है। जिस विचार के साथ आप 'मेरा' लगा देंगे, उसमें आग्रह जुड़ जायगा। न धन मेरा है, न मित्र मेरे हैं, न परिवार मेरा है, न विचार मेरा, न यह शरीर मेरा, न यह जीवन। जिसे हम कहते हैं, यह मेरा है, यह कुछ भी मेरा नहीं है, इन सब 'मेरे' कहे जाने वालों से हमारा फासला पैदा हो जाता है, गिर जाते हैं, ये मेरे, तब—मैं और मैं ही बच जाता हूँ। तो 'अलोन' (अकेला) जो अकेला मैं का बच जाना है, उसकी प्रक्रिया है अहिंसा। अहिंसा प्राण है। संयम सेतु है और तप आचरण है।

★

छठवाँ प्रवचन

पर्युषण व्याख्यान-माला, दिनांक २३ अगस्त, १९७१

दो अतियों के बीच में साबित बचा न कोय

धम्मो मंगलमुक्किटठम, अहिंसा संजमो तवो।
देवो वि तं नमंसन्ति, जस्स धम्मे सया मणो ॥१॥

अर्थ—

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

एक मित्र ने पूछा कि महावीर रास्ते से गुजरते हों और किसी प्राणी की हत्या हो रही हो तो महावीर क्या करेंगे? किसी स्त्री के साथ बलात्कार की घटना घट रही हो तो महावीर क्या करेंगे? क्या वे ऐसा व्यवहार करेंगे कि जैसे अनुपस्थित हों?

इस सम्बन्ध में थोड़ी सी बातें समझ लेनी उपयोगी हैं। एक तो महावीर गुजरते हुए हों रास्ते से और किसी की हत्या हो रही हो, तो हत्या में जो हम देख पाते हैं, वह महावीर को नहीं दिखायी पड़ेगा। जो महावीर को दिखायी पड़ेगा वह हमें कभी दिखायी नहीं पड़ता है। पहले तो इस भेद को समझ लेना चाहिए। जब भी हम किसी की हत्या होते देखते हैं तो समझते हैं कि कोई मारा जा रहा है। महावीर को यह दिखायी नहीं पड़ेगा कि कोई मारा जा रहा है। क्योंकि महावीर जानते हैं कि जो भी जीवन का तत्व है वह मारा नहीं जा सकता। वह अमृत है। दूसरी बात, जब भी हम देखते हैं कि कोई मारा जा रहा है तो हम सोचते हैं कि मारने वाला ही जिम्मेवार है, जबकि महावीर को इसमें फर्क दिखायी पड़ेगा कि जो मारा जा रहा है वह भी बहुत गहरे अर्थों में जिम्मेवार है। और हो सकता है, केवल अपने ही किये गये किसी कर्म का प्रतिफल पा रहा हो।

(१) हो सकता है वह पिटने के काबिल हो

लेकिन जब भी हम देखेंगे तो मारनेवाला दोषी और मारा जानेवाला हमेशा निर्दोष मालूम पड़ेगा। हमारी दया और हमारी करुणा उसी की तरफ बहेगी, जो मारा जा रहा है। महावीर के लिए ऐसा जरूरी नहीं होगा। क्योंकि महावीर का देखना और गहरा है। हो सकता है कि जो मार रहा है वह केवल

एक प्रतिकर्म पूरा कर रहा हो। क्योंकि इस जगत् में कोई अकारण नहीं मारा जाता है। जब कोई मारा जाता है, तो वह उसके ही कर्मों के फल की शृंखला का हिस्सा होता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि जो मार रहा है वह जिम्मेवार या दोषी नहीं है। लेकिन हमारे और महावीर के देखने में फर्क पड़ेगा। जब भी हम देखते हैं कि कोई मारा जा रहा है, तो हम सोचते हैं निश्चित ही पाप हो रहा है, निश्चित ही बुरा हो रहा है। क्योंकि हमारी दृष्टि बहुत सीमित है। महावीर इतना सीमित नहीं देख सकते। महावीर देखते हैं जीवन की अनंत शृंखला को। यहाँ कोई भी कर्म अपने में पूरा नहीं है। वह पीछे से जुड़ा है और आगे से भी।

हो सकता है कि अगर हिटलर को किसी आदमी ने मार डाला होता १९३० के पहले, तो वह आदमी हत्यारा सिद्ध होता। तब हम न देख पाते कि एक ऐसा आदमी मारा जा रहा है, जो एक करोड़ लोगों की हत्या करेगा। लेकिन महावीर ऐसा देख पाते हैं, इसलिए तब तय करना मुश्किल है कि हिटलर का हत्यारा सचमुच बुरा कर रहा है, या अच्छा कर रहा है। क्योंकि हिटलर अगर मरे तो करोड़ लोग बच सकते हैं। फिर भी इसका यह अर्थ नहीं है कि हिटलर को जो मार रहा है, वह अच्छा ही कर रहा है। सच तो यह है कि महावीर जैसे लोग जानते हैं कि पृथ्वी पर अच्छा और बुरा—ऐसा चुनाव नहीं है, कम बुरा और ज्यादा बुरा का ही चुनाव है। 'लेसर ऐंड ग्रेटर इविल' का चुनाव है। हम आमतौर से दो हिस्सों में तोड़ लेते हैं, यह अच्छा है और यह बुरा है। हम जिन्दगी को अँधेरे और प्रकाश में तोड़ लेते हैं। महावीर जानते हैं कि जिन्दगी में ऐसा तोड़ नहीं है। यहाँ जब भी आप कुछ कर रहे हैं, तो ज्यादा से ज्यादा इतना ही कहा जा सकता है कि जो सबसे कम बुरा विकल्प था, वह आप कर रहे हैं। वह आदमी भी बुरा कर रहा है जो हिटलर को मार रहा है। लेकिन संभव हो सकता है कि वह हिटलर से इतना बुरा हो कि हम इस आदमी को बुरा कहें। तो पहली बात मैं यह कहना चाहता हूँ कि जैसा आप देखते हैं, वैसा महावीर नहीं देखेंगे। इस देखने में यह बात भी जोड़ लेनी जरूरी है कि महावीर जानते हैं कि इस जीवन में चौबीस घंटे अनेक तरह की हत्या हो ही रही है। आपको कभी-कभी दिखायी पड़ती है। जब आप चलते हैं तब किसी की आप हत्या कर रहे हैं, जब आप श्वांस लेते हैं तब आप किसी की हत्या कर रहे होते हैं, जब आप भोजन कर रहे हैं तब आप किसी की हत्या कर रहे हैं। आपकी आँख की पलक भी झपकती है, तो हत्या

हो गयी होती है। लेकिन हमें तो, जब कभी कोई किसी की छाती में छुरा भोंकता है, तभी हत्या दिखायी पड़ती है।

(२) हत्या की वैसाखी पर टिका हुआ जीवन

महावीर देखते हैं कि जीवन की जो व्यवस्था है वह हिंसा पर ही खड़ी है। यहाँ चौबीस घंटे प्रतिपल हत्या ही हो रही है। एक मित्र मेरे पास आये थे। वे कह रहे थे कि महावीर जहाँ चलते थे, वहा अनेक-अनेक मीलों तक अगर लोग बीमार होते, तो वे तत्काल ठीक हो जाते थे। मेरा मन हुआ उनसे कहूँ कि शायद उन्हें बीमारी के पूरे रहस्यों का पता नहीं है। क्योंकि जब आप बीमार होते हैं, तो अनेक कीटाणु आपके भीतर जीवन पाते हैं। अगर महावीर के आने से आप ठीक हो जायेंगे तो अन्य कीटाणु तत्काल मर जायेंगे। इसलिए महावीर इस झंझट में पड़ने से रहे। यह ध्यान रखना। क्योंकि आप कुछ विशिष्ठ हैं, ऐसा महावीर नहीं मानते हैं। यहाँ प्रत्येक प्राण का मूल्य बराबर है। हर प्राण का मूल्य है। आप अकेले बीमार होते हैं तब करोड़ों जीवन आपके भीतर पनपते हैं और स्वस्थ होते हैं। तो अगर आप सोचते हों कि महावीर कृपा करेंगे और आपको ठीक कर देंगे, तो ऐसी कृपा महावीर को करनी बहुत मुश्किल होगी। क्योंकि आपके ठीक होने में करोड़ों का नष्ट होना निहित है। और आप इतने मूल्यवान नहीं हैं जितना आप सोचते हैं। क्योकि वे जो करोड़ों आपके भीतर जी रहे हैं; वे भी, प्रत्येक अपने को, इतना मूल्यवान समझते हैं, आपका उनको पता भी नहीं है। आपके शरीर में जब किसी रोग के कीटाणु पलते हैं तो उन्हें पता भी नहीं होता है कि आप भी हैं। आप सिर्फ उनका भोजन होते हैं। तो जैसा हम देखते हैं हत्या को, उतना सरल सवाल महावीर के लिए नहीं है, ज्यादा जटिल है। महावीर के लिए जीवेषणा ही हिंसा है, हत्या है। वह जीवेषणा किसकी है, इसका कोई सवाल नहीं उठता। जो जीना चाहता है, वह हत्या करेगा। ऐसा भी नहीं है कि जो जीवेषणा छोड़ देता है, उससे हत्या बन्द हो जाती हो। जब तक वह जियेगा तब तक हत्या उससे भी चलेगी। महावीर इतना कहते हैं कि उसका संबंध विच्छिन्न हो गया। जीवेषणा के कारण उसका संबंध था। जीवेषणा न रही तो संबंध न रहा।

महावीर भी ज्ञान के बाद चालीस वर्ष जीवित रहे। आखिर उन चालीस वर्षों में महावीर भी चलेंगे तो कोई जरूर मरेगा, उठेंगे तो कोई जरूर मरेगा।

यद्यपि महावीर इतने संयम में जीते हैं कि रात एक ही करवट सोते हैं, दूसरी करवट नहीं लेते। इससे कम करना मुश्किल है। एक ही करवट में रात गुजार देते हैं। क्योंकि दूसरी करवट लेते हैं तो फिर कुछ जीवन मरेंगे। धीमे श्वाँस लेते हैं, ताकि कम से कम जीवन का ह्रास हो। लेकिन श्वाँस तो लेनी ही पड़ेगी। हम कह सकते हैं कि तब फिर कूदकर मर क्यों नहीं जाते हैं ? अपने को समाप्त ही क्यों न कर दें ? लेकिन जब अपने को समाप्त करेंगे, उन शरीर में पलने वाले जीवों का क्या होगा ? एक आदमी के शरीर में सात करोड़ जीवन पलते हैं। साधारण स्वस्थ आदमी के शरीर में। अस्वस्थ के तो और ज्यादा पलते हैं। अगर महावीर एक पहाड़ से अपने को कूदकर मारते हैं, तो सात करोड़ को भी तो साथ मारते हैं। जहर पी लें तो भी सात करोड़ को साथ मारते हैं। हिंसा का सवाल इतना आसान नहीं है जितना कि आपकी आँखें देखती हैं।

क्या है हत्या ? कौन सी चीज हत्या है ? महावीर की तरह देखें, तो जीवन को जीने की कोशिश में ही हत्या है, जीवन को जीने में ही हत्या है। हत्या प्रतिपल चल रही है। प्रत्येक प्राणी जीना चाहता है, इसलिए जब उसपर हमला होता है तब उसे लगता है हत्या हो रही है। बाकी समय हत्या नहीं होती है। अगर जंगल में आप जाकर शेर का शिकार करते हैं, तो खेल है; और शेर आपका शिकार करे तब शिकार नहीं कहलाता वह, तब वह हत्या है। तब वह जंगली जानवर है, और आप बहुत सभ्य जानवर हैं।

और मजा यह है कि शेर आपको कभी नहीं मारेगा, जब तक उसको भूख न लगी हो। और आप तभी उसको मारेंगे जब आपको भूख न लगी हो, पेट भरा हो। कोई भूखे आदमी जंगल में शिकार करने नहीं जाते हैं। जिनको ज्यादा भोजन मिल गया है, जिनको अब पचाने का उपाय नहीं दिखायी पड़ता है, वे शिकार करने चले जाते हैं। जब कि शेर तभी मारता है, जब वह भूखा होगा यानी अनिवार्यता होगी।

(३) सवाल आपके और आपके पिता पर आ जाये तो ?

मैंने सुना है कि एक सर्कस में उन्होंने एक नया प्रदर्शन शुरू किया था, एक भेड़ और एक शेर को एक ही कटघरे में रखने का, मैत्री का। लोग बड़े खुश होते थे। देखकर चमत्कृत होते थे कि शेर और भेड़ गले मिलकर बैठे हुए हैं। लेकिन एक आदमी थोड़ा चकित हुआ कि यह बड़ा कठिन मामला है।

उसने जाकर मैनेजर से पूछा कि है तो प्रदर्शन बहुत अद्भुत है, लेकिन इसमें कभी झंझट नहीं आती ?

उसने कहा—कोई ज्यादा झंझट नहीं आती।

फिर उसने पूछा, कि शेर और भेड़ के साथ-साथ रहने से, कभी उपद्रव नहीं होता ?

उस मैनेजर ने कहा, कभी उपद्रव नहीं होता। सिर्फ हमें रोज एक नयी भेड़ बदलनी पड़ती है। और कोई दिक्कत नहीं है। जब शेर भूखा नहीं रहता, तब दोस्ती ठीक रहती है, कोई झंझट नहीं पड़ता है। जब भूखा होता है, तब वह खा जाता है। दूसरे दिन हम दूसरी बदल देते हैं। प्रदर्शन में इससे कोई बाधा नहीं पड़ती।

शेर भी भेड़ पर हमला नहीं करता, अगर वह भूखा न हो। गैर अनिवार्य हिंसा कोई जानवर नहीं करता, सिवाय आदमी को छोड़कर। लेकिन हमारी हिंसा हमें हिंसा नहीं मालूम पड़ती है। हम उसे नये-नये नाम और अच्छे-अच्छे नाम दे देते हैं। जहाँ तक हो, आदमी की हिंसा न हो। फिर आदमी के साथ भी हम विभाजन करते हैं। हमारे निकट जो जितना पड़ता है, उसकी हत्या हमें उतनी ज्यादा मालूम पड़ती है। अगर पाकिस्तानी मर रहा है तब ठीक है। हिन्दुस्तानी मर रहा है, तो तकलीफ होती है। फिर हिन्दुस्तानी में अगर हिन्दू मर रहा हो तो मुसलमान को तकलीफ नहीं होती है। मुसलमान मर रहा हो तो जैनी को तकलीफ नहीं होती है, जैनी मर रहा तो हिन्दू को तकलीफ नहीं होती है।

और भी निकट हम रेखाएँ खींचते चले जाते हैं। दिगम्बर जैन मर रहा हो तो उससे श्वेतांबर को कोई तकलीफ नहीं होती है। श्वेतांबर मर रहा हो तो दिगम्बर को कोई तकलीफ नहीं होती है। फिर और हम नीचे निकल आते हैं। आपके परिवार का कोई मर रहा हो तो तकलीफ होती है, दूसरे परिवार का कोई मर रहा हो तो सहानुभूति दिखायी जाती है, होती नहीं है। और अगर आपके ऊपर ही सवाल आ जाय कि आप बचें कि आपके पिता बचें, तो पिता को ही मरना पड़ेगा। भाई बचे कि आप बचें तो फिर भाई को मरना पड़ेगा। अगर यह सवाल आ जाये कि आपका सिर बचे कि पैर बचे, तो पैर को कटना पड़ेगा।

(४) कटने का अर्थशास्त्र

मुल्ला नसरुद्दीन के गाँव में एक सैनिक आया हुआ है। काफी हाउस में बैठकर वह अपनी बहादुरी की बहुत बातें कर रहा है। कह रहा है कि मैंने इतने सिर काट दिये, इतने आदमी नाकाम कर दिये।

मुल्ला बहुत देर सुनता रहा। उसने कहा कि 'दिस इज़ नथिंग'। यह कुछ भी नहीं है। एक दफा मैं भी गया था लड़ाई में, पर नहीं मालूम कि कितने लोगों के पैर काट डाले।

उस योद्धा ने कहा कि महाशय, अच्छा हुआ होता कि आप सिर काटते।

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि सिर कोई पहले ही काट चुका था। न मालूम कितनों के पैर काटकर हम ऐसे घर आ गये कि जरा-सी खरोंच भी न लगी। तुम तो काफी पिटे-कुटे मालूम होते हो। तो आपको सिर और पैर के कटने में भी इकोनोमी करनी पड़ेगी। सिर और पैर में से पैर को कटवा डालियेगा और क्या करियेगा।

'मैं' केन्द्र है सारे जगत् का। अपने को बचाने को मैं सारे जगत् को दाँव पर लगा सकता हूँ। यही हिंसा है, यही हत्या है। महावीर इतना व्यापक देखते हैं, उस पर्सपेक्टिव में, उस परिप्रेक्ष्य में कि आपको जो हत्या दिखायी पड़ गयी है, वह महावीर को ऐसी दिखायी नहीं पड़ेगी। इसलिए महावीर के लिए प्रश्न बहुत जटिल है। किसको आप बलात्कार कहते हैं ? पृथ्वी पर सौ में ९९ मौकों पर बलात्कार ही हो रहा है, लेकिन आप किसको बलात्कार कहते हैं ? पति करता है तो बलात्कार नहीं होता, लेकिन अगर पत्नी की इच्छा न हो तो पति का किया हुआ भी बलात्कार है। और कितनी पत्नियों की इच्छा है, कभी पतियों ने पूछा है ?

बलात्कार का अर्थ क्या है ? कानून ने मान्यता दे दी कि यह बलात्कार नहीं है, तो बस, वह बलात्कार नहीं है। समाज ने सैंक्शन दे दिया है तो यह बलात्कार नहीं है। बलात्कार है क्या ? दूसरे की इच्छा के बिना कुछ करना ही बलात्कार है। हम सब दूसरे की इच्छा के बिना बहुत कुछ कर रहे हैं। सच तो यह है कि दूसरे की इच्छा को तोड़ने की ही चेष्टा में सारा मजा है। इसलिए जिस पुरुष ने कभी बलात्कार कर लिया किसी स्त्री से, वह किसी स्त्री से प्रेम करने मे और सहज प्रेम करने में आनन्द न पायेगा। क्योंकि जहाँ सहज

से, जबर्दस्ती से वह जो अहंकार की तृप्ति होगी, वह सहज में कहाँ होती है! अगर आप किसी आदमी से कुश्ती लड़ रहे हों और वह अपने आप गिरकर लेट जाये और कहे—बैठ जाओ मेरी छाती पर, हम हार गये, तो मजा चला गया। लेकिन जब आप उसको गिराते हैं, तो जितनी मुश्किल पड़ती है उसे गिराने में, उसकी छाती पर बैठ जाने में आप उतना ही रस पाते हैं। रस किस बात का है? रस विजय का है। इसलिए तो पत्नी में उतना रस नहीं आता है, जितना दूसरे की पत्नी में रस आता है। क्योंकि दूसरे की पत्नी को अभी भी जीतने का मार्ग है। अपनी पत्नी जीती जा चुकी है। टेकन फार ग्रांटेड। अब उसमें कुछ मजा है ही नहीं। रस क्या है? रस इस बात का है कि मैं कितनी विजय के झंडे गाड़ दूँ (चाहे वह कोई भी आयाम हो—काम-वासना हो, धन हो या चाहे पद हो)। जहाँ जितना मुश्किल है, वहाँ अहंकार उतना विजेता होकर बाहर निकलता है।

अगर महावीर से हम पूछें या गहरे में हम समझें, तो जहाँ-जहाँ अहंकार चेष्टा करता है, वहीं-वहीं बलात्कार हो जाता है। वह बलात्कार अनेक रूपों में है। अगर एक व्यक्ति किसी स्त्री के साथ रास्ते पर बलात्कार कर रहा हो, तो सदा बलात्कार करने वाला ही हमें जिम्मेवार मालूम पड़ेगा। लेकिन हमें ख्याल नहीं है कि स्त्री बलात्कार करवाने के लिये कितनी चेष्टाएँ कर सकती है। क्योंकि अगर पुरुष को इसमें रस आता है कि वह स्त्री को जीत ले तो स्त्री को भी इसमें रस आता है कि वह किसी को इस हालत में ला दे।

(५) संदर्भ : एक व्यभिचारी की डायरी

किर्केगार्ड ने अपनी एक अद्भुत किताब लिखी है—डायरी आफ ए सिड्यूसर, एक व्यभिचारी की डायरी। वह व्यभिचारी जो डायरी लिख रहा है, वह काल्पनिक कथा है। वह जीवन के अन्त में यह लिखता है कि मैं बड़ी भूल में रहा, मैं समझता था कि मैं स्त्रियों को व्यभिचार के लिये राजी कर रहा हूँ। आखिर में मुझे पता चला कि वे मुझसे ज्यादा होशियार हैं कि उन्होंने मेरे साथ व्यभिचार करवा दिया। 'दे सिड्यूज्ड मी। दैट टेकनिक वाज निगेटिव।' इसलिए मुझे भ्रम बना रहा। कोई स्त्री कभी प्रस्ताव नहीं करती किसी पुरुष से विवाह करने का। प्रस्ताव करवा लेती है पुरुष से ही। इन्तजाम सब करती है कि पुरुष प्रस्ताव करे, प्रस्ताव करती नहीं। यह स्त्री और पुरुष के मन का भेद है।

स्त्री के मन का ढंग बहुत सूक्ष्म है। आप देखते हैं कि अगर एक आदमी जा रहा है और एक स्त्री को धक्का मार दे, तो फौरन हमें लगता है कि इसने गलती की। लेकिन वह घर से पूरा इन्तजाम करके चली है कि अगर कोई धक्का न मारे तो उदास लौटेगी। धक्का मारो तो चिल्ला भी सकती है। लेकिन चिल्लाने का कारण यह नहीं है कि धक्का मारने पर नाराजगी है। चिल्लाने का सौ में ९९ कारण यह है कि बिना चिल्लाये किसी को पता नहीं चलेगा कि धक्का मारा गया। पर यह बहुत गहरे में है, उसको भी पता न हो इसकी पूरी सम्भावना है। क्योंकि स्त्रियाँ कड़े बन्धन की जिस व्यवस्था से निकल रही हैं, वह धक्का मारने के लिए पूरा का पूरा निमंत्रण है। उस निमंत्रण में हाथ उनका है। लेकिन हमारे सोचने के जो ढंग हैं, वे एकदम हमेशा पक्षपाती है। हम हमेशा सोचते हैं कि अगर कुछ हो रहा है तो उसके लिए आदमी जिम्मेवार है। हमें ख्याल नहीं आता कि इस जगत् में जिम्मेवारी इतनी आसान नहीं। दूसरा भी जिम्मेवार हो सकता है। और दूसरे की जिम्मेवारी गहरी भी हो सकती है, कुशल भी हो सकती है, चालाक भी हो सकती है, सूक्ष्म भी हो सकती है। महावीर जब देखेंगे तब पूरा देखेंगे, और उस पूरे देखने में और हमारे देखने में फर्क पड़ेगा। महावीर का जो 'विजन' है, वह टोटल होगा।

(६) ऐसे में महावीर क्या करेंगे ?

अब दूसरी बात यह है कि महावीर कुछ करेंगे कि नहीं। तो मैं आप से कहना चाहता हूँ कि महावीर कुछ न करेंगे। जो होता होगा, उसे हो जाने देंगे। इस फर्क को समझ लें। आप रास्ते से गुजर रहे हैं और किसी की हत्या हो रही है तो आप खड़े होकर सोचेंगे कि क्या करूँ ? करूँ कि न करूँ ? आदमी ताकतवर है कि कमजोर दिखता है ? करूँ तो फल क्या होंगे ? किसी मिनिस्टर का रिश्तेदार तो नहीं है ? करके उल्टा मैं तो न फसूंगा ? आप पच्चीस बातें सोचेंगे, तब करेंगे। लेकिन महावीर से कुछ होगा, सोचेंगे वे नहीं। जो हो जायेगा, वह हो जायेगा। महावीर लौट के भी नहीं सोचेंगे कि मैंने क्या किया, क्योंकि उन्होंने कुछ किया नहीं। इसलिए महावीर कहते हैं, पूर्णकृत्य कर्म का बन्धन नहीं बनता। टोटल ऐक्ट कोई बन्धन नहीं लाता। कुछ उनसे होगा कि नहीं होगा, इसे हम प्रिडिक्ट नहीं कर सकते। हम कह नहीं सकते कि वे क्या करेंगे। महावीर भी नहीं कह सकते पहले से कि मैं क्या करूँगा। उस सिचुएशन

में, उस स्थिति में महावीर से क्या होगा, इसके लिए कोई प्रिडिक्सन नहीं हो सकता, कोई ज्योतिषी नहीं बता सकता।

हमारे बावत प्रिडिक्शन हो सकता है। क्योंकि जितनी कम समझ हो उतने ही हम प्रिडिक्टिबल होते हैं। जितनी हमारी नासमझी होगी, उतनी हमारे बावत जानकारी बतायी जा सकती है, कि हम क्या करेंगे। मशीन के बावत हम पूरे प्रिडिक्टिबल हो सकते हैं। जानवर के बावत थोड़ी दिक्कत होती है, लेकिन फिर भी ९० प्रतिशत हम कह सकते हैं कि गाय आज सायं घर आकर क्या करेगी। कभी-कभी भूल-चूक हो सकती है। क्योंकि गाय एकदम यंत्र नहीं है। लेकिन मशीन क्या करेगी, यह तो हम जानते हैं। जैसे-जैसे जीवन-चेतना विकसित होती है, वैसे-वैसे अनप्रिडिक्टिबिलिटी बढ़ती है। साधारण आदमी के बावत कहा जा सकता है कि यह कल सुबह क्या करेगा। महावीर या बुद्ध जैसे व्यक्तियों के बावत नहीं कहा जा सकता है कि वे क्या करेंगे। वे क्या करेंगे, यह बहुत अज्ञात और रहस्यपूर्ण है। क्योंकि उनके टोटल विजन में, उनकी पूर्ण दृष्टि में पता नहीं क्या दिखायी पड़ेगा। और उस दिखायी पड़ने पर वे सोचकर कुछ करने नहीं जायेंगे। वहाँ दिखायी पड़ेगा, यहाँ कृत्य घटित हो जायेगा। वे दर्पण की तरह हैं। जो घटना चारों तरफ घट रही होगी, वह दर्पण में प्रतिलक्षित हो जायेगी, परिलक्षित हो जायेगी, रिफ़लेक्ट हो जायेगी। और उसका जिम्मा महावीर पर बिल्कुल नहीं होगा।

अगर महावीर ने किसी की हत्या होते रोका या किसी पर व्यभिचार होते रोका, तो महावीर कहीं किसी से कहेंगे नहीं कि मैंने किसी पर व्यभिचार होते रोका था। महावीर कहेंगे कि मैंने देखा था व्यभिचार हो रहा और मैंने यह भी देखा था कि इस शरीर ने बाधा डाली। 'आइ वाज ए विटनेस'। महावीर गहरे में साक्षी ही बने रहेंगे, व्यभिचार के भी और व्यभिचार के रोके जाने के भी। तभी वे बाहर होंगे कर्म के, अन्यथा वे कर्म के बाहर नहीं हो सकते। विचार से, वासना से, इच्छा से, अभिप्राय से, प्रयोजन से किया गया कर्म फल को लाता है। महावीर जो भी कर रहे हैं वह प्रयोजन रहित, लक्ष्य रहित, फल रहित, विचार रहित, शून्य से निकला हुआ कर्म है। शून्य से जब कर्म निकलता है, तब वह भविष्यवाणी के बाहर हो जाता है। मै नहीं कह सकता कि महावीर क्या करेंगे। और अगर आपने महावीर से पूछा होता तो महावीर भी नहीं कह सकते थे कि मैं क्या करूँगा। महावीर कहेंगे तुम भी देखोगे कि

स्त्री के मन का ढंग बहुत सूक्ष्म है। आप देखते हैं कि अगर एक आदमी जा रहा है और एक स्त्री को धक्का मार दे, तो फौरन हमें लगता है कि इसने गलती की। लेकिन वह घर से पूरा इन्तजाम करके चली है कि अगर कोई धक्का न मारे तो उदास लौटेगी। धक्का मारो तो चिल्ला भी सकती है। लेकिन चिल्लाने का कारण यह नहीं है कि धक्का मारने पर नाराजगी है। चिल्लाने का सौ में ९९ कारण यह है कि बिना चिल्लाये किसी को पता नहीं चलेगा कि धक्का मारा गया। पर यह बहुत गहरे में है, उसको भी पता न हो इसकी पूरी सम्भावना है। क्योंकि स्त्रियाँ कड़े बन्धन की जिस व्यवस्था से निकल रही हैं, वह धक्का मारने के लिए पूरा का पूरा निमंत्रण है। उस निमंत्रण में हाथ उनका है। लेकिन हमारे सोचने के जो ढंग हैं, वे एकदम हमेशा पक्षपाती है। हम हमेशा सोचते हैं कि अगर कुछ हो रहा है तो उसके लिए आदमी जिम्मेवार है। हमें ख्याल नहीं आता कि इस जगत् में जिम्मेवारी इतनी आसान नहीं। दूसरा भी जिम्मेवार हो सकता है। और दूसरे की जिम्मेवारी गहरी भी हो सकती है, कुशल भी हो सकती है, चालाक भी हो सकती है, सूक्ष्म भी हो सकती है। महावीर जब देखेंगे तब पूरा देखेंगे, और उस पूरे देखने में और हमारे देखने में फर्क पड़ेगा। महावीर का जो 'विजन' है, वह टोटल होगा।

(६) ऐसे में महावीर क्या करेंगे ?

अब दूसरी बात यह है कि महावीर कुछ करेंगे कि नहीं। तो मैं आप से कहना चाहता हूँ कि महावीर कुछ न करेंगे। जो होता होगा, उसे हो जाने देंगे। इस फर्क को समझ लें। आप रास्ते से गुजर रहे हैं और किसी की हत्या हो रही है तो आप खड़े होकर सोचेंगे कि क्या करूँ? करूँ कि न करूँ? आदमी ताकतवर है कि कमजोर दिखता है? करूँ तो फल क्या होंगे? किसी मिनिस्टर का रिश्तेदार तो नहीं है? करके उल्टा मैं तो न फसूंगा? आप पच्चीस बातें सोचेंगे, तब करेंगे। लेकिन महावीर से कुछ होगा, सोचेंगे वे नहीं। जो हो जायेगा, वह हो जायेगा। महावीर लौट के भी नहीं सोचेंगे कि मैंने क्या किया, क्योंकि उन्होंने कुछ किया नहीं। इसलिए महावीर कहते हैं, पूर्णकृत्य कर्म का बन्धन नहीं बनता। टोटल ऐक्ट कोई बन्धन नहीं लाता। कुछ उनसे होगा कि नहीं होगा, इसे हम प्रिडिक्ट नहीं कर सकते। हम कह नहीं सकते कि वे क्या करेंगे। महावीर भी नहीं कह सकते पहले से कि मैं क्या करूँगा। उस सिचुएशन

कर रहे हैं, क्योंकि महावीर ने ऐसा कभी नहीं किया। बुद्ध का मानने वाला कहता है कि बुद्ध ठीक कर रहे हैं। और चूंकि ऐसी स्थिति में महावीर ने ऐसा नहीं किया, इससे सिद्ध होता है कि उन्हें ज्ञान नहीं हुआ था।

हम कर्मों से ज्ञान को नापते हैं, यहीं भूल हो जाती है। कर्म ज्ञान से पैदा होते हैं और ज्ञान कर्म से बहुत बड़ी घटना है। जैसे लहर सागर में पैदा होती है, लेकिन लहरों से सागर को नहीं नापा जाता है। तिस पर भी हिन्द महासागर में और तरह की लहर पैदा होती है और प्रशान्त महासागर में और तरह की, क्योंकि और तरह की हवाएँ बहती हैं, और-और दिशाओं में बहती हैं। तो आप यह मत समझना कि हिन्द महासागर सागर है और प्रशान्त महासागर सागर नहीं है, क्योंकि वैसी लहर यहाँ कहाँ पैदा हो रही है! न पानी का वैसा रंग है! महावीर की स्थितियों में महावीर क्या करते हैं, वही हम जानते हैं। बुद्ध की स्थितियों में बुद्ध जो करते हैं, वही हम जानते हैं। फिर पीछे परम्परा जड़ हो जाती है। उसे हम पकड़ कर बैठ जाते हैं, फिर हम शास्त्रों में खोजते रहते हैं कि इस स्थिति में महावीर ने क्या किया था, वही हम करेंगे। न तो वही स्थिति है, और अगर स्थिति हो भी वही, तो एक बात तो पक्की है कि आप महावीर नहीं हैं। क्योंकि महावीर ने कभी नहीं लौटकर देखा कि किसने क्या किया था, वैसा मैं करूँ? इसलिए ठीक से समझें तो महावीर जो कर रहे हैं वह कृत्य नहीं हैं, ऐक्ट नहीं हैं, हैपनिंग है, वह घटना हैं। वैसा हो रहा है। वह कोई नियमबद्ध बात नहीं हैं। वह नियममुक्त चेतना से घटी हुई घटना है। वह स्वतंत्र घटना है। इसीलिए कर्म का उसमें बंधन नहीं है। महावीर से जरूर कुछ होगा, लेकिन क्या होगा, यह नहीं कहा जा सकता है। कर्म उसका नाम नहीं है, वह हैपिनिंग होगी। इसलिए मैं कोई उत्तर नहीं दे सकता कि महावीर क्या करेंगे?

(८) अगर महावीर आज सामने आ जायें

प्रतिपल जीवन बदल रहा है। जिन्दगी स्टिल (स्थिर) फोटोग्राफ की तरह नहीं है। जिन्दगी चलित चित्र की भाँति है, भागती हुई फिल्म की भाँति है। डायनमिक है, वहाँ सब बदल रहा है, सब पूरे समय बदल रहा है। सारा जगत् बदला जा रहा है। सब बदला जा रहा है। हर बार नयी स्थिति है। और हर बार नयी स्थिति में महावीर हर बार नये ढंग से प्रकट होंगे।

क्या होता है और मैं भी देखूंगा कि क्या होता है। करना मैंने छोड़ दिया है। इसलिए महावीर या लाओत्से या बुद्ध या कृष्ण जैसे लोगों के कर्म को समझना इस जगत् में सर्वाधिक दुरूह पहेली है।

(७) आखिर हम पूछते क्यों हैं ?

हम क्या करते हैं और हम पूछना क्यों चाहते हैं ? हम पूछना इसलिए चाहते हैं कि अगर हमें पक्का पता चल जाये कि महावीर क्या करेंगे, तो वही हम भी कर सकते हैं। लेकिन ध्यान रहे, महावीर हुए विना आप वही नहीं नहीं कर सकते। हाँ, बिल्कुल वही करते हुए मालूम पड़ सकते हैं। लेकिन वह वही नहीं होगा। यही तो उपद्रव हुआ है। महावीर के पीछे ढाई हजार साल से लोग चल रहे हैं और उन्होंने महावीर को विशेष स्थितियों में जो-जो करते देखा है, उसकी नकल कर रहे हैं। वह नकल है। उससे आत्मा का कोई अनुभव नहीं उपजता। महावीर के लिए वह सहज कृत्य था, इनके लिए प्रयास सिद्ध है। महावीर के लिए वह दृष्टि से निष्पन्न हुआ था, इनके लिए सिर्फ हैबिट है, एक बनायी गई आदत है। अगर महावीर किसी दिन उपवासे रह गये थे तो महावीर के लिए वह उपवास और ही अर्थ रखता था। उसके निहितार्थ अलग थे। हो सकता है उस दिन वे इतने आत्मलीन थे कि उन्हें शरीर का स्मरण ही न आया। लेकिन आज उनके पीछे जो उपवास कर रहा है, वह जब भोजन करता है तब उसे शरीर का स्मरण नहीं आता। और जब उपवास करता है तब उसे चौबीस घण्टे शरीर का स्मरण आता है। इससे तो अच्छा था, वह भोजन ही कर लेता। क्योंकि वह महावीर के ज्यादा निकट होता है शरीर के स्मरण न आने में। लेकिन वह भोजन न करके चौबीस घण्टे शरीर का स्मरण कर रहा है। महावीर का उपवास फलित हुआ था इसलिए कि शरीर का स्मरण ही नहीं रहा तो भूख का किसे पता चले, कौन भोजन की तलाश में जाय ?

महावीर जैसे व्यक्तियों की अनुकृति नहीं बनाई जा सकती है। लेकिन सभी परंपराएँ यही काम करती हैं। यही काम विनष्ट कर देता है। इसी से दुनिया में सारे धर्मों के झगड़े खड़े होते हैं। क्योंकि कृष्ण ने कुछ और किया है, बुद्ध ने कुछ और किया है, महावीर ने कुछ और किया है, क्राइस्ट ने कुछ और किया है; सबकी स्थितियाँ अलग थीं। तो महावीर का अनुयायी कहता है कि कृष्ण गलत कर रहे हैं, क्योंकि महावीर ने ऐसा कभी नहीं किया। बुद्ध गलत

बैठा है। मुल्ला को बहुत गुस्सा आ गया। मुल्ला दौड़ा और तगड़े आदमी पर टूट पड़ा। तगड़ा आदमी काफी तगड़ा था, मुल्ला के लिए काफी पड़ रहा था। मुल्ला किसी तरह उसको नीचे गिरा पाया। दोनों ने मिलकर उसकी अच्छी मरम्मत की।

जैसे ही वह छोटा आदमी छूटा, फौरन निकल भागा। वह तगड़ा आदमी बहुत देर से कह रहा था कि मेरी सुन ले, लेकिन मुल्ला इतने गुस्से में था कि सुने कैसे। जब वह छोटा निकल भागा, तब मुल्ला ने कहा, तू क्या कहता है ?

वह बोला कि वह मेरी जेब काटकर भाग गया है। मेरी जेब काट रहा था उसी में तो झगड़ा हुआ और तूने उल्टे मेरी कुटाई कर दी और उसको निकाल दिया।

मुल्ला ने कहा, यह तो बहुत बुरी बात है। लेकिन तूने पहले क्यों नहीं कहा ?

उस आदमी ने कहा, मैं बार-बार कह रहा था, लेकिन तू सुने तब न ! तू तो एकदम पिटाई में लग गया।

जिन्दगी बहुत जटिल है। वहाँ जो पिट रहा है, यह जरूरी नहीं कि वह पिटने के योग्य न हो। और जो पीट रहा है, यह भी जरूरी नहीं है कि वह बिचारा गलत ही कर रहा हो। मुल्ला ने कहा, उस आदमी को मैं ढूंढ़ूंगा। और ढूंढ़ा भी। जो जेब काटकर भागा था, वह मुल्ला को मिल गया। जो मनी-बैग उसने चुराया था, मुल्ला को लाकर दे दिया। बोला, तू सँभाल, असली मालिक तू ही है, क्योंकि मैं तो पिट गया था, बचाया तूने। सो मालिक तू। जिन्दगी ऐसी जटिल है। और महावीर जैसे व्यक्ति उसकी पूरी जटिलता में उसे देखते हैं। और जब वह उसकी पूरी जटिलता में दिखायी पड़ती है तो क्या होगा उनसे, कहना आसान नहीं है। और प्रत्येक घटना में जटिलता बदलती चली जाती है। डायनेमिक बहाव है।

(१०) संयम क्या है, श्वांस है

संयम पर भी आज कुछ समझ लें। क्योंकि महावीर उसे धर्म का दूसरा महत्वपूर्ण सूत्र कहते हैं। अहिंसा आत्मा है, संयम जैसे श्वांस है और तप जैसे देह। महावीर ने शुरू किया, तो कहा अहिंसा संयमो तवो। तप आखिर में

अगर महावीर आज हों, तो जैनों को जितनी कठिनाई होगी, उतनी किसी और को नहीं होगी। क्योंकि उनको बड़ी दिक्कत होगी। वे सिद्ध करेंगे कि यह आदमी गलत है। क्योंकि वे महावीर की २५०० साल पहले वाली जिन्दगी उठाकर जाँच करेंगे कि यह आदमी वैसे ही कर रहा है कि नहीं कर रहा है; जबकि एक बात पक्की है कि महावीर वैसा नहीं कर सकते हैं, क्योंकि वैसी स्थिति नहीं है। सब बदल गया है। और जब वे कुछ और करेंगे (वे और करेंगे ही) तो जिसने जड़ बाँध रखी है, वह बड़ी दिक्कत में पड़ेगा। वह कहेगा, यह नहीं हो सकता है। यह आदमी गलत है। सही आदमी तो वही है, जो २५०० साल पहले था। इसलिए महावीर को जैन लोग स्वीकार न कर सकेंगे। हाँ, और कोई मिल जायें नये लोग स्वीकार करने वाले, तो अलग बात है। यही बुद्ध के साथ होगा, यही कृष्ण के साथ होगा। होने का कारण है। क्योंकि हम कर्मों को पकड़ कर बैठ जाते हैं। कर्म तो राख की तरह हैं, धूल की तरह हैं। टूट गये पत्ते हैं वृक्षों के, सूख गये हैं वृक्षों के पत्ते, उनसे वृक्ष नहीं नापे जाते। वृक्ष में प्रतिपल नये अंकुर आ रहे हैं। वही उसका जीवन है, सूखे पत्ते उसका जीवन नहीं हैं। सूखे पत्ते तो अब बताते ही यही हैं कि अब वे वृक्ष के लिए व्यर्थ होकर बाहर गिर गये हैं। सब कर्म आपके सूखे पत्ते हैं। वे बाहर गिर जाते हैं। भीतर तो जीवन प्रतिपल नया और हरा होता चला जाता है, वह डायनमिक है। हम सूखे पत्तों को इकट्ठा कर लेते हैं और सोचते हैं वृक्ष को जान लिया। सूखे पत्तों से वृक्ष का क्या लेना देना है? वृक्ष का संबंध तो प्राण की सतत् धारा से है, जहाँ नये पत्ते प्रतिपल अंकुरित हो रहे हैं। और नये पत्ते कैसे अंकुरित होंगे, नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि वृक्ष सोच-सोच कर पत्ते नहीं निकालता। वृक्ष से पत्ते निकलते हैं। सूरज कैसा होगा, हवाएँ कैसी होंगी, वर्षा कैसी होगी, चाँद तारे कैसे होंगे, यह इन सब पर निर्भर करेगा। उस सबसे पत्ते निकलेंगे। टोटल से निकलेगा सब, समग्र से निकलेगा सब। महावीर जैसे लोग कास्मिक में जीते हैं, समग्र में जीते हैं। कुछ नहीं कहा जा सकता है कि वे क्या करेंगे। हो सकता है जिस पर बलात्कार हो रहा है, उसको डाँटें-डपटें। लेकिन फिर भी कुछ कहा नहीं जा सकता है।

(६) मनीबैग और मुल्ला नसरुद्दीन

मुल्ला नसरुद्दीन गुजरता है एक गाँव से। देखा कि एक छोटे से आदमी की एक बड़ा तगड़ा आदमी अच्छी पिटाई कर रहा है, उसकी छाती पर चढ़ा

बैठा है। मुल्ला को बहुत गुस्सा आ गया। मुल्ला दौड़ा और तगड़े आदमी पर टूट पड़ा। तगड़ा आदमी काफी तगड़ा था, मुल्ला के लिए काफी पड़ रहा था। मुल्ला किसी तरह उसको नीचे गिरा पाया। दोनों ने मिलकर उसकी अच्छी मरम्मत की।

जैसे ही वह छोटा आदमी छूटा, फौरन निकल भागा। वह तगड़ा आदमी बहुत देर से कह रहा था कि मेरी सुन ले, लेकिन मुल्ला इतने गुस्से में था कि सुने कैसे। जब वह छोटा निकल भागा, तब मुल्ला ने कहा, तू क्या कहता है ?

वह बोला कि वह मेरी जेब काटकर भाग गया है। मेरी जेब काट रहा था उसी में तो झगड़ा हुआ और तूने उल्टे मेरी कुटाई कर दी और उसको निकाल दिया।

मुल्ला ने कहा, यह तो बहुत बुरी बात है। लेकिन तूने पहले क्यों नहीं कहा ?

उस आदमी ने कहा, मैं बार-बार कह रहा था, लेकिन तू सुने तब न ! तू तो एकदम पिटाई में लग गया।

जिन्दगी बहुत जटिल है। वहाँ जो पिट रहा है, यह जरूरी नहीं कि वह पिटने के योग्य न हो। और जो पीट रहा है, यह भी जरूरी नहीं है कि वह बिचारा गलत ही कर रहा हो। मुल्ला ने कहा, उस आदमी को मैं ढूंढ़ूंगा। और ढूंढ़ा भी। जो जेब काटकर भागा था, वह मुल्ला को मिल गया। जो मनी-बैग उसने चुराया था, मुल्ला को लाकर दे दिया। बोला, तू सँभाल, असली मालिक तू ही है, क्योंकि मैं तो पिट गया था, बचाया तूने। सो मालिक तू। जिन्दगी ऐसी जटिल है। और महावीर जैसे व्यक्ति उसकी पूरी जटिलता में उसे देखते हैं। और जब वह उसकी पूरी जटिलता में दिखायी पड़ती है तो क्या होगा उनसे, कहना आसान नहीं है। और प्रत्येक घटना में जटिलता बदलती चली जाती है। डायनेमिक बहाव है।

(१०) संयम क्या है, श्वांस है

संयम पर भी आज कुछ समझ लें। क्योंकि महावीर उसे धर्म का दूसरा महत्वपूर्ण सूत्र कहते हैं। अहिंसा आत्मा है, संयम जैसे श्वांस है और तप जैसे देह। महावीर ने शुरू किया, तो कहा अहिंसा संयमो तवो। तप आखिर में

कहा, संयम बीच में कहा, अहिंसा पहले कहा। हम जब भी देखते हैं तप हमें पहले दिखायी पड़ता है। संयम पीछे दिखायी पड़ता है। अहिंसा तो शायद ही दिखायी पड़ती है। बहुत मुश्किल है दिखायी पड़ना। महावीर भीतर से बाहर की तरफ चलते हैं, हम बाहर से भीतर की तरफ चलते हैं। इसलिए हम तपस्वी की जितनी पूजा करते हैं उतनी अहिंसक की न कर पायेंगे। क्योंकि तप हमें दिखाई पड़ता है, वह देह जैसा बाहर है। अहिंसा गहरे में है। वह दिखायी नहीं पड़ती, वह अदृश्य है। संयम का हम अनुमान लगाते हैं। जब हमें कोई तपस्वी दिखायी पड़ता है तो हम समझते हैं, संयमी है। नहीं तो तप कैसे करेगा। जब कोई हमें भोगी दिखायी पड़ता है तब हम समझते हैं, असंयमी है, नहीं तो भोग कैसे करेगा। जरूरी नहीं है ऐसा। तपस्वी भी असंयमी हो सकता है और ऊपर से दिखायी पड़ने वाला भोगी भी संयमी हो सकता है। इसलिए संयम का हम सिर्फ अनुमान लगाते हैं तब हमें साफ दिखायी पड़ जाता है। वह अनुमान हमारा ऐसा ही है जैसे रास्ते पर गिरा हुआ पानी देखकर हम सोचें कि वर्षा हुई होगी। लेकिन म्युनिसिपल की मोटर भी पानी गिरा सकती है। तर्कशास्त्र की पुरानी किताबों में लिखा है कि जहाँ-जहाँ पानी गिरा दिखायी पड़े, समझना कि वर्षा हुई होगी, क्योंकि उस वक्त म्युनिसिपल की मोटर नहीं थी।

इसी तरह हम अनुमान लगाते हैं कि जो आदमी तप कर रहा है, वह संयमी है। लेकिन जरूरी नहीं। तप करनेवाला असंयमी हो सकता है। यद्यपि संयमी के जीवन में तप होता है, लेकिन तपस्वी के जीवन में संयम का होना आवश्यक नहीं है। महावीर भीतर से चलते हैं, क्योंकि वहीं प्राण है और वहीं चलना उचित है। क्षुद्र से विराट की तरफ जाने में सदा भूलें होती हैं। विराट से क्षुद्र की तरफ जाने में कभी भूल नहीं होती। क्योंकि क्षुद्र से जो विराट की तरफ चलता है वह क्षुद्र की धारणाओं को विराट तक ले जाता है। उसकी संकीर्ण दृष्टि को वह खींचता है, उससे भूल होती है।

संयम का पहले तो हम अर्थ समझ लें। संयम से जो समझा जाता रहा है, वह महावीर का प्रयोजन नहीं है। जो आमतौर से समझा जाता है उसका अर्थ है—निरोध, विरोध, दमन, नियंत्रण, 'कंट्रोल'। ऐसा भाव हमारे मन में बैठ गया है संयम के लिए। कोई आदमी अपने को दबाता है, रोकता है, वृत्तियों को बाँधता है, नियंत्रण में रखता है तो हम कहते हैं संयमी है। संयम की हमारी

परिभाषा बड़ी निषेधात्मक है, बड़ी निगेटिव है। उसका कोई विधायक रूप हमारे ख्याल में नहीं है। एक आदमी कम खाना खाता है, तो हम कहते हैं कि संयमी है एक आदमी कम सोता है, तो हम कहते हैं संयमी है। एक आदमी विवाह नहीं करता है तो हम कहते हैं कि संयमी है। एक आदमी कम कपड़े पहनता है, तो हम कहते हैं संयमी है। सीमा बनाता है, तो हम कहते हैं संयमी है। जितना निषेध करता है, जितना सीमा बनाता है, जितना नियंत्रण करता है, जितना बांधता है अपने को, हम कहते हैं उतना ही संयमी है। लेकिन मैं आप से कहता हूँ कि महावीर जैसे व्यक्ति जीवन को निषेध की परिभाषाएँ नहीं देते। क्योंकि जीवन निषेध से नहीं चलता है। जीवन चलता है विधेय से, पाजिटिव से। जीवन की सारी ऊर्जा विधेय से चलती है। तो महावीर की यह परिभाषा नहीं हो सकती। महावीर की परिभाषा संयम के लिए तो बड़ी ही विधेय होगी, बड़ी विधायक होगी, सशक्त होगी, जीवन्त होगी, इतनी मुर्दा नहीं हो सकती जितनी हमारी परिभाषा है।

इसीलिए हमारी परिभाषा मानकर जो संयम में जाता है, उसके जीवन का तेज बढ़ता हुआ दिखायी नहीं पड़ता, क्षीण होता हुआ मालूम पड़ता है। मगर हम कभी फिक्र नहीं करते हैं, हम कभी ख्याल नहीं करते हैं कि महावीर ने जिस संयम की बात कही है, उससे तो जीवन की महिमा बढ़नी चाहिए, उससे तो प्रतिभा और आभामंडित होनी चाहिए। लेकिन जिनको हम तपस्वी कहते हैं उनकी 'आइ क्यू' की कभी जांच करवायी कि इनकी बुद्धि का कितना अंक बढ़ा ? इनकी बुद्धि का अंक और कम हो जायेगा। लेकिन हमें प्रयोजन नहीं कि इनकी प्रतिभा नीचे गिर रही है। हमें प्रयोजन है कि रोटी कितनी खा रहे हैं, कपड़ा कितना पहन रहे हैं।

(११) पैर छूटने का प्रमाणपत्र

एक साधु मेरे पास आये थे। वे मुझसे कहने लगे कि आपकी बात मुझे ठीक लगती है। मैं छोड़ देना चाहता हूँ यह परम्परागत साधुता। लेकिन मैं बड़ी मुश्किल में पड़ूँगा। अभी करोड़पति मेरा पैर छूता है। कल वह मुझे पहरेदार की नौकरी भी देने को तैयार नहीं हो सकता। कभी सोचा है आपने कि जिसके पैर छूते हैं अगर घर में बर्तन मलने के लिए आपके पास आये तो आप कहेंगे सर्टिफिकेट हैं ? कहाँ करते थे नौकरी पहले ? कहाँ तक पढ़े हो ? चोरी-चपाटी तो नहीं करते ? लेकिन पैर छूने में किसी प्रमाणपत्र की जरूरत

नहीं। इतना प्रमाणपत्र काफी होता है कि आपकी बुद्धि को समझ में आ जाय कि यह संयमी है। संयम का जैसे अपने में हमने कोई मूल्य समझ रखा है कि जो अपने को रोक लेता है वह संयमी है। रोक लेने में जैसे अपना कोई गुण है। नहीं, जीवन के सारे गुण फैलाव के हैं। जीवन के सारे गुण विस्तार के हैं। जीवन के सारे गुण विधायक उपलब्धि के हैं, निषेध के नहीं हैं। महावीर के लिए संयम और है। उसकी तो बात हम करें ही, लेकिन हम जिसे संयम समझते हैं उसका भी ख्याल कर लें।

हमारे लिए संयम का अर्थ है अपने से लड़ता हुआ आदमी। महावीर के लिए संयम का अर्थ है, अपने साथ राजी हुआ आदमी। हमारे लिए संयम का अर्थ है अपनी वृत्तियों को सँभालता हुआ आदमी। महावीर के लिए सयम का अर्थ है अपनी वृत्तियों का मालिक हो गया है वह। सँभालता तो वही है जो मालिक नहीं है। सँभालना पड़ता ही इसलिए है कि वृत्तियाँ अपनी मालकियत रखती हैं। लड़ना पड़ता इसलिए है कि आप वृत्तियों से कमजोर हैं। अगर आप वृत्तियों से ज्यादा शक्तिशाली हैं, तो लड़ने की जरूरत नहीं रहती। वृत्तियाँ अपने से गिर जाती हैं। महावीर के लिए संयमी का अर्थ है आत्मवान। इतना आत्मवान कि वृत्तियाँ उसके सामने खड़ी भी नहीं हो पातीं। आवाज भी नहीं दे पातीं। उसका इशारा पर्याप्त है। ऐसा नहीं है कि उसे क्रोध को दबाना पड़ता है ताकत लगाकर। क्योंकि जिसे ताकत लगाकर दबाना पड़े, उससे हम कमजोर हैं। और जिसे हमने ताकत लगाकर दबाया है, उसे हम कितना ही दबायें, दबा न पायेंगे। वह आज नहीं कल टूटता ही रहेगा। फूटता ही रहेगा, बहता ही रहेगा। महावीर कहते हैं संयमी का अर्थ है आत्मवान। इतना आत्मवान कि क्रोध यह क्षमता नहीं जुटा सकता है कि उसके सामने आ जाय।

(१२) आपने पुलिस को खबर नहीं की?

एक कालेज में मैं था। वहाँ एक मजेदार घटना घटी थी। उस कालेज के प्रिंसिपल बहुत शक्तिशाली आदमी थे। वे बहुत दिन से प्रिंसिपल थे। उम्र भी हो गयी रिटायर्ड होने की, लेकिन वे रिटायर नहीं होते। प्राइवेट कालेज था। कमेटी के लोग उनसे डरते थे, प्रोफेसर उनसे डरते थे। फिर दस-पाँच प्रोफेसरों ने इकट्ठा होकर कुछ ताकत जुटायी। और उनमें से जो सबसे ताकतवर प्रोफेसर था, उसको आगे बढ़ाने की कोशिश की और कहा कि तुम

सबसे ज्यादा पुराने भी हो, सीनियर-मोस्ट भी हो, तुम्हें प्रिंसिपल होना चाहिए। इस आदमी को अब हटना चाहिए। सारे प्रोफेसरों ने ताकत लगायी। मैंने उनसे कहा भी कि देखो तुम झंझट में पड़ोगे। क्योंकि मैं जानता हूँ तुम सब कमजोर हो। और जिस आदमी को तुम आगे बढ़ा रहे हो, वह आदमी बिल्कुल कमजोर है। फिर भी वे नहीं माने। उन्होंने कहा सब संगठित हैं, संगठन में शक्ति है। सारे प्रोफेसर प्रिंसिपल के खिलाफ इकट्ठे हो गये और एक दिन उन्होंने कालेज पर कब्जा भी कर लिया। और जिन सज्जन को चुना था उनको प्रिंसिपल की कुर्सी पर बिठा दिया।

मैं देखने पहुँचा कि वहाँ क्या होने वाला है। जो प्रिंसिपल थे, उन्हें ठीक वक्त पर, उनके घर पर खबर कर दी गयी कि ऐसा-ऐसा हुआ। उन्होंने कहा हो जाने दो। वे ठीक वक्त पर ११ बजे, जैसे रोज आते थे, आये दफ्तर में। वे दफ्तर में आये तो जिनको प्रोफेसरों ने बिठाया था, उस आदमी ने उठकर नमस्कार किया और कहा, आइए बैठिए। वह तत्काल हट गया वहाँ से। उस प्रिंसिपल ने पुलिस को खबर नहीं दी, जब कि उन लोगों ने खबर कर रखी थी कि शायद कोई गड़बड़ हो। मैंने उनसे पूछा कि आपने पुलिस को खबर नहीं की? उन्होंने कहा कि इन लोगों के लिए पुलिस को खबर? अरे, इनको जो करना है करने दो।

(१३) संयम और बँधे हुए घोड़े की लगाम

शक्ति जब स्वयं के भीतर होती है तो वृत्तियों से लड़ना नहीं पड़ता। वृत्तियाँ आत्मवान व्यक्ति के सामने सिर झुकाकर खड़ी हो जाती हैं। वे तो कमजोर आत्मा के सामने सिर उठाती हैं। इसलिए जो हमने आमतौर से सुन रखी है परिभाषा संयम की—कि जैसे कोई सारथी रथ में बैठे हुए घोड़ों की लगामें पकड़े बैठा हुआ है—ऐसा अर्थ संयम का नहीं है, वह दमन का है और वह गलत है। संयम का महावीर के लिए अर्थ है—जैसे कोई शक्तिवान अपनी शक्ति में प्रतिष्ठित है। उसका शक्ति में प्रतिष्ठित होना ही, उसका अपनी ऊर्जा में होना ही वृत्तियों का निर्बल और नपुंसक हो जाना है, इम्पोटेंट हो जाना है। महावीर अपनी कामवासना पर वश पाकर ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नहीं होते। ब्रह्मचर्य की भी ऊर्जा है। उससे कामवासना सिर उठा नहीं पाती। महावीर अपनी हिंसा से लड़कर अहिंसक नहीं बनते, अहिंसक हैं इसलिए हिंसा सिर नहीं उठा पाती। महावीर अपने क्रोध से लड़कर क्षमा नहीं करते। क्षमा की इतनी

शक्ति है कि क्रोध को उठने का अवसर कहाँ है ! महावीर के लिए स्वयं की शक्ति से परिचित हो जाना संयम है ।

संयम इसे क्यों नाम दिया है ? संयम नाम बहुत अर्थपूर्ण है । और संयम का शब्द भी बहुत महत्वपूर्ण है । अंग्रेजी में जितनी भी किताबें लिखी गयी हैं और संयम के बाबत जिन्होंने भी लिखा है, उन्होंने उसका अनुवाद 'कंट्रोल' किया है, जो कि गलत है । अंग्रेजी में सिर्फ एक शब्द है, जो संयम का अनुवाद बन सकता है । लेकिन वह भाषाशास्त्री को ख्याल में नहीं आयेगा । क्योंकि भाषा की दृष्टि से वह ठीक नहीं है । अंग्रेजी में जो शब्द है ट्रैंक्वेलिटी, वह संयम का अर्थ हो सकता है । संयम का अर्थ है इतना शान्त कि जो विचलित नहीं होता । संयम का अर्थ है अविचलित, निष्कम्प । संयम का अर्थ है ठहरा हुआ । गीता में कृष्ण ने जिसे स्थितिप्रज्ञ कहा है, महावीर के लिए वही संयमी है । संयमी का अर्थ है ठहरा हुआ, अविचलित, निष्कम्प, जो डाँवाडोल नहीं होता । जो यहाँ-वहाँ नहीं डोलता रहता, जो कंपित नहीं होता रहता । जो अपने में ठहरा हुआ है । जो पैर जमाकर अपने में खड़ा हुआ है ।

इसे हम और दिशा से समझें, तो ख्याल में आ जायेगा । अगर संयम का ऐसा अर्थ है तो असंयम का अर्थ हुआ कंपन, वेवरिंग, ट्रेम्बलिंग । जो कँपता हुआ मन है, उसका नियम है कि वह एक अति से दूसरी अति पर चला जाता है । अगर कामवासना में जायेगा तो अति पर चला जायेगा । फिर ऊबेगा, परेशान होगा । सब वासनाएँ उबा देती हैं, सब वासनाएँ घबड़ा देती हैं । क्योंकि उनसे मिलता कुछ नहीं है । मिलने के जितने सपने थे, वह और टूट जाते हैं । सिवाय विफलता और विषाद के कुछ हाथ नहीं लगता । तो वासना घिरा मन अति पर जाता है फिर वासना से ऊब जाता है, घबड़ा जाता है और तब दूसरी अति पर चला जाता है, जहाँ वह वासना के विपरीत खड़ा हो जाता है । कल तक ज्यादा खाता था, फिर एकदम अनशन करने लगता है ।

(१४) ओवरफेड समाज का अनशन

और इसलिए ध्यान रखिये, अनशन की धारणा सिर्फ ज्यादा भोजन उपलब्ध समाजों में होती है । अगर जैनियों को उपवास और अनशन अपील करता है तो उसका कारण यह नहीं कि महावीर को वे समझ गये हैं कि उनका क्या मतलब है । उसका कुल मतलब इतना है कि वह 'ओवर फेड'

समाज हैं। उनको ज्यादा खाने को मिला हुआ है, और कोई कारण नहीं। कभी आपने देखा है कि गरीब का जो धार्मिक दिन होता है उस दिन वह अच्छे खाने बनाता है। और अमीर का जो धार्मिक दिन होता है उस दिन वह उपवास करता है। अजीब मजा है कि जितने गरीब धर्म हैं दुनिया में उनका उत्सव का दिन ज्यादा भोजन का दिन है। जितने अमीर धर्म हैं दुनिया में, उनके उत्सव का दिन उपवास का दिन है। जहाँ-जहाँ भोजन बढ़ेगा, वहाँ-वहाँ उपवास का 'कल्ट' बढ़ता है। अमरीका में आज उपवास का जितना कल्ट है, दुनिया में और कहीं नहीं है। अमरीका में जितने लोग उपवास की चर्चा करते हैं और फास्टिंग की सलाह देते हैं और नेचुरोपैथी की ओर उत्सुक होते हैं, उतने दुनिया में कहीं भी नहीं। उसका कारण है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि आप महावीर को समझकर उपवास के लिए उत्सुक हो रहे हैं। आप ज्यादा खा गये हैं इसलिए उत्सुक हो रहे हैं। दूसरी अति पर चले जायेंगे। पर्युषण आयेगा, आठ दिन, दस दिन, आप कम खा लेंगे और दस दिन योजनायें बनायेंगे आगे खाने की। और दस दिन बाद पागल की तरह टूटेंगे और ज्यादा खा जायेंगे और बीमार पड़ेंगे। फिर अगले वर्ष यही होगा।

(१५) उपवास से आपको मिलता क्या है?

सच तो यह है कि ज्यादा खानेवाला जब उपवास करता है तो उसको कुछ उपलब्ध नहीं होता है, सिवाय इसके कि उसको भोजन करने का रस फिर से उपलब्ध होता है, रिओरिएंटेशन हो जाता है। आठ दस दिन भूखे रह लिये तो स्वाद जीभ में फिर आ जाता है। महावीर कहते हैं उपवास में रस से मुक्ति होनी चाहिए, लेकिन इनका रस और प्रगाढ़ हो जाता है। उपवास में सिवाय रस के बाबत आदमी और कुछ भी नहीं सोचता है, रस पर चिन्तन चलता है और योजना बनती है। भूख लगती है, और कुछ नहीं होता। मर गयी भूख, इस्टेल हो गयी भूख, सजीव हो जाती है। दस दिन के बाद आदमी टूट पड़ता है भोजन पर। अति पर जाता है मन। और असंयम है एक अति से दूसरी अति, अति पर डोलते रहना। फ्राम वन एक्सट्रीम टु दि अदर। संयम का अर्थ है मध्य में हो जाना। अनति—'नो एक्सट्रीम'।

अगर हम समझते हों कि ज्यादा भोजन असंयम है, तो मैं आपसे कहता हूँ कि कम भोजन भी असंयम है दूसरी अति पर। सम्यक् आहार संयम है, लेकिन ऐसा आहार बड़ी मुश्किल चीज है। ज्यादा भोजन करना बहुत आसान है।

बिल्कुल भोजन न करना बहुत आसान हैं। ज्यादा खा लेना आसान है, कम खा लेना आसान है। सम्यक् आहार अति कठिन है। क्योंकि मन जो है, वह सम्यक् पर रुकता ही नहीं है। और महावीर की शब्दावली में अगर कोई शब्द सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है तो वह सम्यक् है। सम्यक् का अर्थ है 'इन दि मिडल, नेवर टु द एक्सट्रीम'। कभी अति पर नहीं, सम्यक् पर, जहाँ सब चीजें सम हो जाती हैं। जहाँ अति का कोई तनाव नहीं रह जाता, जहाँ सब चीजें ट्रैंक्वेलिटी को उपलब्ध हो जाती हैं। जहाँ न इस तरफ खींचे जाते हैं, न उस तरफ। जहाँ दोनों के मध्य में खड़े हो जाते हैं। वह जो सम स्वर है जीवन का, सभी दिशाओं में, उस समस्वरता को पा लेना संयम हैं। हम उसे कभी न पा सकेंगे। क्योंकि हम निषेध करते हैं। निषेध में हम दूसरी अति पर हो जाते हैं। निषेध के लिए दूसरी अति पर जाना जरूरी होता है।

(१६) चुनाव-क्षेत्र में नसरुद्दीन का दौरा

सुना है मुल्ला नसरुद्दीन एक चुनाव में खड़ा हो गया। दौरा कर रहा था अपने चुनाव क्षेत्र का। बड़े नगर में आया, जो केन्द्र था चुनाव क्षेत्र का। मित्रों से मिला। एक मित्र ने कहा कि फलाँ आदमी तुम्हारे खिलाफ ऐसा-ऐसा बोलता था।

मुल्ला जितनी गाली जानता था, सब दीं।

उसने कहा वह आदमी कोई आदमी है, शैतान की औलाद है। और एक दफा मुझे चुन जाने दो, उसे नर्क भिजवा के रहूँगा।

उस मित्र ने कहा कि मैंने तो सिर्फ सुना था कि मुल्ला, तुम बहुत अच्छी गालियाँ देते हो, इसलिए मैंने यह कहा। वह आदमी तुम्हारा बड़ा प्रशंसक है।

मुल्ला ने कहा कि मैं पहले से ही जानता हूँ कि वह देवता है। एक दफा मुझे चुन जाने दो, देखना—मैं उसकी पूजा करवा दूंगा, मंदिरों पर बिठा दूंगा, वह आदमी देवता है।

उस आदमी ने कहा, मुल्ला तुम इतनी जल्दी बदल जाते हो?

मुल्ला ने कहा, कौन नहीं बदल जाता? सभी बदल जाते हैं। मन ऐसा ही बदलता है। जो आज रूप की देवी मालूम पड़ती है, कल वही साक्षात् कुरूपता मालूम पड़ती है।

मन तत्काल एक अति से दूसरी अति पर चला जाता है। जिसे आज आप शिखरों पर बिठालते हैं कल उसे आप घाटियों में उतारते हैं। मन बीच में नहीं रुकता। क्योंकि मन का अर्थ है तनाव, टेंशन। बीच में रहेंगे, तो तनाव तो होगा नहीं। जब तक अति पर न हों, तब तक तनाव नहीं होता। इसलिए एक अति से दूसरी अति पर मन डोलता रहता है। मन जी ही सकता है अति में। संयम में तो समाप्त हो जाता है। इसलिए जब आप कहते हैं, फलां आदमी के पास बहुत संयमी मन है, तब आप बिलकुल गलत कहते हैं। संयमी के पास मन होता ही नहीं। इसलिए जेन बौद्धों में जो फकीर है, वे कहते हैं संयम तभी उपलब्ध होता है जब 'नो माइंड' उपलब्ध होता है, जब मन नहीं रह जाता है। कबीर ने कहा है जब अ-मन अवस्था आती है, नो-माइंड की, मन नहीं रह जाता, तभी संयम उपलब्ध होता है। अगर हम ऐसा कहें कि मन ही असंयम है तो कुछ अतिशयोक्ति न होगी। ठीक ही होगा। मन ही असंयम है। मन का नियम है तनाव, खिंचे रहो। खिंचे रहो इसके लिए जरूरी है कि अति पर रहो, नहीं तो खिंचे नहीं रहोगे। अति पर रहो, तो खिंचाव बना रहेगा, तनाव बना रहेगा, चित्त तना रहेगा। और हम सब ऐसे लोग हैं कि जितना चित्त तना रहे, उतना ही हमें लगता है कि हम जीवित हैं। अगर चित्त में कोई तनाव न हो, तो हमें लगता है कि हम मर न जायें, खो न जायें। जो लोग ध्यान में गहरे उतरते हैं, वे मुझसे कहने लगते हैं कि अब तो बहुत डर लगता है। ऐसा लगता है कि कहीं मर न जायें। मरने का कोई सवाल ही नहीं है ध्यान में। लेकिन डर लगने का सवाल है। डर इसलिए लगता है कि जैसे-जैसे ध्यान गहरा होता है, मन शून्य होता है। और जब मन शून्य होता है (हमने तो अपने को मन ही समझा हुआ है) तो लगता है हम मरे, मिट न जायें, अगर अति छोड़ देंगे तो समाप्त न हो जायें। गति कहां रहेगी, फिर तो हम समाप्त ही हो जायेंगे।

(१७) ग्रीन का यंत्र और मन की प्रकाश रेखाएँ

डा० ग्रीन ने अमरीका में एक यंत्र बनाया हुआ है—फीड बैक यंत्र, बड़ा कीमती है। आज नहीं कल उसे सभी मंदिरों में लग जाना चाहिए, सभी गिरिजाघरों में, सभी चर्चों में। एक ऐसा यंत्र है, जिसपर कुर्सी पर आदमी बैठ जाता है और सामने उसकी कुर्सी पर पर्दा लगा होता है। उस पर्दे पर थर्मामीटर की तरह प्रकाश घटने बढ़ने लगते हैं। दो रेखाओं में प्रकाश ऊपर बढ़ता

बिल्कुल भोजन न करना बहुत आसान है। ज्यादा खा लेना आसान है, कम खा लेना आसान है। सम्यक् आहार अति कठिन है। क्योंकि मन जो है, वह सम्यक् पर रुकता ही नहीं है। और महावीर की शब्दावली में अगर कोई शब्द सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है तो वह सम्यक् है। सम्यक् का अर्थ है 'इन दि मिडल, नेवर टु द एक्सट्रीम'। कभी अति पर नहीं, सम्यक् पर, जहाँ सब चीजें सम हो जाती हैं। जहाँ अति का कोई तनाव नहीं रह जाता, जहाँ सब चीजें ट्रेंक्वेलिटी को उपलब्ध हो जाती हैं। जहाँ न इस तरफ खींचे जाते हैं, न उस तरफ। जहाँ दोनों के मध्य में खड़े हो जाते हैं। वह जो सम स्वर है जीवन का, सभी दिशाओं में, उस समस्वरता को पा लेना संयम है। हम उसे कभी न पा सकेंगे। क्योंकि हम निषेध करते हैं। निषेध में हम दूसरी अति पर हो जाते हैं। निषेध के लिए दूसरी अति पर जाना जरूरी होता है।

(१६) चुनाव-क्षेत्र में नसरुद्दीन का दौरा

सुना है मुल्ला नसरुद्दीन एक चुनाव में खड़ा हो गया। दौरा कर रहा था अपने चुनाव क्षेत्र का। बड़े नगर में आया, जो केन्द्र था चुनाव क्षेत्र का। मित्रों से मिला। एक मित्र ने कहा कि फलाँ आदमी तुम्हारे खिलाफ ऐसा-ऐसा बोलता था।

मुल्ला जितनी गाली जानता था, सब दीं।

उसने कहा वह आदमी कोई आदमी है, शैतान की औलाद है। और एक दफा मुझे चुन जाने दो, उसे नर्क भिजवा के रहूँगा।

उस मित्र ने कहा कि मैंने तो सिर्फ सुना था कि मुल्ला, तुम बहुत अच्छी गालियाँ देते हो, इसलिए मैंने यह कहा। वह आदमी तुम्हारा बड़ा प्रशंसक है।

मुल्ला ने कहा कि मैं पहले से ही जानता हूँ कि वह देवता है। एक दफा मुझे चुन जाने दो, देखना—मैं उसकी पूजा करवा दूंगा, मंदिरों पर बिठा दूंगा, वह आदमी देवता है।

उस आदमी ने कहा, मुल्ला तुम इतनी जल्दी बदल जाते हो ?

मुल्ला ने कहा, कौन नहीं बदल जाता ? सभी बदल जाते हैं। मन ऐसा ही बदलता है। जो आज रूप की देवी मालूम पड़ती है, कल वही साक्षात् कुरूपता मालूम पड़ती है।

मन तत्काल एक अति से दूसरी अति पर चला जाता है। जिसे आज आप शिखरों पर बिठालते हैं कल उसे आप घाटियों में उतारते हैं। मन बीच में नहीं रुकता। क्योंकि मन का अर्थ है तनाव, टेंशन। बीच में रहेंगे, तो तनाव तो होगा नहीं। जब तक अति पर न हों, तब तक तनाव नहीं होता। इसलिए एक अति से दूसरी अति पर मन डोलता रहता है। मन जी ही सकता है अति में। संयम में तो समाप्त हो जाता है। इसलिए जब आप कहते हैं, फलाँ आदमी के पास बहुत संयमी मन है, तब आप बिलकुल गलत कहते हैं। संयमी के पास मन होता ही नहीं। इसलिए जेन बौद्धों में जो फकीर हैं, वे कहते हैं संयम तभी उपलब्ध होता है जब 'नो माइंड' उपलब्ध होता है, जब मन नहीं रह जाता है। कबीर ने कहा है जब अ-मन अवस्था आती है, नो-माइंड की, मन नहीं रह जाता, तभी संयम उपलब्ध होता है। अगर हम ऐसा कहें कि मन ही असंयम है तो कुछ अतिशयोक्ति न होगी। ठीक ही होगा। मन ही असंयम है। मन का नियम है तनाव, खिंचे रहो। खिंचे रहो इसके लिए जरूरी है कि अति पर रहो, नहीं तो खिंचे नहीं रहोगे। अति पर रहो, तो खिंचाव बना रहेगा, तनाव बना रहेगा, चित्त तना रहेगा। और हम सब ऐसे लोग हैं कि जितना चित्त तना रहे, उतना ही हमें लगता है कि हम जीवित हैं। अगर चित्त में कोई तनाव न हो, तो हमें लगता है कि हम मर न जायें, खो न जायें। जो लोग ध्यान में गहरे उतरते हैं, वे मुझसे कहने लगते हैं कि अब तो बहुत डर लगता है। ऐसा लगता है कि कहीं मर न जायें। मरने का कोई सवाल ही नहीं है ध्यान में। लेकिन डर लगने का सवाल है। डर इसलिए लगता है कि जैसे-जैसे ध्यान गहरा होता है, मन शून्य होता है। और जब मन शून्य होता है (हमने तो अपने को मन ही समझा हुआ है) तो लगता है हम मरे, मिट न जायें, अगर अति छोड़ देंगे तो समाप्त न हो जायें। गति कहाँ रहेगी, फिर तो हम समाप्त ही हो जायेंगे।

(१७) ग्रीन का यंत्र और मन की प्रकाश रेखाएँ

डा० ग्रीन ने अमरीका में एक यंत्र बनाया हुआ है—फीड बैक यंत्र, बड़ा कीमती है। आज नहीं कल उसे सभी मंदिरों में लग जाना चाहिए, सभी गिरिजाघरों में, सभी चर्चों में। एक ऐसा यंत्र है, जिसपर कुर्सी पर आदमी बैठ जाता है और सामने उसकी कुर्सी पर पर्दा लगा होता है। उस पर्दे पर थर्मामीटर की तरह प्रकाश घटने बढ़ने लगते हैं। दो रेखाओं में प्रकाश ऊपर बढ़ता

है। जैसे थर्मामीटर का पारा ऊपर बढ़ता है। आपके मस्तिष्क में दोनों तरफ खोपड़ी पर तार बांध दिये जाते हैं। वे तार उन प्रकाशों से जुड़े होते हैं। और आपका मन जब अतियों में चलता है, तो एक रेखा बिल्कुल आसमान छूने लगती है। दूसरी जीरो पर हो जाती है। बहुत अद्‌भुत, महत्वपूर्ण यंत्र है यह। जब आप सोच रहे होते हैं कामवासना के संबंध में, तब एक रेखा आपकी आसमान छूने लगती है, दूसरी शून्य हो जाती है। सामने पास में ग्रीन खड़ा है। वह आपको तस्वीरें दिखाता है नंगी औरतों की और आपके मन में कामवासना को जगाता है। साथ में संगीत बजता है जो आपके भीतर काम-वासना को जगाता है। एक रेखा आसमान छूने लगती है, दूसरी शून्य हो जाती है। फिर तस्वीरें हटा ली जाती हैं। फिर बुद्ध और महावीर और क्राइस्ट के चित्र दिखाये जाते हैं। फिर संगीत बदल दिया जाता है और ब्रह्मचर्य का कोई सूत्र आदमी के सामने रख दिया जाता है। उससे कहा जाता है ब्रह्मचर्य के संबंध में चिन्तन करो। बस एक रेखा नीचे गिरने लगती है, दूसरी रेखा ऊपर चढ़ने लगती है। और तब तक नहीं रुकती आदमी जब तक पहली शून्य न हो जाये और दूसरी पूर्ण न हो जाये। ग्रीन कहता है यह चित्त की अवस्था है।

(१८) 'अहा एक्सपीरियंस' : विज्ञान के आंगन से

फिर ग्रीन तीसरा प्रयोग करता है। वह कहता है, तुम कुछ मत सोचो। न तुम ब्रह्मचर्य के संबंध में सोचो, न तुम कामवासना के संबंध में सोचो। तुम तो सामने देखो और सिर्फ इतना ही ख्याल करो कि यह मेरा मन शांत हो जाय, ये दोनों रेखाएँ समतुल हो जायें। वह आदमी देखता है, एक रेखा नीचे गिरने लगी, दूसरी ऊपर बढ़ने लगी। इसको 'फीड बैक' कहता है ग्रीन। इससे उसकी हिम्मत बढ़ती है कि कुछ हो रहा है। इसलिए मैं कहता हूँ कि ध्यान के लिए सारे मंदिरों में यह यंत्र लग जाना चाहिए। क्योंकि आपको पता नहीं चलता है कि कुछ हो रहा है कि नहीं हो रहा है। पता चले कि हो रहा है तो आपकी हिम्मत बढ़ती है। तो जितनी उसकी हिम्मत बढ़ती है उतनी उसकी रेखाएँ करीब आने लगती हैं। वह देखता है, उसको लगता है हो रहा है मन शान्त। वह और शान्त होता है, और शान्त होता है। यंत्र में दिखायी पड़ता है कि और शान्त हो रहा है, तो और शान्त होने की हिम्मत बढ़ती है। बहुत शीघ्र पन्द्रह मिनट, बीस मिनट, तीस मिनट में दोनों रेखाएँ

साथ, समान आ जाती हैं। और जब दोनों रेखाएँ समान आ जाती हैं तब वह आदमी कहता है। आह, ऐसी शांति कभी नहीं जानी। ऐसा कभी नहीं जाना। इसको ग्रीन को एक नया ही शब्द देना पड़ा। क्योंकि कोई ऐसा शब्द नहीं है। इसको कौन-सा अनुभव कहें ? तो वह कहता है 'अहा एक्सपीरियंस।' जब दोनों रेखाएँ शान्त हो जाती हैं तो आदमी कहता है अहा! और एक दफा यह अनुभव में आ जाये तो संयम का ख्याल आ सकता है, अन्यथा संयम का ख्याल नहीं आ सकता। संयम का अर्थ है चित्त जहाँ किसी भी अति में न हो और 'अहा एक्सपीरियंस' में आ जाय, एक अहो भाव रह जाये, एक शान्त मुद्रा रह जाये, तो वह संयम है। और यह संयम बड़ी पाजिटिव बात हैं। जब दोनों अतियां साथ खड़ी हो जाती हैं, तब दोनों एक दूसरे को काट देती हैं और आदमी मुक्त हो जाता है। लोभ और त्याग दोनों संभव हो गये, तो फिर आदमी त्यागी भी नहीं होता, लोभी भी नहीं होता। जहाँ तक लोभ होता है वहाँ तक बेचैनी होती है, और जहाँ तक त्याग होता है वहाँ तक भी बेचैनी होती है। क्योंकि त्याग उल्टा खड़ा हुआ लोभ ही है, और कुछ भी नहीं है; बस शीर्षासन करता हुआ लोभ है।

(१९) कामवासना का शीर्षासन

जब कामवासना मन को पकड़ती है तब भी बेचैनी होती है, और जब ब्रह्मचर्य आकर्षण देता है तब भी बेचैनी होती है। क्योंकि ब्रह्मचर्य है क्या? उल्टा खड़ा हुआ काम है। शीर्षासन करता हुआ काम है। वास्तविक ब्रह्मचर्य तो उस दिन उपलब्ध होता है जिस दिन ब्रह्मचर्य का भी पता नहीं रह जाता। वास्तविक त्याग तो उस दिन उपलब्ध होता है, जिस दिन त्याग का बोध भी नहीं रह जाता, पता भी नहीं रहता। पता कैसे रहेगा ? जिसके मन में लोभ ही न रहा, उसे त्याग का पता कैसे रहेगा ? अगर त्याग का पता है, तो समझ लो लोभ कहीं न कहीं पीछे छिपा खड़ा है। वही तो पता करवाता है। कंट्रास्ट चाहिए न पता होने को! काली रेखा चाहिए न सफेद कागज पर! काले ब्लैकबोर्ड पर सफेद चाक चाहिए न! नहीं तो दिखेगा कैसे! जब तक आपको दिखता है कि 'मैं त्यागी हूँ' तब तक आप जानना कि भीतर 'मैं लोभी हूँ' मजबूती से खड़ा है। नहीं तो दिखेगा कैसे। जब तक आपको लगता है कि मैं ब्रह्मचारी हूँ, जब तक आप चोटी-वोटी बाँधकर तिलक टीका लगाकर जोर से घोषणा करते फिरते हैं खड़ाऊँ बजा के, कि मैं ब्रह्मचारी हूँ, तब तक आप

समझना कि पीछे उपद्रव छिपा है। आपकी चोटी देखकर लोगों को सावधान हो जाना चाहिए कि खतरनाक आदमी आ रहा है। खड़ाऊँ वगैरह की आवाज सुनकर लोगों को सचेत हो जाना चाहिए। जो ब्रह्मचर्य का दावा कर रहा है, वह कामवासना का ही रूप है। संयम उस क्षण को महावीर कहते हैं, जहाँ न काम रहा, न ब्रह्मचर्य रहा, न लोभ रहा, न त्याग रहा, न यह अति पकड़ती है, न वह अति पकड़ती है। जहाँ आदमी अनति में, मौन में, शान्ति में थिर हो गया, जहाँ दोनों बिन्दु समान हो गये और जहाँ एक दूसरे की शक्ति ने एक दूसरे को काटकर शून्य कर दिया।

(२०) ब्रह्मचारी की कंजूसी

संयम यानी शून्य। और इसलिए संयम सेतु है। संयम के ही माध्यम से कोई व्यक्ति परम गति को उपलब्ध होता है। इसलिए संयम को मैंने श्वांस कहा। और कारणों से भी श्वांस कहा है।

आपको शायद पता न हो। आप श्वांस में भी असंयमी होते हैं। या तो आप ज्यादा श्वांस लेते होते हैं या कम श्वांस लेते होते हैं। पुरुष ज्यादा श्वांस लेने से पीड़ित हैं, स्त्रियाँ कम श्वांस लेने से पीड़ित हैं। जो आक्रामक हैं, वे ज्यादा श्वांस लेने से पीड़ित हैं। जो सुरक्षा के भाव में पड़े रहते हैं वह कम श्वांस लेने से पीड़ित है हममें से बहुत कम लोग हैं, जिन्होंने सच में ही संयमित श्वांस भी ली हो। और दूसरे काम तो करने बहुत कठिन हैं ही, श्वांस तो आप को लेनी भी नहीं पड़ती। उसमें कोई हानि-लाभ भी नहीं है, लेकिन वह भी हम संयमित नहीं लेते। हमारी श्वांस भी तनाव के साथ चलती है। ख्याल करें आप कि कामवासना में आपकी श्वांस तेज हो जायेगी। उतने ही समय में आप साधारण श्वांस से दुगुनी और तिगुनी श्वांस लेंगे, इसलिए पसीना आ जायेगा। शरीर थक जायेगा। अब अगर कोई आदमी ब्रह्मचर्य साधने की कोशिश करेगा, तो साधने में वह श्वांस कम लेने लगेगा। ठीक विपरीत होगा। और होगा ही। असल में जो ब्रह्मचा ी है वह एक अर्थ में, सब मामलों में कंजूस है। यह नहीं है कि वह वीर्य-शक्ति के मामले में कंजूस है। जैसे वह कंजूस होता है सब मामलों में, वैसे वह श्वांस के मामले में कंजूस हो जाता है। अगर हम बायोलॉजिकली समझने की कोशिश करें, तो जो ब्रह्मचर्य की कोशिश है, वह एक तरह की कांस्टिपेशन की कोशिश है। कोष्ठबद्धता है वह।

आदमी सब चीजों को भीतर रोक लेना चाहता है, कुछ निकल न जाये शरीर से उसके। तो श्वांस भी वह धीमी लेगा। सब चीजों को रोक लेगा। वह रुकाव उसके चारों तरफ व्यक्तित्व में खड़ा हो जायेगा। ये अतियाँ हैं। श्वांस की सरलता उस क्षण में उपलब्ध होती है, जब आपको पता ही नहीं लगता कि आप श्वांस ले रहे हैं। ध्यान में जो लोग गहरे जाते हैं उनको वह क्षण आ जाता है, वे मुझसे आकर कहते हैं कहीं श्वांस बन्द तो नहीं हो जायेगी। बन्द नहीं होती श्वांस। श्वांस चलती रहती है। लेकिन इतनी शान्त हो जाती है, इतनी समतुल हो जाती है, बाहर जानेवाली श्वांस और भीतर आनेवाली श्वांस ऐसी समतुल हो जाती है कि दोनों तराजू बराबर हो जाते हैं। पता ही नहीं चलता। क्योंकि पता चलने के लिए थोड़ा बहुत हलन-चलन चाहिए। पता चलने के लिए थोड़ी बहुत डगमगाहट चाहिए। पता चलने के लिए थोड़ा मूवमेन्ट चाहिए। वहाँ सब मूवमेन्ट एक अर्थ में थिर हो जाते है। ऐसा नहीं कि नहीं चलता। चलता है, लेकिन दोनों तुल्य हो जाते हैं। जो व्यक्ति जितना संयमी होता है, उसकी श्वांस भी उतनी संयमित हो जाती है। या जिस व्यक्ति की जितनी श्वांस संयमित हो जाती है उतना उसकें भीत संयम की सुविधा बढ़ जाती है। इसलिए श्वांस पर बड़े प्रयोग महावीर ने किये।

(२१) यह 'सम्यक्' क्या बला है?

श्वांस के संबंध में भी अत्यन्त संतुलित, और जीवन के और सारे आयामों में भी अत्यन्त संतुलित। महावीर कहते हैं सम्यक् आहार, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् निद्रा, सभी कुछ सम्यक् हो। वे नहीं कहते कि कम सोओ, वे नहीं कहते कि ज्यादा सोओ। वे कहते हैं कि उतना ही सोओ जितना सम है। वे नहीं कहते कम खाओ, ज्यादा खाओ। वे कहते हैं उतना ही खाओ जितना सम पर ठहर जाता है। इतना खाओ कि भूख का पता न चले और भोजन का भी पता न चले। अगर खाने के बाद भूख का पता चलता है, तो आपने कम खाया। और अगर खाने बाद भोजन का पता चलने लगता है तो आपने ज्यादा खा लिया। इतना खाओ कि खाने के बाद भूख का भी पता न चले और भोजन का, पेट का भी पता न चले। लेकिन हम दोनों नहीं कर पाते हैं। या तो हमें भूख का पता चलता है और या हमें पेट का पता चलता है। भोजन के पहले भूख का पता चलता है और भोजन के बाद पेट का पता

चलता है। लेकिन पता चलना जारी रहता है। महावीर कहते हैं पता चलना बीमारी है। असल में शरीर के उसी अंग का पता चलता है, जो बीमार होता है। स्वस्थ अंग का पता नहीं चलता। सिर दर्द होता है, तो सिर का पता चलता है। पैर में कांटा गड़ता है, तो पैर का पता चलता है। महावीर कहते हैं, सम्यक् आहार करो कि पता ही न चले। भूख का भी नहीं, भोजन का भी नहीं, सोने का भी नहीं, जागने का भी नहीं, श्रम का भी नहीं, विश्राम का भी नहीं। मगर हम दो में से एक ही कर पाते हैं। या तो हम श्रम ज्यादा कर लेते हैं या विश्राम ज्यादा कर लेते हैं।

कारण क्या है इस ज्यादा कर लेने का, कुछ भी ज्यादा कर लेने का? कारण यही है कि ज्यादा कर लेने में हमें पता चलता है कि हम हैं। और हम चाहते हैं कि हमें पता चलता रहे कि हम हैं। महावीर की अहिंसा का अर्थ है कि हमें पता ही न चले। ऐबसेंट हो जायें हम, अनुपस्थित। लेकिन हमारा मन होता है कि हमें पता चले कि हम हैं। यह अहंकार है कि हमें पता चलता रहे कि हम हैं। न केवल हमें बल्कि औरों को पता चलता रहे कि हम हैं। तो फिर असंयम के सिवाय हमारे लिए कोई मार्ग नहीं रह जाता। इसलिए जितना असंयमी आदमी होता है, उतना ही उसका पता चलता है।

(२२) कहानी का सब्जेक्ट मैटर

एमाइल जोला ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि अगर दुनिया में सब अच्छे आदमी हों, तो कथा लिखना बहुत मुश्किल हो जाये। कथानक न मिलें। भला अच्छे आदमी की जिन्दगी की कोई कहानी होती है? नहीं होती। बुरे आदमी की जिन्दगी में कहानी होती है। उसकी जिन्दगी एक कहानी ही होती है। अच्छे आदमी की जिन्दगी अगर सच में ही अच्छी है तो शून्य हो जाती है, कहानी कहाँ बचती है! कुछ नहीं बचता है। जीसस की जिन्दगी का बहुत कम पता है। ईसाई बड़े परेशान रहते हैं कि जिन्दगी का बहुत कम पता है, लेकिन वे कोई उत्तर नहीं दे पाते। जीसस पैदा हुए, इसका पता है। फिर पाँच साल की उम्र में एक बार मंदिर में देखे गये इसका पता है, फिर तीस साल की उम्र में देखे गये इसका पता है, फिर तैंतीस साल में सूली लग गयी, इसका पता है। बस इतनी कहानी है। तीस साल की जिन्दगी का कोई पता नहीं।

एक ईसाई फकीर मुझसे मिलने आया था। वह कहने लगा कि आप महावीर के संबंध में कहते हैं, बुद्ध के संबंध में कहते हैं, कभी आप क्राइस्ट के संबंध में कहेंगे ? वह जो तीस साल हैं, जिनका बिल्कुल पता नहीं है, उनके संबंध में कहें। तो मैंने कहा, थोड़ा तो कहा जा सकता है, लेकिन सच बात यह है कि पता न होने का कुल कारण इतना है कि जीसस की जिन्दगी में कुछ भी नहीं था, 'नो इवेन्ट'। और अगर लोग सूली न लगाते तो ? यह भी जीसस की जिन्दगी का इवेन्ट नहीं है, लोगों की जिन्दगी का इवेन्ट है। लोगों ने सूली लगा दी है। इसमें जीसस क्या करें। लेकिन अगर लोग सूली न लगाते तो यह भी कथा न होती। लोग न माने, तो सूली लगा दी। सूली लगाने वालों ने उनको टिका दिया, नहीं तो जीसस का पता ही न चलता जमीन पर। जीसस कोरे कागज की तरह आते और बिदा हो जाते। बहुत लोग आये और इसी तरह बिदा हो गये हैं।

अगर हम महावीर की जिन्दगी में भी खोजें तो किस बात का पता है ? कभी किसी ने कान में खीलें ठोंक दिये, इसका पता है। लेकिन 'दिस इज नॉट इवेन्ट इन द महावीर्स लाइफ।' यह महावीर की जिन्दगी की घटना नहीं है, यह तो खीलें ठोकने वाले की जिन्दगी की घटना है। इसमें महावीर का क्या हाथ है कि कोई आया और महावीर के चरणों में सिर रख दिया। यह भी महावीर की जिन्दगी की घटना नहीं है। यह तो सिर रखने वाले की जिन्दगी की घटना है। किसी ने चिल्लाकर महावीर को तीर्थंकर कह दिया, यह भी महावीर की जिन्दगी की घटना नहीं है। यह भी तो किसी के चिल्लाने की घटना है। अगर हम शुद्ध रूप से महावीर की जिन्दगी खोजने जायें तो कोरा कागज हो जायेगा। तो अच्छे आदमी की कोई जिन्दगी नहीं होती है। बुरे आदमी की ही जिन्दगी होती है। इसलिए कहानी लिखनी हो या सिने कथा लिखनी हो, तो बुरे आदमी को चुनना पड़ता है। उसके बिना नहीं चलता, उसके बिना बहुत मुश्किल हो जायेगा।

(२३) क्या आप हीरो बनना पसंद करेंगे ?

रावण के बिना हम रामायण की कल्पना नहीं कर सकते, राम के बिना कर भी सकते हैं। राम की जगह कोई अ ब स द भी काम दे सकता है, लेकिन रावण अपरिहार्य है। उसके बिना कहानी से जान ही निकल जायेगी। वही असली कथा है। लोग समझते हैं राम हैं कथा के केन्द्र, उसके नायक। मैं नहीं

समझता। रावण है। हमेशा बुरा आदमी ही हीरो होता है, इसीलिए हीरो बनने से जरा बचना। नायक होने के लिए बुरा होना बिल्कुल जरूरी है। संयमी व्यक्ति के जीवन से सारी घटनाएँ विदा हो जाती हैं। और घटनाएँ विदा होते ही उसे 'मैं हूँ' यह कहने का उपाय नहीं रह जाता। और हम सब कहना चाहते हैं कि मैं हूँ। इसलिए असंयम हमें जरूरी होता है। कभी ज्यादा खाकर हम जाहिर करते हैं कि मैं हूँ। कभी उपवास करके जाहिर करते हैं कि मैं हूँ। कभी वेश्यालय में जाहिर करते हैं कि मैं हूँ, कभी मंदिर में जाकर जाहिर करते हैं कि मैं हूँ। लेकिन हमारा जाहिर करना जारी रहता है। मंदिर में भी कोई देखने वाला न आये, तो हमारा जाने का मन नहीं होता है।

हम वही करते हैं जिसे लोग देखते हैं और मानते हैं कि यह कुछ हो। मैं हूँ, इसे बताना है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जितने लोग इस जमीन पर बुरे हो जाते हैं, अगर हम ऐसा समाज बना सकें कि जितना बुरे आदमी को नाम मिलता है (लोग उसे बदनाम करते हैं तो नाम भी होता है), अगर उतना अच्छे आदमी को भी नाम मिलने लगे, तो कोई आदमी बुरा न होगा। सब अच्छे हो जायें। बुरा आदमी भी अस्मिता की, अहंकार की खोज में ही बुरा होता है। आप उसको देखते नहीं, आप उसकी तरफ ध्यान ही नहीं देते, आप मानते ही नहीं कि तुम हो। इसलिए उसे कुछ न कुछ करना पड़ता है, उसे कुछ करके दिखाना पड़ता है।

(२४) स्वर्ग में अखबार क्यों नहीं है ?

अखबार किसी ध्यान रखने वाले की खबर नहीं छापते, किसी की छाती में छुरा भोंकने वाले की खबर छापते हैं। अखबार इसकी खबर नहीं छापते हैं कि एक स्त्री अपने पति के प्रति जीवन भर निष्ठावान रही। अखबार इसकी खबर छापते हैं कि कौन स्त्री भाग गयी।

मुल्ला नसरुद्दीन को उसके गाँव के लोगों ने बुढ़ापे में मजिस्ट्रेट बना दिया। पहला दिन था, अदालत में कोई मुकदमा न आया। दोपहर हो गयी। मुंशी बेचैन होने लगा, मुल्ला उदास होने लगा मक्खी उड़ाते-उड़ाते।

मुल्ला ने कहा, बेचैन मत हो, घबरा मत। हैव फेथ आन ह्यूमन नेचर। आदमी के स्वभाव पर भरोसा रखो। शाम तक कुछ न कुछ होकर रहेगा। तू घबरा मत, इतना बेचैन मत हो। कोई न कोई हत्या होगी, कोई न

कोई स्त्री भाग जायगी, कोई न कोई उपद्रव होकर रहेगा। हैव फेथ आन ह्यूमन नेचर। आदमी के स्वभाव पर भरोसा रख, आदमी बिना कुछ किये नहीं रहेगा। मुझे आदमी के स्वभाव पर भरोसा है। सब अखबार उसी भरोसे चलते हैं, नहीं तो कोई अखबार न चल पाता। कल जरूर घटनाएँ घटेंगी, अखबार में जगह नहीं बचेगी। पक्का पता है, आदमी के स्वभाव पर भरोसा है। कोई स्त्री भागेगी, कोई हत्या करेगा, कोई चोरी करेगा, कोई गबन करेगा, कोई मिनिस्टर कुछ करेगा, कोई कुछ करेगा। कहीं युद्ध होगा, कहीं उपद्रव होगा, कहीं सेना भेजी जायेगी, कहीं क्रांति होगी। आदमी के स्वभाव पर भरोसा है, नहीं तो अखबार सब मुश्किल में पड़ जायेंगे। भले आदमी की दुनिया में अखबार बहुत मुश्किल होंगे। इसलिए स्वर्ग में कोई अखबार नहीं है, नर्क में सब हैं। स्वर्ग में कोई घटना नहीं घटती है, नो इवेन्ट। खबर भी क्या छापियेगा ?

भले आदमी की जिन्दगी में कोई घटना नहीं है और हम चाहते हैं कि हम हों। घटनाओं के जोड़ के बिना हम नहीं हो सकते। और अगर घटनाएँ चाहिए तो आपको तनाव में जीना पड़ेगा, अतियों पर डोलना पड़ेगा, क्रोध करना पड़ेगा, क्षमा करना पड़ेगा, भोग करना पड़ेगा, त्याग करना पड़ेगा, दुश्मनी करनी पड़ेगी, दोस्ती करनी पड़ेगी। संयमी का अर्थ है जो द्वन्द्व में कुछ भी नहीं करता, जो द्वन्द्व में बाहर सरक जाता है। जो कहता है न दोस्ती करेंगे, न दुश्मनी करेंगे। महावीर किसी से मित्रता नहीं करते हैं। क्योंकि महावीर जानते हैं, मित्रता एक अति है। महावीर किसी से शत्रुता भी नहीं करते, क्योंकि महावीर जानते हैं शत्रुता अति है। लेकिन हम ? हम उल्टा सोचते हैं। हम सोचते हैं कि अगर दुनिया से शत्रुता मिटानी हो, तो सबसे मित्रता करनी चाहिए। आप गलती में हैं। मित्रता एक अति है, उससे शत्रुता पैदा होती है। इधर आप मित्रता करते हैं, ठीक उतनी ही बैलेंसिंग आपको किसी से शत्रुता करनी पड़ेगी। उतना ही संतुलन बनाना पड़ेगा।

(२५) संतुलन के लिए गालियाँ!

मुसलमान फकीर हुआ है हसन। बैठा है अपनी झोपड़ी में। साधक कुछ पास बैठे हैं। एक अजनबी सूफी फकीर भीतर प्रवेश करता है। चरणों में गिर जाता है हसन के, और कहता है तुम भगवान् हो, तुम साक्षात् अवतार हो, तुम ज्ञान के साकार रूप हो। बड़ी प्रशंसा करता है। हसन बैठा सुनता रहता

है। एक और फकीर वहाँ बैठा हुआ है बायजीद। वह हसन जैसा ही कीमत का आदमी है। जब वह फकीर प्रशंसा करके जा चुका होता है चरण छू कर, तो बायजीद एकदम हसन को गाली देना शुरू कर देता है। सभी लोग चौंक जाते हैं। बायजीद, और हसन को गालियाँ दे ! पीड़ा भी अनुभव करते हैं लेकिन बायजीद भी कीमती फकीर है। कुछ कोई बोल तो सकता नहीं। हसन बैठा सुनता रहा। बायजीद गालियाँ देकर चला जाता है। बायजीद के जाते ही शिष्यों में से कोई पूछता है हसन से, कि हमारी समझ में नहीं आया कि बायजीद ने इस तरह का अभद्र व्यवहार क्यों किया ? हसन ने कहा, कुछ नहीं किया। जस्ट बैलेंसिग। कोई अभद्र व्यवहार नहीं किया। वह एक आदमी देखा है पहले, जो भगवान् कह गया ? इतनी प्रशंसा कर गया, तो किसी को बैलेंस तो करना ही पड़ेगा। कोई तो संतुलन करेगा ही। नाउ एव्रीथिंग इज बैलेंस्ड। हम वहीं हैं जहाँ इन दोनों आदमियों के पहले थे। अपना काम शुरू करें।

जिन्दगी में इधर आप मित्रता बनाते हैं, उधर शत्रुता निर्मित हो जाती हैं। इधर आप किसी को प्रेम करते हैं, उधर किसी को घृणा करना शुरू हो जाता है जिन्दगी में। जब भी आप किसी द्वन्द्व को चुनते हैं, तो दूसरे द्वन्द्व में भी ताकत पहुंचनी शुरू हो जाती है। आप चाहें, न चाहें, यह सवाल नहीं है। जीवन का नियम ही यही है। इसलिए महावीर किसी को मित्र नहीं बनाते। और जब वे कहते हैं कि सबसे मेरी मैत्री है, तो उसका मतलब मित्रता नहीं होता। उसका मतलब है कि मेरी किसी से शत्रुता नहीं, मित्रता नहीं। जो बच रहता है उसको मैत्री कहते हैं। कुछ बच नहीं रहता है। एक निराकार भाव बच रहता है। कोई संबंध बच नहीं रहता। एक असंबंधित स्थिति बची रहती है। कोई पक्ष नहीं बच रहता, एक तटस्थ दशा बची रहती है। जब वे कहते हैं, सबसे मेरी मैत्री है, तो उससे हम भूल में न पड़ें कि वह हमारी जैसी मित्रता है। हमारी मित्रता तो बिना शत्रुता के हो नहीं सकती। जब वे कहते हैं कि सबसे मुझे प्रेम है तो हम इस भ्रम मे न पड़ें कि वह हमारे जैसा प्रेम है। हमारा प्रेम बिना घृणा के नहीं हो सकता, बिना ईर्ष्या के नहीं हो सकता। इसलिए महावीर जैसे लोगों को समझने की जो सबसे बड़ी कठिनाई है वह यह है कि शब्द वे वही उपयोग करते हैं जो हम करते हैं। और कोई उपाय नहीं है। लेकिन हमारे भाव उन शब्दों से बहुत और हैं, हमारे अर्थ बहुत और हैं और महावीर के अर्थ बहुत और हैं। उन्हीं रूपों में संयम का विधायक अर्थ है स्वयं में इतना ठहर जाना कि मन की किसी अति पर कोई हलन-चलन न हो।

सातवां प्रवचन

पर्युषण व्याख्यान-माला, बम्बई, दिनांक २४ अगस्त, १९७१

संयम की विधायक दृष्टि और साधना का पागलपन

धम्मो मंगलमुक्किट्ठम्, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति, जस्स धम्मो सया मणो॥

अर्थ :—

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन-सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तप-रूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

(१) संयम—सिकुड़ाव नहीं, फैलाव है

सूर्यास्त के समय, जैसे कोई फूल अपनी पंखुड़ियों को बन्द कर ले—संयम ऐसा नहीं है। वरन् संयम ऐसा है कि सूर्योदय के समय जैसे कोई कली अपनी पंखुड़ियों को खोल ले। संयम मृत्यु के भय में सिकुड़ गये चित्त की रुग्ण दशा नहीं है। संयम अमृत की वर्षा में प्रफुल्लित हो गये नृत्य करते चित्त की दशा है। संयम किसी भय से किया गया संकोच नहीं है। संयम किसी प्रलोभन से आरोपित की गयी आदत नहीं है। संयम किसी अभय में चित्त का फैलाव और विस्तार है। और संयम किसी आनन्द की उपलब्धि में अन्तर वीणा पर पैदा हुआ संगीत है। संयम निषेध नहीं है। विधेय है। निगेटिव नहीं है, पाजिटिव है। लेकिन परंपरा निषेध को मानकर चलती है। क्योंकि निषेध आसान है और विधेय अति दुष्कर। मरना बहुत आसान है। जीना बहुत कठिन है। हमें लगता है—नहीं, जीना बहुत आसान है, मरना बहुत कठिन है। लेकिन जिसे हम जीना कहते हैं, वह सिर्फ मरना ही है और कुछ भी नहीं है।

सिकुड़ जाने से ज्यादा आसान कुछ भी नहीं है। खिलने से ज्यादा कठिन कुछ भी नहीं है। क्योंकि खिलने के लिए अन्तर ऊर्जा का जागरण चाहिए। सिकुड़ने के लिए तो किसी जागरण की, किसी नयी शक्ति की जरूरत नहीं। पुरानी शक्ति भी छूट जाय तो सिकुड़ना हो जाता है। नयी शक्ति का उद्भव हो तो फैलाव हो जाता है। महावीर तो फूल जैसे खिले हुए व्यक्तित्व हैं। लेकिन महावीर के पीछे जो परंपरा बनती है, उसमें सिकुड़ गये लोगों की धारा का शृंखला बन जाती है। फिर पीछे के युगों में इन पीछे चलने वाले सिकुड़े हुए लोगों को देखकर हम महावीर के संबंध में निर्णय होते हैं। स्वभावत: अनुयायियों को देखकर हम

अनुमान करते हैं उनका, जिनका वे अनुगमन करते हैं। लेकिन अक्सर भूल हो जाती है। और भूल इसलिए हो जाती है कि अनुयायी बाहर से पकड़ता है और बाहर से निषेध ही ख्याल में आते हैं। महावीर या बुद्ध या कृष्ण भीतर से जीते हैं और भीतर से जीने पर विधेय ही होता है। अगर किसी को परम आनन्द उपलब्ध हो, तो उसके जीवन में, जिन्हें हम कल तक सुख कहते थे, वे छूट जायेंगे। इसलिए नहीं कि उन्हें छोड़ रहा है। बल्कि इसलिए कि अब जो उसे मिला है, उसके लिए जगह बनानी जरूरी है। हाथ में कंकड़ पत्थर थे, वे गिर जायेंगे। क्योंकि जिसे हीरे जीवन में मिल गये हों, उसे कंकड़ों-पत्थरों के रखने के लिए न सुविधा है, न शक्ति है, न कारण है। लेकिन वे हीरे तो आयेंगे अन्तर के आकाश में। वे हमें दिखायी नहीं पड़ेंगे। और हाथों में जो पत्थर थे वे छूटेंगे, वे हमें दिखायी पड़ेंगे। स्वभावतः हम सोचेंगे कि पत्थर छोड़ना ही संयम है। यह एक बहुत अनिवार्य प्रक्रिया है, जो समस्त जाग्रत पुरुषों के आसपास इकट्ठी होती है। यह स्वाभाविक है, लेकिन बड़ी खतरनाक है। क्योंकि तब हम जो भी सोचते हैं वह सब गलत हो जाता है। लगता है महावीर कुछ छोड़ रहे हैं, यही संयम है। नहीं लगता कि महावीर कुछ पा रहे हैं, वही संयम है। और ध्यान रखें, पाये बिना छोड़ना असंभव है। या जो पाये बिना छोड़ेगा, वह रुग्ण हो जायेगा, बीमार हो जायेगा, वह अस्वस्थ होता है, सिकुड़ता है और मर जाता है। पाये बिना छोड़ना असंभव है।

(२) संयम का विधायक आयाम

जब मैं कहता हूँ कि त्याग की बहुत दूसरी धारणा है और संयम का बहुत दूसरा रूप और आयाम प्रकट होता है तो मैं यह कहता हूँ कि महावीर जैसे लोग कुछ पा लेते हैं, वह पाना इतना विराट है कि उसकी तुलना में जो कल तक उनके हाथ में था, मूल्यहीन और व्यर्थ हो जाता है। और ध्यान रहे, मूल्यहीनता रिलेटिव है, तुलनात्मक है, सापेक्ष है। जब तक आपको श्रेष्ठतर नहीं मिला है, तब तक आपके हाथ में जो है वही श्रेष्ठतर है। चाहे आप कितना ही कहें वह श्रेष्ठतर नहीं है लेकिन आपका चित्त कहे जायेगा—वही श्रेष्ठतर है। क्योंकि उससे श्रेष्ठतर को आपने नहीं जाना है। जब श्रेष्ठतर का जन्म होता है, तभी वह निकृष्ट होता है। और मजे की बात यह है कि निकृष्ट को छोड़ना नहीं पड़ता, और श्रेष्ठ को पकड़ना नहीं पड़ता। श्रेष्ठ पकड़ ही लिया जाता है और निकृष्ट छोड़ ही दिया जाता है। जब तक

निकृष्ट को छोड़ना पड़े, तब तक जानना कि श्रेष्ठ का कोई पता नहीं है। और जब तक श्रेष्ठ को पकड़ना पड़े, तब तक जानना कि श्रेष्ठ अभी मिला नहीं है। श्रेष्ठ का स्वभाव ही यही है कि वह पकड़ लिया जाता है, निकृष्ट का स्वभाव यही है कि वह छूट जाता है।

लेकिन निकृष्ट हमसे छूटता नहीं और श्रेष्ठ हमारी पकड़ में नहीं आता। तो हम निकृष्ट को छोड़ने की जबर्दस्त चेष्टा करते हैं। उसी चेष्टा को हम संयम कहते हैं। हम श्रेष्ठ को अँधेरे में टटोलने की, पकड़ने की कोशिश करते हैं। वह हमारी इस तरह पकड़ में नहीं आ सकता। इसलिए संयम के विधायक आयाम को ठीक से समझ लेना जरूरी है। अन्यथा संयम व्यक्ति को धार्मिक नहीं बनाता है, केवल अधार्मिक होने से रोकता है। और जो अधर्म बाहर प्रकट होने से रुक जाता है, वह भीतर जहर बनकर फैल जाता है।

(३) संयमी के आस-पास आंसू !

निषेधात्मक संयम फूलों को नहीं पैदा कर पाता है, केवल कांटों को प्रकट होने से रोकता है। लेकिन जो कांटे बाहर आकाश में प्रकट होने से रुक जाते हैं, वे भीतर आत्मा में छिप जाते हैं। इसलिए जिसे हम संयमी कहते हैं, वह आनंदित दिखायी नहीं पड़ता। वह पीड़ित दिखायी पड़ता है। वह किसी पत्थर के नीचे दबा हुआ मालूम पड़ता है, किसी पहाड़ को ढोता हुआ मालूम पड़ता है। उसके पैरों में नर्तक की स्थिति नहीं होती, उसके पैरों में कैदी की जंजीरें बँधी हुई लगती हैं। ऐसा नहीं लगता है कि बच्चों जैसा सरल, उड़ने को तत्पर हो गया है। बल्कि वह बहुत बोझिल और भारी हो गया लगता है।

जिसे हम संयमी कहते हैं वह हँसने में असमर्थ हो गया होता है, उसके चारों तरफ आँसुओं की धाराएँ इकट्ठी हो जाती हैं। और जो संयमी हँस न सके परिपूर्ण चित्त से, वह अभी संयमी नहीं है। जिसका जीवन मुस्कराहट न बन जाये, वह अभी संयमी नहीं है। निषेध का रास्ता यह है कि जहाँ-जहाँ मन जाता है, वहाँ-वहाँ मन को न जाने दो। जहाँ-जहाँ मन खिचता है, वहाँ-वहाँ मन को न खिचने दो, उससे विपरीत खींचो। तो निषेध एक अंतर संघर्ष है, इनर कान्फ्लिक्ट है, जिसमें शक्ति व्यय होती है, उपलब्ध नहीं होती है। सभी संघर्षों में शक्ति व्यय होती है। जहाँ-जहाँ मन खिचता है, वहाँ-वहाँ से उसे वापस खींचो, लौटाओ। कौन लौटायेगा, किसको लौटायेगा ? आप ही खींचते हैं। आप ही आकर्षित होते हैं। आप ही विपरीत जाते हैं। आप अपने

भीतर विभाजित हो जाते हैं, खण्ड-खण्ड टूट जाते हैं। जिसको मनोचिकित्सक 'सिज़ोफ्रेनिया' कहते हैं, वह आपके भीतर प्रकट होता है। आप खंडित हो जाते हैं। आप दोहरे-तेहरे हो जाते हैं। आपके भीतर अनेक लोग हो जाते हैं। आप अपने को ही बाँटकर लड़ना शुरू कर देते हैं। इसमें जीत कभी न होगी। और महावीर का सारा रास्ता जीत का रास्ता है। जो अपने से लड़ेगा वह कभी जीतेगा नहीं।

(४) अपनी छाया से लड़ता हुआ आदमी

उल्टा लगता है यह सूत्र। क्योंकि हमें लगेगा कि लड़े बिना जीत कैसे हो सकती है? जो अपने से लड़ेगा वह कभी जीतेगा? क्योंकि अपने से लड़ना अपने ही दोनों हाथों को लड़ाने जैसा है। न बायाँ जीत सकता है न दायाँ, क्योंकि दोनों के पीछे मेरी ताकत लगती है। मेरी ही शक्ति लगती है। चाहूँ भी कि मैं बायें को जिता दूं, तब भी बायाँ नहीं जीतता। चाहूँ कि दायें को जिता दूं, तब भी दायाँ नहीं जीतता। क्योंकि दोनों के पीछे मैं ही होता है। और यह जो व्यक्तित्व में खंडन हो जाता है, डिसइंटीग्रेशन हो जाता है, यह आदमी को विक्षिप्तता की तरफ ले जाने लगता है। आदमी ऐसा लगता है कि उसके भीतर उसका दुश्मन खड़ा है। है वह वही लेकिन आधा अपने को बांट लिया है। अपनी छाया से लड़ने जैसा पागलपन है यह। लेकिन महावीर इतना गहरा जानते हैं कि सिजोफ्रेनिक, खंडित व्यक्तित्व की तरफ वे सलाह नहीं दे सकते। वे सलाह देंगे अखंड व्यक्तित्व की तरफ। इंटीग्रेड, इकट्ठा, एक जुट की तरफ। तो संयम का अर्थ है—जुड़ा हुआ, इकट्ठा, इंटीग्रेटेड व्यक्तित्व।

यह बहुत मजे की बात है कि अगर आप असत्य बोलें, तो आप कभी भी इंटीग्रेटेड नहीं हो सकते। अगर झूठ बोलें तो आपके भीतर एक हिस्सा सदा ही मौजूद रहेगा जो कहेगा कि नहीं बोलना था झूठ। झूठ के साथ पूरी तरह राजी हो जाना असंभव है। अगर आप चोरी करें तो आप कभी अखंड नहीं हो सकते। आपके भीतर एक हिस्सा चोरी के विपरीत खड़ा ही रहेगा। लेकिन अगर आप सत्य बोलें, तो आप अखंड हो सकते हैं। महावीर ने उन्हीं-उन्हीं बातों को पुण्य कहा है, जिनसे हम अखंड हो सकते हैं। और उन्हीं-उन्हीं बातों को पाप कहा है, जिनसे हम खंडित हो जाते हैं। एक ही चीज पाप है—आदमी का टुकड़ों में टूट जाना। और एक ही पुण्य है—आदमी का जुड़ जाना, इकट्ठा हो हो जाना, टु बी वन होल।

महावीर लड़ने को नहीं कहते हैं। महावीर जीतने को जरूर कहते हैं, लड़ने को नहीं; क्योंकि जीतने का रास्ता और है। जीतने का रास्ता यह नहीं है कि मैं अपनी इन्द्रियों से लड़ने लगूँ, जीतने का रास्ता यह है कि मैं अपने अतीन्द्रिय स्वरूप की खोज में संलग्न हो जाऊँ। जीतने का रास्ता यह है कि मेरे भीतर जो छिपे हुए और खजाने हैं, मैं उनकी खोज में संलग्न हो जाऊँ। जैसे-जैसे वे खजाने प्रकट होते जाते हैं, वैसे-वैसे कल तक जो महत्वपूर्ण था, वह गैर महत्वपूर्ण होने लगता है। कल तक जो खींचता था, वह नहीं खींचता है। कल तक बाहर की तरफ चित्त जाता था, अब भीतर की तरफ आता है।

(५) भला वह संयम क्या करेगा, जो...!

थोड़ा उदाहरण लेकर समझें। एक आदमी है। भोजन के लिए आतुर है, परेशान् है, बहुत रस है उसमें। तब क्या करे संयम के लिए वह? रस का निग्रह करे, यही हमें दिखायी पड़ता है। आज वह रस न ले, कल वह रस न ले, परसों वह रस न ले, वह भोजन छोड़ दे, वह भोजन दे; लेकिन क्या भोजन के परित्याग से रस का परित्याग हो जायेगा? संभावना यही है कि भोजन के परित्याग से पहले तो रस बढ़ेगा। अगर वह जिद में अड़ा रहे, तो रस कुंठित हो जायेगा, मुक्त नहीं होगा। लेकिन कुंठित रस व्यक्तित्व को भी कुंठा से भर देता है।

जो भोजन करने तक में भयभीत हो जाता है, वह अभय को उपलब्ध होगा? नहीं, महावीर इसे संयम नहीं कहते। महावीर जिसे संयम कहते हैं, वैसा व्यक्ति रस के पागलपन से मुक्त हो जाता है। महावीर एक और भीतरी रस खोजते हैं, एक और रस, जो भोजन से नहीं मिलता। एक और रस भी है जो भीतर संबंधित होने से मिल जाता है। हमारे बाहर जितनी इंद्रियाँ हैं, अगर हम ठीक से समझें तो, वे सब कनेक्टिंग लिंक्स हैं, जोड़ने वाले सेतु हैं। स्वाद की इंद्रिय भोजन से जोड़ देती है। आँख की इंद्रिय दृश्य से जोड़ देती है, कान की इंद्रिय ध्वनि से जोड़ देती है। अगर महावीर की आंतरिक प्रक्रिया को समझाना है, तो महावीर यह कहते हैं कि जो इंद्रिय बाहर जोड़ देती है, वही इंद्रिय भीतर के जगत् से भी जोड़ सकती है। बाहर ध्वनियों का एक जगत् है। कान उससे जोड़ता है। भीतर भी ध्वनियों का एक अद्‌भुत जगत् है। कान उससे भी जोड़ सकता है। जीभ बाहर के रस से जोड़ती है। बाहर रस का एक जगत् है। लेकिन चूंकि हमें भीतर के रस का पता नहीं, इसलिए

वही सन्नाटा मालूम होता है। लेकिन जीभ भीतर के रस से भी तो जोड़ सकती है।

(६) उलटि दियो जिभ्या

प्रतीक कभी-कभी कैसी विक्षिप्तता में ले जाते हैं। हमने सुना है, आप सबने भी सुना होगा कि साधक, योगी अपनी जीभ को उल्टा कर लेते हैं। वह केवल सिम्बालिक है। वैसे कुछ पागल भी अपनी जीभ के नीचे के हिस्से को काटकर उल्टा करने में लगे रहते हैं। साधक का यह काम सिम्बालिक है, सिर्फ प्रतीक है। साधक अपनी जीभ को उल्टा कर लेता है, उसका अर्थ यह है कि जीभ का जो रस बाहर पदार्थों से जुड़ता था, उसे वह भीतर आत्मा से जोड़ लेता है। साधक अपनी आँख उल्टी चढ़ा लेता है। उसका कुल अर्थ इतना ही है कि वह जो बाहर देखता था, अब भीतर देखने लगता है। और एक बार भीतर का स्वाद आ जाय, तो बाहर के सब स्वाद बेस्वाद हो जाते हैं। करने नहीं पड़ते, करने से तो कभी नहीं होते, करने से तो उनका स्वाद और बढ़ता है। यह जिद की जाये तो रस कुंठित हो जाता है, रस ही मर जाता है। लेकिन इन्द्रिय बाहर की तरफ ही पड़ी रहती है। इंद्रियों को भीतर की तरफ मोड़ना संयम की प्रक्रिया है।

कैसे मोड़ेंगे ? कभी छोटे से प्रयोग करें तो ख्याल में आना शुरू हो जायेगा। बैठे हैं घर में, सुनना शुरू करें बाहर की आवाजों को। बहुत जागरूक होकर सुनें कि कान क्या-क्या सुन रहा है। सभी चीजों के प्रति जागरूक हो जायें। रास्ते पर गाड़ियाँ चल रही हैं, हार्न बज रहे हैं, आकाश से हवाई जहाज गुजरता है, लोग बात कर रहे हैं, बच्चे खेल रहे हैं, सड़क से लोग गुजर रहे हैं, जुलूस निकल रहा है—सारी आवाजों के प्रति पूरी तरह जाग जायें। और जब सारी आवाजों के प्रति पूरी तरह जागे हों, तो एक बात यह भी ख्याल करें कि कोई ऐसी भी आवाज है, जो बाहर से नहीं आ रही भीतर पैदा हो रही है। और तब आप एक अलग ही सन्नाटे को सुनना शुरू कर देंगे। इस बाजार की भीड़ में भी एक आवाज है, जो भीतर भी पूरे समय गूंज रही है।

(७) अन्दर झन्नाते हुए झींगुर

लेकिन हम बाहर की भीड़ की आवाज में इस बुरी तरह से संलग्न हैं कि वह भीतर का सन्नाटा हमें सुनायी नहीं पड़ता। सारी आवाजों को सुनते

रहें, न लड़ें, न हटें, बस सुनते रहें। सिर्फ एक खोज और भीतर शुरू करें कि क्या इन आवाजों में एक ऐसी आवाज भी है, जो बाहर से न आ रही हो, भीतर से पैदा हो रही है? और आप बहुत शीघ्र सन्नाटे की आवाज, जैसी कभी-कभी निर्जन बन में सुनायी पड़ती है, ठेठ बाजार में सड़क पर भी सुनने में समर्थ हो जायेंगे। सच तो यह है कि जंगल में जो आपको सन्नाटा सुनायी पड़ता है, वह जंगल का कम बाहर की आवाजों के हट जाने के कारण आपके भीतर की आवाज का प्रतिफलन ज्यादा होता है। वह सुना जा सकता है। जंगल जाने की जरूरत नहीं है। दोनों कान हाथ से बन्द कर लें, आवाज बाहर की बन्द हो जायेगी तो जैसे झींगुर बोल रहे हों, वैसा सन्नाटा भीतर गूंजने लगेगा। यह पहली प्रतीति है भीतर के आवाज की।

और इसकी प्रतीति जैसे ही होगी वैसे ही बाहर की आवाजें कम रसपूर्ण मालूम पड़ने लगेंगी। यह भीतर का संगीत आपके रस को पकड़ना शुरू कर देगा। थोड़े ही दिनों में यह भीतर जो सन्नाटे की तरह मालूम होता था, वह सघन होने लगेगा और रूप लेने लगेगा। यही सन्नाटा धीरे-धीरे सोहं जैसा प्रतीत होने लगेगा। जिस दिन यह सोहं जैसा प्रतीत होने लगता है, उस दिन बाहर के वाद्यों से पैदा कोई संगीत इसका मुकाबला नहीं कर सकता। यह अन्तर की वीणा का संगीत आपकी पकड़ में आना शुरू हो गया। अब आपको अपने कान के रस को रोकना न पड़ेगा। आपको यह न कहना पड़ेगा कि मैं अब सितार न सुनूंगा। मैं सितार का त्याग करता हूँ। नहीं, अब छोड़ने की कोई जरूरत नहीं रहेगी। आप अचानक पायेंगे कि और भी विराट, और भी श्रेष्ठतर, और भी गहन संगीत उपलब्ध हो गया। और तब आप सितार को सुनने में भी इस संगीत को सुन पायेंग। तब कोई विपरीत, कोई विरोध, कोई कंट्राडिक्शन नहीं रह जायेगा। तब बाहर का संगीत अन्तर के संगीत की सीधी प्रतिध्वनि रह जायेगा। दुश्मनी नहीं रह जायेगी, संगीत की प्रतिध्वनि रह जायेगा। और तब आपके भीतर अखंड व्यक्तित्व खड़ा हो जायेगा, जो बाहर और भीतर का फासला भी नहीं करेगा।

एक घड़ी ऐसी आती है, कि जैसे-जैसे हम भीतर जाते हैं, बाहर और भीतर का फासला गिरता चला जाता है। एक घड़ी आती है कि न कुछ बाहर रह जाता है, न कुछ भीतर। एक ही रह जाता है जो बाहर भी है और भीतर भी। जिस दिन यह घड़ी घटती है कि जो बाहर है वही भीतर है और

जो भीतर है वही वाहर है, उस दिन आप संयम को, उस इक्वीलिब्रियम को उपलब्ध हो गये, जहाँ सब सम हो जाता है, जहाँ सब ठहर जाता है, जहाँ सब मौन हो जाता है, जहाँ कोई हलन-चलन नहीं होती है, जहाँ कोई भाग-दौड़ नहीं होती है, जहाँ कोई कंपन नहीं होता।

(८) अंतर्यात्रा की प्रक्रिया

किसी भी इंद्रिय से शुरू करें और भीतर की तरफ बढ़ते चले जायें, फौरन ही वह इंद्रिय आपको भीतर से जोड़ने का कारण बन जायेगी। आँख से देखना शुरू करें, फिर आँख बन्द कर लें। बाहर के दृश्य देखें, देखते रहें और धीरे-धीरे अन्तर के दृश्य के प्रति जागें। बहुत शीघ्र आपको बाहर के दो दृश्यों के बीच में भीतर के दृश्यों की झलकें आनी शुरू हो जायेंगी। कभी ऐसा प्रकाश भीतर भर जायेगा, जो बाहर सूर्य भी देने में असमर्थ होगा। कभी भीतर ऐसे रंग फैल जायेंगे जो कि इंद्र धनुषों में भी नहीं हैं। कभी भीतर ऐसे फूल खिल जायेंगे जो पृथ्वी पर कभी भी नहीं खिले। और जब आप पहचानने लगेंगे कि यह बाहर का फूल नहीं है, यह बाहर का रंग नहीं है, यह बाहर का प्रकाश नहीं है, तब आपको पहली दफे तुलना मिलेगी कि बाहर जो प्रकाश है, उसको प्रकाश कहें या भीतर की तुलना में उसे भी अँधेरा कहें। बाहर जो फूल खिलते हैं अब उन्हें फूल कहें या भीतर की तुलना में फूलों की प्रतिध्वनियाँ कहें। फीके स्वर। तब फिर बाहर जो इंद्र धनुषों के रंग छा जाते हैं उन्हें रंग कहना बहुत कठिन होगा। क्योंकि जब कोई भीतर के रंग को जानता है, तो रंग में एक लीविंग क्वालिटी, एक जीवन्त गुण आ जाता है, जो बाहर के रंगों में नहीं होता है। बाहर के रंगों में कितनी ही चमक हो, बाहर के रंग जड़ हैं। भीतर जब रंग दिखायी पड़ता है तो रंग पहले दफे जीवन्त हो जाता है।

यों हम सोच भी नहीं सकते कि रंग के जीवन्त होने का क्या अर्थ होता है। रंग और जीवन्त? जब यह जानें तो ही ख्याल में आ सकता है कि रंग जीवित हो सकता है, रंग प्राणवान हो सकता है। और जिस दिन भीतर का रंग प्राणवान होकर दिखायी पड़ने लगता है, बाहर के रंगों का आकर्षण खो जाता है। छोड़ना नहीं पड़ता है, बस खो जाता है।

(९) स्पर्श के रास्ते से

प्रत्येक इंद्रिय भीतर ले जाने का द्वार बन सकती है। स्पर्श बहुत किया है, स्पर्श का अनुभव है बहुत। तो बैठ जायें, आँख बन्द कर लें, स्पर्श पर ध्यान

करें। सुन्दर शरीर छुए होंगे, सुन्दर वस्तुएँ छुई होंगी, फूल छुए होंगे। कभी सुबह घास पर जम गयी ओस को छुआ होगा। कभी सर्द सुबह में आग के पास बैठकर उष्णता का स्पर्श लिया होगा। कभी चाँद-तारों की दुनिया में लेटकर उनकी चांदनी को छुआ होगा। वे सब स्पर्श खड़े हो जाने दें अपने चारों ओर। और फिर खोजना शुरू करें कि क्या कोई ऐसा स्पर्श भी है, जो बाहर से न आया हो? और थोड़े ही श्रम, थोड़े ही संकल्प से आपको ऐसा स्पर्श प्रतीत होने लगेगा, जो बाहर से नहीं आया है, जो चांद-तारों से नहीं मिल सकता, जो फूलों से नहीं, ओस से नहीं, जो सूर्य की उष्मा से नहीं, सुबह की ठंडी हवाओं के स्पर्श से नहीं आया। और जिस दिन आपको उस स्पर्श का बोध होगा, उसी दिन समझो आपने भीतर का स्पर्श पा लिया है। उसी दिन बाहर के स्पर्श व्यर्थ हो जायेंगे। फिर प्रत्येक व्यक्ति को वही इंद्रिय पकड़ लेनी चाहिए, जो उसकी सर्वाधिक तीव्र और सजग हो।

यहाँ भी आपको मैं यह बता दूं कि जो इंद्रिय आपकी सबसे ज्यादा तीव्र है, उसे आप दुश्मन बना लेते हैं, अगर आपने संयम को निषेधात्मक रूप समझा। लेकिन अगर आपने विधायक रूप समझा, तो जो इंद्रिय आपकी सर्वाधिक सक्रिय है, वही आपकी मित्र हैं। क्योंकि आप उसी के द्वारा भीतर पहुँच सकेंगे। अब जिस आदमी का रंगों में कोई रस नहीं है, जिसने अभी बाहर के रंगों को भी नहीं जिया और जाना, उसे भीतर के रंग तक पहुँचने में बड़ी कठिनाई होगी। जिस आदमी को संगीत में कुछ प्रयोजन नहीं मालूम होता, सिर्फ मालूम होता है शोरगुल, ज्यादा से ज्यादा व्यवस्थित शोरगुल, आवाजें, ध्वनियाँ, अथवा कम से कम परेशान करने वाली ध्वनियाँ; उस आदमी को अंतरध्वनि की तरफ जाने में कठिनाई होगी, उसे मुश्किल होगी, अड़चन पड़गी। आपकी जो इंद्रिय आपको सर्वाधिक, परेशान करती मालूम पड़ती है, वह आपकी मित्र है। क्योंकि आपकी वही इंद्रिय सबसे पहले भीतर की तरफ मोड़ी जा सकती है। तो अपनी इंद्रिय को खोज लें।

(१०) आप कमजोरी बतायें, हम सेतु बतायेंगे

गुरजिएफ के पास कोई जाता था तो वह कहता था, तेरी सबसे बड़ी कमजोरी क्या है? पहले तू मुझे अपनी सबसे बड़ी कमजोरी बता दे, तो मैं उसे ही तेरी सबसे बड़ी शक्ति में रूपान्तरित कर दूंगा। वह ठीक कहता था। वह शक्ति यही है। आपकी सबसे बड़ी कमजोरी क्या है? क्या रूप आपको

आकर्षित करता है ? तो भयभीत न हों, रूप ही आपका द्वार बन जायेगा। क्या स्पर्श आपको बुलाता है ? तो भयभीत न हों, स्पर्श ही आपका मार्ग है। क्या स्वाद आपको खींचता है और आपके सपनों में प्रवेश कर जाता है ? तो स्वाद को धन्यवाद दें, वही आपका सेतु बनेगा। जो इंद्रिय आपकी सर्वाधिक संवेदनशील है, उससे अगर आप लड़ें तो वह कुंठित हो जायेगी। समझ लें कि आपने अपने हाथ अपना सेतु तोड़ लिया है। अगर विधायक संयम की धारणा से चले, तो आप उसी इंद्रिय को मार्ग बना लेंगे, उसी पर आप पीछे लौट आयेंगे। और ध्यान रहे, जिस रास्ते से हम जाते हैं बाहर, उसी रास्ते से भीतर आते हैं। रास्ता वही होता है, सिर्फ दिशा बदल जाती है, चेहरा बदल जाता है। आप यहाँ आये हैं इस भवन तक, जिस रास्ते से आये हैं उसी से वापस लौटेंगे। सिर्फ रुख और हो जायेगा। मुंह अभी भवन की तरफ था, अब अपने घर की तरफ होगा।

लेकिन भूल कर भी अगर आपने ऐसा सोचा कि जो रास्ता मुझे अपने घर से इतनी दूर ले आया है, वह मेरा दुश्मन है, इस पर अब मैं नहीं चलूंगा, तो आप पक्का समझ लें, आप अपने घर अब कभी भी नहीं पहुँच पायेंगे। कोई रास्ता दुश्मन नहीं है। और सभी रास्ते दोनों दिशाओं में खुले हैं। तो जिस रास्ते से आप बाहर के जगत् में सर्वाधिक आकर्षित होते हैं और खींचे जाते हैं, (वह चाहे आँख हो, चाहे स्वाद हो, चाहे ध्वनि हो, कुछ भी हो), जिस रास्ते से आप सर्वाधिक बाहर जाते हैं या जिस रास्ते से आप सर्वाधिक अपने से दूर चले गये हैं, वही रास्ता आपके संयम की विधायक दिशा में सहयोगी बनेगा। उसी से आपको वापस लौटना है। उससे लड़ना मत। उससे लड़कर तो आप उसको तोड़ देंगे। तोड़कर आपको लौटना मुश्किल हो जायेगा। यह आपको बहुत अजीब लगेगा, लेकिन जोर देकर कहना चाहता हूँ कि लोग इंद्रियों के कारण बाहर नहीं भटक जाते हैं, मात्र उन इंद्रियों के कारण बाहर भटक जाते हैं, जिनके रास्ते वे तोड़ देते हैं। हम सब तोड़ते हैं ये रास्ते। लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं हमारी और कोई तकलीफ नहीं है; बस, यह स्वाद हमें परेशान कर रहा है। किसी तरह स्वाद से छुटकारा दिला दें। उन्हें पता ही नहीं है कि जो उन्हें परेशान कर रहा है, वही उनके लौटने का मार्ग है। इसे मैं कहता हूँ संयम की विधायक दृष्टि।

इसके एक और पहलू को ख्याल में ले लेना चाहिए। जितनी इंद्रियाँ हैं हमारे पास उनका एक तो प्रकट रूप है, जिसे हम बहिर इंद्रिय कहते हैं। महावीर

महावीर ने आत्मा की तीन स्थितियां कही हैं। एक को वे कहते हैं बहिर् आत्मा। बहिर् आत्मा उस आत्मा को कहते हैं, जो अभी इंद्रियो का बाहर की तरफ उपयोग कर रही है। दूसरी को महावीर कहते हैं अन्तरात्मा। अन्तरात्मा वह आत्मा है, जो अब इंद्रियों का भीतर की तरफ उपयोग कर रही है। और तीसरी को महावीर कहते हैं परमात्मा। परमात्मा वह आत्मा है, जिसका बाहर और भीतर मिट गया है। जिसके न कुछ बाहर है और न कुछ भीतर है। जो न बाहर जा रही है, न भीतर आ रही है। जो बाहर जा रही है वह बहिर् आत्मा है, जो भीतर आ रही है वह अन्तरात्मा है, जो कहीं नहीं जा रही है, जहां है वहीं स्वभाव में प्रतिष्ठित है, वह परमात्मा है।

इंद्रियों का एक बहिरूप है। वे हमें पदार्थ से जोड़ती हैं। जिस जगह वे हमें पदार्थ से जोड़ती हैं, उस जगह जो रूप उनका प्रकट होता है, वह अति स्थूल है। लेकिन वे ही इंद्रियां हमें स्वयं से भी जोड़े हुए हैं। समझ लें कि यह मेरा हाथ है। मैं अपने हाथ को बढ़ाकर, आपके हाथ को अपने हाथ में ले लूं, तो मेरा हाथ दो जगह जोड़ रहा हैं। एक तो आपके हाथ से मुझे जोड़ रहा है और हाथ मुझसे भी जुड़ा हुआ है। हाथ बीच में दो को जोड़ रहा है। ध्यान रहे जहां आपसे मुझे जोड़ रहा है, वहां तो सिर्फ आपके शरीर से जोड़ रहा है। लेकिन जहां मुझे जोड़ रहा है वहां आत्मा से जोड़ रहा है। इंद्रियां जब बाहर जोड़ती हैं तो पदार्थ से जोड़ती हैं। और भीतर से जोड़ती हैं, तो चेतना से जोड़ती हैं। तो इंद्रियों का बहुत स्थूल रूप ही बाहर प्रकट होता हैं। क्योंकि जो हाथ आत्मा से जोड़ सकता है, जिसकी इतनी क्षमता है, वह बाहर केवल शरीर से जोड़ पाता है। बाहर उसकी क्षमता बहुत क्षीण हो जाती है।

(११) हाथ पर नाराज न हों

जब मैं कहता हूं कि मेरे हाथ ऊपर उठ, तो वह ऊपर उठ जाता है। मेरा संकल्प मेरे हाथ को कहीं न कहीं जोड़े हुए है। जब मैं इंकार कर देता हूं अपने हाथ को ऊपर उठाने से, तो हाथ ऊपर नहीं उठ पाता है। मेरा संकल्प मेरे हाथ से कहीं जुड़ा हुआ है।

अब बहुत हैरानी की बात है कि शरीर तो है पदार्थ, संकल्प है चेतना, तो चेतना और पदार्थ कैसे जुड़ते होंगे कहां जुड़ते होंगे! बहुत अदृश्य होगा वह जोड़? बाहर मेरा हाथ सिर्फ पदार्थ से ही जोड़ सकता है। लेकिन इसलिए हाथ

पर नाराज हो जाने की जरूरत नहीं है। यह हाथ भीतर आत्मा से भी जोड़ता है। अगर इस हाथ में मैं अपनी चेतना को बाहर की तरफ प्रवाहित करूँ, तो यह दूसरे के शरीर पर जाकर अटक जाती है। अगर इसी चेतना को मैं अपने हाथ पर वापस लौटा लाऊं, गंगोत्री की तरफ लौट जाऊँ, सागर की तरफ लौट आऊं, तो यह मेरी आत्मा में लीन हो जाती है। हाथ में बहती हुई ऊर्जा बाहर की तरफ बहिर् आत्मा का रूप है। हाथ में बहती हुई ऊर्जा भीतर की तरफ अन्तरात्मा का रूप है। जहाँ ऊर्जा बहती ही नहीं, वहाँ परमात्मा है। परमात्मा तक पहुंचना हो तो अन्तरात्मा से गुजरना पड़ेगा। बहिर् आत्मा हमारी आज की स्थिति है, मौजूदा स्थिति। परमात्मा हमारी संभावना है—हमारा भविष्य, हमारी नियति। अन्तरात्मा, हमारा यात्रा पथ है। उससे हमें गुजरना पड़ेगा। गुजरने के रास्ते वही हैं, जो बाहर जाने के रास्ते हैं। यह तो हुई एक बात। दूसरी बात यह कि बाहर इंद्रियाँ स्थूल से जोड़ती हैं, भीतर सूक्ष्म से। इसलिए इंद्रियों के दो रूप हैं। एक जिसको हम ऐंद्रिक शक्ति कहते हैं, औ एक जिसको अतीन्द्रिय शक्ति कहते हैं।

परामनोविज्ञान, पैरासाइकोलॉजी अध्ययन करती है उसका। योग ने बहुत दिन अध्ययन किया है उसका। उसको योग ने सिद्धियाँ कहा है, विभूति कहा है। रूस में आज भी उसे एक नया नाम दे रहे हैं। वे उसे कहते हैं साइको-इलेक्ट्रानिक्स—मनोऊर्जा का जगत्, मनोशक्ति का जगत्। यह जो भीतर हमारा अतीन्द्रिय रूप है, संयम वैसे-वैसे बढ़ता जाता है, जैसे-जैसे हम अपने इस अतीन्द्रिय रूप को अनुभव करते चले जाते हैं। किसी भी इंद्रिय को पकड़ कर अतीन्द्रिय रूप को अनुभव करना शुरू करेंगे, तो चकित हो जायेंगे।

(१२) अंधरो पढ़ै हाथ धरि आखर

पिछले दस वर्ष पहले १९६१ में रूस में एक अंधी लड़की ने हाथ से पढ़ना शुरू किया। हैरानी की बात थी। बहुत परीक्षण किये गये। पांच वर्ष तक निरंतर वैज्ञानिक परीक्षण किये गये। और फिर रूस की जो सबसे बड़ी वैज्ञानिक संस्था है, उसने घोषणा की पाँच वर्ष के निरंतर अध्ययन के बाद, कि वह लड़की ठीक कहती है। वह अध्ययन करती है और हैरानी की बात है कि हाथ आंख से भी ज्यादा ग्रहणशील होकर अध्ययन कर रहे हैं। अगर लिखे हुए कागज पर—ब्रेइल में नहीं, अंधों की भाषा में नहीं, आपकी भाषा में लिखे हुए कागज पर—वह हाथ फेरती है, तो पढ़ लेती है। आपके लिखे

हुए कागज पर कपड़ा ढांक दिया गया हो और उस कपड़े पर हाथ रखती है, तो पढ़ लेती है। लोहे की चादर ढांक दी गयी, उस चादर पर हाथ फेरती है तो पढ़ लेती है। यह तो आंख भी नहीं कर पाती। जो वैज्ञानिक प्रयोग कर रहा है वह भी नहीं पढ़ पाता है कि नीचे क्या होगा।

लेकिन वासिलिएव, जो उस लड़की पर मेहनत कर रहा था, उसको ऐसा ख्याल आया कि जो एक व्यक्ति के भीतर संभव है, वह किसी न किसी मार्ग से, किसी न किसी रूप में सबकी संभावना होनी चाहिए। उसने सोचा कि क्या हम दूसरे बच्चों को भी ट्रेंड कर सकते हैं? और उसने अंधों के एक स्कूल में बीस बच्चों का प्रयोग शुरू किया और वह चकित रह गया कि बीस में से १७ बच्चे दो वर्ष के प्रयोग के बाद हाथ से अध्ययन करने में समर्थ हो गये। और तब तो वासिलिएव ने कहा, ९७ प्रतिशत आदमियों की संभावना है कि वे हाथ से पढ़ सकते हैं। बाकी जो तीन हैं, मानना चाहिए कि हाथ के लिहाज से अंधे हैं। और कोई कारण नहीं है, हाथ के यंत्र में कुछ खराबी होगी। वासिलिएव के प्रयोगों का परिणाम यह हुआ कि अखबारों में जब खबरें निकलीं तो कई अंधे बच्चों ने अपने-अपने घरों में प्रयोग करने शुरू किये। और सैकड़ों खबरें आयीं मास्को यूनिवर्सिटी के पास गांवों से कि फलां बच्चा भी पढ़ पाता है, फलां बच्चा भी पढ़ पाता है। बड़ी हैरानी की बात थी कि हाथ कैसे पढ़ पायेगा। हाथ के पास तो आंख नहीं है। हाथ से कोई संबंध नहीं जुड़ता हुआ मालूम पड़ता है। हाथ स्पर्श कर सकता है। लेकिन फिर चादर ढांक दी गयी यानी स्पर्श भी नहीं कर सकता है। जैसे-जैसे प्रयोगों को और गहन किया गया, वैसे-वैसे साफ हुआ कि सवाल हाथ का नहीं, यह सवाल अतीन्द्रिय है, पैरासाइकिक है। उस लड़की को फिर पैर से पढ़ने की कोशिश करवायी गयी। दो महीने में वह पैर से भी पढ़ने लगी। फिर उसको बिना स्पर्श से पढ़ने की कोशिश करवायी गयी। वह दीवाल के उस तरफ रखा हुआ बोर्ड भी पढ़ लेती थी। फिर उसे मीलों के फासले पर रखी हुई किताब खोल कर पढ़वाया गया और वह यहां से उसे पढ़ सकी। तब स्पर्श से कोई संबंध न रहा। वासिलिएव ने कहा, हम जितनी शक्तियों के संबंध में जानते हैं, निश्चित ही उनसे कोई अन्य शक्ति काम कर रही होती है।

(१२) किताब छोड़ देने के दिन आ गये

योग निरंतर उस अन्य शक्ति की बात करता रहा है। महावीर की संयम की जो प्रक्रिया है, उसमें उस अन्य शक्ति को जगाना ही आधार है।

जैसे-जैसे वह अन्य शक्ति जगती है, वैसे-वैसे इंद्रियाँ फीकी हो जाती हैं। ठीक वैसे ही फीकी हो जाती हैं जैसे कि आप किताब पढ़ रहे हैं, एक उपन्यास पढ़ रहे हैं और फिर आपके सामने टेलिविजन पर वह उपन्यास खेला जा रहा हो तो आप किताब बन्द कर देंगे। यानी किताब एकदम फीकी हो गयी। कथा वही है। लेकिन अब ज्यादा जीवन्त मीडिया आपके सामने हैं। बहुत दिन तक किताब नहीं चलेगी, खो जायेगी। टेलिविजन और सिनेमा उसको पी जायेंगे। जो भी शिक्षा टेलिविजन से दी जा सकती है, वह किताब से नहीं दी जा सकेगी, क्योंकि किताब बहुत मुर्दा है, बहुत फीकी हो जाती है। अगर आपको कोई कहे कि यह उपन्यास किताब में पढ लो और चाहो तो वही कथा फिल्म पर देखो, दो में से चुन लो जो तुम्हें चुनना हो, तो आप किताब को हटा देंगे। जिन्हें टेलिविजन का कोई पता नहीं है, वे समझेंगे कि किताब का त्याग किया है। असल में त्याग आपने नहीं किया है, आपने सिर्फ श्रेष्ठतम माध्यम को चुन लिया है। सदा ही आदमी, जो श्रेष्ठतम है उसे चुन लेता है। अगर आपको अपनी इंद्रियों का अतीन्द्रिय रूप प्रकट होना शुरू हो जाये, तो निश्चित ही आप इंद्रियों का रस छोड़ देंगे और एक नये रस में प्रवेश कर जायेंगे। जो अभी इंद्रियों ही में जीते हैं, जिनकी समझ की सीमा इंद्रियों के पार नहीं है, वे कहेंगे महात्यागी हैं आप। लेकिन आप केवल भोग की और गहनतम, और अंतर्दिशा में आगे बढ़ते हैं। आप उस रस को पाने लगेंगे, जो इंद्रियों में जीने वाले आदमी को कभी पता ही नहीं चलता। संयम की यह विधायक दृष्टि अतीन्द्रिय सम्भावनाओं के बढ़ाने से शुरू होती है।

महावीर ने बहुत ही गहन प्रयोग किये हैं अतीन्द्रिय सम्भावनाओं को बढ़ाने के लिए। महावीर की सारी की सारी साधना को इस बात से ही समझना शुरू करें, तो बहुत कुछ आगे प्रकट हो सकेगा। महावीर अगर बिना भोजन के रह जाते हैं वर्षों तक, तो उसका कारण है। कारण यह है कि उन्होंने एक भोजन भीतर पाना शुरू कर दिया है। अगर महावीर पत्थर पर लेट जाते हैं और गद्दे की कोई जरूरत नहीं रह जाती, तो उन्होंने भीतर के एक नये स्पर्श का जगत् शुरू कर लिया है। महावीर अगर कैसा भी भोजन स्वीकार कर लेते हैं, तो असल में उन्होंने भीतर एक स्वाद जन्मा लिया। अब उनके लिए बाहर की चीजें उतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं, भीतर की चीज ही बाहर की चीजों पर इम्पोज हो जाती है, उन पर छा जाती है, उसे घेर लेती है। इसीलिए महावीर सिकुड़े हुए मालूम नहीं पड़ते, फैले हुए मालूम पड़ते हैं।

उनके व्यक्तित्व में कहीं कोई संकोच नहीं मालूम पड़ता, खिलाव मालूम पड़ता है। वे आनंदित हैं। वे तथाकथित तपस्वियों जैसे दु:खी नहीं हैं।

(१४) और बुद्ध नदी पार न कर पाये

बुद्ध से यह नहीं हो सका। यह विचार में ले लेना वहुत कीमती होगा और समझना आसान होगा। टाइप अलग थी। लेकिन बुद्ध से यह नहीं हो सका। बुद्ध ने भी यही सब साधना शुरू की, जो महावीर ने की है। लेकिन बुद्ध को हर साधना के बाद ऐसा लगा कि इससे तो मैं और दीन हीन हो रहा हूँ, कहीं कुछ पा तो नहीं रहा हूँ। इसलिए छः वर्ष के बाद बुद्ध ने सारी तपश्चर्या छोड़ दी। स्वभावतः बुद्ध ने निष्कर्ष लिया कि तपश्चर्या व्यर्थ है। बुद्ध बुद्धिमान थे और ईमानदार थे। नासमझ होते, तो यह निष्कर्ष भी न लेते। अनेक नासमझ लगे चले जाते हैं उन दिशाओं में, जो उनके लिए नहीं हैं; उन दिशाओं में जिनकी उनमें क्षमता नहीं हैं, जो उनके व्यक्तित्व से तालमेल नहीं खातीं। और अपने को समझाये चले जाते हैं कि पिछले जन्मों के कर्मों के कारण ऐसा हो रहा है, शायद किये हुए पापों के कारण ऐसा हो रहा है या शायद पूरा प्रयास नहीं कर पा रहा हूँ इसलिए ऐसा हो रहा है। ध्यान रहे जो आपकी दिशा नहीं है, उसमें आप पूरा प्रयास कभी भी न कर पायेंगे। इसलिए यह भ्रम बना ही रहेगा कि मैं पूरा प्रयास नहीं कर पा रहा हूँ। बुद्ध ने छह वर्ष तक वही किया, जो महावीर कर रहे हैं। लेकिन बुद्ध को जो निष्पत्ति मिली वैसा करने से, वह वह नहीं है जो महावीर को मिली। महावीर आनन्द को उपलब्ध हो गये, बुद्ध बहुत पीड़ा को उपलब्ध हुए। महावीर महाशक्ति को उपलब्ध हो गये, बुद्ध केवल निर्बल हो गये। निरंजना नदी को पार करते वक्त एक दिन वे इतने कमजोर थे उपवास के कारण कि किनारे को पकड़कर चढ़ने की शक्ति मालूम न पड़ी। वृक्ष की एक जड़ को पकड़कर सोचने लगे कि इस उपवास से क्या मिलेगा, जिससे मैं नदी पार करने की शक्ति खो चुका, उससे इस भवसागर को कैसे पार कर पाऊँगा? पागलपन है। यह नहीं होगा, कृश हो गये थे, हड्डियाँ सब निकल आयी थीं। बुद्ध का जो बहुत प्रसिद्ध चित्र उस समय का है, वह मुसीबत में पड़े तथाकथित तपस्वी का चित्र है। एक ताम्र प्रतिमा उपलब्ध है बहुत पुरानी, जिसमें बुद्ध का उस समय का चित्र है, जब वे छह महीने तक निराहार रहे थे। सारी हड्डियाँ छाती के बाहर निकल आयी हैं, पेट पीठ से लग गया है।

आँखें भर जीवित दिखायी पड़ती हैं, बाकी सारा शरीर सूख गया है। खून ने जैसे बहना बन्द कर दिया हो। चमड़ी जैसे सिकुड़ कर जुड़ गयी हो। सारा शरीर मुर्दे का हो गया है। वैसे ही क्षण में निरंजना नदी को पार करते वक्त उन्हें ख्याल आया कि 'नहीं, यह सब व्यर्थ है'। और यह सब बुद्ध के लिए व्यर्थ था। लेकिन इसी सबसे महावीर महाशक्ति को उपलब्ध हुए। असल में बुद्ध ने जिनसे यह बात सुनी और सीखी, वह सब निषेध था। यह-यह छोड़ो, यह-यह छोड़ो, और वे छोड़ते गये। जिसने जैसा कहा, वे करते चले गये। जिस गुरु ने जो बताया, वह उन्होंने किया। सब छोड़कर उन्होंने पाया कि सब तो छूट गया, मिला कुछ भी नहीं। और मैं केवल दीन, हीन और दुर्बल हो गया। बुद्ध के लिए वह मार्ग न था। बुद्ध के व्यक्तित्व का टाइप भिन्न था, ढांचा और था। फिर बुद्ध ने सबका त्याग कर दिया, सारे त्याग का त्याग कर दिया। भोग को त्याग करके देख लिया था उससे कुछ पाया नहीं, इससे सारे त्याग का त्याग कर दिया। और जब त्याग का त्याग कर दिया, तब बुद्ध ने पाया।

(१५) जब इंद्रियों का जगत् बीमार हो जाता है

महावीर की प्रक्रिया में और बुद्ध की प्रक्रिया में बड़ा उल्टा भाव है। इसलिए एक ही समय पैदा होकर दोनों की परंपरा बड़ी विपरीत है। बुद्ध ने भी पाया, वहीं पहुँचे, जहाँ कोई पहुँचता है या महावीर पहुँचते हैं। लेकिन त्याग से न पाया। क्योंकि त्याग की जो धारणा बुद्ध के मन में प्रवेश कर गयी, वह निषेध की थी। वहीं भूल हो गयी। लेकिन महावीर की तो धारणा विधेय की थी। जब भी कोई त्याग या निषेध से चलेगा तो भटकेगा, परेशान होगा और दुर्बल होगा, कहीं पहुँचेगा नहीं। आत्मबल मिलेगा नहीं, शरीर बल और खो जायेगा। अतीन्द्रिय का जगत् तो खुलेगा नहीं, इंद्रियों का जगत् बीमार होकर सिकुड़ जायेगा। अन्तरध्वनि तो सुनायी नहीं पड़ेगी, कान बहरे हो हो जायेंगे। अंतर्दृश्य तो दिखायी न पड़ेंगे, आँख धुंधली हो जायेगी। अन्तर्स्पर्श तो पता न चलेगा, हाथ जड़ हो जायेंगे और बाहर भी स्पर्श न कर पायेंगे।

निषेध से यह भूल होती है। और परंपरा केवल निषेध दे सकती है। क्योंकि हम जो पकड़ते हैं, उनको वही दिखायी पड़ता है जो छोड़ा है। उन्हें वह नहीं दिखायी पड़ता, जो पाया है। तो महावीर को अगर ठीक से समझना हो,

उनके गरिमाशाली संयम को समझना हो, उनके स्वस्थ, विधायक संयम को यदि समझना हो तो अतीन्द्रिय को जगाने के प्रयोग में प्रवेश करना होगा। प्रत्येक व्यक्ति की कोई न कोई इंद्रिय तत्काल अतीन्द्रिय जगत् में प्रवेश करने को तैयार खड़ी है। थोड़े से प्रयोग करने की जरूरत है और आपको पता चल जायेगा कि आपकी अतीन्द्रिय क्षमता क्या है। दो-चार-पांच छोटे प्रयोग करें और आपको एहसास होने लगेगा कि आपकी दशा क्या है, आपका द्वार क्या है? उसी द्वार से आगे बढ़ जायेंगे।

कैसे पता चले, कोई कैसे जाने कि उसकी अतीन्द्रिय क्षमता क्या हो सकती है?

हम सबको कई बार मौके मिलते हैं, लेकिन हम चूक जाते हैं। क्योंकि हम उस दिशा में सोचते नहीं है। कभी आप बैठे हैं और अचानक आपको ख्याल आ जाता है किसी मित्र का, तभी आप चेहरा उठाते हैं और देखते हैं वह द्वार पर खड़ा है। आप सोचते हैं संयोग है। चूक गये मौके को। कभी आप सोचते हैं कि कितने बजे, ख्याल आता है नौ होगा और घड़ी में देखते हैं ठीक नौ बजे हैं। आप सोचते हैं संयोग है। नहीं, चूक गये। यह एक अतीन्द्रिय झलक मिली थी। अगर ऐसी कोई झलक आपको मिलती है, तो इसके प्रयोग करें, इसको संयोग मत कहें। अगर घड़ी पर आपने सोचा नौ बजे हैं और घड़ी में नौ बजे हैं, तो फिर उस पर प्रयोग करना शुरू कर दें। कभी भी घड़ी पहले मत देखें, पहले सोचें, फिर घड़ी देखें। और शीघ्र ही आपको पता चलेगा, यह संयोग नहीं है। क्योंकि यह इतनी बार घटने लगेगा और यह घटने की घटना, संख्या बढ़ने लगेगी, संयोग न रह जायेगा।

आधी रात को उठें। पहले सोचें कि कितना बजा है। फिर सोचें कि सोचने में भूल हो सकती है। तब फिर थोड़ा विचार कर ख्याल करें कि कितना बजा है। और जो पहला ख्याल हो, उसको ही घड़ी से मिलायें, दूसरे से मत मिलायें। दूसरा गड़बड़ होगा। पहला जो हो वही ठीक होगा। अगर आपको द्वार पर आये मित्र का ख्याल आ गया तो फिर जरा इस पर प्रयोग करें। जब भी द्वार पर आहट सुनायी पड़े, दरवाजे की घंटी बजे, जल्दी से दरवाजा मत खोलो। पहले आंख बन्द करो और पहले जो चित्र आये उसको ख्याल में ले लो फिर दरवाजा खोलो। थोड़े ही दिन में आप पायेंगे कि यह संयोग नहीं था, यह आपकी क्षमता की झलक थी, जिसको आप संयोग कहकर

चूक रहे थे। और भी एकाध दिशा में अगर आपका अतीन्द्रिय रूप खुलना शुरू हो जाये, तो आपकी इंद्रियाँ तत्काल फीकी पड़नी शुरू हो जायेंगी और आपके लिए संयम का विधायक मार्ग साफ होने लगेगा।

(१६) सावधान ! 'संयोग' का खतरा है

हम पूरे जीवन न मालूम कितने अवसरों को चूक जाते हैं, न मालूम कितने ! और चूक जाने का हमारा एक तर्क है कि हम हर चीज को संयोग कहकर छोड़ देते हैं कि 'हो गया होगा।' ऐसा नहीं है कि संयोग नहीं होते, संयोग होते हैं। लेकिन बिना परीक्षा किये मत कहें कि संयोग है। परीक्षा कर लें। हो सकता है संयोग न हो। और अगर संयोग नहीं है तो आपकी शक्ति का आपको अनुमान होना शुरू हो जायेगा। एक बार आपको ख्याल में आ जाय आपको शक्ति का सूत्र, तो आप उसको फिर विकसित कर सकते हैं, उसको प्रशिक्षित कर सकते हैं। संयम उसका प्रशिक्षण है। एक दिन आपने उपवास किया और उस दिन आपको भोजन की बिलकुल याद न आये इसलिए अपने को भुलाने की कोशिश में मत लगना, जैसे उपवास करने वाले लगते हैं। एक दिन उपवास किया तो आदमी मंदिर में जाकर बैठ जाता है, भजन कीर्तन की धुन में लगा रहता है, शास्त्र पढ़ता रहता है, साधु को सुनता रहता है। वह सब इसलिए है कि भोजन की याद न आये। यहीं वह चूक रहा है। जिस दिन भोजन नहीं किया उस दिन कुछ न करें फिर। खाली बैठ जायें, लेट जायें। और देखें, अगर चौबीस घंटे में आपको भोजन की याद न आये, तो उपवास आपके लिए मार्ग हो सकता है। तो आप महावीर जितने लम्बे उपवासों की दुनिया में प्रवेश कर सकते हैं वह आपका द्वार बन सकता है। अगर आपको भोजन ही भोजन की याद आने लगे, तो आप जानना कि वह आपका रास्ता नहीं है, आपके लिए वह ठीक नहीं होगा।

(१७) बांसुरी और महावीर

किसी भी दिशा में—पच्चीस दिशाएँ चौबीस घंटे खुलती हैं। जो जानते हैं वे तो कहते हैं—हर क्षण हम चौराहे पर होते हैं, जहाँ से दिशाएँ खुलती हैं। इसलिए हर क्षण अपनी दिशा को खोज लेना साधक के लिए बहुत जरूरी है, नहीं तो वह भटक सकता है। इसमें दूसरे को आरोपित मत करना, अपने को ही खोजना और अपने टाइप को खोजना—अपने ढांचे को, अपने व्यक्तित्व

के रूप को, नहीं तो भूल हो जाती है। महावीर को मानने वाले घर में पैदा हो गये हैं, इसलिए आप महावीर के मार्ग पर जा सकेंगे, यह अनिवार्य नहीं है। कोई नहीं कह सकता है कि आपके लिए मोहम्मद का मार्ग ठीक होगा या कृष्ण का मार्ग ठीक नहीं होगा। जरूरी नहीं है कि आप कृष्ण को मानने वाले घर में पैदा हो गये हैं इसलिए बाँसुरी में आपको कोई रस आ जायेगा। यह कतई जरूरी नहीं है। हो सकता है महावीर आपके लिए सार्थक हो, जिनसे बाँसुरी को कहीं भी जोड़ा नहीं जा सकता। अगर महावीर के पास बाँसुरी रखो, तो या तो महावीर को हटाना पड़ेगा या बांसुरी को हटाना पड़ेगा। इन दोनों का कहीं कोई तालमेल नहीं पड़ता। कृष्ण के हाथ से बाँसुरी हटा लो तो कृष्ण ९० प्रतिशत हट गये, वहाँ कुछ बचे ही नहीं। कृष्ण के हाथ में बाँसुरी न हो, तो कृष्ण को पहचानना मुश्किल है। अगर बाँसुरी अकेली रखी भी हो, तो कृष्ण का ख्याल आ भी सकता है। तो व्यक्तित्व के टाइप हैं। हमने कभी इस मुल्क में चार वर्णों को बाँटा था, यह बहुत मजे की बात है कि ये चार वर्ण हमारे चार टाइप थे, जो मूल आदमी के चार रूप हो सकते हैं।

अभी रूस के वैज्ञानिक फिर आदमी को इलेक्ट्रिसिटी के आधार पर चार हिस्सों में बाँटने में लगे हुए हैं। वे कहते हैं फोर टाइप्स हैं। आधार उनका है कि व्यक्ति के शरीर का जो विद्युत प्रवाह है, वह उसके टाइप को बताता है। शरीर का जो विद्युत् प्रवाह है, वह सबका अलग-अलग है। मैं मानता हूँ कि महावीर का विद्युत् का प्रवाह पाजिटिव था। इसलिए वे किसी भी सक्रिय साधना में कूद सके। बुद्ध का इलेक्ट्रिक का प्रभाव निगेटिव था। इसलिए वे किसी सक्रिय साधना से कुछ भी न पा सके। उन्हें एक दिन बिलकुल ही निष्क्रिय और शून्य हो जाना पड़ा। वहीं से उनकी उपलब्धि का द्वार खुला। यह व्यक्तित्व का भेद है। यह सिद्धान्त भेद नहीं है।

अब तक मनुष्य जाति बहुत उपद्रव में रही है, क्योंकि हम व्यक्तित्व के भेद को सिद्धांतों का भेद मानकर व्यर्थ के विवादों में पड़े रहे। अपने व्यक्तित्व को खोज लें, अपनी विशिष्ट इंद्रिय को खोज लें, अपनी क्षमता का थोड़ा सा आकलन कर लें और फिर आप संयम की दिशा में गति करना रोज-रोज आसान पायेंगे। लेकिन आपने अपनी क्षमता को बिना आंके किसी और की क्षमता के अनुकरण में चलने की कोशिश की तो आप अपने को रोज-रोज झंझट में पा सकते हैं। क्योंकि वह आपका मार्ग नहीं है, आपका द्वार नहीं है। जो बहुत बड़ा

दुर्भाग्य इस जगत् में घटा है वह यह है कि हम अपने धर्म को जन्म से तय करते हैं। इससें बड़ी कोई दुर्भाग्य की घटना पृथ्वी पर नहीं हुई। क्योंकि इससे सिर्फ उपद्रव होता है और कुछ भी नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म सचेतन रूप से खोजना चाहिए। जीवन का जो परम लक्ष्य है, वह जन्म से नहीं तय होता है। आपको खोजना पड़ेगा। वह बड़ी मुश्किल से साथ होता है, लेकिन जिस दिन वह साथ हो जायेगा, उस दिन आपके लिए सब सुलभ हो जायेगा। दुनिया से धर्म के नष्ट होने के बुनियादी कारणों में एक यह है कि हम धर्म को जन्म से जोड़े हैं। धर्म हमारी खोज नहीं है। और इसलिए यह भी होता है कि महावीर के वक्त में महावीर का विचार जितने लोगों के जीवन में क्रान्ति ला पाया, फिर २५०० साल में भी उतने लोगों की जिन्दगी में नहीं ला पाया। उसका कुल कारण इतना है कि महावीर के पास उस वक्त जो लोग आये हैं, वह उनकी च्वाइस है, जन्म–रूढ़ि नहीं है। यह उनका चुनाव था। उसके व्यक्तित्व और महावीर के व्यक्तित्व में कोई कशिश, कोई मैगनेटिज्म था, जिसने उन्हें खींचा था, वह उनके पास आ गया। लेकिन उसका बेटा ? उसका बेटा सिर्फ पैदा होने से महावीर के पास जायेगा, तो वह कभी पास नहीं पहुँचने वाला है। इसलिए महावीर, या बुद्ध या कृष्ण, या क्राइस्ट के जीवन के क्षणों में इनके पास जो लोग आये हैं, उनके जीवन में आमूल रूपान्तरण हो गया है। फिर यह घटना दोबारा नहीं घटती। हर पीढ़ी धीरे-धीरे औपचारिक हो जाती है। धर्म औपचारिक हो जाता है।

(१८) औपचारिक धर्म : वास्तविक अधर्म

क्योंकि हम इस घर में पैदा हुए हैं, इसलिए मंदिर में जाते हैं। भला घर और मंदिर का कोई सम्बन्ध है ? मेरा व्यक्तित्व क्या है, मेरी दिशा, मेरा आयाम क्या है, कौन सा चुम्बक मुझे खींच सकता है या किस चुम्बक से मेरे सम्बन्ध जुड़ सकते हैं—वह प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं खोजना चाहिए। हम एक धार्मिक दुनिया बनाने में तभी सफल हो पायेंगे, जब हम प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म चुनने की सहज स्वतंत्रता दें, अन्यथा दुनिया में धर्म न हो पायेगा, अधर्म होगा। और धार्मिक लोग औपचारिक होंगे और अधार्मिक वास्तविक होंगे। यह बड़े मजे की बात है। कोई आदमी नास्तिकता को कांससली चुनता है, उसे चुनना पड़ता है। वह कहता है नहीं है ईश्वर, तो यह उसका चुनाव होता है। और जो आदमी कहता है कि ईश्वर है, यह उसके

बाप-दादों का चुनाव है। इसलिए नास्तिक के सामने आस्तिक हमेशा हार जाते हैं। इसका कारण है। क्योंकि आपका तो वह चुनाव ही नहीं है। आप आस्तिक हैं पैदाइश से, वह आदमी नास्तिक है चुनाव से। उसकी नास्तिकता में एक बल है, एक तेजी है, एक गति है, एक प्राण का स्पर्श होता है। आपकी आस्तिकता सिर्फ फार्मल होती है। हाथ में एक कागज का टुकड़ा है, जिस पर लिखा है, आप किस घर में पैदा हुए हैं? और वही आपका चुनाव हो जाता है। इस तरह आस्तिक नास्तिक से हार जाता है। लेकिन ज्यादा दिन यह नहीं चलेगा। अब नास्तिकता भी धर्म बन गयी है।

(१९) जब नास्तिकता भी धर्म बन जाती है

१९१७ की रूसी क्रांति के बाद नास्तिकता भी धर्म है। इसलिए रूस में नास्तिक बिलकुल कमजोर है। रूस में नास्तिक पैदाइश से नास्तिक है। उसका बाप नास्तिक था, इसलिए वे नास्तिक है। इसलिए नास्तिकता भी निर्बल, नपुंसक हो गयी। उसमें भी वह बल नहीं रह गया। निश्चित ही बल होता है अपने चुनाव में। मैं अगर मरने के लिए भी गड्ढे में कूदने जाऊँ और वह मेरा अपना चुनाव है, तो मेरी मृत्यु में भी जीवन की आभा होगी। और अगर मुझे स्वर्ग भी मिल जाये धक्के से, फार्मल, तो मैं उदास-उदास स्वर्ग की गलियों में भटकने लगूंगा। वह मेरे लिए नर्क हो जायेगा। उससे मेरी आत्मा का कोई तालमेल होने वाला नहीं है। संयम को चुनें, अपने को खोजें, सिद्धान्त का बहुत आग्रह न रखें, अपने को खोजें अपनी इंद्रियों को खोजें, अपने बहाव को देखें कि मेरी ऊर्जा किस तरफ बहती है, उससे लड़ें मत, वही आपका मार्ग बनेगा। उससे ही पीछे लौटें और विधायक रूप से थोड़ा अतीन्द्रिय रूप का अनुभव शुरू करें। प्रत्येक व्यक्ति के पास अतीन्द्रिय क्षमता है। उसे पता हो, न पता हो। प्रत्येक व्यक्ति चमत्कारिक रूप से अतीन्द्रिय प्रतिभा से भरा हुआ है। जरा कहीं द्वार खटखटाने की जरूरत है और खजाने खुलने शुरू हो जाते हैं। और जैसे ही यह होता है, इंद्रियों का जगत् फीका हो जाता है।

दो तीन बातें संयम के संबंध में और। फिर हम तप की बात शुरू करेंगे। आदमी भूलें भी नयी-नयी नहीं करता है, पुरानी ही करता है। जड़ता का इससे बड़ा और क्या प्रमाण होगा? अगर आप जिन्दगी में लौट कर देखें, तो एक दर्जन से ज्यादा भूलें आप न गिना पायेंगे। हाँ, उन्हीं-उन्हीं को कई बार किया। ऐसा लगता है कि अनुभव से हम कुछ सीखते ही नहीं। और जो अनुभव से

नहीं सीखता, वह संयम में नहीं जा सकेगा। संयम में जाने का अर्थ ही यह है कि अनुभव ने बताया कि असंयम गलत था, असंयम दुख था, असंयम सिर्फ पीड़ा थी और नर्क था। लेकिन हम तो अनुभव से सीख नहीं रहे। अच्छा हो कि मैं मुल्ला की बात आपको बताऊँ।

(२०) बाथरूम में झांकते हुए मुल्ला नसरुद्दीन

साठ वर्ष का हो गया है मुल्ला। काफी हाउस में मित्रों के पास बैठ कर गपशप कर रहा है एक साँझ। गपशप का रुख अनेक बातों से घूमता इस बात पर आ गया था कि एक बूढ़े मित्र ने पूछा (सभी बूढ़े हैं। साठ साल का नसरुद्दीन है, उसके मित्र भी बूढ़े हैं) कि नसरुद्दीन तुम्हारी जिन्दगी में कोई ऐसा मौका आया, तुम्हें ख्याल आता है जब तुम बड़ी परेशानी में पड़ गये होगे, बहुत आकवर्ड मूवमेण्ट में ?

नसरुद्दीन ने कहा, सभी के जिन्दगी में आता है। लेकिन तुम अपनी जिन्दगी बताओ, तो हम भी बतायें।

सभी बूढ़ों ने अपनी-अपनी जिन्दगी के वे क्षण बताये, जब वे बड़ी मुश्किल में पड़ गये, जहाँ कुछ निकलने का रास्ता न रहा। कभी किसी ने चोरी की और रंगे हाथ पकड़ गया। कभी कोई झूठ बोला और झूठ नग्नता से प्रकट हो गया।

नसरुद्दीन ने कहा कि मुझे याद है। घर की नौकरानी स्नान कर रही थी और मैं ताली के छेद से उसको देख रहा था। मेरी माँ ने मुझे पकड़ लिया। उस वक्त मेरी बड़ी बुरी हालत हुई।

बाकी बूढ़े हँसे, आँखें मिचकाईं। उन्होंने कहा, इसमें इतने परेशान मत हो। सभी की जिन्दगी में बचपन में ऐसे मौके आ जाते हैं।

नसरुद्दीन ने कहा, ह्वाट आर यू सेइंग! दिस इज एबाउट येस्टर्डे। बचपन कह रहे हो ? यह कल की ही बात है। बचपन और बुढ़ापे में चालाकी भले बढ़ जाती हो, भूलें नहीं बदलती हैं। हाँ, बूढ़ा जरा होशियार हो जाता है, पकड़ में कम आता है, यह दूसरी बात है। बच्चा कम होशियार होता है, पकड़ में जल्दी आ जाता है। अभी उसके पास चालाकी के उपाय ज्यादा नहीं हैं। या यह भी हो सकता है कि बच्चे को पकड़ने वाले लोग हैं, बूढ़े को पकड़ने

वाले लोग नहीं हैं। बाकी कहीं अनुभव में कुछ भेद पड़ता हो, ऐसा दिखायी नहीं पड़ता।

(२१) अगर पाप नहीं तो जियें कैसे ?

नसरुद्दीन मरा। स्वर्ग के द्वार पर पहुँचा है। सौ वर्ष के ऊपर होकर मरा है। काफी जिया है वह। कथा है कि सेंटपीटर ने, जो स्वर्ग के दरवाजे पर पहरा देते हैं, नसरुद्दीन से पूछा, 'काफी दिन रहे, बहुत दिन रहे, लम्बा समय रहे। कौन-कौन से पाप किये पृथ्वी पर ?'

नसरुद्दीन ने कहा, 'पाप किये ही नहीं।'

सेंटपीटर ने समझा कि शायद पाप बहुत पारिभाषिक बात है, ख्याल में न आती हो। बूढ़ा आदमी है। तो स्पष्ट कहा—'चोरी की कभी ?'

नसरुद्दीन ने कहा, 'नहीं।'

'कभी झूठ बोले ?'

नसरुद्दीन ने कहा, 'नहीं।'

'कभी शराब पी ?'

नसरुद्दीन ने कहा, 'नहीं।'

'कभी स्त्रियों के पीछे पागल होकर भटके ?'

नसरुद्दीन ने कहा, 'नहीं।'

सेंटपीटर बहुत चौंका। उसने कहा, 'देन ह्वाट यू हैव बीन डूइंग देयर फार सो लांग टाइम। सौ साल तक तुम कर क्या रहे थे वहाँ ? कैसे गुजारे इतने इतने दिन ?'

नसरुद्दीन ने कहा कि अब तुमने मुझे पकड़ा। यह तो झंझट का सवाल है। लेकिन इसका जवाब मैं तुमसे एक सवाल पूछकर देना चाहता हूँ। ह्वाट हैव यू बीन डूइंग हियर ? तुम क्या कर रहे हो यहाँ ? हम तो सौ साल रहे, लेकिन तुम्हें तो सुनते हैं कि अनन्त काल से तुम यहाँ हो ?

पाप न हो, तो आदमी को लगता ही नहीं कि जिये कैसे। असंयम न हो तो आदमी को लगता ही नहीं जिये कैसे ! हमारी समझ में यह नहीं आता कि संयम है, तो फिर जियेंगे क्या ? न स्वाद में कोई रस रह जायेगा, न संगीत

में कोई रस रह जायेगा, न कोई रूप आकर्षित करेगा, न भोजन पुकारेगा, न वस्त्र बुलायेंगे, न महत्वाकांक्षा रह जायेगी। तो फिर हम जियेंगे कैसे ? मेरे पास लोग आते हैं और कहते हैं कि अगर महत्वाकांक्षा न रही, अगर बड़ा मकान बनाने का ख्याल मिट गया, अगर और सुन्दर होने का ख्याल मिट गया, तो जियेंगे कैसे ? अगर और धन पाने का ख्याल मिट गया तो हम जियेंगे कैसे ? हमें लगता ही यह है कि पाप ही जीवन की विधि है। असंयम ही जीवन का ढंग है। इसलिए हम सुन लेते हैं कि संयम की बात अच्छी है। लेकिन वह हमें छू नहीं पाती। हमारे अनुभव से उसका कोई मेल नहीं है। और यह हमारा सवाल ठीक ही है। क्योंकि जब भी हमें संयम का ख्याल उठता है, तो लगता है निषेध करो—यह छोड़ो, यह छोड़ो, यह छोड़ो। तो यह जो हमारा जीवन है, सब छोड़ देने को है ? तो फिर जीवन कहाँ है ! यह निषेधात्मक होने की वजह से हमारी तकलीफ है। मैं नहीं कहता कि यह छोड़ो, यह छोड़ो। मैं कहता हूँ, यह भी पाया जा सकता है, यह भी पाया जा सकता है, यह भी पाया जा सकता है। इसे पाओ। हाँ, इस पाने में कुछ छूट जायेगा, निश्चित ही। लेकिन तब खाली जगह नहीं छूटेगी भीतर। तब भीतर एक नया फुलफिलमेन्ट, एक नया भराव होगा।

हमारी सभी इंद्रियाँ एक पैटर्न में, एक व्यवस्था में जीती हैं। अगर आपको अतीन्द्रिय दृश्य दिखायी पड़ने शुरू हो जायें, तो ऐसा नहीं कि सिर्फ आँख से छुटकारा मिलेगा। नहीं, जिस दिन आँख से छुटकारा मिलता है, उस दिन अचानक कान से भी छुटकारा मिलना शुरू हो जाता है। क्योंकि अनुभव का एक नया रूप जब आपके ख्याल में आता है कि आँख के जगत में भी भीतर का दर्शन है तो फिर कान के जगत् में भी भीतर की ध्वनि होगी, भीतर का नाद होगा, स्पर्श के जगत् में भी स्पर्श का जगत् होगा, फिर सम्भोग के जगत् में भी भीतर की समाधि होगी। वह तत्काल ख्याल में आना शुरू हो जाता है। जब एक जगह से ढांचा टूट जाय असंयम का तो सब जगह से दीवाल गिरनी शुरू हो जाता है। प्रत्येक चीज एक ढांचे में जाती है। एक ईंट खींच लें, सब गिर जाता है।

(२२) और अधिकारी भाग खड़ा हुआ

जनगणना हो रही है। मुल्ला नसरुद्दीन के घर अधिकारी गये हैं। उससे पूछ रहे हैं घर के बाबत। अकेला बैठा है उदास। अधिकारी ने पूछा कि

कुछ अपने परिवार का ब्यौरा दो, जनगणना लिखने आया हूँ। नसरुद्दीन ने कहा, मेरे पिता जेलखाने में बन्द हैं। और अपराध की मत पूछो, क्योंकि बड़ी लम्बी संख्या है। मेरी पत्नी किसी के साथ भाग गयी है। किसके साथ भाग गयी है, इसका हिसाब लगाना बेकार है। क्योंकि किसी के भी साथ भाग सकती थी। मेरी बड़ी लड़की पागलखाने में है। दिमाग का इलाज चलता है। यह मत पूछो कि कौन सी बीमारी है, यह पूछो कि कौन सी बीमारी नहीं है?

थोड़ा बेचैन होने लगा अधिकारी। बड़ी मुसीबत का मामला है। यहाँ से कैसे भागें? किस तरह सहानुभूति बतलायें इसको और निकलें यहाँ से? तभी नसरुद्दीन ने कहा, और मेरा छोटा लड़का बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में है। अधिकारी को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने कहा, बहुत अच्छा। प्रतिभाशाली मालूम पड़ता है। क्या अध्ययन कर रहा है?

नसरुद्दीन ने कहा, गलत मत समझो। भला हमारे घर कोई अध्ययन करेगा? हमारे घर में कोई प्रतिभा पैदा होगी? न तो कोई प्रतिभाशाली है और न कोई अध्ययन कर रहा है। बनारस विश्वविद्यालय के लोग उसका अध्ययन कर रहे हैं। दे आर स्टडीइंग हिम।

नसरुद्दीन ने कहा, हमारे घर के बाबत कुछ तो समझो, उसमें जो पूरा ढांचा में है। और रही मेरी बात, सो तुम न पूछो तो अच्छा है। लेकिन जब तक वह यह कह रहा था, तब तक वह अधिकारी भाग चुका था।

(२३) एक पागल ठीक करने के लिए

ढांचे में चीजों का अस्तित्व होता है। अभी मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर आपके घर में एक आदमी पागल होता है, तो किसी न किसी रूप में आपके पूरे परिवार में ढांचा होगा पागलपन का। इसलिए नया मनोविज्ञान कहता है कि एक पागल की चिकित्सा नहीं की जा सकती, जब तक उसके परिवार की चिकित्सा न की जाये। परिवार की चिकित्सा, फ़ैमिली थेरपी नयी विकसित हो रही है। जो और सोचते हैं, वे कहते हैं परिवार से भी क्या फर्क पड़ेगा? क्योंकि परिवार दूसरे परिवारों के ढांचे में जीता है। तो अब तक पूरी सोसायटी की चिकित्सा न हो जाये, जब तक पूरे समाज की चिकित्सा न हो, तब तक एक पागल को ठीक करना मुश्किल है।

इस तरह वे ग्रुप थेरेपी की बात करते हैं। वे कहते हैं कि वह जो समूह है पूरा उस समूह के ढांचे में एक आदमी पागल होता है। चीजें संयुक्त हैं।

लेकिन एक बात उनके खयाल में नहीं है, जो मैं कहना चाहता हूं। हो सकता है कभी ख्याल में आये, लेकिन उसको सौ साल लग सकते हैं। यह बात जरूर सच है कि अगर एक घर में एक आदमी पागल है, तो किसी न किसी रूप में उसके पागलपन में पूरे घर के लोगों ने कंट्रीब्यूट किया है। उन सबने कुछ न कुछ सहयोग दिया है, अन्यथा वह पागल कैसे हो जाता ? और यह भी सच है कि जब तक उस घर के सारे लोग ठीक न हो जायें, तब तक यह आदमी ठीक नहीं हो सकता। यह भी सच है कि एक परिवार एक बड़े समूह का हिस्सा है और पूरा समूह उस परिवार को पागल करने में कुछ हाथ बँटाता है। जब तक पूरा समूह ठीक नहीं हो, एक पागलपन ठीक नहीं हो सकता। लेकिन इससे उल्टी बात भी सच है कि अगर घर में एक आदमी स्वस्थ हो जाये, तो पूरे घर के पागलपन का ढांचा टूटना शुरू हो जाता है। यह बात अभी उनके ख्याल में नहीं है। यह बात उनके ख्याल में कभी न कभी आ जायेगी। लेकिन भारत के ख्याल में यह बात बहुत पुरानी है कि अगर एक आदमी ठीक हो जाये, तो पूरे समूह का ढांचा टूटना शुरू हो जाता है।

इसे हम ऐसा समझें कि अगर आपके भीतर एक इंद्रिय में ठीक दिशा शुरू हो जाये, तो आपकी सारी इंद्रियों का पुराना ढांचा टूटना शुरू हो जाता है। आपकी एक वृत्ति संयम की तरफ जाने लगे, तो आपकी बाकी वृत्तियां असंयम की तरफ जाने में असमर्थ हो जाती हैं। मुश्किल पड़ जाती है। जरा सा, इंच भर का फर्क और सारा का सारा रूप बदलना शुरू होता है। एक बिन्दु मात्र आपके भीतर संयम का प्रकट होने लगे, तो आपके असंयम का अंधेरा गिरने लगेगा। और ध्यान रहे श्रेष्ठतर सदा शक्तिशाली है। तो मैं मानता हूं कि अगर एक व्यक्ति एक घर में ठीक हो जाये, तो उस घर को पूरा ठीक कर सकता है। क्योंकि श्रेष्ठतर शक्तिशाली है। अगर एक व्यक्ति एक समूह में ठीक हो जाये, तो पूरे समूह को ठीक होने के संचारण उसके आसपास से होने लगते हैं, क्योंकि वह श्रेष्ठ शक्तिशाली है। अगर आपके भीतर एक विचार भी ठीक हो जाये, एक वृत्ति भी ठीक हो जाये, तो आपकी सारी वृत्तियों का ढांचा टूटने और बदलने लगता है, बिखरने लगता है। फिर आप वही नहीं

हो सकते, जो आप थे। इसलिए पूरे संयम की चेष्टा में मत पड़ना। पूरा संयम संभव नहीं है। आज संभव नहीं है। इसी वक्त संभव नहीं है। लेकिन किसी एक वृत्ति को तो आप इसी वक्त और अभी रूपांतरित कर सकते हैं। और ध्यान रखना उस एक का वदलना आपकी और वदलाहट के लिए दिशा वन जायेगी।

आपकी जिन्दगी में प्रकाश की एक किरण उतर आये, तो अँधेरा कितना ही पुराना हो, भय का कोई कारण नहीं है। प्रकाश की एक किरण अनन्तगुना अँधेरे से भी शक्तिशाली हो सकती है, संयम का एक छोटा सा सूत्र, असंयम की जिंदगियों को, अनन्त जिंदगियों को मिट्टी में गिरा देता है। लेकिन वह एक सूत्र अगर शुरू करना हो, तो विधायक दृष्टि रखना है। शुरू अगर करना हो, तो उसी इंद्रिय से काम शुरू करना जो सबसे ज्यादा शक्तिशाली हो। शुरू अगर करना तो मार्ग मत तोड़ना। उसी मार्ग से पीछे लौटना है, जिससे हम बाहर गये हैं। शुरू अगर करना हो, तो अंधानुकरण मत करना कि किस घर में पैदा हुए हैं। अपने व्यक्तित्व की समझ को ध्यान में लेना और फिर जहाँ भी मार्ग मिले, वहाँ से चले जाना। महावीर जहाँ पहुँचते हैं, वहीं मुहम्मद पहुँच जाते हैं। जहाँ बुद्ध पहुँचते हैं, वहीं कृष्ण पहुँच जाते हैं। जहाँ लाओत्से पहुँचता है, वहीं क्राइस्ट पहुँच जाते हैं। नहीं मालूम आपको किस जगह से द्वार मिलेगा। आप पहुँचने की फिक्र करना, द्वार की जिद मत करना कि मैं इसी दरवाजे से प्रवेश करूँगा।

हो सकता है वह दरवाजा आपके लिए दीवाल सिद्ध हो, लेकिन हम सब इस जिद में हैं कि हम तो जीनेन्द्र को मानने वाले हैं, तो अगर हम जायेंगे तो जीनेन्द्र के मार्ग से जायेंगे। या तो हम विष्णु को मानने वाले हैं, हम तो राम को मानने वाले हैं तो हम राम के मार्ग से जायेंगे। आप किसको मानने वाले हैं, वह उस दिन सिद्ध होगा, जिस दिन आप पहुँचेंगे। उसके पहले सिद्ध नहीं होगा। आप किस द्वार से निकलेंगे वह उसी दिन सिद्ध होगा, जिस दिन आप निकल चुके होंगे। उसके पहले सिद्ध नहीं होता है। लेकिन आप पहले से यह तय किये हुए वैठे हैं कि मैं तो इस द्वार से निकलूँगा, जिद यह है कि इसी सीढ़ी से चढ़ेंगे। चढ़ने से कोई मतलव नहीं, न भी चढ़ें तो चलेगा, लेकिन सीढ़ी यही होनी चाहिए। यह पागलपन है और इससे पूरी पृथ्वी पागल हुई है। धर्म के नाम पर जो पागलपन खड़ा हुआ है वह इसलिए नहीं कि आपको मंजिल का कोई भी ध्यान नहीं। ध्यान है, मगर साधन का अति आग्रह है। इस पर थोड़ा ढीले होंगे, मुक्त होंगे, तो आप वहुत शीघ्र संयम की विधायक दृष्टि को, न केवल समझने में, वल्कि जीने में समर्थ हो सकते हैं।

आठवाँ प्रवचन

पर्युषण व्याख्यान-माला, दिनांक २५ अगस्त, १९७१

तप बनाम यह सब खेला ध्यान का

धम्मो मंगलमुक्किट्ठम, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति, जस्स धम्मो सया मणो ॥१॥

अर्थ—

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

अहिंसा है आत्मा, संयम है प्राण, तप है शरीर। स्वभावतः अहिंसा के संबंध में भूलें हुई हैं, गलत व्याख्याएँ हुई हैं। लेकिन ये भूलें और व्याख्याएँ अपरिचय की भूलें हैं। संयम के सम्बन्ध में भी भूलें हुई हैं, गलत व्याख्याएँ हुई हैं। लेकिन वे भूलें भी अपरिचय की भूलें हैं। जिससे हम अपरिचित हैं, उसकी गलत व्याख्या करनी भी कठिन होती है। गलत व्याख्या के लिए भी परिचय ज़रूरी है। और हमारा सर्वाधिक परिचय तप से है, क्योंकि वह सबसे बाह्य रूप-रेखा है। वह शरीर है।

तप के सम्बन्ध में सर्वाधिक भूलें हुई हैं, और सर्वाधिक गलत व्याख्याएँ हुई हैं। और उन गलत व्याख्याओं से जितना अहित हुआ है, उतना किसी और चीज से नहीं हुआ है। एक फर्क है कि तप के संबंध में जो गलत व्याख्याएँ हैं, वे हमारी परिचय की भूलें हैं। तप से हम परिचित हैं और तप से हम आसानी से परिचित हो जाते हैं। असल में तप तक जाने के लिए हमें अपने को बदलना ही नहीं पड़ा। हम जैसे हैं, तप में हम वैसे ही प्रवेश कर जाते हैं। चूंकि तप द्वार है। और इसीलिए हम जैसे हैं वैसे ही तप में चले जाएँ तो तप हमें नहीं बदल पाता, हम तप को बदल डालते हैं।

(१) तप की गलत व्याख्याएँ

तप की जो गलत व्याख्या निरंतर होती है, वह हमें समझ लेनी चाहिए, तभी हम ठीक व्याख्या की तरफ कदम उठा सकते हैं। हम भोग से परिचित हैं, भोग यानी सुख की आकांक्षा से। सुख की सभी आकांक्षा दुःख में ले जाती है। सुख की सभी आकांक्षा अंततः दुःख में छोड़ जाती है, उदास, खिन्न, उजड़े,

हुए। इससे स्वभावत: एक भूल पैदा होती है। और वह यह है कि यदि हम सुख को माँग करके दुःख में पहुँच जाते हैं तो क्या दुःख की माँग करके सुख में नहीं पहुँच सकते? यदि सुख की आकांक्षा करते हैं और दुःख मिलता है, तो क्यों न हम दुःख की आकांक्षा करें और सुख को पा लें। इसलिए तप की जो पहली भूल है, वह भोगी चित्त से निकलती है। भोगी चित्त का अनुभव यही है कि सुख दुःख में ले जाता है। विपरीत हम करेंगे तो हम सुख में पहुँच सकते हैं। तो सभी अपने को सुख देने की कोशिश करते हैं, हम अपने को दुःख देने की कोशिश करें। यदि सुख की कोशिश दुःख लाती है तो दुःख की कोशिश सुख ला सकेगी, ऐसा सीधा गणित मालूम पड़ता है। लेकिन जिन्दगी इतनी सीधी नहीं है। और जिन्दगी का गणित इतना साफ नहीं है। जिन्दगी बहुत उलझाव है। उसके रास्ते इतने सीधे होते तो सभी सुख हल हो जाता।

(२) चले थे शराब बन्द कराने

सुना है मैंने कि रूस के एक बड़े मनोवैज्ञानिक पावलफ के पास, जिसने कंडीशंड रिफलेक्स्ट्स के सिद्धांत का जन्म दिया है और कहा कि अनुभव संयुक्त हो जाते हैं, एक बूढ़े आदमी को लाया गया जो कि शराब पीने की आदत से इतना परेशान हो गया है कि चिकित्सक कहते हैं कि उसके खून में शराब फैल गयी है, उसका जीना मुश्किल है, बचना मुश्किल है; अगर शराब बन्द न कर दी जाये। लेकिन वह कोई तीस साल से शराब पी रहा है। इतना लम्बा अभ्यास है। चिकित्सक डरते हैं कि अगर तोड़ा जाये तो भी मौत हो सकती है। तो पावलफ के पास लाया गया। पावलफ ने अपने एक निष्णात शिष्य को सौंपा और कहा कि इस व्यक्ति को शराब पिलाओ। और जब यह शराब की प्याली हाथ में ले, तभी इसे बिजली का शाक दो। ऐसा निरंतर करने से शराब पीना और बिजली का धक्का और पीड़ा संयुक्त हो जायेगी। शराब और पीड़ा युक्त हो जायेगी, कंडीशंड हो जायेगी। तब पीड़ा को छोड़ना शराब को छोड़ना बन जायेगा। और एक बार यह भाव मन में बैठ जाय गहरे कि शराब पीड़ा देती है, दुःख लाती है तो शराब को छोड़ना कठिन नहीं होगा।

एक महीने प्रयोग जारी रखा गया। एक महीने पावलफ की प्रयोगशाला में वह आदमी रुका था। वह दिन भर शराब पीता था। जब भी वह शराब का प्याला हाथ में लेता था, तभी उसकी कुर्सी शाक देती। वह सामने बैठा

हुआ मनोवैज्ञानिक बटन दबाता रहता, कभी उसका हाथ छलक जाता, कभी उसके हाथ से प्याली गिर जाती।

महीने भर बाद पावलफ ने अपने युवक शिष्य को बुलाकर पूछा कि कुछ हुआ ?

युवक शिष्य ने कहा—हुआ, बहुत कुछ।

पावलफ खुश हुआ और उसने कहा, मैंने कहा ही था कि निश्चित ही कंडीशनिंग से सब कुछ हो जाता है। पर उसके शिष्य ने कहा कि ज्यादा खुश न हों। क्योंकि करीब-करीब उल्टा हुआ है।

पावलफ ने कहा—उल्टा ? क्या अर्थ है तुम्हारा ?

युवक ने कहा—ऐसा हो गया है, वह इतना कंडीशंड हो गया है कि अब शराब पीता है तो पहले, जो भी पास में साकेट होता है, उसमें उंगली डाल लेता है। कंडीशंड हो गया है। लेकिन वह बिना शॉक के शराब नहीं पी सकता। शराब पीना तो नहीं छूटा, शाक पकड़ गया। अब कृपा करके शराब छूटे या न छूटे, शॉक छुड़वाइए। क्योंकि शराब जब मारेगी, मारेगी, यह शॉक का धन्धा खतरनाक है, यह अभी भी मार सकता है। अब वह पी ही नहीं सकता है। इधर एक हाथ में प्याली लेता है, तो दूसरा हाथ साकेट में डालता है।

(३) दुखः+चाह=तप : तब आप नहीं समझे

जिन्दगी इतनी उलझी हुई है, जिन्दगी इतनी आसान नहीं है। एक तो जिन्दगी का गणित साफ नहीं है कि जैसा आप सोचते हैं, वैसा हो जायेगा। दुःख की आकांक्षा सुख नहीं ले आती। क्यों ? क्योंकि अगर हम गहरे में देखें तो पहली बात यह कि आप सुख की आकांक्षा कर दुःख लाये हैं। अब आप सोचते हैं कि दुःख की आकांक्षा करें तो सुख मिलेगा, लेकिन गहरे में देखें तो अभी भी आप सुख की ही आकांक्षा कर रहे हैं। दुःख चाहें तो सुख मिलेगा, इसलिए दुःख चाह रहे हैं। आकांक्षा सुख की ही है। और सुख की कोई आकांक्षा सुख नहीं ला सकती। ऊपर से दिखायी पड़ता है कि आदमी अपने को दुःख दे रहा है, लेकिन वह दुःख इसलिए दे रहा है कि सुख मिले। पहले सुख दे रहा था ताकि सुख मिले, तो दुःख पाया। अब दुःख दे रहा है ताकि सुख मिले, तो दुख ही पायेगा। क्योंकि आकांक्षा का सूत्र तो अब भी गहरे में वही है। ऊपर सब बदल गया है, भीतर आदमी वही है। सच बात तो यह कि दुःख

हुए। इससे स्वभावतः एक भूल पैदा होती है। और वह यह है कि यदि हम सुख की माँग करके दुःख में पहुँच जाते हैं तो क्या दुःख की माँग करके सुख में नहीं पहुँच सकते ? यदि सुख की आकांक्षा करते हैं और दुःख मिलता है, तो क्यों न हम दुःख की आकांक्षा करें और सुख को पा लें। इसलिए तप की जो पहली भूल है, वह भोगी चित्त से निकलती है। भोगी चित्त का अनुभव यही है कि सुख दुःख में ले जाता है। विपरीत हम करेंगे तो हम सुख में पहुँच सकते हैं। तो सभी अपने को सुख देने की कोशिश करते हैं, हम अपने को दुःख देने की कोशिश करें। यदि सुख की कोशिश दुःख लाती है तो दु.ख की कोशिश सुख ला सकेगी, ऐसा सीधा गणित मालूम पड़ता है। लेकिन जिन्दगी इतनी सीधी नहीं है। और जिन्दगी का गणित इतना साफ नहीं है। जिन्दगी बहुत उलझाव है। उसके रास्ते इतने सीधे होते तो सभी सुख हल हो जाता।

(२) चले थे शराब बन्द कराने

सुना है मैंने कि रूस के एक बड़े मनोवैज्ञानिक पावलफ के पास, जिसने कंडीशंड रिफलेक्ट्स के सिद्धांत का जन्म दिया है और कहा कि अनुभव संयुक्त हो जाते हैं, एक बूढ़े आदमी को लाया गया जो कि शराब पीने की आदत से इतना परेशान हो गया है कि चिकित्सक कहते हैं कि उसके खून में शराब फैल गयी है, उसका जीना मुश्किल हैं, बचना मुश्किल है; अगर शराब बन्द न कर दी जाये। लेकिन वह कोई तीस साल से शराब पी रहा है। इतना लम्बा अभ्यास है। चिकित्सक डरते हैं कि अगर तोड़ा जाये तो भी मौत हो सकती हैं। तो पावलफ के पास लाया गया। पावलफ ने अपने एक निष्णात शिष्य को सौंपा और कहा कि इस व्यक्ति को शराब पिलाओ। और जब यह शराब की प्याली हाथ में ले, तभी इसे बिजली का शाक दो। ऐसा निरंतर करने से शराब पीना और बिजली का धक्का और पीड़ा संयुक्त हो जायेगी। शराब और पीड़ा युक्त हो जायेगी, कंडीशंड हो जायेगी। तब पीड़ा को छोड़ना शराब को छोड़ना बन जायेगा। और एक बार यह भाव मन में बैठ जाय गहरे कि शराब पीड़ा देती है, दुःख लाती है तो शराब को छोड़ना कठिन नहीं होगा।

एक महीने प्रयोग जारी रखा गया। एक महीने पावलफ की प्रयोगशाला में वह आदमी रुका था। वह दिन भर शराब पीता था। जब भी वह शराब का प्याला हाथ में लेता था, तभी उसकी कुर्सी शाक देती। वह सामने बैठा

हुआ मनोवैज्ञानिक बटन दबाता रहता, कभी उसका हाथ छलक जाता, कभी उसके हाथ से प्याली गिर जाती।

महीने भर बाद पावलफ ने अपने युवक शिष्य को बुलाकर पूछा कि कुछ हुआ ?

युवक शिष्य मे कहा—हुआ, बहुत कुछ।

पावलफ खुश हुआ और उसने कहा, मैंने कहा ही था कि निश्चित ही कंडीशनिंग से सब कुछ हो जाता है। पर उसके शिष्य ने कहा कि ज्यादा खुश न हों। क्योंकि करीब-करीब उल्टा हुआ है।

पावलफ ने कहा—उल्टा ? क्या अर्थ है तुम्हारा ?

युवक ने कहा—ऐसा हो गया है, वह इतना कंडीशंड हो गया है कि अब शराब पीता है तो पहले, जो भी पास में साकेट होता है, उसमें उंगली डाल लेता है। कंडीशंड हो गया है। लेकिन वह बिना शॉक के शराब नहीं पी सकता। शराब पीना तो नहीं छूटा, शाक पकड़ गया। अब कृपा करके शराब छूटे या न छूटे, शॉक छुड़वाइए। क्योंकि शराब जब मारेगी, मारेगी, यह शॉक का धन्धा खतरनाक है, यह अभी भी मार सकता है। अब वह पी ही नहीं सकता है। इधर एक हाथ में प्याली लेता है, तो दूसरा हाथ साकेट में डालता है।

(३) दुखः+चाह=तप : तब आप नहीं समझे

जिन्दगी इतनी उलझी हुई है, जिन्दगी इतनी आसान नहीं है। एक तो जिन्दगी का गणित साफ नहीं है कि जैसा आप सोचते हैं, वैसा हो जायेगा। दुःख की आकांक्षा सुख नहीं ले आती। क्यों ? क्योंकि अगर हम गहरे में देखें तो पहली बात यह कि आप सुख की आकांक्षा कर दुःख लाये हैं। अब आप सोचते हैं कि दुःख की आकांक्षा करें तो सुख मिलेगा, लेकिन गहरे में देखें तो अभी भी आप सुख की ही आकांक्षा कर रहे हैं। दुःख चाहें तो सुख मिलेगा, इसलिए दुःख चाह रहे हैं। आकांक्षा सुख की ही है। और सुख की कोई आकांक्षा सुख नहीं ला सकती। ऊपर से दिखायी पड़ता है कि आदमी अपने को दुःख दे रहा है, लेकिन वह दुःख इसलिए दे रहा है कि सुख मिले। पहले सुख दे रहा था ताकि सुख मिले, तो दुःख पाया। अब दुःख दे रहा है ताकि सुख मिले, तो दुखं ही पायेगा। क्योंकि आकांक्षा का सूत्र तो अब भी गहरे में वही है। ऊपर सब बदल गया है, भीतर आदमी वही है। सच बात तो यह कि दुःख

चाहा ही नहीं जा सकता; यू कैन नाट डिजायर, यह इम्पासिबुल है, असम्भव है। हम ऐसा कहें कि सुख ही चाह है और दुःख की अचाह ही होती है, चाह नहीं होती। हाँ, अगर कभी कोई दुःख चाहता है तो सुख के लिए ही। लेकिन वह चाह सुख की ही है। दुःख चाहा नहीं जा सकता। यह असम्भव है। तब हम ऐसा कह सकते हैं जो भी चाहा जाता है वह सुख है और जो नहीं चाहा जाता है वह दुःख है। इसलिए दुःख के साथ चाह को नहीं जोड़ा जा सकता। और जो भी आदमी दुःख के साथ चाह को जोड़कर तप बनाता है, दुःख+चाह=तप समझता है, वह तप को समझ ही नहीं पाया। दुःख की तो चाह ही नहीं हो सकती। सुख ही पीछे दौड़ता है। आकांक्षा मात्र सुख की है। चाह मात्र सुख की है। एक ही रास्ता है कि आपको दुःख में भी सुख मालूम पड़ने लगे, तो आप दुःख चाह सकते हैं। दुःख में भी सुख मालूम पड़ सकता है। एसोसिएशन से, कंडीशनिंग से, जो मैंने पावलफ की बात आपसे अभी कही उसी ढंग से। आपको दुःख में भी तो सुख का भ्रम हो सकता है।

(४) कोड़ा मार संप्रदाय

यूरोप में ईसाई फकीरों का एक सम्प्रदाय था—कोड़ा मारने वाला। उस सम्प्रदाय की मान्यता थी कि जब भी काम वासना उठे, तो अपने को कोड़ा मारो। लोगों को बड़ी हैरानी का अनुभव हुआ। लेकिन धीरे-धीरे कोड़ा मारने वालों को पता चला कि कोड़ा मारने में काम वासना का ही मजा आने लगा। और यहाँ तक हालत हो गयी कि जिन लोगों ने कोड़े मारने का अभ्यास किया काम वासना के लिए, फिर वे संभोग में अपने को बिना कोड़ा मारे नहीं जा सकते हैं। पहले वे कोड़ा मारेंगे फिर सम्भोग में जा सकते हैं। जब तक कोड़ा नहीं पड़े शरीर पर, तब तक कामवासना पूरे तौर से रस-मग्न होकर उठेगी नहीं। ऐसा आदमी के मन का जाल है। अब वह आदमी अपने को रोज सुबह कोड़े मार रहा है और पास पड़ोस के लोग उसे नमस्कार कर रहे हैं कि कितना महान त्यागी है। वह जो कोड़े मारने वाला सम्प्रदाय है, लाखों लोग थे उसमें मध्य युग में पूरे यूरोप में। और साधुओं की पहचान ही यही थी कि वह कितने कोड़े मारता है। जो जितने कोड़े मार रहा था, वह उतना बड़ा साधु था। चौराहों पर सब साधु खड़े होकर अपने को कोड़े मारते थे, लहूलुहान हो जाते थे। लेकिन चकित होते थे लोग कि

कितनी बड़ी तपश्चर्या है। क्योंकि जब उनके शरीर से लहू बहता था, तब उनके चेहरे पर ऐसा मग्न-भाव होता था जो कि केवल सम्भोग-रत जोड़ों में ही देखा जा सकता है। लोग चरण छूते कि अद्भुत है यह आदमी। लेकिन भीतर क्या घटित हो रहा था उसका उन्हें क्या पता? भीतर वह आदमी पूरी काम वासना में उलझ गया था। अब उसे कोड़े मारने में रस आ रहा था। क्योंकि कोड़ मारना काम वासना से संयुक्त हो जाना था। यह वही हुआ जो पावलफ के प्रयोग में हुआ।

हम अपने दुःख में सुख की कोई आभा संयुक्त कर सकते हैं। और अगर दुःख में सुख की आभा संयुक्त हो जाये तो हम दुःख को बड़े मजे से अपने आसपास इकट्ठा कर ले सकते हैं। लेकिन तप का यह अर्थ नहीं है। तप दुःख-वादी की दृष्टि नहीं है। तप के आसपास यह जो जाल खड़ा है, अगर यह आपको दिखायी पड़ना शुरू हो जाये, तो तपस्वियों की पर्त को तोड़कर आप उनके भीतर देख पायेंगे कि उनका रस क्या है। और एकबार आपको दिखायी पड़ना शुरू हो जाये, तो आप समझ पायेंगे कि जब भी कुछ चाहा जाता है तो सुख चाहा जाता है। अगर कोई दुःख को चाह रहा है तो किसी न किसी कोने में उसके मन में सुख और दुःख संयुक्त हो जायेंगे। सुख के अतिरिक्त दुःख को कोई नहीं चाहता है। भूखे मरने के बजाय कांटे पर लेटने में भी मजा आ सकता है, धूप में खड़े होने में भी मजा आ सकता है, बशर्ते कि एक बार आप के भीतर की किसी वासना से कोई दुःख संयुक्त हो जाये। और आदमी अपने को दुःख इसलिए देता है कि वह किसी वासना से मुक्त होना चाहता है। जिस दुःख से वह मुक्त होना चाहता है, दुःख उसी से संयुक्त हो जाता है। एक आदमी को अपने शरीर को सजाने में बड़ा सुख है। वह शरीर से मुक्त होना चाहता है, शरीर की सजावट की इस कामना से मुक्त हो जाना चाहता है। वह नंगा खड़ा हो जाता है या अपने शरीर पर राख लपेट लेता है या अपने शरीर को कुरूप कर लेता है। लेकिन उसे पता नहीं है कि राख लपेटना भी, यह नग्न हो जाना भी, इस शरीर को कुरूप कर लेना भी, शरीर से ही संबंधित है। यह भी सजावट है। अगर आप कभी कुम्भ गये हैं, तो एक बात देखकर बहुत चकित होंगे कि जो साधु राख लपेटे बैठे रहते हैं, वे भी एक छोटा आईना अपने डब्बे में रखते हैं और सुबह स्नान करने के बाद जब वे राख लपेटते हैं, तो आईने में देखते हैं। आदमी अद्भुत है। राख ही लपेटे है, तो आईने का क्या प्रयोजन रह गया? लेकिन राख लपेटना भी सजावट है, शृंगार है।

चाहा ही नहीं जा सकता; यू केन नाट डिजायर, यह इम्पासिबुल है, असम्भव है। हम ऐसा कहें कि सुख ही चाह है और दुःख की अचाह ही होती है, चाह नहीं होती। हाँ, अगर कभी कोई दुःख चाहता है तो सुख के लिए ही। लेकिन वह चाह सुख की ही है। दुःख चाहा नहीं जा सकता। यह असम्भव है। तब हम ऐसा कह सकते हैं जो भी चाहा जाता है वह सुख है और जो नहीं चाहा जाता है वह दुःख है। इसलिए दुःख के साथ चाह को नहीं जोड़ा जा सकता। और जो भी आदमी दुःख के साथ चाह को जोड़कर तप बनाता है, दुःख+चाह=तप समझता है, वह तप को समझ ही नहीं पाया। दुःख की तो चाह ही नहीं हो सकती। सुख ही पीछे दौड़ता है। आकांक्षा मात्र सुख की है। चाह मात्र सुख की है। एक ही रास्ता है कि आपको दुःख में भी सुख मालूम पड़ने लगे, तो आप दुःख चाह सकते हैं। दुःख में भी सुख मालूम पड़ सकता है। एसोसिएशन से, कंडीशनिंग से, जो मैंने पावलफ की बात आपसे अभी कही उसी ढंग से। आपको दुःख में भी तो सुख का भ्रम हो सकता है।

(४) कोड़ा मार संप्रदाय

यूरोप में ईसाई फकीरों का एक सम्प्रदाय था—कोड़ा मारने वाला। उस सम्प्रदाय की मान्यता थी कि जब भी काम वासना उठे, तो अपने को कोड़ा मारो। लोगों को बड़ी हैरानी का अनुभव हुआ। लेकिन धीरे-धीरे कोड़ा मारने वालों को पता चला कि कोड़ा मारने में काम वासना का ही मजा आने लगा। और यहाँ तक हालत हो गयी कि जिन लोगों ने कोड़े मारने का अभ्यास किया काम वासना के लिए, फिर वे संभोग में अपने को बिना कोड़ा मारे नहीं जा सकते हैं। पहले वे कोड़ा मारेंगे फिर सम्भोग में जा सकते हैं। जब तक कोड़ा नहीं पड़े शरीर पर, तब तक कामवासना पूरे तौर से रस-मग्न होकर उठेगी नहीं। ऐसा आदमी के मन का जाल है। अब वह आदमी अपने को रोज सुबह कोड़े मार रहा है और पास पड़ोस के लोग उसे नमस्कार कर रहे हैं कि कितना महान त्यागी है। वह जो कोड़े मारने वाला सम्प्रदाय है, लाखों लोग थे उसमें मध्य युग में पूरे यूरोप में। और साधुओं की पहचान ही यही थी कि वह कितने कोड़े मारता है। जो जितने कोड़े मार रहा था, वह उतना बड़ा साधु था। चौराहों पर सब साधु खड़े होकर अपने को कोड़े मारते थे, लहूलुहान हो जाते थे। लेकिन चकित होते थे लोग कि

कितनी बड़ी तपश्चर्या है। क्योंकि जब उनके शरीर से लहू बहता था, तब उनके चेहरे पर ऐसा मग्न-भाव होता था जो कि केवल सम्भोग-रत जोड़ों में ही देखा जा सकता है। लोग चरण छूते कि अद्‌भुत है यह आदमी। लेकिन भीतर क्या घटित हो रहा था उसका उन्हें क्या पता ? भीतर वह आदमी पूरी काम वासना में उलझ गया था। अब उसे कोड़े मारने में रस आ रहा था। क्योंकि कोड़ मारना काम वासना से संयुक्त हो जाना था। यह वही हुआ जो पावलफ के प्रयोग में हुआ।

हम अपने दुःख में सुख की कोई आभा संयुक्त कर सकते हैं। और अगर दुःख में सुख की आभा संयुक्त हो जाये तो हम दुःख को बड़े मजे से अपने आसपास इकट्ठा कर ले सकते हैं। लेकिन तप का यह अर्थ नहीं है। तप दुःख-। वादी की दृष्टि नहीं है। तप के आसपास यह जो जाल खड़ा है, अगर यह आपको दिखायी पड़ना शुरू हो जाये, तो तपस्वियों की पर्त को तोड़कर आप उनके भीतर देख पायेंगे कि उनका रस क्या है। और एकबार आपको दिखायी पड़ना शुरू हो जाये, तो आप समझ पायेंगे कि जब भी कुछ चाहा जाता है तो सुख चाहा जाता है। अगर कोई दुःख को चाह रहा है तो किसी न किसी कोने में उसके मन में सुख और दुःख संयुक्त हो जायेंगे। सुख के अतिरिक्त दुःख को कोई नहीं चाहता है। भूखे मरने के बजाय कांटे पर लेटने में भी मजा आ सकता है, धूप में खड़े होने में भी मजा आ सकता है, बशर्ते कि एक बार आप के भीतर की किसी वासना से कोई दुःख संयुक्त हो जाये। और आदमी अपने को दुःख इसलिए देता है कि वह किसी वासना से मुक्त होना चाहता है। जिस दुःख से वह मुक्त होना चाहता है, दुःख उसी से संयुक्त हो जाता है। एक आदमी को अपने शरीर को सजाने में बड़ा सुख है। वह शरीर से मुक्त होना चाहता है, शरीर की सजावट की इस कामना से मुक्त हो जाना चाहता है। वह नंगा खड़ा हो जाता है या अपने शरीर पर राख लपेट लेता है या अपने शरीर को कुरूप कर लेता है। लेकिन उसे पता नहीं है कि राख लपेटना भी, यह नग्न हो जाना भी, इस शरीर को कुरूप कर लेना भी, शरीर से ही संबंधित है। यह भी सजावट है। अगर आप कभी कुम्भ गये हैं, तो एक बात देखकर बहुत चकित होंगे कि जो साधु राख लपेटे बैठे रहते हैं, वे भी एक छोटा आईना अपने डब्बे में रखते हैं और सुबह स्नान करने के बाद जब वे राख लपेटते हैं, तो आईने में देखते हैं। आदमी अद्‌भुत् है। राख ही लपेटे है, तो आईने का क्या प्रयोजन रह गया ? लेकिन राख लपेटना भी सजावट है, शृंगार है।

शरीर को कुरूप करने वाला भी आईने में देखेगा कि हो गया, ठीक है कि नहीं ?

तपस्वी शरीर का दुश्मन नहीं हो जाता है। जैसे कि भोगी शरीर का लोलुप मित्र है, वैसे तपस्वी भोगी के विपरीत नहीं हो जाता। क्योंकि विपरीत से भी भोगी संयुक्त हो जाता है। शरीर को सुन्दर बनाने वाले के लिए ही आईने की जरूरत नहीं होती, शरीर को कुरूप बनाने वाले को भी आईने की जरूरत पड़ जाती है। शरीर को सुन्दर बनाने वाला ही दूसरे की दृष्टि पर निर्भर नहीं रहता कि कोई देखे, शरीर को कुरूप बनाने वाला भी दूसरे की दृष्टि पर निर्भर रहता है, कि कोई मुझे देखे। सुन्दर वस्त्र पहन कर रास्ते पर निकलने वाला ही देखने वाले की प्रतीक्षा नहीं करता, नग्न होकर निकलने वाला भी उतनी ही प्रतीक्षा करता है। विपरीत भी कहीं एक ही रोग की शाखाएँ हो सकती हैं, यह समझ लेना जरूरी है। यहाँ शरीर के भोग से शरीर के तप पर जाना आसान है। शरीर को सुख देने की आकांक्षा को, शरीर को दुःख देने की आकांक्षा में बदल देना बड़ा सुगम और सरल है।

(५) कलम तोड़ दी तो कलम का क्या गया ?

एक और बात ध्यान में ले लेनी जरूरी है कि जिस माध्यम से हम सुख चाहते हैं, अगर वह माध्यम हमें सुख नहीं दे पाया तो हम उसके दुश्मन हो जाते हैं। अगर आप कलम से लिख रहे हैं, (सभी को अनुभव होगा जो लिखते-पढ़ते हैं) और अगर कलम ठीक न चले तो आप कलम को गाली देकर जमीन पर पटक कर तोड़ भी सकते हैं। अब कलम को गाली देना एकदम नासमझी है। इससे ज्यादा नासमझी और क्या होगी ? फिर कलम को तोड़ देने से कलम का तो कुछ भी नहीं टूटता, आपका ही टूटता है। कलम का कोई नुकसान नहीं होता, आपका ही नुकसान होता है। लेकिन जूतों को गाली देकर पटक देने वाले लोग, दरवाजों को गाली देकर खोल देने वाले लोग, ये ही लोग तपस्वी बन जाते हैं। शरीर सुख नहीं दे पाया, यह अनुभव शरीर को तोड़ने की दिशा में ले जाता है—चलो, शरीर को सताओ। लेकिन शरीर को सताने के पीछे वही फ्रस्ट्रेशन, वही विषाद काम कर रहा है। शरीर से सुख चाहा था, वह नहीं मिला। तो जिस माध्यम से सुख चाहा था, उसको तकलीफ देकर बतायेंगे। यानी आप बदले नहीं, अभी भी आपकी दृष्टि शरीर पर लगी है, चाहे सुख चाहा हो और चाहे अब दुःख देना चाहते हों, आपके चित्त की जो

दिशा है वह अभी भी शरीर के ही आसपास वर्तुल बनाकर घूमती है। आपकी चेतना अभी भी शरीर-केंद्रित है, अभी भी शरीर भूलता नहीं। अभी भी शरीर अपनी जगह खड़ा है और आप वही के वही हैं। आपके और शरीर के बीच का संबंध वही का वही है। ध्यान रखें, भोगी और तथाकथित तपस्वी के बीच शरीर के संबंध में कोई अन्तर नहीं पड़ता। शरीर के साथ संबंध वही रहता है।

(६) क्या कहा, शरीर ले लिया जाये!

अगर हम भोगी से कहें कि तुम्हारा शरीर छीन लिया जाये तो तुम्हें कठिनाई होगी? तो भोगी कहेगा कि यह कठिनाई हमें बर्दाश्त नहीं, क्योंकि शरीर ही तो मेरे भोग का माध्यम है। अगर हम तपस्वी से कहें कि तुम्हारा शरीर छीन लिया जाये तो तुम्हें कोई कठिनाई होगी? वह भी कहेगा कि मैं मुश्किल में पड़ जाऊँगा। क्योंकि मेरी तपश्चर्या का साधन शरीर ही है। कर तो मैं शरीर के साथ ही कुछ रहा हूँ। अगर शरीर ही नहीं रहा, तो तप कैसे होगा? अगर शरीर ही नहीं रहा, तो भोग कैसे होगा? इसलिए मैं कहता हूँ कि दोनों की दृष्टि शरीर पर है और दोनों शरीर के माध्यम से जी रहे हैं। जो तप शरीर के माध्यम से जी रहा है वह भोग का ही विकृत रूप है। जो तप शरीर केन्द्रित है, वह भोग का ही दूसरा नाम है। वह विषाद को उपलब्ध हो गया है। यह भोग की शरीर के साथ बदला लेने की आकांक्षा है। इसे हम ठीक से समझें तो फिर हम तप की दिशा में आँखें उठा सकेंगे। यह इन कारणों से तप जो है, आत्म-हिंसा बन गया है। अपने को जो जितना सता सकता है, वह उतना बड़ा तपस्वी बन सकता है। लेकिन सताने का कोई सम्बन्ध, टार्चर, पीड़न, आत्मपीड़न, का संबन्ध तप से नहीं है। ध्यान रखें, जो अपने को सता सकता है, वह दूसरे को सताने से बच नहीं सकता। क्योंकि जो अपने को तप में सता सकता है, वह किसी को भी सता सकता है। हाँ, उसके सताने के ढंग बदल जायेंगे। निश्चित ही भोगी का सताने का ढंग सीधा होता है। त्यागी के सताने का ढंग परोक्ष हो जाता है, इनडाइरेक्ट हो जाता है। अगर भोगी आपको सताना चाहता है, तो बहुत पीछे से हमला बोलता है। लेकिन आपके ख्याल में नहीं आता है कि वह हमला बोलता है। अगर आप त्यागी के पास जायें, तथाकथित त्यागी के पास, जो सोकाल्ड तपश्चर्या करने वाला है, उसके पास आप जायें, और अगर आपने अच्छे कपड़े पहन रखे हैं और आपका त्यागी

भभूत लगाये बैठा है तो वह आपके कपड़ों को ऐसे देखेगा जैसे दुश्मन को देखता हो। उसकी आँख में निन्दा होगी। आप कीड़े-मकोड़े मालूम पड़ेंगे। उसकी आँखों में इशारा होगा, तीर बना होगा नर्क की तरफ को कि गये नर्क में। वह आपको कहेगा कि अभी तक सँभले नहीं, अभी तक इन कपड़ों से उलझे हो? नर्क में भटकोगे।

(७) खड़खड़ाने के लिए नकली दांतों की व्यवस्था

मैंने सुना है कि एक पादरी एक चर्च में लोगों को समझा रहा था, डरा रहा था नर्क के बाबत—कि कैसी-कैसी मुसीबतें होंगी, जब कयामत का दिन आयेगा, इतनी भयंकर सर्दी पड़ेगी पापियों के ऊपर कि दाँत खड़खड़ायेंगे। मुल्ला नसरुद्दीन भी उस सभा में था। वह खड़ा हो गया। उसने कहा, लेकिन मेरे दाँत टूट गये हैं।

उस फकीर ने कहा, घबराओ मत। फाल्स टीथ विल बी प्रोवाइडेड। नकली दाँत दे दिये जायेंगे, जो खड़खड़ायेंगे।

साधु, तथाकथित तपस्वी आपको नर्क भेजने की योजना में लगे हैं। उनका चित्त आपके नर्क के सारे इन्तजाम कर रहा है। सच तो यह है कि नर्क में जो कष्ट देने का इन्तजाम है, वह तथाकथित झूठे तपस्वी की कल्पना है, फैंटेसी है। वह तथाकथित तपस्वी यह सोच नहीं सकता कि आपको भी सुख मिल सकता है। आप यहाँ काफी सुख ले रहे हैं। वह जानता है कि यह सुख है और वह यहाँ काफी दुःख ले रहा है। तो कहीं तो बैलेन्स करना पड़ेगा, कहीं तो सन्तुलन करना पड़ेगा। उसने यहाँ काफी दुःख झेल लिया है। वह स्वर्ग में सुख झेलेगा। आप यहाँ सुख भोग रहे हैं, आप नर्क में सड़ेंगे और दुःख भोगेंगे।

और बड़े मजे की बात है कि उसके स्वर्ग का सुख आपके ही सुखों का मैगनीफाइड रूप है, आप जो सुख यहाँ माँग रहे हैं, वही सुख और विस्तीर्ण रूप में वह स्वर्ग में भोगेगा, और यह मजे की बात है कि तपस्वी अपने आस-पास आग डाल कर बैठते हैं। बदले में वे आपको नर्क में आग में सड़ायेंगे। तो जो तपस्वी अपने आसपास आग जलाये हैं, उनसे सावधान रहना, उनके नर्क में आग

आपके लिए तैयार रहेगी, भयंकर आग होगी, जिससे आप बच नहीं सकेंगे; आप कड़ाही में डाले जायेंगे, उबाले जायेंगे और मर भी न सकेंगे। क्योंकि मर गये तो मजा ही खत्म हो गया। और मारे गये और मर गये, तो दुःख कौन झेलेगा? इसलिए नर्क में मरने का उपाय नहीं है। ध्यान रखना, नर्क में तपस्वियों ने आत्महत्या की सुविधा नहीं दी है। आप मर नहीं सकते नर्क में। और आप कुछ भी करें, कुछ भी; लेकिन एक काम नर्क में नहीं हो सकता—आप मर नहीं सकते। क्योंकि अगर आप मर सकते हैं, तो दुःख के बाहर हो सकते हैं। इसलिए यह सुविधा नहीं दी है।

किसकी कल्पना से निकलती है यह सारी विचारधारा? कौन सोचता है ये सारी बातें? सच में जो तपस्वी है, वह तो सोच भी नहीं सकता किसी के लिए दुःख की कोई भी बात। नहीं सोच सकता कि किसी को कोई दुःख है कहीं भी—नर्क में भी। लेकिन जो तथाकथित तपस्वी है, वह इसमें बहुत रस लेता है। अगर आप शास्त्रों को पढ़ें, सारी दुनिया के धर्मों के शास्त्रों को, तो एक बहुत अद्भुत घटना आपको दिखायी पड़ेगी। तपस्वियों ने जो-जो लिखा है—तथाकथित तपस्वियों ने, उसमें वे नर्कों की जो-जो विवेचना और चित्रण करते हैं, वह बहुत परवर्टेड इमैजिनेशन मालूम पड़ती है, बहुत विकृत हो गयी कल्पना मालूम पड़ती है। ऐसा वे सोच पाते हैं, ऐसी वे कल्पना कर पाते हैं—यह उनके बाबत बड़ी खबर लाती है।

दूसरी एक बात दिखायी पड़ेगी कि आप जो-जो भोगते हैं, तपस्वी उनकी बड़ी निन्दा करते हैं। उस निन्दा में बड़ा रस लेते है। यह बहुत मजे की बात है कि वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में स्त्री के अंगों का ऐसा सुन्दर, रसपूर्ण चित्रण नहीं किया है, जितना तपस्वियों ने स्त्री के अंगों की निन्दा करने के लिए अपने शास्त्रों में किया है। वात्स्यायन के पास इतना रस हो भी नहीं सकता था। क्योंकि उतना रस पैदा करने के लिए विपरीत जाना जरूरी है। इसीलिए यह मजे की बात दिखायी पड़ती है कि भोगियों के आसपास कोई नग्न अप्सराएँ आकर नहीं नाचतीं। वे सिर्फ तपस्वियों के आसपास आकर नाचती हैं। तपस्वी सोचते हैं कि वह उनका तप भ्रष्ट करने के लिए आ रही हैं। लेकिन जिसको भी मनोविज्ञान का थोड़ा सा बोध है, वह जानता है कि कहीं इस जगत् में अप्सराओं का कोई इन्तजाम नहीं है

भभूत लगाये बैठा है तो वह आपके कपड़ों को ऐसे देखेगा जैसे दुश्मन को देखता हो। उसकी आँख में निन्दा होगी। आप कीड़े-मकोड़े मालूम पड़ेंगे। उसकी आँखों में इशारा होगा, तीर बना होगा नर्क की तरफ को कि गये नर्क में। वह आपको कहेगा कि अभी तक संभले नहीं, अभी तक इन कपड़ों से उलझे हो ? नर्क में भटकोगे।

(७) खड़खड़ाने के लिए नकली दांतों की व्यवस्था

मैंने सुना है कि एक पादरी एक चर्च में लोगों को समझा रहा था, डरा रहा था नर्क के बाबत—कि कैसी-कैसी मुसीबतें होंगी, जब कयामत का दिन आयेगा, इतनी भयंकर सर्दी पड़ेगी पापियों के ऊपर कि दाँत खड़खड़ायेंगे। मुल्ला नसरुद्दीन भी उस सभा में था। वह खड़ा हो गया। उसने कहा, लेकिन मेरे दाँत टूट गये हैं।

उस फकीर ने कहा, घबराओ मत। फाल्स टीथ विल बी प्रोवाइडेड। नकली दाँत दे दिये जायेंगे, जो खड़खड़ायेंगे।

साधु, तथाकथित तपस्वी आपको नर्क भेजने की योजना में लगे हैं। उनका चित्त आपके नर्क के सारे इन्तजाम कर रहा है। सच तो यह है कि नर्क में जो कष्ट देने का इन्तजाम है, वह तथाकथित झूठे तपस्वी की कल्पना है, फैंटेसी है। वह तथाकथित तपस्वी यह सोच नहीं सकता कि आपको भी सुख मिल सकता है। आप यहाँ काफी सुख ले रहे हैं। वह जानता है कि यह सुख है और वह यहाँ काफी दुःख ले रहा है। तो कहीं तो बैलेन्स करना पड़ेगा, कहीं तो सन्तुलन करना पड़ेगा। उसने यहाँ काफी दुःख झेल लिया है। वह स्वर्ग में सुख झेलेगा। आप यहाँ सुख भोग रहे हैं, आप नर्क में सड़ेंगे और दुःख भोगेंगे।

और बड़े मजे की बात है कि उसके स्वर्ग का सुख आपके ही सुखों का मैगनीफाइड रूप है, आप जो सुख यहाँ माँग रहे हैं, वही सुख और विस्तीर्ण रूप में वह स्वर्ग में भोगेगा, और यह मजे की बात है कि तपस्वी अपने आस-पास आग डाल कर बैठते हैं। बदले में वे आपको नर्क में आग में सड़ायेंगे। तो जो तपस्वी अपने आसपास आग जलाये हैं, उनसे सावधान रहना, उनके नर्क में आग

आपके लिए तैयार रहेगी, भयंकर आग होगी, जिससे आप बच नहीं सकेंगे; आप कड़ाही में डाले जायेंगे, उबाले जायेंगे और मर भी न सकेंगे। क्योंकि मर गये तो मजा ही खत्म हो गया। और मारे गये और मर गये, तो दुःख कौन झेलेगा? इसलिए नर्क में मरने का उपाय नहीं है। ध्यान रखना, नर्क में तपस्वियों ने आत्महत्या की सुविधा नहीं दी है। आप मर नहीं सकते नर्क में। और आप कुछ भी करें, कुछ भी; लेकिन एक काम नर्क में नहीं हो सकता—आप मर नहीं सकते। क्योंकि अगर आप मर सकते हैं, तो दुःख के बाहर हो सकते हैं। इसलिए यह सुविधा नहीं दी है।

किसकी कल्पना से निकलती है यह सारी विचारधारा? कौन सोचता है ये सारी बातें? सच में जो तपस्वी है, वह तो सोच भी नहीं सकता किसी के लिए दुःख की कोई भी बात। नहीं सोच सकता कि किसी को कोई दुःख है कहीं भी—नर्क में भी। लेकिन जो तथाकथित तपस्वी है, वह इसमें बहुत रस लेता है। अगर आप शास्त्रों को पढ़ें, सारी दुनिया के धर्मों के शास्त्रों को, तो एक बहुत अद्भुत घटना आपको दिखायी पड़ेगी। तपस्वियों ने जो-जो लिखा है—तथाकथित तपस्वियों ने, उसमें वे नर्कों की जो-जो विवेचना और चित्रण करते हैं, वह बहुत परवटड इमैजिनेशन मालूम पड़ती है, बहुत विकृत हो गयी कल्पना मालूम पड़ती है। ऐसा वे सोच पाते हैं, ऐसी वे कल्पना कर पाते हैं—यह उनके बाबत बड़ी खबर लाती है।

दूसरी एक बात दिखायी पड़ेगी कि आप जो-जो भोगते हैं, तपस्वी उनकी बड़ी निन्दा करते हैं। उस निन्दा में बड़ा रस लेते है। यह बहुत मजे की बात है कि वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में स्त्री के अंगों का ऐसा सुन्दर, रसपूर्ण चित्रण नहीं किया है, जितना तपस्वियों ने स्त्री के अंगों की निन्दा करने के लिए अपने शास्त्रों में किया है। वात्स्यायन के पास इतना रस हो भी नहीं सकता था। क्योंकि उतना रस पैदा करने के लिए विपरीत जाना जरूरी है। इसीलिए यह मजे की बात दिखायी पड़ती है कि भोगियों के आसपास कोई नग्न अप्सराएँ आकर नहीं नाचतीं। वे सिर्फ तपस्वियों के आसपास आकर नाचती हैं। तपस्वी सोचते हैं कि वह उनका तप भ्रष्ट करने के लिए आ रही हैं। लेकिन जिसको भी मनोविज्ञान का थोड़ा सा बोध है, वह जानता है कि कहीं इस जगत् में अप्सराओं का कोई इन्तजाम नहीं है

तपस्वियों को भ्रष्ट करने के लिए। अस्तित्व तपस्वियों को भ्रष्ट क्यों करना चाहेगा ? कोई कारण ही नहीं है। अगर परमात्मा है, तो परमात्मा भी तपस्वियों को भ्रष्ट करने में क्यों रस लेगा ? और ये अप्सराएँ शाश्वत रूप से एक ही धन्धा करेंगी—तपस्वियों को भ्रष्ट करने का ? इनके लिए और कोई काम ही नहीं ? इनके जीवन का अपना कोई रस नहीं हैं ?

(८) स्वर्ग से उतरती हुई वे अप्सराएँ

नहीं, मनस्विद् कहते हैं कि तपस्वी इतना लड़ता है जिसके रस से, वही रस प्रगाढ़ होना शुरू हो जाता है। अगर तपस्वी काम से लड़ता है, तो आसपास काम वासना रूप लेकर खड़ी हो जाती है, वह उसे घेर लेती है। वह जिससे लड़ रहा है, उसी को प्रोजेक्ट, उसी का प्रक्षेप कर लेता है। वे अप्सराएँ किसी स्वर्ग से नहीं उतरतीं, वे तपस्वी के संघर्षरत मन से उतरती हैं। वे अप्सराएँ उसके मन में जो छिपा है, उसे बाहर प्रकट करती हैं। वह जो चाहता है और जिससे बच रहा है, वे अप्सराएँ उसका ही साकार रूप हैं। वह जो माँगता भी है और जिससे लड़ता भी है, वह जिससे बोलता भी है और जिसे हटाता भी है, वे अप्सराएँ केवल उसका, उसी विपरीत चित्त की तृप्ति हैं। वे उसे भ्रष्ट करने कहीं और से नहीं आती हैं, उसके ही दमित चित्त से पैदा होती हैं।

तप विकृत हो तो दमन होता है। और दमन आदमी को रुग्ण करता है, स्वस्थ नहीं। इसलिए मैं कहता हूँ, महावीर के तप में दमन का कोई भी कारण नहीं। और अगर महावीर ने कहीं दमन जैसे शब्दों का प्रयोग भी किया है, तो मैं आपको बता दूं कि २५०० साल पहले दमन का अर्थ दूसरा था। वह अब नहीं है। दमन का अर्थ था शान्त हो जाना। दमन का अर्थ दबा देना नहीं था महावीर के वक्त में। दमन का अर्थ था शान्त हो जाना। शान्त कर देना भी नहीं, शान्त हो जाना, भाषा रोज बदलती रहती है। शब्दों के अर्थ रोज बदलते रहते हैं। अगर कहीं महावीर की वाणी में दमन शब्द मिल भी जाये, तो आप ध्यान रखना, उसका अर्थ सप्रेशन नहीं है, उसका अर्थ दबाना नहीं है। उसका अर्थ शान्त हो जाना है।

जिस चीज से आपको दुःख उपलब्ध हुआ है उसके विपरीत चले जाने से दमन पैदा होता है। काम वासना ने मुझे दुःख दिया, तो मैं काम वासना

के विपरीत जाऊँ और लड़ने लगूं कामवासना से, तो दमन होगा। जब तक विपरीत उठता है तब तक शान्ति नहीं हुई। विपरीत उठता ही इसीलिए है।

एक मित्र की पत्नी मुझसे कहती थी कि मेरा पति से कोई प्रेम नहीं रह गया है, लेकिन कलह जारी है।

मैंने कहा, अगर प्रेम बिल्कुल नहीं रह गया हो, तो कलह जारी नहीं रह सकती। कलह के लिए भी प्रेम चाहिए। देखना, थोड़ा बहुत जरूर होगा और कलह अगर बहुत चल रही है तब तो बहुत ज्यादा होगा।

उसने कहा, आप कैसी उलटी बातें करते हैं? मैं डायवोर्स के लिए सोचती हूँ कि तलाक दे दूं।

मैंने कहा, हम तलाक उसी को देने के लिए सोचते हैं जिससे हमारा कुछ बन्धन होता है। जिससे बन्धन ही नहीं होता उसको तलाक क्या देंगे। बात ही खत्म हो जाती है। तलाक हो जाता है। यह एक वर्ष पहले की बात है।

फिर अभी एक दिन मैंने उससे पूछा कि क्या खबर है? उसने कहा, आप शायद ठीक कहते थे। अब तो कलह भी नहीं होती। तलाक के बाबत ख्याल तो दूर की बात है। उससे क्या लेना-क्या देना, बात ही शान्त हो गयी है। सम्बन्ध ही नहीं रह जाये तो क्या तोड़िएगा। अगर आप किसी वासना से लड़ रहे हैं तो आपका उस वासना में रस अभी कायम है। जिन्दगी ऐसी उलझी हुई है।

लेकिन फ्रायड ने तो जीवन भर के, पचास साल के अनुभव के बाद कहा है (और शायद यह आदमी अकेला था पृथ्वी पर जो मनुष्यों के सम्बंध से इस भाँति गहरा उतरा) कि जहाँ तक प्रेम हो, वहीं तक कलह जारी रहेगी। अगर कलह से मुक्त होना है तो प्रेम से मुक्त होना पड़ेगा। अगर पति पत्नी में प्रेम है, तो प्रेम का तो हमें पता नहीं चलता, क्योंकि प्रेम उनका एकान्त में प्रकट होता होगा, लेकिन कलह का हमें पता चलता है, क्योंकि कलह तो प्रकट में भी प्रकट हो जाती है। अब कलह के लिए तो एकान्त नहीं खोजा जा सकता। कलह ऐसी चीज भी नहीं है कि उसके लिए कोई एकान्त का कष्ट उठाये। पर फ्रायड कहता है अगर प्रकट में कलह जारी है, तो हम मान सकते है कि अप्रकट में प्रेम जारी होगा। दिन में जो पति-पत्नी लड़ रहे हैं, रात वे प्रेम में पड़ेंगे। पूर्ति करनी पड़ती है, बैलेन्स करना पड़ता है, संतुलन करना पड़ता है।

तपस्वियों को भ्रष्ट करने के लिए। अस्तित्व तपस्वियों को भ्रष्ट क्यों करना चाहेगा ? कोई कारण ही नहीं है। अगर परमात्मा है, तो परमात्मा भी तपस्वियों को भ्रष्ट करने में क्यों रस लेगा ? और ये अप्सराएँ शाश्वत रूप से एक ही धन्धा करेंगी—तपस्वियों को भ्रष्ट करने का ? इनके लिए और कोई काम ही नहीं ? इनके जीवन का अपना कोई रस नहीं हैं ?

(८) स्वर्ग से उतरती हुई वे अप्सराएँ

नहीं, मनस्विद् कहते हैं कि तपस्वी इतना लड़ता है जिसके रस से, वही रस प्रगाढ़ होना शुरू हो जाता है। अगर तपस्वी काम से लड़ता है, तो आसपास काम वासना रूप लेकर खड़ी हो जाती है, वह उसे घेर लेती है। वह जिससे लड़ रहा है, उसी को प्रोजेक्ट, उसी का प्रक्षेप कर लेता है। वे अप्सराएँ किसी स्वर्ग से नहीं उतरतीं, वे तपस्वी के संघर्षरत मन से उतरती हैं। वे अप्सराएँ उसके मन में जो छिपा है, उसे बाहर प्रकट करती हैं। वह जो चाहता है और जिससे बच रहा है, वे अप्सराएँ उसका ही साकार रूप हैं। वह जो माँगता भी है और जिससे लड़ता भी है, वह जिससे बोलता भी है और जिसे हटाता भी है, वे अप्सराएँ केवल उसका, उसी विपरीत चित्त की तृप्ति हैं। वे उसे भ्रष्ट करने कहीं और से नहीं आती हैं, उसके ही दमित चित्त से पैदा होती हैं।

तप विकृत हो तो दमन होता है। और दमन आदमी को रुग्ण करता है, स्वस्थ नहीं। इसलिए मैं कहता हूँ, महावीर के तप में दमन का कोई भी कारण नहीं। और अगर महावीर ने कहीं दमन जैसे शब्दों का प्रयोग भी किया है, तो मैं आपको बता दूं कि २५०० साल पहले दमन का अर्थ दूसरा था। वह अब नहीं है। दमन का अर्थ था शान्त हो जाना। दमन का अर्थ दबा देना नहीं था महावीर के वक्त में। दमन का अर्थ था शान्त हो जाना। शान्त कर देना भी नहीं, शान्त हो जाना, भाषा रोज बदलती रहती है। शब्दों के अर्थ रोज बदलते रहते हैं। अगर कहीं महावीर की वाणी में दमन शब्द मिल भी जाये, तो आप ध्यान रखना, उसका अर्थ सप्रेशन नहीं है, उसका अर्थ दबाना नहीं है। उसका अर्थ शान्त हो जाना है।

जिस चीज से आपको दुःख उपलब्ध हुआ है उसके विपरीत चले जाने से दमन पैदा होता है। काम वासना ने मुझे दुःख दिया, तो मैं काम वासना

के विपरीत जाऊँ और लड़ने लगूँ कामवासना से, तो दमन होगा। जब तक विपरीत उठता है तब तक शान्ति नहीं हुई। विपरीत उठता ही इसीलिए है।

एक मित्र की पत्नी मुझसे कहती थी कि मेरा पति से कोई प्रेम नहीं रह गया है, लेकिन कलह जारी है।

मैंने कहा, अगर प्रेम बिल्कुल नहीं रह गया हो, तो कलह जारी नहीं रह सकती। कलह के लिए भी प्रेम चाहिए। देखना, थोड़ा बहुत जरूर होगा और कलह अगर बहुत चल रही है तब तो बहुत ज्यादा होगा।

उसने कहा, आप कैसी उल्टी बातें करते हैं? मैं डायवोर्स के लिए सोचती हूँ कि तलाक दे दूं।

मैंने कहा, हम तलाक उसी को देने के लिए सोचते हैं जिससे हमारा कुछ बन्धन होता है। जिससे बन्धन ही नहीं होता उसको तलाक क्या देंगे। बात ही खत्म हो जाती है। तलाक हो जाता है। यह एक वर्ष पहले की बात है।

फिर अभी एक दिन मैंने उससे पूछा कि क्या खबर है? उसने कहा, आप शायद ठीक कहते थे। अब तो कलह भी नहीं होती। तलाक के बाबत ख्याल तो दूर की बात है। उससे क्या लेना-क्या देना, बात ही शान्त हो गयी है। सम्बन्ध ही नहीं रह जाये तो क्या तोड़िएगा। अगर आप किसी वासना से लड़ रहे हैं तो आपका उस वासना में रस अभी कायम है। जिन्दगी ऐसी उलझी हुई है।

लेकिन फ्रायड ने तो जीवन भर के, पचास साल के अनुभव के बाद कहा है (और शायद यह आदमी अकेला था पृथ्वी पर जो मनुष्यों के सम्बंध से इस भाँति गहरा उतरा) कि जहाँ तक प्रेम हो, वहीं तक कलह जारी रहेगी। अगर कलह से मुक्त होना है तो प्रेम से मुक्त होना पड़ेगा। अगर पति पत्नी में प्रेम है, तो प्रेम का तो हमें पता नहीं चलता, क्योंकि प्रेम उनका एकान्त में प्रकट होता होगा, लेकिन कलह का हमें पता चलता है, क्योंकि कलह तो प्रकट में भी प्रकट हो जाती है। अब कलह के लिए तो एकान्त नहीं खोजा जा सकता। कलह ऐसी चीज भी नहीं है कि उसके लिए कोई एकान्त का कष्ट उठाये। पर फ्रायड कहता है अगर प्रकट में कलह जारी है, तो हम मान सकते है कि अप्रकट में प्रेम जारी होगा। दिन में जो पति-पत्नी लड़ रहे हैं, रात वे प्रेम में पड़ेंगे। पूर्ति करनी पड़ती है, बैलेन्स करना पड़ता है, संतुलन करना पड़ता है।

(९) सेक्स और युद्ध : एक रूप

जिस दिन लड़ाई होती है उस दिन घर में भेंट भी लायी जाती है। अगर पति लड़कर बाजार गया तो वह लौटकर कुछ पत्नी के लिए लेकर आयेगा। अगर पति घर की तरफ़ फूल लिए जाता हो, तो यह मत समझना कि पत्नी का जन्म-दिन है। समझना कि आज सुबह उपद्रव ज्यादा हुआ है। यह बैलेंसिंग है। वह उसका सन्तुलन करेगा। लेकिन फ्रायड तो कहता है कि मैं काम वासना को एक कलह मानता हूँ। इसलिए फ्रायड सेक्स और वार को जोड़ता है। वह कहता है युद्ध और काम एक ही चीज के रूप हैं। और जब तक मन में काम वासना है, तब तक यह युद्ध की वृत्ति समाप्त नहीं हो सकती। यह इनसाइट गहरी है, यह अन्तर्दृष्टि गहरी है। और इस अर्न्तदृष्टि को अगर हम समझें तो महावीर को समझना और भी आसान हो जायेगा।

महावीर कहते हैं कि अगर घृणा से मुक्त होना है तो राग से ही मुक्त हो जाना पड़गा। अगर शत्रु से बचना है, तो मित्र से भी बच जाना पड़ेगा। अगर अन्धेरे में जाने की आकांक्षा नहीं है तो प्रकाश से भी नमस्कार कर लेना पड़ेगा। यह उल्टा दिखाई पड़ता है लेकिन यह उल्टा नहीं है। क्योंकि जिसके मन में प्रकाश में जाने की आकांक्षा है, वह बार-बार अंधेरे में ही गिरता रहेगा। जीवन द्वन्द्व है और जीवन के सभी रूप अपने विपरीत से बंधे हुए हैं। अपने से उल्टे से बंधे हुए हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जो व्यक्ति जिस चीज से लड़ेगा, जिसके विपरीत चलेगा, उससे ही बंधा रहेगा। उससे वह कभी नहीं छूट सकता है। अगर आप धन से लड़ रहे हैं और धन के विपरीत जा रहे हैं, तो धन आप के चित्त को सदा घेरे रहेगा। अगर आप अहंकार से लड़ रहे हैं और अहंकार के विपरीत जा रहे हैं तो आपका अहंकार सूक्ष्म से सूक्ष्म होकर आप के भीतर सदा खड़ा रहेगा। लड़ना थोड़ा संभलकर, क्योंकि जिससे हम लड़ते हैं, उससे हम बंध जाते है। तप इन्हीं भूलों में पड़कर रुग्ण हो गया है। और जिन्हें हम तपस्वी की भांति जानते हैं उनमें से ९९ प्रतिशत मानसिक चिकित्सा के लिए उम्मीदवार हैं। उनकी मानसिक चिकित्सा जरूरी है। और ध्यान रहे कामवासना से छूटना आसान है क्योंकि काम वासना प्राकृतिक है। जो कामवासना के विरोध में

बँध गया, उससे छूटना मुश्किल पड़ेगा क्योंकि वह प्रकृति से और एक कदम दूर निकल जाना है।

(१०) प्रकृति : विकृति : संस्कृति

इसे हम तीन शब्दों में समझ लें—एक को मैं कहता हूं प्रकृति, जिसे हमने कुछ नहीं किया, जो हमें मिली है। अगर हम कुछ गलत करें तो जो हम कर लेंगे, उसका नाम है विकृति। और अगर हम कुछ करें और ठीक करें तो जो होगा उसका नाम है संस्कृति। प्रकृति पर हम खड़े होते हैं। जरा सी भूल हो और विकृति में चले जाते हैं। संस्कृति में जाना बड़ा कठिन है। क्योंकि संस्कृति में जाने के लिए विकृति से बचना पड़ेगा और प्रकृति के ऊपर उठना पड़ेगा। अगर किसी ने सिर्फ प्रकृति से लड़ने की कोशिश की तो विकृति में गिर जायेगा और विकृति संस्कृति से एकदम दूर है। प्रकृति उतनी दूर नहीं, प्रकृति मध्य में खड़ी है। विकृति हुई और आप हट गये, प्रकृति से भी दूर हट गये। इसलिए तो पशुओं में ऐसी विकृतियां नहीं दिखायी पड़ती हैं जैसी मनुष्यों में दिखायी पड़ती हैं। क्योंकि पशु प्रकृति से नहीं लड़ते। इसलिए विकृति नहीं दिखायी पड़ती।

अभी अभी न्यूयार्क के एक चौराहे पर और वाशिंगटन में तथा और-और जगहों पर होमोसेक्सुअल्स ने जुलूस निकाले और कहा कि यह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। और इस वर्ष कम से कम १०० होमोसेक्सुअल्स ने विवाह किये जो कि कल्पना के बाहर मालूम पड़ता है। एक पुरुष एक पुरुष के साथ विवाह कर रहा है या एक स्त्री एक स्त्री से विवाह कर रही है—समलिंगी विवाह! १०० विवाह की घटनाएँ दर्ज हुई हैं अमरीका में इस वर्ष। इन लोगों ने कहा है कि हम घोषणा करते हैं कि यह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है कि हम जिसको प्रेम करना चाहते हैं करें, कोई सरकार हमें रोकेगी नहीं। एक पुरुष दूसरे पुरुष को प्रेम करना चाहता है। उससे विवाह करना चाहता है, काम संबंध के अधिकार मांगता है। कम से कम १५० क्लब हैं पूरे अमरीका में और यूरोप में, स्वीडन में और स्विटजरलैंड में, और सब जगह वे क्लब फैलते चले गये हैं। कम से कम २०० पत्रिकाएँ आज जमीन पर निकलती हैं होमोसेक्सुअल्स की। पत्रिकाएँ जिनमें वे खबरें देते हैं और घोषणाएँ देते हैं।

आप हैरान होंगे सुनकर कि अभी उन्होंने एक प्रदर्शन किया है केलिफोर्निया में, जैसा कि ब्यूटी कंपटीशन का होता है, जिनमें महिलाओं को, सुन्दर महिलाओं को हम नग्न खड़ा करते हैं। होमोसेक्सुअल्स ने ५० नग्न युवकों को खड़ा करके प्रदर्शन किया कि हम इनमें ही सौन्दर्य देखते हैं, स्त्रियों में नहीं। कभी पशुओं तक के बारे में हम ऐसा सोच सकते हैं? पशु और होमोसेक्सुवल्स? नहीं! (हाँ, कभी-कभी ऐसा होता है कि अजायबघर या सर्कस के पशु होमोसेक्सुअल्स हो जाते हैं)।

(११) आखिर पशु आत्महत्या क्यों नहीं करते

डेसमंड मारेस ने एक किताब लिखी है—दि ह्यूमन जू। (आदमियों का अजायबघर) जिसमें उसने लिखा है कि जो अजायबघर में पशुओं के साथ होता है वह आदमी के साथ समाज में हो रहा है। यह अजायबघर है, यह कोई समाज नहीं है, जू है। क्योंकि कोई पशु पागल नहीं होता जंगल में। अजायबघर में पागल हो जाता है। कोई पशु जंगल में आत्महत्या करता नहीं देखा गया आज तक। लेकिन अजायबघर में कभी-कभी आत्महत्या कर लेता है। पशु विकृत नहीं होता, क्योंकि प्रकृति में ठहरा रहता है। आदमी दो कोशिशें कर सकता है। या तो प्रकृति से लड़ने की कोशिश करे तो आज नहीं कल विकृति में उतर जायेगा, और या फिर प्रकृति का अतिक्रमण करने की कोशिश करे तो वह संस्कृति में प्रवेश करेगा। अतिक्रमण तप है—विरोध नहीं, निरोध नहीं, संघर्ष नहीं—अतिक्रमण, ट्रांसेन्डेंस है। बुद्ध ने एक बहुत अच्छा शब्द प्रयोग किया है—वह शब्द है पारमिता। वे कहते हैं लड़ो मत। इस किनारे से उस किनारे चले जाओ, पार चले जाओ, पार ले जाओ। लड़ो मत। क्योंकि लड़ोगे तो भी इसी किनारे पर खड़े रहोगे। जिससे लड़ना हो उसके पास रहना पड़ेगा। जिससे लड़ना हो उससे दूर जाना खतरनाक है। दुश्मन आमने-सामने संगीनें लेकर खड़े रहते हैं। हिन्दुस्तान–पाकिस्तान की बाउंड्री पर देखें, वे खड़े हैं। हिन्दुस्तान–चीन की बाउंड्री पर देखें, वे संगीन लिये खड़े हैं। दुश्मन से दूर जाना खतरनाक है। दुश्मन के सामने ही संगीन लेकर खड़े रहना पड़ता है। अगर इस तट से लड़ोगे—बुद्ध ने कहा है, अगर भोग के तट से लड़ोगे, तो उस तट पर पहुँचोगे कब? लड़ो मत, उस तट पर पहुँच जाओ। यह तट छूट जायेगा, भूल जायेगा और विलीन हो जायेगा। तपश्चर्या अतिक्रमण है, ट्रांसेंडेंस है, द्वन्द्व नहीं है, संघर्ष नहीं है।

(१२) अंधेरे से लड़ने में अंधेरे के पास रहना होगा

इस अतिक्रमण के रूप में हम थोड़े गहरे जायेंगे तो बहुत सी बातें ख्याल में उतर सकेंगी। सबसे पहले ख्याल ले लें कि अतिक्रमण का क्या अर्थ होता है? आप एक घाटी में खड़े हैं, अंधेरा है बहुत। आप उस अंधेरे से लड़ते नहीं हैं। आप सिर्फ पहाड़ के शिखर पर चढ़ना शुरू कर देते हैं। थोड़ी देर में आप पाते हैं कि आप सूर्य से मंडित शिखर के निकट पहुंचने लगे हैं। वहां कोई अंधेरा नहीं है। घाटी में अंधेरा था, जहां आप खड़े ही नहीं रहे। आपने सूर्य मंडित शिखर की तरफ बढ़ना शुरू कर दिया। आपने धूप से नहाये हुए शिखर की तरफ बढ़ना शुरू कर दिया। आप प्रकाश में पहुंच गये। यह अतिक्रमण हुआ, संघर्ष जरा भी नहीं। जहां आप हैं वहां दो चीजें है। आप भी हैं और आपके आसपास घिरा हुआ घाटी का अंधेरा भी है। अगर घाटी के अंधेरे से आप लड़ते हैं, तो आपको घाटी में ही रहना पड़ेगा। अगर आप घाटी के अंधेरे से लड़ते नहीं हैं, अपने भीतर के स्वयं को ऊर्ध्वगमन पर ले चलते हैं तो घाटी के अंधेरे पर ध्यान देने की जरूरत नहीं है। जहां हम खड़े हैं वहां चारों तरफ वृत्तियां हैं भोग की। वे भी हैं और आप भी हैं। गलत त्यागी का ध्यान वृत्तियों पर होता है कि मैं इस वृत्ति को कैसे मिटाऊं। सही त्यागी का ध्यान स्वयं पर होता है कि मैं इस वृत्ति के ऊपर कैसे उठ जाऊं? इस फर्क को ठीक से समझ लेना। क्योंकि इन दोनों की यात्रा अलग होगी, दोनों का नियम अलग होगा, दोनों की साधना अलग होगी, दोनों की दिशा अलग होगी, दोनों का ध्यान अलग होगा। वृत्ति से जो लड़ रहा है, उसका ध्यान वृत्ति पर होगा। स्वयं को जो ऊंचा उठा रहा है, उसका ध्यान स्वयं पर होगा। जो वृत्ति से लड़ रहा है उसका ध्यान बहिर्मुखी होगा। जो स्वयं को ऊर्ध्वगमन की ओर ले जा रहा है उसका ध्यान अंतर्मुखी होगा। और एक मजे की बात है कि ध्यान भोजन है। जिस चीज पर आप ध्यान देते हैं, उसको आप शक्ति देते हैं।

(१३) विलहेम रेक का बाक्स

मैं पावलिटा की बात कर रहा था—वह चेक विचारक और वैज्ञानिक है। छोटे-छोटे यंत्र हैं उसके पास। वह कहता है, पांच मिनट आंख गड़ाकर ध्यान से इस यंत्र को देखते रहो और वह यंत्र आपकी शक्ति को संग्रहीत कर

आप हैरान होंगे सुनकर कि अभी उन्होंने एक प्रदर्शन किया है केलिफोर्निया में, जैसा कि ब्यूटी कंपटीशन का होता है, जिनमें महिलाओं को, सुन्दर महिलाओं को हम नग्न खड़ा करते हैं। होमोसेक्सुअल्स ने ५० नग्न युवकों को खड़ा करके प्रदर्शन किया कि हम इनमें ही सौन्दर्य देखते हैं, स्त्रियों में नहीं। कभी पशुओं तक के बारे में हम ऐसा सोच सकते हैं? पशु और होमोसेक्सुअल्स? नहीं! (हाँ, कभी-कभी ऐसा होता है कि अजायबघर या सर्कस के पशु होमोसेक्सुअल्स हो जाते हैं)।

(११) आखिर पशु आत्महत्या क्यों नहीं करते

डेसमंड मारेस ने एक किताब लिखी है—दि ह्यूमन जू। (आदमियों का अजायबघर) जिसमें उसने लिखा है कि जो अजायबघर में पशुओं के साथ होता है वह आदमी के साथ समाज में हो रहा है। यह अजायबघर है, यह कोई समाज नहीं है, जू है। क्योंकि कोई पशु पागल नहीं होता जंगल में। अजायबघर में पागल हो जाता है। कोई पशु जंगल में आत्महत्या करता नहीं देखा गया आज तक। लेकिन अजायबघर में कभी-कभी आत्महत्या कर लेता है। पशु विकृत नहीं होता, क्योंकि प्रकृति में ठहरा रहता है। आदमी दो कोशिशें कर सकता है। या तो प्रकृति से लड़ने की कोशिश करे तो आज नहीं कल विकृति में उतर जायेगा, और या फिर प्रकृति का अतिक्रमण करने की कोशिश करे तो वह संस्कृति में प्रवेश करेगा। अतिक्रमण तप है—विरोध नहीं, निरोध नहीं, संघर्ष नहीं—अतिक्रमण, ट्रांसेन्डेंस है। बुद्ध ने एक बहुत अच्छा शब्द प्रयोग किया है—वह शब्द है पारमिता। वे कहते हैं लड़ो मत। इस किनारे से उस किनारे चले जाओ, पार चले जाओ, पार ले जाओ। लड़ो मत। क्योंकि लड़ोगे तो भी इसी किनारे पर खड़े रहोगे। जिससे लड़ना हो उसके पास रहना पड़ेगा। जिससे लड़ना हो उससे दूर जाना खतरनाक है। दुश्मन आमने-सामने संगीनें लेकर खड़े रहते हैं। हिन्दुस्तान–पाकिस्तान की बाउंड्री पर देखें, वे खड़े हैं। हिन्दुस्तान–चीन की बाउंड्री पर देखें, वे संगीन लिये खड़े हैं। दुश्मन से दूर जाना खतरनाक है। दुश्मन के सामने ही संगीन लेकर खड़े रहना पड़ता है। अगर इस तट से लड़ोगे—बुद्ध ने कहा है, अगर भोग के तट से लड़ोगे, तो उस तट पर पहुँचोगे कब? लड़ो मत, उस तट पर पहुँच जाओ। यह तट छूट जायेगा, भूल जायेगा और विलीन हो जायेगा। तपश्चर्या अतिक्रमण है, ट्रांसेंडेंस है, द्वन्द्व नहीं है, संघर्ष नहीं है।

(१२) अंधेरे से लड़ने में अंधेरे के पास रहना होगा

इस अतिक्रमण के रूप में हम थोड़े गहरे जायेंगे तो बहुत सी बातें ख्याल में उतर सकेंगी। सबसे पहले ख्याल ले लें कि अतिक्रमण का क्या अर्थ होता है? आप एक घाटी में खड़े हैं, अंधेरा है बहुत। आप उस अंधेरे से लड़ते नहीं हैं। आप सिर्फ पहाड़ के शिखर पर चढ़ना शुरू कर देते हैं। थोड़ी देर में आप पाते हैं कि आप सूर्य से मंडित शिखर के निकट पहुंचने लगे हैं। वहां कोई अंधेरा नहीं है। घाटी में अंधेरा था, जहां आप खड़े ही नहीं रहे। आपने सूर्य मंडित शिखर की तरफ बढ़ना शुरू कर दिया। आपने धूप से नहाये हुए शिखर की तरफ बढ़ना शुरू कर दिया। आप प्रकाश में पहुँच गये। यह अतिक्रमण हुआ, संघर्ष जरा भी नहीं। जहां आप हैं वहां दो चीजें है। आप भी हैं और आपके आसपास घिरा हुआ घाटी का अंधेरा भी है। अगर घाटी के अंधेरे से आप लड़ते हैं, तो आपको घाटी में ही रहना पड़ेगा। अगर आप घाटी के अंधेरे से लड़ते नहीं हैं, अपने भीतर के स्वयं को ऊर्ध्वगमन पर ले चलते हैं तो घाटी के अंधेरे पर ध्यान देने की जरूरत नहीं है। जहां हम खड़े हैं वहां चारों तरफ वृत्तियां हैं भोग की। वे भी हैं और आप भी हैं। गलत त्यागी का ध्यान वृत्तियों पर होता है कि मैं इस वृत्ति को कैसे मिटाऊं। सही त्यागी का ध्यान स्वयं पर होता है कि मैं इस वृत्ति के ऊपर कैसे उठ जाऊँ? इस फर्क को ठीक से समझ लेना। क्योंकि इन दोनों की यात्रा अलग होगी, दोनों का नियम अलग होगा, दोनों की साधना अलग होगी, दोनों की दिशा अलग होगी, दोनों का ध्यान अलग होगा। वृत्ति से जो लड़ रहा है, उसका ध्यान वृत्ति पर होगा। स्वयं को जो ऊंचा उठा रहा है, उसका ध्यान स्वयं पर होगा। जो वृत्ति से लड़ रहा है उसका ध्यान बहिर्मुखी होगा। जो स्वयं को ऊर्ध्वगमन की ओर ले जा रहा है उसका ध्यान अंतर्मुखी होगा। और एक मजे की बात है कि ध्यान भोजन है। जिस चीज पर आप ध्यान देते हैं, उसको आप शक्ति देते हैं।

(१३) विलहेम रेक का बाक्स

मैं पावलिटा की बात कर रहा था—वह चेक विचारक और वैज्ञानिक है। छोटे-छोटे यंत्र हैं उसके पास। वह कहता है, पांच मिनट आंख गड़ाकर ध्यान से इस यंत्र को देखते रहो और वह यंत्र आपकी शक्ति को संग्रहीत कर

लेता है। अमरीका में एक बहुत अद्भुत आदमी था, जिसे दो साल की सजा अमरीकी सरकार ने दी। वह आदमी था विलहेम रेक---इस सदी में जिन लोगों के पास अंतर्दृष्टि रही, उनमें से एक। उसको दो साल सजा भुगतनी पड़ी। और आखिर में अमरीकी सरकार ने उसे पागल करार देकर कानूनन पागलखाने भेज दिया। उसपर मुकदमा चला। अजीब बात है कि अब उसके मर जाने के बाद वैज्ञानिक कह रहे हैं कि शायद वह ठीक था। उसने एक अद्भुत बाक्स, एक पेटी बनायी, जिसको वह आरगान बाक्स कहता था। वह कहता था, इसके भीतर कोई व्यक्ति लेट जाय और काम वासना का विचार करता रहे तो उसकी काम वासना की शक्ति इस डब्बे में संग्रहीत हो जाती है। लेकिन इसका कोई वैज्ञानिक प्रमाण क्या है कि उसमें संग्रहीत हो जाती है। वह कहता था प्रमाण एक ही हैं कि आप किसी को भी इसके भीतर लिटा दें, जिसको बिल्कुल पता नहीं है। वह एक मिनट के बाद काम वासना का विचार करना शुरू कर देगा। यही प्रमाण है इसका। लेकिन वैज्ञानिक कहते हैं कि हम इसको कोई प्रमाण नहीं मानते। वह आदमी भ्रम में हो सकता है या उस आदमी की आदत हो सकती है। लेकिन विलहेम रेक अनेक ऐसे लोगों को जिनको मानसिक रूप से ख्याल पैदा हो गया था कि वे इम्पोटेन्ट हैं, इन बाक्सों में लिटाकर ठीक कर देता था। क्योंकि वह कहता था आरगान में इनर्जी इकट्ठी है। यह जो आरगान है वह आपकी किसी भी शक्ति को आपके ध्यान से इकट्ठा कर लेता है।

आपको ख्याल में नहीं होगा कि जब आपकी तरफ लोग ध्यान देते हैं, तो आप स्वस्थ अनुभव करते हैं। जब आपकी तरफ लोग ध्यान नहीं देते हैं, तो आप अस्वस्थ अनुभव करते हैं। इसलिए एक बड़ी अद्भुत घटना घटती है कि जब आप चाहते हैं कि लोग ध्यान दें, आप बीमार पड़ जाते हैं। बच्चे तो इस ट्रिक को बहुत जल्दी समझ जाते हैं। आपकी १०० में से ९० बीमारी ध्यान की आकांक्षाओं से पैदा से होती हैं। क्योंकि बिना बीमार पड़े घर में आपकी ओर कोई ध्यान नहीं देता। पत्नी बीमार पड़ जाती है तो पति उसके सिर पर हाथ रख कर बैठा जाता है। बीमार नहीं पड़ती तो उसकी तरफ देखता भी नहीं। पत्नी इस रहस्य को जानबूझ कर नहीं, अचेतन में समझ जाती है कि जब उसे ध्यान चाहिए, तब उसे बीमार होना पड़ेगा। इसलिए कोई स्त्री उतनी बीमार नहीं होती, जितनी दिखायी पड़ती है या जितना दिखावा करती है। या जब उसका पति कमरे में होता है तो जितना वह कराहती और

आवाजें करती है, वे आवाजें उतनी नहीं होती, जितना कि पति कमरे में नहीं होता है तब वह करती है। तब तो वह नहीं भी करती है। इस पर थोड़ा ध्यान देने जैसा है कि कारण क्या होगा। इसे बच्चे बहुत जल्दी सीख जाते हैं। जब वे बीमार होते हैं तो सारे घर में अटेंशन उनके ऊपर हो जाता है। एक दफा यह बात समझ में आ गयी कि अटेंशन आकर्षित करने के लिए बीमार होना है, तो जिन्दगी भर के लिए यह बीमारी आधार बना लेती है। मनोवैज्ञानिक सलाह देते हैं, लेकिन वह सलाह उल्टी मालूम पड़ती है। वे कहते हैं, कि जब कोई बीमार हो तब जानबूझकर उस पर कम से कम ध्यान देना, अन्यथा उसे बीमार होने के लिए तुम कारण बनोगे। जब कोई बीमार हो तब तो ध्यान देना ही मत। सेवा कर देना, लेकिन ध्यान मत देना। बड़े तटस्थ भाव से सेवा कर देना। बीमारी को कोई रस देना खतरनाक है। ऐसा करोगे तो जिन्दगी में वह आदमी कम बीमार पड़ेगा, ज्यादा स्वस्थ रहेगा। उसके लिए ध्यान और बीमारी जुड़ेगी नहीं।

(१४) यह सब खेला ध्यान का

लेकिन ध्यान से शक्ति मिलती है। इसीलिए तो इतनी सारी दुनिया में ध्यान पाने की कोशिश चलती है। एक नेता को क्या रस आता होगा? जूते खाये, गाली खाये, उपद्रव सहे, इसमें क्या रस आता होगा? लेकिन जब वह भीड़ में खड़ा होता है तो सब आँखें उसकी तरफ फिर जाती हैं। पावलिटा कहता है कि वह सबकी शक्ति से भोजन पाता है। कोई आश्चर्य नहीं कि नेहरू कुछ दिन और जिन्दा रह जाते, अगर चीन का हमला नहीं होता। अचानक भोजन कम हो गया। ध्यान बिखर गया। कोई राजनीतिज्ञ पद पर रहते हुए मुश्किल से मरता है। इसीलिए कोई राजनैतिक नेता पद नहीं छोड़ना चाहता। नहीं तो मरना और पद छोड़ना करीब आ जाते है। मुश्किल से मरता है कोई राजनैतिक नेता पद पर। मरना ही पड़े आखिर में यह बात अलग है। अपनी पूरी कोशिश वह यह करता है कि जीते जी पद न छूट जाये। क्योंकि पद छूटते ही उम्र कम हो जाती है। लोग रिटायर होकर जल्दी मर जाते हैं। जो आदमी पुलिस का आफिसर था वह आदमी रिटायर हो गया तो उसकी कम से कम दस साल उम्र कम हो जाती है। बहुत देर नहीं लगेगी कि जब लोग रिटायर होने से इंकार करने लगेंगे, क्योंकि उन्हें पता चल जायेगा कि गड़बड़ क्या हो रहा है। जब तक आदमी रिटायर नहीं होता तब तक

स्वस्थ मालूम होता है। रिटायर होते ही बीमार पड़ जाता है। ध्यान का भोजन उसे मिल रहा था, दफ्तर में जाता था लोग खड़े हो जाते थे। सड़क पर निकलता था लोग नमस्कार करते थे। बच्चे भी डरते थे, क्योंकि बाप का कब्जा था पैसे पर। बैंक बैलेंस बाप के नाम था। पत्नी भी भयभीत होती थी। फिर अब रिटायर हो गया। हाथ से धीरे-धीरे सब सूत्र छूट गये। अब यह बैठा रहता है कोने में। लोग ऐसे निकल जाते हैं जैसे वह है ही नहीं, तो वह खांसता-खखारता है, आवाज देता है कि मैं भी यहां हूँ। वह हर चीज में अड़ंगेबाजी करता हैं (बूढ़ों की आदत अड़ंगेबाजी की और किसी कारण से नहीं होती)। क्योंकि अड़ंगा डालकर वह बता सकता हैं कि मैं हूँ। यह बहुत दीन अवस्था हैं, दयनीय और बहुत रुग्ण है। दुखद है, लेकिन हैं। वह घर में कोई ऐसी चीज चलने नहीं देगा, जिसमें वह सलाह नहीं दे। हालांकि, कोई उसकी सलाह नहीं मानता है—वह यह जानता है। इसे वह दिन भर कहता भी है कि कोई मेरी नहीं मानता। लेकिन फिर दिन भर देता क्यों है, अगर कोई उसकी सुनता नहीं ?

(१५) कौन कह सकता है कि ......

गांधीजी कहते थे कि वे १२५ वर्ष जियेंगे। और जी सकते थे। अगर भारत आजाद नहीं होता, तो वे १२५ वर्ष जी सकते थे। भारत का आजाद होना उनके मरने का हिस्सा बन गया। क्योंकि आजादी के बाद जो उनकी सुनते थे, उन्होंने सुनना बन्द कर दिया। क्योंकि वे खुद ही ताकतवर हो गये। वे खुद ही पदों पर पहुँच गये। तो गांधी ने कहा कि मैं खोटा सिक्का हो गया हूँ, मेरी अब कोई सुनता नहीं। वे कहते थे कि मेरी कोई सुनता नहीं, मैं एक खोटा सिक्का हो गया हूँ, मैं बोलता रहता हूँ, कोई मेरी फिक्र नहीं करता, कोई मेरी सलाह नहीं मानता (हालांकि वे सलाह दिये जाते थे)। मरने के पहले उन्होंने कहना शुरू कर कर दिया था कि अब मेरी १२५ वर्ष जीने की कोई आकांक्षा नहीं है। परमात्मा मुझे जल्दी उठा ले। क्यों ? क्योंकि वे खोटे सिक्के हो गये। क्योंकि कोई सुनता नहीं। क्योंकि कोई ध्यान नही देता। जो ध्यान देते थे, वे भी इसीलिए ध्यान देते थे कि बिना गांधी पर ध्यान दिये उन पर कोई ध्यान नहीं देता था। अब वे खुद ही ध्यान पाने के अधिकारी हो गये थे। सीधा लोगों को ध्यान दे रहे थे। अब वे गांधी पर काहे के लिए ध्यान देंगे ? कोने में पड़ गये थे गांधी, कोई नहीं कह सकता कि गोडसे की गोली

को सामने देखकर उनके मन में धन्यवाद नहीं उठा हो ! कोई नहीं कह सकता है कि उन्होंने न सोचा हो कि आ गया भगवान् का संदेशवाहक, झंझट मिटी बिदा होकर।

ध्यान भोजन है। बहुत 'सटल फूड' है, बहुत सूक्ष्म भोजन है। अकेले ध्यान पर भी जी सकते हैं आप। इसलिए जब कभी कोई प्रेम में पड़ता है तो भूख कम हो जाती है। आपको पता है—अगर कोई आपको बहुत प्रेम करता है तो भूख एकदम कम हो जाती है ? क्यों ? क्या हो जाता है ? ध्यान, और कुछ नहीं। प्रेम का मतलब ही है कि कोई आप पर ध्यान देता है। और आप को पता है मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब कोई आप पर ध्यान नहीं देता तो, आप ज्यादा भोजन करने लगते हैं ? और जब कोई ध्यान देता है तो आप कम भोजन करते हैं। क्योंकि ध्यान भी गहरे में कहीं भोजन का काम करता है, बहुत सूक्ष्म तल पर काम करता है। जिस चीज को हम ध्यान देते हैं उसको शक्ति देते हैं—यह मैं कह रहा हूं और अब इसको कहने के वैज्ञानिक आधार हैं। अब इसको नापने के भी उपाय हैं।

(१६) फेंके हुए विचार को पकड़ना

मैंने पीछे निकोलियेव और कामिनियेव का नाम लिया है, ये दोनों व्यक्ति टेलिपैथिक कम्युनिकेशन में इस समय पृथ्वी पर सबसे ज्यादा निष्णात लोग हैं। निकोलियेव विचार फेंकता है, ब्राडकास्ट करता है और हजारों मील दूर कामिनियेव उस विचार को पकड़ता है। वैज्ञानिकों ने यंत्र लगाये और बड़े चकित हुए कि जब निकोलियेव विचार फेंकता है तो उसकी शक्ति क्षीण होती है। उसके चारों तरफ के यंत्र बताते हैं कि उसकी शक्ति क्षीण हो रही है। और जब हजारों मील दूर कामिनियेव विचार को ग्रहण करता है तब यंत्र बताते हैं कि उसकी शक्ति बढ़ गयी। आश्चर्यजनक ! हजारों मील दूर, जब निकोलियेव विचार फेंकता है कामिनियेव की ओर, तो उससे पूछा जाता कि वह करता क्या है ? वह कहता, मैं आंख बंद करके ध्यान करता हूं कि कामिनियेव मेरे सामने उपस्थित है—वह दूर नहीं है, मेरे सामने उपस्थित है। मैं अपने सारे ध्यान को उस पर लगा देता हूं। सब भूल जाता हूं। सिर्फ कामिनियेव रह जाता है। और जब कामिनियेव प्रत्यक्ष दिखायी पड़ने लगता है कि वह सामने खड़ा है, तब मैं उससे बोलता हूं। यह ध्यान (अटेंशन) दे रहा है, उसकी ऊर्जा हजारों मील दूर बैठे हुए व्यक्ति को उपलब्ध हो जाती है।

स्वस्थ मालूम होता है। रिटायर होते ही बीमार पड़ जाता है। ध्यान का भोजन उसे मिल रहा था, दफ्तर में जाता था लोग खड़े हो जाते थे। सड़क पर निकलता था लोग नमस्कार करते थे। बच्चे भी डरते थे, क्योंकि बाप का कब्जा था पैसे पर। बैंक बैलेंस बाप के नाम था। पत्नी भी भयभीत होती थी। फिर अब रिटायर हो गया। हाथ से धीरे-धीरे सब सूत्र छूट गये। अब यह बैठा रहता है कोने में। लोग ऐसे निकल जाते हैं जैसे वह है ही नहीं, तो वह खांसता-खखारता है, आवाज देता है कि मैं भी यहां हूँ। वह हर चीज में अड़ंगेबाजी करता है (बूढ़ों की आदत अड़ंगेबाजी की और किसी कारण से नहीं होती)। क्योंकि अड़ंगा डालकर वह बता सकता है कि मैं हूँ। यह बहुत दीन अवस्था है, दयनीय और बहुत रुग्ण है। दुखद है, लेकिन है। वह घर में कोई ऐसी चीज चलने नहीं देगा, जिसमें वह सलाह नहीं दे। हालांकि, कोई उसकी सलाह नहीं मानता है—वह यह जानता है। इसे वह दिन भर कहता भी है कि कोई मेरी नहीं मानता। लेकिन फिर दिन भर देता क्यों है, अगर कोई उसकी सुनता नहीं ?

(१५) कौन कह सकता है कि ......

गांधीजी कहते थे कि वे १२५ वर्ष जियेंगे। और जी सकते थे। अगर भारत आजाद नहीं होता, तो वे १२५ वर्ष जी सकते थे। भारत का आजाद होना उनके मरने का हिस्सा बन गया। क्योंकि आजादी के बाद जो उनकी सुनते थे, उन्होंने सुनना बन्द कर दिया। क्योंकि वे खुद ही ताकतवर हो गये। वे खुद ही पदों पर पहुँच गये। तो गांधी ने कहा कि मैं खोटा सिक्का हो गया हूँ, मेरी अब कोई सुनता नहीं। वे कहते थे कि मेरी कोई सुनता नहीं, मैं एक खोटा सिक्का हो गया हूँ, मैं बोलता रहता हूँ, कोई मेरी फिक्र नहीं करता, कोई मेरी सलाह नहीं मानता (हालांकि वे सलाह दिये जाते थे)। मरने के पहले उन्होंने कहना शुरू कर कर दिया था कि अब मेरी १२५ वर्ष जीने की कोई आकांक्षा नहीं है। परमात्मा मुझे जल्दी उठा ले। क्यों ? क्योंकि वे खोटे सिक्के हो गये। क्योंकि कोई सुनता नहीं। क्योंकि कोई ध्यान नहीं देता। जो ध्यान देते थे, वे भी इसीलिए ध्यान देते थे कि बिना गांधी पर ध्यान दिये उन पर कोई ध्यान नहीं देता था। अब वे खुद ही ध्यान पाने के अधिकारी हो गये थे। सीधा लोगों को ध्यान दे रहे थे। अब वे गांधी पर काहे के लिए ध्यान देंगे ? कोने में पड़ गये थे गांधी, कोई नहीं कह सकता कि गोडसे की गोली

को सामने देखकर उनके मन में धन्यवाद नहीं उठा हो ! कोई नहीं कह सकता है कि उन्होंने न सोचा हो कि आ गया भगवान् का संदेशवाहक, झंझट मिटी विदा होकर।

ध्यान भोजन है। बहुत 'सटल फूड' है, बहुत सूक्ष्म भोजन है। अकेले ध्यान पर भी जी सकते हैं आप। इसलिए जब कभी कोई प्रेम में पड़ता है तो भूख कम हो जाती है। आपको पता है—अगर कोई आपको बहुत प्रेम करता है तो भूख एकदम कम हो जाती है ? क्यों ? क्या हो जाता है ? ध्यान, और कुछ नहीं। प्रेम का मतलब ही है कि कोई आप पर ध्यान देता है। और आप को पता है मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब कोई आप पर ध्यान नहीं देता तो, आप ज्यादा भोजन करने लगते हैं ? और जब कोई ध्यान देता है तो आप कम भोजन करते हैं। क्योंकि ध्यान भी गहरे में कहीं भोजन का काम करता है, बहुत सूक्ष्म तल पर काम करता है। जिस चीज को हम ध्यान देते हैं उसको शक्ति देते हैं—यह मैं कह रहा हूं और अब इसको कहने के वैज्ञानिक आधार हैं। अब इसको नापने के भी उपाय हैं।

(१६) फेंके हुए विचार को पकड़ना

मैंने पीछे निकोलियेव और कामिनियेव का नाम लिया है, ये दोनों व्यक्ति टेलिपैथिक कम्युनिकेशन में इस समय पृथ्वी पर सबसे ज्यादा निष्णात लोग हैं। निकोलियेव विचार फेंकता है, ब्राडकास्ट करता है और हजारों मील दूर कामिनियेव उस विचार को पकड़ता है। वैज्ञानिकों ने यंत्र लगाये और बड़े चकित हुए कि जब निकोलियेव विचार फेंकता है तो उसकी शक्ति क्षीण होती है। उसके चारों तरफ के यंत्र बताते हैं कि उसकी शक्ति क्षीण हो रही है। और जब हजारों मील दूर कामिनियेव विचार को ग्रहण करता है तब यंत्र बताते हैं कि उसकी शक्ति बढ़ गयी। आश्चर्यजनक ! हजारों मील दूर, जब निकोलियेव विचार फेंकता है कामिनियेव की ओर, तो उससे पूछा जाता कि वह करता क्या है ? वह कहता, मैं आंख बंद करके ध्यान करता हूं कि कामिनियेव मेरे सामने उपस्थित है—वह दूर नहीं है, मेरे सामने उपस्थित है। मैं अपने सारे ध्यान को उस पर लगा देता हूं। सब भूल जाता हूं। सिर्फ कामिनियेव रह जाता है। और जब कामिनियेव प्रत्यक्ष दिखायी पड़ने लगता है कि वह सामने खड़ा है, तब मैं उससे बोलता हूं। यह ध्यान (अटेंशन) दे रहा है, उसकी ऊर्जा हजारों मील दूर बैठे हुए व्यक्ति को उपलब्ध हो जाती है।

जिस चीज पर हम ध्यान देते हैं, वहीं शक्ति संग्रहीत होती है और जहां से हम ध्यान हटा देते हैं वहां से शक्ति हटती है और विसर्जित होती है। जिस वृत्ति पर आप ध्यान देते हैं, उस पर शक्ति संग्रहीत हो जाती है। जब आप काम वासना का विचार करते हैं तो आपकी काम वासना का जो केन्द्र है, वह आपके भीतर शक्ति इकट्ठा करने लग जाता है। आप ही शक्ति देते हैं ध्यान देकर। फिर वह केन्द्र शक्ति से भर जाता है और उस शक्ति से मुक्त होना चाहता है। क्योंकि बोझिल हो जाता है। यह चाल है आदमी के भीतर।

(१७) क्या आप काम-वासना से मुक्त होना चाहते हैं ?

लेकिन काम-वासना पर ध्यान दो तरह से दिया जा सकता है। एक कि आप काम-वासना में रस लें तो प्रकृतिस्थ, नेचरल काम वासना आपमें घनीभूत होगी, नैसर्गिक काम-वासना आप में शक्तिशाली हो जायेगी। दूसरा विकृत ध्यान भी दिया जा सकता है। जैसे कि एक आदमी काम-वासना पर ध्यान देता है कि मुझे काम-वासना से लड़ना है, मुझे काम-वासना को भीतर प्रवाहित नहीं होने देना है। वह भी ध्यान दे रहा है। उसका भी काम का सेंटर, सेक्स-सेंटर शक्ति को इकट्ठा कर लेता है। अब बड़ी मुश्किल होती है, क्योंकि जो नैसर्गिक काम वासना से ध्यान देता है उसकी तो नैसर्गिक रूप से शक्ति विसर्जित हो जायेगी। लेकिन जो विसर्जित नहीं करना चाहता है और ध्यान देता है, उसका क्या होगा ? उसकी शक्ति विकृत रूप लेना शुरू करेगी। वह विसर्जित नहीं हो सकती, वह शरीर के दूसरे अंगों में प्रवेश करेगी और उनको विकृत करने लगेगी। वह आदमी भीतर से उलझता जायेगा और जाल में फँसता जायेगा। अपनी ही दी गयी शक्ति से उलझता जायेगा। यह ऐसा हुआ कि हम वृक्ष को पानी दिये जाते हैं और प्रार्थना किये जाते हैं कि यह वृक्ष बड़ा न हो, प्रार्थना किये जाते हैं और पानी भी दिये जाते हैं। तो जिस वृत्ति को आप ध्यान देते हैं, चाहे पक्ष में चाहे विपक्ष में, आप उसको पानी और भोजन देते हैं। तप का मूल सूत्र यही है कि ध्यान कहीं और दो। जहां तुम शक्ति को इकट्ठा नहीं करना चाहते हो, वहां मत दो। ध्यान ही उठाओ ऊपर। अगर काम-वासना से मुक्त होना है तो काम-वासना पर ध्यान ही मत दो। पक्ष में भी नहीं, विपक्ष में भी नहीं। लेकिन आपको ध्यान देना ही पड़ेगा। क्योंकि ध्यान आपकी शक्ति है, वह काम मांगती है।

तप का मूल सूत्र यही है कि ध्यान के लिए नये केन्द्र निर्मित करो। नये केन्द्र आदमियों के भीतर हैं और उन केन्द्रों पर ध्यान को ले जाओ। जैसे ही ध्यान को नया केन्द्र मिल जाता है, वह नये केन्द्र में ही शक्ति को उड़ेलने लगता है और पुराने केन्द्रों को मुक्ति मिल जाती है। पहाड़ पर चढ़ाई शुरू हो जाती है। काम-वासना का हमारा केन्द्र सबसे नीचे है। वहीं से हम प्रकृति स जुड़े हैं। सहस्रार हमारा सबसे ऊँचा केन्द्र है। वहाँ से हम परमात्मा ऊर्जा से जुड़े हैं—दिव्यता से, भव्यता से, भगवत्ता से जुड़े हैं। आपने ख्याल किया है कि आपके मस्तिष्क में विचार चलता है काम-वासना का और आपका काम-केन्द्र तत्काल सक्रिय हो जाता है? यहाँ विचार चला, (विचार तो चलता है मस्तिष्क में) और काम-केन्द्र बहुत दूर है, वह तत्काल सक्रिय हो जाता है। ठीक यही बात है। तपस्वी जैसे ही सहस्रार की तरफ ध्यान देता है, वैसे ही सहस्रार सक्रिय होना शुरू हो जाता है। और जब शक्ति ऊपर की तरफ जाती है तो नीचे की तरफ नहीं जाती है। जब शक्ति को मार्ग मिलने लगता है शिखर पर चढ़ने का, तो घाटियाँ छोड़ने लगती हैं। जब शक्ति का प्रकाश के जगत् में प्रवेश होने लगता है तो वह अंधेरे के जगत् से चुपचाप उठने लगती है। अंधेरे की निन्दा भी नहीं होता उसके मन में, अंधेरे का विरोध भी नहीं होता उसके मन में, अंधेरे का ख्याल भी नही होता। अन्धेरे का ध्यान ही नहीं होता। ध्यान का रूपान्तरण है तप। अब इसको अगर इस तरह समझेंगे तो तप का मैं दूसरा अर्थ बता सकूंगा। तप का ऐसे अर्थ होता है अग्नि, भीतर की अग्नि। मनुष्य के भीतर जो जीवन की अग्नि है, उस अग्नि को ऊर्ध्वगमन की तरफ ले जाना तपस्वी का काम है। उसे नीचे की ओर ले जाना भोगी का काम है। भोगी का अर्थ है—जो अग्नि को नीचे की ओर प्रवाहित कर रहा है जीवन में, अधोगमन की ओर। तपस्वी का अर्थ है—जो ऊपर की ओर प्रवाहित कर रहा है उस अग्नि को, परमात्मा की ओर, सिद्धावस्था की ओर।

(१८) आपके शरीर में अग्नि का बहाव

यह अग्नि दोनों तरफ जा सकती है। और बड़े मजे की बात यह है कि ऊपर की तरफ आसानी से जाती है, नीचे की तरफ बड़ी कठिनाई से जाती है। क्योंकि अग्नि का स्वभाव ऊपर की तरफ जाना है। इसीलिए इसे तप नाम दिया है, इसे अग्नि नाम दिया है, इसे यज्ञ नाम दिया है, ताकि यह

ख्याल में रहे कि अग्नि का स्वभाव तो ऊपर की तरफ जाना है। नीचे की तरफ़ तो बड़ी चेष्टा करके ले जानी पड़ती है। पानी नीचे की तरफ बहता है। अगर उसे ऊपर की तरफ ले जाना हो, तो बड़ी चेष्टा करनी पड़ेगी। और आप चेष्टा छोड़ दें, तो पानी फिर नीचे की तरफ बहने लगेगा। आपने पंपिंग का इन्तजाम छोड़ दिया तो पानी फिर नीचे को बहने लगेगा। अगर ऊपर चढ़ाना है तो पम्प करो, ताकत लगाओ, मेहनत करो। नीचे बहने के लिए पानी किसी की मेहनत नहीं मांगता, खुद बहता है। वह उसका स्वभाव है। वैसे ही अग्नि को अगर नीचे की तरफ ले जाना हो तो इंतजाम करना पड़ेगा। अपने से अग्नि ऊपर की तरफ उठती है, ऊर्ध्वगामी है। इसको तप कहने का यही कारण है। क्योंकि भीतर की जो अग्नि है, जो जीवन-अग्नि है, वह स्वभाव से ऊर्ध्वगामी है। एक बार आपको उसके ऊर्ध्वगामी होने का अनुभव हो जाये, फिर आपको प्रयास नहीं करना पड़ता उसको ऊपर ले जाने के लिए। वह जाती रहती है। एक बार सहस्रार की तरफ तपस्वी का ध्यान मुड़ जाये, तो फिर उसे चेष्टा नहीं करनी पड़ती है। फिर वह अग्नि अपने आप बहती रहती है। धीरे-धीरे वह भूल ही जाती है कि क्या नीचे, क्या ऊपर। भूल ही जाती है, क्योंकि फिर अग्नि तो सहज ही ऊपर बहती रहती है। ऊपर की तरफ जाना उसका स्वभाव है। नीचे की तरफ ले जाने के लिए बड़ा आयोजन करना पड़ता है। लेकिन हम नीचे की तरफ ले जाने के इतने लंबे अभ्यस्त हैं कि जन्मों-जन्मों से हमारा अभ्यास है नीचे की तरफ ले जाने का। इसलिए नीचे की तरफ ले जाना, जो कि वस्तुतः कठिन होता है, हमें सरल मालूम पड़ता है। और ऊपर की तरफ ले जाना जो कि वस्तुतः सरल है, हमें कठिन मालूम पड़ता है। कठिनाई हमारी आदत में है। कभी-कभी हमारी आदत इतनी सख्त होकर बैठ जाती है कि स्वभाव को दबा देती है। हम सब के स्वभाव दबे हुए हैं आदतों से। जिसको महावीर कर्म का क्रम कहते हैं, वह हमारी आदतों का क्रम है। हमने आदतें बना रखी हैं। वे हमें दबाये हुए हैं। वे आदतें लम्बी हैं, पुरानी हैं, गहरी हैं। उनसे छूटने के लिए हम उनसे लड़ना शुरू करते हैं और उल्टी आदत बनाते हैं। लेकिन आदत फिर भी आदत ही रहती है।

(१९) आदत से सावधान !

गलत तपस्वी सिर्फ आदत बनाता है तप की। ठीक तपस्वी स्वभाव को खोजता है, आदत नहीं बनाता। हैबिट और नेचर का फर्क समझ लें हम सब आदत बनाते या बनवाते हैं। हम बच्चे को कहते हैं क्रोध मत करो, क्रोध की आदत बुरी है। क्रोध न करने की आदत बनाओ। वह क्रोध न करने की आदत तो बना लेता है, लेकिन उससे क्रोध नष्ट नहीं होता, क्रोध भीतर चलने लगता है। कामवासना पकड़ती है तो हम कहते हैं कि ब्रह्मचर्य की आदत बनाओ और वह आदत बन जाती है। लेकिन काम वासना भीतर सरकती रहती है। वह नीचे की तरफ बढ़ती रहती है। उस आदत से कोई फर्क नहीं पड़ता। तपस्वी खोजता है स्वभाव के सूत्र को, धर्म को। सब आदतों को हटाकर वह अपने स्वभाव का दर्शन करता है। लेकिन आदत के हटाने का एक ही उपाय है—ध्यान मत दो। आदत पर ध्यान ही मत दो।

एक मित्र चार-छह दिन पहले मेरे पास आये थे। उन्होंने कहा कि आप कहते हैं कि बम्बई में रहकर भी ध्यान हो सकता है, लेकिन सड़क का क्या करेंगे, भोंपू का क्या करेंगे ?

मैंने उनसे कहा—ध्यान मत दो।

उन्होंने कहा—कैसे ध्यान न दें। खोपड़ी पर भोंपू बज रहा है, नीचे कोई बजाये चले जा रहा है, तो ध्यान कैसे न दें।

मैंने उनसे कहा—एक प्रयास करें। भोंपू कोई नीचे बजा रहा है, उसे बजाने दो। तुम ऐसे बैठो रहो। कोई प्रतिक्रिया मत करो कि भोंपू अच्छा है कि बुरा है, कि बजाने वाला दुश्मन है कि मित्र है। कुछ प्रतिक्रिया मत करो कि सिर तोड़ दूंगा अगर आगे बजाया। बस बैठे रहो, सुनते रहो। सिर्फ सुनो। थोड़ी देर में तुम पाओगे कि भोंपू बजता भी रहे, तो भी तुम्हारे लिए बजना बन्द हो गया। दैट इज एक्सेप्टेड, स्वीकार कर लिया गया। जिस आदत को बदलना हो उसे स्वीकार कर लो, उससे लड़ो मत। जिसे हम स्वीकार कर लेते हैं, उस पर ध्यान देना बन्द हो जाता है। क्या यह आपको पता है कि किसी स्त्री के प्रेम में आप हों, तो उसमें ध्यान होता है ? फिर विवाह करके उसको पत्नी बना लिया, वह स्वीकृत हो गयी, तो फिर ध्यान बन्द हो जाता है। एक कार आपके पास नहीं है, तो वह सड़क पर निकलती

है चमकती हुई, और ध्यान खींचती है। जब वह आपको मिल गयी, आप उसमें बैठते हैं, और फिर थोड़े दिन में आपको ख्याल ही नहीं आता है कि वह कार भी है। चारों तरफ जो ध्यान खींचता था, वह स्वीकार हो गया। जो भी स्वीकृत हो जाती है उस पर ध्यान जाना बन्द हो जाता है। स्वीकार कर लो जो है, ध्यान जाना बन्द हो जायेगा। उसको ऊर्जा मिलनी बन्द हो जायेगी। वही धीरे-धीरे अपने आप क्षीण होकर सिकुड़ जायेगी, टूट जायेगी; और जो बचेगी ऊर्जा, उसका प्रवाह अपने आप भीतर की तरफ बहना शुरू हो जायेगा।

गलत तपस्वी उन्हीं चीजों पर ध्यान देता है, जिन पर भोगी देता है। ठीक तप की प्रतिक्रिया ध्यान का रूपांतरण है। सही तपस्वी उन चीजों पर ध्यान देता है, जिन पर न भोगी ध्यान देता है, न तथाकथित त्यागी ध्यान देता है। वह ध्यान को ही बदल देगा। ध्यान प्रतिपल बदल सकता है। अभी यहाँ बैठे हैं आप, मुझे सुन रहे हैं। अभी यहां आग लग जाये मकान में तो आप एकदम भूल जायेंगे कि आप सुन रहे हैं, कि कोई बोल रहा है। सब भूल जायेंगे। आपका ध्यान दौड़ जाएगा, आप बाहर निकल जायेंगे, भूल ही जायेंगे कि कुछ सुन रहे थे। सुनने का कोई सवाल ही नहीं रह जायेगा। तो ध्यान प्रतिपल बदल सकता है। सिर्फ नये बिन्दु उसको मिलने चाहिए। आग लग गयी, वह ज्यादा जरूरी हो गयी। तत्काल ध्यान वहीं दौड़ जायेगा। आपके भीतर तप की प्रक्रिया में उन नये बिन्दुओं और केन्द्रों की तलाश करनी है, जहाँ ध्यान दौड़ जाये, और जहाँ नये केन्द्र सशक्त होने लगें। इसलिए तपस्वी कमजोर नहीं होता, शक्तिशाली हो जाता है। गलत तपस्वी कमजोर होकर सोचता है कि हम जीत लेंगे, और भ्रान्ति पैदा होती है जीतने की।

(२०) भोजन : भ्रांति और शक्ति

अगर एक आदमी को तीस दिन भोजन नहीं दिया जाये, तो काम वासना क्षीण हो जाती है। इसलिए नहीं, कि काम-वासना चली गयी, बल्कि इसलिए कि काम-वासना के योग्य रस नहीं बनता शरीर में। फिर भोजन दिया जाये तो तीस दिन में जो बात नहीं गयी थी, वह तीन दिन में वापस लौट आयेगी। भोजन मिला और शरीर को रस मिला, फिर केन्द्र सक्रिय हो गया,

फिर ध्यान दौड़ने लगा। इसलिए जो भूखा रहा और काम-वासना पर तथाकथित विजय पायी, वह बेचारा फिर भूखा ही जीवन भर रहने की कोशिश में लगा रहता है, क्योंकि वह डरता है कि इधर भोजन लिया, उधर वासना उठी। मगर यह निपट पागलपन है। क्योंकि इससे वासना के बाहर तो हुए नहीं। यह सिर्फ कमजोरी की वजह से वासना से शक्ति नहीं मिल रही है।

असल में आदमी जितनी शक्ति पैदा करता है उसमें कुछ तो जरूरी होती है, जो उसके रोज के काम में समाप्त हो जाती है। एक खास मात्रा की कैलोरी उसके रोज के काम में, उठने में, बैठने में, नहाने में, खाने में, पचाने में, दूकान में आने-जाने में व्यय हो जाती है, सोने में व्यय हो जाती है। उसके अतिरिक्त जो बचती है, जो सुपरफ्लुअस है, वह उस केन्द्र को मिल जाती है, जिस पर आपका ध्यान है, अगर मान लें कि एक हजार कैलोरी आपके रोजाना के काम में खर्च होती है और आप के भोजन और आपकी व्यवस्था से दो हजार कैलोरी शक्ति आपके शरीर में पैदा होती है, तो आपका ध्यान जिस केन्द्र पर होगा वह एक हजार केलोरी जो शेष बची है, उस केन्द्र पर दौड़ जायेगी। उसको और कोई रास्ता नहीं है खर्च होने का। ध्यान ही रास्ता है, जिससे वह जायेगी। उसको कुछ पता नहीं है कि कहाँ जाना है। आपका ध्यान उसको खबर देता है कि यहाँ जाना है, वह वहीं चली जाती है। अब अगर आपको झूठे तप में उतरना हो, तो भोजन आप इतना कर लें कि हजार कैलोरी से ज्यादा आपके भीतर पैदा न हो। फिर आपको ब्रह्मचर्य सधा हुआ मालूम पड़ेगा, क्योंकि आपके पास अतिरिक्त शक्ति बचती ही नहीं है, जो कि सेक्स के केन्द्र को मिल जाये। हजार कैलोरी शक्ति पैदा होती है, हजार आप खर्च कर लेते हैं। इसलिए तपस्वी खाना कम कर देता है, पैदल चलने लगता है, श्रम ज्यादा करने लगता है और खाना कम करता चला जाता है। वह दोहरी प्रतिक्रिया करता है, ताकि शरीर में शक्ति कम पैदा हो और व्यय ज्यादा हो। वह मिनिमम पर जीने लगता है। न होगी अतिरिक्त शक्ति, न वासना बनेगी।

(२१) अतिरिक्त शक्ति के लिए नये केन्द्र की तलाश

मगर इससे वह वासना समाप्त नहीं हो जाती। वासना अपनी जगह खड़ी है। वासना का केन्द्र प्रतीक्षा करेगा। अनन्त जन्मों तक प्रतीक्षा करेगा, कहेगा कि जिस दिन शक्ति ज्यादा हो, मैं तैयार हूं। यह सिर्फ भय में जीना है। इस जीने से कहीं कुछ उपलब्ध नहीं होता। इससे प्रकृति तो चूक जाती है, संस्कृति नहीं मिलती। सिर्फ विकृति मिलती है और एक भयभीत चेतना रह जाती है। नहीं यह मार्ग ठीक मार्ग नहीं है। ठीक विधायक तप का मार्ग है शक्ति पैदा करो, ध्यान रूपान्तरित करो, ध्यान नये केन्द्रों पर ले जाओ ताकि शक्ति वहीं जाये। हम धीरे-धीरे जब और गहरे उतरेंगे ध्यान के परिवर्तन के लिए, तो यह प्रक्रिया ख्याल में आ सकेगी। लेकिन सबसे पहले तो यह ख्याल में ले लेना चाहिए कि मेरी अतिरिक्त शक्ति किस केन्द्र से व्यय हो रही है। उसके विपरीत जो केन्द्र हैं, उस केन्द्र पर ध्यान को लगाना पड़ेगा।

(२२) अपनी - अपनी कमजोरियां

एक छोटी सी घटना बताकर आज की यह बात मैं पूरी करूंगा। धर्म गुरुओं का एक सम्मेलन हुआ है। सभी बड़े धर्मगुरु उस देश के एक नगर में इकट्ठे हुए हैं। चार बड़े धर्म हैं उस देश में। चारों के चार बड़े धर्म-गुरु एक निजी-वार्ता में लीन हैं। सम्मेलन निपटने के करीब हो गया है। वे बैठ-कर बातें कर रहे हैं। ऊँची-ऊँची बातें हो चुकीं, नकली बातें हो चुकीं अब वे बैठ कर असली गप-सप कर रहे हैं। एक ७५ साल का बूढ़ा धर्म-गुरु कहता हैं कि हो गयी वे बातें, सुन गये लोग। लेकिन मैं तुम्हारे सामने क्या छिपाऊ? मैं तो आशा करता हूं तुम भी नहीं छिपाओगे। अच्छा होगा कि हम बतायें कि असली जिन्दगी हमारी क्या है? मैं तो एक ही चीज से परेशान रहता हूं। वह है धन। और दिन-रात धन के विपरीत बोलता हूं। धन प मेरी बड़ी पकड़ है। एक पैसा भी मेरा खो जाये, तो रात भर मुझे नींद नहीं आती या एक पैसा मिलने की भी आशा बँध जाये, तो भी रात भर एक्साइटमेंट में रहता हूं और नींद नहीं आती। सिर्फ धन ही मेरी कमजोरी है। बड़ी

मुश्किल है। इसके पार मैं नहीं हो पा रहा हूँ। आप में से कोई पार हो गया हो तो बतायें।

उन्होंने कहा कि पार तो हम भी नहीं हुए। हमारी अपनी मुसीबतें हैं।

दूसरे ने कहा—मेरी मुसीबत तो यह अहंकार है। इसके लिए जीता हूँ, इसी के लिए उठता हूँ, इसी के लिए बैठता हूँ, इसी के लिए अहंकार के खिलाफ भी बोलता हूँ, पर है यही। इससे मैं बाहर नहीं हो पाता।

तीसरे ने कहा—मेरी तो कमजोरी यह कामवासना है। ये स्त्रियाँ मेरी कमजोरी हैं। दिन-रात मैं समझाता हूँ, प्रवचन करता हूँ, ब्रह्मचर्य का व्याख्यान करता हूँ चर्च में। लेकिन, उस दिन बोलने में मजा ही नहीं आता, जिस दिन स्त्रियाँ नहीं आतीं। मुझे खुद ही मजा नहीं आता बोलने में। जिस दिन स्त्रियाँ आती हैं उस दिन मेरा जोश देखने लायक होता है। उस दिन जब मैं बोलता हूँ तो बात ही और होती है। लेकिन अब मैं भलीभाँति जानता हूँ कि वह भी कामवासना है। मैं उसके बाहर नहीं हो पाता हूँ।

चौथा आदमी मुल्ला नसरुद्दीन था। वह उठ कर खड़ा हो गया और उसने कहा कि क्षमा करें—मैं जाता हूँ।

उन्होंने कहा—लेकिन तुमने अपनी कमजोरी नहीं बतायी।

उसने कहा—मेरी सिर्फ एक कमजोरी है। वह है निन्दा। अब मैं नहीं रुक सकता एक भी क्षण। पूरा गाँव मेरी राह देख रहा होगा। जो मैंने यहाँ सुना है यह मुझे कहना होगा। मेरी एक ही कमजोरी है अफवाह। और अब मेरा रुकना मुश्किल है।

उन तीनों ने उसे पकड़ने की कोशिश की कि तू ठहर भई, तेरी यह कमजोरी थी, इसे तू ने पहले क्यों नहीं बताया। इतनी देर चुप क्यों रहा।

हर आदमी की कोई न कोई कमजोरी है। उस कमजोरी को ठीक से पहचान लें। उसी में आपकी ऊर्जा व्यय होती है।

मुल्ला ने कहा—जब तक मैं बैठा रहा जब तक नहीं सुन पाया। लेकिन जब मैंने पूरा सुन लिया, तो जग गयी मेरी शक्ति। अब इस रात सोना मेरे बश में नहीं है। अब जब तक एक-एक तक यह खबर नहीं पहुँचा दूँ, चैन नहीं मिलेगा। शक्ति जग गयी मेरी। वह जो कमजोरी है हमारी, वही हमारी

शक्ति का निष्कासन है। वहीं से हमारी शक्ति व्यय होती है। मुल्ला तब तक बिल्कुल सुस्त बैठा था जैसे कोई प्राण ही न हो। अचानक उसमें ज्योति आ गयी, प्राण आ गया, चमक आ गयी।

मुल्ला ने कहा कि गजब हो गया। कभी सोचा भी नहीं था कि इस कान्फ्रेंस में ऐसा आनन्द आने वाला है।

हमारी कमजोरी हमारी शक्ति के व्यय का बिन्दु है। भोग हो या भोग के विपरीत त्याग हो, बिन्दु वहीं बना रहता है, ध्यान वहीं केन्द्रित रहता है, शक्ति वहीं से विसर्जित होती है, एवोपोरेट होती है, वाष्पीभूत होती है। तप ध्यान के केन्द्र बदलने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया पर कल मैं बात करूँगा। शायद इस पर लम्बी बात करनी पड़ेगी। क्योंकि महावीर ने फिर तप के बारह हिस्से किये हैं और एक-एक हिस्सा वैज्ञानिक प्रक्रिया है। तो कल वैज्ञानिक प्रक्रिया को हम समझ लें, फिर महावीर के एक-एक तप के हिस्से पर बात करेंगे।



नवाँ प्रवचन

पर्युषण-व्याख्यानमाला, बम्बई, दिनांक, २६ अगस्त, १९७१

तप की वैज्ञानिक प्रक्रिया यानी ऊर्जा-शरीर से आपकी पहचान

धम्मो मंगलमुक्किट्ठम्, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति, जस्स धम्मो सया मणो ॥१॥

अर्थ—

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

तप के सम्बन्ध में, मनुष्य की प्राण ऊर्जा को रूपान्तरित करने की प्रक्रिया के सम्बन्ध में और थोड़े से वैज्ञानिक तथ्य समझ लेने आवश्यक हैं। धर्म भी विज्ञान है या कहें परम विज्ञान है, सुप्रीम साइंस है। क्योंकि विज्ञान केवल पदार्थ का स्पर्श कर पाता है। धर्म उस चैतन्य का भी, जिसका स्पर्श करना असम्भव मालूम पड़ता है। विज्ञान केवल पदार्थ को बदल पाता है, नये रूप दे पाता है। धर्म उस चेतना को भी रूपातरित करता है, जिसे देखा भी नहीं जा सकता, छुआ भी नहीं जा सकता। इसलिए वह परम विज्ञान है। विज्ञान का अर्थ होता है—'टु नो द हाऊ।' किसी चीज को कैसे किया जा सकता है। इसे जानना विज्ञान का अर्थ होता है—उस प्रक्रिया को जानना, उस पद्धति को जानना, उस व्यवस्था को जानना, जिससे कुछ किया जा सकता है। बुद्ध कहते थे कि सत्य का अर्थ है वह, जिससे कुछ किया जा सके। अगर सत्य इम्पोटेन्ट है, नपुंसक है, जिससे कुछ न हो सके, जो सिर्फ सिद्धान्त हो तो व्यर्थ है। सत्य वही है जो कुछ कर सके— कोई बदलाहट, कोई क्रांति, कोई परिवर्तन। और धर्म ऐसा ही सत्य है। धर्म चिन्तन नहीं है, विचार नहीं है, धर्म आमूल रूपान्तरण है, म्यूटेशन है। तप धर्म का, धर्म के रूपान्तरण की प्रक्रिया का, प्राथमिक सूत्र है। और तप किन आधारों पर खड़ा है वह हम समझ लें, तप किन प्रक्रियाओं से आदमी को बदलता है वह हम जान लें।

(१) दीवाल भी एक बहाव है!

सबसे पहली बात कि इस जगत् में जो भी हमें दिखायी पड़ता है, वह वैसा नहीं है जैसा दिखायी पड़ता है। क्योंकि जो भी दिखायी पड़ता है वह

मालूम होता है, स्थिर पदार्थ हैं, ठहरा हुआ, जमा हुआ पदार्थ है। लेकिन विज्ञान कहता है, इस जगत् में ठहरी हुई, जमी हुई कोई भी चीज नहीं है। जो भी है सभी गत्यात्मक है, डायनेमिक है। जिस कुर्सी पर आप बैठे हैं वह ठहरी हुई चीज नहीं है, वह पूरे समय नदी के प्रवाह की तरह बही जाती है। जो दीवाल आपके चारों तरफ दिखायी पड़ती है, वह दीवाल ठोस नहीं है। विज्ञान कहता है अब ठोस जैसी कोई चीज जगत् में नहीं है। वह जो दीवाल चारों तरफ खड़ी है, वह भी तरल और लिक्विड है, बहाव है। लेकिन बहाव इतना तेज है कि आपकी आँखें उस बहाव के बीच के अन्तराल को, खाइयों को, नहीं पकड़ पातीं। जैसे बिजली के पंखे को हम जोर से चला दें, इतने जोर से चला दें कि फिर आप उसकी पंखुड़ियों को नहीं गिन पाते। अगर बहुत गति से चलता हो तो लगेगा कि एक गोल वर्तुल ही घूम रहा है, पंखुड़ियां नहीं। बीच की पंखुड़ियों की जो खाली जगह है वह दिखायी नहीं पड़ती। वैज्ञानिक कहते हैं, बिजली के पंखों को इतनी तेजी से चलाया जा सकता है कि आप अगर गोली मारें तो बीच के स्थान से नहीं निकल सकेगी, खाली जगह से नहीं निकल सकेगी, पंखुड़ी को छेदकर निकलेगी। और इतने जोर से भी चलाया जा सकता सकता है कि आप अगर चलते पंखे के ऊपर गिर जायें तो आप बीच के स्थान से गिरेंगे नहीं। क्योंकि गिरने में जितना समय लगता है, उतनी देर में दूसरी पंखुड़ी आपके नीचे आ जायेगी। और तब ? तब पंखे का अंतराल भी ठोस मालूम पड़ेगा। फिर भी चलता हुआ मालूम पड़ेगा।

(२) गति...और गति...और गति और फिर गति

अगर गति अधिक हो जाये तो चीजें ठहरी हुई मालूम पड़ती हैं। अधिक गति के कारण, ठहराव के कारण नहीं। जिस कुर्सी पर आप बैठे हैं, उसकी गति बहुत है। उसका एक-एक परमाणु उतनी ही गति से दौड़ रहा है अपने केन्द्र पर, जितनी गति से सूर्य की किरण चलती है—एक सेकन्ड में एक लाख ८६ हजार मील। इतनी तीव्र गति से चलने की वजह से आप नहीं गिरते हैं कुर्सी से, नहीं तो आप कभी भी गिर जायेंगे। वह तीव्र गति आपको संभाले हुए है। फिर यह गति भी बहुत आयामी है, मल्टी डायमेन्शनल है। जिस कुर्सी पर आप बैठे हैं, उसकी पहली गति तो यह है कि उसके परमाणु अपने भीतर घूम रहे हैं। हर परमाणु अपने न्यूक्लियस पर, अपने केन्द्र पर चक्कर

काट रहा है। फिर कुर्सी जिस पृथ्वी पर रखी है, वह पृथ्वी अपनी कील पर घूम रही है। उसके घूमने की वजह से भी कुर्सी में दूसरी गति है। एक गति कुर्सी की आन्तरिक है कि उसके परमाणु घूम रहे हैं। दूसरी गति—पृथ्वी अपनी कील पर घूम रही है इसलिए कुर्सी भी पूरे समय पृथ्वी के साथ घूम रही है। तीसरी गति—पृथ्वी अपनी कील पर घूम रही है और साथ ही पूरे सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण कर रही है। घूमते हुए अपनी कील पर सूर्य का चक्कर लगा रही है। वह तीसरी गति है। कुर्सी में वह गति भी काम कर रही है। चौथी गति—सूर्य अपनी कील पर घूम रहा है और उसके साथ उसका पूरा सौर परिवार घूम रहा है। और पाँचवी गति—वैज्ञानिक कहते हैं कि सूर्य किसी महासूर्य का चक्कर लगा रहा है। बड़ा चक्कर है वह। कोई बीस करोड़ वर्ष में एक चक्कर पूरा होता है। तो वह पाँचवी गति कुर्सी भी कर रही है। और वैज्ञानिक कहते हैं कि छठवीं गति का भी हमें आभास मिलता है कि जिस महासूर्य का हमारा सूर्य परिभ्रमण कर रहा है, वह महासूर्य भी ठहरा हुआ नहीं है। वह अपनी कील पर घूम रहा है। और सातवीं गति का भी वैज्ञानिक अनुमान करते हैं कि वह महासूर्य, जो अपनी कील पर घूम रहा है, वह दूसरे सौर परिवारों से प्रति क्षण दूर हट रहा है। कोई और महासूर्य या कोई महासूर्य सातवीं गति का इशारा करता है। वैज्ञानिक कहते हैं, ये सात गतियाँ पदार्थ की हैं। आदमी में एक आठवीं गति भी है। प्राण में, जीवन में एक आठवीं गति भी है। कुर्सी चल नहीं सकती, जीवन चल सकता है, आठवीं गति शुरू हो जाती है। एक नौवीं गति धर्म कहता है, मनुष्य में है और वह यह है कि आदमी चल भी सकता है और उसके भीतर जो ऊर्जा है, वह नीचे की तरफ या ऊपर की तरफ जा सकती। उस नौवीं गति से ही तप का सम्बन्ध है। आठ गतियों तक विज्ञान काम कर लेता है। उस नौवीं गति पर, दि नाइन्थ, वह जो परम गति है चेतना के ऊपर-नीचे जाने की, उस पर ही धर्म की सारी प्रक्रिया है।

(३) ऊर्जा का गमनागमन

मनुष्य के भीतर जो ऊर्जा है, वह नीचे या ऊपर जा सकती है। जब आप काम वासना से भरे होते हैं तो ऊर्जा नीचे जाती है। जब आप आत्मा की खोज से भरे होते हैं तो ऊर्जा ऊपर की तरफ जाती है और जब आप जीवन से भरे होते हैं तो वह ऊर्जा भीतर की तरफ जाती है। और भीतर और ऊपर

धर्म की दृष्टि में एक ही दिशा के नाम हैं। और जब आप मरण से भरते हैं, मृत्यु निकट आती है तो वह ऊर्जा बाहर जाती है। दस वर्ष पहले तो वैज्ञानिक इस बात के लिए राजी ही नहीं थे कि मृत्यु में कोई ऊर्जा मनुष्य के बाहर जाती है। लेकिन रूस के डेविडोविच किरलियान की फोटोग्राफी ने पूरी धारणा को बदल दिया है।

(४) मरे हुए आदमी के तीन दिन

किरलियान की बात मैंने आप से पीछे की है। उस संबंध में एक बात जो काम की है और वह आप से कहनी है। किरलियान ने जीवित व्यक्तियों के चित्र लिए हैं तो उन चित्रों में शरीर के आस-पास जो ऊर्जा का वर्तुल है, इनर्जी फील्ड है, वह चित्रों में आता है। हायर सेंसिटिविटी फोटोग्राफी में, बहुत संवेदनशील फोटोग्राफी में आप के आस-पास ऊर्जा का एक वर्तुल आता है। लेकिन अगर मरे हुए आदमी का, अभी मर गये आदमी का, चित्र लेते हैं तो वर्तुल नहीं आता। ऊर्जा के गुच्छे आदमी से दूर हटते हुए, भागते हुए आते हैं। और तीन दिन तक मरे हुए आदमी के शरीर से गुच्छे बाहर निकलते रहते हैं; पहले दिन ज्यादा, दूसरे दिन और कम और तीसरे दिन और कम। जब ऊर्जा के गुच्छे का बहिर्गमन पूरी तरह समाप्त हो जाता है, तब आदमी पूरी तरह मरा होता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि जब तक ऊर्जा निकल रही है तब तक उसको पुनरुज्जीवित करने की कोई विधि आज नहीं तो कल खोजी जा सकेगी। मृत्यु में ऊर्जा आप के बाहर जा रही है लेकिन शरीर का वजन कम नहीं होता। निश्चित ही कोई ऐसी ऊर्जा है, जिस पर ग्रेविटेशन का कोई असर नहीं होता।

किसी भी वजन का एक ही अर्थ होता है कि जमीन में जो गुरुत्वाकर्षण है, उसका खिचाव है। आपका जितना वजन है आप भूल कर यह मत समझना कि वह आप का वजन है। वह जमीन के खिचाव का वजन है। जमीन जितनी ताकत से आपको खींच रही है, वजन उस ताकत की माप है। अगर आप चांद पर जायेंगे तो आप का वजन चार गुना कम हो जायेगा। क्योंकि चांद चार गुना कम ग्रेविटेशन रखता है। अगर १०० पौण्ड आप का वजन है तो चांद पर २५ पौण्ड रह जायेगा। इसे आप ऐसा भी समझ सकते हैं कि अगर आप जमीन पर ६ फीट ऊँचे कूद सकते हैं, तो चांद पर जाकर आप २४ फीट ऊँचे कूद सकते हैं। जब अंतरिक्ष में यात्री अपने यान में, कैप्सूल में होते हैं, तब

उनका कोई वजन नहीं रह जाता, नो वेट। क्योंकि वहाँ कोई ग्रेविटेशन नहीं होता। इसलिए यात्री को कुर्सी पर पट्टों से बाँधकर रखना पड़ता है। अगर पट्टा जरा छूट जाये, तो वह जैसे गैस से भरा गुब्बारा ऊपर जाकर टकराने लगता है, वसे आदमी टकराने लगेगा, क्योंकि उसमें कोई वजन नहीं है, जो उसे नीचे खींच सके। वजन जो है वह जमीन के गुरुत्वाकर्षण से है। लेकिन किरलियान के के प्रयोगों ने सिद्ध किया है कि आदमी से ऊर्जा तो निकलती है, लेकिन वजन कम नहीं होता। निश्चित ही उस ऊर्जा पर जमीन के गुरुत्वाकर्षण का कोई प्रभाव नहीं पड़ता होगा। योग के ग्रेविटेशन में जमीन से शरीर को ऊपर उठाने के प्रयोग में उसी ऊर्जा का उपयोग है।

(५) निजिन्स्की का नाच

एक बहुत अद्‌भुत् नृत्यकार था पश्चिम में निजिन्स्की। उसका नृत्य असाधारण था। शायद पृथ्वी पर वैसा नृत्यकार इसके पहले नहीं हुआ था। असाधारणता यह थी कि वह अपने नाच में जमीन से इतना ऊपर उठ जाता था जितना कि साधारणतया उठना बहुत मुश्किल है। और इससे भी ज्यादा आश्चर्यजनक यह था कि वह जब ऊपर से जमीन की तरफ आता था तो इतने स्लोली, इतने धीमे आता था, जो बहुत हैरानी की बात है। क्योंकि उतने धीमे नहीं आया जा सकता, जमीन पर खिचाव है; वह उतना धीमे आने की आज्ञा नहीं देता। लेकिन यही उसका चमत्कारपूर्ण कार्य था। उसने विवाह किया। उसकी पत्नी ने जब उसका नृत्य देखा तो वह आश्चर्य चकित हो गयी। वह खुद भी नर्तकी थी।

उसने एक दिन निजिन्स्की से यह बात कही। उसकी पत्नी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मैंने एक दिन अपने पति से कहा—ह्वाट इज इन दैट, यू कैन नॉट सी योरसेल्फ डान्सिग, कैसा दुःख कि तुम अपने को नाचते हुए नहीं देख सकते। निजिन्स्की ने कहा कि हू सेड, आई कैन नॉट सी। आई हू आलवेज सी। आई ऐम आलवेज आउट। आई मेक माइसेल्फ डान्स फ्राम दि आउट साइड। निजिन्स्की ने कहा कि मैं देखता हूँ सदा, क्योंकि मैं सदा बाहर होता हूँ और बाहर से ही अपने को नाच करवाता हूँ। और अगर मैं बाहर नहीं रहता तो इतना गहरा मैं जा ही न पाता। अगर मैं बाहर नहीं रहता तो इतने धीमे जमीन पर वापस नहीं लौट पाता। जब मैं भीतर होकर नाचता हूँ तो मुझमें वजन

धर्म की दृष्टि में एक ही दिशा के नाम हैं। और जब आप मरण से भरते हैं, मृत्यु निकट आती है तो वह ऊर्जा बाहर जाती है। दस वर्ष पहले तो वैज्ञानिक इस बात के लिए राजी ही नहीं थे कि मृत्यु में कोई ऊर्जा मनुष्य के बाहर जाती है। लेकिन रूस के डेविडोविच किरलियान की फोटोग्राफी ने पूरी धारणा को बदल दिया है।

(४) मरे हुए आदमी के तीन दिन

किरलियान की बात मैंने आप से पीछे की है। उस संबंध में एक बात जो काम की है और वह आप से कहनी है। किरलियान ने जीवित व्यक्तियों के चित्र लिए हैं तो उन चित्रों में शरीर के आस-पास जो ऊर्जा का वर्तुल है, इनर्जी फील्ड है, वह चित्रों में आता है। हायर सेंसिटिविटी फोटोग्राफी में, बहुत संवेदनशील फोटोग्राफी में आप के आस-पास ऊर्जा का एक वर्तुल आता है। लेकिन अगर मरे हुए आदमी का, अभी मर गये आदमी का, चित्र लेते हैं तो वर्तुल नहीं आता। ऊर्जा के गुच्छे आदमी से दूर हटते हुए, भागते हुए आते हैं। और तीन दिन तक मरे हुए आदमी के शरीर से गुच्छे बाहर निकलते रहते हैं; पहले दिन ज्यादा, दूसरे दिन और कम और तीसरे दिन और कम। जब ऊर्जा के गुच्छे का बहिर्गमन पूरी तरह समाप्त हो जाता है, तब आदमी पूरी तरह मरा होता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि जब तक ऊर्जा निकल रही है तब तक उसको पुनरुज्जीवित करने की कोई विधि आज नहीं तो कल खोजी जा सकेगी। मृत्यु में ऊर्जा आप के बाहर जा रही है लेकिन शरीर का वजन कम नहीं होता। निश्चित ही कोई ऐसी ऊर्जा है, जिस पर ग्रेविटेशन का कोई असर नहीं होता।

किसी भी वजन का एक ही अर्थ होता है कि जमीन में जो गुरुत्वाकर्षण है, उसका खिचाव है। आपका जितना वजन है आप भूल कर यह मत समझना कि वह आप का वजन है। वह जमीन के खिचाव का वजन है। जमीन जितनी ताकत से आपको खींच रही है, वजन उस ताकत की माप है। अगर आप चांद पर जायेंगे तो आप का वजन चार गुना कम हो जायेगा। क्योंकि चाँद चार गुना कम ग्रेविटेशन रखता है। अगर १०० पौण्ड आप का वजन है तो चाँद पर २५ पौण्ड रह जायेगा। इसे आप ऐसा भी समझ सकते हैं कि अगर आप जमीन पर ६ फीट ऊँचे कूद सकते हैं, तो चाँद पर जाकर आप २४ फीट ऊँचे कूद सकते हैं। जब अंतरिक्ष में यात्री अपने यान में, कैप्सूल में होते हैं, तब

धर्म की दृष्टि में एक ही दिशा के नाम हैं। और जब आप मरण से भरते हैं, मृत्यु निकट आती है तो वह ऊर्जा बाहर जाती है। दस वर्ष पहले तो वैज्ञानिक इस बात के लिए राजी ही नहीं थे कि मृत्यु में कोई ऊर्जा मनुष्य के बाहर जाती है। लेकिन रूस के डेविडोविच किरलियान की फोटोग्राफी ने पूरी धारणा को बदल दिया है।

(४) मरे हुए आदमी के तीन दिन

किरलियान की बात मैंने आप से पीछे की है। उस संबंध में एक बात जो काम की है और वह आप से कहनी है। किरलियान ने जीवित व्यक्तियों के चित्र लिए हैं तो उन चित्रों में शरीर के आस-पास जो ऊर्जा का वर्तुल है, इनर्जी फील्ड है, वह चित्रों में आता है। हायर सेंसिटिविटी फोटोग्राफी में, बहुत संवेदनशील फोटोग्राफी में आप के आस-पास ऊर्जा का एक वर्तुल आता है। लेकिन अगर मरे हुए आदमी का, अभी मर गये आदमी का, चित्र लेते हैं तो वर्तुल नहीं आता। ऊर्जा के गुच्छे आदमी से दूर हटते हुए, भागते हुए आते हैं। और तीन दिन तक मरे हुए आदमी के शरीर से गुच्छे बाहर निकलते रहते हैं; पहले दिन ज्यादा, दूसरे दिन और कम और तीसरे दिन और कम। जब ऊर्जा के गुच्छे का बहिर्गमन पूरी तरह समाप्त हो जाता है, तब आदमी पूरी तरह मरा होता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि जब तक ऊर्जा निकल रही है तब तक उसको पुनरुज्जीवित करने की कोई विधि आज नहीं तो कल खोजी जा सकेगी। मृत्यु में ऊर्जा आप के बाहर जा रही है लेकिन शरीर का वजन कम नहीं होता। निश्चित ही कोई ऐसी ऊर्जा है, जिस पर ग्रेविटेशन का कोई असर नहीं होता।

किसी भी वजन का एक ही अर्थ होता है कि जमीन में जो गुरुत्वाकर्षण है, उसका खिचाव है। आपका जितना वजन है आप भूल कर यह मत समझना कि वह आप का वजन है। वह जमीन के खिंचाव का वजन है। जमीन जितनी ताकत से आपको खींच रही है, वजन उस ताकत की माप है। अगर आप चांद पर जायेंगे तो आप का वजन चार गुना कम हो जायेगा। क्योंकि चांद चार गुना कम ग्रेविटेशन रखता है। अगर १०० पौण्ड आप का वजन है तो चांद पर २५ पौण्ड रह जायेगा। इसे आप ऐसा भी समझ सकते हैं कि अगर आप जमीन पर ६ फीट ऊँचे कूद सकते हैं, तो चांद पर जाकर आप २४ फीट ऊँचे कूद सकते हैं। जब अंतरिक्ष में यात्री अपने यान में, कैप्सूल में होते हैं, तब

धर्म की दृष्टि में एक ही दिशा के नाम हैं। और जब आप मरण से भरते हैं, मृत्यु निकट आती है तो वह ऊर्जा बाहर जाती है। दस वर्ष पहले तो वैज्ञानिक इस बात के लिए राजी ही नहीं थे कि मृत्यु में कोई ऊर्जा मनुष्य के बाहर जाती है। लेकिन रूस के डेविडोविच किरलियान की फोटोग्राफी ने पूरी धारणा को बदल दिया है।

(४) मरे हुए आदमी के तीन दिन

किरलियान की बात मैंने आप से पीछे की है। उस संबंध में एक बात जो काम की है और वह आप से कहनी है। किरलियान ने जीवित व्यक्तियों के चित्र लिए हैं तो उन चित्रों में शरीर के आस-पास जो ऊर्जा का वर्तुल है, इनर्जी फील्ड है, वह चित्रों में आता है। हायर सेंसिटिविटी फोटोग्राफी में, बहुत संवेदनशील फोटोग्राफी में आप के आस-पास ऊर्जा का एक वर्तुल आता है। लेकिन अगर मरे हुए आदमी का, अभी मरगये आदमी का, चित्र लेते हैं तो वर्तुल नहीं आता। ऊर्जा के गुच्छे आदमी से दूर हटते हुए, भागते हुए आते हैं। और तीन दिन तक मरे हुए आदमी के शरीर से गुच्छे बाहर निकलते रहते हैं; पहले दिन ज्यादा, दूसरे दिन और कम और तीसरे दिन और कम। जब ऊर्जा के गुच्छे का बहिर्गमन पूरी तरह समाप्त हो जाता है, तब आदमी पूरी तरह मरा होता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि जब तक ऊर्जा निकल रही है तब तक उसको पुनरुज्जीवित करने की कोई विधि आज नहीं तो कल खोजी जा सकेगी। मृत्यु में ऊर्जा आप के बाहर जा रही है लेकिन शरीर का वजन कम नहीं होता। निश्चित ही कोई ऐसी ऊर्जा है, जिस पर ग्रेविटेशन का कोई असर नहीं होता।

किसी भी वजन का एक ही अर्थ होता है कि जमीन में जो गुरुत्वाकर्षण है, उसका खिचाव है। आपका जितना वजन है आप भूल कर यह मत समझना कि वह आप का वजन है। वह जमीन के खिचाव का वजन है। जमीन जितनी ताकत से आपको खींच रही है, वजन उस ताकत की माप है। अगर आप चांद पर जायेंगे तो आप का वजन चार गुना कम हो जायेगा। क्योंकि चांद चार गुना कम ग्रेविटेशन रखता है। अगर १०० पौण्ड आप का वजन है तो चांद पर २५ पौण्ड रह जायेगा। इसे आप ऐसा भी समझ सकते हैं कि अगर आप जमीन पर ६ फीट ऊँचे कूद सकते हैं, तो चांद पर जाकर आप २४ फीट ऊँचे कूद सकते हैं। जब अंतरिक्ष में यात्री अपने यान में, कैप्सूल में होते हैं, तब

होता है। और जब मैं बाहर होकर नाचता हूँ तो उससे वजन खो जाता है।

योग कहता है अनाहत चक्र जब भी किसी व्यक्ति का सक्रिय हो जाये, तो जमीन का गुरुत्वाकर्षण उस पर प्रभाव कम कर देता है। और विशेष नृत्यों का प्रभाव अनाहत चक्र पर पड़ता है। मालूम होता है कि निजिन्स्की नाचते-नाचते अनायास अनाहत चक्र को सक्रिय कर लेता है। और अनाहत चक्र की दूसरी खूबी है कि जिस व्यक्ति का अनाहत चक्र सक्रिय हो जाये, वह आउट आफ बॉडी एक्सपीरिएंस में, शरीर के बाहर के अनुभवों में उतर जाता है। वह अपने शरीर से बाहर खड़ा होकर देख पाता है। लेकिन जब आप शरीर से बाहर होते हैं, तब जो शरीर के बाहर होता है वही आप की प्राण ऊर्जा है। वही वस्तुतः आप हैं। वह जो ऊर्जा है उसे ही महावीर ने जीवन-अग्नि कहा है। और उस ऊर्जा को जगा लेने को ही वैदिक संस्कृति का यज्ञ कहा गया है।

(६) क्या कहा, सूर्य भीतर ठंडा है!

उस ऊर्जा के जग जाने पर जीवन में एक नयी ऊष्मा भर जाती है, एक नया उत्ताप, जो बहुत शीतल है। यही कठिनाई है समझने की। एक नया उत्ताप जो बहुत ही शीतल है। तो तपस्वी जितना शीतल होता है उतना कोई भी नहीं होता। यद्यपि हम उसे कहते हैं तपस्वी। तपस्वी का अर्थ हुआ कि वह ताप से भरा हुआ है। लेकिन तप में जितनी जग जाती है यह अग्नि उतना ही केन्द्र शीतल हो जाता है। चारों ओर शक्ति जग जाती है, भीतर केन्द्र पर शीतलता आ जाती है। वैज्ञानिक पहले सोचते थे कि यह जो सूर्य है हमारा, यह जलती हुई अग्नि ही है, उबलती हुई अग्नि। लेकिन अब वैज्ञानिक कहते हैं कि सूर्य अपने केन्द्र पर बिल्कुल शीतल है। दि कोल्डेस्ट स्पाट इन दि युनिवर्स। यह बड़ी हैरानी की बात है। चारों ओर तो अग्नि का इतना वर्तुल है और सूर्य अपने केन्द्र पर सर्वाधिक शीतल बिन्दु है। उसका कारण अब ख्याल में आना शुरू हुआ। क्योंकि जहाँ इतनी अग्नि हो, उसको संतुलित करने के लिए इतनी गहन शीतलता केन्द्र पर होनी चाहिए, नहीं तो सन्तुलन टूट जायेगा। ठीक ऐसी ही घटना तपस्वी के जीवन में घटती है। चारों ओर ऊर्जा उत्तप्त हो जाती है लेकिन उस उत्तप्त ऊर्जा को संतुलित करने के लिए केन्द्र बिल्कुल शीतल हो जाता है। इसलिए तप से भरे व्यक्ति से ज्यादा

लोगों का अध्ययन किया है फोटोग्राफी में, जो सिर्फ ध्यान से अपने हाथ से लपटें निकाल सकते हैं। एक स्विस व्यक्ति है, जो अपने हाथ में पांच कैंडिल का बल्ब रखकर उसे जला सकता है, सिर्फ ध्यान से। सिर्फ वह ध्यान करता है, भीतर की उसकी जीवन-अग्नि बहनी शुरू हो जाती है हाथ से, और थोड़ी ही देर में बल्ब जल जाता है।

(६) करेंट मारनेवाली औरत

पिछले कोई १५ वर्ष पहले हालैंड की एक अदालत ने एक तलाक स्वीकार किया। और वह तलाक इस बात पर स्वीकार किया कि वह जो स्त्री थी, उसके भीतर कुछ दुर्घटना घट गयी थी। वह एक कार के ऐक्सिडेंट में गिर गयी। और उसके बाद जो भी उसे छुवे, उसे बिजली के शॉक लगने शुरू हो गये। उसके पति ने कहा, मैं मर जाऊंगा। इसे छूना ही असंभव है।

यह पहला तलाक है, क्योंकि इस कारण से पहले कोई तलाक नहीं हुआ था और कानून में ऐसी कोई जगह न थी। क्योंकि कानून ने कभी सोचा न था। लेकिन यह तलाक स्वीकार करना पड़ा। उस स्त्री की अन्तर-ऊर्जा में कहीं लीकेज पैदा हो गया।

आपके शरीर में भी ऋण और धन विद्युत् ऊर्जा का वर्तुल है, उसमें कहीं से भी टूट पैदा हो जाये तो आपके शरीर से भी दूसरे को शॉक लगना शुरू हो जायेगा। और कभी-कभी आप को किसी अंग में अचानक झटका लगता है, वह उसी आकस्मिक लीकेज का कारण है। कभी आप रात में लेटे हैं और एकदम झटका खा जाते हैं। उसका और कोई कारण नहीं है, यह आकस्मिक लीकेज है। सोते वक्त आपकी ऊर्जा को शान्त होना चाहिए आप की निद्रा के साथ, वह नहीं हो पाता। व्यवधान पैदा हो जाता है। और आप शॉक खा सकते हैं।

यह जो अन्तर-ऊर्जा है, हिप्नोसिस के प्रयोगों ने इस पर बहुत बड़ा काम किया है। सम्मोहन के द्वारा आप की अन्तर-ऊर्जा को कितना ही घटाया और बढ़ाया जा सकता है। जो लोग आग के अंगारों पर चलते रहे हैं, मुसलमान फकीर, सूफी फकीर या और योगी भी, उनके चलने का कुल कारण, कुल रहस्य इतना है कि वे अपनी अंतर-ऊर्जा को इतना जगा लेते हैं कि आग के अंगारे की गर्मी उससे कम पड़ती है। और कोई कारण नहीं है। रिलेटिवली,

सापेक्ष रूप से अन्दर की गर्मी इतनी हो जाती है कि अंगारे ठंडे मालूम पड़ते हैं। उनके शरीर की गर्मी, अंतर-ऊर्जा का प्रवाह इतना तीव्र होता है कि उस प्रवाह के कारण बाहर की गर्मी कम मालूम पड़ती है। गर्मी का अनुभव सापेक्ष है। अगर आप अपने एक हाथ को बर्फ से ठंडा कर लें और एक हाथ को आग की सिगड़ी पर गर्म कर लें और फिर दोनों हाथ पानी से भरी हुई एक बाल्टी में डाल दें तो आप के वे दोनों हाथ अलग-अलग खबर देंगे। एक हाथ कहेगा पानी बहुत ठंडा है और एक हाथ कहेगा—पानी बहुत गर्म है। जो हाथ ठंडा है, वह कहेगा पानी बहुत गर्म है; जो हाथ गर्म है, वह कहेगा पानी बहुत ठंडा है। आप बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे कि वक्तव्य क्या दें, अगर अदालत में गवाही देनी हो कि पानी ठंडा है या गरम ! क्योंकि साधारणतः हमारे शरीर का ताप एक होता है, इसलिए हम कहते है कि पानी ठंडा है या गर्म। एक हाथ को गर्म कर लें, एक को ठंडा और फिर एक ही बाल्टी में डाल दें तो मुश्किल में पड़ जायेंगे। तब आपको महावीर का वक्तव्य देना पड़ेगा—शायद पानी गर्म हैं, शायद पानी ठंडा है। 'परहैप्स' का इस्तेमाल करना पड़ेगा।

(१०) आप बगैर आग के भी जल सकते हैं

अगर आपकी अन्तर-ऊर्जा इतनी जग गयी, तो आप अंगारे पर चल सकते हैं और अंगारे ठंडे मालूम पड़ेंगे, पैर पर फफोले नहीं आयेंगे। इससे उल्टी घटना भी हिप्नोसिस में घट जाती है। अगर मैं आपको हिप्नोटाइज करके बेहोश कर दूं, और आपके हाथ पर एक साधारण सा कंकड़ रख दूं और कहूं कि, अंगारा रखा है, तो आपका हाथ फौरन जल जायेगा। आप कंकड़ को फेंक कर चीख मार देंगे। यहां तक भी है कि आपके हाथ में फफोला भी आ जाये। तो हुआ क्या ? हुआ यह कि जैसे ही मैंने कहा कि अंगारा रखा है, आपके हाथ की ऊर्जा घबड़ाहट में पीछे हट गयी। रिलेटिव गैप बन गया, जगह हो गयी, हाथ जल गया। अंगारा नहीं जलाता है, आपकी ऊर्जा हट जाती है, इसलिए आप जलते हैं। अगर अंगारा भी रखा जाये हिप्नोटाइज्ड आदमी के हाथ में और कहा जाये कि ठंडा कंकड़ है, तो हाथ नहीं जलता है। क्योंकि हाथ की ऊर्जा अपनी जगह खड़ी रहती है।

इसका अर्थ यह भी हुआ कि ऊर्जा आपके संकल्प से बढ़ती या घटती या आगे या पीछे होती है। कभी छोटे-मोटे प्रयोग करके देखें, तो इसका आपके ख्याल में आना आसान हो जायेगा। थर्मामीटर से अपना ताप नाप लें। फिर

थर्मामीटर को नीचे रख दें। दस मिनट आँख बन्द करके बैठ जायें और एक ही भाव करें कि तीव्र रूप से गर्मी आपके शरीर में पैदा हो रही है। सिर्फ भाव करें और दस मिनट बाद आप फिर थर्मामीटर से नापें। आप चकित हो जायेंगे कि आप थर्मामीटर के पारे को और ऊपर बढ़ने के लिए बाध्य करते हैं। सिर्फ भाव से अगर एक डिग्री चढ़ सकता है थर्मामीटर, तो दस डिग्री क्यों नहीं चढ़ सकता है? यह आपके प्रयास की बात है, आपके श्रम की बात है। और अगर दस डिग्री चढ़ सकता है तो दस डिग्री उतर भी हो सकता है।

(११) डिग्री लेनी है तो...

तिब्बत में परंपरा से साधक बर्फ की शिलाओं पर नग्न बैठा रहता है, ध्यान करने के लिए, घण्टों। कुल कारण इतना है कि वह अपने आसपास अपनी जीवन-ऊर्जा के वर्तुल को सजग कर देता है भाव से। तिब्बत युनिवर्सिटी (ल्हासा विश्वविद्यालय) अपने चिकित्सकों को, तिब्बतन मेडिसिन में जो लोग शिक्षा पाते थे उनको, तब तक डिग्री नहीं देती थी जब तक कि चिकित्सक बर्फ गिरती रात में खड़े होकर अपने शरीर से पसीना नहीं निकाल देता था। यह चीन के आक्रमण के पहले की बात है। क्योंकि जिस चिकित्सक का अपनी जीवन-ऊर्जा पर इतना प्रभाव नहीं है, वह दूसरे की जीवन-ऊर्जा को क्या प्रभावित करेगा! शिक्षा पूरी हो जाती थी, लेकिन डिग्री तभी मिलती थी। और आप चकित होंगे कि करीब-करीब जो लोग चिकित्सक होते थे, वे सभी इसे करने में समर्थ हो जाते थे। कोई इस वर्ष, कोई अगले वर्ष—किसी को ३ महीने लगता, किसी को साल भर। और जो बहुत ही अग्रणी हो जाते थे, जिन्हें पुरस्कार मिलते थे, गोल्ड मैडल मिलते थे, वे ऐसे लोग होते थे जो कि बर्फ गिरती रात में एक बार नहीं, बीस-बीस बार शरीर से पसीना निकाल देते थे। और हर बार जब पसीना निकलता, तो ठण्डे पानी से उनको नहला दिया जाता, वे फिर दोबारा पसीना निकाल देते। फिर तीसरी बार पसीना निकाल देते। यह सिर्फ ख्याल से, सिर्फ विचार से, सिर्फ संकल्प से, ऐसा होता था।

(१२) क्रोध में लिया गया ऊर्जा का फोटो

किरलियान फोटोग्राफी में, जब कोई व्यक्ति संकल्प करता है ऊर्जा का, तो फोटोग्राफी में वर्तुल बड़ा आता है। जब आप घृणा से भरे होते हैं, जब

आप क्रोध से भरे होते हैं, तब आपके शरीर उसी तरह की ऊर्जा के गुच्छे निकलने लगते हैं, जैसे मृत्यु में निकलते हैं। जब आप प्रेम से भरे होते हैं, जब आप करुणा से भरे होते हैं तो उल्टी घटना घटती है। उस विराट् ब्रह्म से आपकी तरफ ऊर्जा के गुच्छे प्रवेश करने लगते हैं। अब आप हैरान होंगे यह बात जानकर, कि प्रेम में आप कुछ पाते हैं, क्रोध में आप कुछ देते हैं। आमतौर से प्रेम में हमें लगता है हम कुछ देते हैं। और क्रोध में लगता है हम कुछ छीनते हैं। लेकिन ध्यान रहे, प्रेम में, करुणा में आप पाते हैं कि आप की जीवन-ऊर्जा बढ़ जाती है। इसीलिए क्रोध के बाद आप थक जाते हैं और करुणा के बाद आप और भी सशक्त, स्वच्छ, ताजे हो जाते हैं। इसीलिए करुणावान् कभी भी थकता नहीं। क्रोधी थका हुआ ही जीता है।

किरलियान की फोटोग्राफी के हिसाब से मृत्यु में जो घटना घटती है, वही छोटे अंश में क्रोध में घटती है, बड़े अंश में मृत्यु में घटती है। बड़े परिमाण में ऊर्जा बाहर निकलने लगती है। किरलियान ने एक फूल का चित्र लिया, जो अभी डाली से लगा है। उसके चारों तरफ ऊर्जा का जीवन्त वर्तुल है और विराट् से, चारों ओर से ऊर्जा की किरणें फूल में प्रवेश कर रही हैं। (ये फोटोग्राफ्स अब उपलब्ध हैं, देखे जा सकते हैं। और अब तो किरलियान का कैमरा भी तैयार हो गया है। वह भी जल्दी उपलब्ध हो जायेगा) फिर उसने फूल को डाली से तोड़ लिया फिर फोटो लिया, सब स्थिति बदल गयी। वह जो किरणें प्रवेश कर गयी थीं, वे वापस लौट रही हैं। घंटे भर में ऊर्जा बिखरती चली जा रही है। जब पंखुड़ियाँ सुस्त होकर ढल जाती हैं, वह वही क्षण है जब ऊर्जा निकलने के करीब पहुँच कर पूरी शून्य होने लगती है।

इस फूल के साथ किरलियान ने और भी अनूठे प्रयोग किये, जिससे बहुत कुछ दृष्टि मिलती है, तप के लिए। किरलियान ने आधे फूल को काट कर अलग कर दिया। ६ पंखुड़ियाँ हैं। तीन को तोड़ कर फेंक दिया। चित्र लिया तीन पंखुड़ियों का लेकिन चकित हुआ। पंखुड़ियाँ तो तीन रहीं, लेकिन फ़ूल के आसपास जो वर्तुल था, वह अब भी पूरा रहा, जैसा कि ६ पंखुड़ियों के आसपास था। ६ पंखुड़ियों के आसपास जो आभामंडल था, ऑरा था, तीन पंखुड़ियाँ तोड़ दी फिर भी वह आभामंडल अब भी पूरा रहा। दो पंखुड़ियाँ उसने और तोड़ दी। एक ही पंखुड़ी रह गयी, लेकिन आभामंडल पूरा रहा।

यद्यपि तीव्रता से विसर्जित होने लगा, लेकिन पूरा रहा। इसलिए आप जब बेहोश कर दिये जाते हैं अनस्थीसिया से या हिप्नोसिस से उस समय आपका हाथ काट डाला जाये तो आपको पता नहीं चलता। उसका कुल कारण इतना है कि आपका वास्तविक अनुभव अपने शरीर की ऊर्जा से है। ऊर्जा-वर्तुल हाथ कट जाने पर भी पूरा ही रहता है। वह तो जब आप जगेंगे और हाथ कटा हुआ देखेंगे, तब तकलीफ शुरू होगी। अगर आपको गहरी निद्रा में मार भी डाला जाय तो, आपको तकलीफ नहीं होगी। क्योंकि गहरी निद्रा में, सम्मोहन में या अनस्थीसिया में आपका तादात्म्य इस शरीर से छूट जाता है और आपके ऊर्जा शरीर में ही रह जाता है। आपका अनुभव पूरा ही बना रहता है। और इसीलिए अगर आप लंगड़े भी हो गये हों पैर से, तब भी आपको ऐसा नहीं लगता कि आपके भीतर वस्तुतः कोई चीज कम हो गयी है। बाहर तो तकलीफ हो जाती है, अड़चन हो जाती है, लेकिन भीतर नहीं लगता है कि कोई चीज कम हो गयी है। आप बूढ़े भी हो जाते हैं तो भीत नहीं लगता कि आपके भीतर कोई चीज बूढ़ी हो गयी है। क्योंकि वह जो ऊर्जा-शरीर है, वह वैसा का वैसा ही काम करता रहता है।

(१३) मस्तिष्क काट दें तो भी मन काम करता है

अमरीकन मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक डा. ग्रीन ने आदमी के मस्तिष्क के बहुत से हिस्से काटकर देखे और चकित हुआ कि मस्तिष्क के हिस्से कट जाने से भी मन के काम में कोई बाधा नहीं पड़ती। मन अपना काम वैसा ही जारी रखता है। इससे ग्रीन ने कहा कि यह पूर्ण रूप से सिद्ध हो जाता है कि मस्तिष्क केवल उपकरण है। वास्तविक मालिक कहीं कोई पीछे है। वह पूरा का पूरा ही काम करता रहता है। आपके शरीर के आसपास जो आभामंडल निर्मित होता है, वह इस शरीर का रेडिएशन नहीं है, इस शरीर का विकीरण नहीं है, वरन् किरलियान ने वक्तव्य दिया है कि—आन दि कान्ट्रेरी दिस बॉडी ओनली मिरर्स दि इनर बॉडी, वह जो भीतर का शरीर है उसके लिए यह शरीर सिर्फ दर्पण की तरह बाहर प्रकट करने का काम करता है। इस शरीर के द्वारा वे किरणें नहीं निकल रही हैं वे किरणें किसी और शरीर के द्वारा निकल रही हैं। इस शरीर से केवल प्रकट होती हैं। जैसे हमने एक दिया जलाया हो और चारों तरफ से एक ट्रांसपेरेंट कांच का घेरा लगा

दिया हो तो उस काँच के घेरे के बाहर हमें किरणों का वर्तुल दिखायी पड़ेगा। हम शायद सोचें कि वह काँच से आ रहा है, तो गलती है। काँच से निकल रहा है, लेकिन काँच से आ नहीं रहा है। वह आ रहा है भीतर के दिये से। हमारे शरीर से जो ऊर्जा निकलती है, वह इस भौतिक शरीर की ऊर्जा नहीं है। क्योंकि मरे हुए आदमी के शरीर में समस्त भौतिक तत्व यहीं का यहीं होता है, केवल ऊर्जा का वर्तुल खो जाता है। उस ऊर्जा के वर्तुल को योग सूक्ष्म शरीर कहता रहा है और तप के लिए उस सूक्ष्म शरीर पर ही काम करने पड़ते हैं। सारा काम उस सूक्ष्म शरीर पर है।

लेकिन आमतौर से हम जिन्हें तपस्वी समझते हैं वे, वे लोग हैं जो इस भौतिक शरीर को ही सताने में लगे हैं। इससे कुछ लेना-देना नहीं है। असली काम इस शरीर के भीतर वह जो दूसरा छिपा हुआ शरीर है—ऊर्जा शरीर, एनर्जी बॉडी—उस पर काम करना है। योग में जिन चक्रों की बात की गयी है, वे इस शरीर में कहीं भी नहीं हैं। वे उस ऊर्जा-शरीर में हैं। इसलिए फीजियोलॉजिस्ट वैज्ञानिक जब इस शरीर को काटते हैं, तो वे कहते हैं कि तुम्हारे चक्र कहीं मिलते नहीं। कहाँ है अनाहत, कहाँ है स्वाधिष्ठान, कहाँ है मणिपुर, कहीं कुछ नहीं मिलता। पूरे शरीर को काटकर देख डालते हैं वे, चक्र कहीं मिलते ही नहीं हैं। वे मिलेंगे भी नहीं। वे उस ऊर्जा-शरीर के बिन्दु हैं। यद्यपि उस ऊर्जा-शरीर के बिन्दुओं को करस्पांड करने वाले, उनके ठीक समतुल इस शरीर में स्थान हैं, लेकिन वे चक्र नहीं हैं। जैसे जब आप प्रेम से भरते हैं तो हृदय पर हाथ रख लेते हैं। जहाँ आप हाथ रखे हुए हैं, अगर वैज्ञानिक जाँच पड़ताल, काट-पीट करेंगे, तो सिवाय फेफड़े के कुछ नहीं मिलेगा। हवा वहाँ को पम्प करने का इन्तजाम भर है। वहाँ और कुछ भी नहीं। पम्पिंग सिस्टम है। उसी से धड़कन चल रही है। इसको बदला जा सकता है।

(१४) प्लास्टिक के दिल और फिर दिल का दौरा

अब तो इसे बदला जा सकता है और इसकी जगह पूरा प्लास्टिक का फेफड़ा रखा जा सकता है। वह भी इतना ही काम करता है, बल्कि वैज्ञानिक कहते हैं कि जल्द ही इससे बेहतर काम करेगा। क्योंकि न वह सड़ सकेगा, न वह गल सकेगा, कुछ भी नहीं होगा। लेकिन एक मजे की बात है कि प्लास्टिक

के फेफड़े में भी हार्ट अटेक होंगे। यह बहुत मजे की बात है। प्लास्टिक के फेफड़े में हार्ट अटैक नहीं होना चाहिए, क्योंकि प्लास्टिक और हार्ट अटेक का क्या संबंध है ? निश्चित ही यह हार्ट अटैक कहीं और गहरे से आता होगा, नहीं तो प्लास्टिक के फेफड़े में हार्ट अटैक नहीं हो सकता। प्लास्टिक का फेफड़ा टूट जाय, फूट जाय, चोट खा जाये—यह सब हो सकता है, लेकिन एक प्रेमी मर जाय और हार्ट अटैक हो जाय यह नहीं हो सकता है। क्योंकि प्लास्टिक के फेफड़े को क्या पता चलेगा कि प्रेमी मर गया है ? या वह मर भी जाये तो प्लास्टिक पर उसका क्या परिणाम हो सकता है ? कुछ भी परिणाम नहीं हो सकता है। अभी भी जो फेफड़ा आपका धड़क रहा है, उस पर कोई परिणाम नहीं होता। उसके पीछे एक दूसरे शरीर में जो हृदय का चक्र है उस पर परिणाम होता है। लेकिन उसका परिणाम तत्काल इस शरीर पर मिरर होता है, दर्पण की तरह दिखाई पड़ता है। योग में हृदय की धड़कन बन्द करने में लोग समर्थ रहे, फिर भी वे मर नहीं जाते, क्योंकि जीवन का स्रोत कहीं गहरे में है। इसीलिए हृदय की धड़कन बन्द भी हो जाती है, तो भी जीवन धड़कता रहता है। हालांकि, पकड़ा नहीं जा सकता, कोई यंत्र नहीं पकड़ पाते कि जीवन कहाँ धड़क रहा है। यह शरीर जो हमारा है, इस शरीर के भीतर छिपा हुआ और इस शरीर के बाहर भी चारों तरफ इसे घेरे हुए, जो आभामंडल है वह हमारा वास्तविक शरीर है, वही हमारा तप शरीर है। उन पर जो केन्द्र हैं उन पर ही तप की सारी की सारी पद्धति, (टेक्नालाजी) तकनीक शरीर के उन बिन्दुओं पर काम करने की है। मैंने आपसे पीछे कहा कि चाइनीज आक्युपंक्चर की विधि मानती है कि शरीर में कोई ७०० बिन्दु हैं, जहाँ वे ऊर्जा - शरीर को स्पर्श कर रहे हैं। आपने कभी ख्याल न किया होगा। लेकिन ख्याल करना मजेदार होगा। कभी बैठ जायें उघाड़े होकर और किसी से कहें कि आपकी पीठ में पीछे किसी जगह सुई चुभाये। आप बहुत चकित होंगे कि एक खास जगह यह सुई चुभाई जायेगी और आपको पता नहीं चलेगा। आपकी पीठ पर ब्लाइंड स्पाट्स हैं जहाँ सुई चुभाई जायेगी और आपको पता नहीं चलेगा। और आपके शरीर पर कुछ सेंसिटिव स्पाट्स हैं, जहाँ सुई जरा-सी चुभाई जायेगी और आपको पता चलेगा। आक्युपंक्चर पांच हजार साल पुरानी चिकित्सा विधि है। वह कहती है जिन बिन्दुओं पर सुई चुभाने से पता नहीं चलता, वहाँ आपका ऊर्जा-शरीर स्पर्श नहीं करता है। वे डेड स्पाट्स हैं। उन्हें आपका जो भीतर का ऊर्जा-शरीर है, वह स्पर्श नहीं कर रहा है। इसलिए वहाँ पता कैसे चलेगा ! पता तो उसको

चलता है, जो भीतर है। जब संवेदनशील जगह पर छुआ जाता है, तो उसका मतलब है कि वहां से ऊर्जा शरीर कांटेक्ट में है। वहां से वहां तक चोट पहुँच जाती है। जब आपको अनेस्थीसिया दे दिया जाता है आपरेशन की टेबुल पर तो आपके ऊर्जा शरीर का और इस शरीर का सम्बन्ध तोड़ दिया जाता है। जब लोकल अनेस्थीसिया दिया जाता है (जैसे कि केवल मेरे हाथ भर में अनेस्थीसिया दे दिया गया है कि मेरा हाथ सो जाये) तो सिर्फ मेरे हाथ के जो बिन्दु हैं जिनसे मेरा ऊर्जा-शरीर जुड़ा हुआ है, उनका सम्बन्ध टूट जाता है। फिर इस हाथ को काटो-पीटो, मुझे पता नहीं चलता है। क्योंकि मुझे तभी पता चल सकता है, जब मेरे ऊर्जा-शरीर से कुछ सम्बन्ध हो अन्यथा मुझे पता नहीं चलता।

(१५) मरघट सिर्फ सफाई का इंतजाम नहीं है

इसीलिए बहुत हैरानी की घटना घटती है कि कभी-कभी कुछ लोग सोते में मर जाते हैं। आप कभी भी सोते हुए मत मरना। सोते में जब कोई मर जाता है तो उसको कई दिन लग जाते हैं यह अनुभव करने में कि वह मर गया। क्योंकि गहरी नींद में ऊर्जा-शरीर और इस शरीर के सम्बन्ध शिथिल हो जाते हैं। अगर कोई गहरी नींद में एकदम से मर जाता है, तो उसकी समझ में नहीं आता कि मैं मर गया। क्योंकि समझ में तो तभी आ सकता है, जब इस शरीर से सम्बन्ध टूटते हुए अनुभव हो। यह जो मरने पर तत्काल हम शरीर को गड़ाते या जलाते हैं या कुछ करते हैं, उसका कुल कारण इतना है कि वह जो ऊर्जा शरी है उसे अनुभव में आ जाये कि वह मर गया। यह शरीर को जलाने के लिए मरघट और गाड़ने के लिए कब्रिस्तान का जो इन्तजाम है, यह सिर्फ सफाई का इन्तजाम नहीं है कि एक आदमी मर गया तो उसको समाप्त करना ही पड़ेगा, नहीं तो सड़ेगा, गलेगा। वह उस आदमी की चेतना को अनुभव कराने का इंतजाम है कि यह शरीर तेरा नहीं है, तेरा नहीं था। तू अब तक इसको अपना समझता रहा। अब हम इसे जलाये देते हैं, ताकि तुझे पक्का भरोसा हो जाये। अगर हम शरीर को सुरक्षित रख लें तो उस चेतना को, हो सकता है, ख्याल ही न आये कि वह मर गयी है। वह इस शरीर के आसपास भटकती रह सकती है। इससे उसके नये जन्म में बाधा पड़ जायेगी, कठिनाई हो जायेगी। और अगर उसे भटकाना ही है इस शरीर के आसपास तो? इजिप्ट में जो ममीज बनायी गयी हैं, वे इसीलिए बनायी गयी

हैं। शरीर को इस तरह से ट्रीट किया जाता था, इस तरह के रासायनिक द्रव्यों से निकाला जाता था कि वह सड़े नहीं—इस आशा में कि किसी दिन उस सम्राट को फिर से जीवन मिल सकेगा। तो सात, साढ़े सात हजार वर्ष पुराना शरीर भी सुरक्षित पिरामिडों के नीचे मिलेगा। उस सम्राट के साथ, जिसके शरीर को इस तरह रखा जाता था, उसकी पत्नियों को भी, चाहे वे जीवित ही क्यों न हों, दफना दिया जाता था। एक दो नहीं, कभी-कभी सौ-सौ भी होतीं थीं। उस सम्राट को जिन-जिन चीजों से प्रेम था, वे सब की सब उसकी ममी के आसपास रख दी जाती थीं, ताकि जब उसका पुनरुज्जीवन हो तो वह महल तत्काल पुराने रिहेबिलिटेट को ही पाये। उसकी पत्नियाँ, उसके कपड़े, उसकी गद्दियाँ, उसके प्याले, उसकी थालियाँ, सब वहाँ हों, ताकि तत्काल वह रिहेबिलिटेट, पुनर्स्थापित हो जाये अपने जीवन में। इस आशा में 'ममीज़' खड़ी की गयी थीं। और इसमें कुछ आश्चर्य नहीं कि जिनकी ममीज रखी गयीं उनका पुनर्जन्म होना बहुत कठिन हो गया, या न हो पाया। उनमें से अनेक की आत्माएं अपने पिरामिडों के आसपास अब भी भटकती हैं।

(१६) मरने पर शरीर को जलाया जाता है इसलिए कि...

इस भूमि पर हिन्दुओं ने प्राण-ऊर्जा के सम्बन्ध में सर्वाधिक गहरे अनुभव किये थे। इसलिए हमने सर्वाधिक तीव्रता से शरीर को नष्ट करने के लिए आग का इन्तजाम किया, गाड़ने का भी नहीं। क्योंकि गाड़ने में भी ६ महीने लग जायेंगे शरीर को गलने में, टूटने में, मिट्टी में मिलने में। उन ६ महीनों तक आत्मा को भटकाव हो सकता है। तत्काल जला देने का प्रयोग हमने किया, वह सिर्फ इसीलिए ताकि इसी बीच, इसी क्षण आत्मा को पता चल जाये कि शरीर नष्ट हो गया, मैं मर गया हूँ। क्योंकि जब तक यह अनुभव में न आये कि मैं मर गया हूँ, तब तक नये जीवन की खोज शुरू नहीं होती। मर गया हूँ अनुभव कर लेने पर आत्मा नये जीवन की खोज में निकल जाती है।

आक्युपंक्चर ने ७०० बिन्दु कहे हैं शरीर में। रूस के एक वैज्ञानिक एडामेन्को ने अभी एक मशीन बनायी है। मशीन के चारों तरफ बल्ब लगे हुए होते हैं—हजारों बल्ब। आपको मशीन के भीतर खड़ा कर देते हैं। जहाँ-जहाँ से आपका प्राण शरीर बह रहा है वहाँ-वहाँ का बल्ब जल जायेगा। सात सौ बल्ब जल जाते हैं, उन हजारों बल्बों में। वह मशीन आपकी प्राण-ऊर्जा जहाँ-जहाँ संवेदनशील है, वहाँ-वहाँ बल्ब को जला देती है। तो

अब एडामेन्को की मशीन से प्रत्येक व्यक्ति के संवेदनशील बिन्दुओं का पता चल सकता है।

लेकिन योग ने सात सौ की बात नहीं की। सात चक्रों की बात की है। योग की पकड़ आक्युपंक्चर से ज्यादा गहरी है। क्योंकि योग ने अनुभव किया कि बिन्दु परिधि पर हैं, केन्द्र पर नहीं हैं। १०० बिन्दुओं का एक केन्द्र है। १०० बिन्दु एक चक्र के आसपास निर्मित हैं। तो फिक्र छोड़ दें परिधि की। उस केन्द्र को ही स्पर्श कर लिया जाये, इस तरह वे १०० बिन्दु स्पर्शित हो जाते हैं। इसलिए चक्रों की बात की। उदाहरण के लिए और आसान तरीके से समझ लें। क्योंकि उदाहरण अगर हमारे अनुभव की बात होती है, तो बात आसान हो जाती है। सेक्स का एक सेन्टर है आपके पास—यौन-चक्र। लेकिन उस यौन-चक्र के सौ बिन्दु हैं, जहाँ-जहाँ यौन-चक्र का बिन्दु है वहाँ-वहाँ एरोटिक जोन हो जाते हैं। आपको कभी ख्याल में भी न होगा कि जब आप किसी के साथ यौन-सम्बन्ध में रत होते हैं, तो आप शरीर के किन्हीं-किन्हीं अंगों को विशेष रूप से छूने लगते हैं। वे ही एरोटिक जोन्स हैं। वे काम-केन्द्र के बिन्दु हैं शरीर पर फैले हुए। और उसमें कई बिन्दु ऐसे हैं कि जिनका आपको पता नहीं होगा। लेकिन अलग-अलग संस्कृतियों ने अलग-अलग बिन्दुओं का पता लगा लिया। अब तो वैज्ञानिकों ने सारे एरोटिक प्वाइन्ट्स खोज लिये हैं कि वे शरीर में कहाँ-कहाँ हैं। जैसे आपको ख्याल में नहीं होगा कि आपके कान के नीचे की जो लम्बाई है, वह एरोटिक प्वाइंट है, वह बहुत सम्वेदनशील है। स्तन जितने संवेदनशील हैं उतना ही संवेदनशील आपके कान का हिस्सा है।

(१७) कनफटे साधु और कामबिंदु

आपने कनफटे साधुओं को देखा होगा या कनफटे साधुओं की बात सुनी होगी, लेकिन कभी ख्याल में न आया होगा कि कान फाड़ने से क्या हो सकता है? कान फाड़कर वे यौन-बिन्दु को प्रभावित करने की कोशिश में लगे हैं। वह जगह बहुत संवेदनशील है। आपने कभी ख्याल न किया होगा कि महावीर के कान का नीचे का लम्बा हिस्सा कन्धे को छूता है। बुद्ध का भी छूता है, जैनों के २४ तीर्थंकरों का भी छूता है। तीर्थंकर का वह एक लक्षण समझा जाता था कि उसके कान का हिस्सा इतना लम्बा है। उसका अर्थ ही केवल

इतना होता है, कि इस व्यक्ति में काम-ऊर्जा बहुत होगी, सेक्स एनर्जी बहुत होगी। और यही ऊर्जा रूपांतरित होने वाली है जो कुंडलिनी बनेगी। यही ऊर्जा रूपांतरित होगी, ऊपर जायेगी और तप बनेगी। वह कान की लम्बाई सिर्फ प्रतीक है, वह एरोटिक जोन है। वहाँ से आपके काम की संवेदनशीलता पता चलती है। आप के शरीर पर बहुत से बिन्दु हैं जो काम के लिए संवेदनशील हैं। हर चक्र के आस-पास १०० विन्दु हैं शरीर में। आप के शरीर में ऐसे बिन्दु हैं जिनके स्पर्श से, जिनकी मसाज से आपकी बुद्धि को प्रभावित किया जा सकता है। क्योंकि वे आपकी बुद्धि के बिन्दु हैं। आप के शरीर में ऐसे बिन्दु हैं, जिनसे आप के दूसरे चक्रों को प्रभावित किया जा सकता है। समस्त योगासन इन्हीं विन्दुओं पर दबाव डालने के प्रयोग हैं। अलग-अलग योगासन, अलग-अलग चक्रों को सक्रिय कर देते हैं। जहां-जहां दबाव पड़ता है वहां-वहाँ सक्रियता दौड़ जाती है।

आक्युपंक्चर ने बहुत ही सरल विधि निकाली है। वह तो एक सुई से आपके संवेदनशील विन्दु को छेद देता है। छेदने से वहां की ऊर्जा सक्रिय होकर आगे बढ़ जाती है। वे कहते हैं कि कोई भी बीमारी आक्युपंक्चर पद्धति से वे ठीक कर सकते हैं। अभी एक बहुत अद्भुत किताब हिरोशिमा के बाबत प्रकाशित हुई है। और जिस आदमी ने, जिस अमरीकी वैज्ञानिक ने वह सारा शोध किया है वह चकित हो गया है। उसने कहा, एटम बम से पदा हुए रेडिएशन से जो-जो नुकसान होते हैं, उनको ठीक करने के लिए कोई उपाय नहीं है, लेकिन रेडिएशन से पीड़ित व्यक्ति को भी आक्युपंक्चर की सुई ठीक कर देती है। एटम से जो नुकसान होते हैं चारों तरफ के वायुमंडल में, उस नुकसान को भी आक्युपंक्चर की बिल्कुल साधारण सी सुई ठीक कर सकती है।

(१८) अगर ऊर्जा का ग्रेविटेशन हो जाये

होता यह है कि जब एटम गिरता है, तो इतनी ऊर्जा पैदा होता है कि बाहर की ऊर्जा आपके शरीर की ऊर्जा को बाहर खींच लेती है। इतना बड़ा ग्रेविटेशन होता है एटम की ऊर्जा का कि आपके तप-शरीर की ऊर्जा बाहर खिंच जाती है। उसी वजह से आप दीन-हीन हो जाते हैं। अगर पैर की ऊर्जा बाहर खिच जाये तो आप लँगड़े हो जाते हैं। अगर हृदय की ऊर्जा बाहर खिच

जाये तो आप तत्काल गिर जाते हैं और मर जाते हैं। अगर मस्तिष्क की ऊर्जा बाहर खिंच जाये तो आप ईडिएट, जड़बुद्धि हो जाते हैं। आक्युपंक्चर की खोज में पता चला कि आपकी ऊर्जा की गति को, आपकी ऊर्जा के चक्र को साधारण सी सुई के स्पर्श से पुनः सक्रिय किया जा सकता है।

योगासन भी आपके शरीर पर किन्हीं-किन्हीं विशेष बिन्दुओं पर दबाव डालने के प्रयोग हैं। निरन्तर दबावों से वहां की ऊर्जा सक्रिय हो जाती है और विपरीत दबाव से दूसरे केन्द्रों की ऊर्जा खींच ली जाती है। जैसे अगर आप शीर्षासन करते हैं, तो शीर्षासन का अनिवार्य परिणाम काम-वासना पर पड़ता है। क्योंकि शीर्षासन में आपकी ऊर्जा का प्रवाह उल्टा हो जाता है, सिर की तरफ हो जाता है। ध्यान रहे, आपकी आदत आपकी शक्ति को नीचे की तरफ बहाने की है। जब आप उल्टे खड़े हो जाते हैं, तब भी पुरानी आदत के हिसाब से आप शक्ति को नीचे की तरफ बहाते हैं। लेकिन अब वह नीचे की तरफ नहीं बह रही है। अब वह सिर की तरफ बह रही है। शीर्षासन का इतना मूल्य सिर्फ इसलिए बन सका तपस्वियों के लिए, कि वह काम-ऊर्जा को सिर की तरफ ले जाने के लिए सुगम है। आपकी पुरानी आदत का ही उपयोग है। आदत है नीचे की तरफ ऊर्जा को बहाने की, तो खुद उल्टे खड़े हो गये। अभी भी नीचे की तरफ बहायेंगे पुरानी आदत के वश, लेकिन अब नीचे की तरफ का मतलब ऊपर की तरफ हो गया है। बहेगी नीचे की तरफ, पहुँचेगी ऊपर की तरफ। इस तरह आपके भीतर जो जीवन-ऊर्जा है, उसको तप जगाता है, शक्तिशाली बनता है, नये मार्गों पर प्रवाहित करता है, नये केन्द्रों पर संग्रहीत करता है।

(१९) नजर भर देखा और पक्षी गिरा

आज से दो साल पहले चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राहा के पास एक सड़क पर एक अनूठा प्रयोग हुआ, जिसे देखने यूरोप के वैज्ञानिक इकट्ठे थे। एक वेतिस्लाव कापका आदमी है। इस आदमी ने सम्मोहन पर गहन प्रयोग किये हैं और सम्भवतः इस समय पृथ्वी पर सम्मोहन के संबन्ध में सबसे बड़ा जानकार है। इसने अनेक लोग तैयार किये हैं, अनेक दिशाओं के लिए। इसके पास एक आदमी है जो उड़ते पक्षी को सिर्फ आंख उठाकर देखे और आप उसे कहें कि गिरा दो, तो वह पक्षी तत्काल नीचे गिर जाता है। हाँ आकाश में

उड़ता हुआ पक्षी ! वृक्ष पर बैठा हुआ पक्षी ! २५ पक्षी बैठे हुए हैं, आप कहें कि इस शाखा पर बैठा हुआ यह सामने नम्बर एक पक्षी है, इसे गिरा दो। वह आदमी उसे एक क्षण देखता है, और वह पक्षी नीचे गिर जाता है। आप कहें कि इसे मारकर गिरा दो तो वह पक्षी मरता है और जमीन पर मुर्दा होकर गिर जाता है। दो साल पहले प्राहा की सड़क पर जब यह प्रयोग हुआ, तो कोई २०० वैज्ञानिक पूरे यूरोप महाद्वीप से इकट्ठे थे देखने को। सैकड़ों पक्षी गिराकर बताये गये। न पक्षियों को समझा कर राजी किया जा सकता है गिरने के लिए, न ही उस आदमी ने अपनी मर्जी के पक्षी गिराये सड़क पर चलते हुए, वैज्ञानिकों ने कहा कि इस पक्षी को गिराओ, तो उस पक्षी को गिरा दिया। जिन्दा कहा तो जिन्दा गिरा दिया, मुर्दा कहा तो मुर्दा गिरा दिया। उस आदमी से पूछा जाता है और उसका जो प्रधान काफ्का, उससे पूछा जाता है कि क्या हैं राज़ ? तो वह कहता है कि हम कुछ नहीं करते। जैसे कि वैक्यूम क्लीनर होता है न आप के घ में, धूल को सकअप कर लेता है ! क्लीनर को आप चलाते हैं फर्श पर, धूल को वह भीतर खींच लेता है—जैसे कि आप जोर से हवा को भीतर खींच लें, सक कर लें। जैसे कि बच्चा दूध पीता है, माँ के स्तन से 'सक' करता है, खींच लेता है। वैसे ही हमने एक आदमी को इसी के लिए तैयार किया है कि वह दूसरे की प्राण-ऊर्जा को 'सक' कर ले, बस। पक्षी बैठा है, यह उस पर ध्यान करता है और प्राण-ऊर्जा को अपने भीतर खींचने का संकल्प करता है। अगर सिर्फ इतना ही संकल्प करता है कि इतनी प्राण-ऊर्जा मुझ तक आये कि पक्षी बैठा न रह सके, गिर जाये, तो पक्षी गिरता है। अगर यह पूरी प्राण-ऊर्जा को खींच लेता है, तो पक्षी मर जाता है। इसके चित्र भी लिए गये। जब वह 'सकअप' करता, तो चित्र में पक्षी से ऊर्जा के गुच्छे उस आदमी की तरफ भागते हुए आये। काफ्का का कहना है कि वह ऊर्जा हम इकट्ठी भी कर सकते हैं और मरते हुए आदमी को जैसे आज आप ऑक्सीजन देते हैं, किसी न किसी दिन प्राण-ऊर्जा भी दी जा सकेगी। जब तक ऑक्सीजन नहीं दे सकते, तब तक आदमी ऑक्सीजन की कमी से मर जाता है। काफ्का कहता है—बहुत जल्द अस्पतालों में हम सिलिन्डर रख देंगे, जिनमें प्राण-ऊर्जा भरी होगी और मरने वाले आदमी को प्राण-ऊर्जा दे दी जायेगी। जिसकी ऊर्जा बाहर निकल रही है, उसे दूसरी ऊर्जा दे दी जाये, तो वह कुछ देर तक जीवित रह सकता है, ज्यादा देर भी जीवित रह सकता है।

अमरीका का एक वैज्ञानिक था, जिसका मैं पहले आप से थोड़ा उल्लेख कर चुका हूँ। वह आदमी था, विलहेम रेक। आप ने कभी आकाश के पास या समुद्र के किनारे बैठ कर आकाश में देखा होगा तो आप को कुछ आकृतियाँ आँख में ऊँची-नीची उठती दिखायी पड़ती हैं। आँख का भ्रम मान कर अब तक वैज्ञानिक समझते थे कि आँख पर कुछ विकृत स्पाट्स होंगे, उनकी वजह से वे आकृतियाँ ऐसी दिखायी पड़ती हैं। लेकिन विलहेम रेक की खोजों ने यह सिद्ध किया कि वे आकृतियाँ प्राण-ऊर्जा की हैं। उन आकृतियों को अगर कोई पीना सीख जाये, तो वह महा प्राणवान् हो जायेगा। और वे आकृतियाँ हमसे ही निकल कर हमारे चारों तरफ फैल जाती हैं। उसको उसने आरगान एनर्जी कहा है—जीवन-ऊर्जा।

प्राण-योग या प्राणायाम वस्तुतः मात्र वायु को भीतर ले जाने और बाहर ले जाने पर निर्भर नहीं है। साधारणतः ख्याल में यही आता है कि एक आदमी प्राणायाम सीख रहा है तो वह बस ब्रीदिंग की एक्सरसाइज है, वह सिर्फ वायु का कोई अभ्यास कर रहा है। लेकिन जो जानते हैं, और जानने वाले निश्चित ही बहुत कम हैं, वे जानते हैं कि असली सवाल वायु को भीतर और बाहर ले जाने का नहीं है। असली सवाल वायु के मार्ग से, वे जो आरगान एनर्जी के गुच्छे चारों तरफ जीवन में फैले हुए हैं, उनको भीतर ले जाने का है। अगर वे भीतर जाते हैं तो ही प्राण योग है, अन्यथा वायु योग है, प्राण योग नहीं है, प्राणायाम नहीं है। अगर वे गुच्छे भीतर जाते हैं तो आयी हुई शक्ति का उपयोग तप में किया जाता है। खुद की शक्ति का, चारों तरफ जीवन की शक्ति का, पौधों की शक्ति का, पदार्थों की शक्ति का उपयोग किया जाता है।

(२०) सम्राट ही सोना क्यों पहनते थे ?

एक अनूठी बात आप को बताऊँ। चकित होंगे आप जानकर कि काफ्का, किरलियान, विलहेम रेक और अनेक वैज्ञानिकों का अनुभव है कि सोना ही एकमात्र ऐसी धातु है, जो सर्वाधिक रूप से प्राण-ऊर्जा को अपनी तरफ आकर्षित कर लेती है। यही सोने का मूल्य है; अन्यथा कोई मूल्य नहीं है। इसलिए पुराने दिनों में (कोई एक हजार साल पुराने रेकार्ड उपलब्ध हैं) जिनमें सम्राटों ने प्रजा को सोना पहनने की मनाही कर रखी थी। कोई दूसरा आदमी सोना नहीं पहन सकता था, सिर्फ सम्राट पहन सकता था। उसका राज्य था, वह खुद सोना पहन कर और दूसरे लोगों का सोना पहनना रोक कर ज्यादा जी

सकता था। इससे वह लोगों की प्राण-ऊर्जा को अनजाने अपनी तरफ आकर्षित कर रहा था। जब आप सोने को देखकर आकर्षित होते हैं तो सच में सोने को देखकर आकर्षित नहीं होते, बल्कि आप की प्राण-ऊर्जा सोने की तरफ बहनी शुरू हो जाती है, इसलिए आकर्षित होते हैं। इसलिए सम्राटों ने सोने का बड़ा उपयोग किया और आम आदमी को सोना पहनने की मनाही कर दी गयी।

सोना सर्वाधिक खींचता है प्राण-ऊर्जा को, यही उसके मूल्य का राज़ है। इस पर खोज चल रही है। संभावना है कि बहुत शीघ्र जो कीमती पत्थर हैं, उनके भीतर भी कुछ राज़ छिपे मिलेंगे, जो बता सकेंगे कि या तो वे प्राण-ऊर्जा को खींचते हैं या अपनी प्राण - ऊर्जा न खींची जा सके इसके लिए वे कोई रेसिस्टेन्स खड़ा करते हैं। आदमी की जानकारी अभी भी बहुत कम हैं लेकिन जानकारी कम हो या ज्यादा, हजारों साल से जितनी जानकारी है उसके आधार पर बहुत काम किया गया है। और ऐसा भी प्रतीत होता हैं कि शायद बहुत सी जानकारियाँ खो गयी हैं।

(२१) यह बबूल की विशेषता है

लुकमान के जीवन में उल्लेख है कि एक आदमी को उसने भारत भेजा आयुर्वेद की शिक्षा के लिए और उससे कहा कि तू बबूल के वृक्ष के नीचे सोता हुआ भारत पहुँच। और किसी वृक्ष के नीचे मत सोना। वह आदमी जब तक भारत आया, तो क्षय रोग से पीड़ित हो गया।

कश्मीर पहुँच कर उसने पहले चिकित्सक को कहा कि मैं तो मरा जा रहा हूँ। मैं तो सीखने आया था आयुर्वेद, अब सीखना नहीं है सिर्फ मेरी चिकित्सा करनी है। मैं ठीक हो जाऊँ, तो अपने घर वापस लौटूं।

उस वैद्य ने पूछा कि तू विशेष वृक्ष के नीचे सोता हुआ तो नहीं आया?

उसने कहा—मेरे गुरु ने आज्ञा दी कि तू जाते हुए बबूल के वृक्ष के नीचे सोना।

वह वैद्य हँसा, उसने कहा—तू कुछ मत कर। बस अब नीम के वृक्ष के नीचे सोता हुआ वापस लौट जा।

वह नीम के वृक्ष के नीचे सोता हुआ वापस लौट गया। वह जैसा स्वस्थ चला था वैसा ही वापस लुकमान के पास पहुँचा।

लुकमान ने पूछा, तू जिन्दा लौट आया ? तब आयुर्वेद में जरूर कोई राज़ है।

उसने कहा—लेकिन मैंने कोई चिकित्सा नहीं की ?

लुकमान ने कहा, इसका कोई सवाल नहीं है। क्योंकि मैंने तुझे जिस वृक्ष के नीचे सोता हुआ भेजा था, उससे तू जिन्दा लौट नहीं सकता था। तू लौटा कैसे ? क्या किसी और वृक्ष के नीचे सोता हुआ लौटा ?

उसने कहा कि मुझे आज्ञा दी गयी कि अब बबूल से बचूं और नीम के नीचे सोता हुआ लौट जाऊँ।

असल में बबूल सकअप करता है एनर्जी को। आपकी जो एनर्जी है, जो प्राण-ऊर्जा है उसे बबूल पीता है। बबूल के नीचे भूलकर मत सोना। और अगर बबूल की दातून की जाती रही है तो उसका कुल कारण इतना है कि बबूल की दातून में सर्वाधिक जीवन एनर्जी संग्रहीत होती है। वह आपके दांतों को फायदा पहुँचाती है। बबूल एनर्जी पी लेता है। नीम आपकी एनर्जी नहीं पीता है, बल्कि अपनी एनर्जी आपको दे देता है, अपनी ऊर्जा आप में उड़ेल देता है। लेकिन पीपल के वृक्ष के नीचे भी मत सोना। क्योंकि पीपल का वृक्ष इतनी ज्यादा एनर्जी उड़ेल देता है कि उसकी वजह से आप बीमार पड़ जायेंगे। पीपल का वृक्ष सर्वाधिक शक्ति देने वाला वृक्ष है। इसलिए यह हैरानी की बात नहीं है कि पीपल का वृक्ष बोधि वृक्ष बन गया, उसके नीचे लोगों को बुद्धत्व मिला। उसका कारण है कि वह सर्वाधिक शक्ति दे पाता है। वह अपने चारों ओर शक्ति लुटा देता है। लेकिन साधारण आदमी उतनी नहीं झेल पायेगा। सिर्फ पीपल अकेला वृक्ष है सारी पृथ्वी की वनस्पतियों में, जो रात में भी और दिन में भी—पूरे समय शक्ति दे रहा है। इसलिए उसको देवता कहा जाने लगा। क्योंकि सिर्फ देवता ही हो सकता है, जो लेता नहीं और देता ही चला जाता है।

(२२) "यह शरीर मैं नहीं हूँ"

तो तप का पहला सूत्र आपसे कहता हूँ—इस शरीर से अपना तादात्म्य छोड़ें। यह मानना छोड़ें कि मैं यह शरीर हूँ जो दिखायी पड़ता है, जो छुआ

जाता है। मैं यह शरीर हूं जिसमें भोजन जाता है। मैं यह शरीर हूँ जो पानी पीता है, जिसे भूख लगती है, जो थक जाता है, जो रात सोता है और जो सुबह उठता है। मैं यह शरीर हूँ– इस सूत्र को तोड़ डालें। इस संबंध को छोड़ दें तो ही तप के जगत् में प्रवेश पा सकेंगे। अपने को शरीर मानने से ही सारा भोग फैलता है। यह तादात्म्य, यह आइडेन्टिटी, यह भौतिक शरीर से स्वयं को एक मान लेने की भ्रान्ति आपके जीवन का भोग है। फिर इससे सब भोग पैदा होते हैं। जिस आदमी ने अपने को भौतिक शरीर समझा, वह दूसरे भौतिक शरीर को भोगने को आतुर हो जाता है। इससे सारी काम-वासना पैदा होती है। जिस व्यक्ति ने अपने को यह भौतिक शरीर समझा वह भोजन में बहुत रसातुर हो जाता है। क्योंकि यह शरीर भोजन से ही निर्मित होता है। जिस व्यक्ति ने इस शरीर को अपना शरीर समझा, वह आदमी सब तरह की इंद्रियों के हाथ में पड़ जाता है। क्योंकि वे सब इंद्रियाँ इस शरीर के परिपोषण के मार्ग हैं। इसलिए पहला सूत्र है तप का कि यह शरीर मैं नहीं हूँ, इस तादात्म्य को तोड़ें। इस तादात्म्य को कैसे तोड़ेंगे, यह हम विस्तार से आगे बतायेंगे, लेकिन इस तादात्म्य को तोड़ना है, तो यह संकल्प अनिवार्य है। इस संकल्प के बिना गति नहीं है। और संकल्प से ही तादात्म्य टूट जाता है क्योंकि वह संकल्प से ही निर्मित है। जन्मों-जन्मों के संकल्प का परिणाम है यह मानना कि मैं यह शरीर हूँ।

(२३) तोते में बसे हुए राजा के प्राण

आपने पुरानी कहानियाँ पढ़ी हैं। बच्चों की कहानियों में सब जगह उल्लेख मिलता है, (*अब नयी कहानियों में बन्द हो गया है। क्योंकि कोई कारण नहीं मिलते हैं*) कि कोई सम्राट है। उसका प्राण किसी तोते में बन्द है। अगर उस तोते को मार डालो तो सम्राट मर जायेगा। यह बच्चों के लिए ठीक है। हम समझते हैं कि ऐसा कैसे हो सकता है। लेकिन आप हैरान होंगे जानकर कि यह संभव है, वैज्ञानिक रूप से संभव है। यह कहानी नहीं है, इसके उपयोग किये जाते रहे हैं। अगर एक सम्राट को बचाना है मृत्यु से, तो उसे गहरे सम्मोहन में ले जाकर यह भाव उसको जतलाना काफी है, उसके

अंतरतम में बार-बार दोहराना कि तेरा प्राण तेरे इस शरीर में नहीं है, इस सामने बैठे तोते के शरीर में है। यह भरोसा उसको पक्का हो जाये, यह संकल्प गहरा हो जाये तो वह युद्ध के मैदान में निर्भय चला जायेगा। क्योंकि वह जानता हैं कि उसे कोई भी नहीं मार सकता। उसके प्राण तो तोते में बंद हैं। लेकिन अगर उस सम्राट के सामने आप उसके तोते की गर्दन मरोड़ दें तो वह उसी वक्त मर जायेगा। क्योंकि ख्याल ही सारा जीवन है, विचार जीवन है, संकल्प जीवन है। सम्मोहन ने इस पर बहुत प्रयोग किये हैं और यह सिद्ध हो गया है कि यह बात सच है। आपसे कहा जाय सम्मोहित करके, कि यह कागज आपके सामने रखा है, अगर हम इसे फाड़ देंगे, तो आप बीमार पड़ जाओगे, बिस्तर से न उठ सकोगे। इस तरह तीस दिन १५-१५ मिनट आपको बेहोश करके कहना पड़ेगा कि आपकी प्राण-ऊर्जा इस कागज में है और जिस दिन हम इसको फाड़ेंगे तुम बिस्तर पर पड़ जाओगे, उठ नहीं सकोगे। तीसवें दिन, जब होशपूर्वक आप बैठे हैं, वह कागज फाड़ दिया, आप वहीं गिर जायेंगे, जैसे लकवा खा गया। क्या हुआ? उठ नहीं सकेंगे। बस, संकल्प गहन हो गया। यह हमारा संकल्प है जन्मों-जन्मों का कि यह शरीर मैं हूं। यह संकल्प वैसे ही है जैसे कागज मैं हूं या तोता मैं हूं। इसमें कोई फर्क नहीं है। यह एक ही बात है। इस संकल्प को तोड़े बिना तप की यात्रा नहीं होगी। इस संकल्प के साथ भोग की यात्रा होगी। यह संकल्प हमने किया ही इसलिए है कि हम भोग की ही यात्रा कर सकें। अगर यह संकल्प हम न करें, तो भोग की यात्रा नहीं हो सकेगी।

(२४) जब हाथ सिर्फ एक डंडा भर रह जाता है

अगर मुझे यह पता हो कि यह शरीर मैं नहीं हूं तो हाथ के लिए वह भाव नहीं जगेगा, रस न रह जायेगा कि हाथ से मैं किसी सुन्दर शरीर छुवूं। यह हाथ मैं हूं ही नहीं। यह तो ऐसे ही है जैसे कि एक डंडा हाथ में ले लूं और उस डंडे से किसी का शरीर छूवूं तो कोई मजा न आयेगा। तपस्वी का हाथ भी डंडे की भांति हो जाता है। जैसे ही वह संकल्प को भीतर खोज लेता है कि यह हाथ मैं नहीं हूं, हाथ डंडा हो जाता है। अब उस हाथ से किसी का सुन्दर चेहरा छूना डंडे से छूने जैसा हो गया। कोई मूल्य न रहा। कोई

अर्थ न रहा। और भोग की सीमा गिरनी, टूटनी और सिकुड़नी शुरू हो जायेगी।

भोग का सूत्र है, यह शरीर मैं हूँ। तप का सूत्र है, यह शरीर मैं नहीं हूँ। भोग का सूत्र पाजिटिव है। और अगर तप का इतना ही सूत्र है कि यह शरीर मैं नहीं हूँ, तो तप हार जायेगा, भोग जीत जायेगा क्योंकि तप का सूत्र निगेटिव है। अगर तप का सूत्र नकारात्मक है कि यह मैं नहीं हूँ, तो नकार में आप खड़े नहीं हो सकते। शून्य में खड़े ही नहीं हो सकते। खड़े होने के लिए जगह चाहिए, पाजिटिव चाहिए। जब आप कहते हैं कि शरीर में हूँ, तो कुछ पकड़ में आता है। जब आप कहते हैं यह शरीर मैं नहीं हूँ, तो कुछ पकड़ में नहीं आता। इसलिए तप का दूसरा सूत्र है कि मैं ऊर्जा शरीर हूँ। पहला हुआ कि यह शरीर मैं नहीं हूँ। तत्काल दूसरा सूत्र इसके पीछे खड़ा होना चाहिए कि मैं ऊर्जा शरीर हूँ, एनर्जी बाडी हूँ, प्राण शरीर हूँ। अगर यह दूसरा सूत्र खड़ा न हो, तो आप सोचते रहेंगे कि यह शरीर मैं नहीं हूँ और इसी शरीर में जीते रहेंगे। लोग रोज सुबह बैठ कर कहते हैं—यह शरीर मैं नहीं हूँ। इतना काफी नहीं है। किसी पाजिटिव विल को, किसी विधायक संकल्प को नकारात्मक संकल्प से नहीं तोड़ा जा सकता। उससे भी ज्यादा विधायक संकल्प चाहिए। यह शरीर मैं नहीं हूँ—यह ठीक है, लेकिन आधा ठीक है। मैं प्राण-शरीर हूँ—इससे पूरा सत्य बनेगा। तो दो काम करें। इस शरीर से तादात्म्य छोड़ें और प्राण-ऊर्जा के शरीर से तादात्म्य स्थापित करें। 'बी आइडेन्टिफाइड विथ इट'। मैं यह नहीं हूँ और मैं यह हूँ, और जोर पाजिटिव पर रहे। इम्फैसिस इस बात पर रहे कि मैं ऊर्जा शरीर हूँ। अगर इसपर जोर रहेगा, तो मैं यह भौतिक शरीर नहीं हूँ यह उसका परिणाम मात्र होगा, छाया मात्र होगा। अगर आपका जोर इस बात पर रहा कि यह शरीर मैं नहीं हूँ, तो गलती हो जायेगी। क्योंकि वह मैं जो शरीर हूँ, वह छाया नहीं बन सकता है, वह मूल है, उसे मूल में रखना पड़ेगा। इसलिए पहले यही समझना जरूरी है कि यह शरीर मैं नहीं हूँ। लेकिन जब आप संकल्प करें तो संकल्प पर जोर दूसरे सूत्र पर रहे अर्थात् दूसरा सूत्र संकल्प में पहला सूत्र रहे और पहला सूत्र संकल्प में दूसरा सूत्र। जोर रहे ऊर्जा-शरीर पर, इसलिए मैंने ऊर्जा-शरीर की इतनी

चर्चा की, ताकि आपको ख्याल में आ जाये। और 'यह भौतिक शरीर मैं नहीं हूँ'—यह तप की भूमिका है। इसके बाद अब हम तप के अंगों पर चर्चा करेंगे।

महावीर ने तप के दो रूप, आन्तरिक तप (अंतर-तप) और बाह्य-तप कहे हैं। अन्तर-तप के उन्होंने ६ हिस्से किये हैं और बाह्य-तप में भी ६ हिस्से किये हैं। पहले हम बाह्य-तप से बात शुरू करेंगे, फिर अन्तर-तप पर आयेंगे। और अगर तप की प्रक्रिया ख्याल में आ जाये, संकल्प में चली जाये तो जीवन उस यात्रा पर निकल जाता है जिस यात्रा पर निकले बिना अमृत का कोई अनुभव नहीं है। हम जहाँ हैं, वहाँ बार-बार मृत्यु का ही अनुभव होगा। क्योंकि जो हम नहीं हैं, उससे हमनें अपने को जोड़ रखा है। हम बार-बार टूटेंगे, मिटेंगे, नष्ट होंगे और जितना टूटेंगे, जितना मिटेंगे, उतना ही उसी से अपने को बार-बार जोड़ते चले जायेंगे, जो हम नहीं हैं। जो मैं नहीं हूँ, उससे अपने को जोड़ना मृत्यु के द्वार खोलना है। जो मैं हूँ उससे अपने को जोड़ना अमृत के द्वार खोलना है। तप अमृत के द्वार की सीढ़ी है। ये १२ सीढ़ियाँ हैं, कल से हम उनकी बात शुरू करेंगे।

दसवाँ प्रवचन

पर्युषण व्याख्यान-माला, बम्बई, दिनांक २७ अगस्त, १९७१

भोजन आख्यान अर्थात् महावीर के अनशन प्रयोग

धम्मो मंगलमुक्किट्ठम्, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति, जस्स धम्मे सया मणो ॥१॥

अर्थ :—

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन-सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तप-रूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

महावीर ने तप को दो रूपों में विभाजित किया है। इसलिए नहीं कि तप दो रूपों में विभाजित हो सकता है, बल्कि इसलिए कि हम उसे बिना विभाजित किये नहीं समझ सकते। हम जहाँ खड़े हैं, हमारी समस्त यात्रा वहीं से प्रारंभ होती है। और हम अपने बाहर खड़े हैं। हम वहाँ खड़े हैं, जहाँ हमें नहीं होना चाहिए, हम वहाँ नहीं खड़े हैं जहाँ हमें होना चाहिए। हम अपने को ही छोड़कर, अपने से ही च्युत होकर, अपने से ही दूर खड़े हैं। हम दूसरों से अजनबी हैं—ऐसा नहीं, हम अपने से अजनबी हैं—स्ट्रेंजर्स टु अवरसेल्व्ज। दूसरों का तो शायद हमें थोड़ा बहुत पता भी हो, अपना तो उतना भी पता नहीं है। तप तो विभाजित नहीं हो सकता। लेकिन हम विभाजित मनुष्य हैं। हम अपने से ही विभाजित हो गये हैं। इसलिए हमारी समझ के बाहर होगा अविभाज्य तप। महावीर उसे दो हिस्सों में बाँटते हैं हमारे कारण। इस बात को ठीक से पहले समझ लें, वे हमारे कारण ही उसे दो हिस्सों में बांटते हैं, अन्यथा महावीर जैसी चेतना को बाहर और भीतर का कोई अंतर नहीं रह जाता। जहाँ भेद है, जहाँ फासले हैं, जहाँ खंड हैं, वहाँ तक तो महावीर की अखंड चेतना जन्मी ही नहीं। महावीर तो वहाँ हैं, जहाँ बाहर भी भीतर का ही एक छोर हो जाता है, और जहाँ भीतर भी बाहर का ही एक छोर हो जाता है, जहाँ भीतर और बाहर एक ही अस्तित्व के दो अंग हो जाते हैं, जहाँ भीतर और बाहर दो वस्तुएँ नहीं, किसी एक ही वस्तु के दो पहलू हो जाते हैं। इसलिए यह विभाजन हमारे लिए है। महावीर ने बाह्य-तप और अंतर-तप—दो हिस्से किये हैं। उचित होता, ठीक होता कि अंतर-तप को महावीर पहले रखते। क्योंकि अंतर ही पहला है। वह जो आंतरिक है वही प्राथमिक है।

(१) बाह्य-तप को पहले क्यों रखा गया ?

लेकिन महावीर ने अंतर-तप को पहले नहीं रखा है, पहले रखा है बाह्य-तप को। क्योंकि महावीर दो ढंग से बोल सकते हैं। और इस पृथ्वी पर दो ढंग से बोलने वाले लोग हुए हैं। एक वे लोग, जो वहाँ से बोलते हैं जहाँ वे खड़े हैं, और एक वे लोग, जो वहाँ से बोलते हैं जहाँ सुनने वाला खड़ा है। महावीर की करुणा कहती है कि वे वहीं से बोलें, जहाँ सुनने वाला खड़ा है। महावीर के लिए आंतरिक प्रथम है। लेकिन सुनने वाले के लिए आंतरिक द्वितीय है, बाह्य प्रथम है। तो महावीर जब बाह्य-तप को पहले रखते हैं तो केवल इस कारण कि हम बाहर हैं। इससे सुविधा तो होती है समझने में, लेकिन आचरण करने में असुविधा भी हो जाती है। सभी सुविधाओं के साथ जुड़ी हुई असुविधाएँ हैं। महावीर ने चूंकि बाह्य-तप को पहले रखा है इसलिए महावीर के अनुयायियों ने बाह्य-तप को प्राथमिक समझा है। वहीं भूल हुई है, और तभी बाह्य-तप को करने में ही लगे रहने की लम्बी धारा चली है। और आज करीब-करीब स्थिति ऐसी आ गयी है कि बाह्य-तप ही पूरा नहीं हो पाता, तो आंतरिक तप तक जाने का सवाल ही नहीं उठता। बाह्य-तप ही जीवन को डुबा लेता है। लेकिन बाह्य-तप कभी पूरा नहीं होगा, जब तक कि आंतरिक-तप पूरा न हो, इसे भी ध्यान में ले लें।

अंतर और बाह्य एक ही चीज है। इसलिए कोई सोचता हो कि बाह्य-तप पहले पूरा हो जाये, तब मैं अंतर-तप में प्रवेश करूंगा। तो बाह्य-तप कभी पूरा नहीं होगा, क्योंकि बाह्य-तप स्वयं आधा हिस्सा है, वह पूरा नहीं हो सकता। जैन साधना जहाँ भटक गयी वह यही जगह है कि बाह्य-तप पहले पूरा हो जाये, तो फिर आंतरिक-तप में उतरेंगे। मैं कहता हूँ, बाह्य-तप कभी पूरा नहीं हो सकता। क्योंकि बाह्य जो है वह अधूरा ही है। वह तो पूरा तभी होगा, जब आंतरिक-तप भी पूरा हो। इसका यह अर्थ हुआ कि अगर ये दोनों तप साथ-साथ चलें, तो ही पूरे हो पाते हैं, अन्यथा पूरे नहीं हो पाते हैं। लेकिन विभाजन ने हमें ऐसा समझा दिया कि पहले हम बाहर को पूरा कर लें, पहले बाहर को साध लें फिर भीतर की यात्रा करेंगे। अभी जब बाहर का ही नहीं सध रहा है, तो भीतर की यात्रा कैसे हो सकती है। ध्यान रहे तप एक ही है, बाहर और भीतर सिर्फ काम चलाऊ विभाजन है।

(२) अंग बीमार नहीं होता, बीमारी प्रकट करता है

अगर कोई अपने पैरों को स्वस्थ करना चाहे और सोचे कि पहले पैर स्वस्थ हो जाये, फिर सिर स्वस्थ कर लेंगे, तो वह गलती में है। शरीर एक है, और शरीर का स्वास्थ्य पूरा होता है। अभी तक वैज्ञानिक सोचते थे कि शरीर के अंग बीमार पड़ते हैं, लोकल होती है बीमारी—हाथ बीमार होता है, पैर बीमार होता है, लेकिन अब धारणा बदलती चली जा रही है। अब वैज्ञानिक कहते हैं जब एक अंग बीमार होता है, तो वह इसलिए बीमार होता है कि पूरा शरीर बीमार हो गया है। हाँ, एक अंग से बीमारी प्रकट होती है, लेकिन वह एक अंग की नहीं होती है। मनुष्य का पूरा व्यक्तित्व ही बीमार हो जाता है। यद्यपि बीमारी उस अंग से प्रकट होती है जो सर्वाधिक कमजोर होता है, लेकिन व्यक्तित्व पूरा बीमार हो जाता है। इसलिए हैपोक्रिटीज ने, जिसने कि पश्चिम में चिकित्सा को जन्म दिया, उसने कहा था—'ट्रीट दि डिजीज़' (बीमारी का इलाज करो)। लेकिन अभी पश्चिम के अनेक मेडिकल कालेजों में वह तख्ती हटा दी गयी और वहाँ लिखा हुआ है—'ट्रीट दि पेशेन्ट'। बीमारी का इलाज मत करो, बीमार का इलाज करो। क्योंकि बीमारी लोकलाइज्ड होती है। बीमार फैला हुआ होता है। असली सवाल बीमारी नहीं, असली सवाल है बीमार, पूरा व्यक्तित्व ? अन्तर और बाह्य पूरे व्यक्तित्व के हिस्से हैं। इन्हें साइमल्टेनियसली, युगपत प्रारम्भ करना पड़ेगा। विवेचन जब हम करेंगे तो विवेचन हमेशा वन डायमेंशनल होता है। मैं पहले एक अंग की बात करूंगा, फिर दूसरे की, फिर तीसरे की, फिर चौथे की। स्वभावतः चारों की बात एक साथ कैसे की जा सकती है ? भाषा वन डायमेन्शनल है। एक रेखा में मुझे बात करनी पड़ेगी। पहले मैं आपके सिर की बात करूंगा, फिर आपके हृदय की बात करूंगा, फिर आपके पैर की बात करूंगा। तीनों की बात एक साथ नहीं कर सकता हूं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि तीनों एक साथ नहीं हैं। आपका सिर, आपका हृदय, आपके पैर वे सब युगपत हैं, एक साथ हैं, अलग-अलग नहीं हैं। चर्चा करने में अलग लेना पड़ता है, लेकिन अस्तित्व में वे इकट्ठे हैं। तो यह जो चर्चा मैं करूंगा १२ हिस्सों की ६ बाह्य और ६ आंतरिक—उनकी चर्चा के लिए क्रम होगा, एक, दो, तीन, चार। लेकिन जिन्हें साधना है, उनके लिए क्रम नहीं होगा। एक साथ उन्हें साधना होगा, तभी पूर्णता उपलब्ध होती है, अन्यथा पूर्णता उपलब्ध नहीं होती।

भाषा से बड़ी भूलें पैदा होती हैं। क्योंकि भाषा के पास एक साथ बोलने का कोई उपाय नहीं है। अभी मैं यहाँ हूँ और अगर मैं बाहर जाकर ब्योरा दूं कि मेरे सामने की पंक्ति में कितने लोग बैठे थे, तो मैं पहले पहले का नाम लूंगा, फिर दूसरे का, फिर तीसरे का, फिर चौथे का। यह मेरे बोलने में क्रम होगा। लेकिन वहाँ जो लोग बैठे हैं, उनके बैठने में क्रम नहीं है। वे एक साथ यहाँ मौजूद हैं। उनका अस्तित्व इकट्ठा है, एक साथ है। भाषा उनमें क्रम बना देती है। उसमें कोई आगे हो जाता है, कोई पीछे हो जाता है। लेकिन अस्तित्व में कोई आगे-पीछे नहीं होता। इतनी बात ख्याल में ले लें, फिर हम महावीर के बाह्य-तप से चर्चा शुरू करें।

(३) मनुष्य शरीर का इमरजेंसी अरेंजमेंट

बाह्य-तप में महावीर ने पहला तप कहा है अनशन। अनशन के संबंध में जो भी समझा जाता है वह गलत है। अनशन के सम्बन्ध में जो छिपा हुआ सूत्र है, उसे मैं आपसे कहना चाहता हूँ। उसके बिना अनशन का कोई अर्थ नहीं है। उसे समझकर आपको नयी दिशा का बोध होगा। मनुष्य के शरीर में दोहरे यंत्र हैं, डबल मैकेनिज्म हैं। और दोहरा यंत्र इसलिए है, ताकि इमरजेंसी में, संकट के किसी एक क्षण में एक यंत्र काम न करे, तो दूसरा कर सके। एक यंत्र तो जिससे हम परिचित हैं वह हमारा शरीर है। आप भोजन करते हैं। शरीर भोजन को पचाता है, खून बनाता है, हड्डियाँ बनाता है, मांस-मज्जा बनाता है। ये साधारण यंत्र हैं। लेकिन कभी कोई आदमी जंगल में भटक जाये या सागर में नाव डूब जाये और कई दिनों तक किनारा नहीं मिले, भोजन न मिले, तब शरीर के पास एक इमरजेंसी अरेंजमेंट है, एक संकटकालीन व्यवस्था है। तब शरीर को भोजन तो नहीं मिलेगा, लेकिन भोजन की जरूरत तो जारी रहेगी। क्योंकि श्वांस भी लेना हो, हाथ भी हिलाना हो, जीना भी हो तो भोजन की जरूरत होती ही है। इंधन की जरूरत होती है।

अगर इंधन न मिले, तो आपके शरीर के पास एक ऐसी व्यवस्था चाहिए, जो संकट की घड़ी में आपके शरीर के भीतर जो इकट्ठा इंधन है, उसको ही उपयोग में लाने लगे। शरीर के पास यही दूसरा मैकेनिज्म है। अगर आप सात दिन भूखे रहें, तो भोजन आपको नहीं ले जाना पड़ता, आपके भीतर की चर्बी ही भोजन बननी शुरू हो जाती है। इसलिए उपवास में आपका एक

पौंड वजन रोज गिरता चला जायेगा। वह एक पौंड आपकी ही चर्बी आप पचा गये। कोई ९० दिन तक साधारण स्वस्थ आदमी मरेगा नहीं। क्योंकि इतना रिजर्वायर, इतना संग्रहीत तत्व शरीर के पास है कि कम से कम तीन महीने तक वह अपने को बिना भोजन के जिला सकता है। ये दो व्यवस्थाएँ हैं शरीर की। एक शरीर की व्यवस्था सामान्य है और असमय के लिए, संकट की घड़ी के लिए एक और व्यवस्था है।

(४) अनशन : संक्रमण के अंतराल की पकड़

जब शरीर बाहर से भोजन नहीं पा सके, तो अपने भीतर संग्रहीत भोजन को पचाना शुरू कर देता है। अनशन की प्रक्रिया का राज यह है कि जब शरीर की एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था पर संक्रमण होता है, आप बदलते हैं, तब बीच में कुछ क्षण के लिए आप वहाँ पहुँच जाते हैं, जहाँ शरीर नहीं होता है वही उसका सीक्रेट है। जब भी आप एक चीज से दूसरे पर बदलाहट करते हैं, एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी पर जाते हैं, तो एक क्षण ऐसा होता है कि जब आप किसी भी सीढ़ी पर नहीं होते हैं। जब आप एक स्थिति से दूसरी स्थिति पर छलांग लगाते हैं तो बीच में गैप, अंतराल हो जाता है, यानी जब आप किसी भी स्थिति में नहीं होते, फिर भी होते हैं।

शरीर की एक व्यवस्था है सामान्य भोजन की, अगर यह व्यवस्था बन्द कर दी जाये तो अचानक आपको दूसरी व्यवस्था में रूपांतरित होना पड़ता है। और इस बीच कुछ क्षण हैं जब आप आत्म स्थिति में होते हैं। उन्हीं क्षणों को पकड़ना अनशन का उपयोग है। इसलिए जो आदमी अनशन का अभ्यास करेगा, वह अनशन का फायदा नहीं उठा पायेगा। अनशन सडेन प्रयोग है, आकस्मिक, अचानक प्रयोग। जितना अचानक होगा, जितना आकस्मिक होगा, उतना ही अंतराल का बोध होगा। अगर आप अभ्यासी हैं तो आप एक स्थिति से दूसरी स्थिति में जाने में इतने कुशल हो जायेंगे कि बीच का अंतराल आपको पता ही नहीं चलेगा। इसलिए अभ्यासियों को अनशन से कोई लाभ नहीं होता। और अभ्यास करने की जो प्रक्रिया है वह यही है कि आपको बीच का अंतराल पता नहीं चलता। एक आदमी धीरे-धीरे अभ्यास करता रहे, तो इतना कुशल हो जाता है कि कब उसने स्थिति बदल ली, उसे पता नहीं चलता। हम रोज स्थिति बदलते हैं, लेकिन अभ्यास के

कारण पता नहीं चलता। रात आप सोते हैं। जागने के लिए शरीर दूसरे मैकेनिज्म का उपयोग करता है, सोने के लिए दूसरे का। दोनों के मैकेनिज्म अलग हैं। आप उसी यंत्र से नहीं जागते, जिससे आप सोते हैं। इसीलिए तो अगर आपका जागने का यंत्र बहुत ज्यादा सक्रिय हो, तो आप सो नहीं पाते हैं। इसका और कोई कारण नहीं है, बस आप दूसरी व्यवस्था में प्रवेश नहीं कर पाते हैं, पहली व्यवस्था में अटके रह जाते हैं। अगर आप दूकान धंधे और काम की बात सोचे चले जा रहे हैं, तो आपके जागने का यंत्र काम करता चला जाता है। जब तक वह काम करता है, तब तक चेतना उससे नहीं हट सकती। चेतना तभी हटेगी, जब वहाँ आपका काम बन्द हो जाये। वहाँ काम बन्द होने पर चेतना तत्काल शिफ्ट हो जायेगी। चेतना दूसरे यंत्र पर चली जायेगी, जो निद्रा का है। लेकिन हमें उतना अभ्यास है कि हमें पता नहीं चलता बीच में गैप का। वह जो जागने और नींद के बीच में जो क्षण आता है, वह भी वही है जो भोजन छोड़ने और उपवास के बीच आता है। इसलिए आपकी नींद में भोजन की जरूरत नहीं पड़ती। आप दस घण्टे सोये रहें, तो भोजन की जरूरत नहीं पड़ती है। दस घण्टे जागें, तो भोजन की जरूरत पड़ती हैं।

(५) ध्रुव प्रदेशों का भालू और अनशन

आपको पता है, ध्रुव प्रदेश में पोलर बीयर होता है, भालू होता है। साइबेरिया में ६ महीने जब बर्फ भयंकर रूप से पड़ती है, तो कोई भोजन नहीं मिलता। तब भालू भी बर्फ के नीचे दबकर सो जाता है। वह उसकी ट्रिक है, तरकीब है। क्योंकि नींद में तो भूख नहीं लगती है। वह ६ महीने सोता है। ६ महीने के बाद वह तभी जागता है जब भोजन फिर मिलने की सुविधा शुरू हो जाती है। आपके भीतर जो निद्रा का यन्त्र है, वहाँ भी भोजन की कोई जरूरत नहीं। क्योंकि वह यंत्र वही यंत्र है, जो उपवास में प्रकट होता है। वह आपका इमरजेन्सी अरेंजमेंट है, खतरे की स्थिति में उसका उपयोग करना होता है। इसलिए आप जानकर हैरान होंगे कि अगर बहुत खतरा पैदा हो जाये, तो आदमी नींद में चला जाता है। अगर इतना खतरा पैदा हो जाये कि आप अपने मस्तिष्क से उसका मुकाबला न कर सकें तो आप नींद में चले जायेंगे। आपका जागृत मस्तिष्क उसको सहने में असमर्थ होता है, तो चेतना तत्काल शिफ्ट हो जाती है और आप गहरी तन्द्रा में चले जाते हैं या बेहोश हो जाते हैं। बेहोशी दुःख से बचने का उपाय है। हम अक्सर कहते हैं

कि मुझे बड़ा असह्य दुःख है। लेकिन ध्यान रहे कि असह्य दुःख कभी नहीं होता। असह्य होने के पहले आप बेहोश हो जाते हैं। जब तक सहनीय होता है तभी तक आप होश में होते हैं। जैसे ही असहनीय होता है, आप बेहोश हो जाते हैं। इसलिए असह्य दुःख को कोई आदमी कभी नहीं भोग पाता। भोग ही नहीं सकता, इंतजाम ऐसा है कि असह्य दुःख होने के पहले आप बेहोश हो जाते हैं। इसलिए मरने के पहले अधिक लोग बेहोश हो जाते हैं। क्योंकि मरने के पहले जिस यन्त्र से आप जी रहे थे, उसकी अब कोई जरूरत नहीं रह जाती। चेतना शिफ्ट हो जाती है उस यंत्र पर, जो इस यंत्र के पीछे छिपा है। मरने के पहले आप दूसरे यंत्र पर उतर जाते हैं।

(६) सूफी बोले : सोना मत

मनुष्य के शरीर में दोहरा शरीर है। एक शरीर है जो दैनन्दिन काम का है, जागने का, उठने का, बैठने का, बात करने का, सोचने का, व्यवहार का। एक और यंत्र है छिपा हुआ भीतर, जो संकटकालीन है। अनशन का प्रयोग उस संकटकालीन यन्त्र में प्रवेश का है। इस तरह से बहुत प्रयोग हैं, जिनसे मध्य का गैप, मध्य का जो अंतराल है, वह उपलब्ध होता है। सूफियों ने अनशन का उपयोग नहीं किया है। सूफियों ने जागने का उपयोग किया है। एक ही बात है उसमें, कोई फर्क नहीं है। प्रयोग अलग है, परिणाम एक है। सूफियों ने रात को जागने का प्रयोग किया है यानी सोना मत, जागे रहो। इतने जागे रहो कि जब नींद पकड़े तो नींद में मत जाओ। जागे ही रहो। अगर जागने की चेष्टा जारी रही और जागने का यंत्र थक गया और बंद हो गया और एक क्षण को भी आप उस हालत में रह गये, जब जागना भी न रहा और नींद भी न रही, तो आप बीच के अंतराल में उतर जायेंगे। इसलिए सूफियों ने नाइट विजिलेन्स को, रात्रि जागरण को बड़ा महत्व दिया है। महावीर ने उसी प्रयोग को अनशन के द्वारा किया है। प्रयोग वही है।

तन्त्र का एक अद्‌भुत ग्रंथ है 'विज्ञान भैरव।' उसमें शंकर ने पार्वती से ऐसे सैंकड़ों प्रयोग कहे हैं। हर प्रयोग दो पंक्तियों का है। हर प्रयोग का परिणाम वही है कि बीच का गैप आ जाये। शंकर कहते श्वांस भीतर जाती और बाहर जाती है। पार्वती, तू दोनों के बीच में ठहर जाना, तो तू स्वयं को जान लेगी। जब श्वांस बाहर भी नहीं जा रही हो और भीतर भी नहीं

भा रही हो, तब तू ठहर जाना दोनों के बीच में। किसी से प्रेम होता है, किसी से घृणा होती है। वहाँ ठहर जाना जब प्रेम भी नहीं होता है और घृणा भी नहीं होती है। दोनों के बीच में ठहर जाना, तू स्वयं को उपलब्ध हो जायेगी। दुःख और सुख में वहाँ ठहर जाना जहाँ न दुःख है, न सुख है, दोनों के बीच में, मध्य में, और तू ज्ञान को उपलब्ध हो जायेगी। अनशन उसी का एक व्यवस्थित प्रयोग है।

(७) महावीर ने अनशन क्यों चुना?

और महावीर ने अनशन क्यों चुना? मैं मानता हूँ दो श्वांसों के बीच ठहरना बहुत कठिन मामला है। क्योंकि श्वांस जो है वह नॉन वालन्टरी है। वह आपकी इच्छा से नहीं चलती। वह आपकी इच्छा के बिना चलती है। आपकी कोई जरूरत नही होती उसके लिए। आप रात में सोये रहते हैं, तब भी चलती रहती है। भोजन नहीं चल सकता सोने में क्योंकि भोजन वालन्टरी है। आपकी इच्छा से रुक भी सकता है, चल भी सकता है, आप ज्यादा भी कर सकते हैं, कम भी कर सकते हैं। आप भूखे भी रह सकते हैं तीस दिन, लेकिन बिना श्वांस के नहीं रह सकते। श्वांस के बिना तो थोड़े से क्षण भी रह जाना मुश्किल हो जायेगा। और बिना श्वांस के अगर थोड़े से क्षण भी रहे, तो इतने बेचैन हो जायेंगे कि उस बेचैनी में वह बीच का जो गैप है, वह दिखायी नहीं पड़ेगा, बेचैनी ही रह जायेगी। इसलिए महावीर ने श्वांस का प्रयोग नहीं कहा। महावीर ने एक वालन्टरी हिस्सा चुना। भोजन वालन्टरी हिस्सा है। नींद भी सूफियों ने जो चुना है, वह भी थोड़ी कठिन है। क्योंकि नींद भी नॉन वालन्टरी है। आप अपनी कोशिश से नहीं ले सकते। आती है तब आ जाती है। नहीं आती है तो लाख उपाय करो नहीं आती। नींद भी आपके वश में नहीं है। महावीर ने बहुत सरल सा प्रयोग चुना है, जिसे बहुत लोग कर सकें। वह है भोजन।

इनमें एक तो सुविधा यह है कि ९० दिन तक न भी करें, तो कोई खतरा नहीं है। अगर ९० दिन तक बिना सोये रह जायें तो पागल हो जायेंगे। ९० दिन तो बहुत दूर है, ९ दिन भी अगर बिना सोये रह जायें तो पागल हो जायेंगे। सब ब्लर्ड हो जायेगा। पता नहीं चलेगा कि जो दिख रहा है, वह सपना है या सच है। अगर ९ दिन आप न सोयें तो आप फर्क न कर पायेंगे

कि इस हाल में जो लोग बैठे हैं, वे सच में बैठे हैं कि आप कोई सपना देख रहे हैं। ब्लर्ड हो जायेंगे। नींद और जागरण ऐसा कनफ्यूज्ड हो जायेगा कि कुछ पक्का नहीं रहेगा कि क्या हो रहा है। न पता चलेगा कि आप जो सुन रहे हैं, वह वस्तुतः बोला जा रहा है या सिर्फ आप सुन रहे हैं। यह तय करना मुश्किल हो जायेगा। और यह खतरनाक भी है, क्योंकि विक्षिप्त होने का पूरा डर है। आज माओ के अनुयायी चीन में जो सबसे बड़ी पीड़ा दे रहे हैं अपने विरोधियों को, वह यह है कि उनको न सोने देंगे। भूखे मारकर ज्यादा परेशान नहीं कर सकते, क्योंकि ७-८ दिन के बाद भूख बन्द हो जाती है। शरीर दूसरे यंत्र पर चला जाता है। ७-८ दिन के बाद भूख नहीं लगती, भूख समाप्त हो जाती है। क्योंकि शरीर नये ढंग से भोजन पाना शुरू कर देता है, भीतर से भोजन पाने लगता है। लेकिन नींद बहुत मुश्किल मामला है। सात दिन भी आदमी को बिना सोये रख दिया जाये, तो वह विक्षिप्त हो जाता है। उसकी बुद्धि इतनी ज्यादा डावांडोल हो जाती है कि उससे फिर आप कुछ भी कहें, वह मानना शुरू कर देता है, वलनरेबल हो जाता है। इसलिए चीन में विरोधियों को सात या नौ दिन बिना सोये रखेंगे और फिर कम्युनिज्म का प्रचार उसके सामने किया जायेगा, कम्युनिज्म की किताब पढ़ी जायेगी, माओ का संदेश सुनाया जायेगा। अब वह इस हालत में नहीं होता है कि रेसिस्ट कर सके कि तुम जो कह रहे हो, वह गलत है। तर्क टूट जाता है। नींद के विकृत होने के साथ ही तर्क टूट जाता है। अब उसको मानना ही पड़ेगा कि जो आप कह रहे हैं, ठीक कह रहे हैं। नींद का प्रयोग इसीलिए महावीर ने नहीं किया है, अनशन का प्रयोग किया है। मनुष्य के हाथ में जो सर्वाधिक सुविधापूर्ण सरलतम प्रयोग है दो यंत्रो के बीच में ठहर जाने का, वह है अनशन।

लेकिन आप अगर अभ्यास कर लें, तो फिर कोई अर्थ नहीं रह जायेगा। यह प्रयोग आकस्मिक है, अचानक आपने भोजन नहीं लिया। और जब आपने भोजन नहीं लिया तब न तो ध्यान रखें भोजन का, न उपवास का; बस, ध्यान रखें उस माध्यम के बिन्दु का कि वह कब आता है। आंख बंद कर लें और भीतर ध्यान रखें कि शरीर का यंत्र कब स्थिति बदलता है। तीन दिन में, चार दिन में, पांच दिन में, सात दिन में कभी तो स्थिति बदली ही जायेगी। और जब स्थिति बदलती है तब आप बिल्कुल दूसरे लोक में प्रवेश करते हैं। आपको पहली दफा पता चलता है कि आप शरीर नहीं हैं, न तो वह शरीर,

जो अब तक काम कर रहा था और न यह शरीर, जो अब काम कर रहा है। दोनों के बीच में एक क्षण का बोध भी, कि मैं शरीर नहीं हूं, मनुष्य के जीवन में अमृत का द्वार खोल देता है।

(८) ये अनशन—अभ्यासी !

लेकिन महावीर के पीछे जो परंपरा चल रही है, वह अनशन का अभ्यास कर रही है, अभ्यास हो रहा है। वर्ष-वर्ष अभ्यास कर रही है, जीवन पर अभ्यास कर रही है। वे बिल्कुल अभ्यासी हो गये हैं। और जितने अभ्यासी उतने अंधे समझिये। अब उनको कुछ दिखायी नहीं पड़ेगा। जैसे आप अपने घर जिस रास्ते से रोज-रोज आते हैं, उस रास्ते पर आप अंधे होकर चलने लगते हैं। फिर आपको उस रास्ते पर कुछ दिखायी नहीं पड़ता। लेकिन जब कोई आदमी पहली दफा उस रास्ते पर आता है तब उसे सब दिखायी पड़ता है। अगर आप कश्मीर जायेंगे तो डल झील पर आपको जितना दिखायी पड़ता है, मांझी को जो आपको घुमा रहा है उतना दिखलायी नहीं पड़ता। वह अंधा हो जाता है। अभ्यास अंधा कर देता है। इसलिए जिनके साथ हम रहते हैं, उनके चेहरे दिखायी नहीं पड़ते। अगर ट्रेन में आपको कोई अजनबी मिल गया है तो उसका चेहरा आपको अभी भी याद हो सकता है। लेकिन अपने माता या पिता का चेहरा आप आंख बंद करके याद करेंगे तो ब्लर्ड हो जायेगा, याद नहीं आयेगा। नहीं याद करें, तो आपको लगेगा कि मुझे मालूम है कि मेरे पिता का चेहरा कैसा है। आंख बंद करें और याद करें, तो आप पायेंगे, खो गया। नहीं मिलता कि कैसा है। पिता का चेहरा फिर भी दूर है। आप अपना चेहरा तो रोज आईने में देखते हैं। आंख बंद करें और याद करें, खो जायेगा, नहीं मिलेगा। आप अंधे की तरह आईने के सामने देख लेते हैं। अभ्यास पक्का है। अभ्यास अंधा कर देता है। और जो सूक्ष्म चीजें हैं, वे दिखायी नहीं पड़ती हैं।

और यह बहुत सूक्ष्म बिन्दु है। भोजन और अनशन के बीच जो संक्रमण है, ट्रांजिशन है, वह बहुत सूक्ष्म और बारीक है, बहुत डेलिकेट है, बहुत नाजुक है, जरा से अभ्यास से आप उसको चूक जायेंगे। इसलिए अनशन का भूलकर अभ्यास न करें। कभी अचानक उसका उपयोग बहुत कीमती है, बहुत अद्भुत है। जैसे अचानक आप यहां सोये थे इस कमरे में और आपकी नींद

खुले और आप पायें कि आप डल झील पर हैं, तो आपकी मौजूदगी जितनी सघन होगी, इतनी आप यहाँ से यात्रा करके डल झील पर जायें, तो नहीं होगी।

(९) सावधान ! गुरजिएफ खाना लिये तैयार है

गुरजिएफ के पास जो लोग साधना के लिए जाते थे तो वह यही काम करता था लेकिन बहुत उल्टे ढंग से। कोई जैन नहीं सोच सकेगा कि गुरजिएफ और महावीर के बीच कोई भी नाता हो सकता है। आप गुरजिएफ के पास जाते, तो पहले वह आपको बहुत ज्यादा खिलाना-पिलाना शुरू करता। इतना कि आपको लगे कि मर जाऊँगा। वह जिद करता था। कई लोग तो इसलिए भाग जाते थे कि उतना खाना खाने के लिए राजी नहीं हो सकते थे। रात दो बजे तक वह खाना खिलाता था। वह इतना आग्रह करता (और गुरजिएफ जैसा आदमी अगर आपसे आग्रह करे या महावीर आपके सामने थाली रखते चले जायें, तब तो आपको इन्कार करना भी मुश्किल होगा) कि खिलाता चला जाता। इतना कि ओवरफ्लो हो जाये भोजन। वह दस-पाँच दिन आपको इतना खिलाता है कि खाने की व्यवस्था बुरी तरह अरुचिकर हो जाती हैं। ध्यान रहे, अनशन भोजन में रुचि पैदा कर सकता है। अत्यधिक भोजन अरुचि पैदा कर देता है। वह इतना खिलाता है, इतना खिलाता है कि आप घबड़ा जाते हैं, भागने को हो जाते हैं, कहते हैं कि मर जाऊँगा। यानी पेट ही पेट का स्मरण रहता है २४ घंटे। तभी अचानक वह आपको अनशन करा देता है। और गैप बड़ा हो जाता है। एक अति से फिर एकदम दूसरी अति पर धक्का दे देता है। गुरजिएफ गर्म पानी में नहलाता इतना कि आपको जलने लगे और फिर ठण्डे फव्वारे के नीचे खड़ा कर देता और कहता—'बी अवेयर आफ दि गैप।' वह जो गर्म पानी में शरीर तप्त हो गया था, पसीना-पसीना हो गया था। फिर एकदम ठण्डे पानी में डाल दिया। अक्सर वह ऐसा करता है कि आग की अंगीठियाँ जलाकर बैठा देता है। बाहर बर्फ पड़ रही है, पसीना-पसीना हो जाते हैं। आप चिल्लाते लगते हैं कि मैं मर जाऊँगा, जल जाऊँगा, मुझे बाहर निकालो। मगर वह नहीं मानता। अचानक दरवाजा खोलता हैं और कहता है भागो सामने की झील में, बर्फीले पानी में कूद जाओ। और वह कहता कि 'बी अवेयर आफ दि गैप।' गर्म से एकदम ठण्डे में जो अति है उसके बीच में जो संक्रमण का क्षण है, उसका ध्यान रखना।

(१०) सकल खेल उस विन्दु का

महावीर के अनशन में भी वह प्रयोग है। बस मध्य का विन्दु ख्याल में आ जाये। जब हम एक शरीर से दूसरे शरीर पर बदलते हैं, बदलाहट करते हैं जैसे एक नाव से कोई दूसरी नाव पर बदलाहट करते हों, तो एक क्षण को दोनों नावें छूट जाती हैं। एक क्षण को हम बीच में होते हैं। जैसे छलाँग लगायी, लेकिन पहली नाव से हट गये और दूसरी नाव में नहीं पहुँचे। अभी झील के ऊपर हैं। ठीक वैसी ही छलाँग भीतर अनशन में लगती है। और उस छलाँग के क्षण में अगर आप होश से भर जायें, जागृत होकर देख लें, तो आपको पहली बार एक क्षण भर के लिए एक जरा-सा अनुभव की दृष्टि का द्वार खुलता हुआ मालूम पड़ेगा। वही अनशन का उपयोग है।

लेकिन जैन साधु अनशन का अभ्यास कर लेता है। उसे वह क्षण कतई नहीं मिलेगा। वह अभ्यास की बात नहीं है, वह आकस्मिक प्रयोग है। अभ्यास तो उसी बात को मार डालेगा जिस बात के लिए प्रयोग है। इसलिए भूलकर अनशन का अभ्यास न करना आकस्मिक छलाँग लगा लेना एक अति से दूसरी अति पर, ताकि बीच का हिस्सा ख्याल में आ जाये। अगर आपको विश्राम में जाना हो, तो किताबें हैं, जो आपको समझाती हैं कि बस लेट जायें, ऐंड जस्ट रिलैक्स, और बस विश्राम करें। आप कहेंगे कैसे ? अगर 'जस्ट रिलैक्स' इतना आसान होता तो हम पहले ही कर गये होते। आप कहते हैं कि बस लेट जाओ और रिलैक्स कर जाओ, विश्राम में चले जाओ। कैसे चले जायें ! लेकिन जेपान में झेन फकीर ऐसी सलाह नहीं देते। जो आदमी नहीं सो पाता है, विश्राम नहीं कर पाता है, वे उससे कहते हैं पहले 'बी टेन्स ऐज मच यू केन,' हाथ-पैरों को खींचो, जितना मस्तिष्क को खींच सकते हो खींचो, हाथ-पैरों को जितना तनाव दे सकते हो दो, बिल्कुल पागल की तरह अपने शरीर के साथ व्यवहार करो, जितना तुम तन सकते हो तनो, रिलैक्स भर मत होना, वे कहते हैं मस्तिष्क को जितना सिकोड़ सकते हो, माथे की रेखाएँ जितनी पैदा कर सकते हो करो। सारे अंगों को ऐसे सिकोड़ लो, जैसे कि बस आखिरी क्षण आ गया है। सारी शक्ति को सिकोड़कर खींच डालो। और जब एक शिखर आता है तनाव का, तब जेन फकीर कहता है, नाउ, रिलैक्स। अब छोड़ो। आप एक अति से ठीक दूसरी अति में गिर जाते हैं। और जब आप

एक अति से दूसरे अति में गिरते हैं तो बीच में जो क्षण आता है मध्य का, वहाँ स्वयं का पहला स्वाद मिलता है।

इसके बहुत प्रयोग हैं, लेकिन सब प्रयोग एक अति से दूसरी अति में जाने के हैं। कहीं से भी एक अति से दूसरे अति में प्रवेश कर जायें। अगर अभ्यास हो गया तो मध्य का बिन्दु छोटा हो जाता है। इतना छोटा हो जाता है कि पता भी नहीं होता। उसका कोई बोध नहीं होता। अनशन की कुछ और दो-तीन बातें ख्याल में ले लेनी चाहिए कि महावीर का जोर अनशन पर बहुत ज्यादा था, उसके कारण क्या होंगे? एक तो मैंने यह बताया जो उसका आन्तरिक हिस्सा है, उसका गूढ़तम हिस्सा, उसका राज, उसका सीक्रेट इसीमें हैं। लेकिन और क्या बात है? महावीर जानते हैं, और जिन्होंने भी प्रयोग किये हैं उस दिशा में वे भी जानते हैं कि इस शरीर से आपका जो संबंध है, वह भोजन के द्वारा है। इस शरीर और आपके बीच जो सेतु है, वह भोजन है। अगर यह जानना है कि मैं यह शरीर नहीं हूँ तो उस क्षण में जानना आसान होगा जब आपके शरीर में भोजन बिल्कुल नहीं है। जब जोड़ने वाला लिंक बिल्कुल नहीं है तभी जानना आसान होगा कि मैं शरीर नहीं हूँ। जोड़नेवाली चीज जितनी ज्यादा शरीर पर मौजूद होगी, जानना उतना ही मुश्किल होगा। भोजन ही जोड़ता है, इसलिए भोजन के अभाव में ९० दिन बाद संबंध टूट जायेगा, आत्मा अलग हो जायेगी, शरीर अलग हो जायेगा, क्योंकि बीच का जो जोड़नेवाला हिस्सा था, वह अलग हो गया है, वह बीच से गिर गया है। तो महावीर कहते हैं जब तक शरीर में भोजन पड़ा है, तब तक जोड़ है। उस स्थिति में अपने को ले जाओ, जब शरीर में बिल्कुल भोजन नहीं हो, तो तुम आसानी से जान सकोगे कि तुम शरीर से अलग हो, पृथक हो। आइडेन्टिफिकेशन टूट सकेगा, तादात्म्य टूट सकेगा।

(११) यह प्रयोग है होश का

जितना ज्यादा शरीर में भोजन होता है, उतना शरीर के साथ तादात्म्य होता है! इसलिए भोजन के बाद नींद तत्काल आनी शुरू हो जाती है। शरीर के साथ तादात्म्य बढ़ जाता है तो मूर्च्छा बढ़ जाती है। शरीर के साथ तादात्म्य टूट जाता है तो होश बढ़ता है। इसलिए उपवास में आदमी को नींद आना मुश्किल होता है। बिना खाये रात नींद मुश्किल हो जाती है। इससे

तीसरी वात ख्याल में ले लें। महावीर का सारा का सारा प्रयोग जागरण का है, अमूर्छा का है, होश का, अवेयरनेस का है।

महावीर कहते हैं, भोजन चूंकि मूर्छा को वढ़ाता है, तन्द्रा पैदा करता है, भोजन के वाद नींद अनिवार्य हो जाती है इसलिए भोजन न लिया गया हो, तो इससे उल्टा होगा, होश वढ़ेगा, अवेयरनेस वढ़गी, जागरण वढ़ेगा। यह तो हम सव का अनुभव है। एक अनुभव तो यह है कि भोजन के वाद नींद वढ़ती है। दूसरा यह कि रात अगर खाली पेट सो कर देखें तो पता चल जायेगा कि नींद मुश्किल हो जाती है, वार-वार टूट जाती है और पेट भरा हो तो नींद वढ़ती है। क्यों ? उसका वैज्ञानिक कारण है। शरीर के अस्तित्व के लिए भोजन सर्वाधिक महत्वपूर्ण चीज है। आपकी बुद्धि से भी ज्यादा।

(१२) चोरों ने कहा : गोली मार दूंगा

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन को चोरों ने एक दफा घेर लिया और उन्होंने कहा कि जेव खाली करते हो या नहीं, वरना खोपड़ी में पिस्तौल मार दूंगा। मुल्ला ने कहा—विना खोपड़ी के चल जायेगा, लेकिन विना खाली जेव के कैसे चलेगा ! वहुत से लोग मैंने देखे हैं, विना खोपड़ी के चल रहे है। लेकिन खाली जेव नहीं चलेगा। तुम खोपड़ी में गोली मार दो।

चोर वहुत हैरान हुए होंगे। लेकिन मुल्ला ने ठीक कहा। हम भी यही जानते हैं। ऐसी कथा है कि मुल्ला के मस्तिष्क का आपरेशन किया गया। एक डाक्टर ने नयी चिकित्सा विधि विकसित की थी, जिसमें वह पूरे मस्तिष्क को निकाल लेता है, उसे ठीक करता है और फिर वापस डालता है। जव मस्तिष्क को निकाल कर दूसरे कमरे में ठीक करने गया और जव ठीक करके लौटा तो देखा कि मुल्ला जा चुका है। ६ साल वाद मुल्ला लौटा। वह डाक्टर परेशान हो गया। उसने कहा तुम इतने दिन रहे कहाँ और तुम भाग कैसे गये ? और इतने दिन तक तुम वचे कैसे ? वह खोपड़ी तो तुम्हारी मेरे पास रखी है। मुल्ला ने कहा—नमस्कार। उसके विना वड़े मजे से दिन कटे और मुझे एलेक्शन में चुन लिया गया। आजकल मैं दिल्ली में हूं। राजधानी से लौट रहा हूं। और अव जरूरत नहीं है। अव क्षमा करें। सिर्फ यही कहने आया हूं कि अव आप परेशान न हों।

(१३) और यह तंद्रा क्यों ?

प्रकृति भी आपकी बुद्धि की फिक्र में नहीं है, आपके पेट की फिक्र में है। इसलिए जैसे ही पेट में भोजन पड़ता है आपके शरीर की सारी ऊर्जा पेट के भोजन को पचाने के लिए दौड़ जाती है। आपके मस्तिष्क की ऊर्जा, जो आपको जागृत रखती है, वह पेट की तरफ उतर जाती है और पचाने में लग जाती है। इसलिए आपको तंद्रा मालूम होती है। ये वैज्ञानिक कारण है। इसलिए आपको तंद्रा मालूम होती है, क्योंकि आपके मस्तिष्क की ऊर्जा जो मस्तिष्क में काम आती है वह अब पेट में भोजन पचाने में काम आती है। इसलिए जो लोग भी इस पृथ्वी पर मस्तिष्क से अधिक काम लेते हैं, उनका भोजन रोज-रोज कम होता चला जाता है। जो लोग मस्तिष्क से काम नहीं लेते, उनका भोजन बढ़ता चला जाता है। क्योंकि वही जीवन रह जाता है और कोई जीवन नहीं रह जाता। महावीर ने यह अनुभव किया कि जब भोजन बिल्कुल नहीं होता शरीर में, तो प्रज्ञा अपनी पूरी शुद्ध अवस्था में होती है। क्योंकि तब सारे शरीर की ऊर्जा मस्तिष्क को मिल जाती है, क्योंकि पेट को कोई जरूरत नहीं रह जाती पचाने की। महावीर को और आगे समझेंगे तो हमें ख्याल में आ जायेगा कि महावीर कहते थे: भोजन बिल्कुल बन्द हो, शरीर की सारी क्रियाएं बन्द हों, शरीर किसी मूर्ति की तरह ठहरा रह जाये, हाथ भी नहीं हिले, अंगुली भी व्यर्थ न हिले, सब क्रिया मिनिमम पर आ जाये, बिल्कुल न्यूनतम पर, तो शरीर की पूरी ऊर्जा जो अलग-अलग बँटी है, वह मस्तिष्क को उपलब्ध हो जाती है और मस्तिष्क पहली दफे जागने में समर्थ होता है, नहीं तो जागने में समर्थ नहीं होता। अगर महावीर ने भोजन में भी पसंदगियाँ कीं कि शाकाहार हो, मांसाहार न हो, तो वह सिर्फ अहिंसा के ही कारण नहीं था। उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण कारण दूसरा था और वह यह था कि मांसाहार पचने में ज्यादा शक्ति माँगता है और बुद्धि की मूर्च्छा बढ़ती है।

अहिंसा अकेला कारण होता तो महावीर कह सकते थे कि मरे हुए जानवर लेने में कोई हर्जा नहीं है। बुद्ध ने कहा था, अगर अहिंसा ही एकमात्र कारण है तो मार के मत खाओ। क्योंकि मारने में हिंसा है, मांस खाने में तो कोई हिंसा नहीं है। एक जानवर मर गया है, हम तो मार नहीं रहे हैं, मर गया है। अगर उसका मांस खा रहे हैं, तो मांस खाने में कौन-सी हिंसा है? मरे

हुए जानवर का मांस खाने में कोई भी हिंसा नहीं है। इसलिए बुद्ध ने आज्ञा दे दी थी कि मरे हुए जानवर का मांस खाया जा सकता है।

लेकिन महावीर ने मरे हुए जानवरों का मांस खाने की भी आज्ञा नहीं दी। क्योंकि महावीर का प्रयोजन मात्र अहिंसा नहीं है। महावीर का उससे भी गहरा प्रयोजन यह कि मांस पचाने में ज्यादा शक्ति माँगता है, शरीर को ज्यादा भारी कर जाता है, पेट को ज्यादा महत्वपूर्ण कर जाता है। इससे मस्तिष्क की ऊर्जा क्षीण होती है और तन्द्रा गहरी होती है। इसलिए महावीर ने ऐसे हल्के भोजन की सलाह दी है जो कम से कम शक्ति माँगे और मस्तिष्क की ऊर्जा संचरित हो। यदि मस्तिष्क में ऊर्जा का प्रवाह बना रहे, तो ही आप जागृत रह सकते हैं यानी अभी जिस स्थिति में आप हैं। इसलिए इसको बाह्य-तप कहा है, आन्तरिक-तप नहीं कहा है। जो आदमी आन्तरिक को तप उपलब्ध हो जायेगा वह तो नींद में भी जागा रहता है। उसका तो कोई सवाल ही नहीं है। उसे तो आप शराब भी पिला दें तो भी वह होश में होता है, मारफिया दे दें तो भी शरीर सुस्त हो जाता है, शरीर ही ढ़ीला पड़ जाता है, भीतर उसकी ज्योति जागती रहती है, उसकी प्रज्ञा पर कोई भेद नहीं पड़ता, लेकिन हमारी हालत ऐसी नहीं है। हमें तो जरा-सा भोजन का एक टुकड़ा भी हमारी कांसेसनेस को बदलता है, हमारी चेतना को बदलता है। जरा सा एक टुकड़ा हमारी चेतना को डावाँडोल कर देता है। हम भीतर और हो जाते हैं। तो महावीर ने कहा है कि चेतना को बढ़ाना है, तो जब भोजन शरीर में नहीं है तब आसानी से बढ़ाव हो सकेगा। छोटी-छोटी बातों के परिणाम होते हैं। क्योंकि हम जहाँ जीते हैं वहाँ छोटी-छोटी चीजों से ही भरे हुए और बँधे हुए हैं। जिस दिन भी हम आदमी को भोजन की जरूरत से मुक्त कर सकेंगे, उसी दिन आदमी परिपूर्ण रूप से चेतना से भर जायेगा। हम पृथ्वी से नहीं बँधे हैं, पेट से बँधे हैं। हमारा गहरा बन्धन पदार्थ से नहीं है, ठीक कहें तो भोजन से है।

(१४) भोजन छोड़ दिया : भोजन का चिंतन चालू रखा

जिस मात्रा में आप भोजन के लिए आतुर हैं, उसी मात्रा में आप मूर्च्छित होंगे, और आपके भीतर जागरण को लाने में अड़चन पड़ेगी, कठिनाई पड़ेगी। यह सवाल इतना ही नहीं है कि भोजन छोड़ दिया, यह तो सिर्फ बाह्य-रूप है। भीतर चेतना कैसे बढ़े? उसको हम आन्तरिक तप में समझ पायेंगे कि चेतना

हुए जानवर का मांस खाने में कोई भी हिंसा नहीं है। इसलिए बुद्ध ने आज्ञा दे दी थी कि मरे हुए जानवर का मांस खाया जा सकता है।

लेकिन महावीर ने मरे हुए जानवरों का मांस खाने की भी आज्ञा नहीं दी। क्योंकि महावीर का प्रयोजन मात्र अहिंसा नहीं है। महावीर का उससे भी गहरा प्रयोजन यह कि मांस पचाने में ज्यादा शक्ति माँगता है, शरीर को ज्यादा भारी कर जाता है, पेट को ज्यादा महत्वपूर्ण कर जाता है। इससे मस्तिष्क की ऊर्जा क्षीण होती है और तन्द्रा गहरी होती है। इसलिए महावीर ने ऐसे हल्के भोजन की सलाह दी है जो कम से कम शक्ति मांगे और मस्तिष्क की ऊर्जा संचरित हो। यदि मस्तिष्क में ऊर्जा का प्रवाह बना रहे, तो ही आप जागृत रह सकते हैं यानी अभी जिस स्थिति में आप हैं। इसलिए इसको बाह्य-तप कहा है, आन्तरिक-तप नहीं कहा है। जो आदमी आन्तरिक को तप उपलब्ध हो जायेगा वह तो नींद में भी जागा रहता है। उसका तो कोई सवाल ही नहीं है। उसे तो आप शराब भी पिला दें तो भी वह होश में होता है, मारफिया दे दें तो भी शरीर सुस्त हो जाता है, शरीर ही ढ़ीला पड़ जाता है, भीतर उसकी ज्योति जागती रहती है, उसकी प्रज्ञा पर कोई भेद नहीं पड़ता, लेकिन हमारी हालत ऐसी नहीं है। हमें तो जरा-सा भोजन का एक टुकड़ा भी हमारी कांसेसनेस को बदलता है, हमारी चेतना को बदलता है। जरा सा एक टुकड़ा हमारी चेतना को डावाँडोल कर देता है। हम भीतर और हो जाते हैं। तो महावीर ने कहा है कि चेतना को बढ़ाना है, तो जब भोजन शरीर में नहीं है तब आसानी से बढ़ाव हो सकेगा। छोटी-छोटी बातों के परिणाम होते हैं। क्योंकि हम जहाँ जीते हैं वहाँ छोटी-छोटी चीजों से ही भरे हुए और बँधे हुए हैं। जिस दिन भी हम आदमी को भोजन की जरूरत से मुक्त कर सकेंगे, उसी दिन आदमी परिपूर्ण रूप से चेतना से भर जायेगा। हम पृथ्वी से नहीं बंधे हैं, पेट से बँधे हैं। हमारा गहरा बन्धन पदार्थ से नहीं है, ठीक कहें तो भोजन से है।

(१४) भोजन छोड़ दिया : भोजन का चिंतन चालू रखा

जिस मात्रा में आप भोजन के लिए आतुर हैं, उसी मात्रा में आप मूर्च्छित होंगे, और आपके भीतर जागरण को लाने में अड़चन पड़ेगी, कठिनाई पड़ेगी। यह सवाल इतना ही नहीं है कि भोजन छोड़ दिया, यह तो सिर्फ बाह्य-रूप है। भीतर चेतना कैसे बढ़े? उसको हम आन्तरिक तप में समझ पायेंगे कि चेतना

कैसे बढ़ेगी। भोजन छोड़ कर कभी - कभी चेतना बढ़ाने का प्रयोग कीमती है। हम जब भोजन छोड़ते हैं तो चेतना नहीं बढ़ती, केवल भोजन का चिन्तन बढ़ जाता है। उसका कारण है कि हम भोजन भी छोड़ते हैं तो हमें यह पता नहीं कि हम किसलिए छोड़ते हैं। हमें यह बताया जा रहा है कि सिर्फ भोजन छोड़ देना ही पुण्य है लेकिन बिल्कुल पागलपन है। अकेला भोजन छोड़ देना पुण्य नहीं है। भोजन छोड़ देने के पीछे जो रहस्य है, उसमें पुण्य छिपा है। अगर आपने सोचा है कि सिर्फ भोजन छोड़ देना ही पुण्य है तो भोजन छोड़कर आप भोजन का चिन्तन करते रहेंगे। क्योंकि भीतर का जो असली तत्व है उसका तो आपको कोई पता ही नहीं। आप बैठकर भोजन का चिन्तन करेंगे। और ध्यान रहे, भोजन के चिन्तन से भोजन ही बेहतर है। क्योंकि भोजन का चिन्तन बहुत खतरनाक है। उसका मतलब यह हुआ कि पेट का काम आप मस्तिष्क से ले रहे हैं, जो कि बहुत कन्फ्यूजन पैदा करेगा। आपके पूरे व्यक्तित्व को रुग्ण कर जायेगा। इस पर हम बाद में बात करेंगे क्योंकि दूसरे सूत्र में महावीर इस पर बहुत जोर देंगे।

भोजन का चिंतन भोजन से बदतर है, क्योंकि भोजन तो पेट करता है और चिंतन मस्तिष्क करता है। मस्तिष्क का काम नहीं है भोजन। अच्छा है पेट को ही अपना काम करने दें। हाँ, अगर मस्तिष्क में भोजन का चिंतन न चले, तो ही अनशन का कोई उपयोग है। यानी तब, जब भोजन भी नहीं और भोजन का चिंतन भी नहीं।

आपको पता है कि आपके चिंतन के दो ही हिस्से हैं। या तो काम या भोजन। या तो काम-वासना मन को घेरे रहती है या स्वाद की वासना मन को घेरे रहती है। गहरे में तो काम-वासना ही है, क्योंकि भोजन के बिना काम-वासना सम्भव नहीं है। अगर भोजन आपका कम कर दिया जाये तो काम-वासना मुश्किल हो जाती है। तो गहरे में काम-वासना ही घेरे रहती है, लेकिन चूंकि भोजन काम-वासना को शक्ति देता है, इसलिए भोजन घेरे रहता है। ऊपर से हममें भोजन का चिंतन चलता रहता है। महावीर से पूछेंगे तो वे कहेंगे कि जो आदमी भोजन में बहुत आतुर है, वह आदमी काम-वासना से भरा होता है। भोजन उसका लक्षण है क्योंकि भोजन शक्ति देता है, काम की शक्ति को बढ़ाता है और कामवासना में दौड़ाता है। इसलिए महावीर कहेंगे कि जो भोजन के चिंतन से भरा है भोजन की आकांक्षा से भरा है, वह आदमी

काम-वासना से भरा है। भोजन की वासना छूटे, तो काम-वासना शिथिल होनी शुरू हो जाती है।

(१५) सब्स्टीट्यूट का सिलसिला

यह जो हम भोजन का चिंतन करते हैं वह इसलिए है कि नहीं मिल रहा है भोजन, तो हम सब्स्टीट्यूट पैदा करते हैं। ध्यान रहे हमारे मन की गहरी से गहरी तरकीब सब्स्टीट्यूट क्रिएशन है, परिपूरक पैदा करना है। अगर आपको भोजन नहीं मिलेगा तो मन से भोजन का चिंतन करेंगे और उसमें उतना ही रस लेने लगेंगे जितना भोजन में। बल्कि कभी-कभी ज्यादा रस लेंगे, जितना कि भोजन में भी नहीं मिलता। ज्यादा लेना ही पड़ेगा। क्योंकि जितना भोजन में मिलता है उतना तो मिल नहीं सकता चिंतन से। इसलिए चिंतन में इतना रस लेना पड़ेगा कि जो भोजन की कमी रह गयी है, वह भी चिंतन के ही रस से पूरी होती हुई मालूम पड़े। इसलिए अगर काम-वासना से बचिएगा तो मन काम-वासना का चिंतन करने लगेगा। रात कभी आप सोये हैं और आपने सपना देखा है कि जाकर पानी पी रहे हैं तो वह सपना सिर्फ सब्स्टीट्यूट है। आप प्यासे सो गये होंगे, भीतर प्यास चल रही होगी और नींद टूटना नहीं चाहती, क्योंकि आपको पानी पीना है, तो जागना पड़ेगा। तो नींद एक सपना पैदा करती है कि आप पहुँच गये हैं पानी के पास, पानी पी रहे हैं। पानी पी कर मजे से सो गये हैं।

(१६) सपना क्या है ? सिर्फ एक तरकीब

यह सपना तरकीब है जिससे प्यास की जो पीड़ा है वह भूल जाये और नींद जारी रहे। आपके सब सपने बताते हैं कि आपने दिन में क्या-क्या नहीं किया। और कुछ नहीं बताते। आपके सपनों को समझे बिना आपकी जिन्दगी को समझाना मुश्किल है। इसलिए आज का मनोवैज्ञानिक आपसे नहीं पूछता कि दिन में आपने क्या किया। वह पूछता है रात में आपने क्या सपना देखा। वह आपसे नहीं पूछता है कि आपने दिन में दुकान चलायी कि मंदिर गये! उसका कोई मूल्य नहीं। वह पूछता है कि आप सपने में कहाँ गये ? वह कहता है कि सपने में आप आथेन्टिक होते हैं, प्रामाणिक होते हैं, वहाँ से पता चलेगा कि आदमी कैसे हो। आपके जागने से कुछ पता नहीं चलेगा क्योंकि वहाँ तो बहुत धोखा-धड़ी है, जाना था वेश्यालय पहुँच गये मंदिर में।

यह सपने में नहीं चल सकता। सपने में यह धोखा आप नहीं कर सकते। सपने में आप बहुत सरल होते हैं, सीधे साफ होते हैं। इसलिए मनोवैज्ञानिक बेचारे को आपके सपनों का पता लगाना पड़ता है, तभी आपके बाबत जानकारी मिलती है। आपका जागना इतना झूठा है क्योंकि उससे कुछ पता नहीं चलता, आपकी नींद में उतरना पड़ता है कि आप नींद में क्या कर रहे हैं, उससे पता चलेगा आप आदमी कैसे हो, असली खोज क्या है आपकी! इसलिए अगर आपने दिन उपवास किया तो उसे पता नहीं चलेगा, रात सपने में भोजन किया या नहीं, उससे पता चलेगा। अगर रात सपने में भोजन किया तो दिन का अनशन बेकार गया, उपवास व्यर्थ हुआ।

(१७) यह अन्तर अदालत में चल सकता है, यहां नहीं

आपने भोजन नहीं किया, तो उसका चिन्तन कर रहे हैं। और ध्यान रहे, भोजन करते तो १५ मिनट में पूरा हो जाता। चिन्तन से १५ मिनट में नहीं चलेगा। १५ मिनट का काम १५ घण्टे चलाना पड़ेगा। शक्ति तो मिलेगी नहीं भोजन की, तो फिर मन को चिन्तन में ही उलझाये रखना पड़ेगा। इसलिए महावीर ने कहा है कि आप शरीर से करते हैं कोई काम या मन से, इसमें मैं भेद नहीं करता। आपने चोरी की या चोरी की बाबत सोचा, मेरे लिए बराबर है। पाप हो गया। यह सवाल नहीं है कि आपने हत्या की या हत्या के संबंध में सोचा।

अदालत फर्क करती है। अगर आप हत्या के सम्बन्ध में सोचें, तो कोई अदालत आपको सजा नहीं दे सकती। आप खूब सोचें, मजे से सोचें। कोई अदालत यह नहीं कह सकती कि आप जुर्मी हैं, अपराधी हैं। आप अदालत में कह भी सकते हैं कि हम हत्या में बहुत रस लेते हैं, सपने भी देखते हैं, दिन-रात सोचते हैं कि इसकी गर्दन काट दें; उसकी गर्दन काट दें। अदालत आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकती। आप कानून की पकड़ के बाहर हैं। कानून सिर्फ कृत्य को पकड़ सकता है, कर्म को पकड़ सकता है। लेकिन महावीर कहते हैं धर्म भाव को भी पकड़ता है। आप धर्म की अदालत के बाहर नहीं हो सकते। भाव पर्याप्त हो गया। महावीर कहते हैं कृत्य तो सिर्फ भाव की बाह्य छाया है। मूल तो भाव है। अगर मैंने हत्या करनी चाही, तो मैंने तो हत्या कर ही दी। बाहर की परिस्थिति में नहीं करने की बात दूसरी है। पुलिस वाला खड़ा

है, अदालत खड़ी है, सजा का डर है, फाँसी का तख्ता है, इसलिए नहीं की—यह दूसरी बात है। बाहर की परिस्थिति ने नहीं करने दिया, यह दूसरी बात है। अपनी तरफ से मैंने कर दी। अगर परिस्थिति सुगम होती, सुविधापूर्ण होती, पुलिस वाला नहीं होता, या पुलिस वाला रिश्तेदार होता, अदालत अपनी होती, मजिस्ट्रेट अपना होता, कानून अपना चलता होता, तो मैंने कर दी होती। फिर कोई मुझे रोकने वाला नहीं था। न करने का कारण बाहर से आ रहा है, करने का कारण भीतर से आ रहा है। अंततः आप भीतर तौले जायेंगे, आपकी परिस्थिति नहीं तौली जायेगी। भाव पर्याप्त है। हत्या हो गयी। अगर आपने भोजन का चिन्तन किया, उपवास नष्ट हो गया। तब तो बड़ी कठिनाई है। इसका मतलब यह हुआ कि आप तब तक उपवास न कर पायेंगे, जब तक आपका चिन्तन पर नियंत्रण न हो। नहीं कर पायेंगे, जब तक चिन्तन पर नियंत्रण न हो, जब तक चिन्तन आपके पीछे न चलता हो, जब तक जो आप चलाना चाहते हों चिन्तन में, वही न चलता हो। अभी तो हालत यह है कि चिन्तन जो चलाना चाहता है, वही आपको चलाना पड़ता है। मन जहाँ ले जाता है, वहीं आपको जाना पड़ता है। नौकर मालिक हो गये हैं।

(१८) भिक्षा—विद् रिट्रास्पेक्टिव इफेक्ट

सुना है मैंने कि अमरीका का बहुत बड़ा करोड़पति रथ चाइल्ड, सुबह-सुबह जो भी भिखमंगे उसके पास आते थे उन्हें कुछ न कुछ देता था। एक भिखमंगा नियमित रूप से बीस वर्षों से आता था। वह रोज उसे एक डालर देता था और उसके बूढ़े बाप के लिए भी एक डालर देता था। बाप कभी आता था, कभी नहीं आता था। वह बहुत बूढ़ा था, इसलिए बेटा ही ले जाता था। धीरे-धीरे वह भिखारी इतना आश्वस्त हो गया कि अगर दो-चार दिन नहीं आ पाता तो चार दिन के बाद अपना पूरा बिल पेश कर देता कि पाँच दिन हो गये हैं, मैं आ नहीं पाया चार दिन। वह चार डालर वसूल करता, जो उसको मिलने चाहिए। फिर उसका बाप मर गया। रथ चाइल्ड को पता चला कि उसका बाप मर गया है। लेकिन उसने फिर भी अपने बाप का डालर लेना जारी रखा। महीने भर तक रथ चाइल्ड ने कुछ भी नहीं कहा। सोचा अभी इसका बाप मरा है, और सदमा देना ठीक नहीं है। डालर देता रहा। महीने भर बाद उसने कहा कि अब तो हद हो गयी। अब तो तुम्हारा बाप मर गया है, उसका डालर क्यों लेते हो? उसने कहा कि क्या समझते हो?

बाप की दौलत का मैं हकदार हूँ कि तुम। हू इज दि हेयर। मेरा बाप मरा कि तुम्हारा बाप मरा। बाप मेरा मरा है तो उसकी सम्पत्ति का मालिक मैं हूँ। (रथ चाइल्ड ने अपनी जीवन कथा में लिखवाया है कि भिखारी भी मालिक हो जाते हैं अभ्यास से।) चकित हो गया। रथ चाइल्ड ने उससे कहा कि ले जा भाई, तू दो डालर ले। और अपने बेटे को वसीयत लिख जाना। जब तक हम हैं, देते रहेंगे। तेरे बेटे को भी देना पड़ेगा, क्योंकि यह वसीयत है।

चिन्तन सिर्फ आपका नौकर है लेकिन मालिक हो गया है। सभी इन्द्रियाँ आपकी नौकर हैं, लेकिन मालिक हो गयी हैं अभ्यास लम्बा है। आपने कभी-कभी अपनी इन्द्रियों को कोई आज्ञा नहीं दी। आपकी इंद्रियों ने ही आपको आज्ञा दी है। तप का एक अर्थ आपको बताता हूँ, तप का अर्थ है अपनी इन्द्रियों की मालकियत, उनको आज्ञा देने की सामर्थ्य। पेट कहता है भूख लगी है, आप कहते हैं ठीक लगी है, लेकिन मैं आज भोजन लेने को राजी नहीं हूँ। आप पेट से अलग हुए हैं। मन कहता है, आज भोजन का चिन्तन करूँगा और आप कहते हैं, नहीं, जब भोजन ही नहीं किया, तो चिन्तन क्यों करेंगे। चिन्तन नहीं करेंगे। तो ही आप अनशन कर पायेंगे, उपवास कर पायेंगे, अन्यथा कोई फर्क नहीं लगेगा। पेट कहता रहेगा भूख लगी है, मन चिन्तन करता रहेगा। आप और उलझ जायेंगे और परेशान हो जायेंगे। और जैसे वह भिखारी चार दिन के बाद अपना बिल लेकर हाजिर हो जाता था, उसी तरह चार दिन के उपवास के बाद पेट अपना बिल लेकर हाजिर हो जायेगा कि चार दिन भोजन नहीं किया, अब ज्यादा कर डालो। तो पर्युषण के बाद दस दिन में सब पूरा कर डालेंगे। दुगुने तरह से बदला ले लेंगे। जो-जो चूक गया उसको ठीक से भरपूर कर लेंगे। अपनी जगह वापस खड़े हो जायेंगे।

उपवास हो सकता है तभी, जब चिंतन पर आपका वश हो। लेकिन चिंतन पर आपका कोई वश नहीं है। आपने कभी कोई प्रयोग ही नहीं किया। हमें चिंतन की तो ट्रेनिंग दी गयी है। हमें विचार का तो प्रशिक्षण दिया गया है, लेकिन विचार की मालकियत का कोई प्रशिक्षण नहीं दिया गया है। आपको स्कूल में, कालेज में विचार करना सिखाया जा रहा है। दो और दो जोड़ना सिखाया जा रहा है, सब सिखाया जा रहा है, एक बात नहीं सिखायी जा रही है कि दो और दो जब जोड़ना हो तभी जोड़ना, जब न जोड़ना हो तो

मत जोड़ना। लेकिन अगर मन दो और दो जोड़ना चाहे, तो आप रोक नहीं सकते। आप कोशिश करके देख लें आज घर में। आप आज कोशिश करना कि दो और दो हमें नहीं जोड़ना है, फौरन मन कहेगा कि चार। आप कहना— हमें जोड़ना नहीं है, वह कहेगा चार। वह आपको 'डिनाई' करता है क्योंकि उसकी मालकियत आप छीन रहे हैं। अब तक आपने उसको मालिक बनाकर रखा है। एक दिन में यह नहीं हो जायेगा। लेकिन अगर इसके प्रति सजगता की जाये और यह ख्याल आ जाये कि मैं अपनी इंद्रियों का गुलाम हो गया हूँ, तो शायद थोड़ी यात्रा करनी पड़ेगी, इंद्रियों के विपरीत। अनशन वैसी ही यात्रा की शुरुआत है।

(१९) आपकी 'नहीं' की ताकत

महावीर ठीक कहते हैं। आज नहीं, कहा तो बात समाप्त हो गयी। लेकिन आपकी नहीं और हाँ में बहुत फर्क नहीं है। आपका बेटा आपसे कहता है यह खिलौना लेना है। आप कहते हैं नहीं, और यह 'नहीं' आप बड़ी ताकत से कहते हैं। लेकिन बेटा वहीं पैर पटकता खड़ा रहता है और कहता है कि लेंगे। दोबारा कहते हैं मान जा, नहीं लेंगे। आपकी ताकत क्षीण हो गयी है। आपकी नहीं, हाँ की तरफ चल पड़ी। वह बेटा पैर पटकता ही रहता है। कहता है लेंगे। आखिर आप लेते हैं। बेटा जानता है कि आपकी नहीं का कुल इतना मतलब है कि तीन-चार दफा पैर पटकना पड़ेगा और हाँ हो जायेगी, और कुछ ज्यादा मतलब नहीं है। छोटे से छोटे बच्चे भी जानते हैं कि आपके ना की ताकत कितनी है—ऐन्ड हाऊ मच यू मीन बाई सेइंग नो। बच्चे जानते हैं, कि आपकी ना को कैसे काटना है, और काट देते हैं, आपकी ना को हाँ में बदल देते हैं। जितने जोर से आप कहते हैं नहीं, बच्चा जानता है कि उतने जोर से यह कमजोरी की घोषणा है या आप डराने की कोशिश कर रहे हैं। डरेंगे अपने से ही कि कहीं हाँ न निकल जाये। वह बच्चा समझ जाता है कि जोर से बोले, ठीक है। अभी थोड़ी देर में यह 'नहीं' ठीक हो जायेगी। लेकिन जो आदमी सचमुच शक्तिशाली है वह जोर से नहीं कभी नहीं कहता। वह शान्ति से कह देता है—नहीं, और बात समाप्त हो जाती है।

आपकी इन्द्रियाँ भी ठीक इसी तरह का कार्यक्रम सीख लेती हैं, जैसे बच्चा सीख लेता है। अगर आप रोज ११ बजे भोजन करते हैं, तो आपको रोज

११ बजे भूख लगती है। लेकिन आपने कल रात तय किया कि कल उपवास करेंगे तो ६ बजे से भूख लगती है। यह बड़े आश्चर्य की बात है। ११ बजे रोज भूख लगती थी, ६ बजे कभी नहीं लगती थी। हुआ क्या ? अभी तो कुछ किया नहीं ? अभी तो अनशन भी शुरू नहीं हुआ ? वह ११ बजे शुरू होगा। सिर्फ ख्याल किया है, रात में तय किया कि कल अनशन करना है, उपवास करना है, और बस सुबह से भूख लगने लगी। सुबह से क्या, रात से ही शुरू हो जाती है। आपके पेट में, आपकी ना को हां में बदलने की कोशिश उसी वक्त से शुरू हो जाती है। इन्द्रियां अपनी मालकियत कायम करने की कोशिश करती हैं।

निश्चित ही कोई भी अपनी मालकियत आसानी से नहीं छोड़ देता। एक बार मालकियत दे देना आसान है, वापस लेना थोड़ा कठिन पड़ता है। वही कठिनाई तपश्चर्या है। लेकिन अगर आप सुनिश्चित हैं और आपकी ना का मतलब नहीं और हां का मतलब हां होता है और सच में होता है, तो इन्द्रियां बहुत जल्द समझ जाती हैं। जल्द समझ जाती हैं कि आपकी ना का मतलब ना है और आपकी हां का मतलब हां है। इसलिए मैं आपसे कहता हूं, संकल्प अगर करना तो फिर तोड़ना मत। अन्यथा करना ही मत। क्योंकि संकल्प करके तोड़ना आपको इतना दुर्बल कर जाता है जिसका कोई हिसाब नहीं है। इससे तो संकल्प करना ही मत, वह बेहतर है। क्योंकि संकल्प टूटेगा नहीं तो उतनी दुर्बलता नहीं आयेगी। एक भरोसा तो रहेगा कि कभी करेंगे तो पूरा कर लेंगे। लेकिन संकल्प करके अगर आपने तोड़ा तो आप अपनी ही आंखों में अपने ही सामने दीन-हीन हो जायेंगे। और सदा के लिए वह दीन-हीनता आपके पीछे लग जायेगी। और जब भी आप दोबारा संकल्प करेंगे, तब आप पहले से ही जानेंगे कि यह टूटेगा, यह चल नहीं सकता। इसलिए छोटे संकल्प से शुरू करें, बहुत छोटे संकल्प से।

(२०) वाह ! आपका हाथ भी दलील करता है

गुरजिएफ बहुत छोटे संकल्प से शुरू करवाता था। वह कहता, इस हाथ को ऊँचा कर लें। अब इसको नीचे मत करना। और जैसे ही तय किया कि नीचे नहीं करना, पूरा हाथ कहता है नीचे करो। हाथ दलील करेगा। आप सोचेंगे हाथ कैसे दलीलें करेगा ? हाथ दलील करता है, वह

आरगू करेगा, वह कहेगा—बहुत थक गया हूँ। गुरजिएफ कहाँ देख रहा है, एक दफे नीचे करके ऊपर कर ले। उसकी तो पीठ है। (गुरजिएफ जब भी ऐसी आज्ञा देता था, पीठ करके बैठता था। इस तरह हाथ २५ तरह की दलीलें खोजेगा। वह कहेगा, ऐसे में कहीं लकवा न लग जाये। और फिर हाथ यह भी कहेगा, इससे फायदा भी क्या है? हाथ ऊँचे करने से कहीं भगवान् मिलने वाला है? अरे यह हाथ तो शरीर का हिस्सा है। इससे आत्मा का क्या सम्बन्ध है?

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, कपड़े बदलने से क्या होगा। आत्मा बदलनी है। कपड़े बदलने की हिम्मत नहीं है, आत्मा बदलनी है! वे सोचते हैं कि यह दलील उनकी अपनी है, पर यह दलील उनके कपड़े दे रहे हैं। यह दलील उनकी अपनी नहीं है, यह उनके कपड़ों की है। वह जो घर में साड़ियों का ढेर लगा हुआ है, वे साड़ियाँ कह रही हैं कि कपड़े से क्या होगा। लेकिन वे सोच रहे हैं कि बहुत आत्मिक खोज कर लाये। लेकिन सच यह है कि बाहर तक का परिवर्तन करने की सामर्थ्य नहीं जुटती, भीतर के परिवर्तन के सपने देख रहे हैं। बाहर इतना बाहर नहीं है, जितना आप सोचते हैं। वह आपके भीतर तक फैला हुआ है। भीतर इतना भीतर नहीं है जितना आप सोचते हैं। वह आपके कपड़ों तक आ गया है।

अपने को धोखा देना बहुत आसान है। जो भूखा नहीं रह सकता, वह कहेगा अनशन से क्या होगा? भूखे मरने से क्या होगा? कुछ नहीं होगा। जो नग्न खड़ा नहीं हो सकता, वह कहेगा कि नग्न खड़े रहने से क्या होगा? इससे क्या होनेवाला है? लेकिन मैं पूछता हूँ, उपवास से कुछ भी नहीं होगा, तो क्या भोजन करने से हो जायेगा? नग्न खड़े होने से नहीं होगा, तो क्या कपड़े पहनने से हो जायेगा? गेरुए वस्त्र पहनने से नहीं होगा तो दूसरे रंग के वस्त्र पहनने से हो जायेगा? क्योंकि दूसरे रंग के वस्त्र पहनते वक्त उसने यह दलील कभी नहीं दी, कि कपड़े से क्या होगा! लेकिन गेरुआ वस्त्र पहनते वक्त वही आदमी दलील लेकर जाता है कि कपड़े से क्या होगा। हमारा मन, हमारी इंद्रियाँ, हमारे कपड़े, हमारी चीजें सब दलील देती हैं और हम 'रेशनलाइज' करते हैं।

ध्यान रहे, रीजन और रेशनलाइजेशन में बहुत फर्क है। बुद्धिमत्ता में और बुद्धिमत्ता का धोखा खड़ा करने में बहुत फर्क है। हाथ कहता है कि थक जायेंगे, मर जायेंगे। और गुरजिएफ कहता है कि तुम नीचे मत करना। अगर

हाथ थक जायेगा तो गिर जायगा, तुम नीचे मत करना। अगर हाथ सच में ही थक जायेगा, तो रुकेगा कैसे ? लेकिन वह कहता है कि जब तक रुका है, तब तक तुम मत गिराना। अपनी तरफ से मत गिराना। अगर हाथ गिरे तो तुम देख लेना कि गिरता है। पर तुम कोआपरेट मत करना। तुम सहयोग मत देना। जरा बारीक बात है यह। हम बड़े धोखे से सहयोग दे सकते हैं। हम कह सकते हैं यह हाथ गिर गया है. हम थोड़े ही गिरा रहे हैं। लेकिन आप भली भांति जानते हैं कि यह गिर नहीं रहा है, आप गिरा रहे हैं। इसलिए भीतर अपने को साफ-साफ देखना पड़ेगा—अपनी बेईमानियों को, अपनी वंचनाओं को, अपने डिसेप्सन्स को। और जो आदमी अपनी वंचनाओं को नहीं देखता उसकी हाँ और ना में फर्क नहीं रह जाता। वह ना करता है और हाँ कर लेता है, अथवा हाँ करता है और ना कर लेता है।

(२१) नसरुद्दीन : नोट, कुरान और शराब

मुल्ला नसरुद्दीन के लड़का पैदा हुआ। बड़ा हुआ तो नसरुद्दीन ने सोचा कि यह आगे क्या बनेगा, इसकी कुछ जाँच कर लेनी चाहिए। तो उसने कुरान रख दी और पास ही एक शराब की बोतल रख दी, एक दस रुपए का नोट रख दिया और छोड़ दिया उसको कमरे में; और छिप कर खड़ा हो गया। लड़का गया। उसने दस रुपए का नोट जेब में रखा, कुरान बगल में दबायी और शराब पीने लगा। नसरुद्दीन भागा और अपनी बीबी से बोला कि यह राजनीतिज्ञ हो जायेगा। कुरान पढ़ता तो सोचते धार्मिक हो जायेगा। शराब पीता तो सोचते अधार्मिक हो जायेगा। रुपया जेब में रखकर भाग गया होता तो सोचते व्यापारी हो जायेगा। लेकिन उसने कहा, यह पोलिटीशियन हो जायेगा। यह कहेगा कुछ, करेगा कुछ, होगा कुछ। यह सब एक साथ करेगा।

हमारा चित्त ऐसा ही कर रहा है। धर्म भी कर रहा है, अधर्म भी सोच रहा है। जो कर रहा है, और सोच रहा है उन दोनों में कोई संबंध नहीं है और खुद कुछ और ही हैं। और यह सब जाल एक ही साथ है। तपश्चर्या इस जाल को काटने का नाम है, और व्यक्तित्व को एक प्रतिमा देने की प्रक्रिया है। इस बात की कोशिश है कि व्यक्तित्व में एक स्पष्ट रूप निखर आये। एक आकार बन जाये। आप में विकृत कुछ आकार न रह जाये। आप में अनेक आकार न रह जायें। आपमें एक आकार उभरे, आहिस्ता-

आहिस्ता आप स्पष्ट हो जायें। एक क्लैरिटी हो। अगर आपको भोजन नहीं लेना है, तो नहीं लेना है—यह आपके पूरे व्यक्तित्व की आवाज हो जाये, बात खत्म हो गयी। यह भी हो सकता है कि आपने तय कर लिया हो कि २४ घण्टे नहीं लेंगे भोजन और न सोचेंगे। तो मन कहता है, २४ ही घण्टे की बात है न, २४ घण्टे बाद तो सोचेंगे? करेंगे? ठीक है, किसी तरह २४ घण्टे निकाल देंगे। मन इसके राजी हो सकता है। क्योंकि इंडेफिनिट नहीं है मामला, डेफिनिट है, निश्चत है। २४ घण्टे के बाद तो कर ही लेना है। तो एक मजबूरी जैसे आप ढो लेंगे, लेकिन तब आपको उपवास से प्रफुल्लता न मिलेगी, बोझ होगा। तब उपवास का आनन्द आपके भीतर न खिलेगा। वह एक्सटेसी, वह लहर आपके भीतर नहीं आयेगी, जो इंद्रियों के ऊपर मालकियत के होने से आती है। तब सिर्फ एक बोझ होगा जिसे २४ घंटे ढो लेना है। मंदिर में, आश्रम में, कहीं बैठ कर समय गुजार लेंगे। किसी तरह निपटा ही लेंगे।

(२२) अनशन की वे अनहोनी शर्तें

लेकिन तब अनशन हुआ। महावीर निश्चित नहीं करते थे कि कब भोजन लेंगे, वे नियति पर छोड़ते थे। बहुत हैरानी का प्रयोग था वह। महावीर ने अकेले ही इस पृथ्वी पर किया। वे कहते थे कि भोजन मैं तब लूंगा, जब ऐसी घटना घटे—रास्ते पर निकलूंगा, अगर किसी बैलगाड़ी के सामने कोई आदमी खड़ा होकर रो रहा होगा। बैल काले रंग के होंगे, उस आदमी की एक आँख फूटी होगी और एक आंख से आंसू टपक रहा होगा तभी मैं भोजन लूंगा। और वह भी तब, अगर वहीं कोई भोजन देने के लिए निमंत्रण दे देगा, नहीं तो आगे बढ़ जाऊंगा। महावीर गांवों में जाते। वे जो तय करके जाते थे, ऐसा-ऐसा होगा तो भोजन ले लूंगा, वह पूरा नहीं होता, वे वापस लौट जाते। लेकिन वे बड़े आनन्दित होकर वापस लौटते। क्योंकि वे कहते कि जब नियति की ही इच्छा नहीं है, तो हम क्यों इच्छा करें। जब जागतिक शक्ति कहती है कि आज भोजन नहीं, तो बात खत्म हो गयी। गाँव भर रोता, गाँव भर परेशान होता। क्योंकि गाँव में अनेक लोग खड़े होते भोजन ले लेकर और अनेक इंतजाम करके। अभी भी खड़े होते हैं। जैन दिगम्बर मुनि वैसा प्रयोग करते हैं अभी भी, लेकिन वह सब जाहिर है कि वे क्या-क्या नियम देते हैं। पांच-सात नियम जाहिर है। वह वहीं लेता है पाँच-सात घरों में जो वे नियम पूरे कर देते हैं। जैसे यह नियम कि अगर

किसी घर के सामने केले लटके होंगे...अब यह सबको मालूम है। तो सब लोग केले लटका लेते हैं अपने घर के सामने। अगर कोई स्त्री सफेद साड़ी पहनकर भोजन के लिए निमंत्रण करेगी। इस तरह पाँच-सात नियम फिक्स्ड हो गये। और पाँच-सात घरों में लोग खड़े हो जाते हैं। इसलिए अब जैन मुनि कभी बिना भोजन लिये नहीं लौटता। निश्चित ही वह महावीर से ज्यादा होशियार है। कभी नहीं लौटता खाली हाथ। आदमी अपने को कितने धोखे दे सकता है।

महावीर की प्रक्रिया बिल्कुल और है। वे किसी से कहेंगे नहीं, बतायेंगे नहीं। वह उनके भीतर है बात। पता नहीं वह बात क्या है। कभी-कभी तीन-तीन महीने महावीर को खाली, बिना भोजन लिये गांव से लौट जाना पड़ता। बात खत्म हो गयी, क्योंकि मामला इन्डेफिनिट है। जब मन के लिए कोई सीमा नहीं होती, तो मन को तोड़ना बहुत आसान हो जाता है। जब मन के लिए सीमा होती है तो खींचना बहुत आसान होता है। सीमा है तो लगता है, एक ही घण्टे की तो बात है निकाल देंगे, २४ घण्टे की बात है, गुजार देंगे। लेकिन महावीर का जो अनशन था, उसकी कोई सीमा न थी। वह कब पूरा होगा, कि नहीं होगा, कि यह जीवन का अन्तिम अनशन होगा, भोजन इसके बाद नहीं होगा—इसका कुछ पक्का पता नहीं। महावीर ने उपवास और अनशन पर जैसे गहरे प्रयोग किये, इस पृथ्वी पर किसी ने कभी नहीं किये। मगर आश्चर्य की बात है, कि इतने कठिन प्रयोग करके भी महावीर को फिर भी कभी-कभी भोजन मिल ही जाता था। १२ वर्ष में ३६४ बार भोजन मिला। कभी १५ दिन बाद, कभी दो महीने बाद, कभी तीन महीने बाद, कभी चार महीने बाद। तो महावीर कहते थे कि जो मिलनेवाला है, वह मिल ही जाता है। उसका तो त्याग भी कैसे हो सकता है जो मिलने वाला है। त्याग तो उसी का किया जा सकता है, जो नहीं मिलने वाला है। और तब महावीर कहते थे कि जो नियति से मिला है, उसका कोई भी सम्बन्ध मुझसे नहीं है। क्योंकि मैंने किसी से माँगा नहीं। मैंने किसी से कहा नहीं। छोड़ दिया अनन्त के ऊपर कि होगी जगत् को कोई जरूरत मुझे चलाने की, तो और चला देगा, और नहीं होगी जरूरत, तो बात खत्म हो गयी। मेरी अपनी कोई जरूरत नहीं है।

(२३) जीवेपणा हटाने से मौत नहीं आ जाती

ध्यान रहे, महावीर की सारी प्रक्रिया जीवेपणा छोड़ने की प्रक्रिया है। महावीर कहते हैं, मैं जीवित रहने के लिए कोई ऐषणा नहीं करता हूं। मगर

इस अस्तित्व को ही, अगर इस होने को ही मेरी कोई जरूरत हो, तो इन्तजाम करे। मुझे कुछ जरूरत नहीं। लेकिन आश्चर्य तो यही है कि फिर भी महावीर ४० वर्ष जिये। स्वस्थ जिये और आनन्द से जिये। इस भूख ने उन्हें मार न डाला। नियति पर छोड़ देने से वे दीन-हीन न हो गये। जीवेषणा को हटा देने से मौत नहीं आ गयी। इससे बहुत से राज़ पता चलते हैं। हमारी यह चेष्टा कि मैं ही अपने को जिला रहा हूँ, विक्षिप्तता है। और हमारा यह ख्याल कि जब तक मैं नहीं मरूँगा, तब तक मैं मर कैसे सकता हूँ, नासमझी है। बहुत कुछ हमारे हाथ के बाहर है। लेकिन उसे भी हम समझते हैं कि हमारे हाथ के भीतर है। जो हमारे हाथ के बाहर है उसे हाथ के भीतर समझने से ही अहंकार का जन्म होता है। जो हमारे हाथ के बाहर है उसे हाथ के बाहर ही समझने से अहंकार विसर्जित हो जाता है।

(२४) स्वीकार की भी एक सुगंध होती है

महावीर अपना भोजन भी पैदा नहीं करते थे, महावीर स्नान भी नहीं करते थे अपनी तरफ से। वर्षा का पानी जितना धुला लेता, धुला लेता; लेकिन बड़ी मजेदार बात है कि महावीर के शरीर से पसीने की दुर्गन्ध नहीं आती थी। आनी चाहिए, बहुत ज्यादा आनी चाहिए थी, क्योंकि महावीर स्नान नहीं करते थे। और आपने कभी ख्याल किया, सैकड़ों पशु-पक्षी हैं, स्नान नहीं करते? वर्षा का पानी बस काफी है। उसके शरीर से दुर्गन्ध आती है? एक आदमी ही अकेला ऐसा जानवर है जो बहुत दुर्गन्ध देता है, जिसे डिओडरेन्ट की जरूरत पड़ती है। रोज सुगन्ध छिड़को, डिओडरेन्ट साबुन से नहाओ, सब तरह का इन्तजाम करो। फिर भी पांच-सात मिनट किसी के पास बैठ जाओ, तो असली खबर मिल जाती है। आदमी अकेला जानवर है जो दुर्गन्ध देता है। महावीर के जीवन में जिन लोगों को जानकारी थी, जो उनके निकट थे, वे बहुत चकित थे। उनके शरीर से दुर्गन्ध नहीं आती थी। असल में महावीर ऐसे जीते थे जैसे पशु-पक्षी जीते हैं। उतने ही प्राकृतिक नियम पर अपने को छोड़ कर, जो मर्जी इस विराट की, इस अनंत सत्ता की जो मर्जी, वह उसी के लिए राजी हैं। ऐसा भी नहीं कि पसीना आयेगा तो वे परेशान होंगे, उन्हें पसीने के लिए भी राजी पायेंगे। दुर्गन्ध आयेगी, दुर्गन्ध के लिए राजी होंगे। असल में राजी होने से एक नयी तरह की सुगन्ध जीवन में आनी शुरू हो जाती है। जब हम सब स्वीकार कर लेते हैं, तो एक अनूठी

सुगन्ध से जीवन भरना शुरू हो जाता है। सब दुर्गन्ध अस्वीकार की दुर्गन्ध है, और सब कुरूपता अस्वीकार की कुरूपता है। स्वीकार के साथ ही एक अनूठा सौन्दर्य है, एक अनूठी सुगन्ध से जीवन भर जाता है। एक सुवास से जीवन भर जाता है। महावीर पर पानी गिरे, तो समझेंगे कि स्नान कराना था बादलों को। महावीर ने समस्त पर स्वयं को छोड़ दिया। जब बादल बरसे, स्नान हो गया, स्नान कराना तो सिर्फ प्रतीक है। बात कुल इतनी है कि महावीर ने छोड़ दिया है नियति पर, प्रकृति पर, यानी अब जो करना हो कर, मैं राजी हूँ। यह राजी होना अहिंसा है। और इस राजी होने के लिए उन्होंने अनशन को प्राथमिक सूत्र कहा है। क्यों? क्योंकि जब तक आपकी इंद्रियाँ आपसे राजी नहीं हैं, तब तक आप प्रकृति से राजी कैसे होंगे।

इसे थोड़ा और देख लें। यह डबल हिस्सा है। आपकी इंद्रियाँ ही आपसे राजी नहीं हैं। पेट कहता है भोजन दो, शरीर कहता है कपड़े दो, पीठ कहता है विश्राम चाहिए। आपकी एक-एक इंद्रियाँ आपसे बगावत किये हुए हैं। वे कहती हैं यह दो नहीं तो तुम्हारी जिन्दगी बेकार है, अकारथ है, तुम बेकार जी रहे हो। उससे तो बेहतर है मर जाओ। अगर एक अच्छा बिस्तर नहीं जुटा पा रहे हो तो मर जाओ। आपकी इन्द्रियाँ आपसे नाराज हैं, आपसे राजी नहीं हैं और आपको खींच रही हैं, तो आप इस विराट से कैसे राजी हो पायेंगे? इतने छोटे से शरीर में जब इतनी छोटी सी इन्द्रियाँ आपसे राजी नहीं हो पातीं तो इस विराट शरीर में, इस ब्रह्माण्ड में आप कैसे राजी हो पायेंगे? और फिर जब तक आपका ध्यान इन्द्रियों से उलझा रहता है, तब तक आपका ध्यान उस विराट पर जायेगा भी कैसे? यहीं क्षुद्र में अटका रह जाता है। कभी पैर में कांटा गड़ जाता है, कभी सिर में दर्द होता है, कभी यह पसली दुखती है, कभी वह इन्द्रिय मांग करती है। इन्हीं के पीछे दौड़ते-दौड़ते सब समय खर्च हो जाता है। महावीर कहते हैं, पहले इन्द्रियों को अपने से राजी करो। अनशन का यही अर्थ है कि पेट को अपने से राजी करो, तुम पेट से राजी मत हो जाओ। भली-भाँति जानो कि पेट तुम्हारे लिये है, तुम पेट के लिए नहीं हो। लेकिन बहुत कम लोग हैं जो हिम्मत से यह कह सकेंगे कि हम पेट के लिए नहीं हैं। हम भलि-भाँति जानते हैं कि हम पेट के लिए हैं, पेट हमारे लिए नहीं है। हम साधन हो गये हैं और पेट साध्य हो गया है। पेट यानी

सभी इंद्रियाँ साध्य हो गयी हैं, खींचती रहती हैं, बुलाती हैं, और हम दौड़ते रहते हैं।

(२५) कोई सुन न ले !

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने मकान के खप्पर ठीक कर रहा था। बरसा आने के करीब थी। भिखारी ने नीचे से आवाज दी कि नसरुद्दीन जरा नीचे आओ। नसरुद्दीन ने कहा कि तुझे क्या कहना है, वहीं से कह दे। तो उसने कहा, माफ करो, नीचे आओ। नसरुद्दीन बेचारा सीढ़ियों से नीचे उतरा। भिखारी के पास गया। भिखारी ने कहा कुछ खाने को मिल जाये। नसरुद्दीन ने कहा, नासमझ यह तो तू नीचे से भी कह सकता था। इसके लिए मुझे नीचे बुलाने की जरूरत क्या थी ? उसने कहा कि बड़ा संकोच लगता था, जोर से बोलूंगा, कोई सुन लेगा। नसरुद्दीन ने कहा, बिल्कुल ठीक है। चल, ऊपर चल। भिखारी बड़ा मोटा तगड़ा था। बामुश्किल चढ़ पाया। नसरुद्दीन ऊपर जाकर अपने खप्पर जमाने में लग गया। थोड़ी देर भिखारी खड़ा रहा। न रहा गया तो कहा कि भूल गये क्या ! नसरुद्दीन ने कहा, मुझे भीख नहीं देनी है, यही कहने के लिए ऊपर बुलाया। उसने कहा, तू आदमी कैसा है, नीचे ही क्यों न कह दिया ! नसरुद्दीन ने कहा, बड़ा संकोच लगा, कोई सुन लेगा। जब तू भिखारी होकर मुझे नीचे बुला सकता है, तो मैं मालिक होकर तुझे ऊपर नहीं बुला सकता ! इसी तरह ऊपर से सब इंद्रियां हमें नीचे बुलाये चली जाती हैं। हम इंद्रियों को ऊपर नहीं बुला पाते। अनशन का अर्थ है इंद्रियों को हम ऊपर बुलायेंगे। हम इंद्रियों के साथ नीचे नहीं जायेंगे।

***

ग्यारहवाँ प्रवचन

पर्युषण-व्याख्यानमाला, बम्बई, दिनांक, २८ अगस्त, १९७१

बाह्य-तप : उणोदरी के दायरे और वृत्ति संक्षेप की अंतर्यात्रा

धम्मो मंगलमुक्किट्ठम्, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति, जस्स धम्मे सया मणो ॥१॥

अर्थ—

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन-सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तप-रूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

अनशन के बाद महावीर ने दूसरा बाह्य-तप उणोदरी कहा है। उणोदरी का अर्थ है अपूर्ण भोजन, अपूर्ण आहार। आश्चर्य होगा सुनकर कि अनशन के बाद उणोदरी को क्यों लाये महावीर। अनशन का तो अर्थ है निराहार। अगर उणोदरी को कहना भी था, तो अनशन के पहले कहना था। क्योंकि आमतौर से जो लोग अनशन का अभ्यास करते हैं, वे पहले उणोदरी का अभ्यास करते हैं। वे पहले आहार को कम करने की कोशिश करते हैं। जब कम आहार में सुविधा हो जाती है, उसकी आदत हो जाती है, तभी वे अनशन का प्रयोग करते हैं। वह बिलकुल ही गलत है। महावीर ने जानकर ही पहले अनशन कहा और फिर उणोदरी कहा। उणोदरी का अभ्यास आसान है। लेकिन एक बार उणोदरी का अभ्यास हो जाये, तो उस अभ्यास के बाद अनशन का कोई अर्थ, कोई प्रयोग नहीं रह जाता। मैं आपसे पहले कह चुका हूँ कि अनशन जितना आकस्मिक हो, जितना अभ्यास-शून्य हो, जितना प्रयत्नरहित हो, जितना अव्यवस्थित और अराजक हो, उतनी ही बड़ी छलांग भीतर दिखायी पड़ती है। उणोदरी को द्वितीय नंबर महावीर ने दिया है, उसका कारण समझ लेना जरूरी है।

(१) आपकी भूख और आदत की घड़ी

उणोदरी शब्द का अर्थ कुल इतना ही होता है कि जितना पेट माँगे उतना नहीं देना। लेकिन आपको यह पता नहीं है कि पेट कितना माँगता है। वह अक्सर जितना माँगता है, वह पेट नहीं माँगता, वह आपकी आदत माँगती है। और आदत में और स्वभाव में फर्क न हो, तो अत्यंत कठिन हो जायेगी बात। जब रोज आपको भूख लगती है, तो आप इस भ्रम में मत रहना कि भूख

लगती है। स्वाभाविक भूख तो बहुत मुश्किल से लगती है। नियम से बँधी हुई भूख रोज लगाती है। जीव विज्ञानी, बायोलॉजिस्ट कहते हैं कि आदमी के भीतर एक बायोलॉजिकल क्लॉक है, आदमी के भीतर एक जैविक घड़ी है। लेकिन आदमी के भीतर एक हैबिट क्लॉक भी है, आदत की घड़ी है। जीव विज्ञानी जिस घड़ी की बात करते हैं, वह हमारे गहरे में हैं; लेकिन उसके ऊपर हमारी आदत की घड़ी है, जो हमने अभ्यास से निर्मित कर ली है। इस धरती पर ऐसे कबीले हैं, जो दिन में एक ही बार भोजन करते हैं, हजारों वर्ष से। और जब उन्हें पहली बार पता चला कि वे लोग भी हैं जो दिन में दो बार भोजन करते हैं, तो वे बहुत हैरान हुए। उनकी समझ में ही नहीं आया कि दिन में दो बार भोजन करने का क्या प्रयोजन होता है। इस पृथ्वी पर ऐसे कबीले हैं जो दो बार भोजन कर रहे हैं हजारों बरसों से। ऐसे भी कबीले हैं जो दिन में पांच बार भी भोजन करते हैं। इसका जैविक जगत् से कोई संबंध नहीं है। यह हमारी आदतों की बात है। आदतें हम निर्मित कर लेते हैं, फिर आदतें हमारा दूसरा स्वभाव बन जाती हैं। और हमारा पहला प्राथमिक स्वभाव आदतों के जाल के नीचे ढँक जाता है।

झेन फकीर बोकोजू से किसी ने पूछा कि तुम्हारी साधना क्या है। उसने कहा, जब भूख लगती है तब मैं भोजन करता हूँ। और जब मुझे नींद आती है तब मैं सो जाता हूँ। और जब मेरी नींद टूटती है तब मैं जग जाता हूँ। उस आदमी ने कहा, यह भी कोई साधना है। यह तो सभी करते हैं। बोकोजू ने कहा, काश ! तुम सभी यह कर लो तो इस पृथ्वी पर बुद्धों की गिनती करनी मुश्किल हो जाये। यह तुम नहीं करते हो। जब तुम्हें भूख नहीं लगती है, तब भी तुम खाते हो। और जब तुम्हें भूख लगती है, हो सकता है तब भी तुम न खाते हो। और जब तुम्हें नींद नहीं आती, तब तुम सो जाते हो। और यह भी हो सकता है कि जब तुम्हें नींद आती हो तो तुम न सोते हो। और जब तुम्हारी नींद नहीं टूटती, तब तुम इसे तोड़ लेते हो। और जब टूटनी चाहिए, तब तुम सोये रह जाते हो। यह विकृति हमारे भीतर दोहरी प्रक्रियाओं से हो जाती है। एक तो हमारा स्वभाव है, जैसा प्रकृति ने हमें निर्मित किया। और प्रकृति सदा संतुलित है। प्रकृति उतना ही मांगती है, जितनी जरूरत है। दूसरी ओर आदतों का कोई अंत नहीं। आदतें अभ्यास हैं। और अभ्यास से कितना ही मांगा जा सकता है।

(२) भोजन भट्ट मुकाबला

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में एक प्रतियोगिता हुई कि कौन आदमी सबसे ज्यादा भोजन कर सकता है। मुल्ला ने सभी प्रतियोगियों को बहुत पीछे छोड़ दिया। कोई बीस रोटी पर रुक गया, कोई पच्चीस रोटी पर रुक गया, कोई तीस रोटी पर रुक गया। फिर लोग घबराने लगे कि मुल्ला तो पचास रोटी पर चल रहा था। लोगों ने कहा, मुल्ला अब तुम जीत ही गये, अब अकारण अपने को परेशान मत करो। रुक जाओ। मुल्ला ने कहा, मैं एक ही शर्त पर रुक सकता हूं कि मेरे घर कोई खबर न पहुंचाये, नहीं तो मेरा सांझ का भोजन पत्नी नहीं देगी। यह खबर घर तक न जाये कि मैं पचास रोटी खा गया, नहीं तो सांझ का भोजन गड़बड़ हो जायेगा।

आप इस पेट को अप्राकृतिक रूप से भी भर सकते हैं, विक्षिप्त रूप से भी भर सकते हैं। पेट को ही नहीं, यहां उदर केवल सांकेतिक है, हमारी प्रत्येक इंद्रिय का उदर है। हमारी प्रत्येक इंद्रिय का पेट है। और आप प्रत्येक इंद्रिय के उदर को जरूरत से ज्यादा भर सकते हैं। जितना देखने की जरूरत नहीं है, उतना हम देखते हैं। जितना सुनने की जरूरत नहीं है, उतना हम सुनते हैं। और इसका परिणाम बड़ा अद्भुत होता है। वह परिणाम यह होता है कि जितना ज्यादा हम सुनते हैं उतनी ही क्षमता और संवेदनशीलता कम हो जाती है, इसलिए तृप्ति भी नहीं मिलती। और जब तृप्ति नहीं मिलती तो, 'विसियस सर्कल' पैदा होता है : हम सोचते हैं कि और ज्यादा देखें, तो तृप्ति मिलेगी। और ज्यादा खायें, तो तृप्ति मिलेगी। जितना ज्यादा खाते हैं उतना ही जो स्वभाव की भूख है, वह दबती और नष्ट होती है (वही तृप्त भी हो सकती है); और जब वह दब जाती है, नष्ट हो जाती है, विस्मृत हो जाती है, तो आपकी जो आदत की भूख बढ़ती जाती है वह कभी तृप्त नहीं हो सकती। उसकी तृप्ति का कोई अन्त नहीं है। निरंतर हम सुनते हैं कि वासनाओं का कोई अन्त नहीं है। लेकिन सचाई यह है कि स्वभाव में जो भी वासनाएं हैं, वे सब काम की हैं। हां, आदत से जो वासनाएं हम निर्मित करते हैं, उनका कोई अन्त नहीं है। इसलिए किसी जानवर को आप बीमारी में खाने के लिए राजी नहीं कर सकते। जो होशियार जानवर हैं, वे जरा भी बीमार होंगे तो उल्टी कर देंगे, जो पेट में है, उसे बाहर फेंक देंगे। वे प्रकृति से जीते हैं। आदमी आदत से जीता है। और आदत से जीने के कारण हम अपने को रोज-रोज अस्वाभाविक होते चले जाते हैं। यह

अस्वाभाविक होना इतना ज्यादा हो जाता है कि हमें याद ही नहीं रहता कि हमारी प्राकृतिक आकांक्षाएँ क्या हैं ?

(२) अन्दर से आती हुई भूख की आवाज

बायोलॉजिस्ट जिस जैविक घड़ी की बात करते हैं, वह हमारे भीतर है। पर हम उसकी सुनें तब तो ! वह हमें बताती है कि कब भूख लगी। वह बताती है कि कब सो जाना है, कब उठ आना है। लेकिन हम उसकी सुनते नहीं। उसके ऊपर अपनी व्यवस्था देते हैं। इसलिए ऊणोदरी बहुत कठिन है। कठिन इस लिहाज से है कि आपको पहले से यही पता नहीं कि स्वाभाविक भूख कितनी है। इसलिए पहले तो स्वाभाविक भूख खोजनी पड़ेगी। इसलिए अनशन को पहले रखा है। अनशन आपकी स्वाभाविक भूख को खोजने में सहयोगी होगा। जब आप बिल्कुल भूखे रहेंगे और भूखे रहने के संकल्प पर आप चलेंगे, तो आप थोड़े ही दिन में पायेंगे कि आदत की भूख तो भूल गयी। वह असली भूख न थी। दो-चार दिन तो वह पुकार कर आवाज देगी ठीक समय पर। फिर दो-चार दिन जब आप उसकी नहीं सुनेंगे, तो वह शांत हो जायेगी। और तब आपके भीतर से स्वाभाविक भूख आवाज देगी। जब आप उसकी नहीं सुनेंगे, तभी आपके भीतर का यंत्र रूपांतरित होगा और आप स्वयं को पहचानने के काम में लगेंगे। तो पहले आदत की भूख टूटेगी। वह किसी की तीन दिन में टूट जाती है, किसी की चार दिन में टूट जाती है। एक दो दिन किसी को आगे पीछे लग सकता है। फिर स्वाभाविक भूख की व्यवस्था टूटेगी और तब आप दूसरी व्यवस्था पर जायेंगे। लेकिन अनशन में आपको पता चल जायेगा कि झूठी आवाज क्या थी और सच्ची आवाज क्या थी। झूठी आवाज मानसिक होगी। यानी जब आपको झूठी भूख लगेगी तो मन कहेगा, भूख लगी है। और जब असली भूख लगेगी तो पूरे शरीर का रोआं-रोआं कहेगा कि भूख लगी है। अगर झूठी भूख लगी है—अगर आप बारह बजे रोज दोपहर भोजन करते हैं, तो ठीक बारह बजे लग जायेगी। लेकिन अगर किसी ने घड़ी एक घंटा आगे-पीछे कर दी, तो घड़ी में जब बारह बजेंगे तब लगेगी। आपको पता नहीं होना चाहिए कि अब एक बज गया है और घड़ी में बारह ही बजे हैं। तो आप एक बजे तक बिना भूख लगे रह जायेंगे, क्योंकि आपकी वह भूख मानसिक है, शारीरिक नहीं। वह भूख बाहर की घड़ी देखती रहती है। घड़ी में बारह बज गये, और लग गयी। असल में ग्यारह ही बजे हैं। लेकिन घड़ी में

बारह बजा दिये गये, तो आपमें भूख का भ्रम तत्काल पैदा हो जायेगा। क्योंकि मानसिक भूख, मानसिक है, झूठी है। वह मन से लगती है, शरीर से नहीं। तीन-चार दिन के अनशन में मानसिक भूख की व्यवस्था टूट जाती है। असली भूख शुरू हो जाती है। आपको पहली दफे लगता है कि शरीर से भूख की पुकार आ रही है। इसको हम और तरह से भी देख सकते हैं।

(४) भूख और मौसम

मनुष्य को छोड़कर सारे पशु और पक्षियों की यौन व्यवस्था सावधिक है। एक विशेष मौसम में वे यौन पीड़ित होते हैं, कामातुर होते हैं। बाकी वर्ष भर नहीं होते। सिर्फ आदमी अकेला जानवर है जो वर्ष भर काम-पीड़ित होता है। यह काम-पीड़ा मानसिक है, मेंटल है। अगर आदमी भी स्वाभाविक हो, तो वह भी एक सीमा में, एक समय पर कामातुर होगा। शेष समय कामातुरता नहीं होगी। लेकिन आदमी ने सभी स्वाभाविक व्यवस्थाओं के ऊपर मानसिक व्यवस्थाएँ जड़ दी हैं। सभी चीजों पर उसने अपना इंतजाम अलग से कर लिया है। वह अलग इंतजाम हमारे जीवन की विकृति और हमारी विक्षिप्तता है। आपको पता नहीं चलता है कि आपमें जो काम-वासना जगी है, वह स्वाभाविक है, बायोलॉजिकल है या सायकोलॉजिकल है। पता इसलिए नहीं चलता, क्योंकि बायोलॉजिकल काम-वासना को आपने जाना ही नहीं है। इसके पहले कि वह जगती, मानसिक काम-वासना जग जाती है। छोटे-छोटे बच्चे जो कि चौदह वर्ष में जाकर बायोलॉजिकली मैच्योर होंगे, जैविक अर्थों में काम-वासना के योग्य होंगे, वे चौदह वर्ष के बहुत पहले ही मानसिक-वासना के योग्य और समर्थ हो गये होंगे। सुना है मैंने कि एक बूढ़ी औरत अपने नाती-पोतों को लेकर अजायबघर में गयी। वहाँ स्टॉर्क नाम के पक्षी के बाबत बच्चों को समझाने के लिए यूरोप में कथा है। जब घर में बच्चे पैदा होते हैं तो बड़े-बूढ़ों से बच्चे पूछते हैं कि बच्चे कहाँ से आये, तो बड़े-बूढ़े कहते हैं कि यह स्टॉक पक्षी ले आया। जब वहाँ अजायबघर में स्टॉर्क पक्षी के पास वह बूढ़ी गयी, तो उन बच्चों ने पूछा, यह कौन-सा पक्षी है। बूढ़ी ने कहा वही पक्षी है जो बच्चों को लाता है। छोटे-छोटे बच्चे, वे एक दूसरे की तरफ देखकर हँसे और एक बच्चे ने अपने पड़ोसी बच्चे से कहा कि क्या इस नासमझ बूढ़ी को असली राज़ बता दें (मे वी टेल हर दि रियल सीक्रेट, टु दिस पुअर ओल्ड लेडी

अभी तक पता नहीं इस गरीब को। यह अभी स्टॉर्क पक्षी से समझ रही है कि बच्चे आते हैं।

(५) कल्टीवेटेड डिजायर्स की तृप्ति

चारों तरफ का वातावरण बहुत छोटे-छोटे बच्चों के मन में भी मानसिक कामातुरता को जगा देता है। फिर यह मानसिक कामातुरता उनके ऊपर हावी हो जाती है। और जीवन भर पीछा करती हैं। और उन्हें पता ही नहीं चल पाता कि जो बायोलॉजिकल अर्ज थी वह जो जैविक वासना थी, वह उठ ही नहीं पायी। या जब उठी, तब उन्हें पता नहीं चला। और तब एक अद्भुत घटना घटती है। वह अद्भुत घटना यह है कि वे कभी तृप्त नहीं हो पाते। क्योंकि मानसिक काम-वासना कभी तृप्त नहीं हो सकती। शारीरिक काम वासना तृप्त हो जाती है। जो वास्तविक है, वह तृप्त हो सकता है। जो वास्तविक नहीं है, वह तृप्त नहीं हो सकता। असली भूख तृप्त होती है। झूठी भूख तृप्त नहीं हो सकती। इसलिए वासनाएँ तो तृप्त हो सकती हैं लेकिन हमारे द्वारा जो कल्टीवेटेड डिजायर्स हैं, हमने ही जो वासनाएँ आयोजित कर ली हैं, वे कभी तृप्त नहीं हो सकतीं। पशु-पक्षी भी वासनाओं में जीते हैं, लेकिन हमारे जैसे तनावग्रस्त नहीं हैं। कोई तनाव नहीं दिखायी पड़ता उनमें। गाय की आँख में झाँकर देखें, वह निर्वासना को उपलब्ध नहीं हो गयी है, कोई ऋषि मुनि नहीं हो गयी है, कोई तीर्थंकर नहीं हो गयी है; पर उसकी आँखों में वही सरलता है, जो तीर्थंकर की आँखों में होती है। बात क्या है? बात यह है कि वह वासना में तो जी रही है, लेकिन फिर भी उसकी वासना प्राकृतिक है। प्राकृतिक वासना तनाव नहीं लगती। ऊपर नहीं ले जा सकती प्राकृतिक वासना, लेकिन नीचे भी नहीं गिराती। ऊपर जाना हो तो प्राकृतिक वासना से ऊपर उठना होता है, लेकिन अगर नीचे गिरना हो तो प्राकृतिक वासना के ऊपर अप्राकृतिक वासना को स्थापित करना होता है। तो अनशन को महावीर ने पहले लिया ताकि झूठी भूख टूट जाये, असली भूख का पता चल जाये और रोआँ-रोआँ पुकारने लगे। आपको प्यास लगती है। जरूरी नहीं है कि वह प्यास असली हो, वास्तविक हो। हो सकता है अखबार में कोका कोला का एडवरटाइजमेंट देख कर लगी हो। हो सकता है अखबार में 'लिव्बा लिटिल हाट' देखकर लग गयी हो। वैज्ञानिक, विशेषकर विज्ञापन-विशेषज्ञ, भलि भाँति जानते हैं कि आपको झूठी प्यास पकड़ाई जा सकती है और वे

आपको झूठी प्यास पकड़ा रहे हैं। आज जमीन पर जितनी चीजें बिक रही हैं, उनकी कोई जरूरत नहीं है। आज करीब-करीब दुनिया की पचास प्रतिशत इंडस्ट्री उन जरूरतों को पूरा करने में लगी हैं, जो जरूरतें हैं ही नहीं। पर वे पैदा की जा सकती हैं। आदमी को राजी किया जा सकता है कि वह उन्हें जरूरतें माने। और एक दफा उसके मन में ख्याल आ जाये, तो वह जरूरत बन जाती है।

(६) वह प्यास 'लिव्वा लिटिल हॉट' की नहीं होगी

प्यास तो आपको पता ही नहीं है। कल्पना करें कि आप किसी रेगिस्तान में भटक गये। पानी का कोई पता नहीं। तब आपको जो प्यास लगेगी वह आपके रोयें-रोयें की प्यास होगी। उसे आपके शरीर का कण-कण माँगेगा। वह प्यास मानसिक नहीं होगी, वह किसी अखबार के विज्ञापन को पढ़कर नहीं लगी होगी। तो अनशन आपके भीतर वास्तविक को उघाड़ने में सहयोगी होगा। और जब वास्तविक उघड़ जाये, तब महावीर कहते हैं उणोदरी में आइए। जब वास्तविक उघड़ जाये, तो वास्तविक से कम लेना। जितनी वास्तविक हो उसमें कम लेना, अवास्तविक भूख को तो पूरा करना ही मत। वह खतरनाक है। वास्तविक भूख को पूरा करने में थोड़ी जगह खाली रखना। इस खाली रखने में क्या राज हो सकता है? यहाँ आदमी के मन के नियम समझना जरूरी हैं।

हमारे मन के नियम ऐसे हैं कि हम जब भी किसी काम में लगते हैं या किसी वासना की तृप्ति में या किसी भूख की तृप्ति में लगते हैं, तब एक सीमा हम पार करते हैं। वहाँ तक भूख या वासना ऐच्छिक होती है, वालंटरी होती है। उस सीमा के बाद नान-वालंटरी हो जाती है। जैसे हम पानी को गरम करते हैं। पानी सौ डिग्री पर जाकर भाप बनता है। लेकिन अगर आप ९९ डिग्री पर रुक जायें तो पानी वापस पानी ही ठंडा हो जायेगा। और अगर आप सौ डिग्री के बाद रुकना चाहें, तो फिर पानी वापस नहीं लौटेगा। वह भाप बन चुका होगा। यह एक डिग्री का फासला फिर लौटने नहीं देगा। वहाँ नो रिटर्न प्वाइंट आ जाता है। सौ डिग्री के बाद अगर आप रुकते हैं तो पानी भाप बन चुका होगा, आपको मिलेगा नहीं। वहाँ आपके हाथ के बाहर की बात हो गयी। जब आप क्रोध के विचार से भरते हैं तब भी एक डिग्री आती है। उसके पहले आप

रुक सकते थे। उस डिग्री के बाद आप नहीं रुक सकेंगे। क्योंकि आपके भीतर का वालंटरी मैकेनिज्म जब अपनी वृत्ति को नान-वालंटरी को सौंप देता हैं, फिर बात आपके रुकने के बाहर हो जाती है। उसके हाथ में जाने के बाद आप नहीं रोक सकते। अगर आपने क्रोध एक सीमा के पहले रोक लिया तो रोक लिया, एक सीमा के बाद क्रोध नहीं रोका जा सकता। वह प्रकट होकर रहेगा। अगर आपने काम-वासना को एक सीमा पर रोक लिया तो ठीक, अन्यथा वह एक सीमा के बाहर आपके ऐच्छिक यंत्र के बाहर हो जायेगी। फिर आप उसको नहीं रोक सकते। फिर आप विक्षिप्त की तरह उसे पूरा कर के ही रहेंगे फिर उसे रोकना मुश्किल है।

(७) रिटर्न फ्राम द प्वाइंट आफ नो रिटर्न

उणोदरी का अर्थ है ऐच्छिक यंत्र से अनैच्छिक यंत्र के हाथ में जब कोई बात जाती है, उसी सीमा पर रुक जाना। इसका मतलब केवल इतना ही नहीं है कि आप रोज तीन रोटी खाते हैं, तो आज ढाई रोटी ही खा लेने से उणोदरी हो जायेगी। नहीं। उणोदरी का अर्थ है इच्छा के भीतर रुक जाना। अपनी सामर्थ्य के भीतर रुक जाना। अपनी सामर्थ्य के बाहर किसी बात को न जाने देना। क्योंकि आपकी सामर्थ्य के बाहर जाते ही आप गुलाम हो जाते हैं। फिर आप मालिक नहीं रह जाते। लेकिन मन पूरी कोशिश करेगा कि क्लाइमेक्स तक ले चलो। किसी भी चीज को उसके चरम तक ले चलो। क्योंकि मन को तब तक तृप्ति नहीं मालूम पड़ती, जब तक कोई चीज चरम पर न पहुंच जाये। और मजा यह है कि चरम पर पहुंच जाने के बाद सिवाय विषाद और फ्रस्ट्रेशन के कुछ हाथ नहीं लगता। तृप्ति हाथ नहीं लगती। अगर मन ने भोजन के संबंध में सोचना शुरू किया, तो वह उस सीमा तक खायेगा, जहां तक खा सकता है। और फिर दुखी और परेशान और पीड़ित होगा।

(८) मुल्ला ने मुकदमा लेने से इंकार कर दिया

मुल्ला नसरुद्दीन अपने बुढ़ापे में अपने गांव में मैजिस्ट्रेट हो गया। पहला जो मुकदमा उसके हाथ में आया, वह एक आदमी का था जो करीब-करीब नंगे, अंडरवियर पहने अदालत में आकर खड़ा हुआ। उसने कहा कि मैं लूट लिया गया हूं और तुम्हारे गांव के पास ही लूटा गया हूं।

मुल्ला ने कहा, मेरे गांव के पास ही लूटे गये हो ? क्या-क्या लूट लिया गया तुम्हारा ?

उसने सब फेहरिस्त बतायी। मुल्ला ने कहा कि जहां तक मैं देख सकता हूं, तुम अंडरवियर पहने हुए हो।

उसने कहा, हां, मैं अंडरवियर पहने हुए हूं।

मुल्ला ने कहा कि मेरी अदालत तुम्हारा मुकादमा लेने से इन्कार करती है। वी नेवर डू एनी थिंग हाफहार्टेडली ऐंड पार्शियली। हमारे गांव में कोई आदमी आधा काम नहीं करता। अगर आप हमारे गांव में लूटे गये होते तो फिर अंडरवियर भी निकाल लिया गया होता। तुम किसी और आदमियों के द्वारा लूटे गये हो। तुम्हारा मुकदमा मैं लेने से इन्कार करता हूं। ऐसा कभी हमारे गांव में हुआ ही नहीं। जब भी हम कोई काम करते हैं, हम पूरा ही करते हैं।

जिस गांव में रहते हैं, इच्छाओं के जिस गांव में, वहां भी हम पूरा ही काम करते हैं। वहां भी हम इंच भर पहले नहीं लौटते। और चरम के बाद सिवाय विषाद के और कुछ हाथ नहीं लगता। लेकिन जैसे ही हम किसी वासना में बढ़ना शुरू करते हैं, वासना खींचती है। और जितना हम आगे बढ़ते हैं, उतना उसके खींचने की शक्ति बढ़ती जाती है और हम कमजोर होते चले जाते हैं।

महावीर कहते हैं कि चरम पर पहुंचने के पहले रुक जाना। उसका मतलब यह है कि जब किसी को इतना क्रोध आ गया हो कि वह हाथ उठाकर आपको चोट ही मारने लगे, तो महावीर कहते हैं जब हाथ करीब पहुंच जाये, तब रुक जाना। लेकिन उस वक्त रोकना सर्वाधिक कठिन होगा। उस वक्त मन करेगा, अब क्या रुकना ?

(९) अली के भाले की वापसी

मुसलमान खलीफा अली के संबंध में एक बहुत अद्भुत घटना है। युद्ध के मैदान में लड़ रहा था वह। वर्षों से यह युद्ध चल रहा था। वह घड़ी आ गयी, जब उसने अपने दुश्मन को नीचे गिरा लिया और उसकी छाती पर बैठ गया। उसने अपना भाला उठाया। उसकी छाती में भोंकने को था। बस,

एक क्षण की और देर थी कि भाला उसकी छाती में आर-पार हो जाता, उस दुश्मन की छाती में, जो बरसों से परेशान किये था और इसी क्षण की प्रतीक्षा थी अली को। लेकिन जैसे ही भाला अली ने भोंकने को उठाया उस नीचे पड़े दुश्मन ने अली के मुंह पर थूक दिया। अली ने अपने मुह पर पड़ा थूक पोंछ लिया और भाला वापस अपने स्थान पर रख दिया। और उस आदमी से कहा, अब कल तुमसे लड़ेंगे। उस आदमी ने कहा, यह मौका अली तुम चूक रहे हो। मैं अगर तुम्हारी जगह होता, तो मैं नहीं चूक सकता था। इसकी तुम बरसों से प्रतीक्षा करते रहे थे। मैं यही प्रतीक्षा करता रहा था कि तुम ऊपर हो, मैं नीचे हूं। अगर तुम्हारी जगह मैं होता तो यह भाला वापस नहीं लौट सकता था। तुम क्यों छोड़कर जा रहे हो ? अली ने कहा, मुझे मुहम्मद की आज्ञा है कि अगर हिंसा भी करो तो क्रोध में मत करना। वैसे तो हिंसा करना ही मत; और अगर हिंसा भी करो तो क्रोध में मत करना। अभी तक मैं शांति से लड़ रहा था। लेकिन तेरा मेरे ऊपर थूक देना, मेरे मन में क्रोध जगा लाया। अब हम कल लड़ेंगे। अभी तक मैं शांति से लड़ रहा था। कोई क्रोध की आग न थी। सब ठीक था। निपटारा करना था, कर रहा था। हल निकालना था, निकाल रहा था। लेकिन क्रोध की लपट न थी। अब तूने थूककर क्रोध की लपट पैदा कर दी। और अगर अब इस वक्त मैं तुझे मारता हूं तो यह मारना व्यक्तिगत और निजी होगा। अब यह लड़ाई किसी सिद्धांत की लड़ाई नहीं है। इसलिए, अब कल फिर लड़ेंगे।

कल फिर वह लड़ाई नहीं हुई क्योंकि उस आदमी ने अली के पैर पकड़ लिये। उसने कहा, मैं सोच भी न सकता था कि बरसों के बाद दुश्मन की छाती के पास आया हुआ भाला किसी कारण से लौट सकता है। और ऐसे समय में तो लौट ही नहीं सकता था, जब मैंने थूका था। तब तो और जोर से चला गया होता। लेकिन ऐसे क्षण में रोक पाना साधना है।

मन के नियम हैं। ऊणोदरी का अर्थ है, जहां मन सर्वाधिक जोर मारे, उसी सीमा से वापस लौट जायें। इसे रोज-रोज प्रयोग करके प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर खोज लेगा कि कब मन बहुत जोर मारता है और कब इच्छा के बाहर बात हो जाती है। फिर ऐसा नहीं होता कि आपने चांटा मारा। फिर ऐसा होता है कि अब आप चांटा मारने से रुक ही न सकते थे। बस, वही जगह लौट आने की है। फिर से वहीं लौट आने का नाम है अपूर्ण पर छूट

जाना। उणोदरी का अर्थ है अपूर्ण रह जाय उदर, पूरा न भर पाये। इसलिए आप चार रोटी खाते हैं, और तीन खा लें तो उससे कुछ उणोदरी नहीं हो जायेगी। पहले वास्तविक भूख खोज लें, फिर वास्तविक भूख को खोजकर भोजन करने बैठें। वह किसी भी इंद्रिय का भोजन हो। फिल्म देखने आप गये हैं। ९० प्रतिशत फिल्म आपने देख ली है। तभी असली वक्त आता है, जब छोड़ना बहुत मुश्किल हो जाता है क्योंकि आप उत्सुक हैं कि अंत क्या होगा। लोग उपन्यास पढ़ते हैं, तो अधिक लोग पहले अंत पढ़ लेते हैं कि अंत क्या होगा। इतनी जिज्ञासा होती है मन की। उपन्यास पढ़ रहे हैं और दो पन्ने रह गये हैं, डिटेक्टिव कथा है और अब इन आखिरी दो पन्नों में ही सारा राज़ खुलने को है और तभी आप रुक जायें, ठहर जायें तो उणोदरी है। मन बहुत धक्के मारेगा कि अभी तो मौका आया था जानने का। इतनी देर तो हम केवल भटक रहे थे, अब राज़ खुलने के करीब था। और तभी आप रुक जायें और भूल जायें। फिल्म देख रहे हैं, आखिरी क्षण आ गया है। अभी सब चीजें क्लाइमेक्स को छुएँगी और बस, आप उठ जायें। और लौटकर याद भी न आये कि अन्त क्या हुआ होगा। किसी से पूछने भी न जायें कि अन्त क्या हुआ। ऐसे चुपचाप उठकर चले आयें कि जैसे अन्त हो गया। तो आपके अपने मन पर नये ढंग का काबू आना शुरू हो जायेगा। एक नयी शक्ति आपको अनुभव होगी। आपकी सारी शक्ति की क्षीणता, आपकी शक्ति का खोना, आपकी शक्ति का रोज-रोज व्यर्थ नष्ट होना आपके मन की इस आदत के कारण है, जो हर चीज को पूर्ण पर ले जाने की कोशिश में लगी है। महावीर कहते हैं पूर्ण पर जाना ही मत। उसके एक क्षण पहले, एक डिग्री पहले रुक जाना। इससे तुम्हारी शक्ति जो पूर्ण को, चरम को छूकर बिखरती और खोता है, वह नहीं बिखरेगी, नहीं खोयेगी। तुम ९९ डिग्री पर से वापस लौट आओगे। भाप नहीं बन पाओगे। तुम्हारी शक्ति फिर संग्रहीत हो जायेगी। तुम्हारे हाथ में होगी। और तुम धीरे-धीरे अपनी शक्ति के मालिक हो जाओगे।

(१०) हर इंद्रिय का अपना पेट

इसे सब तरफ प्रयोग किया जा सकता है। प्रत्येक इंद्रिय का अपना उदर है, प्रत्येक इंद्रिय का अपना पट है। और प्रत्येक इंद्रिय मांग करती है कि मेरी भूख को पूरा करो। कान कहते हैं संगीत सुनवाओ, आँख कहती है सौन्दर्य

देखो। हाथ कहते हैं कुछ स्पर्श करो। सब इंद्रियाँ माँग करती हैं कि हमें भरो। प्रत्येक इंद्रिय में अन्त पर ठहर जाना। बिल्कुल ठहर जाना आसान है, ध्यान रहे। किसी उपन्यास को बिलकुल न पढ़ना आसान है। नहीं पढ़ा, बात खतम हो गयी। लेकिन किसी उपन्यास को अन्त के पहले तक पढ़कर रुक जाना ज्यादा कठिन है, इसलिए उणोदरी को नंबर दो पर रखा है। किसी फिल्म को न देखने में इतनी अड़चन नहीं है, लेकिन किसी फिल्म को देखकर उसके अन्त के पहले ही उठ जाने में ज्यादा अड़चन है। किसी को प्रेम ही नहीं किया, इसमें ज्यादा अड़चन नहीं है; लेकिन प्रेम अपनी चरम सीमा पर पहुंचे, उसके पहले वापस लौट जाना अति कठिन है। उस वक्त आप विवश हो जायेंगे। आप फ्रस्ट्रेट हो जायेंगे। उस वक्त तो ऐसा लगेगा कि चीज को पूरा हो जाने दो। जो भी हो रहा है, उसे पूरा हो जाने दो। इस वृत्ति पर संयम मनुष्य की शक्तियों को बचाने की अत्यन्त वैज्ञानिक व्यवस्था है।

उणोदरी अनशन का ही प्रयोग है। लेकिन थोड़ा कठिन है। आमतौर से आपने सुना और समझा होगा कि उणोदरी सरल प्रयोग है। जिससे अनशन नहीं बन सकता वह उणोदरी करे। मैं आप से कहता हूँ, अनशन से उणोदरी कठिन प्रयोग है। जिससे अनशन बन सकता है, वही उणोदरी कर सकता है।

महावीर का तीसरा सूत्र है वृत्ति-संक्षेप। वृत्ति-संक्षेप से परंपरागत जो अर्थ लिया जाता है वह यह है कि अपनी वृत्तियों और वासनाओं को सिकोड़ लो। अगर दस कपड़ों से काम चल सकता है, तो ग्यारह पास में न रखना। अगर एक बार भोजन से काम चल सकता हो, तो दो बार भोजन न करना। ऐसा साधारण अर्थ है। लेकिन वह अर्थ केन्द्र से संबंधित न होकर केवल परिधि से संबंधित है। नहीं, महावीर का अर्थ गहरा है और भिन्न है। इसे थोड़ा गहरे में समझना पड़ेगा।

(११) वृत्ति-संक्षेप और गुर्जिएफ का प्रयोग

वृत्ति-संक्षेप एक प्रक्रिया है। आपके भीतर प्रत्येक वृत्ति का केन्द्र है, जैसे सेक्स का एक केन्द्र है, भूख का एक केन्द्र है, प्रेम का एक केन्द्र है, बुद्धि का एक केन्द्र है। लेकिन साधारणतः हमारे सारे केन्द्र 'कन्फ्यूज्ड' हैं। क्योंकि एक केन्द्र का काम हम दूसरे केन्द्र से लेते रहते हैं। दूसरे का तीसरे से लेते रहते हैं। काम भी नहीं हो पाता और केन्द्र की शक्ति नष्ट होती है। गुर्जिएफ ने

वृत्ति-संक्षेप के प्रयोग को बहुत आधारभूत बनाया था अपनी साधना में। वह कहा करता था कि पहले तो तुम अपने प्रत्येक केन्द्र को स्पष्ट कर लो। और उस केन्द्र के काम को उसी को सौंपो। दूसरे केन्द्र से काम मत लो। अब जैसे काम-वासना है, उसका अपना एक केन्द्र है प्रकृति में। लेकिन आप मन से उस केन्द्र का काम लेते हैं, तो सेरेब्रल हो जाता है सेक्स। मन में सोचते रहते हैं। कभी-कभी तो इतना सेरेब्रल हो जाता है कि वास्तविक काम-वासना उतना रस नहीं देती, जितना काम-वासना का चिंतन रस देता है। यह बहुत अजीब बात है। यह ऐसा ही हुआ कि वास्तविक भोजन उतना रस नहीं देता, जितना भोजन का चिन्तन रस देता है। यह ऐसे हुआ जैसे पहाड़ पर जाने में उतना रस नहीं आता है, जितना घर बैठे पहाड़ पर जाने के संबंध में सोचने में, सपने देखने में मजा आता है।

असल में हम प्रत्येक केन्द्र को ट्रांसफर करते हैं, दूसरे केन्द्र पर सरका देते हैं। इससे दो खतरे होते हैं। एक खतरा यह होता है कि जिस केन्द्र का काम नहीं है, अगर उस पर हम कोई दूसरा काम डाल देते हैं, तो उसे वह पूरी तरह से कर नहीं सकता। वह उसका काम ही नहीं है, वह कभी नहीं कर सकता। इसलिए सदा अतृप्त बना रहेगा। तृप्त कभी हो ही नहीं सकता। कहीं बुद्धि से सोच सोचकर भूख तृप्त हो सकती है? कहीं काम-वासना का चिंतन काम-वासना को तृप्त कर सकता है? कैसे करेगा? वह उस केंद्र का काम ही नहीं है। यह तो ऐसा है, जैसे कोई आदमी सिर के बल चलने की कोशिश करे। जब काम पैर का है और वह सिर से चलने की कोशिश करेगा तो दोहरे दुष्परिणाम होंगे। जिस केंद्र से आप दूसरे केंद्र का काम ले रहे हैं, उसे वह कर नहीं सकता है; दूसरे, जो वह कर सकता था, वह भी वह नहीं कर पायेगा क्योंकि आप उसको ऐसे काम में लगा रहे हैं, जहाँ उसकी शक्ति उस काम में व्यय होगी, तो जो वह कर सकता था, नहीं कर पायेगा। और जिस केंद्र से आपने काम छीन लिया है, उसकी शक्ति इकट्ठी होती रहेगी। वह धीरे-धीरे विक्षिप्त होने लगेगा, क्योंकि उससे आप काम नहीं ले रहे हैं। आप पूरे के पूरे कन्फ्यूज्ड हो जायेंगे। आपका व्यक्तित्व एक उलझाव हो जायेगा।

(१२) बुद्धि को कबाड़खाना मत बनाइए

गुर्जिएफ कहता था, प्रत्येक केंद्र को उसके काम पर सीमित कर दो। महावीर के वृत्ति संक्षेप से यही अर्थ है। प्रत्येक वृत्ति को उसके केंद्र पर

संक्षिप्त कर दो। उसके केंद्र के आसपास मत फैलने दो, मत भटकने दो। इससे व्यक्ति में एक सुघड़ता आती है, स्पष्टता आती है और आप कुछ भी करने में समर्थ हो जाते हैं। हमारी सारी वृत्तियाँ करीब-करीब बुद्धि के आस-पास इकट्ठी हो जाती हैं। और बुद्धि जिस काम को कर सकती है, वह नहीं कर पाती; क्योंकि आप उससे दूसरे काम ले रहे हैं। और जो काम आप ले रहे हैं, वह बुद्धि कर नहीं सकती। क्योंकि उसकी प्रकृति के बाहर हैं, वह उसका काम नहीं है। इस दुनिया में इतनी बुद्धिहीनता है, उसका कारण यह नहीं है कि इतने बुद्धिहीन आदमी पैदा होते हैं। इस दुनिया में जो इतनी स्टुपिडिटी दिखायी पड़ती है, इतनी जड़ता दिखायी पड़ती है उसका यह कारण नहीं है कि इतने बुद्धि रिक्त लोग पैदा होते हैं। उसका कुल कारण इतना है कि बुद्धि जो काम कर सकती है, वह आप लेते नहीं, और जो नहीं कर सकती है, वह काम आप उससे लेते हैं। इससे बुद्धि धीरे-धीरे मंद होती चली जाती है।

थोड़ा सोचें, कितने आदमी दुनिया में लँगड़े हैं। या कितने आदमी दुनिया में अन्धे हैं। या कितने आदमी दुनिया में बहरे हैं। अगर दुनिया में बुद्धू भी होंगे, तो उससे ज्यादा अनुपात नहीं हो सकता। लेकिन बुद्धू बहुत दिखायी पड़ते हैं। बुद्धि नाममात्र को पता नहीं चलती। क्या कारण हो सकता है बुद्धि की इतनी कमी का? कुल कारण इतना ही है कि बुद्धि से जो काम लेना था, वह आपने लिया नहीं। जो नहीं लेना था, वह आपने लिया। इससे बुद्धि धीरे-धीरे जड़ता को उपलब्ध हो जाती है। मनस्विद् कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति प्रतिभा लेकर पैदा होता है और प्रत्येक व्यक्ति जड़ होकर मरता है। बच्चे प्रतिभाशाली पैदा होते हैं और बूढ़े प्रतिभाहीन मरते हैं। होना उल्टा चाहिए कि जितनी प्रतिभा लेकर बच्चा पैदा हुआ था, उसमें और निखार आता। अनुभव उसमें और रंग जोड़ते। जीवन की यात्रा उसको और प्रगाढ़ करती। पर यह नहीं होता। पिछले महायुद्ध में कोई दस लाख सैनिकों की बुद्धि का माप किया गया। तो पाया गया कि उनकी मानसिक आयु साढ़े तेरह वर्ष है, कुल साढ़े तेरह वर्ष! उनकी उम्र शरीर से होगी पचास साल, किसी की चालीस होगी, किसी की तीस होगी, लेकिन मानसिक आयु कुल साढ़े तेरह वर्ष! और तब बहुत हैरान करनेवाला निष्कर्ष अनुभव में आया कि शरीर तो बढ़ता जाता है और बुद्धि, मालूम होता है कि तेरह-चौदह वर्ष के करीब ठहर जाती है। उसके बाद नहीं बढ़ती।

(१३) औसत बुद्धि

मगर यह औसत है। इस असौत में बुद्धिमान सम्मिलित है। यह औसत वैसे ही है जैसे हिंदुस्तान में आम आदमी की औसत आमदनी का पता लगाया जाये तो उसमें बिड़ला भी होंगे, डालमिया भी होंगे और साहू भी। सब सम्मिलित होंगे। इस तरह जो औसत निकलेगा, वह आदमी का औसत नहीं है क्योंकि उसमें धनपति भी सम्मिलित होंगे। अगर हम धनपतियों को अलग कर दें और आम आदमी के औसत का पता लगायें तो बहुत कम पाया जायेगा, बहुत कम हो जायेगा। नेहरू और लोहिया के बीच यही विवाद बरसों तक चलता रहा पार्लियामेंट में। क्योंकि नेहरू जितना बताते थे, लोहिया उनसे बहुत कम बताते थे। लोहिया कहते थे इन पांच दस आदमियों को छोड़ दें। ये औसत आदमी ही नहीं हैं। इनका क्या हिसाब रखना है। बाकी को सोचें। तो फिर बाकी लोगों में तो नये पैसे में ही आमदनी रह जाती है। इसी तरह यह जो तेरह, साढ़े तेरह वर्ष की उम्र है, इसमें आईंस्टीन भी संयुक्त हो जाता है और बर्ट्रेन्ड रसेल भी संयुक्त हो जाता है। यह औसत है। वे सारे लोग सम्मिलित हो जाते हैं, जो शिखर छूते हैं बुद्धि का। इससे बुद्धिहीनों के पास भी औसत का थोड़ा-सा हिस्सा आ जाता है। इसमें शिखर के लोगों को छोड़ दें। अगर जमीन पर सौ आदमियों को छोड़ दिया जाये किसी भी युग में तो आम आदमी के पास बुद्धि की मात्रा इतनी कम रह जाती है कि उसकी गणना करने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। उससे कुछ नहीं होता। उससे इतना ही होता है कि आप अपने घर से दफ्तर चले जाते हैं, दफ्तर से घर आ जाते हैं। उससे इतना ही होता है कि दफ्तर में आप ट्रिक सीख लेते हैं कि क्या-क्या करना है। और उतना करके लौट आते हैं। घर में भी आप ट्रिक सीख लेते हैं कि क्या-क्या बोलना है। उतना बोलकर आप अपना काम चला लेते हैं। यह तो मशीन भी कर सकती है और आपसे बेहतर ढंग से कर सकती है। इसलिए जहां भी आदमी और मशीन में कॉम्पिटीशन होता है, आदमी हार जाता है। जहां भी मशीन से प्रतियोगिता हुई कि आप गये। मशीन से आप कहीं नहीं जीत सकते। जिस दिन आप की जिस सीमा में प्रतियोगिता होती है, उसी दिन आप बेकार हो जाते हैं।

(१४) जब बिल्कुल बेकार हो जायेंगे

अब अमरीकन वैज्ञानिक कहते हैं कि बीस साल के आदमी के लिए कोई काम नहीं रह जायगा क्योंकि मशीनें सभी काम ज्यादा बेहतर ढंग से कर सकती हैं। और सबसे बड़ा सवाल जो उनके सामने है वह यह कि बीस साल बाद हम आदमी का क्या करेंगे और इससे क्या काम लेंगे? अगर यह बेकाम हो जायेगा तो उपद्रव करेगा। उससे कुछ न कुछ तो काम लेना ही पड़ेगा। हो सकता है, काम ऐसा लेना पड़े जैसे घर में बच्चे उपद्रव करते हैं तो खिलौने पकड़ाकर काम लिया जाता है। बस, इसी तरह कुछ खिलौने आपको पकड़ाने पड़ेंगे, जिनमें आप घूंघरू वगैरह बजाते रहें, वे खिलौने अपने बड़े ढंग के होंगे। बिल्कुल बच्चे जैसे नहीं होंगे, क्योंकि उससे आप नाराज होंगे।

लेकिन मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चों के खिलौनों में और बड़े आदमियों के खिलौनों में सिर्फ कीमत का फर्क होता है और कोई फर्क नहीं होता। दोनों गुड़ियों से खेलते रहते हैं। आप एक स्त्री से खेलते रहते हैं। जरा कीमत का फर्क होता है। यह जरा महंगा खिलौना है। बाकी खेल वही है। वृत्ति-संक्षेप पर दो कारणों से महावीर का जोर है। एक तो प्रत्येक काम को, प्रत्येक वृत्ति को उसके केंद्र पर कंसंट्रेट कर देना है। यह पहली जरूरत इसलिए है कि जो वृत्ति अपने केन्द्र पर संग्रहीत हो जाती है, कंसंट्रेट हो जाती है, एकाग्र हो जाती है, आपको उसके वास्तविक अनुभव मिलने शुरू हो जाते हैं। और वास्तविक अनुभव से मुक्त हो जाना बहुत आसान है, क्योंकि वास्तविक अनुभव बहुत दुखद है। स्त्री की कल्पना से मुक्त होना बहुत कठिन है, स्त्री से मुक्त हो जाना बहुत आसान है। धन की कल्पना से मुक्त हो जाना बहुत कठिन है, धन के ढेर से मुक्त हो जाना बहुत आसान है। कल्पना से मुक्त होना है। क्योंकि कल्पना कहीं फ्रस्ट्रेट ही नहीं होती। कल्पना तो बहती चली जाती है। कहीं अंत ही नहीं आता। कहीं ऐसा नहीं होता, जहाँ कल्पना थक जाये, टूट जाये, हार जाये। वास्तविकता का तो हर जगह अंत आ जाता है। हर चीज टूट जाती है। अगर प्रत्येक वृत्ति अपने केन्द्र पर आ जाये, तो इतनी सघन हो जाती है कि आपको उसके वास्तविक, ऐक्चुअल अनुभव होने शुरू होते हैं। और जितना ही वास्तविक अनुभव हो, उतनी ही जल्दी छुटकारा है।

(१५) सभी एक दूसरे के पति, सभी एक दूसरे की पत्नियां

एक अनूठी घटना अमरीका में इधर पिछले दस वरसों में घटनी शुरू हुई है हिप्पी, बीटल और बिटनिकों के कारण। घटना यह है कि पहली दफे हिप्पियों ने काम-वासना को मुक्त भाव से भोगने प्रयोग किया, बिल्कुल मुक्त भाव से। जिन्होंने यह प्रयोग दस साल पहले किया था उन्होंने सोचा था, बड़ा आनंद उपलब्ध होगा। क्योंकि जितनी स्त्रियां चाहिए, जितने पुरुष चाहिए, जितने संबंध बनाने हैं, उतने संबंध बनाने की स्वतंत्रता है, कोई ऊपरी बाधा नहीं है। कोई कानून नहीं है, कोई अदालत नहीं है, कोई ऊपरी बाधा नहीं है। यह दो व्यक्तियों की निजी स्वतंत्रता है। लेकिन दस साल में जो सबसे हैरानी का अनुभव हिप्पियों को हुआ है, वह यह कि सेक्स बिलकुल ही बेमानी मालूम पड़ने लगा—मीनिंगलेस, जिसका कोई मतलब ही नहीं रहा। दस हजार साल पति पत्नियों वाली दुनिया में सेक्स मीनिंगफुल बना रहा। और दस साल में पति पत्नी का हिसाब छोड़ देने पर सेक्स मीनिंगलेस हो जाता है। बात क्या है ? बहुत तरह के प्रयोग हिप्पियों ने किये। और सब प्रयोग बेमानी हो जाते हैं। आठ लड़के और आठ लड़कियां शादी कर लेते हैं, ग्रुपमैरिज। एक ग्रुप दूसरे ग्रुप से मैरिज कर रहा है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से नहीं। अब इनमें से जो जिस से राजी होगा, जिस तरह राजी होगा, रहेगा। पति का ग्रुप है दस का, या आठ का और पत्नी का आठ का। ये दोनों ग्रुप इकट्ठे हो गये। अब यह एक फेमिली है। इसमें सब पति हैं, सब पत्नियां हैं। ग्रुप सेक्स ने बहुत बुरी तरह के अनुभव दिये। अभी-अभी मैं एक अनुभवी व्यक्ति का, जो इन सारे अनुभवों से गुजरा, संस्मरण पढ़ रहा था। उसने लिखा कि अगर सेक्स में रस वापिस लौटाना है तो वह पति-पत्नी वाली दुनिया बहतर है।

आप सोचते होंगे, यह सब अनीति चल रही है। लेकिन आप हैरान होंगे कि जब कोई अनुभव पूरे रूप में मिलता है तो आप उससे बाहर हो जाते हैं। असल में सेक्स में रस बचाने के लिए परिवार और दाम्पत्य और विवाह की व्यवस्था है। ध्यान रहे, जिन मुल्कों में स्त्रियां बुरके ओढ़ती हैं, उस मुल्क में जितनी स्त्रियां सुंदर होती हैं, उतनी उस मुल्क में नहीं होतीं, जहां बुरके नहीं ओढ़तीं। नसरुद्दीन की जब शादी हुई और पत्नी का बुरका जब उसने पहली दफे उघाड़ा, तो वह घबड़ा गया। क्योंकि बुरके में ही देखा था उसको। बड़े सौंदर्य की कल्पनाएं की थीं। और जैसे सभी बुरके उघाड़ने से सौंदर्य विदा

हो जाता है, ऐसे ही विदा हो गया। वह घबड़ा गया। मुसलमानों में रिवाज है कि पत्नी पति के घर आकर पहली दफे यह पूछती है उससे, कि मुझे तुम किन-किन के सामने बुरका उघाड़ने की आज्ञा देते हो। पत्नी ने यहां भी पूछा। नसरुद्दीन ने कहा, तू मेरे सामने न उघाड़, और किसी के सामने भले उघाड़। इतना ध्यान रखना कि अब दुबारा दर्शन मुझे मत देना।

जो चीजें उघड़ जाती हैं, अर्थ हीन हो जाती हैं। जो चीजें बची रह जाती हैं, अर्थ पूर्ण हो जाती हैं। आपने शरीर के जिन-जिन अंगों को ढांक दिया है उनको अर्थ दिया हैं। ढांक-ढांक के आप अर्थ दे रहे हैं। आप सोच रहे हैं कि आप ढांक कर बचा रहे हैं लेकिन सत्य यह है कि ढांक कर आप अर्थ दे रहे हैं। यू आर क्रिएटिंग मीनिंग। कोई भी चीज ढांक लो, उसमें अर्थ पैदा हो जाता है। क्योंकि कोई चीज ढांक लो, तो आस-पास बुद्धुओं की जमात है, वह उघाड़ने को उत्सुक हो जाती है। उघाड़ने की कोशिश में अर्थ आ जाता है। जितना उघाड़ने की कोशिश चलती है, उतनी ढांकने की कोशिश चलती है। और अर्थ बढ़ता चला जाता है। चीजें अगर सीधी और साफ खुल जायें, तो अर्थहीन हो जाती हैं।

(१६) यह मारिजुआना है या नये अर्थ की तलाश !

अमरीका ने पहली दफा ऐसा समाज पैदा किया है, जो एक अर्थ में सेक्समुक्त हो गया कि उसमें अर्थ नहीं दिखायी पड़ रहा। लेकिन इससे बड़ी परेशानी पैदा हुई है। और इसलिए अब नये अर्थ खोजे जा रहे हैं। एल एस डी में, मारिजुआना में और तरह के अर्थ खोजे जा रहे हैं। क्योंकि अब सेक्स से तो कोई तृप्ति होती नहीं। सेक्स में कोई मतलब ही नहीं रहा। वह बेमानी बात हो गयी। अब हमें और कोई सेंसेसन और कोई अनुभूतियां चाहिए। अमरीका लाख उपाय करे, ड्रग्ज नहीं रोके जा सकते। कोई विज्ञापन नहीं होता है एल एस डी का, लेकिन घर-घर में पहुंचा जा रहा है। कोई विज्ञापन नहीं है, किसी अखबार में खबर नहीं है कि आप एल एस डी जरूर सेवन करो, लेकिन एक-एक यूनिवर्सिटी के कैम्पस पर एक-एक विद्यार्थी के पास पहुंचा जा रहा है यह ड्रग। अमरीका सफल नहीं होगा, भले ही कानून बना डाले विरोध में अदालत मुकदमे चलायें, सजाएं दें (एल एस डी के प्रचार के लिए जो सबसे बड़ा पुरोहित था वहां तिमोथी

लियरी, उसको सजा दे दिया आजीवन की) लेकिन इनसे मामला रुकेगा नहीं। जब तक कि आप सेक्स के मीनिंग वापस नहीं लौटा लेंगे अमरीका में, तब तक ड्रग्स नहीं रुक सकते। क्योंकि आदमी बिना नियम के नहीं जी सकता। और या फिर उसमें आप कोई आत्मा का, परमात्मा का मीनिंग पैदा करें, कोई नया अर्थ दें, जिसकी खोज में आदमी निकल जाये। किसी नये शिखर की ओर ले जायें जिस पर वह चढ़ जाये।

एक शिखर है आदमी के पास संभोग का, वह उसकी तलाश में भटकता रहता है। और वह इतना सुरक्षित और व्यवस्थित है कि वह कभी भी अनुभव नहीं पाता कि वह व्यर्थ है। अगर उसकी पत्नी व्यर्थ हो जाती है, पति व्यर्थ हो जाता है तो और भी स्त्रियाँ हैं, जो सार्थक बनी रहती हैं। परदे पर फिल्म की स्त्रियाँ सार्थक बनी रहती हैं। कोई न कोई है जहाँ अर्थ बना रहता है और उस अर्थ की तलाश में वह लगा रहता है।

महावीर कहते हैं वृत्ति-संक्षेप, जो कि बड़ी वैज्ञानिक बात है। इसका एक अर्थ तो यह है कि प्रत्येक वृत्ति टोटल इंटेंसिटी में जी जा सकेगी और जिस वृत्ति को भी आप उसकी समग्रता में जीते हैं, वह व्यर्थ हो जाती है। और वृत्तियों का व्यर्थ हो जाना जरूरी है आत्मदर्शन के पूर्व। दूसरी बात। सारी वृत्तियाँ मन को घेर लेती हैं क्योंकि आप मन से ही सारा काम करते हैं। भोजन भी मन से करना पड़ता है, संभोग भी मन से करना पड़ता है, कपड़े भी मन से पहनने पड़ते हैं। कार भी मन से चलानी पड़ती है, दफ्तर भी मन से जाना होता है। सारा काम बुद्धि को घेर लेता है इसलिए बुद्धि निर्बल और निर्वीर्य हो जाती है, क्योंकि इतना काम उस पर बाहरी हो जाता है।

(१७) मुल्ला चले तनख्वाह बढ़ुवाने

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने उससे कहा कि अपने मालिक से कहो कि अब कुछ तनख्वाह बढ़ायें, बहुत दिन हो गये कोई तनख्वाह नहीं बढ़ी। मुल्ला ने कहा, मैं तो कहता हूँ, लेकिन वह टाल देता है। उसकी पत्नी ने कहा, तुम जाकर बताओ उसको कि तुम्हारी माँ बीमार है, उसके इलाज की जरूरत है, तुम्हारे पिता को लकवा लग गया है, उनकी सेवा की जरूरत है। तुम्हारी सास भी तुम्हारे पास रहती है, तुम्हारे इतने बच्चे हैं, इनकी शिक्षा का सवाल

है। तुम्हारे पास अपना मकान नहीं है। तुम्हें मकान बनाना है। ऐसी उसने बड़ी-सी फेहरिस्त बतायी।

मुल्ला दूसरे दिन बड़ा प्रसन्न लौटा दफ्तर से। पत्नी ने कहा क्या तनख्वाह बढ़ गयी। मुल्ला ने कहा, नहीं। मेरे मालिक ने कहा है, यू हैव टू मच आउट साइड एक्टिविटीज। तुम दफ्तर का काम कब करोगे? जब इतना सब तुम्हारा काम घर में है, तो दफ्तर का काम कब करोगे! और नौकरी खतम करके छुट्टी दे दी। तो बुद्धि के ऊपर इतना ज्यादा काम है कि बुद्धि अपने काम कब करेगी? आप इसको सब तरह से बोझिल किये हुए हैं। वह अपना काम कब करे? इसीलिए आप बुद्धिमत्ता का कोई काम जीवन में नहीं कर पाते। बुद्धि से आप सिर्फ साधन का ही काम लेते हैं। कभी धन कमाने का काम लेते हैं, कभी शादी करने का काम करते हैं, कभी रेडियो सुनने का काम करते हैं। लेकिन बुद्धि की बुद्धिमत्ता पनपने नहीं देते। बुद्धि का निजी काम है ध्यान। जब बुद्धि अपने मन में ठहरती है, अपने में रुकती है, तब विस्डम, बुद्धिमत्ता आती है। और तब पहली दफे जीवन को आप और ढंग से देख पाते हैं, एक बुद्धिमान की आंखों से। लेकिन वह मौका नहीं आ पाता। उसके पास बहुत ज्यादा काम है। वह उसी में दबी-दबी नष्ट हो जाती है। जो आपके पास श्रेष्ठतम बिंदु है काम का, उससे आप बहुत निकृष्ट काम ले रहे हैं। जो आपके पास श्रेष्ठतम शक्ति है, उससे आप गलत काम ले रहे हैं। जिनको कि सुई से किया जा सकता था, वे काम आप तलवार से कर रहे हैं। तलवार से लेने की वजह से सुई से जो हो सकता था, वह भी नहीं हो पाता। और तलवार जो कर सकती थी, उसका तो कोई सवाल ही नहीं है, क्योंकि वह सुई के काम में उलझी हुई होती है।

(१८) यही सयानो काम

वृत्ति-संक्षेप का अर्थ है—प्रत्येक वृत्ति को उसके अपने केन्द्र पर संक्षिप्त करो। उसे फैलने मत दो। भूख लगे तो पेट से लगने दो, बुद्धि से मत लगने दो। बुद्धि को कह दो कि तू चुप रह, कितना बजा है, इसकी फिकर छोड़; पेट खबर देगा कि भूख लगी है, तब हम सुन लेंगे। सोने का काम करना है तो बुद्धि को काम न करने दें। नींद आयेगी तो खुद ही खबर होगी, शरीर खबर देगा तब सो जायेंगे। नींद तोड़नी होगी, तो भी बुद्धि को काम मत दो

कि वह अलार्म भर के रख दे। जब नींद टूटेगी तो टूट जायेगी। उसको स्वयं टूटने दो। नींद के यंत्र को अपना काम करने दो। काम-वासना के यंत्र को अपना काम करने दो। शरीर के सारे काम स्पेशलाइज्ड हैं। उनको अपने-अपने में चले जाने दो। उन सबको इकट्ठा मत करो, अन्यथा सब विकृत हो जायेंगे। और उनको सँभालना कठिन हो जायेगा। बुद्धि का इतना काम है कि एक केन्द्र अपने काम को समग्रता से करे ताकि उसका काम किसी दूसरे केन्द्र पर फैलने न पाये, बुद्धि इतना देखे तो पर्याप्त है। इतने से बुद्धि नियंता हो जाती है, कंट्रोल हो जाती है। वह मध्य में बैठ जाती है और मालिक हो जाती है। उसका नियंत्रण सब इंद्रियों पर हो जाता है। और प्रत्येक इंद्रिय अपना काम करे, यही उसकी दृष्टि हो जाती है। कोई इंद्रिय अपना काम करती है और जैसे ही बुद्धि देख पाती है कि उस काम में कोई रस मिलता है या नहीं मिलता है, तो जो व्यर्थ काम हैं, वे बंद होने शुरू हो जाते हैं और जो सार्थक काम हैं, वे बढ़ने शुरू हो जाते हैं। बहुत शीघ्र वह वक्त आ जाता है जब आपके जीवन से व्यर्थ गिर जाता है, गिराना नहीं पड़ता, और सार्थक बच रहता है, बचाना नहीं पड़ता। आपके जीवन से काँटे गिर जाते हैं, फूल बच जाते हैं। इसके लिए कुछ करना नहीं पड़ता। बुद्धि का सिर्फ देखना ही पर्याप्त होता है। उसका साक्षी होना पर्याप्त होता है। साक्षी होना ही बुद्धि का स्वभाव है। वही उसका काम है। बुद्धि किसी का साधन नहीं है। वह स्वयं साध्य है। सभी इंन्द्रियाँ अपने अनुभव को बुद्धि को दे दे, लेकिन कोई इन्द्रिय अपने काम को बुद्धि से न ले पाये, बस यही वृत्ति संक्षेप का अर्थ है।

निश्चित ही इसका परिणाम होगा। इसका परिणाम होगा कि जब प्रत्येक केंद्र अपना काम करेगा तो आपके बहुत से काम जो बाहर से जीवन में फैलाव लाते थे, वे गिरने शुरू हो जायेंगे। वे सिकुड़ने शुरू हो जायेंगे, बिना आपके प्रयत्न के। आपको धन की दौड़ छोड़नी नहीं पड़ेगी। आप अचानक पायेंगे कि जो-जो व्यर्थ था, वह छूट गया। आपको बड़ा मकान बनाने का पागलपन छोड़ना नहीं पड़ेगा। आपको दिख जायेगा कितना मकान आपके लिए जरूरी हैं। उससे ज्यादा व्यर्थ लगने लगेगा। आप में कपड़ों का ढेर लगाने का पागलपन नहीं रह जायेगा। फिर आप गिनती करके मजा न लेंगे कि तीन सौ साड़ी पूरी हो गयीं, अब चार सौ साड़ी पूरी हो गयीं, अब

पांच सौ साड़ी पूरी हो गयीं। आपकी बुद्धि आपसे कहेगी कि ये पांच सौ साड़ी पहनिएगा कब ?

(१९) जूतों का हिसाब उर्फ चमारी प्रतियोगिता

मैंने सुना है कि दो सेल्समैन आपस में एक दिन बात कर रहे थे। एक सेल्समैन बड़ी बातें कर रहा था कि आज मैंने इतनी बिक्री की। एक आदमी एक टाई खरीदने आया था, मैंने उसको तीन टाई बेच दीं। दूसरे ने कहा, 'दिस इज नथिंग।' यह कुछ भी नहीं है। एक पत्नी अपने मरे हुए पति के लिए सूट खरीदने आयी थी। मैंने उसे दो सूट बेच दिये।

वह पति मर गया है, यह सवाल छोड़िये। पति को दूसरा जोड़ा पहनने का मौका कभी नहीं आयेगा यह भी सवाल नहीं है। लेकिन दुसरा जोड़ा भी जँच रहा है, इसमें मन को एक रस है। करीब-करीब हम यही कर रहे हैं। कौन पहनेगा, कब पहनेगा, इसका सवाल नहीं है। मात्रा ही अपने आप में मूल्यवान हो जाती है। उपयोग जैसे कुछ नहीं है, संख्या ही उपयोग है। कितनी संख्या हम बता सकते हैं इसका उपयोग है। मैं अक्सर घरों में जाता हूँ और देखता हूँ किसी-किसी के यहाँ सौ जोड़े जूतों के रखे हुए हैं। इससे तो बेहतर है आदमी चमार हो जाये। गिनती का मजा लेता रहेगा। गिनती ही करनी है न, तो चमार हो जाये, तो जोड़ने में मजा आये। नये-नये जोड़े रोज आते जायेंगे, उसको बड़ी तृप्ति मिलेगी। लेकिन मैं पूछता हूँ कि सौ जोड़े का क्या करियेगा ? नहीं, लेकिन सौ जोड़े की प्रतिष्ठा है। जिसके पास हैं, उसके मन में तो है ही। जिसके पास नहीं है, वह पीड़ित है कि हमारे पास सौ जोड़े जूते नहीं हैं। यानी चमारी में भी प्रतियोगिता है। वह दूसरा चमार हमसे ज्यादा चमार हुआ जाता है। हम बिल्कुल पिछड़े जा रहे हैं। सौ जोड़े जूते हमारे कब होंगे ? और अक्सर ऐसा होता है कि जोड़े जूते तो इकट्ठे होते जाते हैं। लेकिन जोड़े जूते इकट्ठा करने में वे पैर इस योग्य नहीं रह जाते कि चल भी पायें। और सौ पर भी वह संख्या रुकती नहीं है।

(२०) निन्यानवे का चक्कर तिब्बत में भी !

तिब्बत में एक पुरानी कथा है कि दो भाई हैं। पिता मर गया है। तो उनके पास सौ घोड़े थे। घोड़ों का ही काम था। सवारियों को ले आने,

ले जाने का काम था। पिता मरते वक्त बड़े भाई से कह गया कि तू बुद्धिमान है और छोटा तो अभी छोटा है। तू अपनी मर्जी से जैसा भी बँटवारा करना चाहे, कर देना ले। तो बड़े भाई ने बँटवारा कर दिया। ९९ घोड़े उसने रख लिये। एक घोड़ा छोटे भाई को दे दिया। आस-पास के लोग चौंके भी। पड़ोसियों ने कहा भी कि, तुम यह क्या कर रहे हो। तो बड़े भाई ने कहा कि मामला ऐसा है कि वह अभी छोटा है, समझ कम है। ९९ कैसे सँभालेगा ? इसलिए मैं ९९ ले लेता हूँ, एक उसे दे देता हूँ।

छोटा भाई थोड़े दिनों में बड़ा हो गया, लेकिन वह एक से ही काफी प्रसन्न था। एक से काम चल जाता था। वह खुद ही काम कर लेता था, नौकर नहीं रखने पड़ते थे। अलग इंतजाम नहीं करना पड़ता था। वह खुद ही सईस की तरह चला जाता था। यात्रा करवा आता था लोगों को। उसका भोजन का काम चल जाता था। लेकिन बड़ा भाई बहुत परेशान था। ९९ घोड़े थे, ९९ चक्कर थे। नौकर रखने पड़ते थे। अस्तबल बनाना पड़ता था। कभी कोई घोड़ा बीमार हो जाता, कभी कुछ हो जाता, कभी कोई घोड़ा भाग जाता, कभी कोई नौकर नहीं लौटता। रात हो जाती, देर हो जाती, वह जागता रहता। बहुत परेशान था।

एक दिन आकर उसने अपने छोटे भाई से कहा कि तुझसे मेरी एक प्रार्थना है कि तेरा जो एक घोड़ा है, वह भी मुझे दे दे। उसने कहा, क्यों ? तो उस बड़े भाई ने कहा कि तेरे पास एक ही घोड़ा है। नहीं भी रहा तो कुछ ज्यादा नहीं खो जायेगा। मेरे पास ९९ हैं। अगर एक मुझे और मिल जाय तो सौ हो जायेंगे। और तेरा तो कुछ खास बिगड़ेगा नहीं, क्योंकि एक ही है, हुआ न हुआ बराबर है। पर मेरे लिए बड़ा सवाल है। क्योंकि मेरे पास ९९ हैं। एक मिलते ही पूरी सेंचुरी, पूरे सौ हो जायेंगे। तो मेरी प्रतिष्ठा और इज्जत का सवाल है। अपने बाप के पास सौ घोड़े थे। कम से कम बाप की भी इज्जत का सवाल इसमें जुड़ा हुआ है। छोटे भाई ने कहा कि आप यह घोड़ा भी ले जायें। क्योंकि मेरा अनुभव यह है कि ९९ में मैं आपको बड़ी तकलीफ में देखता हूँ। तो मैं सोचता हूँ कि ९९ में एक बढ़े ही सही, लेकिन थोड़ी बहुत तकलीफ तो होगी। यह भी आप ले जायें।

वह छोटा उस दिन से इतने आनन्द में हो गया क्योंकि अब वह खुद ही घोड़े का काम करने लगा। अब तक ऐसा था कि कभी घोड़ा बीमार पड़ता

था, कभी दवा लानी पड़ती थी, कभी घोड़ा राजी नहीं होता था जाने को, कभी थक कर बैठ जाता था। हजार दिक्कतें होती थीं। वह भी खतम हो गयीं। अब तक घोड़े की नौकरी करनी पड़ती थी, उसकी लगाम पकड़नी पड़ती थी, वह भी बात खतम हो गयी। अपना मालिक हो गया। अब वह खुद ही बोझ ढो लेता। लोगों को कंधे पर बिठा लेता और यात्रा कराता। लेकिन बड़ा बहुत परेशान हो गया। वह बीमार ही रहने लगा। क्योंकि अब चिंता थी कि सौ में से कहीं एकाध कम न हो जाये, कोई घोड़ा मर न जाये, कोई खो न जाये, नहीं तो बड़ी मुश्किल हो जायेगी।

एक तिब्बती फकीर यह कहानी अक्सर कहा करता था। वह कहता था, मैंने दो ही तरह के आदमी देखे। एक तो वे, जो वस्तुओं पर इतना भरोसा कर लेते हैं कि उनकी वजह से ही परेशान हो जाते हैं। और एक वे जो अपने पर इतने भरोसे से भरे होते हैं, कि वस्तुएँ उन्हें परेशान नहीं कर पातीं। दो ही तरह के लोग हैं इस पृथ्वी पर, लेकिन दूसरी तरह के लोग बहुत कम हैं, इसलिए आनन्द बहुत कम है। पहली तरह के लोग बहुत हैं, इसलिए दुःख बहुत है। वृत्ति-संक्षेप का अर्थ सीधा यह नहीं है कि आप अपने परिग्रह को कम करें। जब भीतर आपकी वृत्ति संक्षिप्त होती है, तो बाहर परिग्रह कम हो जाता है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि आप सब छोड़कर भाग जायें, तो आप बदल जायेंगे। जरूरी नहीं है। क्योंकि अगर चीजें छोड़ने से आप बदल सके, तो चीजें बहुत कीमती हो जाती हैं। अगर चीजें छोड़ने से मैं बदल जाता हूँ तो चीजें बहुत कीमती हो जाती हैं। और अगर चीजें छोड़ने से मुझे मोक्ष मिलता है, तो ठीक है, मोक्ष का भी सौदा हो जाता है। चीजों की ही कीमत चुकाकर मोक्ष मिल जाता है। अगर एक मकान छोड़ देने से, एक पत्नी, एक बच्चे को छोड़ देने से मुझे मोक्ष मिल जाता है, तो मोक्ष की कीमत कितनी हुई! इतनी ही कीमत हुई जितनी मकान की हो सकती है या एक पत्नी की, एक बेटे की हो सकती है। अगर मैं चीजें छोड़ने से त्यागी हो जाता हूँ, तो ठीक है। चीजें छोड़ने से लोग त्यागी हो जाते हैं, चीजें होने से भोगी हो जाते हैं लेकिन चीजों का मूल्य, उनकी वैल्यू तो कायम रहती है। फिर जिसके पास चीज न हो, वह त्यागी कैसे होगा? जिसके पास छोड़ने को महल न हो, वह महात्यागी कैसे होगा? बड़ी मुश्किल है, पहले महल होना चाहिए।

(२१) पाप : मोक्ष की पहली जरूरत

नसरुद्दीन से किसी ने पूछा, कि मोक्ष पाने का मार्ग क्या है ?

तो नसरुद्दीन ने कहा कि यू मस्ट सिन फर्स्ट। पहले पाप करो।

तो उसने कहा, यह क्या पागलपन की बात करते हो ? तुम मोक्ष पाने का रास्ता बता रहे हो कि नर्क जाने का ?

नसरुद्दीन ने कहा कि जब पाप नहीं करोगे, तो पश्चात्ताप कैसे करोगे ? और जब पश्चात्ताप नहीं करोगे तो मोक्ष जाओगे कैसे ? और जब पाप नहीं करोगे तो भगवान् तुम पर दया कैसे करेगा ? और जब दया नहीं करेगा, तो कुछ होगा ही नहीं बिना उसकी दया के। पहले पाप करो। तब पश्चात्ताप करोगे, तब भगवान् दया करेगा, तब स्वर्ग का द्वार खुलेगा और तुम भीतर प्रवेश कर पाओगे। तो जो इसेंसियल चीज है, नसरुद्दीन ने कहा, वह पाप है। उसके बिना कुछ हो नहीं सकता।

यही हाल यहाँ है कि इसेंसियल चीजें पहले इकट्ठी करो, फिर त्याग करो। अगर त्याग न करोगे तो मोक्ष में कैसे जाओगे ? लेकिन त्याग करोगे कैसे अगर वस्तुएँ इकट्ठी न करोगे ? तो पहले इकट्ठी करो। फिर त्याग करो। फिर मोक्ष में जाओ। मगर जाओगे वस्तुओं से ही मोक्ष में। वस्तुओं पर ही चढ़कर मोक्ष जाना होगा। तो फिर मोक्ष कम कीमती हो गया और वस्तु ज्यादा कीमती हो गयी, क्योंकि जो पहुँचा दे, उसी की कीमत है। कबीर ने कहा, गुरु गोबिन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाँव ? गुरु गोबिन्द दोनों एक दिन सामने खड़े हो गये, तो फिर किसके पैर लगूँ ? लेकिन फिर कबीर ने सोचा कि गुरु के ही पैर लगना ठीक है, क्योंकि उसी से गोबिन्द का पता चलेगा। तो अगर वस्तुओं से ही मोक्ष जाना है तो वस्तुओं की ही शरणागति में जाना पड़ेगा, उनके ही पैर पड़ना होगा। क्योंकि उनसे ही मोक्ष मिलेगा। क्योंकि न करोगे त्याग, न मिलेगा मोक्ष। क्या त्याग करोगे, कुछ होना चाहिए तब न त्याग करोगे।

तब फिर वस्तुओं का मूल्य स्थिर है अपनी जगह। भोगी के लिए भी, त्यागी के लिए भी। नहीं, लेकिन महावीर के लिए यह अर्थ नहीं है। महावीर वस्तुओं को मूल्य नहीं दे सकते। इसलिए मैं कहता हूँ कि महावीर का यह अर्थ नहीं है कि वस्तुओं के त्याग का नाम वृत्ति-संक्षेप है। महावीर वस्तुओं को मूल्य दे ही नहीं सकते। इतना भी मूल्य नहीं दे सकते कि उनके त्याग

का कोई अर्थ है। नहीं, महावीर का प्रयोग आन्तरिक है। भीतर वृत्ति केंद्र पर ठहर जाये, तो बाहर फैलाव अपने आप बन्द हो जाता है। वैसे ही जैसे कि हमने एक दिया जलाया हो और अगर हम उसकी बाती को भीतर नीचे की तरफ कम कर दें, तो बाहर प्रकाश का घेरा कम हो जाता है। यहाँ दिये की बाती जितनी छोटी होती जाती है उतना ही वहाँ प्रकाश का घेरा कम होता जाता है। लेकिन अगर आप सोचते हों कि प्रकाश का घेरा कम करके हम दिये की बाती छोटी कर लेंगे, तो आप बड़ी गलती में हैं। यह कभी नहीं होगा, आप अपने को धोखा दे सकते हैं। धोखा देने की तरकीब यह है कि आप अपनी आँखें बन्द करते चले जायें। दिया उतना ही जलता रहेगा, प्रकाश उतना ही निकलता रहेगा और आप अपनी आँख धीमे-धीमे बन्द करते चले जायें। लगेगा कि आप बिल्कुल अन्धेरे में बैठे हैं। लेकिन वह धोखा है। आँख खोलेंगे और पायेंगे कि दिये का प्रकाश वर्तुल उतने का उतना ही है। क्योंकि दिये का वर्तुल मूल्य नहीं है, मूल्य उसकी बाती है। उसकी बाती नीचे छोटी होती जाये तो बाहर प्रकाश का वर्तुल छोटा हो जायेगा। बाती डूब जाये, शून्य हो जाये, तो वर्तुल खो जाता है। हम सबके बाहर जो फैला प्रकाश दिखायी पड़ता है, उसकी बाती हमारे भीतर है, हमारे प्रत्येक के केंद्र पर है। बाहर तो सिर्फ प्रदर्शन है, असली बात तो भीतर है। भीतर सिकुड़ाव हो जाता है, तो बाहर सब सिकुड़ जाता है। ध्यान रहे जो बाहर सिकुड़ने में लगता है, वह गलत, बिल्कुल गलत मार्ग से चल रहा है। वह परेशान होगा, पहुँचेगा कहीं भी नहीं।

हालांकि कुछ लोग परेशानी को तप समझ लेते हैं। जो परेशानी को तप समझ लेते हैं उनकी नासमझी का कोई हिसाब ही नहीं है। तप से ज्यादा आनंद नहीं है, लेकिन तप को लोग परेशानी समझ लेते हैं जोकि परेशानी नहीं है। उन्हें दस कपड़े चाहिए। उन्होंने नौ रख लिये तो बड़ी परेशानी है। परेशानी उतनी ही है जितना दस में मजा था। दस के मजे का अनुपात ही परेशानी बन जायेगा। एक कम हो गया कि परेशानी शुरू हो गयी। अब इस परेशानी को कुछ हैं जो तप समझ रहे हैं। परेशानी तप नहीं है।

(२२) मुल्ला की शादी

मैंने मुल्ला की पत्नी की आपसे बात की है। उसने जानकर उस स्त्री से शादी की। गांवभर में खबर थी कि वह बहुत दुष्ट है, कलहपूर्ण है। चालीस साल

तक उससे कोई शादी करनेवाला नहीं मिला। और जब नसरुद्दीन ने खबर दी कि मैं शादी करने को तैयार हूँ तो मित्रों ने कहा तू पागल तो नहीं हो गया? इस औरत को कोई शादी करनेवाला नहीं मिला। यह खतरनाक है, तेरी गर्दन दबा देगी, तेरे प्राण ले लेगी, तुझे जीने न देगी। तू बहुत मुश्किल में पड़ जायेगा। नसरुद्दीन ने कहा कि मैं भी चालीस वर्ष तक अविवाहित रहा। इस अविवाहित रहने में मैंने बहुत पाप कर लिये। इससे शादी करके मैं प्रायश्चित करना चाहता हूँ। यह एक तप है। जानकर कर रहा हूँ। लेकिन पश्चात्ताप तो करना पड़ेगा न! स्त्रियों से इतना सुख पाया, अब इतना दुख पाऊँगा तब तो हल होगा न! और यह स्त्री जितना दुख दे सकती है, शायद दूसरी न दे सकेगी। यह बड़ी अद्‌भुत स्त्री है। और नसरुद्दीन ने शादी कर ली।

लेकिन नसरुद्दीन की पत्नी के पास यह खबर पहुँच गयी कि नसरुद्दीन ने इसलिए शादी की है ताकि यह स्त्री उसको सताये और उसका तप हो जाये। तो उसने कहा, भूल में न रहो। तुम मेरे ऊपर चढ़कर स्वर्ग में न जा सकोगे। मैं किसी का साधन नहीं बन सकती। आज से मेरे कलह बंद। और कहते हैं वह स्त्री नसरुद्दीन से जिंदगी भर न लड़ी। उसको नर्क जाना ही पड़ा। नहीं लड़ी वह। उसने कहा, तुम मुझे साधन बनाना चाहते हो स्वर्ग जाने का, यह नहीं होगा, यह कभी नहीं हो सकता, तुम नर्क जाकर ही रहोगे।

वह इसी जमीन पर जो नर्क पैदा करती, वह उसने नहीं किया। उसने अगले का इंतजाम कर लिया। आप किसी चीज को साधन बनाकर जाना चाहते हैं स्वर्ग तक? वस्तुओं को? अपरिग्रह को? वह नहीं होगा। आप परेशान भला हो जायें, यह तप नहीं होगा। परेशानी तप नहीं है। तप तो बड़ा आनंद है। और तपस्वी के आनंद का कोई हिसाब नहीं है। वस्तुओं में दुख है, लेकिन यह दुख तभी पता चलेगा आपको, जब अपनी वृत्ति के केंद्र पर आप अनुभव करेंगे, दुख पायेंगे और सुख की कोई रेखा न दिखायी पड़ेगी। अँधेरा ही अँधेरा पायेंगे, कोई प्रकाश की ज्योति न दिखायी पड़ेगी। कांटे ही कांटे पायेंगे, कोई फूल खिलता नहीं दिखायी पड़ेगा। भीतर-भीतर केंद्र व्यर्थ हो जायेगा, बाहर से आभामंडल तिरोहित हो जायेगा। अचानक आप पायेंगे कि

बाहर कोई आदमी नहीं रह गया । लोगों को दिखायी पड़ेगा कि आपने बाहर छोड़ दिया, लेकिन आप बाहर कुछ भी न छोड़ेंगे, भीतर ही कुछ टूट गया । भीतर कोई ज्योति ही बुझ गयी । तो एक–एक केंद्र पर उसकी वृत्ति को ठहरा देना । और वुद्धि को सजग रखकर देखना कि वृत्ति के अनुभव क्या हैं ? बहुत आदमियों के संदर्भ में जो बड़े से बड़ा आश्चर्य है, वह यह है कि जिस चीज को आप आज कहते हैं कि कल मुझे मिल जाय तो सुख मिलेगा, वही चीज कल जब मिलती है तब आप यह तौल नहीं करते कि कल मैंने कितना सुख सोचा था, वह मिला या नहीं मिला ! इससे भी बड़ा आश्चर्य है कि उससे दुःख मिलता है, लेकिन दूसरे दिन आप फिर उसी की चाह करने लगते हैं और कभी नहीं सोचते कि कल उससे दुख पाया था, अब फिर मैं दुख की तलाश में जा रहा हूँ । हम कभी तौलते ही नहीं । बुद्धि का जो काम है, वही हम नहीं लेते उससे । जिस चीज में सोचा था, सुख मिलेगा, उसमें दुख मिला, यह अनुभव में आता है, पर इस अनुभव को हम याद नहीं रखते और जिसमें दुख मिला, उसको फिर दुबारा चाहने लगते हैं ।

(२३) विसडम के चमत्कार

ऐसी जिंदगी सिर्फ एक कोल्हू के बैल जैसी हो जाती है कि बस एक ही रास्ते पर घूमते रहते हैं । कोई गति नहीं, कहीं कोई पहुँचना नहीं । घूमते-घूमते मर जाते हैं । जहाँ जमीन पर खड़े होते हैं, उसी जमीन पर खड़े-खड़े मर जाते हैं । कहीं एक इंच आगे नहीं बढ़ पाते हैं । बढ़ भी नहीं पायेंगे । क्योंकि बढ़ने की जो संभावना थी, वह आपकी बुद्धिमत्ता से थी, आपकी विसडम से थी, आपकी प्रज्ञा से थी । वह प्रज्ञा तो कभी विकसित नहीं होती । इसलिए महावीर वृत्ति-संक्षेप पर जोर देते हैं ताकि प्रत्येक वृत्ति अपनी तीव्रता में, अपनी प्योरिटी में अनुभव में आ जाये और अनुभव कह जाये कि दुःख है वहां, सुख नहीं है और वृद्धि इस अनुभव को संग्रहीत करे, इस अनुभव को जिये, पिये और बुद्धि के रोयें–रोयें में वह समा जाये तो आपके भीतर वृत्तियों से ऊपर आपकी प्रज्ञा, आपकी बुद्धिमत्ता उठने लगेगी । और

जैसे-जैसे वुद्धिमत्ता ऊपर उठती है वैसे-वैसे वृत्तियां सिकुड़ती जाती हैं। इधर वृत्तियां सिकुड़ती हैं, इधर बुद्धिमत्ता ऊपर उठती है। और बाहर परिग्रह कम होता चला जाता है। जैसे वुद्धिमत्ता ऊपर उठती है वैसे ही संसार बाहर कम होता चला जाता है। जिस दिन आपकी समग्र शक्ति वृत्तियों से मुक्त होकर बुद्धि को मिल जाती है, उसी दिन आप मुक्त हो जाते हैं। जिस दिन आपकी सारी शक्ति वृत्तियों से मुक्त होकर प्रज्ञा के साथ खड़ी हो जाती है उसी दिन आप मुक्त हो जाते हैं। जिस दिन काम-वासना की शक्ति भी वुद्धि को मिल जाती है, जिस दिन लोभ की शक्ति भी वुद्धि को मिल जाती है, जिस दिन क्रोध की शक्ति भी वुद्धि को मिल जाती है, जिस दिन मोह की शक्ति भी वुद्धि को मिल जाती है जिस दिन समस्त शक्तियां बुद्धि की तरफ प्रवाहित होने लगती हैं जैसे नदियां सागर की तरफ जा रही हों, उस दिन बुद्धि का महासागर आपके भीतर फलित हो जाता है। उस महासागर का आनंद, उस महासागर की प्रतीति और अनुभूति दुःख की नहीं, परेशानी की नहीं, परम आनंद की है। वह परम प्रफुल्लता की अनुभूति है। वह किसी फूल के खिल जाने जैसी है। वह किसी दीये के जल जाने जैसी है। वह कहीं मृतक में जीवन आ जाने जैसी है। आज इतना ही। कल आगे फिर चौथे बाह्य तप पर बात करेंगे।



बारहवां प्रवचन

पर्युषण व्याख्यान-माला, बम्बई, दिनांक २९ अगस्त, १९७१

रसना तू न गयी मोरे मन ते अर्थात् 'रस-परित्याग' और काय-क्लेश

बाह्य तप का चौथा चरण है 'रस-परित्याग'। किन्हीं रसों का, किन्हीं स्वादों का निषेध इतनी स्थूल बात रस-परित्याग नहीं है। वस्तुतः साधना के जगत् में थूल से स्थूल दिखायी पड़ने वाली बात भी स्थूल नहीं होती। कितने ही स्थूल शब्दों का प्रयोग किया जाये, बात तो सूक्ष्म रूप होती है। मजबूरी है कि स्थूल शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है। क्योंकि सूक्ष्म के लिए कोई शब्द नहीं है। वह जो अंतर् जगत् है, वहाँ तक इशारे करनेवाले कोई शब्द हमारे पास नहीं हैं। अंतर् जगत् की कोई भाषा नहीं है। इसलिए बाह्य जगत् के शब्दों का प्रयोग करना मजबूरी है। उस मजबूरी से खतरा भी पैदा होता है। क्योंकि तब उन शब्दों का स्थूल अर्थ लिया जाना शुरू हो जाता है। रस-परित्याग से यही लगता है कि कभी खट्टे का त्याग कर दो, कभी मीठे का त्याग कर दो, कभी घी का त्याग कर दो, कभी कुछ और का त्याग कर दो। लेकिन रस-परित्याग से ऐसा प्रयोजन महावीर का नहीं है। महावीर का क्या प्रयोजन है, वह दो तीन हिस्सों में समझ लेना जरूरी है।

(१) स्वाद कहां होता है ?

पहली बात तो यह कि रस की पूरी प्रक्रिया क्या है ? जब आप कोई स्वाद लेते हैं तो स्वाद वस्तु में होता है या स्वाद आपकी जिह्वा में होता है या पीछे वह जो आपका अनुभव करनेवाला मन है, उसमें होता है ? या स्वाद उस मन के साथ आपकी चेतना का जो तादात्म्य है, उसमें होता है ? स्वाद कहाँ है ? रस कहाँ है ? यह जान लें, तभी परित्याग का ख्याल में आ सकेगा। जो स्थूल में देखते हैं, तो हमें लगता है कि स्वाद या रस वस्तु में होता है, इसलिए वस्तु में स्वाद नहीं होता है। वस्तु केवल निमित्त बनती है। और

धम्मो मंगलमुक्किट्ठम्, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति, जस्स धम्मे सया मणो ॥१॥

अर्थ :—

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

बाह्य तप का चौथा चरण है 'रस-परित्याग'। किन्हीं रसों का, किन्हीं स्वादों का निषेध इतनी स्थूल बात रस-परित्याग नहीं है। वस्तुतः साधना के जगत् में थूल से स्थूल दिखायी पड़ने वाली बात भी स्थूल नहीं होती। कितने ही स्थूल शब्दों का प्रयोग किया जाये, बात तो सूक्ष्म रूप होती है। मजबूरी है कि स्थूल शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है। क्योंकि सूक्ष्म के लिए कोई शब्द नहीं है। वह जो अंतर् जगत् है, वहाँ तक इशारे करनेवाले कोई शब्द हमारे पास नहीं हैं। अंतर् जगत् की कोई भाषा नहीं है। इसलिए बाह्य जगत् के शब्दों का प्रयोग करना मजबूरी है। उस मजबूरी से खतरा भी पैदा होता है। क्योंकि तब उन शब्दों का स्थूल अर्थ लिया जाना शुरू हो जाता है। रस-परित्याग से यही लगता है कि कभी खट्टे का त्याग कर दो, कभी मीठे का त्याग कर दो, कभी घी का त्याग कर दो, कभी कुछ और का त्याग कर दो। लेकिन रस-परित्याग से ऐसा प्रयोजन महावीर का नहीं है। महावीर का क्या प्रयोजन है, वह दो तीन हिस्सों में समझ लेना जरूरी है।

(१) स्वाद कहां होता है?

पहली बात तो यह कि रस की पूरी प्रक्रिया क्या है? जब आप कोई स्वाद लेते हैं तो स्वाद वस्तु में होता है या स्वाद आपकी जिह्वा में होता है या पीछे वह जो आपका अनुभव करनेवाला मन है, उसमें होता है? या स्वाद उस मन के साथ आपकी चेतना का जो तादात्म्य है, उसमें होता है? स्वाद कहाँ है? रस कहाँ है? यह जान लें, तभी परित्याग का ख्याल में आ सकेगा। जो स्थूल में देखते हैं, तो हमें लगता है कि स्वाद या रस वस्तु में होता है, इसलिए वस्तु को छोड़ दें। वस्तु में स्वाद नहीं होता है। वस्तु केवल निमित्त बनती है। और

अगर भीतर रस की पूरी प्रक्रिया काम न कर रही हो, तो वस्तु निमित्त बनने में असमर्थ है। जैसे आपको फांसी की सजा दी जा रही हो और आपको मिष्ठान्न खाने को दे दिया जाये, तो वह मीठा नहीं लगेगा, यद्यपि मिष्ठान्न अब भी मीठा ही है। पर जो मीठे को भोग सकता है, वह बिल्कुल अनुपस्थित हो गया है। स्वाद-यंत्र अब भी खबर देगा क्योंकि उसको कोई भी पता नहीं है कि फांसी लग रही है, और न पता हो सकता है। तो स्वाद-यंत्र के संवेदनशील तत्व अब भी भीतर खबर पहुंचायेंगे कि मिठाई मुंह पर है, जीभ पर है, लेकिन मन उस खबर को लेने की तैयारी नहीं दिखायेगा। मन उस खबर को ले भी ले, तो मन से पीछे जो चेतना है, उसके और मन के बीच का सेतु टूट गया है, संबंध टूट गया है। मृत्यु के क्षण में वह संबंध नहीं रह जाता। इसलिए मन भी खबर ले लेगा कि जीभ ने क्या खबर दी है, लेकिन चेतना का कोई पता नहीं चलेगा। आपके व्यक्तित्व को बदलने के लिए जब भी कोई उलझन होती है, तो चिकित्सक शॉक-ट्रीटमेंट का उपयोग करते रहे हैं। और कई बार उससे गहरी उलझन सुलझ भी जाती है। और शॉक-ट्रीटमेंट का कुल इतना ही अर्थ है कि आपकी चेतना और आपके मन का सेतु क्षण भर को टूट जाये। उस सेतु के टूटते ही आपके भीतर की सारी व्यवस्था अव्यवस्थित और अराजक हो जाती है। और नयी व्यवस्था कोई भी अपनी रुग्ण नहीं बनाना चाहता। इसलिए शाक-ट्रीटमेंट का कुल विश्वास इतना है कि एक बार पुरानी व्यवस्था का ढांचा टूट जाये, तो आप शायद फिर उस ढांचे को न बना सकेंगे।

(२) हिचकियों वाली साधुनी का शॉक ट्रीटमेंट

सुना है मैंने कि एक बहुत बड़े मनोचिकित्सक के पास एक रुग्ण कैथोलिक साध्वी बुलायी गयी। ६ महीने से निरंतर हिचकी आ रही थीं। वे बंद नहीं होती थीं। नींद में भी चलती रहतीं। सारी चिकित्सा, सारे उपाय कर लिये गये, हिचकी उसकी बन्द नहीं हो रही थी। चिकित्सक थक गये तो उन्होंने कहा कि अब हमारे पास कोई उपाय नहीं है। शायद मनोचिकित्सक कुछ कर सके। तो एक चिकित्सक के पास लाया गया। जो बहुत सारे लोग साध्वी को माननेवाले थे, आदर करनेवाले थे, वे सब उसके साथ आये थे। वह साध्वी प्रभु का भजन करती हुई भीतर प्रविष्ट हुई और निरन्तर प्रभु का स्मरण करती रही। चिकित्सक ने पता नहीं उससे क्या कहा कि दो क्षण बाद वह रोती हुई बाहर लौटी। उसके भक्त देखकर बहुत हैरान हुए कि एक ही

क्षण में रोती हुई वापस आ गयी। देखा कि रो तो जरूर रही है, लेकिन हिचकी बन्द हो गयी है। वह साध्वी दौड़कर बाहर निकल गयी। पीछे से चिकित्सक आया। उसके भक्तों ने पूछा कि आपने ऐसा क्या कहा कि उसको इतनी पीड़ा पहुंची? चिकित्सक ने कहा, शॉक दिया, हिचकी तो कुछ भी नहीं है। मैंने कहा कि यू आर प्रेगनेंट, तुम गर्भवती हो। कैथोलिक साध्वी गर्भवती हो, इससे बड़ा शॉक नहीं हो सकता। उसके भक्तों ने कहा, यह क्या कह रहे हैं? उस चिकित्सक ने कहा कि तुम घबराओ मत। इसके अतिरिक्त हिचकी बन्द नहीं हो सकती थी। बिजली के शाक भी वह साध्वी झेल गयी। लेकिन अब हिचकी बन्द हो गयी तो हुआ क्या? कैथोलिक मन आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर प्रवेश करता है। वह गर्भिणी है, यह सुनकर उसे भारी धक्का लगा। मन और चेतना का जो संबंध था, चेतना और शरीर का जो सेतु था, वह एकदम टूट गया। और हिचकी बन्द हो गयी। क्योंकि हिचकी की अपनी एक व्यवस्था थी। वह सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी। हिचकी लेने के लिए भी सुविधा चाहिए। वह सुविधा न रही। कोई दवा नहीं दी गयी है। कोई इलाज नहीं किया गया है, लेकिन हिचकी कैसे ठीक हो गयी? मनोचिकित्सक कहते हैं कि अगर चेतना और मन के संबन्धों में कहीं भी जरा सा भेद पड़ जाये, एक क्षण के लिये भी, तो आदमी का व्यक्तित्व दूसरा हो जाता है। वह पुराना ढांचा टूट जाता है। रस-परित्याग उस ढांचे को तोड़ने की प्रक्रिया है।

(२) वस्तु : रस : निमित्त

वस्तु में रस नहीं होता, सिर्फ रस का निमित्त होता है। इसे हम ऐसा समझें तो आसानी हो जायेगी। आप इस कमरे में आये हैं। दीवारें एक रंग की हैं, फर्श दूसरे रंग का है, कुर्सियां दूसरे रंग की हैं। अलग-अलग लोग अलग-लग रंग के कपड़े पहने हुए हैं। स्वभावतः आप सोचते होंगे कि इन सब चीजों में रंग है और जब वे उन कमरे से बाहर चले जायेंगे तब कुर्सियां एक रंग की रहेंगी, दीवार दूसरे रंग की रहेगी, फर्श तीसरे रंग का रहेगा। अगर आप ऐसा सोचते हैं तो आप आधुनिक विज्ञान की किसी भी कीमती खोज से परिचित नहीं हैं। जब इस कमरे में कोई नहीं रह जाये, तो वस्तुओं में कोई रंग नहीं रह जाता। हमारा मन होगा कि हम किसी छेद से झांककर देख लें कि रंग रह गया कि नहीं? लेकिन आपने झांककर देखा नहीं कि

वस्तुओं में रंग शुरू हो जाता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि किसी वस्तु में कोई रंग नहीं होता, वस्तु केवल निमित्त होती है, किसी रंग को आपके भीतर पैदा करने के लिए। जब आप नहीं होते हैं, जब ऑब्जर्वर नहीं होता, जब देखनेवाला नहीं होता तब वस्तु रंगहीन हो जाती है, कलरलेस हो जाती है।

(४) रंग तो आपकी आँख भरती है

असल में प्रकाश की किरण जब किसी वस्तु पर पड़ती है तो वस्तु प्रकाश की किरण को पीती है। अगर वह सारी किरणों को पी जाती है तो काली दिखायी पड़ती है। अगर वह सारी किरणों को छोड़ देती है और नहीं पीती है तो सफेद दिखायी पड़ती। अगर वह लाल रंग की किरण को छोड़ देती है और बाकी की किरणों को पी लेती है तो लाल दिखायी पड़ती है। अब आपको यह बहुत हैरानी लगेगी कि जो वस्तु लाल दिखायी पड़ती है, वह लाल को छोड़कर सब रंग की किरणों को पीती है, सिर्फ लाल रंग को छोड़ देती है। वह जो छूटी हुई लाल किरण है, वह आपकी आंख पर पड़ती है और उस किरण की वजह से वस्तु लाल दिखायी पड़ती है। लेकिन अगर कोई आंख ही न हो, तो लाल किसको दिखाई पड़ेगी! उस किरण को पकड़ने के लिए कोई आंख चाहिए तब वह लाल दिखायी पड़ेगी। आपका बाहर जाना भी जरूरी नहीं है।

जब आप आंख बंद कर लेते हैं तो वस्तुएँ रंगहीन हो जाती हैं, कलरलेस हो जाती हैं। कोई रंग नहीं रह जाता। इसका यह भी मतलब नहीं है कि वे सब एक ही जैसी हो जाती हैं, क्योंकि अगर वे सब एक जैसी हो जायें तो जब आप आँख खोलेंगे तब उन सबमें एक-सा रंग दिखायी पड़ेगा। रंगहीन हो जाती है, लेकिन उनमें रंगों की संभावना, पोटेंशियलिटी मौजूदा बनी रहती है। जब आप आँख खोलेंगे तब लाल चीज लाल होगी, हरी हरी होगी। जब आँख बंद कर लेंगे, लाल-लाल न रह जायेगी, हरी हरी न रह जायेगी। इसे ऐसा समझें कि लाल रंग की वस्तु सिर्फ वस्तु का रंग नहीं है, वस्तु और आपकी आंख के बीच का संबंध है, रिलेशनशिप है। चूंकि आँख बंद हो गयी इसलिए रिलेशनशिप टूट गयी, संबंध टूट गया। कुर्सी लाल रंग की नहीं है। आपकी आंख और कुर्सी के बीच लाल रंग का संबंध है। अगर आंख नहीं है, संबंध टूट गया। जब आप किसी चीज को मीठी कहते हैं, तब भी वह मीठापन वस्तु और आपके स्वाद-

यंत्र के बीच का संबंध है, वस्तु मीठी नहीं है। इसका मतलब यह नहीं है कि कड़वी और मीठी वस्तु में कोई फर्क नहीं है। फर्क है, इनीशियल फर्क है, बीज फर्क है। लेकिन अगर जीभ पर न रखा जाये, तो कोई फर्क नहीं है। आप कह नहीं सकते कि नीम कड़वी है, जब तक आप जीभ पर नहीं रखते। आप कहेंगे कि मैं रखूं या न रखूं, मेरे न रखने पर भी नीम तो कड़वी होगी ही; लेकिन यहीं आप भूल करते हैं। क्योंकि कड़वा होना आपकी जीभ और नीम के बीच का संबंध है। नीम का अपना स्वभाव नहीं है, सिर्फ संबंध है। इसे ऐसा समझें कि जैसे एक स्त्री को एक बच्चा पैदा हुआ। जब बच्चा पैदा होता है तब बच्चा ही पैदा नहीं होता, माँ भी पैदा होती है। क्योंकि मां एक संबंध है। वह स्त्री बच्चा पैदा होने के पहले माँ नहीं थी। और अगर बच्चा मर जाये तो फिर माँ नहीं रह जायेगी। माँ होना एक संबंध है। वह बच्चे और उस स्त्री के बीच जो संबंध है, उसका नाम है। बच्चे के बिना वह माँ नहीं हो सकती। बच्चा भी मां बिना नहीं हो सकता। इस बात को ख्याल में लें कि हमारे सब रस वस्तुओं और हमारी जीभ के बीच संबंध हैं।

लेकिन अगर बात इतनी ही होती तो संदर्भ दो तरह से टूट सकता था, या तो हम जीभ को संवेदनहीन कर लें, उसकी ऐक्टिविटी को मार डालें, जीभ को जला लें तो जीभ नष्ट हो जायेगी। या हम फिर वस्तु का त्याग कर दें, तो रस नष्ट हो जायेगा; जैसे कि साधारणतः महावीर की परंपरा में चलने वाला साधु करता है। वस्तु को छोड़ देता है। तब वह सोचता है, रस से मुक्ति हो जायेगी। लेकिन रस से मुक्ति नहीं हुई। वस्तु में अभी भी उतना ही रस है और जीभ में अभी भी उतनी ही सेंसिटीविटी है। अभी भी जीभ अनुभव करने में समर्थ है और अभी भी वस्तु अनुभव देने में समर्थ है, सिर्फ जीभ का संबंध टूट गया है इसलिए बात अप्रकट हो गयी है। कभी भी प्रकट हो सकती है। फिर दोनों को जोड़ दिया जाये, फि प्रकट हो जायेगी। आपने बिजली का बटन बंद कर दिया है इसलिए बिजली नष्ट नहीं हो गयी है। सिर्फ बिजली की धारा और बल्ब के बीच का संबंध टूट गया है। बल्ब भी समर्थ है अभी बिजली प्रकट करने में। बिजली की धारा भी अभी समर्थ है बल्ब से प्रकट होने में। सिर्फ संबंध टूट गया है। बिजली नष्ट नहीं हो गयी। फिर बटन आप ऑन कर दें फिर बिजली जल जायेगी। जो आदमी वस्तुओं को छोड़कर सोच रहा है कि रस का परित्याग हो गया, वह सिर्फ रस को अप्रकट कर रहा,

वस्तुओं में रंग शुरू हो जाता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि किसी वस्तु में कोई रंग नहीं होता, वस्तु केवल निमित्त होती है, किसी रंग को आपके भीतर पैदा करने के लिए। जब आप नहीं होते हैं, जब ऑब्जर्वर नहीं होता, जब देखनेवाला नहीं होता तब वस्तु रंगहीन हो जाती है, कलरलेस हो जाती है।

(४) रंग तो आपकी आँख भरती है

असल में प्रकाश की किरण जब किसी वस्तु पर पड़ती है तो वस्तु प्रकाश की किरण को पीती है। अगर वह सारी किरणों को पी जाती है तो काली दिखायी पड़ती है। अगर वह सारी किरणों को छोड़ देती है और नहीं पीती है तो सफेद दिखायी पड़ती। अगर वह लाल रंग की किरण को छोड़ देती है और बाकी की किरणों को पी लेती है तो लाल दिखायी पड़ती है। अब आपको यह बहुत हैरानी लगेगी कि जो वस्तु लाल दिखायी पड़ती है, वह लाल को छोड़कर सब रंग की किरणों को पीती है, सिर्फ लाल रंग को छोड़ देती है। वह जो छूटी हुई लाल किरण है, वह आपकी आंख पर पड़ती है और उस किरण की वजह से वस्तु लाल दिखायी पड़ती है। लेकिन अगर कोई आंख ही न हो, तो लाल किसको दिखाई पड़ेगी! उस किरण को पकड़ने के लिए कोई आंख चाहिए तब वह लाल दिखायी पड़ेगी। आपका बाहर जाना भी जरूरी नहीं है।

जब आप आंख बंद कर लेते हैं तो वस्तुएँ रंगहीन हो जाती हैं, कलरलेस हो जाती हैं। कोई रंग नहीं रह जाता। इसका यह भी मतलब नहीं है कि वे सब एक ही जैसी हो जाती हैं, क्योंकि अगर वे सब एक जैसी हो जायें तो जब आप आँख खोलेंगे तब उन सबमें एक-सा रंग दिखायी पड़ेगा। रंगहीन हो जाती हैं, लेकिन उनमें रंगों की संभावना, पोटेंशियलिटी मौजूदा बनी रहती है। जब आप आँख खोलेंगे तब लाल चीज लाल होगी, हरी हरी होगी। जब आँख बंद कर लेंगे, लाल-लाल न रह जायेगी, हरी हरी न रह जायेगी। इसे ऐसा समझें कि लाल रंग की वस्तु सिर्फ वस्तु का रंग नहीं है, वस्तु और आपकी आंख के बीच का संबंध है, रिलेशनशिप है। चूंकि आँख बंद हो गयी इसलिए रिलेशनशिप टूट गयी, संबंध टूट गया। कुर्सी लाल रंग की नहीं है। आपकी आंख और कुर्सी के बीच लाल रंग का संबंध है। अगर आंख नहीं है, संबंध टूट गया। जब आप किसी चीज को मीठी कहते हैं, तब भी वह मीठापन वस्तु और आपके स्वाद-

यंत्र के बीच का संबंध है, वस्तु मीठी नहीं है। इसका मतलब यह नहीं है कि कड़वी और मीठी वस्तु में कोई फर्क नहीं है। फर्क है, इनीशियल फर्क है, बीज फर्क है। लेकिन अगर जीभ पर न रखा जाये, तो कोई फर्क नहीं है। आप कह नहीं सकते कि नीम कड़वी है, जब तक आप जीभ पर नहीं रखते। आप कहेंगे कि मैं रखूं या न रखूं, मेरे न रखने पर भी नीम तो कड़वी होगी ही; लेकिन यहीं आप भूल करते हैं। क्योंकि कड़वा होना आपकी जीभ और नीम के बीच का संबंध है। नीम का अपना स्वभाव नहीं है, सिर्फ संबंध है। इसे ऐसा समझें कि जैसे एक स्त्री को एक बच्चा पैदा हुआ। जब बच्चा पैदा होता है तब बच्चा ही पैदा नहीं होता, माँ भी पैदा होती है। क्योंकि मां एक संबंध है। वह स्त्री बच्चा पैदा होने के पहले माँ नहीं थी। और अगर बच्चा मर जाये तो फिर माँ नहीं रह जायेगी। माँ होना एक संबंध है। वह बच्चे और उस स्त्री के बीच जो संबंध है, उसका नाम है। बच्चे के बिना वह माँ नहीं हो सकती। बच्चा भी मां बिना नहीं हो सकता। इस बात को ख्याल में लें कि हमारे सब रस वस्तुओं और हमारी जीभ के बीच संबंध हैं।

लेकिन अगर बात इतनी ही होती तो संदर्भ दो तरह से टूट सकता था, या तो हम जीभ को संवेदनहीन कर लें, उसकी ऐक्टिविटी को मार डालें, जीभ को जला लें तो जीभ नष्ट हो जायेगी। या हम फिर वस्तु का त्याग कर दें, तो रस नष्ट हो जायेगा; जैसे कि साधारणतः महावीर की परंपरा में चलने वाला साधु करता है। वस्तु को छोड़ देता है। तब वह सोचता है, रस से मुक्ति हो जायेगी। लेकिन रस से मुक्ति नहीं हुई। वस्तु में अभी भी उतना ही रस है और जीभ में अभी भी उतनी ही सेंसिटीविटी है। अभी भी जीभ अनुभव करने में समर्थ है और अभी भी वस्तु अनुभव देने में समर्थ है, सिर्फ जीभ का संबंध टूट गया है इसलिए बात अप्रकट हो गयी है। कभी भी प्रकट हो सकती है। फिर दोनों को जोड़ दिया जाये, फि प्रकट हो जायेगी। आपने बिजली का बटन बंद कर दिया है इसलिए बिजली नष्ट नहीं हो गयी है। सिर्फ बिजली की धारा और बल्ब के बीच का संबंध टूट गया है। बल्ब भी समर्थ है अभी बिजली प्रकट करने में। बिजली की धारा भी अभी समर्थ है बल्ब से प्रकट होने में। सिर्फ संबंध टूट गया है। बिजली नष्ट नहीं हो गयी। फिर बटन आप ऑन कर दें फिर बिजली जल जायेगी। जो आदमी वस्तुओं को छोड़कर सोच रहा है कि रस का परित्याग हो गया, वह सिर्फ रस को अप्रकट कर रहा,

वस्तुओं में रंग शुरू हो जाता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि किसी वस्तु में कोई रंग नहीं होता, वस्तु केवल निमित्त होती है, किसी रंग को आपके भीतर पैदा करने के लिए। जब आप नहीं होते हैं, जब ऑब्जर्वर नहीं होता, जब देखनेवाला नहीं होता तब वस्तु रंगहीन हो जाती है, कलरलेस हो जाती है।

(४) रंग तो आपकी आँख भरती है

असल में प्रकाश की किरण जब किसी वस्तु पर पड़ती है तो वस्तु प्रकाश की किरण को पीती है। अगर वह सारी किरणों को पी जाती है तो काली दिखायी पड़ती है। अगर वह सारी किरणों को छोड़ देती है और नहीं पीती है तो सफेद दिखायी पड़ती। अगर वह लाल रंग की किरण को छोड़ देती है और बाकी की किरणों को पी लेती है तो लाल दिखायी पड़ती है। अब आपको यह बहुत हैरानी लगेगी कि जो वस्तु लाल दिखायी पड़ती है, वह लाल को छोड़कर सब रंग की किरणों को पीती है, सिर्फ लाल रंग को छोड़ देती है। वह जो छूटी हुई लाल किरण है, वह आपकी आंख पर पड़ती है और उस किरण की वजह से वस्तु लाल दिखायी पड़ती हैं। लेकिन अगर कोई आंख ही न हो, तो लाल किसको दिखाई पड़ेगी! उस किरण को पकड़ने के लिए कोई आंख चाहिए तब वह लाल दिखायी पड़ेगी। आपका बाहर जाना भी जरूरी नहीं है।

जब आप आंख बंद कर लेते हैं तो वस्तुएँ रंगहीन हो जाती हैं, कलरलेस हो जाती हैं। कोई रंग नहीं रह जाता। इसका यह भी मतलब नहीं है कि वे सब एक ही जैसी हो जाती हैं, क्योंकि अगर वे सब एक जैसी हो जायें तो जब आप आँख खोलेंगे तब उन सबमें एक-सा रंग दिखायी पड़ेगा। रंगहीन हो जाती है, लेकिन उनमें रंगों की संभावना, पोटेंशियलिटी मौजूदा बनी रहती है। जब आप आँख खोलेंगे तब लाल चीज लाल होगी, हरी हरी होगी। जब आँख बंद कर लेंगे, लाल-लाल न रह जायेगी, हरी हरी न रह जायेगी। इसे ऐसा समझें कि लाल रंग की वस्तु सिर्फ वस्तु का रंग नहीं है, वस्तु और आपकी आंख के बीच का संबंध है, रिलेशनशिप है। चूंकि आँख बंद हो गयी इसलिए रिलेशनशिप टूट गयी, संबंध टूट गया। कुर्सी लाल रंग की नहीं है। आपकी आंख और कुर्सी के बीच लाल रंग का संबंध है। अगर आंख नहीं है, संबंध टूट गया। जब आप किसी चीज को मीठी कहते हैं, तब भी वह मीठापन वस्तु और आपके स्वाद-

यंत्र के बीच का संबंध है, वस्तु मीठी नहीं है। इसका मतलब यह नहीं है कि कड़वी और मीठी वस्तु में कोई फर्क नहीं है। फर्क है, इनीशियल फर्क है, बीज फर्क है। लेकिन अगर जीभ पर न रखा जाये, तो कोई फर्क नहीं है। आप कह नहीं सकते कि नीम कड़वी है, जब तक आप जीभ पर नहीं रखते। आप कहेंगे कि मैं रखूं या न रखूं, मेरे न रखने पर भी नीम तो कड़वी होगी ही; लेकिन यहीं आप भूल करते हैं। क्योंकि कड़वा होना आपकी जीभ और नीम के बीच का संबंध है। नीम का अपना स्वभाव नहीं है, सिर्फ संबंध है। इसे ऐसा समझें कि जैसे एक स्त्री को एक बच्चा पैदा हुआ। जब बच्चा पैदा होता है तब बच्चा ही पैदा नहीं होता, माँ भी पैदा होती है। क्योंकि मां एक संबंध है। वह स्त्री बच्चा पैदा होने के पहले माँ नहीं थी। और अगर बच्चा मर जाये तो फिर माँ नहीं रह जायेगी। माँ होना एक संबंध है। वह बच्चे और उस स्त्री के बीच जो संबंध है, उसका नाम है। बच्चे के बिना वह मां नहीं हो सकती। बच्चा भी मां बिना नहीं हो सकता। इस बात को ख्याल में लें कि हमारे सब रस वस्तुओं और हमारी जीभ के बीच संबंध हैं।

लेकिन अगर बात इतनी ही होती तो संदर्भ दो तरह से टूट सकता था, या तो हम जीभ को संवेदनहीन कर लें, उसकी ऐक्टिविटी को मार डालें, जीभ को जला लें तो जीभ नष्ट हो जायेगी। या हम फिर वस्तु का त्याग कर दें, तो रस नष्ट हो जायेगा; जैसे कि साधारणतः महावीर की परंपरा में चलने वाला साधु करता है। वस्तु को छोड़ देता है। तब वह सोचता है, रस से मुक्ति हो जायेगी। लेकिन रस से मुक्ति नहीं हुई। वस्तु में अभी भी उतना ही रस है और जीभ में अभी भी उतनी ही सेंसिटीविटी है। अभी भी जीभ अनुभव करने में समर्थ है और अभी भी वस्तु अनुभव देने में समर्थ है, सिर्फ जीभ का संबंध टूट गया है इसलिए बात अप्रकट हो गयी है। कभी भी प्रकट हो सकती है। फिर दोनों को जोड़ दिया जाये, फि प्रकट हो जायेगी। आपने बिजली का बटन बंद कर दिया है इसलिए बिजली नष्ट नहीं हो गयी है। सिर्फ बिजली की धारा और बल्ब के बीच का संबंध टूट गया है। बल्ब भी समर्थ है अभी बिजली प्रकट करने में। बिजली की धारा भी अभी समर्थ है बल्ब से प्रकट होने में। सिर्फ संबंध टूट गया है। बिजली नष्ट नहीं हो गयी। फिर बटन आप ऑन कर दें फिर बिजली जल जायेगी। जो आदमी वस्तुओं को छोड़कर सोच रहा है कि रस का परित्याग हो गया, वह सिर्फ रस को अप्रकट कर रहा,

र्ण त्याग नहीं। महावीर ने रस अप्रकट करने को नहीं कहा है। रस-परित्याग करने को कहा है। सिर्फ अब प्रकट नहीं हो रहा है, इसका यह मतलब नहीं कि नष्ट हो गया। बहुत सी चीजें बहुत से मौकों पर प्रकट नहीं होतीं। जब कोई आदमी आपकी छाती पर छुरा रख देता है तो काम-वासना प्रकट नहीं होती, लेकिन मुक्त नहीं हो जाते आप उससे, सिर्फ छिप जाते हैं। कितनी ही भूख लगी हो और एक आदमी बंदूक लेकर आपके पीछे लग जाये, बस भूख मिट जाती है। इसका यह मतलब नहीं कि भूख मिट गयी, बल्कि सिर्फ छिप गयी। अभी अवसर नहीं है प्रकट होने का, सिर्फ छिप गयी। छिप जाने को त्याग मत समझ लेना।

(५) 'फ्लडेड' प्रकटीकरण रस का

और अक्सर तो बात ऐसी होती है कि जो छिप जाता है, वह छिपकर और भी प्रबल और सशक्त हो जाता है। इसलिए जो आदमी रोज मिठाई खा रहा है, उसको मीठे का जितना अनुभव होता है, उससे ज्यादा तीव्र अनुभव उसका होता है जिसने बहुत दिन तक मिठाई नहीं खायी और फिर मिठाई खाता है। क्योंकि इतने दिन तक रुका हुआ रस का जो अप्रकट रूप है, वह एक ढंग से 'फ्लडेड' प्रकट होता है, उसमें बाढ़ आ जाती है। आ ही जायेगी। इसलिए जो आदमी वस्तुएँ छोड़ना शुरू करेगा, वह वस्तुओं से भयभीत होने लगेगा। वह डरेगा कि कहीं वस्तु पास न आ जाय, अन्यथा रस पैदा हो सकता है।

एक दूसरा उपाय है कि आप इंद्रिय को नष्ट कर लें, जीभ को जला डालें —जैसा कि बुखार में हो जाता है, लंबी बीमारी में हो जाता है। इंद्रिय के संवेदनशील जो तंतु हैं, वे रुग्ण हो जाते हैं, बीमार हो जाते हैं, सो जाते हैं। लेकिन तब भी रस का कोई अन्त नहीं होता। अगर मेरी आँख फूट जाये, तो भी रूप देखने की आकांक्षा नहीं चली जाती। अगर आँख से ही रूप देखने की आकांक्षा जाती होती, तो बहुत आसान हो जाता है। लेकिन आँख टूट जाने से, टूट जाने से, फूट जाने से रूप की आकांक्षा नहीं टूटती। कान फूट जाये, तो भी ध्वनि का रस नहीं छूट जाता। मेरे पैर टूट जायें तो भी चलने का मन नष्ट नहीं हो जाता। जो जानते हैं वे कहते हैं कि पूरा शरीर भी छूट जाये, तो भी जीवैषणा नष्ट नहीं होती, नहीं तो फिर दुबारा जन्म होना असंभव है। जब पूरा शरीर छूट जाने पर भी हम नया जीवन फिर से पकड़

लेते हैं, तो एक-एक इंद्रिय को मारकर क्या होगा ? मृत्यु तो सभी इंद्रियों को मार डालती है। सभी इंद्रियाँ मर जाती हैं, लेकिन फिर हम सारी इंद्रियों को पैदा कर लेते हैं। क्योंकि सारी इंद्रियाँ मूल नहीं हैं, मूल कहीं इंद्रियों से भी पीछे है। इसलिए जो आँख-कान तोड़ने में लगा हो, समझ लो वह बचकानी बातों में लगा है, वह नासमझी की बातों में लगा है। उससे रस नष्ट नहीं होगा। इंद्रिय के नष्ट होने से रस नष्ट नहीं होता।

(६) मनको समझाना हो तो उल्टा समझाइए

तो क्या हम मन को मार डालें ? मन को मारने में भी दो बातें आती हैं। सोचते हैं मन को दबा-दबा कर मार डालें। लेकिन मन बहुत उल्टा है। मन का नियम ही यही है कि जिस बात को मन से हम नष्ट करना चाहते हैं, मन उसी बात में ज्यादा रसपूर्ण हो जाता है। एक सुबह मुल्ला के गांव में उसके मकान के सामने बड़ी भीड़ थी। वह अपनी पांचवीं मंजिल पर खड़ा है कूदने को तत्पर। पुलिस भी आ गयी, लेकिन उसने सब सीढ़ियों पर ताले डाल रखे थे। कोई ऊपर चढ़ नहीं पा रहा। गांव का मेयर भी आ गया। सारा गांव धीरे-धीरे इकट्ठा हो गया। और मुल्ला ऊपर खड़ा है और कहता हैं, मैं कूदकर मरूँगा। आखिर मेयर ने उसे समझाया कि कुछ तो सोच। अपने मां-बाप के संबंध में सोच। मुल्ला ने कहा, मेरे मां-बाप मर चुके हैं। उनके संबंध में सोचता हूं तो कुछ और होता है कि जल्दी मर जाऊँ। मेयर ने चिल्लाकर कहा, अपनी पत्नी के संबंध में सोच। उसने कहा, वह याद ही मत दिलाना नहीं तो और जल्दी कूद जाऊँगा। मेयर ने कहा, कानून के संबंध में सोच। अगर आत्महत्या की कोशिश की, तो फँसेगा। मुल्ला ने कहा, जब मर ही जाऊँगा तो कौन फँसेगा ? बड़ी मुश्किल थी। मेयर न समझा पाया। आखिर गुस्से में उसने कहा, तेरी मर्जी है तो कूद, इसी वक्त कूदक मर जा। मुल्ला ने कहा, तू कौन है मुझे सलाह देने वाला। नहीं मरूँगा।

आदमी का मन ऐसा ही सोचता है। अगर आपको कोई समझाये कि मर जाओ, तो जीने का मन पैदा होता है। कोई आपको समझाये कि जियो, तो मरने का मन पैदा होता है। मन विपरीत में रस लेता है। इसलिए जो लोग मन को मारने में लगते हैं, उनका मन और भी रसपूर्ण होता चला जाता है।

न वस्तु को छोड़ने से रस का परित्याग होता है, न इंद्रिय को मारने से रस का परित्याग होता है, न मन से लड़ने से रस का परित्याग होता है। हम सभी तो मन से लड़ते हैं, लेकिन कौन से रस का परित्याग होता है? मात्राओं के भेद भले हों, लेकिन हैं हम सभी मन से लड़नेवाले। हम मन को कितना दबाते हैं, कितना समझाते हैं। लेकिन कभी इससे कोई फर्क नहीं पड़ा। जिस चीज के लिए आप मन को समझाते हैं, मन उसी की मांग बढ़ाता चला जाता है। असल में जब आप समझाते हैं, तभी आप स्वीकार कर लेते हैं कि आप कमजोर हैं और मन ताकतवर है। और जब आप एक बार अपने मन के सामने अपनी कमजोरी स्वीकार कर लेते हैं, तो मन आपकी गर्दन को दबाता चला जाता है। आप मन से कहते हैं, यह मत माँग, यह मत माँग, यह मत माँग। और जितना आप कहते हैं मत माँग, उतना ही ज्यादा रस आ जाता है। मन के जितने द्वार हम बंद करते हैं, उसकी जिज्ञासा उतनी ही बढ़ती है; उतना ही लगता है कोई द्वार खोलकर झांक लूं और देख लूं।

(७) भुलाने की कोशिश याद करने की निशानी है

इसलिए जो भी मन के साथ लड़ने में लगेगा, वह रस को जगाने में लगेगा। यह ध्यान रखें कि मन से हम जिस चीज को भुलाने की कोशिश करते हैं, वहाँ हम एक बहुत ही अमनोवैज्ञानिक काम कर रहे हैं। क्योंकि भुलाने की हर कोशिश याद करने की व्यवस्था है। इसलिए कोई भी आदमी किसी को भुला नहीं सकता। भूल सकता है, भुला नहीं सकता। अगर आप किसी को भुलाना चाहते हैं तो आप कभी न भुला पायेंगे क्योंकि जब भी आप भुलाते हैं तभी आप फिर से याद करते हैं। आखिर भुलाने के लिए याद तो करना ही पड़ेगा! और तब याद करने का कर्म सघन होता जाता है और याद की रेखा मजबूत और गहरी होती चली जाती है। इसलिए आपको जिसे याद रखना हो, उसे भुलाने की कोशिश करना। और जिसे आपको भुला देना हो, उसे कभी भी भुलाने की कोशिश मत करना। प्रेमियों को यही कष्ट है सारी दुनिया में। वे किसी प्रेमी को भुला देना चाहते हैं। वह जितना भुलाना चाहते हैं, उतने ही मुश्किल में पड़ जाते हैं। भुलाने को ज्यादा बेहतर तरकीब है कि शादी कर लें और प्रेमी को घर में ले आयें। फिर बिलकुल याद याद नहीं आती। मन का यह नियम ठीक से ख्याल में ले लें, अन्यथा बड़ी कठिनाई होती है। तथाकथित साधु, तपस्वी मन के इसी गहरे नियम को न

समझने के कारण बहुत उलझाव में पड़ जाते हैं। भुलाने में लगे हैं कि स्त्री दिखायी न पड़े, इसलिए आंख बंद करने में लगे हैं। भोजन न दिखायी पड़े इसलिए इंद्रियों को सिकोड़ने में लगे हैं। कहीं कोई रस न आ जाये, इसलिए मन को वहां से किसी विपरीत दिशा में उलझाने में लगे हैं। लेकिन मन को दबाने, समझाने, भुलाने की कोई व्यवस्था रस-परित्याग नहीं लाती। फिर रस-परित्याग कैसे फलित होता है? रस-परित्याग का जो वास्तविक रूपांतरण है, वह मन और चेतना के बीच संबंध टूटने से फलित होता है। मन और चेतना के बीच ही असली घटना घटती है। मन उसी बात में रस ले पाता है जिसमें चेतना का सही अर्थों में कोआपरेशन हो। जिस बात में चेतना का सहयोग न हो, उसमें मन रस नहीं ले पाता।

(८) मन को जरा भयंकर खबर देकर देखिए!

एक आदमी रास्ते से भागा जा रहा है। आज भी रास्ते की दूकानों के विण्डो केसेज में वही चीजें सजी हैं, जो कल सजी थीं, लेकिन आज उसे दिखायी नहीं पड़ता। रास्ते पर आज भी सुन्दर शरीर निकल रहे हैं, लेकिन वे आज उसे दिखायी नहीं पड़ते। रास्ते पर अब भी सुन्दर कारें भागी जा रही हैं, लेकिन आज उसे दिखायी नहीं पड़तीं, क्योंकि उसके घर में आग लगी है, जिसके कारण वह भागा जा रहा है। घर में आग लगी है, तो हो क्या गया है? चीजें तो अब भी गुजर रही हैं। मन वही है, इंद्रियां वही हैं। उन पर संघात वही पड़ रहे हैं, संवेदनाएँ वही हैं; लेकिन आज उसकी चेतना कहीं और है। आज उसकी चेतना अपनी इंद्रियों के साथ नहीं है। आज उसकी चेतना भाग गयी है—वहां है, जहां मकान में आग लगी है। लेकिन घर जाकर पहुंचा और पता चला कि किसी और के मकान में आग लगी है, यह गलत खबर उसे मिली है, तो सब वापिस लौट आया।

दोस्तोवस्की को फांसी की सजा दी गयी थी। लेकिन ऐन वक्त पर माफ कर दिया गया। ठीक ६ बजे जीवन नष्ट होने को था, और ६ बजने के पांच मिनट पहले खबर आयी कि जा तुझे क्षमा कर दिया गया। दोस्तोवस्की बाद में मिलने पर कहता था कि उस क्षण जब ६ बजने के करीब आ रहे थे, तब न मेरे मन में कोई वासना थी, न कोई इच्छा थी, न कोई रस था। कुछ भी न था। मैं इतना शांत और शून्य हो गया था कि मैंने उस क्षण में जाना कि साधु-संत जिस समाधि की बात करते हैं, वह क्या है। लेकिन जैसे ही जार का आदेश

न वस्तु को छोड़ने से रस का परित्याग होता है, न इंद्रिय को मारने से रस का परित्याग होता है, न मन से लड़ने से रस का परित्याग होता है। हम सभी तो मन से लड़ते हैं, लेकिन कौन से रस का परित्याग होता है ? मात्राओं के भेद भले हों, लेकिन हैं हम सभी मन से लड़नेवाले। हम मन को कितना दबाते हैं, कितना समझाते हैं। लेकिन कभी इससे कोई फर्क नहीं पड़ा। जिस चीज के लिए आप मन को समझाते हैं, मन उसी की मांग बढ़ाता चला जाता है। असल में जब आप समझाते हैं, तभी आप स्वीकार कर लेते हैं कि आप कमजोर हैं और मन ताकतवर है। और जब आप एक बार अपने मन के सामने अपनी कमजोरी स्वीकार कर लेते हैं, तो मन आपकी गर्दन को दबाता चला जाता है। आप मन से कहते हैं, यह मत माँग, यह मत माँग, यह मत माँग। और जितना आप कहते हैं मत माँग, उतना ही ज्यादा रस आ जाता है। मन के जितने द्वार हम बंद करते हैं, उसकी जिज्ञासा उतनी ही बढ़ती है; उतना ही लगता है कोई द्वार खोलकर झांक लूं और देख लूं।

(७) भुलाने की कोशिश याद करने की निशानी है

इसलिए जो भी मन के साथ लड़ने में लगेगा, वह रस को जगाने में लगेगा। यह ध्यान रखें कि मन से हम जिस चीज को भुलाने की कोशिश करते हैं, वहाँ हम एक बहुत ही अमनोवैज्ञानिक काम कर रहे हैं। क्योंकि भुलाने की हर कोशिश याद करने की व्यवस्था है। इसलिए कोई भी आदमी किसी को भुला नहीं सकता। भूल सकता है, भुला नहीं सकता। अगर आप किसी को भुलाना चाहते हैं तो आप कभी न भुला पायेंगे क्योंकि जब भी आप भुलाते हैं तभी आप फिर से याद करते हैं। आखिर भुलाने के लिए याद तो करना ही पड़ेगा ! और तब याद करने का कर्म सघन होता जाता है और याद की रेखा मजबूत और गहरी होती चली जाती है। इसलिए आपको जिसे याद रखना हो, उसे भुलाने की कोशिश करना। और जिसे आपको भुला देना हो, उसे कभी भी भुलाने की कोशिश मत करना। प्रेमियों को यही कष्ट है सारी दुनिया में। वे किसी प्रेमी को भुला देना चाहते हैं। वह जितना भुलाना चाहते हैं, उतने ही मुश्किल में पड़ जाते हैं। भुलाने की ज्यादा बेहतर तरकीब है कि शादी कर लें और प्रेमी को घर में ले आयें। फिर बिलकुल याद याद नहीं आती। मन का यह नियम ठीक से ख्याल में ले लें, अन्यथा बड़ी कठिनाई होती है। तथाकथित साधु, तपस्वी मन के इसी गहरे नियम को न

समझने के कारण बहुत उलझाव में पड़ जाते हैं। भुलाने में लगे हैं कि स्त्री दिखायी न पड़े, इसलिए आंख बंद करने में लगे हैं। भोजन न दिखायी पड़े इसलिए इंद्रियों को सिकोड़ने में लगे हैं। कहीं कोई रस न आ जाये, इसलिए मन को वहां से किसी विपरीत दिशा में उलझाने में लगे हैं। लेकिन मन को दबाने, समझाने, भुलाने की कोई व्यवस्था रस-परित्याग नहीं लाती। फिर रस-परित्याग कैसे फलित होता है? रस-परित्याग का जो वास्तविक रूपांतरण है, वह मन और चेतना के बीच संबंध टूटने से फलित होता है। मन और चेतना के बीच ही असली घटना घटती है। मन उसी बात में रस ले पाता है जिसमें चेतना का सही अर्थों में कोआपरेशन हो। जिस बात में चेतना का सहयोग न हो, उसमें मन रस नहीं ले पाता।

(८) मन को जरा भयंकर खबर देकर देखिए!

एक आदमी रास्ते से भागा जा रहा है। आज भी रास्ते की दूकानों के विण्डो केसेज में वही चीजें सजी हैं, जो कल सजी थीं, लेकिन आज उसे दिखायी नहीं पड़ता। रास्ते पर आज भी सुन्दर शरीर निकल रहे हैं, लेकिन वे आज उसे दिखायी नहीं पड़ते। रास्ते पर अब भी सुन्दर कारें भागी जा रही हैं, लेकिन आज उसे दिखायी नहीं पड़तीं, क्योंकि उसके घर में आग लगी है, जिसके कारण वह भागा जा रहा है। घर में आग लगी है, तो हो क्या गया है? चीजें तो अब भी गुजर रही हैं। मन वही है, इंद्रियां वही हैं। उन पर संघात वही पड़ रहे हैं, संवेदनाएं वही हैं; लेकिन आज उसकी चेतना कहीं और है। आज उसकी चेतना अपनी इंद्रियों के साथ नहीं है। आज उसकी चेतना भाग गयी है—वहां है, जहां मकान में आग लगी है। लेकिन घर जाकर पहुंचा और पता चला कि किसी और के मकान में आग लगी है, यह गलत खबर उसे मिली है, तो सब वापिस लौट आया।

दोस्तोवस्की को फांसी की सजा दी गयी थी। लेकिन ऐन वक्त पर माफ कर दिया गया। ठीक ६ बजे जीवन नष्ट होने को था, और ६ बजने के पांच मिनट पहले खबर आयी कि जा तुझे क्षमा कर दिया गया। दोस्तोवस्की बाद में मिलने पर कहता था कि उस क्षण जब ६ बजने के करीब आ रहे थे, तब न मेरे मन में कोई वासना थी, न कोई इच्छा थी, न कोई रस था। कुछ भी न था। मैं इतना शांत और शून्य हो गया था कि मैंने उस क्षण में जाना कि साधु-संत जिस समाधि की बात करते हैं, वह क्या है। लेकिन जैसे ही जार का आदेश

पहुंचा और मुझे सुनाया गया कि मैं छोड़ दिया जा रहा हूं, मेरी फांसी की सजा माफ कर दी गयी है, तो अचानक मैं जैसे किसी शिखर से नीचे गिर गया। सब वापस लौट आया। सब इच्छाएँ, सब क्षुद्रतम इच्छाएँ जिनका क्षण भर पहले कोई मूल्य न था, वे सब वापस लौट आयीं। पैर में जूता काट रहा था, वह फिर पता चलने लगा। नया जूता लेना है, उसकी योजना चलने लगी। सब वापस लौट आया। दोस्तोवस्की कहता था, उस शिखर को दुबारा मैं न छू पाया, जो उस दिन आसन्न मृत्यु के निकट अचानक घटित हुआ था।

(६) रस का हमसफर साथ छोड़ गया

आखिर हुआ क्या था ? हुआ यह था कि जब मृत्यु इतनी सुनिश्चित हो तो चेतना सब संबंध छोड़ देती है। इसलिए समस्त साधकों ने मृत्यु के सुनिश्चिय के अनुभव पर बहुत जोर दिया है। बुद्ध तो भिक्षुओं को मरघट में भेज देते थे जिससे कि वे तीन महीने लोगों को मरते, जलते, मिटते, राख होते देख सकें, ताकि उन्हें अपनी मृत्यु सुनिश्चित हो जाय। और जब तीन महीने बाद कोई साधक मृत्यु पर ध्यान करके लौटता था, तो जो पहली घटना उसके मित्रों को दिखायी पड़ती थी, वह थी रस-परित्याग अथवा रस विसर्जन। रस के जाने का सूत्र है चेतना और मन का संबंध टूट जाय। वह संबंध कैसे टूटेगा ? इसके लिए यह देखें कि वह संबंध कैसे निर्मित हुआ ?

जब तक यह सोचता है कि मैं मन हूं, तब तक यह सम्बन्ध रहेगा। यह आइडेंटिटी, यह तादात्म्य—जब तक वह है, कि मैं मन हूं, तब तक संबंध है। यह सम्बन्ध टूट जाने का अर्थ है यह जानना कि मैं मन नहीं हूं। इससे रस छिन्न-भिन्न हो जाता है, खो जाता है। रस-परित्याग की प्रक्रिया है—मन के प्रति साक्षी-भाव (विटनेसिंग)। जब आप भोजन कर रहे हैं तो मैं नहीं कहूँगा कि आप यह भोजन मत करें, यह रसपूर्ण ह। मैं आपसे यह भी नहीं कहूँगा कि आप जीभ को जला लें क्योंकि जीभ रस देती है। मैं आपसे यह भी नहीं कहूँगा कि आप मन में यह अनुभव न करें कि यह खट्टा है या मीठा। मैं आपसे यह कहूँगा, भोजन करें, जीभ को स्वाद लेने दें, मन को पूरी खबर होने दें, पूरी सांत्वना होने दें कि बहुत स्वादिष्ट है। सिर्फ भीतर इस सारी प्रक्रिया के साक्षी बनकर खड़े रहें। देखते रहें यह मानकर कि मैं सिर्फ देखनेवाला हूं। मैं द्रष्टा हूं, मैं साक्षी हूं—रस के अनुभव में सिर्फ इतना

भाव गहन हो जाये, तो आप अचानक पायेंगे कि इंद्रियाँ वही है, उन्हें नष्ट करना नहीं पड़ा। पदार्थ वही हैं उन्हें छोड़कर भागना नहीं पड़ा। मन वही है, वह उतना ही संवेदनशील है, उतना ही सजग और जीवंत है, लेकिन रस का जो आकर्षण था, वह खो गया। रस जो बुलाता था, पुकारता था, रस की जो पुनरावृत्ति की इच्छा थी (रस का आकर्षण है कि उसे फिर से दोहराओ) उसके चक्कर में घूमने का आकर्षण खो गया, बिल्कुल खो गया। उसकी पुनरुक्ति की कोई आकांक्षा नहीं। असल में हम ऐसे रसों की पुनरुक्ति करने लगते हैं, जो चाहे जीवन को नष्ट करने वाले ही क्यों न हों। एक आदमी शराब पीता है। वह जानता है, सुनता है, पढ़ता कि शराब जहर है, पर उसकी भी पुनरुक्ति की माँग है। उसका मन कहता है—दोहराओ। एक आदमी धुम्रपान कर रहा है। वह जानता है कि वह निमंत्रण दे रहा है न जाने कितनी बीमारियों को, भलि-भाँति जानता है। अगर किसी और को समझाना हो तो वह समझाता भी है। अगर अपने बेटे को रोकना हो तो वह कहता है कि भूल करके भी धुम्रपान मत करना। लेकिन वह खुद कर रहा है। पुनरुक्ति की आकांक्षा है। इस तरह विकृत रस अगर संयुक्त हो जायें, और दूसरे विकृत रस भी संयुक्त हो जाते हैं, एसोसिएशन से।

(१०) शिलर की कविता और सड़ी हुई सेव-गंध

शिलर एक जर्मन लेखक हुआ है। जब उसने अपनी पहली कविता लिखी तो वृक्षों पर सेव पक गये थे। नीचे गिर रहे थे। वह उस बगीचे में बैठा था। कुछ सेव नीचे गिर कर सड़ गये थे। और सड़े हुए सेवों की गन्ध पूरी हवाओं में फैल रही थी। तभी उसने पहली कविता लिखी। उस पहली कविता का जन्म और सड़े हुए सेवों की गंध एसोसिएटेड हो गये, संयुक्त हो गये। इसके बाद शिलर जिन्दगी भर कुछ भी न लिख सका जब तक उसकी टेबिल के आस-पास सड़े हुए सेव न रखे हों। बिल्कुल पागलपन था। वह खुद कहता था कि बिल्कुल पागलपन है; लेकिन जब तक सड़े हुए सेवों की गन्ध नहीं आती, मेरे भीतर काव्य सक्रिय नहीं होता। उसमें गति नहीं आती। उस गंध के बिना मैं साधारण आदमी बना रहता हूँ, शिलर नहीं हो पाता। जैसे ही सड़े हुए सेवों की गंध चारों तरफ से मेरे नासापुटों को घेर लेती हैं, मैं बदल जाता हूँ। मैं दूसरा आदमी हो जाता हूँ। वह कहता था माना कि यह बड़ा रुग्ण मामला है कि सड़े हुए सेव रखूं, और भी गंधें हो सकती हैं, फूल रखे जा

सकते हैं लेकिन नहीं ! वह उस गंध से संयुक्त हो गया। अगर एक आदमी सिगरेट पी रहा है तो सिगरेट का पहला अनुभव सुखद नहीं है, दुखद है; लेकिन यह दुखद अनुभव भी निरंतर दोहराने से किसी सुख की, किसी क्षण की अनुभूति से अगर संयुक्त हो गया तो फिर जिन्दगी भर पुनरुक्ति माँगता रहेगा। और संयुक्त हो सकता है। जब आप सिगरेट पीते हैं तब आप एक अर्थ में सारी दुनिया से टूट जाते हैं।

(११) दो चार कश सिगरेट, एक धुआं—धुआं साधना

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, सिगरेट पीना एक अर्थ में मास्टरबेटरी है। वह हस्तमैथुन जैसी चीज है। आप अपने लिए ही बन्द हो जाते हैं, दुनिया से कोई लेना-देना नहीं। अपना धुआं उड़ा रहे हैं, बैठे हैं, दुनिया छूट गयी। आपके और दुनिया के बीच एक 'इस्मोक करटेन' आ गया। पत्नी होगी घर में मतलब नहीं, दूकान चलती है या नहीं मतलब नहीं, कहाँ क्या हो रहा है, मतलब नहीं। आपको इतना मतलब है कि आप धुआँ भीतर खींच रहे हैं और बाहर छोड़ रहे हैं। आप सारे जगत् से टूट गये, आइसोलेट हो गये, अकेले हो गये। आपको अकेले में एक तरह का रस आता है, आइसोलेशन में रस है। वही तो एकांत का साधक करता है। अब आप जानकर हैरान होंगे कि एकांत के साधक को जो रस आता है, वही किसी क्षण सिगरेट पीने में आपको मिल सकता है। और मिल सकता है, क्योंकि सिगरेट भी तोड़ती है। इसलिए अकेला आदमी अगर बैठा रहे तो सिगरेट पीना शुरू कर देता है। ख्याल मिट जाता है सब चारों तरफ का। अपने में बन्द हो जाता है।

यह वैसे ही है जैसे छोटा बच्चा अकेले पड़ा अपना अंगूठा पीता रहे। जब छोटा बच्चा अपना अंगूठा पीता है, तो 'ही इज डिसकनेक्टेड।' उसका दुनिया से कोई संबंध नहीं रहा। दुनिया से उससे कोई मतलब नहीं। अपनी माँ से भी अब मतलब नहीं। इसलिए मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चे को बहुत ज्यादा अंगूठे मत पीने देना अन्यथा उसकी जिन्दगी में सामाजिकता कम हो जायेगी। अगर कोई बच्चा बहुत दिन तक अंगूठा पीता रहे तो एकांत और अकेला हो जायेगा। दूसरों से मित्रता नहीं बना सकेगा। मित्रता की जरूरत ही नहीं, अपना अंगूठा एक मित्र का काम देता है। किसी से कुछ मतलब नहीं। जो बच्चा अंगूठा पीने लगेगा उसका माँ से प्रेम निर्मित नहीं हो पायेगा

क्योंकि मां से जो प्रेम निर्मित होता है, वह उसके स्तन के माध्यम से ही होता है, और कोई माध्यम नहीं। अगर वह अपने अंगूठे से इतना रस लेने लगे, जितना मां के स्तन से मिलता है, तो वह मां से इंडिपेंडेंट हो गया। अब उसको डिपेंडेंस नहीं मालूम पड़ती उसको। अब वह निर्भर नहीं है। और जो बच्चा अपनी मां से प्रेम नहीं कर पायेगा, वह फिर दुनिया में किसी से प्रेम नहीं कर पायेगा। क्योंकि प्रेम का पहला पाठ ही नहीं पूरा हो पाया। वह बच्चा अपने में बंद हो गया। एक अर्थ में अब समाज का हिस्सा नहीं रह गया। और जानकर आप हैरान होंगे कि जो बच्चा बचपन में ज्यादा अंगूठे पीते हैं, वे ही बच्चे बड़े होकर सिगरेट ज्यादा पीते हैं। जिन बच्चों ने बचपन में अंगूठा कम पिया है या नहीं पिया है, उनके जीवन में सिगरेट पीने की संभावना न के बराबर हो जाती है। क्योंकि सिगरेट जो है, वह अंगूठे का सब्स्टीट्यूट है, वह उसका परिपूरक है। क्योंकि बड़ा आदमी अगर अंगूठा पिये, तो जरा बेहूदा मालूम पड़ेगा, इसलिए उसने सिगरेट ईजाद की है, चुरुट ईजाद किया है। उसने हुक्का ईजाद किया है, लेकिन असल में वह पी रहा है, वही अंगूठा। लेकिन बड़ा हो गया है, तो एकदम सीधा-सीधा अंगूठा पियेगा, तो जरा बेहूदा लगेगा, लोग क्या कहेंगे; इसलिए उसने एक परिपूरक इंतजाम कर लिया है। अब लोग कुछ भी न कहेंगे। सिगरेट पीने से इतना ही कहेंगे न, कि नुकसान होता है। वह कहेगा : क्या करें, मजबूरी है। नुकसानदायक है यह तो मैं भी जानता हूं, लेकिन आदत पड़ गयी। अंगूठे में वह बुद्धू मालूम पड़ेगा, सिगरेट में वह समझदार मालूम पड़ेगा। इस तरह सब्स्टीट्यूट सिर्फ धोका देते हैं। लेकिन अगर एक बार रस आ जाये, तो गलत से गलत चीज आपसे संयुक्त हो जाती है।

(१२) एक दौर शराब का भी यानी जामेमय और मजहब की परछाई

मुल्ला की पत्नी एक दिन उसके काफी हाउस में पहुंच गयी, जहां वह शराब पीता रहता था। मुल्ला अपनी टेबुल पर गिलास और बोतल लिये बैठा था। पत्नी आ गयी तो घबड़ाया तो बहुत; लेकिन जब आ ही गयी, तो एक प्याली में डालकर शराब उसको भी दी। पत्नी भी आयी थी आज जांचने कि वह क्या करता रहता है। शराब उसने एक घूंट पिया। नितांत तिक्त और बेस्वाद थी। उसने नीचे रख दिया। और मुंह बिगाड़ा। और कहा मुल्ला, तुम यह

सकते हैं लेकिन नहीं ! वह उस गंध से संयुक्त हो गया। अगर एक आदमी सिगरेट पी रहा है तो सिगरेट का पहला अनुभव सुखद नहीं है, दुखद है; लेकिन यह दुखद अनुभव भी निरंतर दोहराने से किसी सुख की, किसी क्षण की अनुभूति से अगर संयुक्त हो गया तो फिर जिन्दगी भर पुनरुक्ति माँगता रहेगा। और संयुक्त हो सकता है। जब आप सिगरेट पीते हैं तब आप एक अर्थ में सारी दुनिया से टूट जाते हैं।

(११) दो चार कश सिगरेट, एक धुआं—धुआं साधना

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, सिगरेट पीना एक अर्थ में मास्टरबेटरी है। वह हस्तमैथुन जैसी चीज है। आप अपने लिए ही बन्द हो जाते हैं, दुनिया से कोई लेना-देना नहीं। अपना धुआँ उड़ा रहे हैं, बैठे हैं, दुनिया छूट गयी। आपके और दुनिया के बीच एक 'इस्मोक करटेन' आ गया। पत्नी होगी घर में मतलब नहीं, दूकान चलती है या नहीं मतलब नहीं, कहाँ क्या हो रहा है, मतलब नहीं। आपको इतना मतलब हैं कि आप धुआँ भीतर खींच रहे हैं और बाहर छोड़ रहे हैं। आप सारे जगत् से टूट गये, आइसोलेट हो गये, अकेले हो गये। आपको अकेले में एक तरह का रस आता है, आइसोलेशन में रस है। वही तो एकांत का साधक करता है। अब आप जानकर हैरान होंगे कि एकांत के साधक को जो रस आता है, वही किसी क्षण सिगरेट पीने में आपको मिल सकता है। और मिल सकता है, क्योंकि सिगरेट भी तोड़ती है। इसलिए अकेला आदमी अगर बैठा रहे तो सिगरेट पीना शुरू कर देता है। ख्याल मिट जाता है सब चारों तरफ का। अपने में बन्द हो जाता है।

यह वैसे ही है जैसे छोटा बच्चा अकेले पड़ा अपना अंगूठा पीता रहे। जब छोटा बच्चा अपना अंगूठा पीता है, तो 'ही इज डिसकनेक्टेड।' उसका दुनिया से कोई संबंध नहीं रहा। दुनिया से उससे कोई मतलब नहीं। अपनी माँ से भी अब मतलब नहीं। इसलिए मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चे को बहुत ज्यादा अंगूठे मत पीने देना अन्यथा उसकी जिन्दगी में सामाजिकता कम हो जायेगी। अगर कोई बच्चा बहुत दिन तक अंगूठा पीता रहे तो एकांत और अकेला हो जायेगा। दूसरों से मित्रता नहीं बना सकेगा। मित्रता की जरूरत ही नहीं, अपना अंगूठा एक मित्र का काम देता है। किसी से कुछ मतलब नहीं। जो बच्चा अंगूठा पीने लगेगा उसका माँ से प्रेम निर्मित नहीं हो पायेगा

क्योंकि माँ से जो प्रेम निर्मित होता है, वह उसके स्तन के माध्यम से ही होता है, और कोई माध्यम नहीं। अगर वह अपने अंगूठे से इतना रस लेने लगे, जितना मां के स्तन से मिलता है, तो वह मां से इंडिपेंडेंट हो गया। अब उसकी डिपेंडेंस नहीं मालूम पड़ती उसको। अब वह निर्भर नहीं है। और जो बच्चा अपनी मां से प्रेम नहीं कर पायेगा, वह फिर दुनिया में किसी से प्रेम नहीं कर पायेगा। क्योंकि प्रेम का पहला पाठ ही नहीं पूरा हो पाया। वह बच्चा अपने में बंद हो गया। एक अर्थ में अब समाज का हिस्सा नहीं रह गया। और जानकर आप हैरान होंगे कि जो बच्चा बचपन में ज्यादा अंगूठे पीते हैं, वे ही बच्चे बड़े होकर सिगरेट ज्यादा पीते हैं। जिन बच्चों ने बचपन में अंगूठा कम पिया है या नहीं पिया है, उनके जीवन में सिगरेट पीने की संभावना न के बराबर हो जाती है। क्योंकि सिगरेट जो है, वह अंगूठे का सब्स्टीट्यूट है, वह उसका परिपूरक है। क्योंकि बड़ा आदमी अगर अंगूठा पिये, तो जरा बेहूदा मालूम पड़ेगा, इसलिए उसने सिगरेट ईजाद की है, चुरुट ईजाद किया है। उसने हुक्का ईजाद किया है, लेकिन असल में वह पी रहा है, वही अंगूठा। लेकिन बड़ा हो गया है, तो एकदम सीधा-सीधा अंगूठा पियेगा, तो जरा बेहूदा लगेगा, लोग क्या कहेंगे; इसलिए उसने एक परिपूरक इंतजाम कर लिया है। अब लोग कुछ भी न कहेंगे। सिगरेट पीने से इतना ही कहेंगे न, कि नुकसान होता है। वह कहेगा : क्या करें, मजबूरी है। नुकसानदायक है यह तो मैं भी जानता हूं, लेकिन आदत पड़ गयी। अंगूठे में वह बुद्धू मालूम पड़ेगा, सिगरेट में वह समझदार मालूम पड़ेगा। इस तरह सब्स्टीट्यूट सिर्फ धोखा देते हैं। लेकिन अगर एक बार रस आ जाये, तो गलत से गलत चीज आपसे संयुक्त हो जाती है।

(१२) एक दौर शराब का भी यानी जामेमय और मजहब की परछाईं

मुल्ला की पत्नी एक दिन उसके काफी हाउस में पहुंच गयी, जहां वह शराब पीता रहता था। मुल्ला अपनी टेबुल पर गिलास और बोतल लिये बैठा था। पत्नी आ गयी तो घबड़ाया तो बहुत; लेकिन जब आ ही गयी, तो एक प्याली में डालकर शराब उसको भी दी। पत्नी भी आयी थी आज जांचने कि वह क्या करता रहता है। शराब उसने एक घूंट पिया। नितांत तिक्त और बेस्वाद थी। उसने नीचे रख दिया। और मुंह बिगाड़ा। और कहा मुल्ला, तुम यह

पीते हो ? तो मुल्ला ने कहा, तुम सोचती थी कि मैं बहुत आनन्द मानता रहता हूँ। यही दुख भोगने के लिए हम यहाँ आते हैं। समझ गयी। अब दुबारा भूल कर भी मत कहना कि वहाँ तुम बड़ा आनन्द करने जाते हो। तो शराब का पहला अनुभव तो दुखद ही है। लेकिन शराब के गहरे अनुभव धीरे-धीरे सुखद होने शुरू हो जाते हैं क्योंकि शराब आपको जगत् से तोड़ देती है। जगत् की चिंताओं से तोड़ देती है। जगत् मिट जाता है। आप ही रह जाते हैं। यह बहुत मजे की बात है कि ध्यान और शराब में थोड़ा संबंध है। इसलिए विलियम जेम्स ने, जिसने कि इस सदी में धर्म और नशे के बीच में संबंध खोजने में सर्वाधिक शोध कार्य किया, कहा है कि शराब का इतना आकर्षण गहरे में कहीं न कहीं धर्म से संबंधित है अन्यथा इतना आकर्षण हो नहीं सकता। कहीं न कहीं शराब कुछ ऐसा करती होगी, जो मनुष्य की गहरी धार्मिक आकांक्षा को तृप्त करता है। है संभव। और इसीलिए वेद के सोम रस से लेकर आल्डुअस हक्सले के एल एस डी तक धार्मिक आदमी का बड़ा हिस्सा नशे का उपयोग करता रहा। बड़ा हिस्सा। नशे के उपयोग में कहीं न कहीं जरूर कोई ताल-मेल है। वह तालमेल इतना ही है कि शराब आपको जगत् से तोड़ देती है, इस बुरी तरह कि आप बिल्कुल अकेले हो जाते हैं। अकेले होने में एक रस है। संसार की सारी चिंताएँ भूल जाती हैं। आप एक गहरे अर्थ में निश्चित मालूम पड़ते हैं। हो तो नहीं जाते क्योंकि नशा कुछ देर बाद विदा हो जायेगा और तब चिंता वापस लौट आयेगी। लेकिन शराब के साथ इस निश्चितता का रस जुड़ जायेगा। एक दफे यह रस जुड़ गया फिर आप शराब के नाम से जहर पीते रहेंगे। रस तो संयुक्त हो गया। तो पुनरुक्ति की मांग शुरू हो जाती है।

(१३) मुल्ला उदास क्यों ? कोई मरा न था !

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने मकान के दरवाजे पर उदास बैठा था। पड़ोसी बहुत हैरान हुआ, क्योंकि दो सप्ताह से वह बहुत प्रसन्न मालूम पड़ता था, इतना जितना कभी न मालूम पड़ा था। उदास देखकर पड़ोसी ने पूछा कि आज नसरुद्दीन बहुत उदास मालूम पड़ते हो। बात क्या है ? नसरुद्दीन ने कहा, बात ? बात बहुत कुछ है। इस महीने के पहले सप्ताह में मेरे दादा मर गये और मेरे नाम पचास हजार रुपया छोड़ गये। दूसरे सप्ताह मेरे चाचा मर गये, वे मेरे नाम तीस हजार रुपया छोड़ गये। और अब तीसरा

सप्ताह पूरा होने को है। अभी तक कुछ नहीं हुआ। तो मन पुनरुक्ति माँगता है। इसका कोई सवाल नहीं है कि कोई मरेगा तब कुछ होगा। मरने का दुःख एक तरफ रह गया। वह पचास हजार रुपया मिलने का सुख जुड़ गया। इसलिए मनस्विद् कहते हैं कि सिर्फ गरीब बाप के मरने से बेटे दुःखी होते हैं। अमीर बाप के मरने में बेटे केवल दुःख प्रकट करते हैं। इसमें सचाई है। क्योंकि साथ में मृत्यु से भी ज्यादा कुछ और अमीर बाप के साथ घटता है। उसका धन भी बेटे के हाथ में आता है। दुःख वह प्रकट करता है, लेकिन वह दुःख ऊपरी होता है। भीतर एक रस भी आ जाता है। और अगर उसे पता चले कि बाप पुनः जिन्दा हो गया तो आप समझते हैं कि मुसीबत कैसी मालूम पड़ेगी! वह कभी जिन्दा नहीं होता, यह दूसरी बात है।

मुल्ला की जिन्दगी में यह तकलीफ हो गयी थी। उसकी पत्नी मर गयी थी, अर्थी को उठाकर ले जा रहे थे कि अर्थी सामने लगे हुए नीम के वृक्ष से टकरा गयी। अन्दर से आवाज आयी हलन-चलन की। लोगों ने अर्थी उतारी। पत्नी मरी नहीं थी सिर्फ बेहोश थी। मुल्ला पत्नी को जिन्दा देखकर बड़ा दुखी हो गया। छाती पीटकर रोने लगा। पत्नी सिर्फ तीन साल और जिन्दा रही, फिर मरी। और जब अर्थी उठाकर फिर लोग चलने लगे, तो मुल्ला फिर छाती पीटकर रोने लगा। जब नीम के पास पहुंचा तो उसने कहा :— भाइयों जरा सँभाल के, फिर से मत टकरा देना। इसलिए ख्याल में ले लें कि आदमी जो प्रकट करता है, वही उसके भीतर है, ऐसा जरूरी नहीं। ज्यादा संभावना तो यह है कि वह जो प्रकट करता है, उसके विपरीत उसके भीतर होता है। शायद वह प्रकट ही इसलिए करता है कि जो भीतर है, वह छिपा रहे, प्रकट न हो। अगर ज्यादा छाती पीटकर रोते हैं, तो जरूरी नहीं कि इतना दुःख हो। भीतर अन्यथा भी हो सकता है। कितनी ही गलत चीजों की, अगर उनमें रस आ जाये तो, पुनरुक्ति शुरू हो जाती है। और जब गलत से गलत चीज शुरू हो जाती है, तो सही चीज में तो कोई कठिनाई ही नहीं है।

(१४) क्रोध-अक्रोध दोउ त्यागिए

लेकिन यह जोड़ कब पैदा होता है? यह 'लिंक' कब बनती है? यह लिंक, यह जोड़, यह संबंध तब बनता है, जब व्यक्ति अपने मन को अपने से दूर नहीं पाता। वही उसके जुड़ने का ढंग है। जब आपको क्रोध आता है और

पीते हो ? तो मुल्ला ने कहा, तुम सोचती थी कि मैं बहुत आनन्द मानता रहता हूँ। यही दुख भोगने के लिए हम यहाँ आते हैं। समझ गयी। अब दुबारा भूल कर भी मत कहना कि वहाँ तुम बड़ा आनन्द करने जाते हो। तो शराब का पहला अनुभव तो दुखद ही है। लेकिन शराब के गहरे अनुभव धीरे-धीरे सुखद होने शुरू हो जाते हैं क्योंकि शराब आपको जगत् से तोड़ देती है। जगत् की चिंताओं से तोड़ देती हैं। जगत् मिट जाता है। आप ही रह जाते हैं। यह बहुत मजे की बात है कि ध्यान और शराब में थोड़ा संबंध है। इसलिए विलियम जेम्स ने, जिसने कि इस सदी में धर्म और नशे के बीच में संबंध खोजने में सर्वाधिक शोध कार्य किया, कहा है कि शराब का इतना आकर्षण गहरे में कहीं न कहीं धर्म से संबंधित है अन्यथा इतना आकर्षण हो नहीं सकता। कहीं न कहीं शराब कुछ ऐसा करती होगी, जो मनुष्य की गहरी धार्मिक आकांक्षा को तृप्त करता है। है संभव। और इसीलिए वेद के सोम रस से लेकर आल्डुअस हक्सले के एल एस डी तक धार्मिक आदमी का बड़ा हिस्सा नशा का उपयोग करता रहा। बड़ा हिस्सा। नशे के उपयोग में कहीं न कहीं जरूर कोई ताल-मेल है। वह तालमेल इतना ही है कि शराब आपको जगत् से तोड़ देती है, इस बुरी तरह कि आप बिल्कुल अकेले हो जाते हैं। अकेले होने में एक रस है। संसार की सारी चिंताएँ भूल जाती हैं। आप एक गहरे अर्थ में निश्चित मालूम पड़ते हैं। हो तो नहीं जाते क्योंकि नशा कुछ देर बाद विदा हो जायेगा और तब चिंता वापस लौट आयेगी। लेकिन शराब के साथ इस निश्चिंतता का रस जुड़ जायेगा। एक दफे यह रस जुड़ गया फिर आप शराब के नाम से जहर पीते रहेंगे। रस तो संयुक्त हो गया। तो पुनरुक्ति की मांग शुरू हो जाती है।

(१३) मुल्ला उदास क्यों ? कोई मरा न था !

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने मकान के दरवाजे पर उदास बैठा था। पड़ोसी बहुत हैरान हुआ, क्योंकि दो सप्ताह से वह बहुत प्रसन्न मालूम पड़ता था, इतना जितना कभी न मालूम पड़ा था। उदास देखकर पड़ोसी ने पूछा कि आज नसरुद्दीन बहुत उदास मालूम पड़ते हो। बात क्या है ? नसरुद्दीन ने कहा, बात ? बात बहुत कुछ है। इस महीने के पहले सप्ताह में मेरे दादा मर गये और मेरे नाम पचास हजार रुपया छोड़ गये। दूसरे सप्ताह मेरे चाचा मर गये, वे मेरे नाम तीस हजार रुपया छोड़ गये। और अब तीसरा

सप्ताह पूरा होने को है। अभी तक कुछ नहीं हुआ। तो मन पुनरुक्ति माँगता है। इसका कोई सवाल नहीं है कि कोई मरेगा तब कुछ होगा। मरने का दुःख एक तरफ रह गया। वह पचास हजार रुपया मिलने का सुख जुड़ गया। इसलिए मनस्विद् कहते हैं कि सिर्फ गरीब बाप के मरने से बेटे दुःखी होते हैं। अमीर बाप के मरने में बेटे केवल दुःख प्रकट करते हैं। इसमें सचाई है। क्योंकि साथ में मृत्यु से भी ज्यादा कुछ और अमीर बाप के साथ घटता है। उसका धन भी बेटे के हाथ में आता है। दुःख वह प्रकट करता है, लेकिन वह दुःख ऊपरी होता है। भीतर एक रस भी आ जाता है। और अगर उसे पता चले कि बाप पुनः जिन्दा हो गया तो आप समझते हैं कि मुसीबत कैसी मालूम पड़ेगी! वह कभी जिन्दा नहीं होता, यह दूसरी बात है।

मुल्ला की जिन्दगी में यह तकलीफ हो गयी थी। उसकी पत्नी मर गयी थी, अर्थी को उठाकर ले जा रहे थे कि अर्थी सामने लगे हुए नीम के वृक्ष से टकरा गयी। अन्दर से आवाज आयी हलन-चलन की। लोगों ने अर्थी उतारी। पत्नी मरी नहीं थी सिर्फ बेहोश थी। मुल्ला पत्नी को जिन्दा देखकर बड़ा दुखी हो गया। छाती पीटकर रोने लगा। पत्नी सिर्फ तीन साल और जिन्दा रही, फिर मरी। और जब अर्थी उठाकर फिर लोग चलने लगे, तो मुल्ला फिर छाती पीटकर रोने लगा। जब नीम के पास पहुंचा तो उसने कहा :— भाइयों जरा सँभाल के, फिर से मत टकरा देना। इसलिए ख्याल में ले लें कि आदमी जो प्रकट करता है, वही उसके भीतर है, ऐसा जरूरी नहीं। ज्यादा संभावना तो यह है कि वह जो प्रकट करता है, उसके विपरीत उसके भीतर होता है। शायद वह प्रकट ही इसलिए करता है कि जो भीतर है, वह छिपा रहे, प्रकट न हो। अगर ज्यादा छाती पीटकर रोते हैं, तो जरूरी नहीं कि इतना दुःख हो। भीतर अन्यथा भी हो सकता है। कितनी ही गलत चीजों की, अगर उनमें रस आ जाये तो, पुनरुक्ति शुरू हो जाती है। और जब गलत से गलत चीज शुरू हो जाती है, तो सही चीज में तो कोई कठिनाई ही नहीं है।

(१४) क्रोध-अक्रोध दोउ त्यागिए

लेकिन यह जोड़ कब पैदा होता है? यह 'लिंक' कब बनती है? यह लिंक, यह जोड़, यह संबंध तब बनता है, जब व्यक्ति अपने मन को अपने से दूर नहीं पाता। वही उसके जुड़ने का ढंग है। जब आपको क्रोध आता है और

आप कहते हैं कि मैं क्रोधी हो गया तो आप मन के साथ जोड़ बना लेते हैं। जब आपके जीवन में दुःख आता है और आप कहते हैं कि मैं दुखी हो गया, तो यह और कुछ नहीं, आप मन के साथ अपने को समझने की भ्रांति में पड़ गये हैं। जब सुख आता है तब आप कहते हैं मैं सुखी हो गया। यह आप मन के साथ तादात्म्य करते हैं। अगर रस-परित्याग का व्यवहार करना है तो जब क्रोध आये तब कहना कि क्रोध आया, ऐसा मैं देखता हूँ। ऐसा नहीं कि क्रोध मुझे आ ही नहीं रहा। क्योंकि तब आप फिर संबंधित हो गये। ध्यान रहे अगर आप कहते हैं कि क्रोध मुझे आ ही नहीं रहा या क्रोध आ रहा है, दोनों में आप या तो क्रोध से संबंधित हैं या अक्रोध से, दोनों हालतों में रस-परित्याग नहीं होगा। जब क्रोध आये तब रस-परित्याग की साधना करनेवाला व्यक्ति कहेगा कि क्रोध आ रहा है। क्रोध जल रहा है लेकिन मैं देख रहा हूँ। और सत्य यही है कि आप देखते हैं, आप क्रोधी होते नहीं। यह भ्रांति है कि आप क्रोधी होते हैं। आप सदा देखनेवाले बने रहते हैं। जब आपके पेट में भूख लगती है तब आप भूखे नहीं हो जाते। आप सिर्फ जाननेवाले होते हैं कि भूख लगी है। जब पैर में काँटा गड़ जाता है तो आप दर्द नहीं हो जाते, बल्कि तब आप यह जानते हैं कि पैर में दर्द हो रहा है। लेकिन इस जानने का बोध प्रगाढ़ नहीं है। बहुत फीका है। वह इतना फीका है कि जब पैर का काँटा जोर से चुभता है तो वह बोध भूल जाता है।

उस बोध को प्रगाढ़ कर लेने का नाम रस-परित्याग है। वह बोध इतना प्रगाढ़ होता जाय कि जब जीभ आपकी कहे बहुत स्वादिष्ट है, तब आप कह सकें कि ठीक है। जीभ कहती है स्वादिष्ट है, ऐसा मैं सुनता हूँ। ऐसा मैं देखता हूँ। ऐसा मैं समझता हूँ। लेकिन मैं अलग। रसानुभव के बीच में साक्षी। कोई सम्मान कर रहा है, कोई मालाएँ डाल रहा है तब, तब आप जानते हैं कि फूल मालाएँ डाली जा रही हैं, कोई सम्मान कर रहा है। मैं देख रहा हूँ। कोई पत्थर मार रहा है, कोई गालियाँ दे रहा है। तब आप जानते हैं कि गालियाँ दी जा रही हैं, पत्थर मारे जा रहे हैं। मैं देखता हूँ। और एक बार इस द्रष्टा के साथ संबंध बन जाय और मन के साथ संबंध शिथिल हो जाये तो आप पायेंगे कि सब रस खो गये। न वस्तुएँ छोड़नी पड़ती हैं, न जीभ काटनी पड़ती है, न आँख फोड़नी पड़ती है, लेकिन रस खो जाते हैं, और जब रस खो जाते हैं, तब वस्तुएँ अपने आप छूट जाती हैं। और जब रस छूट जाते हैं, तो इंद्रियाँ अपने

आप शांत हो जाती हैं। और जब रस खो जाते हैं तो मन पुनरुक्ति की मांग बंद कर देता है क्योंकि वह करता ही इसलिए था कि उसे रस मिलता था। अब जब मालिक को भी रस नहीं मिलता, तो बात समाप्त हो गयी, क्योंकि मन हमारा नौकर है, छाया की तरह हमारे पीछे चलता है। हम जो कहते हैं, वह तुरंत दोहरा देता है। मन जो दोहराता है, वह इंद्रियाँ मांगने लगती हैं। इंद्रियाँ जो मांगने लगती हैं, हम उन्हीं पदार्थों को इकट्ठा करने में जुट जाते हैं। यह ऐसा चक्कर है। इसे आप पहले केन्द्र से ही तोड़ें। फिर भी महावीर कहते हैं बाह्य-तप।

(१५) साक्षी होना भी द्वैत है

यह बड़े मजे की बात है कि इसे तोड़ना पड़ेगा भीतर, लेकिन फिर भी यह बाह्य-तप है। क्योंकि जिससे आप तोड़ रहे हैं, वह फिर भी बाहर की चीज है। अगर मैं साक्षी हो रहा हूं तो भी बाहर का हो रहा हूं। वस्तुओं का हो रहा हूं, इंद्रियों का हो रहा हूं, मन का हो रहा हूं। वे सब पराये हैं। वे सब बाहर हैं। ध्यान रहे, महावीर कहते हैं साक्षी होना भी बाहर है। इसलिए जब केवली होता है कोई, तब वह साक्षी भी नहीं होता। किसका साक्षी होना है! वह सिर्फ होता है, 'जस्ट बीइंग', सिर्फ होता है। साक्षी भी नहीं होता, क्योंकि साक्षी में भी द्वैत है, कोई है जिसका मैं साक्षी हूं। अभी वह कोई मौजूद है, इसलिए केवली साक्षी भी नहीं होता। जब तक मैं ज्ञाता होता हूं, तब तक कोई ज्ञेय मौजूद है। इसलिए केवली ज्ञाता भी नहीं होता, मात्र ज्ञान रह जाता है। महावीर इसे भी बाह्य कहते हैं। यह भी बाहर है, लेकिन बाहर का यह मतलब नहीं है कि आप बाहर की वस्तुओं को छोड़ने से शुरू करें। बाहर की वस्तु छूटना इसका परिणाम होगा। अगर किसी व्यक्ति ने शुरुआत बाहर की वस्तु छोड़ने से की, तो वह मुश्किल में पड़ जायेगा, उलझ जायेगा। वह जिस वस्तु को छोड़ेगा, उसमें आकर्षण बढ़ जायेगा। वह जिससे भागेगा, उससे निमंत्रण मिलेगा। वह जिसका निषेध करेगा, उसकी पुकार बढ़ जायेगी। अगर मन को दबायेगा, हटायेगा, समझायेगा, बुझायेगा तो मन उल्टी मांग करेगा। सिर्फ एक ही जगह है, जहां से रस टूट जाता है। वह है साक्षी-भाव। रस-परित्याग की प्रक्रिया है साक्षी-भाव।

(१६) तो क्या शरीर को सताना काया-क्लेश नहीं है ?

रस-परित्याग के बाद महावीर ने कहा है—काया-क्लेश। महावीर के साधना सूत्रों में सबसे ज्यादा गलत समझा गया है यह साधना सूत्र। काया-क्लेश शब्द साफ है। स्पष्ट लगता है शरीर को कष्ट दो। काया को क्लेश दो। काया को सताओ। लेकिन महावीर किसी भी सतानेवाली बात में गवाही नहीं हो सकते। क्योंकि सब तरह का सताना हिंसा है। अपना भी शरीर सताना हिंसा है। क्योंकि शरीर में अपने-तुम्हारे में कोई फर्क नहीं है। मेरे शरीर में जो हड्डी हैं, वैसी ही है जैसी आपके शरीर की हड्डी है। अगर मेरे शरीर की एक हड्डी और आपके शरीर की एक हड्डी निकाल कर रख दी जाये, तो मैं बता भी नहीं पाऊंगा कि कौन सी मेरी हड्डी है। हड्डी सिर्फ हड्डी है। वह मेरी-तेरी नहीं है। मेरी हड्डी जिस नियम से बनती है, उसी नियम से आपकी भी हड्डी बनती है। वह सब बाहर की ही व्यवस्था है। इसलिए महावीर अपने भी शरीर को सताने की बात नहीं कह सकते क्योंकि महावीर भली-भांति जानते हैं कि अपना वहाँ क्या है, वह भी सब पराया है। सिर्फ डिस्टेंस का फर्क है। मेरा शरीर मुझसे थोड़ा कम दूरी पर है, आपका शरीर मुझसे थोड़ा ज्यादा दूरी पर है। बस इतना ही फर्क है। और तो कोई फर्क नहीं। पर महावीर की परम्परा ने ऐसा ही समझा कि काया को सताओ। और इसलिए आत्मपीड़कों का बड़ा वर्ग महावीर की धारा में सम्मिलित हुआ। जिन-जिनको लगता था कि अपने को सताने में मजा आ सकता है, वे आ सम्मिलित हुए।

(१७) बाल कटते हैं दर्द नहीं होता, मगर क्यों ?

अब ध्यान देने की बात है कि महावीर ने अपने बाल उखाड़कर फेंक दिये, क्योंकि कहते थे कि अब बालों को उखाड़ने के लिए ही कोई साधन पास में रखना पड़ेगा। कोई रेजर साथ रखो या किसी नाई पर निर्भर रहो या नाई के यहाँ क्यू लगाकर खड़े रहो। इसलिए महावीर ने कहा, फिजूल समय इसमें खोना जरूरी नहीं है। इसलिए महावीर अपने बाल उखाड़ लेते थे, लेकिन इसलिए नहीं कि बाल उखाड़ने में जो पीड़ा होती थी, उस पीड़ा में उन्हें कोई रस था। सच कहिए तो महावीर को बाल उखाड़ने में पीड़ा नहीं होती थी। यह थोड़ा समझने लायक है। आपके शरीर में बाल और नाखून

डेड पार्टस हैं, जिन्दा हिस्से नहीं हैं। नाखून और बाल मरे हुए हिस्से हैं। इसलिए कैंची से काटने से दर्द नहीं होता। बाल कैंची से कटता है, आपको दर्द क्यों नहीं होता ? आफ्टर आल इट इज ए पार्ट। अगर आपका ही हिस्सा है तो दर्द होना चाहिए, वह जिन्दा है तो दर्द होना ही चाहिए। लेकिन आपके बाल कटते रहते हैं, आपको पता भी नहीं चलता। सो बाल मरा हुआ हिस्सा है। असल में शरीर में जो जीव-कोष मर जाते हैं, उन कोषों को बाहर निकालने की तरकीवें हैं बाल, नाखून, पसीना आदि। शरीर के मरे हुए कोष शरीर बाहर फेंक देता है। अगर मरे हुए कोषों को भी खींचने से पीड़ा होती है, तो वह भ्रांति है। उसे ख्याल है कि पीड़ा होगी, इसलिए होगी।

(१८) लोरेंजो के प्रसव-प्रयोग और पीड़ा का रहस्य

आप कहेंगे कि क्या सारे लोग भ्रांति में हैं ? तो आपको मैं एक छोटी-सी वैज्ञानिक घटना बताता हूं, जिससे बात ख्याल में आ जाये। फ्रांस में एक आदमी है लोरेंजो। उसने पीड़ा-रहित प्रसव के हजारों प्रयोग किये। अब तक उसने कोई एक लाख स्त्रियों को बिना दर्द के प्रसव करवाया। बिना कोई दवा दिये, बिना कोई अनेस्थीसिया दिये, बिना बेहोश किये। जैसी स्त्री है, वैसे ही उसको लिटा करके बिना दर्द के बच्चे को पैदा करवा दिया। वह कहता है यह सिर्फ भ्रांति है कि बच्चे के पैदा होने में दर्द होता है। यह केवल ख्याल है। और चूंकि यह ख्याल है इसलिए जब मां को बच्चा पैदा होने के करीब होता है, तब वह भयभीत होना शुरू हो जाती है कि दर्द होनेवाला है। और दर्द जब भी ख्याल में आता है, वह अपनी पूरी मांसपेशियों को भीतर सिकोड़ने लगती है क्योंकि दर्द सिकोड़ता है। ध्यान रहे सुख फैलाता है, दुःख सिकोड़ता है। जब आप दुःख में होते हैं तो सिकुड़ते हैं। अगर एक आदमी आपकी छाती पर छूरा लेकर खड़ा हो जाये, तो आपकी सब मांसपेशियां भीतर सिकुड़ जाती हैं। कोई आपके गले में फूलमाला डाल दे, तो आपका सब फैल जाता है। फूलमाला डलवा करके भी वजन मत तुलवाना, ज्यादा निकल सकता है। आप हैरान होंगे कि यह विज्ञान निरीक्षित तथ्य है कि भगतसिंह का वजन फांसी पर बढ़ गया था। जेल में तौला गया और जेल से ले जाकर फांसी के तख्ते पर तौला गया। जब फांसी लगनेवाली थी तो भगतसिंह का

वजन डेढ़ पौंड वढ़ गया था। यह कैसे वढ़ गया ? भगतसिंह इतना आनंदित था कि फैल गया। जव आप दुखी होते हैं तो आप रक्षार्थ अपने को सिकोड़ते हैं। तो जव माँ को डर लगता है कि अव पीड़ा होने वाली है, वच्चा होनेवाला है, तो वह अपनी मांसपेशियों को भीतर सिकोड़ने लगती है। जव वह मांसपेशियों को भीतर सिकोड़ती है और वच्चा भीतर से वाहर निकलने के लिए धक्के देता है, तो पीड़ा शुरू होती है, दर्द शुरू होता है। जव दर्द शुरू होता है, तो माँ का भरोसा पक्का हो जाता है कि दर्द होने लगा, वह और जोर से सिकोड़ती है। वह जितने जोर से सिकोड़ती है उतने ही जोर से वच्चा धक्का देता है, क्योंकि उसे वाहर निकलना है। दोनों के संघर्ष में पीड़ा पैदा होती है। लोरेंजो कहता है कि यह पीड़ा माँ करवाती है, सजेशन है उसका, ख्याल है। दर्द होने की कोई जरूरत नहीं होती। किसी जानवर को नहीं होता। जंगली आदिवासियों को नहीं होता। आदिवासी स्त्री को जंगल में वच्चा पैदा हो जाता है, तो उसको टोकरी में रख कर अपने घर चल पड़ती है। उसे विश्राम की भी कोई जरूरत नहीं रहती। क्योंकि जव दर्द ही नहीं हुआ तो विश्राम की क्या जरूरत। दर्द हुआ तो फिर विश्राम की जरूरत है। लोरेंजो कहता है, यह सारी की सारी प्रक्रिया मानसिक है, और अव तो लोरेंजो की यह व्यवस्था रूस, अमरीका सव तरफ फैलती जा रही है। वह सिर्फ माँ को इतना समझाता है कि खींच मत अपनी मांसपेशियों को, रिलैक्स रख। वच्चे को कोआपरेट कर वाहर आने में। तू सोच कि वच्चा वाहर जा रहा है। 'कोआपरेट विद द चाइल्ड।' लोरेंजो यह भी कहता है कि जिस माँ ने वच्चे को पैदा होने में सहयोग न दिया, वह वाहर भी नहीं दे पायेगी। जिस वच्चे के साथ पहला अनुभव दुःख का हो गया, उस वच्चे के साथ सुख का अनुभव लेना वहुत कठिन हो जायेगा। क्योंकि तव का अनुभव एक्सपोजर है, वह गहरे में उतर जाता है कि जिस वच्चे ने पहले ही दिन पीड़ा दे दी, अव वह पीड़ा ही देगा। यह प्रतीति गहन हो गयी, इसलिए माँ वुढ़ापे तक कहती रहती है कि मैंने तुझे नौ महीने तक पेट में रख कर दुःख झेला। वह भूलती नहीं। वच्चे के साथ सुख का अनुभव माँ कम ही कहती सुनी जाती है, दुःख के अनुभव ही कहती सुनी जाती है। शायद ही कोई माँ कहती हो कि मैंने तुझे नौ महीने रखकर कितना सुख पाया। और जो माँ ऐसा कह सकेगी, उसके आनंद की कोई सीमा न रहेगी। लेकिन वह कहने

का सवाल नहीं है। और जो मां बच्चे को नौ महीने पेट में रखकर आनंद न पा सकी, दुःख पाया; और जिसके साथ इतना दुःख पाया उसके साथ दुःख की संभावना-का ही सूत्र गहन हो गया। लोरेंजो ने लाखों स्त्रियों को बिना दर्द के प्रसव करवा कर यह प्रमाणित कर दिया कि दर्द हमारा ख्याल है। अगर प्रसव बिना दर्द के हो सकता है, तो आप सोच सकते हैं कि क्या बाल बिना दर्द के नहीं निकल सकते ? बहुत आसान-सी बात है। महावीर अपने बाल उखाड़ कर फेंक देते थे।

(१९) महावीर के अनुयायी पागलों का काम करें !

लेकिन मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि पागलों का एक खास वर्ग है जो बाल नोचने में रस लेता है। और जिसको बाल नोचने में रस आता है, अगर वह, वैसे ही बाजार में खड़े होकर बाल नोचे, तो आप उसे पागल ही कहेंगे। अगर वह महावीर का अनुयायी होकर नोचे, तो आप उसके पैर छुएंगे। कुछ पागल हैं, जिनको नग्न होने में रस आता है। मनोवैज्ञानिक उन्हें एक्जीबीसनिस्ट कहते हैं। अगर वे ऐसे ही नग्न खड़े हों, तो पुलिस पकड़कर ले जायेगी। लेकिन महावीर को नग्न देखकर उनको बड़ा मजा आ जायेगा और वे नग्न खड़े हो जायेंगे। और तब आप उनके पैर छूने पहुंच जायेंगे। यह पता लगाना बहुत मुश्किल है कि वे नग्नता की वजह से महावीर के अनुयायी हो गए या महावीर के अनुयायी होने की वजह से नग्न हो गये; बाल नोचने में उनको मजा आता है इसलिए महावीर के साथ चले गये या महावीर के साथ चले गये और उस राज़ को पा गये, जहां बाल नोचने में कोई दर्द ही नहीं होता। यह तय करना बहुत मुश्किल है। आदमी के भीतर क्या हो रहा है, इसकी बाहर से जांच बड़ी कठिन है।

(२०) पादरी का प्रवचन और मुल्ला का छाता

मुल्ला एक दिन चर्च में सुनने गया। बड़ा पादरी बोलने आया था। एक ईसाई मित्र ने कहा, सो चला गया और जाकर बैठ गया। आगे ही बैठा। प्रभावशाली आदमी ठहरा, पादरी की भी नजर उस पर बार-बार जाती। जब पादरी ने टेन कमांडमेंट्स, दस आज्ञाओं पर बोलना शुरू किया, तब उसने एक आज्ञा पर काफी बातें समझायीं :—दाउ शैल्ट नॉट स्टील—चोरी नहीं करना कभी। मुल्ला बड़ा बेचैन हो गया। उसके माथे पर पसीना आ गया। पादरी

को ख्याल भी आया कि यह आदमी बहुत बेचैन है, क्या बात है ? इतना बेचैन है कि लगता है कि उठकर न चला जाये। हाथ पैर उसके सीधे नहीं हैं। फिर पादरी दूसरी आज्ञा पर आया :—दाऊ शैल्ट नॉट कमिट एडल्टरी, व्यभिचार मत करना। मुल्ला हँसने लगा, बड़ा प्रसन्न हुआ, बड़ा शांत और आनंदित दिखायी पड़ने लगा। पादरी और भी हैरान हुआ कि इसको क्या हो रहा है ! जब सवा सात हो गये तो उसने मुल्ला को पकड़ा और पूछा कि राज क्या है तुम्हारा ? जब मैंने कहा, चोरी मत करना, तब तुम बहुत परेशान थे। तुम्हारे माथे पर पसीना आ गया। और जब मैंने कहा व्यभिचार मत करना, तब तुम बड़े आनंदित हो गए।

मुल्ला ने कहा कि आप नहीं मानते हैं तो बताये देता हूँ। जब आपने कहा कि चोरी मत करना तब मुझे ख्याल आया कि मेरा छाता कोई चुरा ले गया। छाता दिखायी नहीं पड़ा, तो मैं मुसीबत में पड़ गया, कि जरूर कोई चोर है। मुझे गुस्सा आया कि कैसा चर्च है, जहाँ चोर इकट्ठे हैं। लेकिन जब आपने कहा कि व्यभिचार मत करना, तब मुझे फौरन ख्याल आया कि रात में मैं छाता कहाँ छोड़ आया हूँ।

इसलिए कहता हूं कि भीतर क्या हो रहा है, उसके बाहर देखकर इसका पता लगाना बहुत मुश्किल है। आदमी के भीतर सूक्ष्म है। वह जब घटित होता है तो बाहर के प्रतीकों से पता लगाना अत्यंत कठिन है। अक्सर ऐसा हुआ है कि महावीर के पास वे लोग भी इकट्ठे हो गये जिनके भीतर कुछ था और बाहर कुछ। और जैसे-जैसे महावीर से फासला बढ़ता जायेगा, उनकी संख्या बढ़ती जायेगी। और एक वक्त आयेगा कि महावीर के पीछे चलनेवाली भीड़ में अधिक लोग वे होंगे, जो उन बातों से उत्सुक हुए, जिन बातों से उत्सुक नहीं होना चाहिए था। और जिन बातों से उत्सुक होना चाहिए था उनका ख्याल ही मिट जायेगा। क्योंकि जिन बातों से उत्सुक होना चाहिए, वे गहन हैं। और जिन बातों से हम उत्सुक होते हैं, वे ऊपरी हैं, बाहरी हैं। महावीर को लोगों ने देखा है कि वे अपने बाल उखाड़ रहे हैं, भूखे खड़े हैं, नग्न खड़े हैं, धूप, सर्दी, वर्षा में खड़े हैं। जिन लोगों को भी अपने को सताना है, महावीर की आड़ में वे बड़ी आसानी से वह कर सकते हैं। लेकिन महावीर अपने को सता नहीं रहे हैं। महावीर के लिए काया-क्लेश का अर्थ सताना नहीं।

(२१) तब फिर काया-क्लेश क्यों ?

लेकिन फिर यह शब्द क्यों प्रयोग किया ? इसे थोड़ा समझें। महावीर का जो अर्थ है, वह यह है कि काया क्लेश है। शरीर दुख है। शरीर ही दुख है। शरीर के साथ सुख मिलता ही नहीं कभी। दुख ही मिलता है। इसलिए साधक जैसे ही आगे बढ़ेगा, उसके शरीर से बहुत से दुख बिखरने शुरू हो जायेंगे, जो अब तक दिखायी नहीं पड़ते थे। वह अपने मोह और भ्रमों में जी रहा था। मेरे पास लोग आते हैं। कहते हैं जब से ध्यान शुरू किया, तब से मन में बड़ी अशांति मालूम पड़ती है। मैं कहता हूँ, ध्यान से अशांति नहीं हो सकती। अगर ध्यान से अशांति होगी, तो शांति किससे होगी ? मैं जानता हूं, अशांति मालूम पड़ती है ज्यादा ध्यान करने पर। क्योंकि जो अशांति आपने कभी नहीं देखी है अपने भीतर, वह ध्यान के साथ दिखायी पड़नी शुरू होती है। दिखाती नहीं थी इसलिए आप सोचते थे, है ही नहीं। जब दिखती है तब पता चलता है कि है। इसलिए ध्यान का पहला अनुभव अशांति के बढ़ने का अनुभव है। जैसे-जसे ध्यान बढ़ता है अशांति पूरी प्रकट होती है। एक घड़ी आयेगी कि भय लगेगा कि मैं पागल तो नहीं हो जाऊँगा। लेकिन अगर उस घड़ी को पारकर गये, तो अशांति समाप्त हो जायेगी। अगर आपने उस घड़ी को पार नहीं किया, तो आप अपनी अशांति की दुनिया में फिर वापस लौट आयेंगे।

(२२) दुख को तू स्वीकार वन्दे !

एक आदमी सोया हुआ है। उसे पता नहीं चलता कि पैर में दर्द है। जागता है, तो पता चलता है। लेकिन जागने से दर्द नहीं होता, जागने से पता चलता है। महावीर जानते हैं कि काया-क्लेश बढ़ेगा। जैसे ही कोई व्यक्ति साधना में उतरेगा, उसकी काया उसको और ज्यादा दुख देती हुई मालूम पड़ेगी। क्योंकि सुख तो देना बंद हो जायेगा। वैसे सुख उसने कभी दिया ही नहीं था। उसने सोचा था कि देगी। यह जो हमारा भ्रम था, हमारा ख्याल था। वह परदा तो उठ जायेगा और दुख ही दुख दिखायी पड़ेगा। उस दुख को देखकर लौट मत जाना। महावीर कहते हैं कि इस काया-क्लेश को सहना। यह काया को क्लेश देना नहीं है, काया के दुख दिखायी पड़ने शुरू होंगे। उसकी बीमारियाँ दिखायी देंगी, तनाव दिखायी पड़ेगा, असुविधाएँ दिखायी पड़ेगी, रुग्णता-बुढ़ापा आयेगा, मौत आयेगी, यह सब दिखायी पड़ेगा। जन्म

से मृत्यु तक दुख की एक लम्बी यात्रा दिखायी पड़ेगी। घबरा मत जाना। उस काया-क्लेश को सहना। उसे देखना। उसमें राजी रहना। भागना मत। तो काया-क्लेश का यह अर्थ नहीं है कि दुख देना। काया-क्लेश का अर्थ है दुख आयेगा, दुख प्रतीत होगा, दुख अनुभव में उतरेगा। उससे तुम बचाव मत करना। स्वीकार करना।

(२३) काया महापीड़क हम जानी

महावीर यह नहीं कह रहे हैं कि तुम सताना। महावीर कह रहे हैं सताने की जरूरत नहीं है। काया खुद ही इतना सताती है कि अब तुम और क्या सताओगे? काया के अपने ही दुख इतने पर्याप्त हैं, अब और दुख ईजाद करने की जरूरत नहीं। लेकिन काया के दुख पता न चलें, इसलिए हम सुख ईजाद करते हैं, सुख का आयोजन करते हैं। आज नहीं मिला, कल मिलेगा, परसों मिलेगा। इस तरह कल पर टालते जाते हैं, स्थगित करते जाते हैं। आज का दुख भुलाने के लिए कल का दुख निर्मित करते रहते हैं। आज पर परदा पड़ जाये, इसलिए कल की तस्वीर बनाये रहते हैं। इसलिए कोई आदमी आज में नहीं जीना चाहता। आज बड़ा दुखद है। सब कल पर डालते रहते हैं।

(२४) जब कल टूटने लगता है

महावीर जानते हैं कि जैसे ही साधना में भीतर प्रवेश होगा, कल टूटने लगेगा, आज में जीना होगा। और सारे दुख प्रगाढ़ होकर चुभेंगे। सब तरफ से दुख खड़े हो जायेंगे। सब तरफ बुढ़ापा और मौत दिखायी पड़ेगी। कहीं सुख का कोई सहारा नहीं रहेगा। जो कागज की नाव आप सोचते थे पार कर देगी, वह टूट जायेगी। जो आप सोचते थे सहारा है, वह खो जायेगा। जिन भ्रमों के आसरे आप जीते थे, वे मिट जायेंगे। जब बिलकुल भ्रम-शून्य, आप सागर में खड़े डूबते रहेंगे, न नाव होगी, न सहारा होगा और न किनारा दिखायी पड़ता होगा, तब बड़ा क्लेश होगा। उस क्लेश को सहना। उस क्लेश को स्वीकार करना। जानना कि वह जीवन की नियति है। जानना कि वह प्रकृति का स्वभाव है। काया-क्लेश का अर्थ है कि जो भी आये, उसे स्वीकार करना। उससे बचने की कोशिश मत करना। उससे बचने की कोशिश भविष्य के स्वप्न में ले जाती है। उसके विपरीत सुख बनाने की चिंता में मत पड़ना।

क्योंकि सुख बनाने की चिंता उसे देखने नहीं देती, जानने नहीं देती, पहचानने नहीं देती। और ध्यान रहे इस जगत् में जिसको मुक्त होना है, दुख से ही मुक्त होना होता है, सुख से मुक्त कोई नहीं हो सकता। सुख है ही नहीं, उससे मुक्त क्या होइएगा ? वह भ्रम है। दुख से मुक्त होना होता है और दुख से मुक्ति दुख की स्वीकृति में छिपी है, एक्सेप्टिविलिटी में छिपी है—टोटल एक्सेप्टिविलिटी में, समग्र स्वीकार में। तो काया-क्लेश का अर्थ है काया दुख है, उसका समग्र स्वीकार। वह स्वीकार इतना हो जाना चाहिए कि आपके मन में यह सवाल न उठे कि काया दुःख है।

(२५) कृपया आप अपेक्षा न करें

दूसरा हिस्सा काया-क्लेश का आपको बताता हूँ। क्योंकि अगर आपको लगता है कि काया दुःख है, उसका मतलब है आपको काया से सुख की आकांक्षा है। अगर मैं मानता हूँ कि मेरा मित्र मुझे दुःख दे रहा है, तो उसका कुल मतलब इतना है कि मैं अभी सोचता हूँ कि मुझे अपने मित्र से कुछ सुख मिलना चाहिए। अगर मैं कहता हूँ कि मेरा शरीर दुःख देता है, तो उसका मतलब यह है कि मेरे अन्दर शरीर से सुख की आकांक्षा कहीं है। काया-क्लेश का अर्थ है कि स्वीकार कर लो दुःख को। इतना स्वीकार कर लो कि तुम्हें क्लेश का बोध भी मिट जाये। क्लेश का बोध उसी दिन मिट जायेगा, जिस दिन पूर्ण स्वीकृति होगी। इसलिए महावीर सब दुःखों के बीच आनन्द से भरे घूमते रहते हैं। वे जब वर्षा में खड़े हैं, या धूप में पड़े हैं या नग्न हैं या बाल उखाड़ रहे हैं या भोजन नहीं कर रहे हैं, तो किसी दुःख में नहीं हैं। उन्हें दुःख का पता ही नहीं है। काया-क्लेश की स्वीकृति इतनी गहन हो गयी है कि दुःख का कोई पता भी नहीं चलता। वे कैसे कहें कि यह दुःख है।

अगर मैं अपेक्षा करता हूँ कि रास्ते से मैं गुजरूँ, तो आप लोग नमस्कार करें। और अगर आप न करें तो दुःख होगा। अगर मैं अपेक्षा ही न कर रहा, तो न करें तो कैसे दुःख होगा ? अगर आप मुझे गाली देते हैं और मुझे दुःख होता है तो इसका मतलब है कि मैंने अपेक्षा की थी कि आप गाली नहीं देंगे। नहीं देते तो मुझे सुख होता। देते हैं, तो मुझे दुःख होता है। लेकिन अगर मेरी कोई अपेक्षा ही नहीं, और आप गाली दें, तो मैं जानूंगा कि यही नियति है। इस क्षण गाली भी पैदा हो सकती थी, वह हो गयी। आपसे गाली

मिल सकती थी, वह मिल गयी। इसमें विपरीत कहीं कोई दूसरी आकांक्षा नहीं हो, तो फिर कोई दु:ख नहीं रह जाता।

(२६) बमों की मार भी स्वीकार : महायुद्ध और काया-क्लेश का सिद्धान्त

काया-क्लेश की साधना शुरू होती है दु:ख के स्वीकार से। पूर्ण होती है दु:ख के विसर्जन से। विसर्जित नहीं हो जाता दु:ख, ध्यान रहे। जब तक जीवन है तब तक तो वह रहेगा; लेकिन जिस दिन स्वीकार पूरा हो जाता है, उस दिन आपके लिए दु:ख नहीं रह जाता। स्वीकार के साथ इतना बड़ा रूपांतरण होता है, इतना बड़ा ट्रांसफॉर्मेशन, जिसका हमें पता ही नहीं। युद्ध के मैदान पर सैनिक जाता है, तो जब तक नहीं जाता, तब तक भयभीत रहता है। बहुत घबड़ाता है। बचाव की कोशिश में लगा रहता है कि किसी तरह बच जाऊं। लेकिन युद्ध के मैदान पर पहुंचता है, बम गिर रहे हैं, गोलियां चल रही हैं। तो एक-दो दिन उसकी नींद खुल-खुल जाती है। सो नहीं पाता। चौंक-चौंक उठता है। पर दो-चार दिन के बाद दंग हो जायेंगे कि वही सैनिक बम गिर रहे हैं, गोलियां चल रही हैं, और वह सो रहा है। वही सैनिक, लाशें पड़ी हैं, भोजन कर रहा है। वही सैनिक, पास से गोलियां सनसनाती हुई निकल जाती हैं, ताश खेल रहा है। क्या हो गया इसमें? एक बार युद्ध की स्थिति स्वीकृति हो गयी। फैक्ट हो गया कि यह ठीक है, यह है और बात खतम हो गयी। दूसरे महायुद्ध में लंदन पर बमबारी चलती थी। चिंतित थे लोग कि क्या होगा? लेकिन दो-चार दिन के बाद बमबारी चलती रही, स्त्रियां बाजार में सामान खरीदने निकलने लगीं। बच्चे स्कूल पढ़ने जाने लगे। स्वीकृत हो गयी बमबारी, एक तथ्य हो गयी। ऐसा नहीं कि युद्ध में पास में जो लाश पड़ी होती है, वह लाश नहीं होती। और ऐसा भी नहीं है कि वह आदमी कठोर हो गया है। वह आदमी वही है। लेकिन तथ्य की स्वीकृति सारी स्थिति को बदल देती है। जब तक अस्वीकार आप करेंगे, तब तक तथ्य आपको सतायेगा। जिस दिन स्वीकार कर लेंगे, बस बात समाप्त हो गयी। अगर ऐसा मैंने जान लिया कि शरीर के साथ मौत अनिवार्य है, तो मौत का दुख नष्ट हो गया।

काया-क्लेश की साधना, दु:ख की स्वीकृति से दु:ख से मुक्ति का उपाय है। लेकिन काया को कष्ट देने की कोशिश काया-क्लेश की साधना

नहीं, क्योंकि जो आदमी काया को दुख देने में लगा है, वह आदमी फिर किसी सुख की आकांक्षा में पड़ा। प्रयत्न हम सुख के लिए ही करते हैं। जब तक हम कोई सुख के लिए प्रयत्न करते हैं, तब तक हम सुख की ही आकांक्षा से करते हैं। एक आदमी अपने शरीर को भी सता सकता है सिर्फ इस आशा में कि मोक्ष मिलेगा, आनंद मिलेगा, आत्मा मिलेगी, परमात्मा मिलेगा। तो सुख की आकांक्षा जारी है। महावीर की काया-क्लेश की धारणा किसी सुख के लिए शरीर को दुख देने के लिए नहीं है। परंपरागत व्याख्या में लोग यह अर्थ लगाते हैं कि जैसे आदमी धन कमाने के लिए दुख उठाता है, ऐसे ही मोक्ष पाने के लिए उठाना पड़ेगा। लेकिन यह गलत है। जैसे कोई आदमी व्यायाम करता है तो शरीर को कष्ट देता है, ताकि स्वास्थ्य ठीक हो जाये। ऐसे ही काया-क्लेश करना पड़ेगा। काया तो क्लेश ही है। अब और क्लेश आप उसमें जोड़ नहीं सकते। आपके हाथ के बाहर है क्लेश जोड़ना। अगर आपके हाथ के भीतर हो क्लेश जोड़ना, तब तो क्लेश कम करना भी आपके हाथ के भीतर हो जायेगा। इसे जरा समझ लें। अगर आपके शरीर में दुख जुड़ सकते हैं तो घट क्यों नहीं सकते? अगर दुख जुड़ सकते हैं, तो दुख घट भी सकते हैं। जहां जोड़ हो सकता है, वहां घटाना भी हो सकता है। इसलिए तथाकथित धार्मिक आदमी में, जो शरीर को दुख दे रहा है, और भोगी में जो शरीर से दुख कम करने में लगा है, कोई भेद नहीं है। इनके गणित में फर्क नहीं है। इनके गणित का हिसाब एक ही है। महावीर कहते हैं कि न तुम जोड़ सकते हो, न तुम घटा सकते हो। जो है, उसे चाहो तो स्वीकार कर लो, चाहो तो अस्वीकार कर लो। इतना तुम कर सकते हो। जो विकल्प है, वह स्वीकार और अस्वीकार में है, घटाने और बढ़ाने में नहीं है। ध्यान रहे, स्वीकार कर लोगे तो दुख शून्य हो जायेगा। अस्वीकार कर दोगे, तो जितना दुख अस्वीकार करोगे, उतने गुना ज्यादा हो जायेगा। इस तरह काया-क्लेश का अर्थ है—पूर्ण स्वीकृति, जो है उसकी वैसी ही स्वीकृति।

(२७) कीलों के ठोंकने का महावीर–गणित

महावीर के कानों में जिस दिन कीले ठोंके गये तो कथा कहती है कि इंद्र ने आकर महावीर से कहा कि आप मुझे आज्ञा दें। हमें इससे बड़ी पीड़ा होती

है। आप जैसे निष्ठावान् व्यक्ति के कानों में लोग कीलें ठोंक दें, सतायें, परेशान करें, तो हमें बहुत पीड़ा होती है।

महावीर ने कहा, मेरे शरीर में ठोंके जाने से तुम्हें इतनी पीड़ा होती है तो तुम्हारे शरीर में ठोंके जाने से तुम्हें कितनी न होगी ?

इंद्र ने कुछ भी न समझा। उसने कहा, निश्चित ही होती है। तो मैं आपकी रक्षा करने आ:जाऊं ?

महावीर ने कहा, तुम भरोसा देते हो कि तुम्हारी रक्षा से मेरे दुख कम हो जायेंगे ?

इंद्र ने कहा, कोशिश कर सकता हूं। कम होंगे कि नहीं, मैं नहीं कह सकता।

महावीर ने कहा, मैंने भी जन्मों-जन्मों तक कोशिश करके देखा, कम नहीं हुआ। अब मैंने कोशिश छोड़ दी। अब मैं इतनी भी कोशिश नहीं करूंगा कि तुमको अपनी रक्षा के लिए रखूं। नहीं, तुम जाओ। तुम्हारी भी भूल वही है, जो कान में कील ठोंकने वाले की भूल थी। वह सोचता था कि कीलें ठोंककर वह मेरे दुख बढ़ा देगा, तुम सोचते हो मेरे साथ रहकर मेरे दुख घटा दोगे। गणित तुम्हारा दोनों का एक है। मुझे छोड़ दो। जो है, मुझे स्वीकार है। उसने कीले जरूर ठोंके, पर मुझ तक नहीं पहुंचे उसके कीले। मैं बहुत दूर खड़ा हूं। मैंने स्वीकार कर लिया। जैसे ही किसी ने स्वीकार किया, वह उसके ऊपर हो जाता है। जिस स्थिति को आप स्वीकार करते हैं, आप उसके ऊपर हो जाते हैं। तत्क्षण ऊपर हो जाते हैं। काया-क्लेश का यही अर्थ है।

महावीर का छठा बाह्य तप है: संलीनता। हम उस पर कल बात करेंगे।

***

तेरहवाँ प्रवचन

पर्युषण व्याख्यान-माला, बंबई, दिनांक, ३० अगस्त, १९७१

अन्तर्-तप का प्रवेश द्वार : संलीनता

धम्मो मंगलमुक्किट्ठम्, अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसन्ति, जस्स धम्मे सया मणो ॥१॥

अर्थ—

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है । (कौन-सा धर्म ?) अहिंसा, संयम और तप-रूप धर्म । जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं ।

बाह्य-तप का अंतिम सूत्र है संलीनता। संलीनता सेतु है बाह्य-तप और अंतर्-तप के बीच। संलीनता के बिना कोई बाह्य-तप से अंतर्-तप की सीमा में प्रवेश नहीं कर सकता। इसलिए संलीनता को बहुत ध्यानपूर्वक समझ लेना जरूरी है। संलीनता सीमांत है। वहां से बाह्य-तप समाप्त होते और अंतर्-तप शुरू होते हैं। संलीनता का अर्थ और संलीनता का प्रयोग बहुत अद्भुत है। परम्परा तो इतना ही कहती है कि अपने शरीर के अंगों को व्यर्थ संचालित न करना संलीनता है। कारण शरीर न हिले-डुले, संयत हो, तो संलीनता है। लेकिन बात इतनी ही नहीं है, बल्कि यह तो कुछ भी नहीं है। यह तो संलीनता की बाहर की रूप-रेखा को भी स्पर्श करना नहीं है। संलीनता के अर्थ गहरे हैं। तीन हिस्सों में हम इसे समझें। पहला तो यह कि आपके शरीर में, आपके मन में, आपके प्राण में कोई भी हलन-चलन नहीं होती है, जब तक आपकी चेतना न कंपे। अंगुली भी हिलती है तो भीतर आत्मा में कंपन पैदा होता है। दिखायी तो अंगुली पड़ती है कि हिली, लेकिन कंपन भीतर से आता है। सूक्ष्म से आता है और स्थूल तक फैल जाता है। इतना ही सवाल नहीं है कि अंगुली न हिले, क्योंकि यह हो सकता है कि अंगुली न हिले। लेकिन भीतर कंपन हो। आखिर कोई अपने शरीर को संलीन करके बैठ भी तो जा सकता है, योगासन लगा कर बैठ जा सकता है, अभ्यास कर ले सकता है कि शरीर पर कोई भी कंपन दिखायी न पड़े और भीतर तूफान चले, ज्वालामुखी का लावा उबलता रहे और आग धधकती रहे।

(१) भावों के साथ बदलता हुआ चेहरा

संलीनता वस्तुतः तो तब घटित होती है, जब भीतर सब इतना शांत हो जाता है कि भीतर से कोई तरंग नहीं आती, जो शरीर पर कंपन बने, लहर

बाह्य-तप का अंतिम सूत्र है संलीनता। संलीनता सेतु है बाह्य-तप और अंतर्-तप के बीच। संलीनता के बिना कोई बाह्य-तप से अंतर्-तप की सीमा में प्रवेश नहीं कर सकता। इसलिए संलीनता को बहुत ध्यानपूर्वक समझ लेना जरूरी है। संलीनता सीमांत है। वहां से बाह्य-तप समाप्त होते और अंतर्-तप शुरू होते हैं। संलीनता का अर्थ और संलीनता का प्रयोग बहुत अद्भुत है। परम्परा तो इतना ही कहती है कि अपने शरीर के अंगों को व्यर्थ संचालित न करना संलीनता है। कारण शरीर न हिले-डुले, संयत हो, तो संलीनता है। लेकिन बात इतनी ही नहीं है, बल्कि यह तो कुछ भी नहीं है। यह तो संलीनता की बाहर की रूप-रेखा को भी स्पर्श करना नहीं है। संलीनता के अर्थ गहरे हैं। तीन हिस्सों में हम इसे समझें। पहला तो यह कि आपके शरीर में, आपके मन में, आपके प्राण में कोई भी हलन-चलन नहीं होती है, जब तक आपकी चेतना न कंपे। अंगुली भी हिलती है तो भीतर आत्मा में कंपन पैदा होता है। दिखायी तो अंगुली पड़ती है कि हिली, लेकिन कंपन भीतर से आता है। सूक्ष्म से आता है और स्थूल तक फैल जाता है। इतना ही सवाल नहीं है कि अंगुली न हिले, क्योंकि यह हो सकता है कि अंगुली न हिले। लेकिन भीतर कंपन हो। आखिर कोई अपने शरीर को संलीन करके बैठ भी तो जा सकता है, योगासन लगा कर बैठ जा सकता है, अभ्यास कर ले सकता है कि शरीर पर कोई भी कंपन दिखायी न पड़े और भीतर तूफान चले, ज्वालामुखी का लावा उबलता रहे और आग धधकती रहे।

(१) भावों के साथ बदलता हुआ चेहरा

संलीनता वस्तुतः तो तब घटित होती है, जब भीतर सब इतना शांत हो जाता है कि भीतर से कोई तरंग नहीं आती, जो शरीर पर कंपन बने, लहर

बने, पर हमें शरीर से ही शुरू करना पड़ेगा, क्योंकि हम शरीर पर ही खड़े हैं। तो संलीनता के अभ्यास में जिसको उतरना हो, उसे पहले तो अपनी शरीर की गतिविधियों का निरीक्षण करना होता है। यह पहला हिस्सा है। क्या कभी आपने ख्याल किया है जब आप क्रोध में होते हैं तो और ढंग से चलते हैं। जब आप क्रोध में होते हैं तो आपके चेहरे की रेखाएँ और हो जाती हैं। आपकी आंख पर अलग रंग फैल जाते हैं। आपकी दांतों में कोई गति हो जाती है। आपकी अंगुलियाँ किसी भार से, किसी शक्ति से भर जाती हैं। आपके समस्त स्नायुमंडल में परिवर्तन हो जाता है। जब आप उदास होते हैं, तब आप और ढंग से चलते हैं। आपके पैर भारी होते हैं। उठाने का मन भी नहीं होता है। कहीं जाने का भी मन नहीं होता। आपके प्राण पर जैसे पत्थर रख दिया गया हो। आपकी सारी इंद्रियाँ ऐसे पत्थर से दब जाती हैं। जब आप उदास होते हैं तब आपके चेहरे का रंग बदल जाता है, रेखाएँ बदल जाती हैं। जब आप प्रेम में होते हैं तब, जब आप शांत होते हैं तब, तब ये सब फर्क पड़ते हैं, लेकिन आपने निरीक्षण न किया होगा। संलीनता का अर्थ समझना हो तो जब आप क्रोध में हों तो भागें और दर्पण के सामने पहुंच जायें और देख कि चेहरे में कैसी स्थिति है। क्योंकि आपका क्रोध से भरा चेहरा दूसरों ने देखा है, आपने नहीं देखा। देखें कि आपका चेहरा कैसा है। जब आप उदास हों तो आईने के सामने पहुंचे और देखें कि आँखें कैसी हैं। ख्याल करें कि पैर कैसे पड़ते हैं, शरीर झुका हुआ है या उठा हुआ है।

(२) हमले से पहले हिटलर

हिटलर एक मनस्विद् को फ्रांस पर हमला करने के पहले फ्रांस ले गया था और पूछा था, जरा फ्रांस की सड़कों पर देखो कि युवक कैसे चलते हैं? उनकी रीढ़ सीधी है या झुकी हुई? उस मनस्विद् ने खबर दी की फ्रांस में लोग झुके-झुके चलते हैं। हिटलर ने कहा, फिर उनको जीतने में कोई कठिनाई न पड़ेगी। हिटलर का सैनिक देखा है आपने? उस समय पूरा जर्मनी रीढ़ सीधी करके चल रहा था। जब कोई आशा से भरा होता है तो रीढ़ सीधी हो जाती है। जब कोई निराशा से भरा होता है, तो रीढ़ झुक जाती है। बुढ़ापे में सिर्फ रीढ़ इसलिए नहीं झुक जाती कि शरीर कमजोर हो जाता है। इससे भी ज्यादा इसलिए झुक जाती है कि जीवन-निराशा उसे झुका देती है। मौत सामने दिखायी देती है। भविष्य नहीं रह जाता। महावीर जैसे व्यक्ति

की रीढ़ बुढ़ापे में नहीं झुकेगी क्योंकि बुढापे का असली सवाल मौत वहाँ नहीं है, मोक्ष का द्वार है, परम आनन्द है। इसलिए रीढ़ नहीं झुकेगी।

आप भी जब स्वस्थ चित्त, प्रसन्न चित्त होते हैं तो और ढ़ंग से खड़े होते हैं। मैं बोल रहा हूं और आपको उसमें कोई रस नहीं आ रहा है तो आप कुर्सी से टिक जाते हैं। जब आपको कोई रस फिर आने लगता है तो आपकी रीढ़ कुर्सी छोड़ देती है और सीधी हो जाती है। अगर कोई बहुत संवेदनशील हिस्सा आ गया है फिल्म में देखते समय, कोई बहुत थ्रिलिंग, कंपा देनेवाला हिस्सा, तो आपकी रीढ़ सीधी ही नहीं होती, आगे झुक जाती है, सांस रुक जाती है। आपके चित में पड़े हुए छोटे-छोटे परिवर्तनों की लहरें आपके शरीर की परिधि तक फैल जाती हैं। ज्योतिषि या हस्तरेखाविद् या मुख-आकृति को पढ़नेवाले लोग नब्बे प्रतिशत तो आप पर ही निर्भर होते हैं। आप कैसे उठते, कैसे चलते, कैसे बैठते हैं और आपके चेहरे पर क्या भाव है, आपको भी पता नहीं होता है। वे सब आपकी बाबत बहुत-सी खबरें दे जाते हैं। आदमी एक किताब है। उसे पढ़ा जा सकता है। और जिसे साधना में उतरना हो, उसे खुद अपनी किताब पढ़नी पड़ती है। सबसे पहले आपको पहचान लेना होगा कि मैं किस तरह का आदमी हूं। तो जब क्रोध में हों, आईने के सामने खड़े हो जायें और देखें, कैसा है चेहरा? क्या है रंग? आँख पर कैसी रेखाएँ फैल गयीं? जब शान्त हो मन, प्रसन्न हो, तब भी आईने के सामने खड़े हो जायें और तब आप अपनी बहुत-सी तस्वीरें देखने में समर्थ हो जायेंगे, एक मजेदार घटना घटेगी। वह संलीनता के प्रयोग का दूसरा हिस्सा है। जब आप आईने के सामने खड़े होकर अपने क्रोधित चित्त का अध्ययन कर रहे होंगे, तब आप अचानक पायेंगे कि क्रोध खिसकता चला गया, शान्त होता चला गया। क्योंकि जो क्रोध का अध्ययन करने में लग गया उसका क्रोध से सम्बन्ध टूट जाता है, अध्ययन से जुड़ जाता है। उसकी चेतना का तादात्म्य क्रोध से टूट गया, अध्ययन करने से जुड़ गया। और जिससे हमारा सम्बन्ध टूट गया वह वृत्ति तत्काल क्षीण हो जाती है।

(३) क्रोध और शांति आईने के सामने

तो आईने के सामने खड़े होकर एक और रहस्य का आपको पता चलेगा कि अगर आप क्रोध का निरीक्षण करेंगे तो क्रोध जिंदा नहीं रह सकता,

तत्काल विलीन हो जाता है। और भी एक मजेदार अनुभव होगा कि जब आप बहुत शांत हों और जीवन एक आनंद के फूल की तरह मालूम हो रहा हो, कभी सूरज निकला हो सुबह का, और उसे देखकर मन प्रफुल्लित हुआ हो या रात चांद-तारे देखे हों और उनकी छाया और उनकी शांति मन में प्रवेश कर गयी हो या एक फूल को खिलते देखा हो और उसके भीतर की बंद शांति आपके प्राणों तक बिखर गयी हो तब आईने के सामने खड़े हो जायें। आपको तब एक और अनुभव होगा। और वह यह अनुभव होगा कि जब कोई शांति का निरीक्षण करता है तो (क्रोध तो निरीक्षण करने से विलीन हो जाता है) शांति निरीक्षण करने से बढ़ जाती है, और गहरी हो जाती है। क्रोध इसलिए विलीन हो जाता है कि आपका क्रोध से संबंध टूट जाता है। क्रोध से संबंधित होने के लिए बेचैन होना जरूरी है, परेशान होना जरूरी है, उद्विग्न होना जरूरी है। अध्ययन के लिए शांत होना जरूरी है। निरीक्षण के लिए मौन होना जरूरी है, तटस्थ होना जरूरी है। शांति के आप जितने ही निरीक्षक बनते हैं, शांति उतनी ही और गहरी हो जाती है। सच तो यह है कि निरीक्षण करने से जो गहरा हो जाये, वही वास्तविक जीवन है। निरीक्षण करने से जो गिर जाये, वह धोखा था। या ऐसा कहें कि निरीक्षण करने से जो बचा रहे, वही पुण्य है और निरीक्षण करने से जो तत्काल विलीन हो जाये, वही पाप है। संलीनता का पहला प्रयोग है राइट आब्जर्वेशन—सम्यक् निरीक्षण। आप बहुत हैरान होंगे कि आप कितनी तस्वीरें हैं एक साथ!

(४) आपके भीतर एक मन नहीं है

महावीर ने पृथ्वी पर पहली दफे एक शब्द का प्रयोग किया है, जो पश्चिम में अपूर्व ढंग से पुनर्जीवित हो गया है। महावीर ने पहली दफे इस शब्द का प्रयोग किया है—बहुचित्तता। पहली बार। आज पश्चिम में इस शब्द का बड़ा मूल्य है। उनको पता भी नहीं कि महावीर ने पच्चीस सौ साल पहले इस शब्द का प्रयोग किया था—पोली-साइकिक। पश्चिम में आज इस शब्द का बड़ा मूल्य है क्योंकि जैसे ही पश्चिम मन को समझने गया, उसने कहा, सब मन मोनोसाइकिक नहीं हैं। एक मन नहीं है आदमी के भीतर। अनंत मन हैं, पोली-साइकिक हैं, बहुत से मन हैं। महावीर ने ढाई हजार साल पहले कहा था कि आदमी बहु-चित्तवान् है, एक चित्त नहीं है, जैसा कि हम सोचते हैं। हम जैसे कहते हैं—मेरा मन, तो हमें कहना चाहिए 'मेरे मन'। 'माई माइंड' नहीं,

माइ माइंड्स। अगर आपके पास एक ही मन हो तो जीवन और हो जाये। बहुत मन हैं और ये मन भी ऐसे हैं कि जो आपस में बहुत विरोधी भी हैं, ये एक-दूसरे के दुश्मन भी हैं। इसीलिए आप सुबह कुछ, दोपहर कुछ, शाम कुछ हो जाते हैं। आपको खुद ही समझ में नहीं आता कि यह क्या हो रहा है। जब आप प्रेम में होते हैं तो आप दूसरे ही आदमी होते हैं और जब आप ध्यान में होते हैं, तब आप दूसरे ही आदमी होते हैं। इन दोनों के बीच कोई संगति ही नहीं होती, कोई संबंध ही नहीं होता। जिसने आपको घृणा में देखा है, वह अगर आपको प्रेम में देखे तो वह भरोसा न कर पायेगा कि आप वही आदमी हैं। आपके चेहरे की सब रूपरेखा, आपके चेहरे का रंग बदल जायेगा, आपके शरीर का ढंग, आपका आभामंडल, आपका सब बदल जायेगा।

(५) जो अशांति अनजाने रिलीज होती है

इसलिए पहले तो निरीक्षण करें, ठीक से पहचानें कि आपके पास कितने चित्त हैं और प्रत्येक चित्त की आपके शरीर पर क्या प्रतिक्रिया है? आपका शरीर प्रत्येक चित्त-दशा के साथ कैसा बदलता है? जब आप शांत होते हैं, तो शरीर को हिलाने को भी मन नहीं होता। सांस भी जोर से नहीं चलती। खून की रफ्तार भी कम हो जाती है, हृदय की धड़कनें भी शांत हो जाती हैं। जब आप अशांत होते हैं तो अकारण शरीर में गति होती है। अशांत आदमी कुर्सी पर बैठा होता है तो उसका पैर हिला करता है। कोई उससे पूछे कि क्या कर रहे हो? क्या कुर्सी पर बैठकर चलने की कोशिश कर रहे हो? आदमी थोड़ी देर बैठा रहे तो करवट बदलता रहता है बैठे-बैठे। क्या हो रहा है उसके भीतर? उसका चित्त भीतर से इतना बेचैन है कि वह बेचैनी को शरीर से रिलीज़ कर रहा है। अगर रिलीज़ न करे तो पागल हो जायेगा। रिलीज़ करनी पड़ेगी। वह शाम को घंटे भर खेल के मैदान में दौड़ लेता है। खेल लेता है, घंटे भर घूम आता है और फिर आता है तो ठीक हो जाता है, नहीं तो वह बैठे-बैठे, लेटे-लेटे अपने शरीर को गति देगा। और वहां से शक्ति को मुक्त करेगा। लेकिन यह शक्ति व्यर्थ हो रही है। संलीनता शक्ति-संग्रह है, शक्ति-संचयन है। हम अगर संलीनता में नहीं जीते तो अपनी शक्ति को ऐसे ही लुटाये चले जाते हैं। ऐसे ही, व्यर्थ ही, जिसका कोई परिणाम नहीं होनेवाला है, जिससे कुछ उपलब्ध होनेवाला नहीं, जिससे कहीं पहुंचेंगे नहीं। कुर्सी पर बैठे पैर हिलाते रहेंगे। किसी मंजिल के लिए यात्रा नहीं होती। इतनी शक्ति से कहीं

पहुंचा जा सकता था। कुछ पाया जा सकता था। हमें पता नहीं कि चौबीस घण्टे हम अपनी शक्ति को अपने से बाहर फेंक रहे हैं। लेकिन इसका अध्ययन करना पड़ेगा, पहले स्वयं को पहचानना पड़ेगा। आपकी जिन्दगी की किताब जब आपके सामने खुलनी शुरू होगी, तो आप हैरान होंगे कि कोई रहस्यपूर्ण से रहस्यपूर्ण उपन्यास भी इतना रहस्यपूर्ण नहीं, और अनूठी से अनूठी कथा भी इतनी इतनी अनूठी और अजनबी नहीं, जितने आप हैं।

और ऐसा ही नहीं कि क्रोध और अक्रोध में आप अलग स्थिति पायेंगे। आप पायेंगे कि क्रोध के भी स्टेप्स हैं, क्रोध में भी बहुत ढंग हैं। कभी आप एक ढंग से क्रोधित होते हैं, कभी दूसरे ढंग से क्रोधित होते हैं, कभी तीसरे ढंग से क्रोधित होते हैं। और तीनों ढंग के क्रोध में आपकी आकृति अलग-अलग होती है। और जब यह फर्क आप अपने में देखेंगे, तो चकित हो जायेंगे कि कितना कुछ आपके भीतर छिपा है। निरीक्षण पहला प्रयोग है। आप पहचान पायेंगे कि आपके भीतर क्या हो रहा है। आप जो शक्ति के पुन्ज हैं, वह शक्ति का आप क्या उपयोग कर रहे हैं।

(६) आपका चेहरा : आईने के रूबरू क्रोध से कशमकश

दूसरी बात। जैसे ही आप समर्थ हो जायें कि आप क्रोध को देख पायें, वैसे ही आप आईने के सामने पायेंगे कि अपने आप क्रोध शान्त होगा। वहां आप एक दूसरा प्रयोग जोड़ें। वह दूसरा प्रयोग संलीनता का है। जब चित्त क्रोध से भरा हो तब आप आईने के सामने खड़े हो जायें। लम्बे निरीक्षण के बाद यह हो सकेगा। आईने के सामने खड़े हो जायें और अपनी तरफ से शरीर के अंगों को वैसा करने की कोशिश करें, जैसे वे शान्त होते हैं। आपको भली-भांति याद है कि शान्ति में चेहरा कैसा होता है। अब क्रोध की स्थिति है। चेहरा क्रोध की धारा में बह रहा है। आप आईने के सामने खड़े होकर उस चेहरे को याद करें, जो शान्ति में होता है और चेहरे को शान्ति की तरफ ले जाने लगें। बहुत शीघ्र थोड़े ही दिनों में आप हैरान होंगे कि आप चेहरे को शान्ति की तरफ ले जाने में समर्थ हो गये हैं। सारी अभिनय की कला, सारी ऐक्टिंग इसी अभ्यास पर निर्भर करती है। जन्मजात किसीको यह प्रतिभा होती है, तो वह अभिनय में कुशल मालूम पड़ता है

लेकिन यह प्रतिमा विकसित की जा सकती है और इतनी विकसित की जा सकती है कि जिसका कोई हिसाब लगाना बड़ा कठिन है। क्रोध भीतर रहे और आप आईने के सामने खड़े होकर चेहरे पर शान्ति की धारा बहा रहे हैं। थोड़े ही दिनों में आप समर्थ हो जायेंगे और तब आप एक और नया अनुभव कर पायेंगे और वह यह होगा कि क्रोध मन में दौड़ता हो, तब भी शांति शरीर में दौड़ सकती है। और जब आप इन दोनों में समर्थ हो जाते हैं तो आप तीसरे हो जाते हैं। न तो आप क्रोध रह जाते हैं, न आप मन रह जाते और न शरीर रह जाते हैं। क्योंकि मन क्रोध में होता है तो क्रोध से जल रहा होता, लेकिन शरीर पर आपने शान्ति की धारा बहा दी है, इसलिए वह शान्त आकृति से भर गया है। निश्चित ही आप दोनों से अलग और पृथक हो गये हैं। न तो अब आप अपने को आइडेंटिफाइ कर सकते हैं क्रोध से, न शान्ति से। दोनों तादात्म्य नहीं कर सकते। आप दोनों को देखने वाले हो गये। और जिस दिन आप एक साथ दो पदा कर लेते हैं, उस दिन आपको पहली दफा एक मुक्ति अनुभव होती है। आप दोनों के बाहर हो जाते हैं। एक के साथ तादात्म्य आसान है, दो के साथ तादात्म्य आसान नहीं है। एक के साथ जुड़ जाना आसान है, दो विपरीत से साथ ही जुड़ जाना बहुत कठिन है। बल्कि असम्भव है। हाँ, अलग-अलग समय में हो सकता है कि आप सुबह क्रोध के साथ जुड़ें तो दोपहर आप शान्ति के साथ जुड़ें। यह हो सकता है अलग-अलग कोने में। लेकिन आप साइमल्टेनियसली, एक साथ क्रोध और शान्ति से जुड़ नहीं सकते। जोड़ मुश्किल हो जायेगा, कैसे जी सकेंगे ?

(७) मौत से पहले मुल्ला की नसीहत

मुल्ला नसरुद्दीन मर रहा है। आखिरी क्षण उसके करीब है। वह अपने बेटे को बुलाकर सलाह देता है। कहता है, मैं जानता हूँ कि मैं कितना भी कहूँ कि तू धूम्रपान मत करना, लेकिन तू करेगा। क्योंकि मेरे पिता ने भी मुझसे कहा था लेकिन मैंने किया। इसलिए यह सलाह मैं तुझे नहीं दूंगा। मैं समझाना चाहता हूँ तुझे, अनुभव पहले कह देना चाहता हूँ कि शराब न छूना। लेकिन मेरे पिता ने भी मुझे समझाया था और फिर भी मैंने शराब पी। और मैं-जानता हूँ कि तू कितना भी कहे कि मैं शराब नहीं पियूंगा, लेकिन तू शराब पियेगा। मैं कितना भी कहूँ कि स्त्रियों के पीछे मत दौड़ना, मत भागना, लेकिन यह हो नहीं सकता। मैं खुद ही भागता रहा हूँ। लेकिन

एक बात ख्याल में रखना। एक स्त्री के पीछे एक ही समय में भागना। दो स्त्रियों के पीछे एक साथ मत भागना। इतनी मेरी सलाह मानना। वन एट ए टाइम, एक स्त्री के पीछे एक ही समय में भागना। एक ही समय में दो स्त्रियों के पीछे मत भागना। उस लड़के ने पूछा कि क्या यह संभव हो सकता है कि एक समय में दो स्त्रियों के पीछे भाग सकूं। नसरुद्दीन ने कहा कि संभव हो सकता है। मैं अनुभव से कहता हूं, लेकिन एक से ही नरक निर्मित हो जाता है, (इसको उल्टा करके पुरुष भी कहा जा सकता है कि स्त्री को सलाह दी जा रही है। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता) लेकिन दो हो जायें फिर तो नर्क सुनिश्चित है। लेकिन उसके बेटे ने कहा, आप कहते हैं तो मेरा मन होता है कि दो के पीछे दौड़कर देख लूं। नसरुद्दीन ने कहा, यह मैं जानता हूं कि तू सुनेगा नहीं, क्योंकि मैंने भी नहीं सुना था। अच्छा है दौड़कर देख ले। उसका बेटा पूछने लगा, आप अभी ना कहते थे, अब कहते हैं दौड़। नसरुद्दीन ने कहा, दो स्त्रियों के पीछे एक ही समय दौड़ने से जितनी आसानी से स्त्रियों से मुक्ति मिल जाती है, उतनी एक एक के पीछे अलग-अलग दौड़ने से नहीं मिलती। चित्त में भी अगर दो वृत्तियों के पीछे एक साथ आप दौड़ पैदा कर दें, तो आप चित्त की वृत्ति से जितनी आसानी से मुक्त हो जाते हैं, उतनी एक वृत्ति के साथ नहीं हो पाते। एक वृत्ति पूरा घेर लेती है, दो वृत्तियां कॉम्पिटीटिव हो जाती हैं आपस में। आप पर उनका जोर कम हो जाता है, क्योंकि उनका आपस का संघर्ष गहरा हो जाता है। क्रोध कहता है कि मैं पूरे पर हावी हो जाऊं, शांति कहती है कि मैं पूरे पर हावी हो जाऊं। और आपने दोनों एक साथ पैदा कर दिये। वे दोनों आप पर हावी होने की कोशिश छोड़कर एक-दूसरे से संघर्ष में रत हो जाती हैं और जब क्रोध और शांति आपस में लड़ रहे हों, तब आपको दूर खड़े होकर देखना बहुत आसान हो जाता है। संलीनता का दूसरा अभ्यास है—विपरीत वृत्ति को शरीर पर पैदा करना।

(८) यह प्रेम नहीं, ऐक्टिंग है!

इसमें कोई कठिनाई नहीं है। अभिनेता इसे रोज कर रहा है। जिस स्त्री से प्रेम नहीं है, उससे भी वह प्रेम प्रकट कर रहा है। नसरुद्दीन एक दिन नाटक देखने गया था। उसकी पत्नी उसके पास थी। नसरुद्दीन बहुत प्रभावित हुआ, पत्नी भी बहुत प्रभावित हुई। देखा कि वह जो नायक है उस नाटक में

यह इतना प्रेम व्यक्त कर रहा है अपनी प्रेयसी के लिए कि पत्नी ने नसरुद्दीन से कहा—नसरुद्दीन ! इतना प्रेम तुम मेरे प्रति कभी प्रकट नहीं करते। नसरुद्दीन ने कहा कि मैं भी हैरान हूँ। और हैरान इसलिए हूँ कि वह जिसके प्रति इतना प्रेम प्रकट कर रहा है, वह वस्तुतः उसकी पत्नी है बीस साल से। इतना प्रेम किसी और के लिए प्रकट कर रहा होता, तो भी ठीक था। वह उसकी पत्नी है बीस साल से, इसलिए चकित तो मैं भी हूँ। 'ही इज द रियल ऐक्टर।' वास्तविक, प्रमाणित अभिनेता है। क्योंकि जो २० साल से उसकी पत्नी है, उसके लिए इतना प्रेम प्रकट कर रहा है, तब तो गजब का ऐक्टर है !

लेकिन अभ्यास से यह संभव है। शरीर कुछ और प्रकट करने लगता है, मन कुछ और। तब दो धारायें टूट जाती हैं। और ध्यान रहे, राजनीति का ही नियम नहीं है : डिवाइड ऐंड रूल, साधना का भी नियम है। विभाजित करो और मालिक हो जाओ। अगर आप शरीर और मन को विभाजित कर सकते हैं तो आप मालिक हो सकते हैं आसानी से। क्योंकि तब संघर्ष शरीर और मन के बीच खड़ा होता है और आप अछूते अलग खड़े हो जाते हैं। इसलिए संलीनता का दूसरा अभ्यास है मन में कुछ, शरीर में कुछ। आईने के सामने खड़े होकर अभ्यास करें। आईने के सामने इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि आपको आसानी पड़ेगी। एक दफा आसानी हो जाये, फिर तो बिना आईने के भी आप अनुभव कर सकते हैं। जब आपको क्रोध आये फिर धीरे-धीरे आईने को छोड़ दें और उसको अवसर बनायें, और आनन्द को प्रकट करें। और जब घृणा आये तब प्रेम प्रकट करें। और जब किसी का सिर तोड़ देने का मन हो तब उसके गले में फूल माला डाल दें। और अपने भीतर ये दो धाराएं विभाजित देखें। मन को और शरीर को दो हिस्सों में जाने दें। और अचानक ट्रांसेंडेंस, अतिक्रमण में प्रवेश कर जायेंगे। न आप क्षमा रह जायेंगे। न आप प्रेम रह जायेंगे, न घृणा रह जायेंगे। और जैसे ही कोई दोनों के पार होता है तो संलीन हो जाता है।

(९) तल्लीन भी है, संलीन भी है

अब संलीन का अर्थ समझ लें—एक शब्द हम अक्सर सुनते हैं तल्लीन। लेकिन यह संलीन शब्द बहुत कम प्रयोग में आता है। तल्लीनता हमने सुना

है, संलीनता बहुत कम सुना है। और अगर भाषाकोश में जायेंगे तो एक ही अर्थ पायेंगे। लेकिन नहीं, एक ही अर्थ नहीं है। महावीर ने तल्लीनता का उपयोग नहीं किया है। तल्लीनता सदा दूसरे में लीन होना है और संलीनता अपने में लीन होना है। तल्लीनता का अर्थ है जो किसी और में लीन है। चाहे भक्त भगवान् में हो, वह तल्लीन है, संलीन नहीं। जैसे मीरा कृष्ण में। वह तल्लीन है। वह इतनी मिट गयी है कि शून्य हो गयी; कृष्ण ही रह गये। पर वहां कोई और, कोई दूसरा बिन्दु है, जिस पर स्वयं को सब भांति समर्पित कर दिया गया। वह भी एक मार्ग है, उस मार्ग की अपनी विधियां हैं। उस मार्ग से भी पहुंचा जाता है। उससे पहुँचने का रास्ता अलग है। लेकिन महावीर का रास्ता वह नहीं हैं। महावीर तो कहते हैं: तल्लीन तो बिल्कुल मत होना, किसी में भी तल्लीन मत होना। इसलिए महावीर परमात्मा को भी हटा देते हैं। नहीं तो तल्लीन होने की सुविधा बनी रहती।

(१०) परमात्मा निकाल बाहर कर दिया गया

महावीर कहते हैं, संलीन हो जाना, अपने में लीन हो जाना, अपने में इतना लीन हो जाना कि दूसरा बचे ही नहीं। तल्लीन होने का सूत्र है: दूसरे में इतना लीन हो जाना कि स्वयं बचे ही नहीं। संलीन होने का सूत्र है: इतना अपने में लीन हो जाना कि दूसरा बचे ही नहीं। दोनों से एक ही उपलब्धि होती है। एक ही बच रहता है। तल्लीन वाला कहेगा, परमात्मा बच रहता है, संलीन वाला कहेगा आत्मा बच रहती है। वह सिर्फ शब्दों का भेद है। विवाद सिर्फ साहित्यिकों और पंडितों का है। जिन्हें अनुभव भी है वे कहेंगे कि एक ही बच रहता है; लेकिन संलीनतावाला उसे परमात्मा नाम नहीं दे सकता, क्योंकि दूसरे का उपाय नहीं है। तल्लीनतावाला उसे आत्मा नहीं कह सकता, क्योंकि स्वयं को बचाने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन जो बच रहता है, उसे कोई नाम देना पड़ेगा, अन्यथा अभिव्यक्ति असंभव है। इसलिए संलीनतावाला कहता है, आत्मा बच रहती है। तल्लीनतावाला कहता है, परमात्मा बच रहता है। जो बच रहता है, वह एक ही है, यह नामों का फर्क है और यह नामों का फर्क विधियों के कारण है। यह पहुंचने के मार्ग की वजह से नामों का फर्क है। संलीन का अर्थ है अपने में लीन हो जाना। तब कहीं कोई गति नहीं रह जाती। क्योंकि गति तो दूसरे तक जाने के लिए होती है। अपने तक आने के लिए किसी गति की कोई जरूरत नहीं है, वहां तो हम हैं

ही। अपने ही साथ करने की कोई क्रिया नहीं रह जाती। अक्रिया हो जाती है। अगति हो जाती है। अचलता आ जाती है। और जब भीतर यह घटना घटती है तो शरीर पर भी यह भाव फैल जाता है। मन पर भी यह भाव फैल जाता है। अतिक्रमण जब होता है मन और शरीर के पार, तो सब ठहर जाता है। मन ठहर जाता है। शरीर ठहर जाता है। यह महावीर की प्रतिमा संलीनता की प्रतिमा है। जहाँ सब कुछ ठहरा हुआ है। कुछ गति नहीं मालूम पड़ती।

(११) कभी सोचा कि महावीर के हाथों में मसल्स क्यों नहीं हैं?

अगर महावीर के हाथ को देखें तो ऐसा लगता है कि बिल्कुल ठहरा हुआ है। इसलिए महावीर के हाथ में किसी प्रतिमा में कोई मसल्स, रग-पुट्ठे नहीं बनाये गये, क्योंकि मसल्स तो प्रतीक होते हैं क्रिया के। इसलिए किसी जैन तीर्थंकर की बाहों पर कोई मसल्स नहीं हैं। मसल्स तो क्रिया के सूचक हो जाते हैं। शरीर को जिस ढंग से बिठाया है, वह ऐसा है कि फूल बन्द हो जाये। ऐसे जैसे सब पंखुड़ियाँ बन्द हो गयीं। फूल की सुगंध अब बाहर नहीं जाती, अपने भीतर रमती है। महावीर का बहुत प्यारा शब्द है आत्म-रमण, अपने में ही रमना, कहीं नहीं जाना। महावीर के चित्र को देखें, एक फूल की तरह ख्याल करें, तो फौरन महावीर की प्रतिमा में दिखायी पड़ेगा कि सब पंखुड़ियाँ बन्द हो गयी हैं। महावीर अपने भीतर हैं, जैसे फूल के भीतर कोई भँवरा बन्द हो गया हो। ऐसे महावीर की सारी चेतना संलीन हो गयी है अपने में। सब सुगंध भीतर। अब कहीं कुछ बाहर नहीं जा रहा है। बाहर और भीतर के बीच सब लेन-देन बन्द हो गया। कोई हस्तांतरण नहीं होता है। न कुछ बाहर से भीतर आता है, न कुछ भीतर से बाहर जाता है। जब शरीर इतनी स्थिरता में आ जाता है, मन भी स्थिरता में आ जाता है। तो स्वांस भी बाहर-भीतर नहीं होती, ठहर जाती है। इस क्षण महावीर कहते हैं— समाधि उत्पन्न होती है इस संलीन क्षण में अंतर्यात्रा शुरू होती है।

(१२) हम सबके भीतर का यंत्र-मानव

लेकिन संलीनता का अभ्यास करना पड़ेगा। हमारा अभ्यास है बाहर जाने का। भीतर जाने का कोई अभ्यास नहीं है। हम बाहर जाने में इतने

ज्यादा कुशल हैं कि हमें पता ही नहीं चलता कि हम बाहर चले जाते हैं। कुशलता का मतलब ही यही होता है कि पता न चले और काम हो जाये। हम इतने कुशल है बाहर जाने में। एक ड्राइवर है। अगर वह कुशल है तो गपशप करता रहेगा और गाड़ी चलाता रहेगा। कुशलता का मतलब ही यही है कि गाड़ी चलाने पर ध्यान भी न देना पड़े। अगर ध्यान देना पड़े तो अकुशल है। वह रेडियो सुनता रहेगा, गाड़ी चलाता रहेगा। मन में हजार बातें सोचता रहेगा, गाड़ी चलाता रहेगा। गाड़ी चलाना सचेतन क्रिया नहीं है। कॉलीन विल्सन एक पश्चिम के योग्य और विचारशील व्यक्ति हैं। उन्होंने कहा है कि हम जब कुशल हो जाते हैं तो हमारे भीत जो एक रोबोट, जो एक यंत्र-मानव है, (और वह सबके भीतर है) वह काम करने लगता है। कुशलता का अर्थ है कि हमारी चेतना ने वह काम यंत्र-मानव को दे दिया है। फिर हमारी जरूरत नहीं रहती। तो ड्रायवर जब ठीक कुशल हो जाता है, तो उसे कार नहीं चलानी नहीं पड़ती। उसके भीतर जो यंत्र-मानव है, वह कार चलाने लगता है। वह स्वयं तो कभी-कभी बीच में आता है, जब कोई खतरा आ जाता है और रोबोट कुछ नहीं कर पाता। एक्सीडेंट का वक्त आ जाता है तो वह एकदम मौजूद हो जाता है, रोबोट से काम अपने हाथ में ले लेता है। वह जो भीतर यंत्रवत् हमारा मन है, उससे काम झटके से हाथ में लेना पड़ता है। तभी, जब एक्सीडेंट का मौका आ जाये, कोई गड्ढे में गिरने का वक्त आ जाये। अन्यथा वह रोबोट चलाये रखता है। मनोवैज्ञानिकों ने हजारों परीक्षणों से तय किया है कि सभी ड्राइवर रात को अगर बहुत देर तक जागते हुए गाड़ी चलाते रहे हों, तो नींद भी ले लेते हैं क्षण दो क्षण को, और गाड़ी चलाते रहते हैं। इसलिए रात को जो एक्सीडेंट होते हैं, वे कोई दो बजे और चार बजे के बीच होते हैं। ड्राइवर को पता भी नहीं चलता कि उसने झपकी ले ली है। एक सेकंड को वह डूब जाता है लेकिन उतनी देर वह रोबोट काम को सँभालता है।

जितना रोबोट के भीतर प्रवेश कर जाये कोई चीज, उतनी ही कुशल हो जाती है और हम जन्मों-जन्मों से बाहर जाने के आदी हैं। वह हमारे यंत्र में समाविष्ट हो गयी है। बाहर जाना हमारे लिए ऐसा ही है जैसे पानी का नीचे बहना। उसके लिए हमें कुछ करना नहीं पड़ता। भीतर आना बड़ी यात्रा मालूम पड़ेगी। क्योंकि हमारे यंत्र-मानव को कोई पता ही नहीं कि भीतर

कैसे आना है। हम इतने कुशल हो गये हैं बाहर जाने में कि हम भूल ही गये हैं कि भीतर आने की भी कोई बात हो सकती है।

(१३) परत-दर-परत रोबोट का प्रशिक्षण

एक भारतीय और आंग्ल मां का बेटा है आवरीमेनन। उसका पिता सारी जिन्दगी इंग्लैन्ड में रहा। वह कोई बीस वर्ष की उम्र का था, तब इंग्लैन्ड चला गया। वहीं शादी की, वहीं बच्चा पैदा हुआ। लेकिन आवरीमेनन ने लिखा है कि मेरी माँ सदा मेरे पिता की एक आदत से परेशान रही। वह दिन भर अंग्रेजी बोलता था लेकिन रात सपने में मलयालम, सपने में अपनी मातृभाषा ही बोलता था। ६० साल का हो गया तब भी, चालीस साल निरंतर होश में अंग्रेजी में बोलने पर भी। रात सपना तो वह अपनी मातृभाषा में ही देखता था। स्वभावतः स्त्रियाँ परेशान होती हैं क्योंकि पति सपने में भी क्या सोचता है, उसका पता लगाना चाहती हैं। तो आवरीमेनन ने लिखा है कि मेरी माँ सदा चिंतित रहती थी कि पता नहीं वह सपने में क्या बोलता है। कहीं किसी दूसरी स्त्री का नाम तो नहीं लेता मलयालम में? किसी दूसरी स्त्री के लिए उत्सुकता तो नहीं दिखलाता! लेकिन इसका कोई उपाय न था। सच यह है कि हम बचपन में जो भाषा सीख लेते हैं, दूसरी भाषा उतनी गहराई में रोबोट में कभी नहीं पहुँच पाती। क्योंकि उसकी पहली पर्त बन जाती है। दूसरी भाषा अब कितनी ही गहरी जाये, उसकी पर्त दूसरी ही होगी। पहली नहीं हो सकती। उसका कोई उपाय नहीं है। इसलिए मनस्विद् कहते हैं कि जो-जो हम सात साल में सीख लेते हैं, वह हमारी जिन्दगी भर कोई ७५ प्रतिशत हमारा पीछा करता है। उससे छुटकारा नहीं है। वह हमारी पहली पर्त बन जाता है।

(१४) क्रोध में आपका रोबोट काम करता है

इसलिए ७५ साल का बूढ़ा जब क्रोध में आ जाये, तो वह तत्काल सात साल के बच्चे जैसा व्यवहार करने लगता है, क्योंकि रोबोट रिलैक्स कर जाता है। इसलिए क्रोध में आप बचकाना व्यवहार करते हैं। और प्रेम भी वैसा करते हैं, यह भी ध्यान रखना। जब आदमी दूसरे के प्रेम से भर जाते हैं, तो बहुत बचकाना व्यवहार करते हैं। उनकी बात-चीत भी बचकानी हो जाती है। एक दूसरे का नाम भी बचकाने रखते हैं। क्योंकि प्रेम का जो पहला अनुभव है वह

सात साल में सीख लिया गया था, अब उसकी पुनरुक्ति होती है। इसी तरह हमारा बाहर जाने का व्यवहार इतना प्राचीन है, जन्मों-जन्मों का है कि हमें पता ही नहीं चलता कि हम बाहर जा रहे हैं और हम बाहर चले जाते हैं। आप अकेले में बैठे हैं, तो फौरन अखबार खींचकर उठा लेते हैं। असल में आपको पता ही नही चलता, आपका रोबोट, आपका यंत्र-मानव कह रहा होता है खाली हाथ कैसे बैठ सकते हैं! इस अखबार को आप तीन-चार बार पढ़ चुके हैं सुबह से, लेकिन फिर पढ़ रहे हैं। इसका बिना ख्याल किये कि क्या पढ़ रहे हैं। तो वह रोबोट भीतर नहीं ले जाता वह तत्काल बाहर ले जाता है। रेडियो खोलो, बात-चीत करो। कहीं भी बाहर जाओ, किसी दूसरे से संबंधित होओ, क्योंकि रोबोट को एक ही बात का पता है दूसरे से संबंधित होना। उसको अपने से संबंधित होना ज्ञात ही नहीं। तो इसका जरा ध्यान रखना पड़ेगा क्योंकि अति ध्यान रखेंगे तो ही इसके बाहर हो सकेंगे।

रोबोट ट्रेनिंग से चलता है। आपको पता नहीं कि आप अपने रोबोट से कितने काम ले सकते हैं। आपने अगर जैन मुनियों को आवधान करते देखा है तो आप समझते होंगे कि बहुत बड़ी प्रतिभा की बात है। जब कि यह सिर्फ रोबोट की ट्रेनिंग है। आप अपने रोबोट से कितने ही काम ले सकते हैं सिर्फ एक दफा उसको सिखा लें। हम केवल एक ट्रैक से काम करते हैं। टेपरिकार्डर को जानते हैं? टेपरिकार्डर एक ट्रैक का भी हो सकता है, दो ट्रैक का भी हो सकता है, चार ट्रैक का भी हो सकता है। आपके पास चार ट्रैक का टेप-रिकार्डर है। एक ही पट्टी पर चार ट्रैक पर रिकार्ड करता है और आपको पता नहीं हो आप एक ही करते रहें, तो आप जिंदगी भर एक से ही करते रहेंगे। बाकी तीन ट्रैक खाली पड़े रहेंग। आपके मन के रोबोट के हजारों ट्रैक हैं। आप एक ही साथ हजारों ट्रैक पर काम कर सकते हैं। इसका थोड़ा प्रयोग में ख्याल दिला दूं, तो आपको बहुत आसानी हो जायेगी।

(१९) सिंगिल ट्रैक, डबल ट्रैक, मल्टी ट्रैक ट्रेनिंग

थोड़े दिन एक छोटा-सा अभ्यास करके देखें। घड़ी रख लें अपने हाथ की खोल के सामने और उसका जो सेकेंड का कांटा है, उस पर ध्यान रखें। बाकी पूरी घड़ी को भूल जायें, सिर्फ सेकेंड के कांटे को देखें। वह एक मिनट में या साठ सेकेंड में एक चक्कर पूरा करेगा। एक मिनट का अभ्यास करें, कोई

तीन सप्ताह में आपका अभ्यास हो जायेगा कि आपकी घड़ी के और कांटे ख्याल में नहीं आयेंगे, और आंकड़े ख्याल में नहीं आयेंगे। डायल धीरे-धीरे भूल जायेगा। सिर्फ वह सेकेंड का भागता हुआ कांटा आपको याद रह जायेगा। जिस दिन आपको ऐसा अनुभव हो कि मैं एक मिनट तक सेकेंड के कांटे पर ध्यान रख सकता हूं, उस दिन समझें कि आपने बड़ी कुशलता पायी, जिसकी आपको कल्पना भी नहीं हो सकती थी। अब आप दूसरा प्रयोग शुरू करें। ध्यान सेकेंड के कांटे पर रखें और भीतर एक से लेकर साठ तक गिनती बोलें। ध्यान कांटे पर ही रखें और भीतर एक, दो, तीन, चार...साठ तक गिनती बोलें। साठ या जितनी भी हो सके एक मिनट में, सौ हो सके तो सौ बोलें। एकाध सप्ताह में आप इसमें भी कुशल हो जायेंगे, दोनों काम एक साथ डबल ट्रैक पर शुरू हो जायेगा। ध्यान कांटे पर भी रहेगा और संख्या पर भी रहेगा। अब आप तीसरा काम शुरू करें। ध्यान कांटे पर बिठायें, भीतर एक से सौ तक गिनती बोलें और भीतर गीत की कोई कड़ी भी गुनगुनाने लगें। तीन सप्ताह में आप पायेंगे कि तीन ट्रैक पर आपका काम शुरू हो गया। ध्यान कांटे पर भी रहेगा, ध्यान आंकड़ों पर भी रहेगा, ध्यान संख्या पर भी रहेगा, गीत की कड़ी पर भी रहेगा। अब आप जितने ट्रैक पर चाहें, उतने ट्रैक पर धीरे-धीरे अभ्यास कर सकते हैं। सब ट्रैक पर आप एक साथ भी अभ्यास कर सकते हैं। सारे काम एक साथ चलते रहेंगे, यही आवधान है। इसका अभ्यास करने पर आप मदारीगिरी कर सकते हैं। जैन साधु करते हैं, वह सिर्फ मदारीगिरी है। उसका कोई मूल्य नहीं है। सिर्फ रोबोट को एक दफे आप सिखा दें तो रोबोट करने लगता है। लेकिन एक खतरा यह है कि जब रोबोट काम करने लगता है तो सिखाना जितना आसान है उतना आसान भुलाना नहीं रह जाता है। सिखाना बहुत आसान है, ध्यान रखना आप। स्मरण बहुत आसान है, विस्मरण बहुत कठिन है, लेकिन असंभव नहीं है। वाश आउट किया जा सकता है, जैसा टेप पर किया जा सकता है, मिटाया जा सकता है। पर मिटाना बहुत कठिन होता है। और उससे भी ज्यादा कठिन विपरीत का अभ्यास होता है। हमारे यंत्र-चित्त का अभ्यास है बाहर जाने का, तो पहले तो यह बाहर जाने का अभ्यास मिटाना पड़ता है। और फिर भीतर जाने का अभ्यास पैदा करना पड़ता है।

(१६) रोबोट ने इशारा किया आप चल दिये

तो इसके लिए आवश्यक होगा कि जब भी आपका यंत्र-मानव आपसे कहे, बाहर जाओ तो आप सचेत हो जायें और होश पूर्वक बाहर जायें। अगर अखबार पढ़ना है तो जान लें कि मेरा यंत्र-मानव अखबार पढ़ना चाहता है। तब आप पायेंगे कि अखबार पढने में कोई रस नहीं आ रहा। यह भी एक मजा है कि व्यर्थ की चीजों में रस नहीं आता है तो सिर्फ होश में नहीं आता। आप किसी भी व्यर्थ की चीज में होश पूर्वक रस नहीं ले सकते हैं। बेहोशी में ले सकते हैं। इसलिए जिन लोगों को रस लेने का पागलपन सवार हो जाता है, वे नशा करने लगते हैं क्योंकि नशे में रस ज्यादा लिया जा सकता है। अन्यथा रस नहीं लिया जा सकता। यंत्र-मानव की बाहर जाने की जो चेष्टा है, उसे होश पूर्वक देखते रहें और होश पूर्वक ही काम करें। अगर यंत्र-मानव कहता है कि क्या अकेले बैठे हो, चलो मित्र के घर; तो उससे कहें कि ठीक है, चलते हैं, पर होश पूर्वक चलते हैं। तब संभावना है कि आप बीच रास्ते से घर वापस लौट आयें। क्योंकि आपको पता है कि उस मित्र के पास और वहां बैठकर आप बोर होते हैं। वही बातें वह फिर से कहता है कि मौसम कैसा है, स्वास्थ्य कैसा है और दो-तीन मिनट में बातें चुक जाती हैं तो फिर वही कहानियाँ सुनाता है जो बहुत बार सुना चुका है। फिर वही घटनाएँ बताता है, जो बहुत बार बता चुका है और आप बोर होते हैं और रोज यही ख्याल लेकर लौटते हैं कि इस आदमी ने बुरी तरह उबा दिया। लेकिन कल फिर रोबोट कहता है, उस मित्र के घर चलो, तो आपको ख्याल भी नहीं आता कि फिर आप बोर होने चले। अपनी बोरडम, अपनी ऊब खुद ही खोजते है। अगर आप होश पूर्वक जायेंगे तो रास्ते में आपको स्मरण आ जायेगा कि आप कहाँ जा रहे हैं, क्यों जा रहे हैं, क्या मिलेगा। और तब पैर शिथिल पड़ जायेंगे, संभावना यही है कि आप वापस लौट आयेंगे।

इस तरह आप अपने यन्त्र-चित्त के बाहर जाने की प्रत्येक क्रिया पर जागरुक पहरा रखें। एक-एक क्रिया छूटने लगेगी। जो बहुत नेसेसरी हैं जीवन के लिए, अनिवार्य हैं, उतनी ही क्रियाएँ रह जायेंगी, गैर अनिवार्य क्रियाएँ छूट जायेंगी। और तब पायेंगे कि शरीर संलीन होने लगा। तब बैठेंगे ऐसे, जैसे अपने में ठहरे हुए हैं, जैसे कोई शान्त झील हो, जिसमें लहर भी नहीं उठती। या जैसे खाली आकाश, एक बदली भी नहीं भटकती। जैसे कभी

देखा हो आकाश में किसी चील को पंखों को रोककर उड़ते हुए—संलीन। पंख भी नहीं हिलते, चील सिर्फ अपने में ठहरी है। जैसे देखा हो किसी बतख को कभी किसी झील में—बिना पंख मारते हुए, ठहरे हुए। ऐसा सब आपके शरीर में भी ठहर जायेगा, मन में भी; क्योंकि जैसे शरीर बाहर जाता है, ऐसे ही मन बाहर जाता है। अगर शरीर बाहर नहीं जा सकता, तो मन और ज्यादा बाहर जाता है। क्योंकि पूर्ति करनी पड़ती है। अगर आप मित्र से नहीं मिल सकते तो आप आंख बन्द करके मित्र से मिलने लगते हैं, दिवा-स्वप्न देखने लगते हैं कि मित्र मिल गया और बातचीत हो रही है। तो धीरे-धीरे फिर मन की भी बाहर जाने की जो आन्तरिक कोशिश है उस पर भी सजग हो जायें। जिस दिन शरीर और मन दोनों के प्रति सजगता होती है, और वह रोबोट यन्त्र है हमारे भीतर, वह बाहर जाने में धीरे-धीरे रस खो देता है, तब भीतर जाया जा सकता है।

और भीतर जाने में किस चीज में रस लेना पड़ेगा? भीतर जाने में उन चीजों में रस लेना पड़ेगा, जिसमें संलीनता स्वभाविक है। जैसे कि शान्ति का भाव हो, तो संलीनता स्वभाविक है। जैसे सारे जगत् के प्रति करुणा का भाव हो, तो उसमें संलीनता स्वभाविक है। क्रोध बाहर ले जाता है, करुणा बाहर नहीं ले जाती है। शत्रुता बाहर ले जाती है, मैत्री का भाव बाहर नहीं ले जाता। उन भावों में ठहरने से भीतर यात्रा शुरू हो जाती है। पर संलीनता सिर्फ द्वार है। इन सारी बातों का विचार हम अन्तरतप की ६ प्रक्रियाओं में करेंगे। संलीनता तो उन ६ के लिए द्वार है, पर संलीन हुए बिना उनमें कोई प्रवेश न कर सकेगा। यों तप के ये सब अंग इंटीग्रेटेड हैं, सब संयुक्त हैं। हमारा मन करता है कि इसको छोड़ दें उसको कर लें, ऐसा नहीं हो सकेगा। ये बारह अंग आरगेनिक हैं। ये एक दूसरे से संयुक्त हैं। इनमें से एक भी छोड़ा, तो दूसरा नहीं हो सकेगा। महावीर ने इसके पहले पाँच अंग कहे, वे सब आधार हैं, शक्ति-संरक्षक हैं। छठवाँ अंग संलीनता का है, उसके लिए शक्ति बचेगी तभी तो भीतर जा सकेगी। शक्ति बचेगी ही नहीं तो भीतर क्या जायेगी! हम करीब-करीब शक्ति-दिवालिया हैं। बाहर ही शक्ति गवाँ देते हैं, भीतर जाने के लिए कोई शक्ति बचती ही नहीं।

(१७) घर में नहीं दाना मगर वसीयत लिखाना

मुल्ला नसरुद्दीन मरा तो पहले उसने अपनी वसीयत लिखवायी। बड़ी भीड़-भाड़ इकट्ठी की। सारा गाँव इकठ्ठा हुआ। फिर उसने गाँव की पंचायत में, पंचायत के प्रमुख से कहा वसीयत लिखो। थोड़े लोग चकित थे क्योंकि ऐसा कुछ ज्यादा उसके पास नहीं दिखायी पड़ता था, जिसके लिए उसने इतना शोरगुल मचाया। लेकिन उसने वसीयत लिखवायी कि मेरे मरने के बाद मेरी सम्पत्ति में से आधी मेरी पत्नी को मिल जाय। फिर इतना हिस्सा मेरे लड़के को मिल जाय। और इतना हिस्सा मेरी लड़की को मिल जाये। इतना हिस्सा मेरे मित्र को मिल जाये, इतना हिस्सा मेरे नौकर को मिल जाये। उसने सब हिस्से लिखवा दिये। वह पंच-प्रमुख बार-बार कहता था कि ठहरो। वह पूछना चाहता था कि है कितना तुम्हारे पास ? और आखिर में मुल्ला ने कहा कि सबको बांट देने के बाद जो बच जाये, वह गाँव की मस्जिद को दे दिया जाये, तो पंच-प्रमुख ने फिर पूछा कि मैं तुमसे बार-बार पूछ रहा हूँ कि तुम्हारे पास है कितना ? उसने कहा, मेरे पास है तो कुछ भी नहीं, लेकिन वसीयत तो नियमानुसार लिखानी चाहिए। नहीं तो लोग क्या कहेंगे कि बिना वसीयत लिखाये मर गया। है कुछ भी नहीं, उस पर भी वह कह रहा है कि सबको बांटने के बाद जो बच जाये, वह मस्जिद को दे दिया जाये। हम भी करीब-करीब दिवालिया ही मरते हैं, जहाँ तक अंतः-संपत्ति का संबंध है, हम सब दिवालिया मरते हैं, नसरुद्दीन जैसे ही मरते हैं।

वह व्यंग हम पर भी है। कुछ नहीं होता पास। क्योंकि सबमें हमने व्यर्थ खोया होता है और व्यर्थ भी ऐसा खोया होता है जैसे कि आपने बाथरूम का नल खुला छोड़ दिया हो और पानी बह रहा है। इसी तरह आपके व्यक्तित्व के सब द्वार खुले हुए हैं बाहर की तरफ और शक्ति व्यर्थ खोती चली जाती है। जो थोड़ी बहुत बचती है, उससे आप सिर्फ बेचैन होते हैं और करते फिर भी कुछ नहीं। बेचैनी में नष्ट जरूर करते हैं।

महावीर ने पहले जो अंग कहे, वे शक्ति संरक्षण के हैं। यह जो छठवाँ अंग कहा, यह संरक्षित शक्ति का अन्तर्-प्रवाह है। जैसे कोई नदी अपने मूल उद्‌गम की तरफ वापस लौटने लगे। मूल स्रोत की तरफ शक्ति का आगमन शुरू हो जाता है। उसके लिए तो भीतर ही जाना पड़ेगा, हमें संलीन ही होना पड़ेगा। शक्ति बचे, शक्ति भीतर लौटे, पर शक्ति को भीतर लौटने के लिए

आपको तीन प्रयोग करने पड़ेंगे। अपनी शरीर की गतिविधियों को देखना पड़ेगा। शरीर की गतिविधियों और मन की गतिविधियों को तोड़ना पड़ेगा। शरीर की गतिविधियों और मन की गतिविधियों के पार होना पड़ेगा। तब आप पायेंगे कि आप संलीन होने शुरू हो गये हैं। अपने में डूबने लगे हैं, अपने में उतरने लगे हैं। अपने भीतर और भीतर गहरे में जाने लगे हैं।

(१८) संलीनता के साथ आनेवाले भय से सावधान

इसमें एक ही बात आखिरी आपसे कहूँगा जो किसी अभ्यास करनेवाले के काम की है। क्योंकि जैसे ही संलीनता शुरू होती है, बड़ा भय पकड़ता है। ऐसा लगता है जैसे सफोकेट हो रहे हों हम, जैसे कोई गर्दन दबा रहा हो या पानी में डूब रहे हों। संलीन होने का जो भी प्रयोग करेगा, मारे भय के घबरा जायेगा। जैसे ही शक्ति भीतर जानी शुरू होगी, भय पकड़ेगा। क्योंकि यह अनुभव करीब-करीब वैसा ही होगा, जैसा मृत्यु का होता है। मृत्यु में भी शक्ति संलीन होती है और कुछ नहीं होता। शरीर को छोड़ती है, मन को छोड़ती है, भीतर चलती है उद्गम की तरफ; और तब आप तड़पड़ाते हैं कि अब मैं मरा। क्योंकि आप अपने को समझते वही हैं जो बाहर जा रहा था। आपने तो कभी उसको जाना ही नहीं, जो भीतर जा सकता है। उससे पहले आपका उससे कोई संबंध नहीं था, कोई पहचान नहीं थी। आप तो अपना एक ही चेहरा जानते थे, बहिर्गामी, अंतर्गामी का तो आपको कोई अनुभव न था। आप कहते हैं कि मरा, क्योंकि वह सब जो बाहर जा रहा था, वह बाहर नहीं जा रहा, भीतर लौट रहा है। शरीर में शक्ति डूब रही है भीतर, बाहर नहीं जा रही है। और न मन बाहर जा रहा है, भीतर डूब रहा है। सब कुछ भीतर सिकुड़ रहा है, केन्द्र पर लौट रहा है। गंगा अपने को पहचानती थी सागर की तरफ बहती हुई। उसने कभी जाना भी न था कि गंगोत्री की तरफ बहना भी मैं ही हूँ। इसकी उसको पहचान नहीं है। यही विपरीत की पहिचान की घबराहट मृत्यु की-सी घबराहट होती है। और मृत्यु में जो घबराहट पकड़ती है, वही घबराहट आप को संलीनता में पकड़ेगी। मृत्यु का

ही अनुभव होगा, मर रहे हों जैसे। मन होगा कि कोई भी सहारा पकड़ो और बाहर निकल जाओ। अगर बाहर निकल आते हैं तो संलीन न हो पायेंगे।

इसलिए जब भय पकड़े, तब भय के भी साक्षी बने रहना। बस, देखते रहना कि ठीक है। मृत्यु से भी कठिन यह अनुभव होगा, क्योंकि मृत्यु तो परवशता में होती है, आप कुछ कर नहीं सकते, टूट रहे होते हैं सहारे। लेकिन संलीनता में आप कुछ कर सकते हैं। आप जब चाहें बाहर आ सकते हैं। यह तो इंटेंशनल है। यह तो आप का संकल्प है भीतर जाने का। मृत्यु में तो आप का संकल्प नहीं होता। मृत्यु में कोई चुनाव नहीं होता। आप मारे जा रहे होते हैं। आप मर नहीं रहे होते हैं। यह स्वेच्छा से मृत्यु का वरण है। यह अपने ही हाथ से मर कर देखना है। एक बार भय को छोड़कर, भय के साक्षी होकर, जो हो रहा है उसकी स्वीकृति को मानकर अगर आप डूब जायें तो आप मृत्यु के भय से सदा के लिए पार हो जायेंगे, फिर मृत्यु भी आपको भयभीत नहीं करेगी। एक बार आपको यह अनुभव हो जाये कि अंतर्मुखी ऊर्जा की यात्रा भी मैं ही हूं, तो मृत्यु का कोई भय नहीं रह जायेगा। फिर आप जान जाते हैं कि मृत्यु है ही नहीं।

मृत्यु सिर्फ अन्तर्यात्रा के अपरिचय के कारण प्रतीत होती है। आपका बहिर्यात्रा के साथ तादात्म्य होता है, अन्तर्यात्रा के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता, इसलिए मृत्यु भी प्रतीत होती है। यह सम्बन्ध संलीनता में निर्मित हो जाता है। यों कहें कि आप स्वेच्छा से मर कर देख लेते हैं और पाते हैं कि मैं नहीं मरता। आप स्वेच्छा से मृत्यु में प्रवेश कर जाते हैं। सब बाह्य छूट जाता है। जो मृत्यु में ही छूटता है, वह सब छूट जाता है। सब जगत् मिट जाता है। शरीर भूल जाता है, मन भूल जाता है, फिर भी चैतन्य का दिया भीतर जलता रहता है। संलीनता के इस प्रयोग को कोई ठीक से करे तो बड़ी सरलता से शरीर के बाहर होने का अनुभव कर सकता है। शरीर आपको सामने पड़ा हुआ दिखायी पड़ने लगेगा। कभी-कभी यह अपने आप घटित हो जाता है, आपके बिना ख्याल भी। अचानक आप पाते हैं कि आप शरीर के

बाहर हो गये। तब बड़ी बेचैनी होती है और डर लगता है कि अब कभी वापस नहीं लौट सकेंगे। आप अपने पूरे शरीर को पड़ा हुआ देख पाते हैं। पहली दफा आप अपने शरीर को बाहर से पूरा देख पाते हैं। (आईने में तो प्रतिछवि दिखायी पड़ती है।) और एक दफा जिसने बाहर अपने शरीर को देख लिया, वह शरीर के भीतर होकर भी कभी भीतर नहीं हो पाता है। वह फिर बाहर ही रह जाता है। फिर वह सदा बाहर ही होता है। फिर कोई उपाय नहीं है उसके भीतर होने का। भीतर हो जाये तो भी उसका बाहर होना बना रहता है। पृथक ही बना रहता है। फिर शरीर पर आये दुख उसके दुख नहीं होते हैं, शरीर पर घटी घटनाएँ, उस पर घटी घटनाएँ नहीं होतीं हैं। फिर शरीर का जन्म, उसका जन्म नहीं होता है, फिर शरीर की मृत्यु उसकी मृत्यु नहीं होती है। फिर शरीर का पूरा जगत् उसका जगत् नहीं होता है। और हमारा सारा जगत् शरीर का जगत् है। इतिहास समाप्त हो गया उसके लिए। जीवन-कथा समाप्त हो गयी उसके लिए। अब तो एक शून्य में ठहराव है और समस्त आनन्द शून्य में ठहरने का परिणाम है। समस्त मुक्ति शून्य में उतर जाने की मुक्ति है।

(१९) जरा आक्रमण और प्रतिक्रमण को समझ लें

लेकिन हम निरन्तर बाहर भाग रहे हैं। यह हमारा बाहर भागना आक्रमण है। महावीर ने एक शब्द का बहुत अच्छा प्रयोग किया है— प्रतिक्रमण। प्रतिक्रमण का अर्थ है भीतर लौटना। आक्रमण का अर्थ है बाहर जाना। प्रतिक्रमण का अर्थ है : कमिंग बैक टु दि होम, घर वापस लौटना। इसलिए महावीर अहिंसा पर इतना आग्रह करते हैं क्योंकि आक्रमण न घटे चित्त का, तो प्रतिक्रमण न हो पायेगा, संलीनता फलित नहीं होगी। ये सब सूत्र संयुक्त हैं। जीवन में जब यह घटना उतरनी शुरू होती है तब ये सभी संयुक्त होते हैं। लेकिन हम सोचते हैं कि किसी की छाती में छुरा भोंकते हैं तभी आक्रमण होता है। नहीं, जब हम दूसरे का विचार भी करते हैं तब भी आक्रमण हो जाता है। दूसरे का ख्याल भी दूसरे पर आक्रमण है। दूसरे का

मेरे चित्त में उपस्थित हो जाना भी आक्रमण है। आक्रमण का मतलब ही है कि मैं दूसरे की तरफ वहा, दूसरे के साथ गया, दूसरे की तरफ गया। आलिंगन के साथ गया, कि सद्भाव से गया, कि असद्भाव से गया यह बात गौण है। दूसरे की तरफ जाती हुई चेतना आक्रमण है। मैं दूसरे की तरफ जा रहा हूं, यही आक्रमण है। हम सब जाना चाहते हैं। जाना इसलिए चाहते हैं कि हमारी अपने पर तो कोई मालकियत है नहीं इसलिए चाहते हैं कि किसी दूसरे पर मालकियत हो जाये तो थोड़ा मालकियत का सुख मिले। थोड़ा सा ही सही।

(२०) रुकिए एक दुःस्वप्न सुन लीजिए

मुल्ला नसरुद्दीन गया एक मनोचिकित्सक के पास और उसने कहा कि मैं बहुत परेशान हूं। पत्नी से भयभीत हूं। डरता हूं, मेरे हाथ-पैर कँपते हैं। मेरा थूक सूख जाता है, जैसे ही मैं उसे देखता हूं। मनोवैज्ञानिक ने कहा, यह कुछ ज्यादा चिंता की बात नहीं है। ज्यादा चिंता की बात तो इससे उल्टी बीमारी है। उस उल्टी बीमारी में लोग देखते ही हमला करने को उत्सुक हो जाते हैं, पत्नी का सिर तोड़ने को उत्सुक हो जाते हैं, घसीटने को उत्सुक हो जाते हैं, मारने को उत्सुक हो जाते हैं, आक्रामक हो जाते हैं। यह तो कुछ भी नहीं है। इसमें कुछ घबराने की बात नहीं है। मुल्ला बड़ा उत्सुक हो गया। कुर्सी से आगे झुक आया। बोला, डाक्टर, एनी चांस आफ माई कैचिंग दैट डिजीज? कहीं मौका है कि मुझे भी वह बीमारी लग जाय जिसको आप साइकोपैथी कह रहे हैं? कि मैं भी घर जाऊं और लट्ठ उठाकर सिर खोल दूं उसका? मन तो मेरा भी यही करता है, लेकिन उसके सामने जाकर मेरे सब मँसूबे गड़बड़ हो जाते हैं और दिन की तो बात दूर, वरसों से मैं एक दुःस्वप्न, एक नाइट मेयर देख रहा हूं। वह भी मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि कुछ इलाज हो तो बतायें। मनोवैज्ञानिक ने कहा कि कौन-सा दुःस्वप्न? तो उसने कहा, रात को मैं निरंतर अपनी पत्नी को देखता हूं और उसके पीछे खड़े एक बड़े राक्षस को देखता हूं। मनोवैज्ञानिक उत्सुक हुआ। उसने कहा,

इंटरेस्टिंग है और जरा विस्तार से कहो। नसरुद्दीन ने कहा कि लाल आंखें जिनसे लपटें निकल रही होती हैं। सींग बड़े-बड़े, लगता है छाती में झोंक दिये जायेंगे। हाथों में लंबे नाखून। बड़ी घबराहट पैदा होती है। मनोवैज्ञानिक ने कहा, घबराने वाला है, भयंकर है। नसरुद्दीन ने कहा : दिस इज नथिंग। वेट टिल आई टेल यू एबाउट द मांस्टर। जरा रुको, जब तक मैं राक्षस के संबंध में न बताऊं, तब तक कुछ मत कहो। यह तो मेरी पत्नी है, उसके पीछे जो राक्षस खड़ा रहता है, उसका तो मैंने वर्णन ही नहीं किया। उसने उसका भी वर्णन किया कि उसके भयंकर दांत, लगता है कि चपेट डालेंगे, पीस डालेंगे। उसका विशालकाय शरीर, उसके सामने मैं बिल्कुल कीड़ा-मकोड़ा हो जाता हूं। और उसकी घिनौनी बास और उसके शरीर से झरते हुए घिनौने पदार्थ, घिनौनी चीजें और रस ऐसी घबराहट भर देते हैं कि दिन भर वह मेरा पीछा करता है। मनोवैज्ञानिक ने कहा, बहुत भयंकर है, बहुत घबरानेवाला। नसरुद्दीन ने कहा, वेट टिल आई टेल यू दैट द मांस्टर इज नो वन एल्स दैन मी। जरा रुको, वह राक्षस और कोई नहीं, बहुत घबराने वाली बात यह है कि जब मैं गौर से देखता हूं तो पाता हूं कि मैं ही हूं।

और यह दुःस्वप्न बरसों से चल रहा है। जब तक चित्त आक्रमक है, तब तक दूसरे में भी राक्षस दिखायी पड़ेगा। और अगर गौर से देखेंगे तो आक्रमक चित्त अपने को भी राक्षस ही पायेगा। हम सब आक्रमक हैं। हम दुःस्वप्न में जीते हैं। हमारी जिंदगी एक नाइट मेयर है, एक लंबा रक्तपात से भरा हुआ नाटक। एक लंबा नारकीय सिलसिला।

मुल्ला मरकर जब स्वर्ग के द्वार पर पहुंचा तो स्वर्ग के पहरेदार ने पूछा, कहां से आ रहे हो। उसने कहा, मैं पृथ्वी से आ रहा हूं। उस द्वारपाल ने कहा : वैसे तो नियम यही था कि तुम्हें नर्क भेजा जाये, लेकिन चूंकि तुम पृथ्वी से आ रहे हो, इसलिए नर्क तुम्हें काफी सुखद मालूम होगा। और चूंकि नर्क तुम्हें काफी सुखद मालूम होगा, इसलिए कुछ दिन स्वर्ग में रुक जाओ। फिर तुम्हें नर्क भेजेंगे, ताकि नर्क तुम्हें दुखद मालूम हो सके। तो मुल्ला कुछ दिनों

के लिए स्वर्ग में रोक लिया गया। मुल्ला ने बहुत कहा कि मुझे सीधे जाने दो। उस द्वारपाल ने कहा कि यह नहीं हो सकता, क्योंकि नर्क तो अभी स्वर्ग मालूम होगा, तुम पृथ्वी से आ रहे हो सीधे। अभी कुछ दिन स्वर्ग में रह लो। जरा सुख अनुभव हो जाये फिर तुम्हें नर्क में डालेंगे, तब तुम्हें सताया जा सकेगा। हम जिसे जिंदगी कह रहे हैं वह एक लंबी नर्क-यात्रा है। और इस नर्क-यात्रा का कुल कारण इतना है कि हमारा चित्त आक्रमक है। जब चित्त अनाक्रमक हो जाता है, तो प्रतिक्रमण को उपलब्ध हो जाता है। यह प्रतिक्रमण की यात्रा ही संलीनता में डुबा देती है।

आज बाह्य-तप पूरे हुए। कल से हम अंतर्-तप को समझने की कोशिश करेंगे।

चौदहवां प्रवचन

पर्युषण व्याख्यान-माला, बम्बई, दिनांक ३१ अगस्त, १९७१

'पछताये का होय' यानी प्रायश्चित की प्रयोगशाला में

धम्मो मंगलमुक्किट्ठम्, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति, जस्स धम्मे सया मणो ॥१॥

अर्थ :-

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म ?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

तप के ६ बाह्य अंगों की चर्चा हम कर चुके हैं, अब आइए अंतर्-तपों के संबंध में बात करें। महावीर ने पहला अंतर्-तप कहा है—प्रायश्चित। पहले तो हम समझ लें कि प्रायश्चित क्या नहीं है। इससे आसान होगा समझना कि प्रायश्चित क्या है? लेकिन कठिनाई और भी बढ़ गयी है क्योंकि प्रायश्चित जो नहीं है, वही हम समझते रहे हैं कि प्रायश्चित है। शब्दकोषों में खोजने जायेंगे तो लिखा है कि प्रायश्चित का अर्थ है पश्चात्ताप (रिपेंटेंस)। असल में प्रायश्चित का यह अर्थ नहीं है। पश्चात्ताप और प्रायश्चित में इतना अन्तर है जितना जमीन और आसमान में। पश्चात्ताप का अर्थ है जो आपने किया है, उसके लिए पछतावा। लेकिन जो आप हैं उसके लिए पछतावा नहीं। आपने चोरी की है तो आप पछता लेते हैं चोरी के लिए। आपने हिंसा की है तो आप पछता लेते हैं हिंसा के लिए। आपने बेईमानी की है तो पछता लेते हैं बेईमानी के लिए। आपके लिए नहीं, आप तो ठीक हैं। उसी ठीक आदमी यानी आपसे एक छोटी-सी भूल हो गयी थी कर्म में, उसे आपने पश्चात्ताप करके पोंछ दिया। इसलिए पश्चात्ताप अहंकार को बचाने की प्रक्रिया है। क्योंकि अगर भूलें आपके पास बहुत इकट्ठी हो जायें तो आपके अहंकार को चोट लगनी शुरू होगी कि मैं बुरा आदमी हूँ, क्योंकि मैंने गाली दी, कि मैं बुरा आदमी हूँ, क्योंकि मैंने क्रोध किया। आप हैं बहुत अच्छे आदमी। गाली आप दे नहीं सकते हैं। किसी परिस्थिति में निकल गयी होगी इसलिए आप पछता लेते हैं और फिर से अच्छे आदमी हो जाते हैं। पश्चात्ताप आपको बदलता नहीं; जो आप थे, वही रहने की व्यवस्था है। इसलिए रोज आप पश्चात्ताप करेंगे और रोज आप पायेंगे कि वही आप कर रहे हैं जिसके लिए कल पछताये थे। पश्चात्ताप आपकी बीइंग में, आपकी अंतरात्मा में कोई अन्तर नहीं लाता,

सिर्फ आपके कृत्यों में कहीं भूल थी, और वह भूल इसलिए मालूम पड़ती है, क्योंकि उससे आप अपनी इमेज को, अपनी प्रतिमा को, जो आपने समझ रखी है, बनाने में असमर्थ हो जाते हैं।

(१) हाय ! मैंने गाली दी

मैं एक अच्छा आदमी हूँ, ऐसी मैं अपनी प्रतिमा बनाता हूँ। फिर इस अच्छे आदमी के मुंह से एक गाली निकल जाती है, तो मेरे ही सामने मेरी प्रतिमा खंडित होती है। मैं पछताना शुरू करता हूँ कि यह कैसे हुआ ! हाय, मैंने गाली दी ! मैं कहना शुरू करता हूँ, कि यह मैं चाहता नहीं था और हो गया, ऐसा मैं कर नहीं सकता हूँ और हो गया। किसी परिस्थिति के दबाव में, किसी क्षण के आवेश में हो गया। ऐसा मैं हूँ नहीं कि जिससे गाली निकले और गाली निकल गयी। मैं पछता लेता हूँ। गाली का क्षोभ था, वह विदा हो जाता है और मैं अपनी जगह वापस लौट आता हूँ, जहाँ मैं गाली के पहले था। पश्चात्ताप वहीं ला देता है, जहाँ मैं गाली के पहले था। लेकिन ध्यान रखें, जहाँ मैं गाली के पहले था, उसी में से तो गाली निकली थी। मैं फिर उसी जगह वापस लौट आया। उससे फिर गाली निकलेगी।

(२) पुनि पुनि चंदन पुनि पुनि पानी

पी० डी० आस्पेन्स्की ने एक बहुत अद्‌भुत किताब लिखी है। दि स्ट्रेंज लाइफ आफ इवान ओसोकिन (इवान ओसोकिन का विचित्र जीवन) इवान ओसोकिन एक जादूगर फकीर के पास गया और बोला कि मैं आदमी तो अच्छा हूँ। मैंने अपने भीतर आज तक एक बुराई नहीं पायी। लेकिन फिर भी मुझसे कुछ भूलें हो गयी हैं। वे भूलें अज्ञानवश हुई हैं। नहीं जानता था कोई चीज, और भूल हो गयी। रास्ते पर जा रहा था, गड्ढे में गिर पड़ा, क्योंकि रास्ता अपरिचित था। यों मैं गिरनेवाला व्यक्ति नहीं हूँ। घटना घट गयी, वह मैं घटाना नहीं चाहता था। कौन गड्ढे में गिरना चाहता है। मैं गिरने वाला आदमी नहीं हूँ। गड्ढा था, अँधेरा था, रास्ता अपरिचित था या किसी ने धक्का दे दिया, इससे मैं गिर गया। अगर मुझे दुबारा उसी रास्ते पर चलने का मौका मिले तो मैं तुम्हें बता सकता हूँ कि मैं उस रास्ते पर चलूँगा और गिरूंगा नहीं।

उस फकीर ने कहा कि मैं तुम्हारी उम्र बारह वर्ष कम किये देता हूँ। अब तुम बारह वर्ष बाद आना। और उसने ओसोकिन की उम्र बारह वर्ष कम कर दी। वह जादूगर तो था ही। ओसोकिन उससे वायदा करके गया कि देखना बारह वर्ष बाद मैं दूसरा ही आदमी होऊँगा। यही मैं चाहता था कि मुझे एक अवसर और मिल जाये, ताकि जो भूलें मुझसे अज्ञान में हो गयी हैं, वे दुबारा न हों।

बारह वर्ष बाद ओसोकिन रोता हुआ उस फकीर के पास आया और उसने कहा, क्षमा करना। वह गलती रास्ते की नहीं थी, मेरी ही थी क्योंकि मैंने फिर वही भूलें दोहरायीं। मैंने फिर वही किया है, जो पहले किया था। आश्चर्य है!

उस फकीर ने कहा, मैं जानता था, यही होगा। क्योंकि भूलें कर्म में नहीं होतीं, प्राणों की गहराई में, अस्तित्व में होती है। उम्र बदल दो तो कर्म फिर से तुम कर लोगे, लेकिन तुम्हीं करोगे न? यू बीइंग द सेम, यू विल डू इट अगेन। चूंकि तुम वही हो आगे, इसलिए वही करोगे फिर से। फिर वही हो जायेगा, जो पहले हुआ था।

इवान ओसोकिन की ही जिन्दगी विचित्र नहीं है। इस अर्थ में हम सब की जिन्दगी विचित्र है। हालांकि कोई जादूगर हमारी उम्र कम नहीं करता, लेकिन जिन्दगी हमें न मालूम कितनी बार मौका देती है। ऐसा नहीं है कि क्रोध का मौका आपको एक ही बार मिलता है। नहीं, यह जिन्दगी हजार बार मौका देती है और वही होता है और फिर आप वही करते हैं। इससे बचने के लिए आप अपने को धोखा देते हैं। परिस्थिति हर बार भिन्न है, लेकिन एक बात तो पक्की है कि आप वही हैं। अगर परिस्थिति भिन्न नहीं है, तो दोष स्वयं पर आ जायेगा। इसलिए आप हर बार कहते हैं कि परिस्थिति भिन्न है, इसलिए फिर करना पड़ा। लेकिन जो जानते हैं, वे कहते हैं कि परिस्थिति का सवाल नहीं है, सवाल आप ही हैं—यू आर द प्राब्लम। और एक जिंदगी नहीं, अनेक जिंदगी मिलती है तब भी हम फिर वही दोहराते हैं, फिर वही दोहराते हैं, फिर वही दोहराते हैं, और फिर वही दोहराते हैं।

महावीर के पास कोई साधक आता था तो उसे वे पिछले जन्म के स्मरण में ले जाते थे, सिर्फ इसीलिए ताकि वह देख ले कि वह कितनी बार यही

दोहरा चुका है और यह कहना बंद कर दे कि यह मेरे कर्म की भूल है बल्कि यह जान ले कि भूल मेरी है। पश्चात्ताप कर्म गलत होने के बोध से संबंधित है। प्रायश्चित इस बोध से संबंधित है कि मैं गलत हूँ। और दोनों ही बातों में जमीन और आसमान का फर्क है। पश्चात्ताप करने वाला वही का वही बना रहता है। प्रायश्चित करने वाले को अपनी जीवन-चेतना रूपांतरित कर देनी होती है। सवाल यह नहीं है कि मैंने क्रोध किया तो मैं पछताऊँ। सवाल यह है कि मुझसे क्रोध हो सका इसलिए मैं दूसरा आदमी हो जाऊँ, ऐसा आदमी जिससे क्रोध न हो सके। प्रायश्चित का यही अर्थ है। ट्रांसफॉर्मेशन आफ द लेवल आफ बीइंग। यह सवाल नहीं है कि कल मैंने क्रोध किया था, आज मैं नहीं करूँगा। सवाल यह है कि कल मुझसे क्रोध हुआ था, मैं कल के ही जीवन तल पर आज भी हूँ। वही चेतना मेरी आज भी है। पश्चात्ताप करने वाला कल के लिए क्षमा माँग लेगा। हर वर्ष हम माँगते हैं कि क्षमा करो। पिछले वर्ष भी माँगा था। उसके पहले क्षमा माँगी थी। कब वह दिन आयेगा, जब कि क्षमा माँगने का अवसर न रह जायेगा। हम भली-भाँति जानते हैं कि जहाँ से क्षमा माँगी जा रही है, वहाँ कोई रूपान्तरण नहीं है। वह आदमी वही है जो पिछले वर्ष था।

(३) क्षमा माँग ली तो बदल तो नहीं गये

एक मित्र पिछले वर्ष से मेरे संबंध में अनोखी कहानियाँ प्रचारित करते रहे हैं। अभी जब ये परीक्षण पूरे हुए, तो उनका कल पत्र आया कि मुझे क्षमा कर दें। ऐसा नहीं कि उन्होंने जाने-अनजाने अपराध किये हैं, उनके लिये क्षमा कर दें। पत्र में लिखा है कि मैंने अपराध किये, उनके लिये क्षमा कर दें और मैं हृदय की गहराई से क्षमा मांगता हूँ। लेकिन मैं जानता हूँ, पत्र लिखने के बाद उन्होंने वही काम पुनः जारी कर दिया होगा। क्योंकि वह पत्र लिख देने से कोई रूपांतरण नहीं हो जाने वाला है। क्षमा मांग लेने से आप नहीं बदल जायेंगे। आप फिर वही होंगे। सच तो यह है कि जो क्षमा मांग रहा है, यह वही आदमी है जिसने अपराध किया है। प्रायश्चित वाला तो हो सकता है कि क्षमा न भी मांगे, क्योंकि संभव है वह अनुभव करे कि अब मैं वह आदमी ही नहीं हूँ कि जिसने अपराध किया था। अब मैं दूसरा आदमी हूँ। वह जाकर इतनी खबर दे दे कि वह आदमी जो तुम्हें गाली दे गया था,

अब मर गया है। मैं दूसरा आदमी हूं। अगर आप के मन को अच्छा लगे तो मैं उसकी तरफ से आपसे क्षमा मांग लूं, क्योंकि मैं उसकी जगह पर हूं; अन्यथा मेरा कोई लेना-देना नहीं है, वह आदमी मर चुका है।

प्रायश्चित का अर्थ है मृत्यु उस आदमी की, जो भूल कर रहा था, उस चेतना की जिससे भूल हो रही थी। पश्चात्ताप का अर्थ है उस चेतना का पुनर्जीवन, जिससे भूल हो रही थी। फिर से उसका रास्ता साफ करना। फिर से पुनः वहीं पहुंच जाना, जहां हम खड़े थे और जहां से भूल होती थी, उसी जगह फिर खड़े हो जाना। पैर थोड़े डगमगा जाते हैं अपराध करके, भूल करके; फिर उन पैरों को मजबूत करने में क्षमा सहयोग होती है। ध्यान रहे लोग इसलिए क्षमा नहीं मांगते कि वे समझ गये हैं कि उनसे अपराध हो गया। वे इसलिए क्षमा मांगते हैं कि यह अपराध का भाव उनकी प्रतिमा को खंडित कर रहा है। वे इसलिए क्षमा नहीं मांगते हैं कि आपको चोट पहुंची है, क्योंकि वे कल फिर चोट पहुंचाना जारी रखेंगे। वे इसलिए क्षमा मांगते हैं कि अपराध भाव से उनकी प्रतिमा को चोट पहुंची है। वे उसे सुधार लेते हैं। हम सब का एक 'सेल्फ इमेज' है। सच नहीं है वह जरा भी, लेकिन है।

(४) तस्वीर पै पड़ि गयो दाग

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को कंधे पर लेकर सुबह घूमने निकला है। सुन्दर है उसका बेटा। जो भी रास्ते पर देखता है वह रुक कर ठहर जाता है और कहता है कि सुन्दर है। नसरुद्दीन कहता है कि दिस इज नथिंग। यू मस्ट सी हिज पिक्चर। यह कुछ नहीं है। इसका चित्र देखो तब तुम्हें पता चलेगा। यह तो कुछ भी नहीं है। इसका पिक्चर देखो घर आकर अलबम में, तब तुम्हें पता चलेगा। वह ठीक कह रहा है। हम सभी जानते हैं कि हम तो कुछ नहीं हैं, लेकिन हमारी तस्वीर देखो। वह जो हमारे चित्र के अलबम में है, उसको देखो। उसको ही हम दिखाने की कोशिश में लगे रहते हैं। वह तस्वीर और बड़ी है। वह वही नहीं है, जो हम हैं। इसलिए जब उस तस्वीर पर कोई दाग पड़ जाता है और हमें लगता है कि दाग पड़ रहा है तो दाग को हम पोंछ लेते हैं। पश्चात्ताप स्याही सोख का काम करता है। वह प्रायश्चित नहीं है। प्रायश्चित तो तस्वीर को फाड़कर फेंक

देगा। पश्चात्ताप सिर्फ स्याही के धब्बे को अलग कर देगा। और अगर आप कुशल हुए तो स्याही के धब्बे को इस ढंग से बना देंगे कि वह तस्वीर का हिस्सा और शृंगार बन जाये। न कुशल हुए तो पोंछने की कोशिश करेंगे। इससे तस्वीर थोड़ी बहुत खराब भी हो सकती है। अगर आपने कभी रवीन्द्रनाथ की हाथ की लिखी हुई हस्तलिखित प्रतिलिपियां, उनकी हस्तलिखित पान्डुलिपियाँ देखी हों तो आप बहुत चकित होंगे। रवीन्द्रनाथ से कहीं अगर कोई भूल हो जाय तो उसको ऐसे नहीं काटते थे, उसे काट कर वहाँ एक चित्र बना देते थे और कागज को सजा देते थे। इसलिए उनकी पान्डुलिपियाँ सजी पड़ी हैं। जहाँ उन्होंने काटा है, वहाँ सजा दिया है। पान्डुलिपि में करना अच्छा है, बुरा नहीं है। आँख को सोहता है। लेकिन आदमी जिन्दगी में भी यही करता है। यह पश्चात्ताप धब्बों को चित्र बनाने की कोशिश या धब्बों को पोंछ डालने की कोशिश है। पश्चात्ताप प्रायश्चित नहीं है। लेकिन हम सब तो पश्चात्ताप को ही प्रायश्चित समझते हैं।

पश्चात्ताप तो बहुत साधारण-सी घटना है, जो मन का नियम है। मन के नियम को थोड़ा समझ लें कि पश्चात्ताप सबको पैदा होता है। यह मन का सामान्य नियम है। लेकिन प्रायश्चित साधना है। अगर महावीर प्रायश्चित का अर्थ पश्चात्ताप करते हों, तो कोई बात नहीं हुई। यह तो सभी को होता है। ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जो पछताता न हो। अगर आप खोज कर ला सकें तो वह आदमी ऐसा हो सकता है जैसे महावीर हों। बाकी कोई आदमी मिलना मुश्किल है जो पछताता न हो। पश्चात्ताप तो जीवन का सहज क्रम है। हर आदमी पश्चात्ताप करता है। तो इसको साधना बनाने की क्या जरूरत है? पश्चात्ताप साधना नहीं, मन का नियम है। मन का यह नियम है कि मन एक अति दूसरी अति पर डोल जाता है। अगर मन के इस नियम में थोड़े गहरे प्रवेश कर जायें और पश्चात्ताप को समझ जायें, तो फिर प्रायश्चित की तरफ ध्यान उठ सकता है।

(५) यह प्रेम है या चुनाव?

आपका किसी से प्रेम है। तो आप उस आदमी में चुनाव करते हैं और वही-वही देखते हैं जो प्रेम को मजबूत करे। सेलेक्टिव हो जाते हैं। कोई आदमी किसी आदमी को पूरा नहीं देखता। देख ले तो जिन्दगी बदल जाये,

उसकी खुद की भी बदल जाये। हम सब चुनाव करते हैं। जिससे हम प्रेम करते हैं, उसमें हम वे हिस्से देखते हैं जो हमारे प्रेम को मजबूत करते हैं। और कहते हैं, मैंने चुनाव ठीक किया, आदमी प्रेम के योग्य है, प्रेम किया ही जाता है ऐसे आदमी से, ऐसा आदमी है वह। लेकिन यह पूरा आदमी नहीं है। यह मन अपना चुनाव कर रहा है। जैसे मैं किसी कमरे में जाऊं और सफेद रंगों को चुन लूं और काले रंगों को छोड़ दूं। आज नहीं कल, मैं सफेद रंगों से ऊब जाऊंगा क्योंकि मन जिस चीज से परिचित होता जाता है, उससे ऊब जाता है। आज नहीं कल मैं ऊब जाऊंगा इस सौंदर्य की चुनाव की गयी प्रतिमा से। और जैसे ही मैं ऊबने लगूंगा वैसे ही वह जो असुन्दर मैंने छोड़ दिया था, दिखायी पड़ना शुरू हो जायेगा। वह तब दिखता नहीं था, मौजूद था ही। सुन्दर व्यक्ति में भी असुन्दर हिस्से हैं। असुन्दरतम व्यक्ति में भी सौन्दर्य छिपा है। जीवन बनता ही विरोध से है, जीवन की सारी व्यवस्था ही विरोध पर खड़ी होती है। काले बादलों में ही बिजली छिपी होती है और हर बिजली के पीछे भी काला बादल होता ही है। और हर अंधेरी रात के बाद ही सुबह पैदा नहीं होती, बल्कि हर सुबह के बाद काली रात आ जाती है। हर दुःख में खुशी ही नहीं छिपी है, हर खुशी के भीतर से दुःख का अंकुर भी निकलता है। जीवन ऐसे ही बहता है जैसे नदी दो किनारों के बीच बहती है। वह एक किनारे के साथ नहीं बह सकती। भले दूसरा किनारा आपको न दिखायी पड़ता हो या न देखना चाहते हों; लेकिन जब इस किनारे से ऊब जायेंगे तो दूसरा किनारा ही आपका डेरा बनेगा। तो जब आप एक व्यक्ति में सौन्दर्य देखना शुरू करते हैं तो आप चुनाव कर लेते हैं एक किनारे का। भूल जाते हैं कि नदी दो किनारों में बहती है, दूसरा किनारा भी है। उस दूसरे किनारे के बिना न तो नदी हो सकती है न एक किनारा हो सकता है। अकेला किनारा कहीं होता है ! किनारे का मतलब ही यह होता है कि वह जो दूसरे का है। पर आप चुनाव कर लेते हैं। फिर आज नहीं कल, सौन्दर्य से थक जायेंगे। सब चीजें थका देती हैं, सब चीजें ऊबा देती हैं। मन चाहता है रोज नया। रोज-रोज नया। और तब पुराना ऊबाने लगता है। फिर जब पुराना ऊबा देता है तो जो हिस्से आपने छोड़ दिये थे पहले चुनाव में, वे प्रकट होने लगते हैं। दूसरा किनारा दिखायी पड़ता है और जिसके प्रति प्रेम से भरे थे, उसी के प्रति घृणा से भर जाते हैं। जिसके प्रति आप श्रद्धा से भरे थे, उसी के प्रति अश्रद्धा से भर जाते हैं। जिसको आप भगवान् कहने गये थे,

उसी को आप शैतान कहने लग जाते हैं। जिससे आपने कहा था, तेरे बिना जी न सकेंगे, उसी से आप कह सकते हैं कि अब तेरे साथ न जी सकेंगे। मन द्वन्द्व में चलता है क्योंकि चुनाव करता है।

इसलिए जिसको द्वन्द्व से बाहर होना है, उसे चुनाव-रहित होना पड़ेगा, च्वाइसलेस होना पड़ेगा। वह चुनता ही नहीं। काला है तो उसे भी देखता है, सफेद है तो उसे भी देखता है और मान लेता है कि सफेद के बिना काला नहीं हो सकता, काले के बिना सफेद नहीं हो सकता। फिर उस आदमी की दृष्टि में कभी परिवर्तन नहीं होता। मैं चकित होता हूँ। सब संबंध परिवर्तित होते हैं। एक आदमी मेरे पास आता है—इतनी श्रद्धा, इतनी भक्ति भरकर आता है कि कभी सोचा भी नहीं जा सकता कि यह आदमी कभी विपरीत चला जायेगा। लेकिन मैं जानता हूँ इसकी श्रद्धा, इसकी भक्ति चुनाव है। यह विपरीत जा सकता है। तो जब वह विपरीत जाने लगता है, तो दूसरे लोग मेरे पास आकर कहते हैं यह कैसे संभव है ? आपके जो इतना निकट है, आपको इतनी भक्ति देता है, वह आपके विपरीत जा रहा है ! उनको पता नहीं कि यह बिलकुल नियमानुसार हो रहा है। लेकिन यह हो रहा है बिलकुल नियमानुसार। एक किनारा आपने चुना था और उस किनारे को छोड़कर दूसरा चुन लिया। और पहले किनारे को जब चुना था तब भी आपने अपने तर्क दे दिये थे कि मैं सही हूँ और दूसरे किनारे को चुनते वक्त भी आप तर्क दे लेंगे कि आप सही हैं।

(६) तर्क हर बात का होता है

मैं आप से कहता हूँ कि एक किनारे को चुनना गलत है। वह किनारा कौन-सा है, यह सवाल नहीं है और वह तर्क क्या है, यह भी सवाल नहीं है। जब कोई आकर मुझे भगवान् मानने लगता है तब भी मैं जानता हूँ कि वह एक किनारे को चुन रहा है। वह चुनाव गलत है। एक किनारे को चुन लेना गलत है। यह सवाल भी नहीं है कि वह क्या तर्क अपने को दे रहा है। वही आदमी कल मुझे शैतान मान लेगा और तब तर्क भी खोज लेगा। मैं नहीं कहता कि उसका, मुझे शैतान मान लेना गलत है। मैं कहता हूँ, उसका चुनाव गलत है। वह पूरे को नहीं देखता। चुनेगा तो बदलेगा। जहाँ तक चुनाव है, वहाँ तक परिवर्तन होगा। जब आप क्रोध में होते हैं तब आप एक

हिस्सा चुन लेते हैं अपने व्यक्तित्व का—वह जो क्रोध करने वाला है। जब क्रोध निकल जाता है, बिदा हो जाता है तब आप अपने व्यक्तित्व का दूसरा हिस्सा चुनते हैं जो पश्चात्ताप करनेवाला है। क्रोध कर लेते हैं एक हिस्से से। वह एक चुनाव था। आपकी प्रतिमा का एक रूप था। फिर पश्चात्ताप कर लेते हैं, वह आपकी प्रतिमा का दूसरा चुनाव है। किनारों के बीच नाव बहती रहती है। आपकी नदी बहती है। आप यात्रा करते रहते हैं। कभी इस किनारे लगा देते हैं नाव को, कभी उस किनारे लगा देते हैं।

प्रायश्चित दो किनारों के बीच चुनाव नहीं है। प्रायश्चित बहुत अद्‌भुत घटना है। पश्चात्ताप देख लेता है कि कर्म की कोई भूल है। प्रायश्चित्त देखता है कि मैं गलत हूं, कर्म नहीं, क्योंकि कर्म क्या गलत होगा ? गलत आदमी से गलत कर्म निकलते हैं। कर्म कभी गलत नहीं होते। गलत आदमी से गलत कर्म निकलते हैं। बबूल के काँटे गलत नहीं होते, वे बबूल की आत्मा से निकलते हैं। भला काँटे क्या गलत होंगे ? वे बबूल की आत्मा से निकलते हैं। लेकिन बबूल जब अपने काँटों को देखता है तो कहता है, दुखी हूँ। वृक्ष तो मैं ऐसा नहीं हूँ कि मुझसे काँटें निकलें। परिस्थिति ने निकाल दिये। या कि अपने को समझाये कि हो सकता है कुछ लोगों के भोजन के लिए मैंने ये काँटे निकाले हों कि ऊँट हैं, बकरियाँ हैं, भोजन नहीं पायेंगे तो भूखे मर जायेंगे। ऐसे मुझे काँटों का क्या सवाल ? काँटे निकलते हैं तो किसी की करुणा से निकलते हैं। क्रोध आता है आपको, तो किसी को बदलने के लिए आता है। तो उस आदमी को बदलना पड़ेगा न ? दया के कारण आप क्रोध करते हैं। बाप कर रहा है बेटे पर, माँ कर रही है बेटी पर। दया के कारण, करुणा के कारण कि इसको बदलेंगे नहीं तो बिगड़ जायेगा। और मजा यह कि इस क्रोध के बाद भी कहीं कोई सुधार दिखायी नहीं पड़ता। सारी दुनिया क्रोध करती आ रही है। सब इस ख्याल में क्रोध कर रहे हैं कि लोग बिगड़ जायेंगे और लोग हैं कि बिगड़ते चले जा रहे हैं। किसी में कोई अन्तर होता दिखायी नहीं पड़ता। नहीं, मालूम ऐसा होता है कि क्रोध का सम्बन्ध दूसरे को सुधारने से कम है, यह दूसरे को सुधारना अपने क्रोध के लिये तर्क खोजना ज्यादा है। यह दूसरा भी कल बड़ा होकर यही तर्क खोजेगा, अपने बच्चों को ऐसे ही सुधारेगा।

ये जो कर्म हैं, इन पर जिनका ध्यान है, वे पश्चात्ताप से आगे बढ़ेंगे और पश्चात्ताप से आगे बढ़ना ही नहीं है तो एक कदम आगे, फिर एक

उसी को आप शैतान कहने लग जाते हैं। जिससे आपने कहा था, तेरे बिना जी न सकेंगे, उसी से आप कह सकते हैं कि अब तेरे साथ न जी सकेंगे। मन द्वन्द्व में चलता है क्योंकि चुनाव करता है।

इसलिए जिसको द्वन्द्व से बाहर होना है, उसे चुनाव-रहित होना पड़ेगा, च्वाइसलेस होना पड़ेगा। वह चुनता ही नहीं। काला है तो उसे भी देखता है, सफेद है तो उसे भी देखता है और मान लेता है कि सफेद के बिना काला नहीं हो सकता, काले के बिना सफेद नहीं हो सकता। फिर उस आदमी की दृष्टि में कभी परिवर्तन नहीं होता। मैं चकित होता हूँ। सब संबंध परिवर्तित होते हैं। एक आदमी मेरे पास आता है—इतनी श्रद्धा, इतनी भक्ति भरकर आता है कि कभी सोचा भी नहीं जा सकता कि यह आदमी कभी विपरीत चला जायेगा। लेकिन मैं जानता हूँ इसकी श्रद्धा, इसकी भक्ति चुनाव है। यह विपरीत जा सकता है। तो जब वह विपरीत जाने लगता है, तो दूसरे लोग मेरे पास आकर कहते हैं यह कैसे संभव है ? आपके जो इतना निकट है, आपको इतनी भक्ति देता है, वह आपके विपरीत जा रहा है ! उनको पता नहीं कि यह बिल्कुल नियमानुसार हो रहा है। लेकिन यह हो रहा है बिल्कुल नियमानुसार। एक किनारा आपने चुना था और उस किनारे को छोड़कर दूसरा चुन लिया। और पहले किनारे को जब चुना था तब भी आपने अपने तर्क दे दिये थे कि मैं सही हूँ और दूसरे किनारे को चुनते वक्त भी आप तर्क दे लेंगे कि आप सही हैं।

(६) तर्क हर बात का होता है

मैं आप से कहता हूँ कि एक किनारे को चुनना गलत है। वह किनारा कौन-सा है, यह सवाल नहीं है और वह तर्क क्या है, यह भी सवाल नहीं है। जब कोई आकर मुझे भगवान् मानने लगता है तब भी मैं जानता हूँ कि वह एक किनारे को चुन रहा है। वह चुनाव गलत है। एक किनारे को चुन लेना गलत है। यह सवाल भी नहीं है कि वह क्या तर्क अपने को दे रहा है। मैं वही आदमी कल मुझे शैतान मान लेगा और तब तर्क भी खोज लेगा। मैं नहीं कहता कि उसका, मुझे शैतान मान लेना गलत है। मैं कहता हूँ, उसका चुनाव गलत है। वह पूरे को नहीं देखता। चुनेगा तो बदलेगा। जहाँ तक चुनाव है, वहाँ तक परिवर्तन होगा। जब आप क्रोध में होते हैं तब आप एक

हिस्सा चुन लेते हैं अपने व्यक्तित्व का—वह जो क्रोध करने वाला है। जब क्रोध निकल जाता है, बिदा हो जाता है तब आप अपने व्यक्तित्व का दूसरा हिस्सा चुनते हैं जो पश्चात्ताप करनेवाला है। क्रोध कर लेते हैं एक हिस्से से। वह एक चुनाव था। आपकी प्रतिमा का एक रूप था। फिर पश्चात्ताप कर लेते हैं, वह आपकी प्रतिमा का दूसरा चुनाव है। किनारों के बीच नाव, बहती रहती है। आपकी नदी बहती है। आप यात्रा करते रहते हैं। कभी इस किनारे लगा देते हैं नाव को, कभी उस किनारे लगा देते हैं।

प्रायश्चित दो किनारों के बीच चुनाव नहीं है। प्रायश्चित बहुत अद्भुत घटना है। पश्चात्ताप देख लेता है कि कर्म की कोई भूल है। प्रायश्चित देखता है कि मैं गलत हूं, कर्म नहीं, क्योंकि कर्म क्या गलत होगा ? गलत आदमी से गलत कर्म निकलते हैं। कर्म कभी गलत नहीं होते। गलत आदमी से गलत कर्म निकलते हैं। बबूल के कांटे गलत नहीं होते, वे बबूल की आत्मा से निकलते हैं। भला कांटे क्या गलत होंगे ? वे बबूल की आत्मा से निकलते हैं। लेकिन बबूल जब अपने कांटों को देखता है तो कहता है, दुखी हूं। वृक्ष तो मैं ऐसा नहीं हूं कि मुझसे कांटें निकलें। परिस्थिति ने निकाल दिये। या कि अपने को समझाये कि हो सकता है कुछ लोगों के भोजन के लिए मैंने ये कांटे निकाले हों कि ऊंट हैं, बकरियां हैं, भोजन नहीं पायेंगे तो भूखे मर जायेंगे। ऐसे मुझे कांटों का क्या सवाल ? कांटे निकलते हैं तो किसी की करुणा से निकलते हैं। क्रोध आता है आपको, तो किसी को बदलने के लिए आता है। तो उस आदमी को बदलना पड़ेगा न ? दया के कारण आप क्रोध करते हैं। बाप कर रहा है बेटे पर, मां कर रही है बेटी पर। दया के कारण, करुणा के कारण कि इसको बदलेंगे नहीं तो बिगड़ जायेगा। और मजा यह कि इस क्रोध के बाद भी कहीं कोई सुधार दिखायी नहीं पड़ता। सारी दुनिया क्रोध करती आ रही है। सब इस ख्याल में क्रोध कर रहे हैं कि लोग बिगड़ जायेंगे और लोग हैं कि बिगड़ते चले जा रहे हैं। किसी में कोई अन्तर होता दिखायी नहीं पड़ता। नहीं, मालूम ऐसा होता है कि क्रोध का सम्बन्ध दूसरे को सुधारने से कम है, यह दूसरे को सुधारना अपने क्रोध के लिये तर्क खोजना ज्यादा है। यह दूसरा भी कल बड़ा होकर यही तर्क खोजेगा, अपने बच्चों को ऐसे ही सुधारेगा।

ये जो कर्म हैं, इन पर जिनका ध्यान है, वे पश्चात्ताप से आगे बढ़ेंगे और पश्चात्ताप से आगे बढ़ना ही नहीं है तो एक कदम आगे, फिर एक

कदम वापस। क्रोध किया फिर पैर उठाकर पीछे रख लिया। फिर क्रोध किया, फिर पैर उठाकर पीछे रख लिया। यह एक ही जगह पर दौड़ने जैसी क्रिया है। कहीं ले जाती नहीं। इसलिए पश्चात्ताप से सजग हों। पश्चात्ताप आपको बदलेगा नहीं, बदलने का धोखा देता है। क्योंकि पश्चात्ताप के क्षण में आप होते हैं तब अपने सारे अच्छे गुण चुन लेते हैं। जब आप 'मिच्छामि दुक्कड़म्' कहते हैं, तब आप एक प्रतिमा होते हैं साक्षात् क्षमा की। मगर आप बाइलिंगुअल, द्विभाषी होते हैं। वह दूसरी भाषा भीतर छिपी बैठी होती है। वह अगर आपको दूसरा आदमी कह देगा कि अच्छा आप तो मानते हो, लेकिन मैं नहीं मानता, क्योंकि मैंने आज कोई अपराध नहीं किया, तो उसी वक्त दूसरी भाषा आपके भीतर सक्रिय हो जायेगी कि यह आदमी दुष्ट है। मैंने क्षमा माँगी और उसने क्षमा भी न माँगी। या आप किसी से कहें कि मैं क्षमा माँगता हूँ और वह कह दे किया क्षमा, तो पीड़ा शुरू हो जायेगी तत्काल। दूसरी भाषा आ जायेगी।

(७) द्विभाषी बिल्ली

सुना है मैंने एक चूहा अपने बिल के बाहर घूम रहा था। अचानक पैरों की आवाज सुनी। आवाज परिचित थी, बिल्ली की मालूम पड़ती थी। घबराकर बिल के भीतर चला गया। लेकिन जैसे ही भीतर गया चकित हुआ। बाहर तो कुत्ता भूँक रहा था—भों भों। चूहा बाहर आया। तत्काल बिल्ली के मुंह में चला गया। चारों तरफ देखा, कुत्ता कहीं भी नहीं था। चूहे ने पूछा, मार तो तू मुझे डाल, उसमें कोई हर्जा नहीं है, लेकिन एक बात, मरते हुए प्राणी की एक जिज्ञासा को पूरा कर दे। वह कुत्ता कहाँ गया? बिल्ली ने कहा, यहाँ कोई कुत्ता नहीं है। यू नो इट पेज टु बी बाइलिंगुअल। मैं कुत्ते की आवाज करती हूं, लेकिन हूँ बिल्ली। ऐण्ड इट पेज। तुम फँस गये मेरे चक्कर में, नहीं तो तुम फंसते ही नहीं। द्विभाषी हूँ, कुत्ते की भाषा बोलती हूँ, जबकि हूँ बिल्ली। इससे चूहे बड़ी आसानी से फँसते हैं।

हम सब द्विभाषी हैं, दो-दो भाषाएँ जानते हैं। बोलने की भाषा और है, होने की भाषा और है। पूरे दो किनारों के बीच चलते रहते हैं। पश्चात्ताप करके आप बड़े प्रसन्न होते हैं, जैसे क्रोध करके बहुत दुःखी और विषाद को उपलब्ध होते हैं। क्रोध करके विषाद आता है कि ऐसा बुरा आदमी मैं नहीं

था। पश्चात्ताप करके चित्त प्रफुल्लित होता है कि देखो कितना अच्छा आदमी हूँ। इस तरह अहंकार पुनः प्रतिष्ठित हुआ।

(८) गलत आदमी या गलत कोट

नहीं, प्रायश्चित का अर्थ है भूल कर्म में नहीं है, भूल मुझमें है, गलत मैं हूँ। मुल्ला नसरुद्दीन अपने क्लब के बाहर निकल रहा है। एक आदमी एक कोट को पहनने की कोशिश कर रहा है। क्लॉक रूम से मुल्ला उससे कहता है, कि आप बड़े गलत आदमी हैं। उस आदमी ने कहा, मैंने तो कुछ किया ही नहीं, मैं अपना कोट पहन रहा हूँ। मुल्ला ने कहा कि इसीलिए तो मैं कह रहा हुं कि आप गलत आदमी हैं। यह कोट मुल्ला नसरुद्दीन का है। आदमी ने कहा, ये मुल्ला नसरुद्दीन कौन है? मुल्ला ने कहा, मुल्ला नसरुद्दीन मैं हूँ और आप मेरा कोट पहन रहे हैं। उस आदमी ने कहा, नासमझ! ऐसा क्यों नहीं कहता कि मैं गलत कोट पहन रहा हूं? तू ऐसा क्यों कहता है कि मैं गलत आदमी हूं। मुल्ला ने कहा, गलत आदमी ही गलत कोट पहनते हैं।

जब आप कोई गलत काम करते हैं तो आप चाहते हैं कि कोई ज्यादा से ज्यादा इतना कहे कि आपसे गलत काम हो गया, और यह न कहे कि आप गलत आदमी हैं क्योंकि काम की तो एक छोटी-सी सीमा है एक क्षण में निपट जायेगा, लेकिन आप? आप तो पूरे जीवन पर आरोपित हैं। अगर कोई कहे कि आप गलत हैं, तो यह जीवन भर के लिए निन्दा हो गयी। अगर कर्म गलत है तो यह क्षण की बात है। इससे विपरीत कर्म किया जा सकता है। किये को अनकिया किया जा सकता है। डन को अनडन किया जा सकता है। किये के लिए माफी माँगी जा सकती है। किये के विपरीत किया जा सकता है। कर्म को दोष देने में कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन ध्यान रहे, वही आदमी प्रायश्चित को उपलब्ध होता है, जो कहता है मैं गलत कोट नहीं पहन रहा, मैं आदमी ही गलत हूँ। लेकिन तब प्राणों में बड़ा मंथन होता है।

तब सवाल यह नहीं है कि मैंने कौन-कौन से काम गलत काम किये। तब सवाल यह है कि चूंकि मैं गलत हूं इसलिए मैंने जो भी किया होगा, वह गलत होगा। वह गलत ही किया होगा। तब चुनाव ही नहीं है कि कौन-सा मैंने गलत

किया और कौन-सा मैंने ठीक किया। जब मैं गलत हूं, तो मैंने जो भी किया होगा, वह गलत किया होगा। एक बेहोश आदमी शराब पिये रास्ते पर लड़खड़ाता है। वह यह नहीं कहता है कि मेरे कौन-कौन से पैर लड़खड़ाये। या यह नहीं कहेगा कि मेरे कौन-से पैर ठीक पड़े और कौन-से लड़खड़ाये। जब वह होश में आयेगा तब कहेगा कि मैं तो बेहोश था, मेरे सभी पैर लड़खड़ाये। वे जो ठीक मालूम पड़ते थे, वे भी गलती से ठीक पड़े होंगे। क्योंकि ठीक पड़ने का तो कोई उपाय ही नहीं था, क्योंकि मैं शराब पिये था। तो हम भीतर एक गहरे नशे में हैं। और वह गहरा नशा यह है कि हम एक अर्थ में हैं ही नहीं, बिल्कुल सोये हुए हैं। प्रायश्चित को महावीर ने क्यों अन्तर-तप का पहला हिस्सा बनाया? क्योंकि वही व्यक्ति अन्तर्यात्रा पर निकल सकेगा जो कर्म की गलती को छोड़कर स्वयं की गलती देखना शुरू करेगा। देखिए, तीन तरह के लोग हैं। एक वे लोग हैं जो दूसरे की गलती देखते हैं। एक वे लोग हैं जो कर्म की गलती देखते हैं। एक वे लोग हैं जो स्वयं की गलती देखते हैं। जो दूसरे की गलती देखते हैं, वे तो पश्चात्ताप भी नहीं करते। जो कर्म की गलती देखते हैं वे पश्चात्ताप करते हैं। जो स्वयं की गलती देखते हैं, वे प्रायश्चित में उतरते हैं। वह दूसरा ही गलत होगा, तब प्रायश्चित का कोई सवाल ही नहीं है।

लेकिन ध्यान रहे, दूसरा कभी भी गलत नहीं होता। किस अर्थ में कभी गलत नहीं होता? इसे बड़ा कठिन होगा समझना कि दूसरा कभी भी गलत नहीं होता। लेकिन अन्तर्यात्रा के पथिक को यह समझ लेना होगा कि दूसरा कभी भी गलत नहीं होता। आप कहेंगे कि आप कैसी बात कर रहे हैं क्योंकि मैं गलत होता हूँ तो दूसरों के गलत होने के कारण ही। और अगर दूसरा गलत नहीं होता तो मैं कैसे गलत होऊँगा। जब मैं कह रहा हूँ दूसरा कभी गलत नहीं होता तो इसलिए नहीं कि दूसरा गलत नहीं होता है, लेकिन स्वयं के लिए। आप गलत होते हैं स्वयं के लिए। दूसरे के लिए आप गलत नहीं हो सकते।

(९) वह घाटी जहाँ गालियाँ गूंजती हैं

आप महावीर के पास जायें तब आपको तत्काल पता चल जायेगा। आप गाली दें। महावीर में गाली ऐसे गूंजेगी जैसे किसी घाटी में गूंजे और विलीन

हो जाये। आप महावीर को क्रोधित न कर पायेंगे। और तब अगर आप क्रोधी आदमी हैं, तो आपको और ज्यादा क्रोध आयेगा कि दूसरा आदमी क्रोधित तक न हुआ। इससे और क्रोध आयेगा। जीसस को सूली पर लटकाना पड़ा, क्योंकि यह आदमी उन आदमियों के सामने दूसरा गाल करता रहा, जो चांटा मारने आये थे। उनका क्रोध भयंकर होता चला गया। अगर यह भी उनको एक चांटा मार देता तो जीसस को सूली पर लटकाने की कोई जरूरत न रह जाती। बात कर ली होती, समान तल पर आ गये होते। फिर तो कोई कठिनाई न थी।

(१०) हर कोई वहाँ ईश्वर था

एनी बीसेंट जे० कृष्णमूर्ति को कैम्ब्रिज और आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के अलग-अलग कालेजों में भरती कराने के लिए घूम रही थीं, पढ़ने के लिए। लेकिन किसी कालेज का प्रिंसिपल कृष्णमूर्ति को लेने को राजी न हुआ। जिस कालेज में भी एनी बीसेंट गयीं, एनी बीसेंट ने कहा, साक्षात भगवान् का अवतार है, दिव्य पुरुष है। इनमें वर्ल्ड-टीचर का, जगत्-गुरु का जन्म होने को है।

उन प्रिंसिपल ने कहा, क्षमा करें। इतनी विशिष्टता आप उन्हें दे रही हैं कि हम कालेज में भरती न कर सकेंगे। एनी बीसेंट ने कहा, क्यों? तो उन्होंने कहा कि इसलिए भरती नहीं कर सकेंगे कि एक तो इस बच्चे को परेशानी होगी इतनी महत्ता का बोझ लेकर चलने में, और दूसरे लड़के इसको परेशान करेंगे, यह शांति से न पढ़ पायेगा, शांति से न जी पायेगा। इसलिए हम इसे न लेंगे।

लेकिन सभी प्रिन्सिपलों ने एक खास कालेज का नाम बताया कि आप वहाँ चली जाओ, वह कालेज भरती कर लेगा।

एनी बीसेंट बहुत हैरान हुई, क्योंकि वह कालेज, अच्छा कालेज नहीं था जिसका लोग नाम लेते थे। उसकी प्रतिष्ठा नहीं थी। एनी बीसेंट को जब कोई उपाय न रहा, तो वे कृष्णमूर्ति को लेकर उस कालेज में गयीं। उस कालेज के प्रिन्सिपल ने कहा, खुशी से भरती हो जाओ, मजे से, बिकाज इन आवर कालेज एवरी वन इज ए गॉड। एवरी वन विल ट्रीट यू इक्वली। कोई दिक्कत न आयेगी। इधर सभी लड़के भगवान् हैं हमारे कालेज में। कोई कठिनाई

न आयेगी बल्कि तुमको दिक्कत यही हो सकती है कि कई उसमें 'बिगर गॉड्स' हैं। वे तुमको दबायेंगे। तुमको छोटा गॉड सिद्ध करेंगे। तुम जरा सावधान रहना। बाकी और कोई अड़चन नहीं है। दे विल ट्रीट यू इक्वली। समान व्यवहार करेंगे।

हम जो व्यवहार कर रहे हैं दूसरे से, वह दूसरे पर कम निर्भर है, हम पर ज्यादा निर्भर है। हमें लगता ऐसा ही है कि दूसरे पर निर्भर है, वही हमारी भ्रान्ति है। वह हम पर ही निर्भर है। हम ही उसे उसकाते हैं जाने-अनजाने, और जब दूसरा उसे करने लगता है तो लगता है कि वे दूसरे से आ जाते हैं। तो जिस कालेज में हर कोई अपने को भगवान् समझता है, उस कालेज में कोई दिक्कत नहीं होती प्रिन्सिपल को। वह कहता है कोई अड़चन न आयेगी। लेकिन जिस कालेज में ऐसा नहीं है, उसका प्रिन्सिपल भयभीत हो रहा है कि इससे अड़चन खड़ी होगी, आसान नहीं होगा कृष्णमूर्ति का यहाँ रहना। महावीर के पास आप जायेंगे तो आपको कठिनाई आयेगी। लेकिन जब महावीर आपके साथ समानता का व्यवहार करेंगे तो कठिनाई न आयेगी। आप महावीर को गाली दें और महावीर भी आपको गाली दे दें तो आप ज्यादा प्रसन्न घर लौटेंगे क्योंकि बराबरी सिद्ध हुई। अगर महावीर गाली न दें और मुस्करा दें तो फिर आप रात बेचैन रहेंगे कि यह आदमी कुछ ऊपर मालूम पड़ता है, इसको नीचे लाना पड़ेगा। इसलिए कई बार तो ऐसा हुआ कि बहुत-से साधुओं ने सिर्फ इसलिए गाली दी क्योंकि आपको उनको नीचे लाने के लिए व्यर्थ की कोशिश न करनी पड़े। इस पर आप हैरान होंगे। यह जगत् बहुत अजीब है। कई साधुओं को आपके साथ इसलिए दुर्व्यवहार करना पड़ा, ताकि आपको उनके साथ दुर्व्यवहार न करना पड़े। रामकृष्ण गाली देते थे, ठीक माँ-बहन की गाली देते थे। ढेर साधु गालियाँ देते रहे, पत्थर मारते रहे और सिर्फ इसलिए कि आपको कष्ट न उठाना पड़े उनको फाँसी वगैरह देने का।

(११) कभी सुना है ऐसा ?

और यह बड़े मजे की बात है कि अब तक ऐसे किसी साधु को फाँसी नहीं दी गयी, जिसने गाली दी हो और पत्थर फेंके हों। यह आपको पता है पूरे इतिहास में मनुष्य जाति के ! सुकरात को जहर पिला देते हैं। महावीर को पत्थर मारते हैं। बुद्ध को परेशान करते हैं। हत्या की अनेक कोशिशें की

जाती हैं बुद्ध को। चट्टान सरका दी जाती है, पागल हाथी छोड़ दिये जाते हैं। मंसूर को काट डालते हैं, जीसस को फांसी पर लटका देते हैं। लेकिन ऐसा एक भी उल्लेख नहीं है कि आपने उस साधु के साथ दुर्व्यवहार किया हो, जिसने आपके साथ दुर्व्यवहार किया हो। यह बड़ा ऐतिहासिक तथ्य है। बात क्या है? असल में जो आपको गाली देता है, यू ट्रीट हिम इक्वल। बात खतम हो गयी। वह आदमी इतना ऊपर नहीं है जिसको फांसी-वासी लगानी पड़े, नीचे लाना पड़े, अपने ही जैसा हैं, चलेगा। कई कुशल साधु सिर्फ इसलिए गाली देने के लिए मजबूर हुए कि आपको नाहक में परेशानी में न पड़ना पड़े। क्योंकि फांसी लगाने में परेशानी साधु को कम होती है, आपको ही ज्यादा होती है। बड़ा इंतजाम करना पड़ता है। दूसरा गलत नहीं है इस स्मरण से ही अंतर्यात्रा शुरू होती है अगर दूसरा गलत है तब तो अंतर्यात्रा शुरू ही नहीं होती। दूसरा गलत है या नहीं, यह सवाल ही नहीं है। दूसरा गलत है यह दृष्टि ही गलत है। दूसरा गलत है या नहीं, इसमें आप पड़ेंगे तो कभी दूसरा सही मालूम पड़ेगा, कभी गलत मालूम पड़ेगा। चुनाव शुरू हो जायेगा। दूसरा सही है या गलत है, यह साधक की दृष्टि नहीं है। दूसरे को गलत ठहराना गलत है, यह साधक की दृष्टि है। मैं गलत हूं या नहीं, यह ठहराना साधक की दृष्टि है। मैं गलत हूं, यह सुनिश्चित मानकर चलना साधक की दृष्टि है। प्रायश्चित तब शुरू होता है, जब मैं मानता हूँ कि मैं गलत हूँ। सच तो यह है कि जब तक मैं हूँ, तब तक गलत होऊँगा ही, होना ही गलत है। वह जो अस्मिता, वह जो इगो है—'मैं हूँ' का, वही मेरी गलती है। मेरा होना ही मेरी गलती है। जब तक मैं 'नहीं' न हो जाऊँ, तब तक प्रायश्चित फलित नहीं होगा। और जिस दिन मैं नहीं हो जाता हूं, शून्यवत् हो जाता हूँ, उसी दिन मेरी चेतना रूपांतरित होती है और नये लोक में प्रवेश करती है।

फिर भी ऐसा नहीं है कि ऐसी रूपान्तरिक चेतना में आपको गलतियाँ न मिल जायें। क्योंकि गलतियाँ आप अपने कारण खोजते हैं। एक बात पक्की है कि ऐसी चेतना को आपमें गलतियाँ मिलनी बन्द हो जायेंगी। इसीलिए वे आपसे कह सके कि आप परमात्मा हैं। आप शुद्ध आत्मा हैं। आपके भीतर मोक्ष छिपा है। द किंगडम आफ गॉड इज विदिन यू। इसलिए जीसस जुदास के पैर पड़ सके। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि जुदास ने तीस रुपये में जीसस को बेच दिया सूली पर लटकाने के लिए। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इससे कोई अन्तर ही नहीं पड़ता, क्योंकि जिस आदमी ने अपने को बदला

हुआ पाया, उसको फिर कहीं किसी में गलती दिखायी नहीं पड़ती। और ज्यादा से ज्यादा उसे अगर कुछ दिखायी पड़ता है तो इतना ही दिखायी पड़ता है कि आप बेहोश हो। और बेहोश आदमी को क्या गलत ठहराना! बेहोश आदमी तो जो भी करता है, गलत होता है; लेकिन होश वाला आदमी बेहोश आदमी को क्या गलत ठहराये! बहुत मजेदार घटनाएं घटती हैं। तब, लेकिन होश वाले आदमियों ने अपने संस्मरण नहीं लिखे हैं। वे लिखें तो बड़े अद्भुत हों। होश वाले आदमियों का बेहोश आदमियों के बीच जीना बड़ा इस्ट्रेंज मामला है। बड़ा विचित्र है, लेकिन किसी ने अपना संस्मरण लिखाया नहीं क्योंकि आप उस पर भरोसा नहीं कर सकेंगे कि ऐसा हो सकता है। ऐसे ही जैसे आपको पागलखाने में बंद कर दिया जाय और आप पागल न हों, तब जो-जो घटनाएँ आपके जीवन में घटेंगी, उनसे विचित्र घटनाएँ कहीं भी नहीं घट सकतीं। और अगर आप बाहर आकर कहेंगे तो कोई भरोसा नहीं कर सकेगा कि ऐसा हो सकता है। पागल भरोसा नहीं करें, क्योंकि वे पागल हैं। गैरपागल भरोसा नहीं करेंगे, क्योंकि उन्हें पागलों का कोई पता नहीं। और आप दोनों हालत में रह लिये, आप पागल नहीं थे और पागलों के बीच में रहे।

(१२) मैं रजनीश को मार डालूँगा

एक वृद्ध साधक हैं, सरल और सीधे आदमी। कोई सोच भी नहीं सकता कि उनमें कहीं हिंसा की परतें दबी होंगी। सबके भीतर परतें दबी हैं। वे अभी आजोल आश्रम में गहरे ध्यान में थे। एक दिन ध्यान में अच्छी गहराई में गये। गहराई में गये इसीलिए यह घटना घटी, नहीं तो घटती नहीं। उन्होंने आनंद मधु से बाहर निकाल कर सुबह कहा कि मैं इसी वक्त बंबई जा रहा हूँ। मुझे रजनीश की आज ही हत्या कर देनी है। मेरा उनसे इस जन्म में कोई संबंध नहीं सिवाय इसके कि उन्होंने मुझसे संन्यास लिया। वह भी एक क्षण का मिलना हुआ। इससे ज्यादा कोई संबंध नहीं। पिछले जन्मों की याद करने की मैंने बहुत कोशिश की कि मेरा उनसे कोई संबंध रहा हो। शांत सीधे आदमी हैं। समस्त जीवन को छोड़कर साधना की दिशा में गये और गहरे गये, इसलिए यह घटना घटी। नहीं तो ऊपर से शांत व सीधे हैं। तो हुआ यह कि मधु परेशान हुई। वे एकदम तैयार कि हत्या करने जाना है। सामने ही मेरा चित्र रखा था वह चित्र उसने सामने रख दिया और कहा,

पहले इसे फाड़ डालें, पहले इस की हत्या कर डालें फिर आप जायें। चित्त दूसरे किनारे पर तत्काल चला गया और वे बेहोश होकर गिर पड़े। रोये, पछताये। कुछ किया नहीं है अभी तक, चित्र भी नहीं फाड़ा। लेकिन गहरे तल पर कहीं हिंसा का कोई आवरण सबके भीतर है। और जितने गहरे जायेंगे, उतना ही हिंसा का आवरण मिलेगा। और हिंसा जब शुद्ध प्रकट होती है तो अकारण प्रकट होती है। अशुद्ध हिन्सा है, जो कारण खोजकर प्रकट होती है। जब आप कारण खोज कर क्रोधित होते हैं, तो उसका मतलब है कि क्रोध बहुत गहरे तल पर नहीं है आपका। जब गहरे तल पर क्रोध होता है तब अकारण क्रोधित होते हैं। अभी तो कारण मिलता है तब क्रोधित होते हैं, लेकिन तब आप क्रोधित होते हैं इसलिए फौरन कारण खोजते हैं।

(१३) पागलों के बीच जीने के कुछ अनुभव

अभी एक युवक मेरे पास अपनी हिंसा पर प्रयोग कर रहा था। हर भाव की सात परतें होती हैं मनुष्य भीतर। जैसे हर मनुष्य के भीतर सात शरीरों की परतें होती हैं—सेवन बॉडीज की, वैसे हर भाव की सात परतें होती हैं। ऊपर से गाली दे लेते हैं, ऊपर से पश्चात्ताप कर लेते हैं। इससे कुछ नहीं हो जाता। भीतर की परतें वसी की वैसी बनी रहती हैं—सुरक्षित। और जितने गहरे उतरते हैं, उतने अकारण भाव प्रकट होने शुरू होते हैं जब गहरी, सातवीं पर्त पर पहुँचते हैं तो कोई कारण नहीं रह जाता। उस युवक को हिंसा की तकलीफ थी। कहीं अपने पिता की हत्या करने का ख्याल है, कहीं अपनी माँ की हत्या करने का ख्याल है। मैं जानता था कि यह जो अपने पिता और माँ की हत्या के ख्याल से भरा है, अगर यह मेरा शिष्य बना तो मैं फादर इमेज हो जाऊँगा। आज नहीं कल वह मेरी हत्या के ख्याल से भरेगा। क्योंकि गुरु को भक्तों ने जब कहा है कि गुरु पिता है, और गुरु माता है, गुरू ब्रह्म है तो अकारण नहीं कहा है। यह 'फादर इमेज' है इसलिए कि गुरु जो हूँ। जब एक व्यक्ति किसी के चरणों में सिर रखता है और उसे गुरु मान लेता है, तो वही गुरु हो गया, वही पिता हो गया, वही माँ हो गया। लेकिन ध्यान रहे पिता के प्रति जो उसके ख्याल थे, वही अब इस पर आरोपित होंगे। जिन्होंने गाया कि तुम पिता हो, तुम माँ हो, उन्हें इसका कुछ पता नहीं। जब एक आदमी मुझसे आकर कहता है कि आप ही माता, आप ही पिता, आप ही ब्रह्म, आप ही सब कुछ हैं, तब मैं जानता हूँ कि अब मैं

फंसा। फंसा इसलिए कि अब तक इसकी सब पर जो धारणाएँ थीं, वे मेरी होंगी। इसको कुछ भी पता नहीं है। इसलिए मैं कहता हूँ कि पागलखाने में रहने का अनुभव कैसा होता है, उसको कुछ भी पता नहीं। यह तो बहुत सद्भाव से कह रहा है, बहुत आनन्द से कह रहा है। अहो-भाव है। इसमें क्या बुराई हो सकती है! कितनी श्रद्धा से साष्टांग मेरे चरणों में पड़ा हुआ है कि आप ही सब कुछ हैं। लेकिन कल ही वह सब मुझे बताकर गया है कि वह पिता की हत्या करना चाहता है। मैं जानता हूँ, आज नहीं कल यह मुझ पर होना है। अभी कल मुझे एक मित्र ने आकर खबर कि वह कहता है कि मेरी हत्या कर देगा। जिनको यह खबर मिली वे घबरा गये। उन्होंने कहा कि यह मामला है? यह पागलों के बीच रहने का मामला है।

एक और मजेदार घटना अभी घटी ही है, वह भी आपको बताऊँ। एक युवती मेरे पास ध्यान कर रही थी। (और यह घटना इतनी महिलाओं को घटी है, कि यह कह देना अच्छा होगा कि कहीं न कहीं इस सम्बन्ध में आपको खबर पहुँचेगी।) एक महिला दिल्ली में रहती है। मुझे वहाँ से लिखती है कि रोज आप सशरीर मुझसे संभोग करते हैं दिल्ली में आकर। ठीक है, दिल्ली में रहती है इसलिए कोई झंझट नहीं। इसमें कोई अड़चन नहीं। एक महिला ने मुझसे आकर कहा कि मुझे पक्का स्मरण आने लगा है कि मैं पिछले जन्म की आपकी पत्नी हूँ। मैंने कहा, होगा। अब उसको छिपाने जैसी बात नहीं लगी, सोचा कि यह तो बड़े गौरव की बात है, तो उसने जाकर औरों को बताया, फिर उसने दूसरी महिला को बताया। यह महिला तो ग्रामीण थी, ज्यादा समझदार नहीं थी। भोली-भाली थी। लेकिन जिसको बताया, वह तो यूनिवर्सिटी की ग्रेजुएट है, पढ़ी लिखी है, बड़े परिवार की है। वह महिला मेरे पास आयी और उसने कहा, यह क्या नासमझी की बात कर रही है यह औरत? यह नहीं हो सकता, यह बिल्कुल गलत है। तो मैंने कहा, तुमने ठीक सोचा। उसे समझा देना। उसने कहा, मैंने उसे समझाया, लेकिन वह मानने को राजी नहीं है। वह कहती है, मुझे पक्का भरोसा है। मुझे स्मरण है। वह मानने को राजी ही नहीं है। लेकिन यह बात गलत है, यह प्रचलित नहीं होनी चाहिए। भूल से मैंने एक बात उससे पूछ ली, तो बड़ी मुश्किल हो गयी। मैंने उस स्त्री से पूछा कि मान लो वह मानने को राजी नहीं होती तो तेरा क्या पक्का प्रमाण है कि वह गलत कहती है। वह बोली, इसलिए

कि पिछले जन्म में तो मैं आपकी औरत थी। तो दोनों कैसे हो सकती हैं। अब कुछ कहने का मामला ही न रहा। बात ही खतम हो गयी। अब इससे बड़ा प्रमाण हो भी क्या सकता है? तो पागलों के बीच रहना बड़ा मुश्किल है, अत्यंत कठिन है। मैंने अभी कहा, वह स्त्री तो दिल्ली में थी, कोई दिक्कत नहीं है। अभी पिछले दिनों मेरे पास एक अमरीकन लड़की ध्यान कर रही थी दो महीने से। उसने मुझसे चार छः दिन के ध्यान के बाद कहा, जब भी मैं आप के पास आकर बैठती हूँ, आंख बंद करती हूँ तो मुझे ऐसा लगता है कि आप मुझसे संभोग कर रहे हैं। मैंने कहा, कोई फिक्र न करो, संभोग का जो भाव आये उसको भी भीतर ले जाने की कोशिश करो। वह जो ऊर्जा है, उसको ऊपर की यात्रा पर ले जाओ। उसने मुझसे कहा कि आप हर दो दिन में मुझे कम से कम दस मिनट पास बैठने का मौका दे दें क्योंकि यह इतना रसपूर्ण है कि मुझे असली संभोग में भी उतना रस नहीं आता।

यहाँ मेरे सामने दो ही विकल्प हैं, या तो उसको इनकार कर दूँ, क्योंकि यह एक खतरा मोल लेना है। लेकिन मैं यह भी देख रहा हूँ कि उसे इन्कार भी करना गलत है क्योंकि उसमें सच में ही परिवर्तन हो रहा है। और अगर संभोग अंतर्मुखी हो जाय तो बड़ी क्रांति घटित होती है।

वह दो महीने मेरे साथ प्रयोग करती रही। लेकिन मैंने उससे कहा, ध्यान रखना इन दो महीनों में भूलकर भी शारीरिक संभोग मत करना। वह अपने पति के साथ थी। मैंने पूछा कि कितने संभोग करती हो? उसने बताया, सप्ताह में कम से कम दो तीन बार। इससे कम में तो नहीं चल सकता है। वह पति तो मानने को राजी नहीं है। तो मैंने कहा कि यह तो ध्यान में संभोग चल रहा है, वहां तक तो ठीक है। लेकिन कल तू गर्भवती हो जाये तो मैं जिम्मेवार न हो जाऊं! और यह होने वाला है। उसने कहा—नहीं, यह कैसी बात है?

और यही हुआ। अभी कल मुझे आकर किसी ने खबर दी कि उसका पति कहता है कि वह मुझसे गर्भवती हो गयी है। ये बड़े मजे की बातें हैं, लेकिन पागलों के बीच जीना बड़ा कठिन है, अति कठिन है। इतनी भीड़ है उनकी। पर उनको मैं गलत नहीं कहता।

(१४) यह है आलम बेहोशों का

गलत वे नहीं है। सिर्फ बेहोश हैं। वे क्या कर रहे हैं, उन्हें पता नहीं है। वे क्या कह रहे हैं, उन्हें पता नहीं है। क्या हो रहा है, उन्हें पता नहीं है। क्या प्रोजेक्ट कर रहे हैं, क्या सोच रहे हैं, क्या माव रहे हैं, इसका उन्हें कोई पता नहीं है। वे बिल्कुल बेहोश हैं। सोये हुए हैं और सोने में जो भी कर सकते हैं, वह कर रहे हैं। ध्यान रहे हमारे चित की दो दशाएँ है, एक सोयी हुई चेतना है हमारी, एक जागृति की चेतना है। प्रायश्चित जाग्रत चेतना का लक्षण है पश्चात्ताप सोयी हुई चेतना का लक्षण है। वह युवक जो मेरी हत्या करने को कह रहा है, कल आकर मुझसे माफी माँग जाये, उसका कोई मतलब नहीं है। आज जो कह रहा है, उसका भी कोई मतलब नहीं है। कल यह माफी मांग जायेगा, इसका भी कोई मतलब नहीं हैं। यह माफी मांगना भी उसकी नींद से आ रहा है। यह क्रोध भी उसी नींद से आ रहा है। यह स्त्री समझ रही है कि गर्भवती मेरे द्वारा हो गयी। यह जिस नींद से आ रहा है, कल उसी नींद से कुछ और आ जायेगा। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। गलत-सही इसमें चुनाव नहीं है। सिर्फ सोये हुए लोग हैं। और सोया हुआ आदमी जो कर सकता है, वह कर रहा है। अभी सोये हुये आदमी के प्रति पश्चात्ताप की शिक्षा से कुछ भी न होगा। इसे स्मरण दिलाना जरूरी है। तुम क्या कर रहे हो, यह सवाल नहीं है बल्कि सवाल यह है कि तुम क्या हो? तुम भीतर क्या हो? तुम उसी को फैलाकर बाहर ले जाते हो। और वही तुम देखने लगते हो। और जितना कोई गहरा उतरेगा, उतना ही अकारण भावनाएँ प्रक्षिप्त होती दिखती हैं और सजीव और साकार मालूम होने लगती हैं। और जब वे साकार मालूम होने लगती हैं तो जो हम देखना चाहते हैं, देख लेते हैं। और ध्यान रहे, हम वही नहीं देखते हैं जो है, हम वह देख लेते हैं जो देखना चाहते हैं या देख सकते हैं। हम वह नहीं सुनते हैं, जो कहा जाता है। हम वह सुन लेते हैं, जो हम सुनना चाहते हैं या सुन सकते हैं। जिंदगी अनंत है। उसमें से हम चुनाव कर रहे हैं। और हम भी अनंत हैं, उसमें से भी हम चुनाव कर रहे हैं। कभी हम चुन लेते हैं: क्रोध करने की वृत्ति, कभी पश्चात्ताप की वृत्ति, कभी घृणा की और कभी प्रेम की, यों हम दोनों हालत में सोये हुये आदमी हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।

(१५) 'आई वान्ट टु गो आउट'

एक रात एक शराब घर के मालिक की टेलीफोन की घंटी जोर से बजने लगी। दो बजे रात, गुस्से में परेशान, नींद टूट गयी। फोन उठाया। पूछा कौन है ? उसने कहा, मुल्ला नसरुद्दीन। क्या चाहते हो दो बजे रात को ? उसने कहा, मैं यही पूछना चाहता हूँ कि शराब घर खुलेगा कब ? ह्वेन डू यू ओपेन ? उत्तर मिला यह भी कोई बात है ! तू रोज का ग्राहक। दस बजे खुलता है। यह भी दो बजे रात में फोन करके पूछने की कोई बात है ! उसने गुस्से में फोन पटक दिया फिर सो गया। सुबह चार बजे फिर फोन की घन्टी बजी। उठाया, कौन है ? उसने कहा, मुल्ला नसरुद्दीन। कब तक खोलोगे दरवाजे ? उस मालिक ने कहा, तू ज्यादा पी गया, पागल हो गया ? अभी चार ही बजे हैं, दस बजे खुलने वाला है। सुबह दस बजे आया भी, तो मैं तुझे घुसने नहीं दूंगा। आई विल नॉट अलाऊ यू इन। मुल्ला ने कहा, हू वांट्स टु कम इन ? आई वान्ट टु गो आउट। मैं तो भीतर बन्द हूँ। खोलो जल्दी, नहीं तो मैं पीता चला जा रहा हूँ। अभी तो मुझे पता चल रहा है कि बाहर भीतर में फर्क है। थोड़ी देर वह भी कुछ पता नहीं चलेगा। अभी तो मुझे तेरा फोन नम्बर याद है। थोड़ी देर में वह भी नहीं रहेगा। अभी तो मैं बता सकता हूँ कि मुल्ला नसरुद्दीन हूँ। थोड़ी देर में वह भी नहीं बता सकूंगा। जल्दी खोलो।

हम सब ऐसी तन्द्रा में हैं, जहाँ पता भी नहीं चलता कि बाहर क्या है, भीतर क्या है। मैं कौन हूँ, यह भी पता नहीं चलता। कहाँ जाना चाह रहे हैं, यह भी पता नहीं चलता। कहाँ से आ रहे हैं, यह भी पता नहीं चलता। क्या प्रयोजन है, किसलिए जी रहे हैं, कुछ पता नहीं चलता है। एक बेहोशी है, एक गहरी बेहोशी। उस बेहोशी में हाथ पैर मारे चले जा रहे हैं। उस हाथ पैर मारने को हम कर्म कहते हैं। कभी किसी को गलत लग जाता है तो माफी माँग लेते हैं, कभी किसी को लगने से कोई प्रसन्न हो जाता है तो कहते हैं प्रेम कर रहे हैं। कभी लग जाता है, चोट खा जाता है, वह आदमी नाराज हो जाता है तो कहते हैं—माफ करना, गलती हो गयी। हाथ वही है, अन्धेरे में मारे जा रहे हैं। कभी ठीक, कभी गलत—ऐसा लगता हुआ मालूम पड़ता है, लेकिन हाथ बेहोश हैं, वे सदा ही गलत हैं। प्रायश्चित में उतरना हो तो जान लेना कि मैं गलत हूँ। गलत का मतलब कि मैं सोया हुआ हूँ, बेहोश हूँ।

मुझे कुछ भी पता नहीं है कि मेरे पैर कहाँ पड़ रहे हैं, क्यों पड़ रहे हैं। आपको पता है, आप क्या कर रहे हैं ? कभी एक दफा अपने को झकझोर कर खड़े होकर सोचा है दो मिनट कि क्या कर रहे हैं यह जिन्दगी में आप ? यह क्या हो रहा है आपसे ? क्या इसीलिए आये हैं ? यही है अर्थ ? अगर जोर से झकझोरा तो एक सेकेंड के लिए आपको लगेगा कि सारी जिन्दगी व्यर्थ मालूम पड़ती है।

प्रायश्चित में वही उतर सकता है जो अपने को झकझोर कर पूछ सके कि क्या है अर्थ ? इस जिन्दगी का मतलब क्या है, जो मैं जी रहा हूं ? यह सुबह से शाम तक का चक्कर, यह क्रोध और क्षमा का चक्कर, यह प्रेम और घृणा का चक्कर, यह मित्रता और दुश्मनी का चक्कर, यह सब क्या है ? यह धन और यश और अहंकार और यह पद और मर्यादा, यह सब क्या है ? जो कुछ मैंने किया इसमें कोई अर्थ है ? इसमें मैं किसी तरह बढ़ रहा हूं ? कहीं पहुंच रहा हूं ? कोई यात्रा हो रही है, कोई मंजिल करीब आती मालूम पड़ रही है ? या मैं चक्कर की तरह घूम रहा हूं ? इन छः बाह्य-तपों के बाद यह आसान हो जायेगा। संलीनता के बाद यह आसान हो जायेगा। जब आपकी शक्ति आपके भीतर पैठ जाये, तब आप झकझोर सकते हैं और पूछ सकते हैं उसको जगाकर कि यह मैं क्या कर रहा हूं ? वह जो ठीक है, वह क्या यही है ? यह कर लेने से मैं तृप्त हो जाऊँगा ? सन्तुष्ट हो जाऊँगा ? आप मर जायेंगे। जब तक जीते हैं आपको लगता है कि बड़ी जगह खाली हो जायेगी, कितने काम बंद हो जायेंगे, कितना विराट चक्कर अभी आप चला रहे हैं। लेकिन कब्रिस्तान भरे पड़े हुए हैं ऐसे लोगों से, जो सोचते थे कि उनके न रहने से दुनिया न चलेगी। सब शान्त हो जायेगा। चांद सूरज सब रुक जायेंगे।

(१६) दो तरह से मिटती है दुनिया

मुल्ला नसरुद्दीन से किसी ने पूछा है कि अगर दुनिया मिट जाये तो तुम्हारा क्या ख्याल है ? तो उसने पूछा, कौन-सी दुनिया ? दो तरह की दुनिया मिटती है। उस आदमी ने कहा, दो ? यह कोई नया सिद्धांत तुमने निकाला है ! दुनिया एक ही तरह से मिट सकती है। नसरुद्दीन ने कहा, दो तरह से मिटेगी। एक तो मैं जिस दिन मरूँगा, दुनिया मिटेगी। और एक यह कि दुनिया ही मिट जाये, वह दूसरा ढंग है। हम सब यही सोच रहे हैं कि जिस दिन मैं मरूँगा,

दुनिया मिट जायेगी। मुल्ला मर गया। उसे लोग कब्र में विदा करके वापस लौट रहे थे। रास्ते में एक अजनबी मिला। उस अजनबी ने पूछा कि ह्वाट वाज द कम्प्लेंट। मर गया नसरुद्दीन! तकलीफ क्या थी? शिकायत क्या थी? जिस आदमी से पूछा, उसने कहा—देयर वाज नो कम्प्लेंट। देयर इज नो कम्प्लेंट। एवरी वन इज़ कम्प्लीटली, थारोली सैटिस्फाइड। कोई शिकायत नहीं। सब सन्तुष्ट हैं। यह मर गया अच्छा हुआ। गाँव का उपद्रव छूटा।

नसरुद्दीन ऐसा नहीं सोच सकता था कभी। वह तो कह रहा था—एक दफे दुनिया तब मरेगी, जब मैं मरूँगा। प्रलय तो हो गयी असली, जिस दिन मैं मर गया। हम सब जो कर रहे हैं, सोच रहे हैं, उसे करने कोई बड़ा अर्थ है! पानी में लकीरें खींच रहे हैं और सोच रहे हैं, रेत पर नाम लिख रहे हैं और सोच रहे हैं। कागजों के महल बना रहे हैं और सोच रहे हैं। खो जाते हैं आप, किसी को पता भी नहीं चलता कि कब खो गये। मिट जाते हैं आप, किसी को पता भी नहीं चलता कि कब मिट गये। संलीनता के बाद साधक अपने भीतर रुककर पूछे कि मैं जो कर रहा हूँ, उसका कोई भी अर्थ है? मैं जो हूँ, उसका कोई अर्थ है? मैं कल मिट जाऊँगा, एवरी वन विल बी कंप्लीटली सैटिस्फाइड, सब लोग बिलकुल सन्तुष्ट होंगे।

(१६) सरकस से छूटे हुए शेर

एक दफा दिल्ली में एक सरकस के दो शेर छूट गये। भागे तो रास्ते पर साथ छूट गया। सात दिन बाद मिले तो एक तो सात दिन से भूखा था, बहुत परेशान था, एक पुलिया के नीचे छिपा रहा था, कुछ नहीं मिला उसको, खाने को भी नहीं मिला और छिपे-छिपे जान निकल गयी।

लेकिन दूसरा तगड़ा और स्वस्थ दिखायी पड़ रहा था, मजबूत दिखायी पड़ रहा था। उस पहले सिंह ने पूछा कि मैं तो बड़ी मुसीबत में दिन गुजार रहा हूँ। किसी तरह सरकस वापस पहुँच जाऊँ, इसका रास्ता खोज रहा हूँ। वह रास्ता भी नहीं मिल रहा हैं। मर गये, सात दिन भूखे रहे। तुम तो बहुत प्रसन्न, ताजे और स्वस्थ दिखायी पड़ रहे हो। कहाँ छिपे रहे?

उसने कहा, मैं तो पार्लियामेन्ट हाउस में छिपा था।

उसने आश्चर्य किया, खतरनाक जगह पर तुम गये! वहाँ इतना पुलिस का पहरा है, भोजन कैसे मिला?

दूसरे ने कहा, मैं रोज एक मिनिस्टर को प्राप्त करता रहा।
यह तो बहुत डैंजरस काम है, फँस जाओगे।

उसने कहा, नहीं। जैसे ही मिनिस्टर नदारद होता है—एवरी बॅडी फील्स कम्प्लीटली सैटिस्फाइड। कोई झंझट नहीं होती। नो वन लिसेन्स हिम। कोई कमी भी अनुभव नहीं करता। वह जगह इतनी बढ़िया है कि वहाँ किसी को भी साफ कर जाओ, बाकी लोग प्रसन्न होते हैं। तुम भी वहीं चले चलो। वहाँ दो क्या, पूरे सरकस के शेर आ जायें तो भी भोजन है और काफी दिनों तक रहेगा क्योंकि भोजन खुद पार्लियामेण्ट हाउस में आने को उत्सुक है। पूरे मुल्क से भोजन आता ही रहेगा। इधर हम कितना ही कम करें, भोजन खुद उत्सुक है, खर्च करके, परेशानी उठा करके आता ही रहेगा। उनके लिए वह भोजन ही है जिनको आप एम० पी० वगैरह कहते हैं। पार्लियामेण्ट हाउस में तस्वीरें लटक रही हैं उन सब लोगों की, जो स्वयं समझते हैं कि उनके बिना दुनिया रुक जायेगी। दुनिया की गति बन्द हो जायेगी। कुछ नहीं रुकता! कुछ पता ही नहीं चलता है इस जगत् में कब आप खो जाते हैं। दूसरों के लिए कोई मूल्य नहीं है जिसका पता चलता हो। पर दूसरों के लिए मूल्य हो या न हो, यह पूछना साधक के लिए जरूरी है कि मेरे लिए कोई मूल्य है यहाँ या नहीं? यह जो कुछ मैं कर रहा हूँ, इसकी आन्तरिक अर्थवत्ता क्या है? ह्वाट इज द इनर सिग्नीफिकेंस? इसकी महत्ता और गरिमा भीतर क्या है? यह ख्याल आ जाय तो आप प्रायश्चित की दुनिया में प्रवेश करेंगे।

प्रायश्चित की दुनिया क्या है, यह मैं आपसे कहूँ। प्रायश्चित की दुनिया यह है कि मैं जैसा भी हूँ, सोया हुआ हूँ, मैं अपने को जगाने का निर्णय लेता हूँ। प्रायश्चित जागरण का संकल्प है। पश्चात्ताप सोये हुए मैं की गयी गलतियों की क्षमा-याचना है, क्षमा माँगना है। प्रायश्चित तो सोये व्यक्तित्व को जगाने का निर्णय है, संकल्प है यानी कि मैंने जो भी किया आज तक, वह गलत था, क्योंकि मैं गलत हूँ। अब मैं अपने को बदलता हूँ, कर्मों को नहीं। ऐक्शन को नहीं, बीइंग को। अब मैं अपने को बदलता हूँ, अब मैं दूसरा होने की कोशिश करता हूँ। क्या प्रायश्चित का यह अर्थ आपके ख्याल में आता है? यह ख्याल में आये तो आप साधक बन जायेंगे। यह ख्याल में न आये,

तो आप एक साधारण गृहस्थ रहेंगे। पश्चात्ताप करते रहेंगे और वही काम दोहराते रहेंगे।

(१८) मरीज ठीक हो गया, हकीम बीमार हो गया

मुल्ला नसरुद्दीन के घर के लोगों ने देखा कि इसके तर्क बड़े पागल होते जा रहे हैं, कुछ अजीब बातें कहता है। कहता लॉजिकल है, कहता तर्क-युक्त है। पागल की भी अपना लॉजिक होती है। और ध्यान रहे कई दफे पागल बड़े लॉजीशियन होते हैं, बड़े तर्कयुक्त होते हैं। अगर कभी आपने किसी पागल से तर्क किया है तो एक बात पक्की है कि आप उसे कनविंस नहीं कर पायेंगे। इस बात की संभावना है कि वह आपको कनविंस कर ले। मगर इसकी कोई संभावना नहीं है कि आप उसको कनविंस कर पायें। क्योंकि पागल का तर्क ऐब्सल्यूट होता है, पूर्ण होता है। मुल्ला के तर्क ऐसे होते जा रहे थे कि घर के लोग परेशान होते जा रहे थे। एक दिन मुल्ला गांव के धर्म शास्त्री से बात कर रहा था। धर्म शास्त्री ने कहा, कोई सत्य ऐसा नहीं है जिसकी हम पूर्णता से घोषणा कर सकें। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि यह जो आप कह रहे हैं, क्या यह पूर्ण सत्य है? उसने कहा, निश्चित, डेफिनिटली। मुल्ला ने कहा, यह तो बड़ा गड़बड़ हो गया। आप ही कह रहे हैं कि किसी सत्य को हम पूर्णता से घोषित नहीं कर सकते, और अब आप यह कह रहे हैं कि यह सत्य पूर्ण है। मुल्ला को मनोचिकित्सक के पास ले जाया गया, क्योंकि गांव भर परेशान हो गया उसके तर्कों से। मनोचिकित्सक ने साल भर इलाज किया। कहते हैं कि साल भर में मुल्ला ठीक हो गया। जिस दिन मुल्ला ठीक हुआ, मनोचिकित्सक ने बड़ी खुशी मनायी। और उसने कहा, आज तुम ठीक हो गये हो, यह मेरी बड़ी सफलता है; क्योंकि तुम जैसे आदमी को ठीक करना असम्भव कार्य था। अब इस जिन्दगी में और किसी को न ठीक किया, तो चलेगा। चलो, हम खुशी में हम बाहर चलें। फूल खिले हैं और पक्षी गीत गा रहे हैं, सूरज निकला है। सुबह है सुन्दर। इस खुशी में हम थोड़ा पहाड़ की तरफ चलें।

वे पहाड़ की तरफ गये। मुल्ला हाँफने लगा। और चिकित्सक है कि भागा चला जा रहा है तेजी से। मुल्ला ने कहा, रुको भई। बहुत हो गया। अगर हमारा दिमाग खराब होता तो हम तुम्हारे साथ दौड़ भी लेते। लेकिन अब ठीक हो गया हूँ तुम्हीं कहते हो, तो अब इतना ज्यादा नहीं चल सकता। उस चिकित्सक ने कहा, तुम मील के पत्थर को देखो, कि कितनी दूर आये।

अभी तो कोई ज्यादा दूर नहीं आये। मुल्ला ने देखा और कहा, दस मील। उस चिकित्सक ने कहा, इट इज नॉट सो वैड। टु ईच इट कम्स टु ओनली फाइव माइल्स। पाँच मील हमको, पाँच मील तुमको पड़ा। लौटने में ज्यादा दिक्कत नहीं होगी। मतलब यह कि नसरुद्दीन ठीक हो गये, साल भर में चिकित्सक पागल हो गया। दस मील लौटना है, कोई हर्जा नहीं है, पांच-पांच मील पड़ता है हिस्से में। ज्यादा बुरा नहीं है।

तो पागल को राजी कर पाना मुश्किल है। सम्भावना यही है कि पागल आपको राजी कर ले। क्योंकि पागल अपनी तरफ तर्क का पूरा जाल बनाकर रखता है। रीजन्स नहीं हैं वे रेशनलाइजेन्शस हैं, तर्क के आभास हैं। तर्क नहीं हैं वे, केवल तर्क के आभास हैं, लेकिन वह बनाकर रखता है।

(१६) रूज़वेल्ट की पत्नी पागलों के बीच

रूजवेल्ट की पत्नी इलनोर रूजवेल्ट ने संस्मरण लिखा है। रूज़वेल्ट राष्ट्रपति हुआ। उसके पहले गवर्नर था अमरीका के एक राज्य में। गवर्नर की पत्नी होने की हैसियत से इलनोर रूज़वेल्ट एक दिन पागलखाने के निरीक्षण को गयी। एक आदमी ने उसका दरवाजे पर स्वागत किया। उसने समझा, वह सुपरिन्टेंडेंट है। वह आदमी उसे ले गया और उसने तीन घण्टे तक उस पागलखाने के एक-एक पागल के सम्बन्ध में जो केस था, हिस्ट्री दोहरा दिया, विवरण दिया। इलनोर हैरान हो गयी। उसने चलते वक्त उससे कहा कि तुम आश्चर्यजनक हो। तुम्हारी जानकारी, पागलपन के सम्बन्ध में तुम्हारा अनुभव, तुम्हारा अध्ययन अद्भुत है। तुम्हारे जितने बुद्धिमान आदमी से हम कभी नहीं मिले।

उस आदमी ने कहा, माफ करिए, आप कुछ गलती में हैं। आई ऐम नॉट सुपरिन्टेंडेंट। आई ऐम वन आफ इन्मेट्स। मैं कोई सुपरिन्टेंडेंट नहीं। सुपरिन्टेंडेंट आज बाहर गया है। मैं तो इसी पागलखाने में एक पागल हूँ।

इलनोर ने कहा, तुम पागल हो! तो तुम्हारे जितना स्वस्थ आदमी मैंने नहीं देखा। किसने तुम्हें पागल किया?

उसने कहा, यही तो मैं समझा रहा हूं, आज सात साल हो गये समझाते, लेकिन कोई सुनता ही नहीं। कोई मानने को राजी नहीं। लेकिन कोई पागल

कहे कि मैं पागल नहीं, तो कौन मानने को राजी हो ! सुपरिन्टेंडेंट कहता है कि सभी पागल यही कहते हैं कि हम पागल नहीं। इसमें क्या खास बात है ?

इलनोर ने कहा, यह तो बहुत बुरा मामला है। तुम घबराओ मत, मैं आज ही गवर्नर से कहूँगी, कल ही तुम्हारी छुट्टी हो जायेगी। बहुत स्वस्थ आदमी हो तुम, साधारण जैसे, और साधारण रूप से बुद्धिमान आदमी हो। तुमको कौन पागल कहता है ? अगर तुम पागल हो तो हम सब पागल हैं।

पागल ने कहा, यही तो मैं समझता हूँ, लेकिन कोई मानता ही नहीं।

इलनोर ने कहा, तुम बेफिकर रहो। मैं आज ही जाकर कहती हूँ। कल सुबह ही तुम मुक्त हो जाओगे।

नमस्कार करके, धन्यवाद देकर वह मुड़ी। उस पागल ने उचक कर जोर से लात मारी उसकी पीठ पर। सात-आठ सीढ़ियाँ नीचे वह धड़ाम से जाकर गिरी। बहुत घबराकर उठी। उसने कहा, तुमने यह क्या किया ? यह क्या किया ? उस पागल ने कहा—जस्ट टु रिमाइंड यू। भूल मत जाना। गवर्नर से कह देना कि कल सुबह। दिस वाज़ जस्ट टु रिमाइंड यू।

मगर उस तीन घंटे पर पानी फिर गया। वह तीन घंटे जो बोल रहा था, उसमें वह क्या ठीक बोल सकता है ? सवाल यह है। क्या तीन घंटे वह ठीक बोल सकता है ? असल में ठीक बोलने का वह सिर्फ आभास करा रहा था, केवल आभास। तर्क आभास पैदा कर सकता है। लेकिन असलियत नहीं हो सकती कि वह जो बोल रहा है, वह ठीक बोल रहा है। ऐसा दिखायी पड़ सकता है कि बिल्कुल ठीक है। आप पकड़ न पायें कि उसमें गलती कहाँ है, यह दूसरी बात है। लेकिन कोई न कोई घड़ी आयेगी जब वह प्रकट कर देगा। सोया हुआ आदमी भी इसी तरह कर रहा है। दिन भर वह बिल्कुल ठीक है। जरा-भी क्रोध नहीं कर रहा। अचानक एक झापड़ रसीद कर देता है, एक चांटा अपने लड़के को जड़ देता है कि तू देर से क्यों आया। आप नहीं समझते, आप कहते हैं आदमी बिल्कुल ठीक है। क्योंकि वह तो बाकी वक्त बिल्कुल ठीक रहता है। लेकिन नहीं, यह इसका चांटा बताता है कि बाकी वक्त तर्क का आभास करा रहा था। यह ठीक नहीं रहता। यह ठीक रह ही नहीं सकता। एक आदमी की छाती में अचानक छुरा मार देता है। कल तक हम उसको कहते थे भला आदमी। माना कि वह एकदम भला आदमी था। लेकिन

यह आभास था। सोया हुआ आदमी सिर्फ अच्छे का आभास पैदा करता है। बुरा होना उसकी नियति है। वह उससे प्रकट होगा ही। क्षण, दो क्षण रोक सकता है। इधर-उधर डवांडोल कर सकता है, लेकिन वह उससे प्रकट होगा ही।

क्या आपको पता है कि आप अपने को पूरे वक्त सम्भाल कर चलते हैं? जो आपके भीतर है, उसको दबाकर चलते हैं। जो आप कहना चाहते हैं, वह नहीं कहते, कुछ और कहते हैं। जो आप बताना चाहते हैं, नहीं बताते हैं, कुछ और बताते हैं। लेकिन कभी - कभी वह उभर जाता है। हवा का कोई झोंका आता है और कपड़ों को उठा जाता है। भीतर जो है, दिख जाता है। कोई परिस्थिति आती है, और तब आप कहते हैं कि कर्म की भूल है, परिस्थिति की नहीं। परिस्थिति ने तो सिर्फ अवसर दिया है कि अपने भीतर जो आप छिपा छिपाकर रखते हैं, वह प्रकट हो जाता है। प्रायश्चित तब शुरू होगा, जब आप जैसे हैं, अपने को वैसा जानें, छिपायें नहीं, ढांकें नहीं, तो आप पायेंगे, कि आप उबलते हुए लावा हैं ज्वालामुखी के। ये सब बहाने हैं आपके। ये जो ऊपर से चपकाये हुए पलस्तर हैं, बहुत पतले हैं। वह सिर्फ दिखावा है। इस दिखावे के भीतर जो आप हैं, उसको आप स्वीकार करें। प्रायश्चित का पहला सूत्र है, जो आप हैं—बुरे, भले, निन्दा योग्य, पापी, बेईमान—वह सब एक्सेप्टेड हो कि आप ऐसे हैं। तथ्य की स्वीकृति प्रायश्चित है। तथ्य गलती से हो गया, इसको पोंछ देना पश्चात्ताप है। तथ्य हुआ, होता ही है मुझसे; जैसा मैं आदमी हूं, उससे यही होता है, इसकी स्वीकृति प्रायश्चित का प्रारम्भ है। प्रायश्चित में स्वीकार है, और पूर्ण स्वीकार है। कहीं कोई चुनाव नहीं। क्योंकि चुनाव आपने किया तो आप बदलते रहेंगे। आज यह, कल वह, परसों वह। आपकी बदलाहट जारी रहेगी। प्रायश्चित पूर्ण स्वीकार है कि मैं ऐसा हूँ। मैं चोर हूँ तो चोर हूँ। मैं बेईमान हूँ तो बेईमान हूँ। नहीं जरूरत है कि आप घोषणा करने जायें कि मैं बेईमान हूँ। क्योंकि ऐसा होता है कि अगर आप घोषणा करें कि मैं बेईमान हूँ तो लोग समझेंगे कि बड़ा ईमानदार है।

(२०) बहुत सारे पाप कल्पित होते हैं

मुझ लोगों ने भगवान् कहना शुरू किया। मैं चुप रहा। मैंने सोचा कि मैं कहूँ कि मैं भगवान् नहीं हूँ तो उनको और पक्का भरोसा बैठ जायेगा कि

यही तो लक्षण हैं भगवान् के। हमारा मन बड़ा अजीब है। अगर आपको सच में ही किसी के साथ बेईमानी करके धोखा देना हो तो आप पहले से ही बता देते हैं कि मैं बहुत बुरा आदमी हूँ, बहुत बेईमान हूँ, तो वह आप पर ज्यादा भरोसा करेगा और बेईमानी आप ज्यादा आसानी से कर सकेंगे। लेकिन जब आप घोषणा करते हैं कि आप बेईमान हैं तब देखना है कि इसमें कोई रस तो नहीं आ रहा है ? क्योंकि दूसरे के सामने घोषणा में भी रस आ सकता है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि तालस्ताय ने अपनी आत्मकथा में जितने पाप लिखे हैं, उतने उसने किये नहीं। उसमें बहुत से पाप कल्पित हैं, घोषणा करने के लिए। क्या आप सोच सकते हैं ? पुण्यों की कोई घोषणा करे कि मैंने इतना दान किया तो आप कहेंगे कि यह घोषणा हो सकती है। लेकिन अगर कोई कहे कि मैंने इतनी चोरी की, तो आप सोचेंगे कि यह भी कोई घोषणा हो सकती है ? कोई ऐसा करेगा ? कभी सोचा है कि क्या कोई अपने पाप की भी चर्चा इतने जोर से करेगा ? नहीं, पापी करते हैं। लेकिन तालस्ताय जैसे लोग नहीं करते। जेलखाने में आप जाइए तो जिसने दस रुपये की चोरी की है, वह कहता है दस लाख का डाका डाला। क्योंकि दस की भी चोरी करने का भला कोई मतलब है ? तुम दस के ही चोर हो, इसका कोई मतलब नहीं है।

(२१) सजायाफ्ता मास्टरी

एक कैदी कारागृह में प्रविष्ट हुआ। दूसरे कैदी ने, जो वहां सीखचों से टिका बैठा था, पूछा—कितने दिनों की सजा ? चालीस साल की सजा, उत्तर मिला। तो उसने कहा, तुम दरवाजे के पास बैठो। हम दीवाल के पास रहेंगे। उस आदमी पूछा, क्यों ? उसने कहा कि हमको ७५ साल की सजा है। तेरा मौका पहले आयेगा निकलने का। चालीस साल ही कुल ? कोई छोटा-मोटा काम किया होगा। हमको पचहत्तर साल की सजा है। हम दीवाल के पास रहेंगे, तुम दरवाजे के पास रहो। तेरा निकलने का मौका पहले आयेगा। चालीस साल का ही तो मामला है। हमको आगे और पैंतीस साल रहना है। इसका मतलब है कि उन्होंने मास्टरी सिद्ध कर दी कि अब तू इस कमरे में शिष्य बनकर रह। तो जेलखानों में भी घोषणा चलती है। लेकिन यह कभी ख्याल में नहीं आता साधारणतः कि साधु-संतों ने भी जितने पापों की चर्चा की, उतनी वस्तुतः किये ? पाप की घोषणा में भी रस हो सकता है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, रस हो सकता है। इस ढंग से हिसाब नहीं लगाये गये हैं कभी। गांधी की आत्मकथा का कभी-न-कभी मनोविश्लेषण होना चाहिए कि उन्होंने अपने बचपन में जितने पापों की बात की, उतने किये या नहीं। या उनमें कुछ कल्पित थे। जरूरी नहीं है कि वे झूठ बोल रहे हों। आदमी का मन ऐसा है कि वह मान भी लेता है कि जो वह कह रहा है, उसने किया है। संभव है, बहुत बार दोहरा-दोहरा कर उनको भी रस आ गया हो और लगता हो किया है। आप बहुत-सी ऐसी स्मृतियां बनाये हुए हैं जो आपने कभी की नहीं, या जो कभी हुआ नहीं। लेकिन आपने भरोसा कर लिया, मानकर बैठ गये हैं और धीरे-धीरे राजी हो गये हैं। तालस्ताय ने इतने पाप नहीं किये, ऐसा मनस्विदों का कहना है कि उन्होंने घोषणा की है। लेकिन मैं यह नहीं कह रहा कि प्रायश्चित करने वाला जाकर घोषणा करे कि मैं पापी हूं। क्योंकि घोषणा में भी खतरा है। नहीं, प्रायश्चित करनेवाला अपने ही समक्ष स्वीकार करे कि मैं ऐसा हूँ। किसी के सामने कहने की जरूरत नहीं। इसलिए दूसरा फर्क आपको बताता हूँ।

(२२) यहां अन्तर अपने और पराये का है

पश्चात्ताप दूसरे के सामने प्रकट करना पड़ता है, प्रायश्चित स्वयं के समक्ष। पश्चात्ताप स्वयं के समक्ष करने का कोई मतलब नहीं। क्योंकि किसी को गाली तो दी दूसरे के समक्ष और क्षमा मांगी अपने मन में। उसका क्या मतलब है। जब गाली देने दूसरे के पास गये तो क्षमा मांगने दूसरे के पास जाना पड़ेगा। कर्म दूसरे से संबंधित है इसलिए पश्चात्ताप दूसरे से संबंधित होगा। लेकिन आपकी सत्ता तो किसी से संबंधित नहीं, आपसे ही संबंधित है। उसकी घोषणा दूसरे के सामने करनी अनावश्यक है। और उसमें रस लें तो खतरा है। इसलिए प्रायश्चित है अपने ही समक्ष अपनी पूरी नग्नता को उघाड़ कर देखना कि मैं क्या हूँ। ध्यान रखें, दूसरे के सामने सदा डर है बदलाहट करने का, कुछ और बता देने का। इसलिए कोई भी आदमी सच्ची डायरी नहीं लिख पाता। भले ही वह दूसरे के पढ़ने के लिए न लिख रहा हो, लेकिन फिर भी कोई भी आदमी सच्ची डायरी नहीं लिख पाता, क्योंकि दूसरा पढ़ सकता है, इसकी संभावना तो सदा ही बनी रहती है। इसलिए सब डायरीज फॉल्स होती हैं, झूठी होती हैं। अगर आप डायरी लिखते हैं तो आप भली भांति जानते हैं कि कितना उसमें आप छोड़ देते हैं जो लिखा जाना चाहिए था।

कितना जोड़ देते हैं, जो नहीं था। कितना सँभाल देते हैं जैसी कि बात नहीं थी। लेकिन उल्टा भी हो सकता है कि जो पाप बहुत छोटा था, उसको आप बहुत बड़ा करके लिखें। अगर आपको पाप की घोषणा करनी है, तो वह भी हो सकता है। अगस्टीन की किताब 'कनफेसंस' संदिग्ध है कि उसमें उसने जो लिखा है, वह हुआ होगा। पाप की भी सीमा है। पाप भी आप असीम नहीं कर सकते। पाप की भी सीमा है। और आदमी की भी एक सामर्थ्य है पाप करने की। आदमी पाप से भी ऊब जाता है और उसका भी सेच्युरेशन प्वाइंट है। वहाँ सत्य रिक्त हो जाता है और आदमी लौट पड़ता है। लेकिन दूसरे का ख्याल हो अगर मन में, तो रद्दोबदल का डर रहता है। वह आपका सोया हुआ मन कुछ कर सकता है। इसलिए प्रायश्चित है स्वयं के समक्ष। सका दूसरे से कोई लेना-देना नहीं है।

और ध्यान रहे कि महावीर प्रायश्चित को इतना मूल्य दे पाये क्योंकि परमात्मा को उन्होंने कोई जगह नहीं दी, नहीं तो पश्चात्ताप ही रह जाता, प्रायश्चित नहीं हो सकता था। क्योंकि जब परमात्मा देखनेवाला मौजूद है: देन इट इज आलवेज फॉर सम वन एल्स। जब एक ईसाई फकीर एकान्त में भी कह रहा होता है कि हे प्रभु! मेरे पाप हैं ये, तो दूसरा मौजूद है, दि अदर इज प्रेजेंट। भले ही वह परमात्मा ही है, लेकिन दूसरे की मौजूदगी है। महावीर कहते हैं, कोई परमात्मा नहीं है जिसके समक्ष तुम प्रकट कर रहे हो। तुम ही हो। महावीर ने व्यक्ति को इतना ज्यादा स्वयं की नियति से जोड़ा है, जिसका हिसाब नहीं। तुम ही हो, और कोई नहीं, कोई आकाश में सुननेवाला नहीं, जिससे तुम कहो कि मेरे पाप क्षमा कर देना। कोई क्षमा करेगा नहीं, कोई है ही नहीं। इसलिए चिल्लाना मत। इस घोषणा से कुछ भी न होगा। दया की भिक्षा मत माँगना। क्योंकि कोई दया नहीं हो सकती। कोई दया करनेवाला नहीं है। इसलिए प्रायश्चित दूसरे के समक्ष नहीं, अपने ही समक्ष होता है। वह अपने नरक की स्वीकृति है। और जब पूर्ण स्वीकृति होती है भीतर, तो उस पूर्ण स्वीकृति से ही रूपान्तरण शुरू हो जाता है। यह बहुत कठिन मालूम पड़ेगा कि पूर्ण स्वीकृति से रूपान्तरण क्यों शुरू हो जाता है। जैसे ही कोई व्यक्ति अपने को पूरा स्वीकार करता है उसकी पुरानी इमेज, उसकी पुरानी प्रतिमा खण्ड-खण्ड होकर गिर जाती है, राख हो जाती है। और अब वह जैसा अपने को पाता है, ऐसा अपने को एक क्षण भी देख नहीं सकता। तब फिर बदलेगा ही और कोई उपाय नहीं है। जैसे घर में आग लग

गयी और पता चल गया कि आग लग गयी, तब आप यह न कहेंगे कि अब हम सोचेंगे बाहर निकलने की। तब आप यह न कहेंगे कि गुरू खोजेंगे कि मार्ग क्या है ? तब आप यह न कहेंगे कि पहले बाहर कुछ है भी पाने योग्य कि हम घर छोड़कर निकल ही जायें ? और बाहर भी कुछ न मिले तो ? यह सब उस आदमी की बातें हैं, जिसके मन में कहीं न कहीं यह ख्याल बना है कि घर में कोई आग नहीं लगी है। एक बार दिख जायें लपटें चारों तरफ, तो आदमी बाहर हो जाता है, छलांग लग जाती है।

(२३) आपके मरने का प्रमाणपत्र : भूख

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी का आपरेशन हुआ। जब उसे आपरेशन की टेबुल पर लिटाया गया तो खिड़कियों के बाहर वृक्षों में फूल खिले थे। इंद्रधनुष फैला हुआ था। जब उसका आपरेशन हो गया और उसके मुंह से कपड़ा उठाया गया तो उसने देखा, सब परदे बन्द है, खिड़कियाँ, द्वार दरवाजे बन्द हैं। उसने मुल्ला से पूछा, सुन्दर सुबह थी। क्या साँझ हो गयी या रात हो गयी ? इतनी देर लग गयी ? मुल्ला ने कहा, रात नहीं हुई। पाँच ही मिनट हुआ। तो उसने कहा, ये दरवाजे क्यों बन्द हैं। तो मुल्ला ने कहा, बाहर के मकान में आग लग गयी है। और हम डरे कि अगर तू कहीं होश में आये और देखे कि आग लगी है तो समझे कि नरक में पहुंच गये। इसलिए हमने खिड़कियाँ बन्द कर दीं। नरक में आग जलती रहती है, तो तू कहीं यह न सोच ले कि मर गये। खतम हो गये। कभी ऐसा भी हो जाता है कि अगर सोच लिया कि मर गये तो आदमी मर भी जाते हैं। मुल्ला के खुद के जीवन में ऐसा घटा कि वह बेहोश हो गया और लोगों ने समझा कि मर गया। उसकी अर्थी बाँध ही रहे थे कि वह होश में आ गया। लोगों ने कहा, अरे तुम मरे नहीं ! तो मुल्ला ने कहा, मैं मरा नहीं और जितनी देर तुम समझ रहे कि मैं मर गया उतनी देर भी मैं मरा हुआ नहीं था। मुझे पता था कि मैं जिन्दा हूँ। तो उन्होंने कहा कि तुम बिल्कुल बेहोश थे। तुम्हें कैसे पता हो सकता है कि जिन्दा हो। क्या प्रमाण तुम्हारे भीतर था कि तुम जिन्दा हो ? उसने कहा, प्रमाण था। प्रमाण यह था कि मैं भूखा था। मुझे भूख लगी थी। अगर स्वर्ग में पहुंच गया होता तो कल्प वृक्ष के नीचे भूख खत्म हो गयी होती। पैर में मुझे ठंडक लग रही थी। अगर नर्क में पहुंच गया होता तो वहाँ ठंडक कहाँ ? और दो जगहें हैं जाने को। सो मुझे पता था कि मैं जिन्दा हूँ।

(२४) नर्क वहां है जहां हम खड़े हैं

मुल्ला के गाँव का एक नास्तिक मर गया। वह अकेला नास्तिक था। मर गया तो मुल्ला उसे विदा करने गया। वह लेटा हुआ था। सुन्दर सूट उसे पहना दिया था। टाई बाँध दी गयी थी। सब बिल्कुल तैयार। मुल्ला ने बड़े दुख से कहा, पुअर मैन! थारोली ड्रेस्ड बट नो व्हेयर टु गो। नास्तिक था, न नर्क जा सकता था न स्वर्ग, क्योंकि वह मानता ही नहीं था। तो मुल्ला ने कहा, इतना तैयार लेटा है गरीब बेचारा, और जाने को कहीं भी नहीं। इसी तरह वह जो हमारे भीतर आग है, नर्क है, वहाँ खड़े ही हैं। नर्क जाने की कोई जगह नहीं है, वहाँ तो हम खड़े ही हैं वह हमारी स्थिति है। स्वर्ग कोई स्थान नहीं है। इसलिए महावीर पहले आदमी हैं इस पृथ्वी पर, जिन्होंने कहा, स्वर्ग और नर्क मनोदशाएँ हैं, माइंड की स्टेट्स हैं, चित्त दशाएँ हैं। मोक्ष कोई स्थान नहीं है। इसलिए महावीर ने कहा कि मोक्ष स्थान के बाहर है। बीयांड स्पेस है, वह कोई स्थान नहीं है। वह सिर्फ एक अवस्था है। लेकिन जहां हम खड़े हैं वह नर्क है। इस नर्क की प्रतीति जितनी स्पष्ट हो जाये, उतने आप प्रायश्चित में उतरेंगे। और इतनी प्रगाढ़ यह प्रतीति हो जाये कि आग जलने लगे आपके चारों तरफ, तो छलांग लग जायेगी और रूपांतरण शुरू हो जायेगा। इस छलांग के पाँच सूत्र हम अब धीरे-धीरे शुरू करेंगे। यह पहला सूत्र है और ठीक से समझ लेना जरूरी है। जैसे संलीनता अन्तिम सूत्र है बाह्य तप का, और कीमती है क्योंकि उसके बाद ही प्रायश्चित हो सकता है। उसी तरह प्रायश्चित बहुत कीमती है, क्योंकि वह पहला सूत्र है अन्तर्-तप का। अगर आप प्रायश्चित नहीं कर सकते तो अन्तर्-तप में कोई प्रवेश नहीं हो सकता, क्योंकि वह द्वार है। आज इतना ही।

***

पन्द्रहवाँ प्रवचन

पर्युषण व्याख्यान-माला, बंबई, दिनांक, १ सितम्बर, १९७१

विनय : अभ्यास नहीं, परिणति निरहंकारिता की

धम्मो मंगल मुक्किट्ठम्, अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसन्ति, जस्स धम्मे सया मणो ॥१॥

अर्थ :—

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है । (कौन सा धर्म ?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म । जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं ।

अंतर्-तप की दूसरी सीढ़ी है विनय। प्रायश्चित के बाद ही विनय के पैदा होने की संभावना है। क्योंकि जब तक मन दूसरे के दोष देखता रहता है, तब तक विनय पैदा नहीं हो सकती। जब तक मनुष्य सोचता है कि मुझे छोड़कर शेष सब गलत हैं, तब तक विनय पैदा नहीं हो सकती। विनय तो पैदा तभी हो सकती है, जब अहंकार दूसरों के दोष देखकर अपने को भरना बंद कर दे। इसे हम ऐसा समझें कि अहंकार का भोजन है दूसरों के दोष देखना। इसलिए यह नहीं हो सकता कि आप दूसरों के दोष देखते चले जायें और अहंकार विसर्जित हो जाये। क्योंकि एक तरफ आप भोजन दिये चले जाते हैं और दूसरी तरफ अहंकार को विसर्जित करना चाहते हैं। यह न हो सकेगा। इसलिए महावीर ने बहुत वैज्ञानिक क्रम रखा है—प्रायश्चित पहले, क्योंकि प्रायश्चित के साथ ही अहंकार को भोजन मिलना बंद हो जाता है।

(१) पर निंदा का विटामिन

वस्तुतः हम दूसरे के दोष देखते ही क्यों हैं? शायद इसे आपने कभी ठीक से न सोचा होगा कि हमें दूसरों के दोष देखने में इतना रस क्यों है? असल में दूसरों का दोष हम देखते ही इसलिए हैं कि दूसरों का दोष जितना दिखायी पड़े, उतने ही हम निर्दोष मालूम पड़ते हैं। ज्यादा दिखायी पड़े दूसरे का दोष, तो हम ज्यादा निर्दोष दिखायी पड़ते हैं। उस पृष्ठभूमि में जहाँ दूसरे दोषी होते हैं, हम अपने को निर्दोष देख पाते हैं। अगर दूसरे निर्दोष दिखायी पड़ें तो हम दोषी दिखायी पड़ने लगेंगे। इसलिए हम दूसरों की शक्लें जितनी काली रंग सकते हैं, उतनी रंग देते हैं। उनकी काली रंगी शक्लों के बीच हम गौर वर्ण मालूम पड़ते हैं। अगर दूसरों के चेहरे गौर वर्ण हो सकें, तो हम

सहज ही काले दिखायी पड़ने लगेंगे। दूसरे के दोष देखने का जो आंतरिक रस है, वह स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने की असफल चेष्टा है, और निर्दोष कोई अपने को सिद्ध नहीं कर सकता। निर्दोष कोई हो सकता है, सिद्ध नहीं कर सकता। सच तो यह है कि सिद्ध करने की कोशिश में ही निर्दोष न होना छिपा है। निर्दोपिता सिद्ध करने की कोशिश भी ठीक नहीं है। कोई यदि आपको किसी के संबंध में कोई शुभ खबर दे तो मानने का मन नहीं होता। कोई आपसे कहे कि दूसरा व्यक्ति बहुत सज्जन, भला, साधु है तो मानने का मन नहीं होता। मन एक भीतरी रेसिस्टेंस, एक भीतरी प्रतिरोध करता है। मन भीतर से ऐसा कहता है कि ऐसा हो नहीं सकता। इस भीतर की लहर पर थोड़ा ध्यान करें, अन्यथा विनय कभी उपलब्ध न होगी।

जब कोई किसी की शुभ चर्चा करता है तो मन मानने को नहीं होता। भीतर एक लहर कंपित होती है और कहती है, प्रमाण क्या है कि दूसरा सज्जन है, साधु है? यह प्रमाण की तलाश इसीलिए है, ताकि प्रमाणित किया जा सके कि दूसरा साधु नहीं, सज्जन नहीं। लेकिन कभी इसमें आपने इससे विपरीत बात देखी? अगर कोई किसी के संबंध में निन्दा करे तो आपका मन एकदम मानने को आतुर होता है। आप निन्दा के लिए प्रमाण नहीं पूछते। अगर कोई आदमी कहे कि फलां आदमी ब्रह्मचारी है तो आप पूछते हैं प्रमाण क्या है? लेकिन कोई आदमी कहे कि फलां आदमी व्यभिचारी है तो आपने प्रमाण पूछा है कभी? नहीं, क्योंकि फिर तो कोई जरूरत नहीं रह जाती प्रमाण की। बस, कहना पर्याप्त है। किसी ने कहा, वह पर्याप्त है। और ध्यान रहे, अगर कोई कहे कि दूसरा आदमी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध है तो आप मन को मसोस कर भले मान सकते हैं, प्रफुल्लता से नहीं। और जब आप दूसरे से कहेंगे तो जितने जोर से उसने कहा था, उस जोर में कमी आ जायेगी। तीन चार आदमियों में यात्रा करते-करते वह ब्रह्मचर्य खो जायेगा। लेकिन अगर किसी ने कहा कि फलां आदमी व्यभिचारी है तो जब आप दूसरे से कहते हैं तब आपने ख्याल किया है कि आप कितना गुणित करते हैं उसे? कितना मल्टीप्लाय करते हैं? जितना रस उसने लिया था, उससे दुगुना रस आप दूसरे को सुनाते वक्त लेते हैं। पांच आदमियों तक पहुंचते-पहुंचते पता चलेगा कि उससे बड़ा व्यभिचारी, उससे ज्यादा व्यभिचारी आदमी दुनिया में कभी पैदा ही नहीं हुआ। पांच आदमियों के बीच पाप इतनी बड़ी यात्रा कर लेगा।

(२) निन्दा का बैंक बैलेंस

मन के इस आंतरिक रस को देखना, समझना जरूरी है। तो विनय की साधना का पहला सूत्र है कि हमारे अहंकार के सहारे क्या हैं ? हम किस सहारे से अविनीत बने रहते हैं। वे सहारे न गिरें तो विनय उत्पन्न नहीं होगा। निन्दा में रस मालूम होता है। स्तुति में पीड़ा मालूम होती है। और इसलिए अगर आपको किसी मजबूरी में किसी की स्तुति करनी पड़ती है, तो आप बहुत शीघ्र उसके सामने से हटकर तत्काल कहीं जाकर उसकी निन्दा करके बैंक बैलेंस बराबर कर लेते हैं। देर नहीं लगती। सन्तुलन पर ला देते हैं तराजू को बहुत शीघ्र। जब तक सन्तुलन न आ जाये तब तक मन को चैन नहीं पड़ता। लेकिन इससे उल्टा इतनी आसानी से नहीं हो सकता। जब आप किसी को गालियाँ देते जाते हैं तो तत्काल आप सन्तुलन स्थापित नहीं करते कि कहीं जाकर उसके गुणों की भी चर्चा कर लें। मन की सहज इच्छा यह है कि दूसरे निन्दित हों। इस तरह दूसरों का दोष तो हम हजारों मील से देख पाते हैं, अपना दोष इतने निकट रहकर भी नहीं देख पाते।

(३) आधा मील की दूरी से झांकती औरत

मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने यहाँ के मेयर को कई बार फोन किया कि एक स्त्री बहुत अभद्र व्यवहार कर रही है मेरे साथ। अपनी खिड़की में इस भाँति खड़ी होती है कि उसकी मुद्राएँ आमंत्रण देती हैं और कभी-कभी अर्धनग्न भी वह खिड़की से दिखायी पड़ती है। इसे रोका जाना चाहिए। यह समाज की नीति पर हमला है। कई बार फोन किया, तो मेयर मुल्ला के घर आया। मुल्ला अपनी चौथी मंजिल पर ले गया खिड़की के पास से कहा, वह देखिए सामने का मकान। उसी में वह स्त्री रहती है। मकान नदी के उस पार कोई आधा मील दूर था। मेयर ने कहा, वह स्त्री उस मकान में रहती है और उस मकान की खिड़कियों से आपको टेम्पटेशंस पैदा करती है। उधर से आपको उकसाती है। लेकिन यहाँ से तो खिड़की भी ठीक से नहीं दिखायी पड़ रही, वह स्त्री कैसे दिखायी पड़ती होगी ? मुल्ला ने कहा, ठहरो। स्टूल पर चढ़ो। यह दूरबीन हाथ में लो, तब दिखायी पड़ेगी। लेकिन दोष उस स्त्री का ही है, जो आधा मील दूर है।

और फिर एक दिन ऐसा भी हुआ कि मुल्ला ने अपने गाँव के मनोचिकित्सक के दरवाजे को खटखटाया। भीतर गया, पूरा नग्न था।

मनोचिकित्सक चौंका। ऊपर से नीचे तक देखा।

मुल्ला ने कहा कि मैं यही पूछने आया हूँ और वही भूल आप कर रहे हैं। मैं सड़कों से निकलता हूँ तो लोग न मालूम पागल हो गये हैं, मुझे घूर-घूर कर देखते हैं। ऐसी क्या मुझमें कमी है या ऐसी क्या भूल है जो लोग मुझे घूर-घूर कर देखते हैं? मनोवैज्ञानिक खुद ही घूर-घूर कर देख रहा था क्योंकि मुल्ला निपट नग्न खड़ा था। मुल्ला ने कहा, पूरा गाँव पागल हो गया मालूम पड़ता है। जहाँ से निकलता हूँ, वहीं से लोग घूर-घूर कर देखते हैं। आपका विश्लेषण क्या है?

मनोवैज्ञानिक ने कहा, ऐसा लगता है कि आप अदृश्य वस्त्र पहने हुए हैं, दिखायी न पड़ने वाले वस्त्र पहने हुए हैं। शायद उन्हीं वस्त्रों को देखने के लिए लोग घूर-घूर कर देखते होंगे।

मुल्ला ने कहा, बिल्कुल ठीक। तुम्हारी फीस क्या है? मनोवैज्ञानिक ने सोचा कि ऐसा आदमी आया है, इससे फीस ठीक से ले लेनी चाहिए। उसने सौ रुपए फीस बताये। मुल्ला ने खीसे में हाथ डाला, नोट गिने और दिये।

मनोवैज्ञानिक ने कहा, लेकिन हाथ में कुछ भी नहीं है।

मुल्ला ने कहा कि ये अदृश्य नोट हैं। ये दिखायी नहीं पड़ते। घूर-घूर कर देखो। दिखायी पड़ सकते हैं।

आदमी खुद नग्न घूमता हो बाजार में, तो भी शक होता है कि दूसरे लोग घूर-घूर कर क्यों देखते हैं और अपने घर से वह दूरबीन लगाकर आधा मील दूर किसी की खिड़की में देख सकता है और कह सकता है कि वह स्त्री मुझे प्रलोभित कर रही है। हम सब ऐसे ही हैं। हम सबके व्यक्तित्व का तालमेल ऐसा ही है। तो विनय कैसे पैदा होगी? विनय के पैदा होने का कोई उपाय ही नहीं है। अहंकार ही पैदा होता है। जब कोई किसी की हत्या भी कर देता है तो यह नहीं मानता कि हत्या में मैं अपराधी हूँ। वह मानता है कि उस आदमी ने ऐसा काम ही किया था कि हत्या करनी पड़ी। दोषी वही है।

(४) कैसे भी कोई मरे दोष उसी का होता है!

मुल्ला ने तीसरी शादी की थी। तीसरी पत्नी घर में आयी तो बड़ी-बड़ी तस्वीरें देखकर उसने पूछा, ये तस्वीरें किसकी हैं? मुल्ला ने कहा, मेरी

पिछली दो पत्नियों की। मुसलमान के घर में चार पत्नियाँ तो हो ही सकती हैं। लेकिन उसने पूछा, वे हैं कहाँ ? मुल्ला ने कहा, हैं कहाँ ! पहली मर गयी। मसरूम पायजनिंग। उसने कुकुरमुत्ते खा लिये जो जहरीले थे। उसने पूछा, और दूसरी कहाँ है ? मुल्ला ने कहा, वह भी मर गयी। फ्रैक्चर आफ द इस्कल। खोपड़ी के टूट जाने से। वट द फाल्ट वाज़ हर। भूल उसकी ही थी। मैं कितना ही कहूँ मासरूम खाने को, वह कुकुरमुत्ते खाने को राजी नहीं होती थी। तो खोपड़ी के टूटने से मर गयी। खोपड़ी मुल्ला ने तोड़ी कि वह मसरूम नहीं खाती, मगर दोष उसका ही था। भूल उसकी ही थी।

भूल सदा दूसरे की है। भूल शब्द ही दूसरे की तरफ तीर बनाकर चलता है। वह कभी अपनी होती ही नहीं। और जब अपनी नहीं होती तो विनय का कोई भी कारण नहीं है। अहंकार दूसरे की तरफ जाते हुए तीरों के बीच में निश्चित खड़ा होता है, बलशाली होता है, सघन होता है। इसलिए महावीर ने प्रायश्चित को पहला अन्तर-तप कहा कि पहले तो यह जान लेना जरूरी होगा कि न केवल मेरे कृत्य गलत हैं, बल्कि मैं ही गलत हूँ। इससे तीर सब बदल गये, रुख सब बदल गया। वे दूसरे की तरफ न जाकर अपनी तरफ मुड़ गये। ऐसी स्थिति में विनय को साधा जा सकता है। फिर भी महावीर ने निर-अहंकारिता नहीं कही। महावीर कह सकते थे, निर-अहंकार। लेकिन महावीर ने 'इगोलेसनेस' नहीं कही। कहा विनय, क्योंकि निर-अहंकार नकारात्मक है। और उसमें अहंकार की स्वीकृति है। अहंकार को इनकार करने के लिए ही उसका स्वीकार है। और जिसे हमें इनकार करने के लिए स्वीकार करना पड़े, उसे इनकार किया नहीं जा सकता। जैसे कोई आदमी यह नहीं कह सकता कि मैं मर गया हूँ, क्योंकि मैं मर गया हूँ कहने के लिए मैं जिन्दा हूँ को स्वीकार करना पड़ेगा। जैसे कोई आदमी यह नहीं सकता कि मैं घर के भीतर नहीं हूँ, क्योंकि घर के भीतर नही हूँ, यह कहने के लिए भी मुझे घर के भीतर होना पड़ेगा। निर-अहंकार की साधना में यही भूल है कि मैं अहंकारी हूँ, इस बात को स्वीकार करना पड़ता है और इस अहंकार को निर-अहंकार में बदलने की कोशिश करनी पड़ती है। बहुत डर तो यही है कि वह अहंकार ही अपने ऊपर निर-अहंकार के वस्त्र ओढ़ लेगा और कहेगा देखो, मैं निर-अहंकारी हूँ। अहंकार है ही कहाँ मुझमें ? अहंकार यह भी कह सकता है कि अहंकार मुझमें नहीं है। तब वह विनय नहीं रह

जाती। वह अहंकार का ही एक रूप है। प्रच्छन्न, छिपा हुआ, गुप्त, और पहले वाले प्रकट रूप से ज्यादा खतरनाक है। इसलिए निर-अहंकार नहीं कहा है जानकर; क्योंकि कोई अंतर्-तप अगर निःसंदेहात्मक रूप से पकड़ा जाये तो सूक्ष्म हो जायेगी वह बीमारी, जिसको आप हटाने चले थे, मिटाना कठिन होगा। हां, विनय आ जाये तो आप निर-अहंकारी हो जायेंगे, लेकिन निर-अहंकारी होने की कोशिश अहंकार को नष्ट नहीं कर पाती। अहंकार इतने विनम्र रूप ले सकता है, जिसका हिसाब लगाना कठिन है। अहंकार कह सकता है कि मैं तो कुछ भी नहीं, आपके पैरों की धूल हूँ।

(५) चोर को कभी निर्णायक बनाकर देखिए

विनय है पॉजिटिव। महावीर विधायक पर जोर दे रहे हैं कि आपके भीतर वह अवस्था जन्मे, जहां दूसरा दोषी नहीं रह जाता। और जिस क्षण मुझे अपने दोष दिखायी पड़ने शुरू होते हैं, उस क्षण विनय बहुत-बहुत रूपों में बरसती है। एक तो वह व्यक्ति जो अपने दोष नहीं देखता, वह दूसरे के दोष बहुत कठोरता से देखता है। जिस व्यक्ति को अपने दोष दिखायी पड़ने शुरू होते हैं, वह दूसरों के दोषों के प्रति बहुत सहृदय हो जाता है, क्योंकि वह जानता है, मेरे भीतर भी यही है। सच तो यह है कि जिस आदमी ने चोरी न की हो, उस आदमी को चोरी के संबंध में निर्णय का अधिकार नहीं होना चाहिए। क्योंकि वह समझ ही नहीं पायेगा कि चोरी मनुष्य कैसी स्थिति में कर लेता है। लेकिन हम चोर को कभी चोर का निर्णय करने को न बिठायेंगे। हम उसको बिठायेंगे, जिसने कभी चोरी नहीं की है। उससे जो भी होगा, वह अन्याय होगा। अन्याय इसलिए होगा कि वह अति कठोर होगा। अपने भीतर की कमजोरी जानकर, दूसरे की कमजोरी भी स्वाभाविक है, यह जो सहृदय भाव आना चाहिए, वह उसके भीतर नहीं होता। यह जानकर आप हैरान होंगे कि जिन्हें हम तथाकथित पापी कहते हैं, वे ज्यादा सहृदय होते हैं। और जिन्हें हम महात्मा कहते हैं, वे सहृदय नहीं होते। महात्माओं में ऐसी दुष्टता का और ऐसी कठोरता का छिपा हुआ जहर मिलेगा जैसा कि पापियों में खोजने से भी नहीं मिलेगा।

यह बहुत उल्टा दिखायी पड़ता है। लेकिन इसके पीछे कारण है। यह उल्टा नहीं है। पापी दूसरे पापियों के प्रति सहृदय होता है, क्योंकि वह

जानता है कि मैं ही कमजोर हूँ, तो मैं किसकी कमजोरी की निन्दा करूँ। इसलिए किसी पापी ने दूसरे पापी के लिए नर्क का आयोजन नहीं किया, पुण्यात्मा करते हैं। उनका मन नहीं मानता कि उनको छोड़ा जा सके। और इस बात की पूरी संभावना है कि उनके पुण्य करने में केवल इतना ही रस हो कि वे पापियों को नीचा दिखा सकें। अहंकार ऐसे रस लेता है। इसलिए एक तो जैसे ही चेतना के तीर अपनी तरफ मुड़ जाते हैं और अपनी भूलें सहज ही दिखायी पड़नी शुरू हो जाती हैं, वैसे ही दूसरों की भूलों के प्रति एक अत्यन्त सहृदय भाव आता है। तब हम जानते हैं कि दूसरे को दोषी कहना व्यर्थ है। इसलिए नहीं कि वह दोषी न होगा बल्कि इसलिए कि दोष इतने स्वाभाविक हैं, मुझमें भी हैं। और जब स्वयं में दोष दिखायी पड़ने शुरू होते हैं, तो दूसरों से अपने को श्रेष्ठ मानने का कारण नहीं रह जाता।

(६) जो श्रेष्ठ को देखेगा वह निकृष्ट भी देखेगा

लेकिन जैन शास्त्र जो परिभाषा करते हैं विनय की, वह बड़ी और है। वे कहते हैं जो अपने से श्रेष्ठ हैं उनका आदर विनय है। गुरुजनों का आदर, माता-पिता का आदर, श्रेष्ठजनों का आदर, साधुओं का आदर, महाजनों का आदर, लोकमान्य पुरुषों का आदर—इनका आदर विनय है। यह बिल्कुल ही गलत है। यह आमूल गलत है। यह जड़ से ही गलत है। यह बात ठीक नहीं है। यह इसलिए ठीक नहीं है कि जो व्यक्ति दूसरे को श्रेष्ठ देखेगा, वह किसी को अपने से निकृष्ट देखता ही रहेगा। यह असम्भव है कि आपको कोई व्यक्ति श्रेष्ठ दिखायी पड़े और कोई व्यक्ति ऐसा न मालूम पड़े जो आपसे निकृष्ट है। क्योंकि तराजू में एक पलड़ा नहीं होता। आप जब तक दूसरे को श्रेष्ठ देख सकते हैं, तब तक आप तुलना करते हैं। आप कहते हैं यह आदमी श्रेष्ठ है, क्योंकि मैं चोरी करता हूँ, यह आदमी चोरी नहीं करता। लेकिन तब आप इस बात को देखने से कैसे बचेंगे कि कोई आदमी आपसे भी ज्यादा चोर है? आप कह सकते हैं कि यह आदमी साधु है। लेकिन तब आप यह देखने से कैसे बचेंगे कि दूसरा आदमी असाधु है? जब तक आप साधु को देख सकते हैं, तब तक असाधु को देखना पड़ेगा। और जब तक आप श्रेष्ठ को देख सकते हैं तब तक अश्रेष्ठ आपकी आँखों में मौजूद रहेगा। तुलना के दो पलड़े होते हैं। इसलिए मैं नहीं मानता हूँ कि महावीर का यह अर्थ है कि अपने से श्रेष्ठ जनों को आदर देना विनय है, क्योंकि निकृष्ट जनों को अनादर देना ही पड़ेगा। यह

बहुत मजेदार बात है। यह हमने कभी नहीं सोचा। इस तरह हम सोचते नहीं। और जीवन बहुत जटिल है। हमारा सोचना बहुत बचकाना है। हम कहते हैं श्रेष्ठ जनों को आदर दें लेकिन निकृष्ट जन दिखायी पड़ेंगे। जब आप सीढ़ियों पर खड़े हो गये और अगर पीछे का दिखायी पड़ना बन्द हो जायेगा, तो जो आपके आगे है, वह आपसे आगे है, यह कैसे मालूम पड़ेगा? वह पीछे की ही तुलना में आगे मालूम पड़ता है। अगर दो ही आदमी खड़े हैं तो कौन आगे है, यह कैसे पता चलेगा?

(७) गधे पर उल्टा बैठ चल पड़े मुल्ला

मुल्ला के जीवन में एक बड़ी प्रीतिकर घटना हुई है। कुछ विद्यार्थियों ने आकर मुल्ला से कहा कि कभी चलकर हमारी विद्यापीठ में हमें प्रवचन दो। मुल्ला ने कहा, अभी चलता हूँ। क्योंकि कल का क्या भरोसा? और शिष्य बड़ी मुश्किल से मिलते हैं। मुल्ला ने अपना गधा निकाला जिस पर वह सवारी करता था, लेकिन गधे पर उल्टा बैठ गया। बाजार से यह अद्‌भुत शोभा-यात्रा निकली—मुल्ला गधे पर उल्टा बैठा। विद्यार्थी थोड़ी देर में बेचैन होने लगे, क्योंकि सड़क के लोग उत्सुक होने लगे और मुल्ला के साथ-साथ विद्यार्थी भी थक गये। लोग कहने लगे, यह क्या मामला है? एक पागल के पीछे जा रहे हो? तुम्हारा दिमाग खराब है? आखिर एक विद्यार्थी ने हिम्मत जुटाकर कहा कि मुल्ला, यह क्या ढंग है बैठने का? आप कृपा करके सीधे बैठ जायें। तुम्हारे साथ हमारी भी बदनामी हो रही है। मुल्ला ने कहा, लेकिन यदि मैं सीधा बैठूंगा तो बड़ी अविनय हो जायेगी। उसने कहा, कैसी अविनय? मुल्ला ने कहा, मैं अगर तुम्हारी तरफ पीठ करके बैठूं तो तुम्हारा अपमान होगा। और अगर मैं तुम्हारी तरफ पीठ करके न बैठूं तो तुम मेरे आगे चलो और मेरा गधा पीछे चलेगा तो मेरा अपमान होगा। सो दिस इज द ओनली वे टु कम्प्रोमाइज़ कि मैं गधे पर उल्टा बैठूं तुम्हारे आगे चलूं और हम दोनों के मुंह आमने-सामने रहें। इसमें दोनों की इज्जत की रक्षा है। लोगों को कहने दो जो कह रहे हैं। हम दोनों अपनी इज्जत बचा रहे हैं। ये जो हमारी विनय की भावनाएँ हैं, श्रेष्ठजन कौन हैं, आगे कौन चल रहा है, ये निश्चित ही निर्भर करेंगी कि पीछे कौन चलता है। और जितना आप अपने श्रेष्ठजन को आदर देंगे, उसी तरह मात्रा में आप अपने से निकृष्ट जन को अनादर देंगे। मात्रा बराबर होगी, क्योंकि जिन्दगी हर समय संतुलन

करती हैं। अन्यथा बेचैनी पैदा हो जाती है। इसलिए जब आप एक साधु खोजेंगे तो निश्चित रूप से आप एक असाधु को भी खोजेंगे। और तुलना बराबर हो जायेगी। जब भी आप एक भगवान् खोजेंगे, तब आप एक भगवान् ऐसा भी खोजेंगे, जिसकी निन्दा आपको अनिवार्य होगी। जो लोग महावीर को भगवान् मानते हैं, वे लोग बुद्ध को भगवान् नहीं मान सकते, वे कृष्ण को भगवान् नहीं मान सकते। जो लोग कृष्ण को भगवान् मानते हैं, वे लोग महावीर को, बुद्ध को भगवान् नहीं मान सकते। नहीं मान सकते, इसलिए कि संतुलन करना पड़ता है जिन्दगी में। एक पलड़े पर भगवान् को रख दिया तो दूसरे पर रखना पड़ेगा उसे, जो भगवान् नहीं है। तभी संतुलन होगा।

(८) हिन्दू ग्रंथों में महावीर का उल्लेख क्यों नहीं मिलता?

जैन अगर किताबें लिखते हैं बुद्ध के बाबत, (क्योंकि बुद्ध और महावीर समकालीन थे और उनकी शिक्षाएँ कई अर्थों में समान मालूम पड़ती थीं) तो मैंने अब एक भी हिम्मतवर जैन नहीं देखा, जिसको बुद्ध को भगवान् लिखने की हिम्मत हो। अगर साथ-साथ लिखते भी हैं, तो लिखते हैं---भगवान् महावीर, महात्मा बुद्ध। बहुत हिम्मतवर हैं जो महात्मा बुद्ध लिखते हैं। लेकिन उनकी भी हिम्मत नहीं जुट पाती कि वे भगवान् बुद्ध लिख सकें। भगवान् कृष्ण कहना तो बहुत मुश्किल मामला है। क्योंकि शिक्षाएँ बहुत विपरीत हैं। तो कृष्ण को तो जैनों ने नर्क में डाल रखा है। उनके हिसाब से इस समय कृष्ण नर्क में हैं। क्योंकि युद्ध इसी आदमी ने करवाया। और हिन्दू ने तो महावीर की कोई गणना नहीं की, किसी एक किताब में भी उल्लेख नहीं किया महावीर का, यानी नर्क में डालने योग्य भी नहीं माना। आप ही समझ लीजिए, कोई हिसाब नहीं रखा। अगर बौद्धों के ग्रंथ नष्ट हो जायें तो जैनों के पास अपने ही ग्रंथों के सिवाय महावीर का हिन्दुस्तान में कोई उल्लेख नहीं रह जाता। हिन्दुओं ने तो गणना ही नहीं की कि यह आदमी कभी हुआ भी या नहीं? इस भाँति महावीर जैसा आदमी पैदा हो, हिन्दुस्तान में पैदा हो, चारों तरफ हिन्दुओं से भरे समाज में पैदा हो और हिन्दुओं का एक भी शास्त्र उल्लेख न करता हो, यह जरा सोचने जैसा सवाल है। इसलिए जब पहली दफे पाश्चात्य विद्वानों ने महावीर पर काम शुरू किया, तो उन्हें शक हुआ कि यह आदमी कभी हुआ नहीं होगा। क्योंकि हिन्दुओं के ग्रंथों में कोई उल्लेख नहीं हुआ, इसलिए असंभव है। तो उन्होंने सोचा, यह शायद बुद्ध का ही ख्याल

है जैनों को, ये बुद्ध को ही मानने वाले दो तरह के लोग हैं। बुद्ध और महावीर को जो विशेषण दिये गये, वे कई जगह समान हैं, जैसे कि बुद्ध को भी जिन कहा गया है, महावीर को भी जिन, जिसने अपने को जीत लिया। महावीर को भी बुद्ध पुरुष कहा गया है, बुद्ध को भी बुद्ध कहा गया है। तो उन्होंने सोचा शायद यह बुद्ध का ही भ्रम है। और पश्चिम के विद्वानों ने महावीर को मानने से इनकार कर दिया।

इनकार करने का कारण था कि हिन्दू बड़ा समाज है, इसमें कहीं कोई खबर ही नहीं है कि महावीर हुए थे। ध्यान रहे, जैनों को कृष्ण को स्वीकार करना पड़ा, भले नरक में डालना पड़ा हो, अस्वीकार करना मुश्किल था। इतना बड़ा व्यक्ति था। उतने बड़े समाज का आदर और सम्मान था। लेकिन हिन्दू चाहें तो निग्लेक्ट कर सकते हैं, उपेक्षा कर सकते हैं। कोई जरूरत नहीं है उल्लेख करने की। पर आश्चर्यजनक यह है कि एक को कोई भगवान् मान ले तो दूसरे को मानना बड़ा कठिन हो जाता है। कठिनाई यह हो जाती है कि तौल खड़ी हो जाती है। दूसरे को दूसरे पलड़े पर रखना पड़ेगा और सन्तुलन बराबर बिठाना पड़ेगा। हम सब सन्तुलन बिठा रहे हैं। हम सब तुलनाएँ कर रहे हैं। इसीलिए यह आश्चर्यजनक घटना घटती है कि इस पृथ्वी पर इतने-इतने अद्‌भुत लोग पैदा होते हैं, लेकिन उन अद्‌भुत लोगों में से हम एक का ही फायदा उठा पाते हैं, सबका नहीं उठा पाते। सबके हम हकदार हैं। हम बुद्ध के उतने ही वसीयतदार हैं जितने कि कृष्ण के, जितने कि मुहम्मद के, जितने कि क्राइस्ट के, जितने नानक के, जितने कबीर के। लेकिन नहीं, हम वसीयत छोड़ देंगे। हम तो एक के हकदार होंगे, शेष सबको हम इनकार कर देंगे। हमें इनकार करना पड़ेगा। क्योंकि जब हम स्वीकार करते हैं श्रेष्ठ को, तो हमें किसी को निकृष्ट की जगह रखना पड़ेगा, नहीं तो श्रेष्ठ को तौलने का मापदण्ड कहाँ होगा! इससे विनय पैदा नहीं होती।

जो आदमी कहता है कि मैं महावीर के प्रति विनयपूर्ण हूं, लेकिन बुद्ध के प्रति नहीं, वह समझ ले कि वह विनीत नहीं। और यह भी अपने अहंकार को भरने का ही एक ढंग है, क्योंकि अगर मैं महावीर से अपने को जोड़ रहा हूं कि महावीर भगवान् हैं, तो मैं भगवान् से जुड़ता हूं। और तब दूसरे लोग जो अपने को बुद्ध से जोड़कर अहंकार को भर रहे हैं, उनके अहंकार से मेरी

टक्कर शुरू हो जाती है। इससे मुझे अड़चन होने लगती है कि बुद्ध कैसे भगवान् हो सकते हैं, क्योंकि अगर बुद्ध भगवान हैं, तो बुद्ध को मानने वाले भी श्रेष्ठ हो जाते हैं। भगवान् तो सिर्फ महावीर ही हैं और उनको मानने वाले श्रेष्ठ हैं, आर्य हैं। सारी दुनिया में यही पागलपन पैदा होता है। यह हमारे अहंकार से पैदा हुआ रोग है। विनय का यह अर्थ नहीं है कि आप अपने से श्रेष्ठ को आदर दें।

(९) बिना नाप तौल की विनय

दूसरी बात यह भी ध्यान रखने की है कि अगर श्रेष्ठ है वह आदमी, इसलिए आप आदर देते हैं तो आपके आदर देने में कोई गुण कहां रहा? यह भी थोड़ा ख्याल में ले लें। अगर एक व्यक्ति श्रेष्ठ है तो आदर आपको देना पड़ता है, आप देते नहीं। आपका क्या गुण है? देने में आपका क्या रूपांतरण हो रहा है? अगर एक व्यक्ति श्रेष्ठ है तो आपको आदर देना पड़ता है। ध्यान रहे, वह मजबूरी बन जाती है। वह आपका गुण नहीं है। और अगर आपका गुण न हो, तो आपका अंतर्-तप कैसे होगा? अंतर्-तप तो आपके भीतरी गुणों को जगाने की बात है।

अगर मुझे कोहिनूर सुंदर लगता है, तो वह कोहिनूर का सौंदर्य होगा, लेकिन जिस दिन मुझे सौंदर्य कंकड़-पत्थर में भी दिखायी पड़ने लगे, उतना ही जितना कि कोहिनूर में दिखायी पड़ता है, सड़क पर पड़े हुए पत्थर में दिखायी पड़ने लगे, उस दिन कोहिनूर, कोहिनूर न रहा। अब मेरा गुण हुआ। जिस दिन मुझे सबकी तरफ विनय मालूम होने लगे बिना तौल के, उस दिन गुण मेरा है। और जब तक मैं तौल-तौल कर आदर देता हूं तब तक मेरा गुण नहीं है। मजबूरी है। जो श्रेष्ठ है, उसे आदर देना पड़ता है। श्रेष्ठ को आदर देने के लिए आपको कुछ प्रयास, कोई श्रम, कोई परिवर्तन नहीं करना पड़ता। इसलिए वह आपका तप कैसे हुआ? वह श्रेष्ठ व्यक्ति का भले तप रहा हो कि वह श्रेष्ठ कैसे हुआ, लेकिन आप उसको आदर देते हैं तो आपका तप कैसे हुआ, आपकी साधना कैसे हुई? सूरज निकलता है तो आप नमस्कार कर लेते हैं। फूल खिलता है तो आप गीत गा देते हैं। आप इसमें कहां आते हैं? आपके बिना भी फूल खिल जाता। और आपके गीत से फूल कुछ ज्यादा नहीं खिलता। और आपके बिना भी सूरज

निकल जाता और आपके नमस्कार से सूरज की चमक नहीं बढ़ती। आपका इसमें कहाँ मूल्य है? आप इसमें कहाँ आते हैं? आप इसमें कहीं भी नहीं आते।

(१०) हीनताग्रंथि के शिकार हैं आप या सचमुच हीन हैं?

मुल्ला नसरुद्दीन मनोवैज्ञानिक से सलाह लेता था निरंतर, क्योंकि उसे निरंतर चिन्ताएँ, तकलीफें, मन में न जाने कितने जाल खड़े हो जाते थे। उसने मनोवैज्ञानिक से जाकर कहा कि मैं बहुत परेशान हूँ, मुझे इनफीरियॉरिटी कॉम्प्लेक्स है, हीनता की ग्रंथि सताती है। सुल्तान निकलता है रास्ते से तो मुझे लगता है कि मैं हीन हूँ। एक महाकवि गाँव में आकर गीत गाता है, तो मुझे लगता है कि मैं हीन हूँ। नगर सेठ की हवेली ऊँची उठती चली जाती है, तो मुझे लगता है कि मैं हीन हूँ। एक तार्किक तर्क करने लगता है तो मुझे लगता है कि मैं हीन हूँ। मैं इस हीनता की ग्रन्थि से मुक्त कैसे होऊँ? उस मनोवैज्ञानिक ने कहा कि डोंट सफर अननेसेसरिली। यू आर नॉट सफरिंग फ्रॉम इनफीरियॉरिटी कॉम्प्लेक्स, यू आर इनफीरियर। उस मनोवैज्ञानिक ने कहा कि आपको हीनता की ग्रंथि से परेशानी नहीं हो रही है, आप हीन हैं। इसमें कोई बीमारी नहीं है, यह तथ्य है।

ध्यान रहे, जब आप किसी के सामने तथ्य की तरह हीन होते हैं, तो आपको आदर देना पड़ता है। अगर एक कालिदास शाकुंतल पढ़ता हो और आपको आदर देना पड़े या एक तानसेन सितार बजाता हो और आपका सिर झुक जाये तो आप इस भूल में मत पड़ना कि आपने आदर दिया है, बल्कि आपको आदर देना पड़ा है। लेकिन हमारा मन है कि जहाँ हमें देना पड़ता है, वहाँ भी मानता है कि हमने दिया है। यह भी अपने अहंकार की पुष्टि है कि मैंने दिया आदर! तो महावीर यह नहीं कह सकते कि श्रेष्ठजनों के प्रति आदर, क्योंकि वह होता ही है। उसका कोई मूल्य ही नहीं है। बिना किसी भेदभाव के आदर हो, तब विनय पैदा होती है। श्रेष्ठ अश्रेष्ठ का कोई सवाल ही नहीं है—जीवन के प्रति आदर, अस्तित्व के प्रति आदर, जो है उसके प्रति आदर। वह है यही क्या कम है! एक पत्थर है, एक फूल है, एक सूरज है, एक आदमी है, एक चोर है, एक साधु है, एक बेईमान है—ये हैं। इनका होना ही पर्याप्त है। और इनके प्रति जो आदर है, अगर यह आदर सहज हो जाये

तो यह आपका अंतः-तप है। तब यह गुण आपका है। तब आप परिवर्तित होते हैं।

(११) श्रेष्ठता तय करने का तराजू क्या है ?

फिर दूसरी बात कि यह कैसे तय करेंगे कि कौन श्रेष्ठ है। यह जो शास्त्र कहते हैं कि श्रेष्ठ, महाजन, गुरुजन, तो कैसे तय करेंगे कौन है ? क्या है उपाय जांचने का आपके पास ? कैसे तौलियेगा ? क्योंकि अनेक लोग महावीर के पास भी आकर लौट जाते हैं और कह जाते हैं कि ये गुरु नहीं हैं। अनेक लोग क्राइस्ट को सूली पर लटका देते हैं यह मानकर कि आवारा, लफंगा है, उसको दुनिया से हटाना जरूरी है, नुकसान पहुँचा रहा है। और ध्यान रहे जिन लोगों ने जीसस को सूली दी थी, वे उस समय के भले और श्रेष्ठजन थे। अच्छे लोग थे। न्यायाधीश थे। धर्मगुरु थे। राजनेता थे। उस समय के जो धनी लोग थे, उन्होंने ही जीसस को सूली दी थी। और उनका सूली देना अगर हम तौलने चलें तो वे ठीक ही मालूम पड़ते हैं, क्योंकि जीसस वेश्याओं के घर में ठहर गये। जो आदमी वेश्याओं के घर में ठहर जाये, वह आदमी श्रेष्ठ कैसे हो सकता है ? क्योंकि जीसस शराबघरों में शराबियों से दोस्ती कर लेते थे, और जो शराब घरों में बैठता हो, उसका क्या भरोसा ? क्योंकि जीसस उन लोगों के घरों में ठहर जाते थे, जो बदनाम थे; तो बदनाम आदमियों से जिसकी दोस्ती हो, वह आदमी तो अपने संग-साथ से ही पहचाना जाता है। जो समाज के बाहर कर दिये गये थे, उनके बीच में भी जीसस की मैत्री थी, निकटता थी। तो वह आदमी भला कैसे था ? यह आदमी चली आती हुई परम्परा का विरोध करता था, मंदिर के पुरोहितों का विरोध करता था। यह कहता था कि जो साधु दिखायी पड़ रहे हैं, वे साधु नहीं हैं। तो यह आदमी भला कैसे था ? उस समाज के भले आदमी ने इस आदमी को सूली पर लटका दिया। पर आज हम जानते हैं कि बात कुछ गड़बड़ हो गयी।

(१२) सुकरात को जहर देनेवाले भी भले ही थे !

सुकरात को जिन लोगों ने जहर दिया था, वे लोग उस समाज के श्रेष्ठजन थे। कोई बुरे लोगों ने जहर नहीं दिया था। अच्छे लोगों ने जहर दिया था। और इसलिए दिया था कि सुकरात की मौजूदगी समाज की नैतिकता को नष्ट करने का कारण बन सकती थी। क्योंकि सुकरात सन्देह पैदा कर

रहा था। तो जो भलेजन थे, वे चिन्तित हुए। वे चिन्तित हुए कि इससे कहीं नयी पीढ़ी नष्ट न हो जाये। सुकरात को जहर देने के पहले उन्होंने एक विकल्प दिया था कि सुकरात तुम एथेंस छोड़कर चले जाओ और व्रत लो कि अब दुबारा एथेंस में प्रवेश नहीं करोगे, तो हम तुम्हें मुक्त छोड़ दे सकते हैं। लेकिन हम तुम्हें एथेंस के समाज को नष्ट नहीं करने देंगे। या तो तुम यह वायदा करो कि अब तुम एथेंस में शिक्षा नहीं दोगे, तो हम तुम्हें एथेंस में ही रहने देंगे। लेकिन अब तुम जबान बन्द रखोगे क्योंकि तुम्हारे शब्द नयी पीढ़ी को नष्ट कर रहे हैं। जो लोग थे, वे भले थे। स्वभावतः जो नयी पीढ़ी के लिए चिन्तित थे।

इस तरह देखें तो सभी लोग नयी पीढ़ी के लिए चिंतित होते हैं। और उनकी चिन्ता से नयी पीढ़ी बिगड़ती चली जा रही है। धनी कौन है, श्रेष्ठ कौन है? धन है जिसके पास वह, पांडित्य है जिसके पास वह। यश है जिसके पास वह। तो फिर यश जिन रास्तों से यात्रा करता है, उन रास्तों को देखें तो पता चलेगा कि यश बहुत श्रेष्ठ रास्तों से उपलब्ध नहीं होता है। लेकिन सफलता सभी अश्रेष्ठताओं को पोंछ डालती है। धन कोई साधु मार्गों से उपलब्ध नहीं होता। लेकिन उपलब्धि पुराने इतिहास को नया रंग दे देती है। कौन है श्रेष्ठ? समाज उसे श्रेष्ठ कहता है जो समाज के नियम मानता है। लेकिन इस जगत् में हम जिन लोगों को पीछे श्रेष्ठ कहते हैं, वे वही लोग हैं जो समाज के नियम तोड़ते हैं। बुद्ध आज श्रेष्ठ हैं, महावीर आज श्रेष्ठ हैं, कबीर आज श्रेष्ठ हैं। लेकिन अपने समाज में नहीं थे। क्योंकि वे समाज के नीति-नियम तोड़ रहे थे। वे बगावती थे। वे दुश्मन थे समाज के।

(१३) जीवित तीर्थंकरों को कोई नहीं पूछता

और आज भी जो महावीर को श्रेष्ठ कहता है, लेकिन अगर कोई बगावती खड़ा होता है तो उसको समाज कहेगा कि यह आदमी खतरनाक है। इसलिए मरे हुए तीर्थंकर आदृत होते हैं, जीवित तीर्थंकरों का आदृत होना बहुत मुश्किल है। क्योंकि जीवित तीर्थंकर बगावती होता है। मरा हुआ तीर्थंकर मरे हुए होने की वजह से धीरे-धीरे स्वीकृत हो जाता है। इस्टेब्लिशमेन्ट का, स्थापित का, न्यस्त मूल्यों का हिस्सा हो जाता है। फिर कोई कठिनाई नहीं रह जाती। अब महावीर से क्या कठिनाई है? महावीर से जरा भी कठिनाई नहीं है।

महावीर नग्न खड़े थे और महावीर के शिष्य कपड़े की दुकानें कर रहे हैं पूरे मुल्क में। कोई कठिनाई नहीं है। महावीर के शिष्य जितना कपड़ा बेचते हैं कोई और नहीं बेचता। मेरे एक निकट सम्बन्धी हैं। उनकी दुकान का नाम है दिगम्बर क्लॉथ शॉप। दिगम्बर क्लॉथ शॉप? नंगों की कपड़ों की दुकान? महावीर सुनें तो बहुत हैरान होंगे कि और तुम्हें कोई नाम नहीं मिला? लेकिन अब कोई दिक्कत नहीं है, क्योंकि दिगम्बर में और उस क्लॉथ शॉप में कहीं कोई विरोध नहीं है। लेकिन महावीर अगर नंगे दुकान के सामने खड़े हो जायें, तो विरोध साफ दिखायी पड़ेगा कि यह आदमी नंगा खड़ा है और हम कपड़े बेच रहे हैं। हम इसके शिष्य हैं, बात क्या है? अगर नग्न होना पुण्य है तो कपड़े बेचना पाप हो जायेगा, क्योंकि दूसरों को कपड़ा पहनाना अच्छी बात नहीं है, नाहक उनको पाप में ढकेलना है। लेकिन मरे हुए महावीर से कोई बाधा नहीं आती, ख्याल नहीं आता। जब मैंने उन्हें यह याद दिलाया तो उन्होंने कहा, आश्चर्य है, यह तो हम तीस साल से बोर्ड लगाये हुए हैं और हमें कभी ख्याल ही नहीं आया कि दिगम्बर और कपड़े में कोई विरोध है।

सच है, ख्याल ही नहीं आता। मुर्दा तीर्थंकर हमारी व्यवस्था में सम्मिलित हो जाता है। हम उसकी बगावत को गिरा देते हैं, शब्दों पर नया रंग पॉलिश कर देते हैं। लेकिन जिसको इतिहास पीछे से श्रेष्ठ कहता है, उसको अपना समय उसको हमेशा उपद्रवी कहता है। फिर किसको आदर? क्योंकि फिर तो श्रेष्ठ जाँचने का कोई उपाय नहीं है कि महाजन कौन है। महाजनो येन गतः स पंथा—जिस मार्ग पर महाजन जाते हैं वही मार्ग है।

लेकिन महाजन कौन? मुहम्मद महाजन हैं? महावीर को मानने वाला कभी न मान पायेगा कि आप क्या बात कर रहे हैं। आदमी तलवार को हाथ में लिये खड़ा हो वह महाजन? कौन है महाजन? मुहम्मद को मानने वाला कभी न मान पायेगा कि महावीर महाजन हैं। क्योंकि वह कहता है कि जो आदमी बुराई के खिलाफ तलवार भी नहीं उठाता, वह आदमी नपुन्सक है। क्लीव है। जब इतनी बुराई चलती है तो तलवार उठनी चाहिए। नहीं तो तुम क्या हो, तुम मुर्दे हो। धर्म तो जीवन्त होना चाहिए। धर्म के हाथ में तो तलवार होगी जैसे कि मुहम्मद के हाथ में तलवार है। हालांकि तलवार पर लिखा है 'शान्ति मेरा सन्देश है।' इस्लाम का मतलब शान्ति होता है। एक जैनी ऐसा कभी सोच ही नहीं सकता कि इस्लाम और शान्ति एक हैं। इसका भी कोई सम्बन्ध

है ? लेकिन मुहम्मद कहते हैं जो शांति तलवार की धार में बन नहीं सकती है, वह बच नहीं सकती। बचेगी कैसे ?

(१४) तौलने की सहज तरकीब

तब फिर कोई है श्रेष्ठ ? कैसे तौलिएगा ? इसलिए हमने तौलने का एक रास्ता निकाला है। हमें तौलना नहीं पड़ता। हम जन्म से तौलते हैं। अगर मैं जैन धर्म में पैदा हुआ तो महावीर श्रेष्ठ। अगर इस्लाम धर्म में पैदा हुआ तो मुहम्मद श्रेष्ठ। यह तौलने से बचने की तरकीब है। यह एक ऐसा उपाय खोजना है, जिसमें तौलना नहीं पड़ता। जन्म हो गया, तो वह नियति हो गयी। उससे तुल जाती है बात कि श्रेष्ठ कौन है। आप सभी इसी तरह तौल रहे हैं कि कौन श्रेष्ठ है, किसको आदर देना है। आप जैन साधु को आदर देते हैं तो यह जानकर आदर देते हैं कि वह साधु है या यह जानकर आदर देते हैं कि वह जैन है ? साधु को तौलने का उपाय कहां है ? कैसे तौलिएगा ? वह मुंहपट्टी निकालकर अलग कर दे और आदर खत्म हो जायेगा। तो आप किसको आदर दे रहे थे, मुंहपट्टी को या आदमी को ? मुंहपट्टी फिर वापस लगा ले, आप फिर पैर छूने लगेंगे। मुंहपट्टी नीचे रख दे, तो आप पछतायेंगे कि इस आदमी का पैर क्यों छुआ ! मुंहपट्टी लगा ले तो स्वागत ! आप मुंहपट्टी को देख रहे हैं कि आदमी को ? लगता ऐसा है कि मुंहपट्टी असली चीज है। यानी ऐसा नहीं कहना चाहिए कि आदमी मुंहपट्टी लगाये हुए है, बल्कि ऐसा कहना चाहिए कि मुंहपट्टी आदमी को लगाये हुये है। क्योंकि असली चीज मुंहपट्टी है। आखिरी निर्णय वही करती है। आदमी तो निर्णायक है नहीं। अगर बुद्ध भी आ जायें आपके मंदिर में, तो आप इतना आदर उनको नहीं देंगे जितना आदर मुंहपट्टी लगाये एक मुनि को देंगे, क्योंकि मुंहपट्टी है।

ये तरकीबें हमने क्यों सोची हैं ? इसका कारण है। क्योंकि मापदंड का कोई उपाय नहीं है। इनसे हम रास्ता बना लेते हैं तौलने का। यह आपकी मजबूरी है कि श्रेष्ठ कौन है, इसकी जांच के लिए कोई तराजू नहीं है। इसलिए हम ऊपरी चिह्न बना लेते हैं, उनसे तौलने में आसानी हो जाती है। पीछे के आदमी की हम बकवाद छोड़ देते हैं। हमारे लिए तो निपटारा हो गया कि यह आदमी साधु है, पैर छुओ। घर जाओ, विनय करो। लेकिन महावीर इस तरह की बचकानी बातें नहीं कह सकते। यह चाइल्डिश है। महावीर यह नहीं कह सकते हैं कि तुम श्रेष्ठ को आदर देना। क्योंकि श्रे॰

को आदर कैसे दोगे ? श्रेष्ठ कौन है, यह हम कैसे जानेंगे ? और जब तुम श्रेष्ठ को जानने जाओगे तो तुम्हें निकृष्ट को जानना पड़ेगा। और जब तुम श्रेष्ठ की परीक्षा करोगे तो कैसे परीक्षा करोगे ? उसके सब पापों का हिसाब रखना पड़ेगा कि रात में पानी तो नहीं पी लेता, कि छिपाकर कुछ खा तो नहीं लेता, साबुन की बटिया तो नहीं अपने झोले में दबाये हुए है, टूथपेस्ट तो नहीं करता है यह सब पता रखना पड़ेगा। और इसका पता वही रख सकता है जिसको निंदा में रस आता हो, जो दूसरे को निकृष्ट सिद्ध करने चला हो। यह वह आदमी नहीं कर सकता जो विनयपूर्ण है। इससे क्या प्रयोजन है उसे कि कौन आदमी टूथपेस्ट रखता है कि नहीं रखता है। यह चिन्तन ही बताता है कि यह जो आदमी सोच रहा है, उसमें विनय नहीं है। महावीर यह नहीं कहते।

(१५) विनय चाहिए तो शर्तनामा हटाइए

महावीर कहते हैं कि विनय एक आंतरिक गुण है। बाहर से उसका कोई संबंध नहीं है। वह अनकंडीशनल है, बेशर्त है। वह यह नहीं कहता कि तुम ऐसे होवोगे तो मैं आदर दूंगा। वह यह कहता है तुम हो, यही पर्याप्त है। मैं तुम्हें आदर दूंगा क्योंकि आदर आंतरिक गुण है। और आदर मनुष्य को अंतरात्मा की तरफ़ ले जाता है। मैं तुमको आदर दूंगा बेशर्त। तुम शराब पीते हो या नहीं पीते हो, यह सवाल नहीं है। तुम जीवन हो, यह काफी है। और तुम्हें यह पूरा अस्तित्व जिला रहा है। सूरज तुम्हें रोशनी दे रहा है। वह इन्कार नहीं करता कि तुम शराब पीते हो। हवाएँ ऑक्सीजन देने से मुकरती नहीं, कि तुम बेईमान हो। आकाश कहता नहीं कि हम तुमको जगह न देंगे क्योंकि तुम आदमी अच्छे नहीं हो। जब तुम्हें यह पूरा अस्तित्व स्वीकार करता है तो मैं कौन हूं जो तुम्हें अस्वीकार करूं। तुम हो तना काफी है, मैं तुम्हें आदर देता हूँ, मैं तुम्हें सम्मान देता हूँ। जीवन के प्रति इस सहज सम्मान का नाम विनय है---सहज, अकारण, बेशर्त, खोजबीन के बिना, क्योंकि खोजबीन हो नहीं सकती। जो यह करता है वह आदमी विनीत नहीं होता। अगर मैं कहूँ कि तुम मेरी शर्तें पूरी करो इतनी, तब मैं तुमको आदर दूंगा तो मैं उस आदमी को आदर नहीं दे रहा हूं। मैं अपनी शर्तों को आदर दे रहा हूं। और जो आदमी मेरी शर्तों को पूरी करने को राजी हो जाता है, वह आदर योग्य नहीं है। वह गुलाम है। वह आदर पाने के लिए शर्तें पूरी करता है।

हम साधुओं से कहते हैं, तुम ऐसा करो, पैदल चलो, इधर मत आओ, उधर मत जाओ तो हम तुम्हें आदर देंगे—ये सब अनकही शर्तें हैं। अगर इसमें कोई गड़बड़ करता है तो आदर विलीन हो जाता है। अगर इनको मानकर चलता है तो आदर जारी रहता है। और इसलिए एक दुर्घटना घटती है कि साधुओं में जो प्रतिभा होनी चाहिए, वह धीरे-धीरे खो जाती है। और साधुओं की तरफ सिर्फ जड़ बुद्धि लोग उत्सुक हो पाते हैं, क्योंकि जड़ बुद्धि ही आपके नियमों को मान सकते हैं। बुद्धिमान आपके इतने नियमों को नहीं मान सकता। इसलिए यह दुर्घटना घटती है कि जब भी सच में कोई साधु पुरुष पैदा होता है तो नया धर्म खड़ा करना पड़ता है क्योंकि पुराने धर्म में उसके लिए कोई जगह नहीं होती। अगर नानक पैदा हो जाये तो उसके लिए नया धर्म अनिवार्यतः खड़ा हो जाता है, क्योंकि कोई पुराना धर्म उसको जगह नहीं देता, इसलिए कि किसी के नियम जबरदस्ती मानने को वह इसलिए मात्र राजी न होगा कि आप आदर देंगे। वह कहता है, आदर की क्या जरूरत है ? मैं अपने ढंग से जिऊँगा, जो मुझे ठीक लगता है। और उसका ठीक लगना किसी पुराने धर्म को ठीक नहीं लगेगा। क्योंकि पुराने धर्म और लोगों के आस-पास निर्मित हुए हैं, उनके ठीक होने का ढंग और था।

(१६) क्या मुहम्मद को सुगंध बहुत पसन्द थी ?

मुसलमान यह सोच भी नहीं सकते कि नानक में भी कोई समझ हो सकती है। वे मर्दाना को साथ में लिए गाँव-गाँव गीत गाते फिरते हैं। जब कि संगीत से दुश्मनी है इस्लाम की। मस्जिद में संगीत प्रवेश नहीं कर सकता। मस्जिद के सामने से निकल नहीं सकता। और यह आदमी मर्दाना को लिये हुए गाते जगह-जगह घूम रहा है। मर्दाना तो मुसलमान था जो नानक के साथ साज बजाता था। तो मुसलमानों ने उसको डिसओन कर दिया कि यह आदमी कैसा है ! यह मुसलमान हो ही नहीं सकता। संगीत से तो दुश्मनी है इस्लाम की। मुहम्मद के लिए संगीत में कोई रस न रहा होगा। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। यह भी हो सकता है कि मुहम्मद को संगीत के माध्यम से निम्न वासनाएँ जागती हुई मालूम हुई होंगी और उन्होंने इन्कार कर दिया होगा। लेकिन सभी को ऐसा होता है, यह जरूरी नहीं है। किन्हीं के भीतर संगीत के माध्यम से श्रेष्ठतम का जन्म होना शुरू होता है। लेकिन मुहम्मद का अपना अनुभव आधार बनेगा। मुहम्मद को सुगंध बहुत पसन्द थी। इस-

लिए अभी भी मुसलमान बेचारे ईद के दिन एक दूसरे को इतर लगाते देखे जाते हैं। अभी भी सुगंध से मुसलमानों को प्रेम है। वह प्रेम सिर्फ परंपरा है। इसलिए कि मुहम्मद को बहुत पसन्द हैं। असल में ऐसा मालूम पड़ता है कि सुगंध मुंहम्मद को वहीं ले जाती है, जहाँ कुछ लोगों को संगीत ले जाता है। सुगंध भी एक इंद्रिय-रस है जैसे संगीत कान का रस है वैसे ही सुगंध नाक का रस है। लेकिन मालूम होता है कि मुहम्मद सुगंध से बड़ी ऊँचाइयों की ओर जाते थे। और उनके लिए सुगंध का एसोसिएशन बहुत गहरा बन गया होगा। संभव है जब उन्हें पहली दफे इलहाम हुआ, जब उन्हें पहली बार प्रभु का सन्देश मिला, तब पहाड़ के आस-पास फूल खिले होंगे। सुगंध उसके साथ जुड़ गयी होगी। जरूर ऐसी कोई घटना होगी। सिर्फ सुगंध उनके लिए द्वार बन गयी। जब वे सुगंध में होंगे, तब वह द्वार खुल जायेगा। लेकिन यही बात संगीत में हो सकती है। और यही बात नृत्य में हो सकती है। यही बात अनेक-अनेक रूपों में हो सकती है। पर मुहम्मद हों तो शायद समझ भी जायें। मुंहम्मद तो हैं नहीं, तो पीछे चलनेवाला आदमी कहता है कि संगीत नहीं बजने देंगे, क्योंकि संगीत इन्कार है। तो फिर नानक को मुसलमान कैसे स्वीकार करें ? हिन्दू भी स्वीकार नहीं कर सकते नानक को। क्योंकि नानक गृहस्थ हैं। वे संन्यासी नहीं हैं। पत्नी है, घर है, कपड़े भी वे साधारण पहनते हैं गृहस्थ जैसे। गृहस्थ को हिन्दू कैसे स्वीकार करें ? ज्ञानी तो संन्यासी होता है।

(१७) काबा भी सही—बुतखाना भी

फिर नानक और भी ज्यादा गड़बड़ करते हैं। सभी जानने वाले लोग एक अर्थ में डिस्टर्बिंग होते हैं, क्योंकि वे सब पुरानी व्यवस्था से फिर नये होते हैं। यहां नानक गड़बड़ यह करते हैं कि वे काबा भी चले जाते हैं, मस्जिद में भी ठहर जाते हैं। तो हिंदू कैसे मानें कि जो आदमी मस्जिद में ठहर जाता है वह आदमी धार्मिक हो सकता है ! मन्दिर में ही क्यों न ठहरे ! इस प्रकार जो विनय श्रेष्ठ की किन्हीं धारणाओं को मानकर चलती है, वह सिर्फ अंधी होगी, परंपरागत होगी, रूढ़िगत होगी, वह क्रांतिकारी नहीं होगी। उससे अंतर-आविर्भाव नहीं होता। अंतर-आविर्भाव होता है तो आदर सहज ही हो जाता है। वह पत्थर के प्रति भी होता है, पौधे के प्रति भी होता है, वह अस्तित्व मात्र के प्रति होता है। इससे कोई संबंध नहीं कि वह कौन है, और क्या। कोई शर्त नहीं है। वह है, बस इतना काफी है।

हम साधुओं से कहते हैं, तुम ऐसा करो, पैदल चलो, इधर मत आओ, उधर मत जाओ तो हम तुम्हें आदर देंगे—ये सब अनकही शर्तें हैं। अगर इसमें कोई गड़बड़ करता है तो आदर विलीन हो जाता है। अगर इनको मानकर चलता है तो आदर जारी रहता है। और इसलिए एक दुर्घटना घटती है कि साधुओं में जो प्रतिभा होनी चाहिए, वह धीरे-धीरे खो जाती है। और साधुओं की तरफ सिर्फ जड़ बुद्धि लोग उत्सुक हो पाते हैं, क्योंकि जड़ बुद्धि ही आपके नियमों को मान सकते हैं। बुद्धिमान आपके इतने नियमों को नहीं मान सकता। इसलिए यह दुर्घटना घटती है कि जब भी सच में कोई साधु पुरुष पैदा होता है तो नया धर्म खड़ा करना पड़ता है क्योंकि पुराने धर्म में उसके लिए कोई जगह नहीं होती। अगर नानक पैदा हो जाये तो उसके लिए नया धर्म अनिवार्यतः खड़ा हो जाता है, क्योंकि कोई पुराना धर्म उसको जगह नहीं देता, इसलिए कि किसी के नियम जबरदस्ती मानने को वह इसलिए मात्र राजी न होगा कि आप आदर देंगे। वह कहता है, आदर की क्या जरूरत है ? मैं अपने ढंग से जिऊँगा, जो मुझे ठीक लगता है। और उसका ठीक लगना किसी पुराने धर्म को ठीक नहीं लगेगा। क्योंकि पुराने धर्म और लोगों के आस-पास निर्मित हुए हैं, उनके ठीक होने का ढंग और था।

(१६) क्या मुहम्मद को सुगंध बहुत पसन्द थी ?

मुसलमान यह सोच भी नहीं सकते कि नानक में भी कोई समझ हो सकती है। वे मर्दाना को साथ में लिए गाँव-गाँव गीत गाते फिरते हैं। जब कि संगीत से दुश्मनी है इस्लाम की। मस्जिद में संगीत प्रवेश नहीं कर सकता। मस्जिद के सामने से निकल नहीं सकता। और यह आदमी मर्दाना को लिये हुए गाते जगह-जगह घूम रहा है। मर्दाना तो मुसलमान था जो नानक के साथ साज बजाता था। तो मुसलमानों ने उसको डिसओन कर दिया कि यह आदमी कैसा है ! यह मुसलमान हो ही नहीं सकता। संगीत से तो दुश्मनी है इस्लाम की। मुहम्मद के लिए संगीत में कोई रस न रहा होगा। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। यह भी हो सकता है कि मुहम्मद को संगीत के माध्यम से निम्न वासनाएँ जागती हुई मालूम हुई होंगी और उन्होंने इन्कार कर दिया होगा। लेकिन सभी को ऐसा होता है, यह जरूरी नहीं है। किन्हीं के भीतर संगीत के माध्यम से श्रेष्ठतम का जन्म होना शुरू होता है। लेकिन मुहम्मद का अपना अनुभव आधार बनेगा। मुहम्मद को सुगंध बहुत पसन्द थी। इस-

लिए अभी भी मुसलमान बेचारे ईद के दिन एक दूसरे को इतर लगाते देखे जाते हैं। अभी भी सुगंध से मुसलमानों को प्रेम है। वह प्रेम सिर्फ परंपरा है। इसलिए कि मुहम्मद को बहुत पसन्द है। असल में ऐसा मालूम पड़ता है कि सुगंध मुंहम्मद को वहीं ले जाती है, जहाँ कुछ लोगों को संगीत ले जाता है। सुगंध भी एक इंद्रिय-रस है जैसे संगीत कान का रस है वैसे ही सुगंध नाक का रस है। लेकिन मालूम होता है कि मुहम्मद सुगंध से बड़ी ऊँचाइयों की ओर जाते थे। और उनके लिए सुगंध का एसोसिएशन बहुत गहरा बन गया होगा। संभव है जब उन्हें पहली दफे इलहाम हुआ, जब उन्हें पहली बार प्रभु का सन्देश मिला, तब पहाड़ के आस-पास फूल खिले होंगे। सुगंध उसके साथ जुड़ गयी होगी। जरूर ऐसी कोई घटना होगी। सिर्फ सुगंध उनके लिए द्वार बन गयी। जब वे सुगंध में होंगे, तब वह द्वार खुल जायेगा। लेकिन यही बात संगीत में हो सकती है। और यही बात नृत्य में हो सकती है। यही बात अनेक-अनेक रूपों में हो सकती है। पर मुहम्मद हों तो शायद समझ भी जायें। मुहम्मद तो हैं नहीं, तो पीछे चलनेवाला आदमी कहता है कि संगीत नहीं बजने देंगे, क्योंकि संगीत इन्कार है। तो फिर नानक को मुसलमान कैसे स्वीकार करें? हिन्दू भी स्वीकार नहीं कर सकते नानक को। क्योंकि नानक गृहस्थ हैं। वे संन्यासी नहीं हैं। पत्नी है, घर है, कपड़े भी वे साधारण पहनते हैं गृहस्थ जैसे। गृहस्थ को हिन्दू कैसे स्वीकार करें? ज्ञानी तो संन्यासी होता है।

(१७) काबा भी सही—बुतखाना भी

फिर नानक और भी ज्यादा गड़बड़ करते हैं। सभी जानने वाले लोग एक अर्थ में डिस्टर्बिंग होते हैं, क्योंकि वे सब पुरानी व्यवस्था से फिर नये होते हैं। यहां नानक गड़बड़ यह करते हैं कि वे काबा भी चले जाते हैं, मस्जिद में भी ठहर जाते हैं। तो हिंदू कैसे मानें कि जो आदमी मस्जिद में ठहर जाता है वह आदमी धार्मिक हो सकता है! मन्दिर में ही क्यों न ठहरे! इस प्रकार जो विनय श्रेष्ठ की किन्हीं धारणाओं को मानकर चलती है, वह सिर्फ अंधी होगी, परंपरागत होगी, रूढ़िगत होगी, वह क्रांतिकारी नहीं होगी। उससे अंतर-आविर्भाव नहीं होता। अंतर-आविर्भाव होता है तो आदर सहज ही हो जाता है। वह पत्थर के प्रति भी होता है, पौधे के प्रति भी होता है, वह अस्तित्व मात्र के प्रति होता है। इससे कोई संबंध नहीं कि वह कौन है, और क्या। कोई शर्त नहीं है। वह है, बस इतना काफी है।

विनय की जो ऐसी स्थिति है, वह प्रायश्चित के बाद ही सध सकती है। और सध जाये तो जीवन में आनंद का हिसाब नहीं रह जाता। क्यों? क्योंकि जितना हम दूसरों का दोष देखते हैं, मन को उतना ही दुख होता है। और जितने दूसरों के दोष देखते हैं उतने ही अपने दोष नहीं देखते। लेकिन जब दूसरे में कोई दोष नहीं दिखता तो दूसरों से दुख आना बन्द हो जाता है। जब कोई आदमी मुझ पर क्रोध करता है तो मैं यह नहीं मानता कि यह उसका दोष है, बुराई है। इतना मानता हूँ कि ऐसा उससे घटित हो रहा है। तो फिर मैं उसके क्रोध से दुखी नहीं होता। अगर मैं जा रहा हूँ और किसी वृक्ष की डाली मेरे ऊपर गिर जाये तो मैं खड़े होकर वृक्ष को गाली नहीं देता। हालांकि कुछ लोग देते हैं। बिना गाली दिये वे मान नहीं सकते, वृक्ष को भी गाली देते हैं। पर वे भी मानेंगे गाली देने के बाद कि वह बेकार थी बात, सिर्फ आदत वस थी; क्योंकि वृक्ष को क्या पता कि मैं निकल रहा हूँ, क्या प्रयोजन मुझे मारने का? चोट पहुँचाने का क्या अर्थ है? वृक्ष को हम गाली नहीं देते हैं, क्योंकि वृक्ष से हमारा प्रयोजन नहीं है। शाखा टूटती थी, हवा का झोंका भारी था, तूफान तेज था, वृक्ष जरा-जीर्ण था, गिर गया, संयोग की बात कि हम नीचे थे। जो आदमी विनयपूर्ण होता है, तो जब आप उसको गाली देते हैं तब वह ऐसा ही मानता है कि मन में इसके क्रोध भरा होगा, परेशान होगा चित्त, जरा-जीर्ण होगा, गाली निकल गयी; संयोग की बात थी कि हम पास थे। और कोई पास होता तो किसी और से निपटते। मगर इससे विनय में कोई बाधा नहीं पड़ती। इससे दुख भी नहीं आता। इससे ऐसा भी नहीं होता कि उसने ऐसा क्यों किया?

(१८) जीसस और जुदास

विनीत आदमी मानता है कि वही हो रहा है, जो होना चाहिए और वही हो सकता है। और जो हो रहा है, वह स्वीकार है। पर इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। जीसस जुदास के पैर पड़ लेते हैं। और उसी रात जिस रात पकड़े जाते हैं जुदास के पैर पड़ना, जुदास का हाथ लेकर चूमना विचित्र था। कोई पूछता है, आप यह क्या कर रहे हैं? आपको पता है और हमें भी थोड़ी-थोड़ी खबर है कि यह आदमी दुश्मनों के साथ मिला है। जीसस कहते हैं, इससे क्या फर्क पड़ता है। यह क्या करेगा और क्या कर सकता है, यह सवाल नहीं है। यह है, यही काफी आनन्द है। फिर शायद इससे दुबारा

मिलने का मौका भी न मिले। मैं वच जाऊँ तो भी न मिले। क्योंकि फिर यह आदमी शायद निकट आने का साहस न जुटा पाये। मैं न वचूं, तब तो कोई सवाल ही नहीं। मैं कल मर जाऊँ तो मेरा यह संबंध, मेरा यह पैर का छूना इसे याद रहेगा, वह शायद इसके किसी काम पड़ जाये। पर इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि यह क्या करेगा। यह इर्रेलेवेंट है। विनय के लिए यह बात असंगत है कि आप क्या करते हैं। आप हैं, इतना काफी है। विनय बेशर्त सम्मान है। अल्बर्ट शवीत्जर ने ठीक शब्द का उपयोग किया है महावीर के विनय का अर्थ। अगर हम ठीक शब्द पकड़ें इस सदी में तो शवीत्जर ठीक मिलेगा। शबीत्जर ने एक किताब लिखी—"रेव्हरेंस फॉर लाइफ" (जीवन ने प्रति सम्मान)। तो यह नहीं कि एक तितली को बचा लेंगे और एक बिच्छू को न वचा लेंगे। शवीत्जर सभी को बचाने की कोशिश करेगा। माना कि विच्छू को वचाने में विच्छू डंक मार सकता है, वह उसका स्वभाव है। इसके कारण सम्मान में कोई अन्तर नहीं पड़ता। हम बिच्छू से यह नहीं कह सकते कि तुम डंक न मारोगे, तो ही हम सम्मान देंगे। हम जानते हैं कि विच्छू का डंक मारना स्वभाव है। वह डंक मार सकता है। सबीत्जर उसको भी वचाने की कोशिश करेगा। क्योंकि जीवन के प्रति वह एक सम्मान कर रहा है। और जीवन के प्रति सम्मान हो तो आपके दुख असम्भव हैं। क्योंकि सब दुख आप शर्तों के कारण लेते हैं। ध्यान रहे सब दुख सशर्त हैं। आपकी कोई शर्त है इसलिए दुख पाते हैं। जिसकी कोई शर्त नहीं है, वह दुःख नहीं पाता। दुःख का कोई कारण नहीं रह जाता। और जब आप दुख नहीं पाते, तो जो आप पाते है वही आनन्द है।

(१६) अलग-अलग आकार में सत्य

जीसस ने कहा है कि अपने शत्रुओं को भी प्रेम करो। नीत्शे ने जीसस के इस वक्तव्य पर आलोचना करते हुए लिखा है कि इसका तो मतलब यह हुआ कि आप शत्रु में शत्रु को देखते हुए शत्रु को प्रेम करें, तो शत्रुता तो दिखायी पड़ती है। और जब शत्रुता दिखायी पड़ती है तब प्रेम कैसे करोगे? उसका वक्तव्य तर्कपूर्ण है, लेकिन सम्यक् नहीं है। निश्चित जो कह रहा है वह तर्कयुक्त है, फिर भी सत्य नहीं। जीसस अगर उत्तर दे सकें तो यही कहेंगे कि मानव की शत्रुता दिखती है लेकिन फिर भी प्रेम करो, क्योंकि शत्रुता जहाँ दिखती है, वह उसका व्यवहार है। और जो उसके भीतर छिपा है, वह उसका अस्तित्व

है। हमारा सम्मान अस्तित्व के लिए है। वह बेशर्त है। माना कि वह गाली दे रहा है, पत्थर मार रहा है, हत्या करने की कोशिश कर रहा है, वह सब ठीक है। यह जो वह कर रहा है, यह वह जाने।

इस संबंध में यह भी आपको याद दिला दूं जो कि उपयोगी होगा कि महावीर, बुद्ध या कृष्ण—इन सबकी चिन्तना में बहुत-बहुत फासले हैं, बहुत भेद हैं। होंगे ही। जब भी किसी व्यक्ति से सत्य उतरेगा, तो वह नये आकार लेता है, उस व्यक्ति के आकार लेता है। सत्य निराकार तो उतर नहीं सकता। जब किसी से उतरता है, तो उस व्यक्ति का आकार ले लेता है। लेकिन एक बहुत अद्‌भुत बात है कि इस पृथ्वी पर भारत में पैदा हुए समस्त धर्म एक सिद्धांत को मानने में सहमत हैं, वह है कर्म। बाकी सब मामलों में भेद हैं। बड़े-बड़े लोगों में भेद हैं। परमात्मा है या नहीं, तो हिन्दू कहेंगे है, जैन कहेंगे नहीं है। आत्मा है कि नहीं, तो हिन्दू और जैन कहते हैं है। बुद्ध कहते हैं नहीं है। इतने बड़े मामलों में फासला है। लेकिन एक मामले में, जो हमारी नजर में भी नहीं आता और जो इस सबसे ज्यादा कीमती है, उसमें कोई फासला नहीं है। वह सेंट्रल है, केंद्रीय है। परिधि पर झगड़े हो सकते हैं, केंद्र में नहीं। वह है कर्म का विचार। उसमें कोई फर्क नहीं है। इस देश में पैदा हुए सारे धर्म कर्म के विचार से राजी हैं। बुद्ध जो आत्मा को नहीं मानते, परमात्मा को नहीं मानते, वे भी कहते हैं कर्म है। हिन्दू परमात्मा को भी मानते हैं, आत्मा को भी मानते हैं, वे भी कहते हैं कर्म है।

(२०) सभी कुछ देन कर्मों की

इस विनय के संदर्भ में कर्म की एक बात आपको याद दिला देनी जरूरी है कि जब भी कोई कुछ कर रहा है, वह अपने कर्मों के कारण कर रहा है, आपके कारण नहीं। और जो आप कर रहे हैं, वह अपने कर्मों के कारण कर रहे हैं, उसके कारण नहीं। अगर यह ख्याल में आ जाये तो विनय सहज ही उतर आयेगी। एक आदमी गाली दे रहा है तो वजहें हो सकती हैं, इसके विश्लेषण हो सकते हैं। एक आदमी मेरे पास आता है और मुझे गाली देता है, तो इसे मैं दो तरह से जोड़ सकता हूं कि या तो वह इसलिए गाली दे रहा है कि मुझे गाली देने योग्य आदमी मानता है यानी गाली को मैं अपने से जोड़ूं। एक तो रास्ता यह है। और एक रास्ता यह है कि वह आदमी इसलिए

गाली देता है कि उसके अतीत के कर्मों ने वह स्थिति पैदा कर दी कि उसमें गाली पैदा हो रही है। तब मैं अपने से नहीं जोड़ता, उसके कर्मों से जोड़ता हूं। अगर मैं अपने से जोड़ता हूं तो बड़ी मुश्किल है विनय की साधना। कैसे सधेगी ? आदमी सामने खड़ा गाली दे रहा है, इसको मैं कैसे आदर करूँ ? मन यह कहेगा कि अगर कोई गाली दे और तुम आदर करो, तो यह उसको गाली देने का निमंत्रण है। अगर कोई गाली दे और हम उसे आदर करें तो हम उसको और प्रोत्साहन दे रहे हैं। तर्क निरंतर यह कहता है कि हम प्रोत्साहन दे रहे हैं, इससे तो वह और गाली देगा। और यह भी मान लें कि हमें गाली देगा तो कोई हर्ज नहीं, लेकिन हमारे प्रोत्साहन से वह दूसरों को भी गाली देगा। क्योंकि आदमी को रस लग जायेगा और उसको पता चल जायेगा कि गाली देने से आदर मिलता है। हमें दे, तब तक तो ठीक, लेकिन वह दूसरों को भी देगा। अगर किसी आदमी को यह पता चल जाये कि मारपीट करने से लोग सम्मान देते हैं, सांष्टांग दंडवत करते हैं, तो वह औरों को भी मारेगा। और अगर वह औरों को मारेगा तो उसका जिम्मा भी हम पर आयेगा। क्योंकि न हम उसे आदर देते, न वह मारने को उत्सुक होता। इसीलिए तो मुहम्मद कहते हैं कि वहीं ठीक कर दो जो गड़बड़ करे। अगर तुमने उसको आदर दिया, दूसरे चांटे के लिए गाल उसके सामने कर दिया, तो वह अपना चाँटा कहीं भी घुमाने लगेगा, किसी को भी लगाने लगेगा। इसकी आशा में कि अब दूसरा गाल सामने आता होगा चांटा लगाने के लिए। लेकिन कर्म दूसरे तरह से भी जोड़ा जा सकता है जो न इस्लाम जोड़ सका, न ईसाइयत जोड़ सकी। इसलिए इस्लाम और ईसाइयत में बहुत मौलिक आधार की कमी है। और वह कमी है कर्म के विचार की।

(२१) दुनिया को खून से रंगनेवाले ईसा के अनुयायी

इसलिए जीसस ने इतने प्रेम की बातें कहीं और इतना अहिंसात्मक उपदेश दिया, लेकिन ईसाइयत ने सिर्फ तलवार चलायी और खून बहाया। मुहम्मद के मामले में तो हम यह भी कह सकते हैं कि तलवार तो उनके खुद के हाथ में थी, इसलिए अगर मुसलमानों ने तलवार उठायी तो उसमें एक संगति है। लेकिन जीसस के मामले में तो यह भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उस आदमी के हाथ में कोई तलवार न थी। लेकिन ईसाइयत ने इस्लाम से कम हत्याएँ नहीं कीं। इस पृथ्वी को, इस सारी दुनिया को खून से रँग देनेवाले

लोग ईसाइयत और इस्लाम से आये। सोचें, भला बात क्या होगी, भूल क्या होगी, क्या कारण होगा? जीसस जैसा आदमी जिसने इतनी प्रेम की बातें कहीं, उसकी भी परंपरा इतनी उपद्रवी सिद्ध हुई, इसका कारण क्या है? इसका कारण है न तो जीसस, और न मुहम्मद, दोनों में से कोई भी कर्म को व्यक्ति की अंतर-शृंखला से नहीं जोड़ पाया। वहीं भूल हो गयी। और जितनी दुनिया वैज्ञानिक होती जायेगी वह भूल साफ दिखायी पड़ेगी।

(२२) क्रोध का सहज गणित

इसे ऐसा सोचें कि जब भी आप क्रोध करते हैं, असल में आप दूसरे पर क्रोध नहीं करते। दूसरा सिर्फ निमित्त होता है। आप क्रोध को संग्रहीत किये होते हैं अपने ही कर्मों से, अपनी ही कलह की यात्रा से। क्रोध आपके भीतर भरा होता है, जैसे कुएँ में पानी भरा होता है और कोई बाल्टी डालकर खींच लेता है। वैसे ही कोई गाली डालकर आपके क्रोध को बाहर निकाल लेता है, बस! वह निमित्त बनता है। तो निमित्त पर इतना क्रोध हुआ क्यों? बाल्टी को गाली देंगे कि उसमें पानी है? पानी तो कुएँ से ही आता है, बाल्टी तो लेकर सिर्फ बाहर दिखा देती है। तो विनयपूर्ण आदमी धन्यवाद देगा, उसको जिसने गाली दी क्योंकि अगर वह गाली न देता तो अपने भीतर के क्रोध का दर्शन न होता। वह बाल्टी बन गया। उसने क्रोध बाहर निकाल कर बता दिया। इसीलिए तो कबीर कहते हैं कि निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय। वह जो तुम्हारी निन्दा करता है उसको तो अपने बगल में ही ठहरा लेना। क्योंकि वह बाल्टी डालता रहेगा और तुम्हारे भीतर की चीजें निकाल कर तुम्हें बताता रहेगा। अकेले में पड़ गये तो पता नहीं, कुएँ में पानी भरा रहे और भूल जाय कुआँ कि उसमें पानी है, क्योंकि कुएँ को भी पता तब चलता है, जब बाल्टी कुएँ से पानी खींचती है। और अगर बाल्टी फूटी हो तो और भी ज्यादा पता चलता है। निन्दक सब फूटी बाल्टी ही जैसे होते हैं। पानी की भयंकर बौछार कुएँ में होने लगती है और कुएँ की पहली दफे नींद टूटती है तो पता चलता है कि यह क्या हो रहा है। अगर बाल्टी न हो तो कुआँ खुद सोया रहेगा, पता भी न चलेगा। इसलिए लोग जंगल की ओर भागते रहे। वह बाल्टी से बचने की कोशिश है। लेकिन उससे पानी नष्ट नहीं हो जाता। आप कितना ही जंगल को भाग जायें, जंगल के कुएँ को कम पता चलता होगा। क्योंकि वहाँ कभी-कभी कोई यात्री बाल्टी डालता होगा।

या अगर रास्ता निर्जन हो और कोई न चलता हो तो कुएँ को पता भी नहीं चलता होगा कि मेरे भीतर पानी है, जैसे जंगल में बैठे साधु को हो जाता है। कभी कोई निकलने वाला कुछ गलत-सही बातें कर दे, तो शायद बाल्टी पड़ती है। अगर रास्ता बिल्कुल निर्जन हो, तो वह भी नहीं। इसलिए साधु निर्जन रास्ता खोजता है, निर्जन स्थान खोज लेता है। अगर इसीलिए खोज रहा है, तो गलती कर रहा है। अगर यही कारण है कि मेरे भीतर जो भरा है वह दिखायी न पड़े किसी के कारण, तो गलती कर रहा है, भयंकर गलती कर रहा है।

(२३) फ्लू आपमें पहले से होता है

महावीर कहते हैं कि दूसरा अपने कर्मों की शृंखला में नया कर्म करता है, तुमसे उसका कोई भी संबंध नहीं। इतना ही संबंध है कि तुम मौके पर उपस्थित थे और उसके भीतर विस्फोट के लिए निमित्त बने। इस बात को दूसरी तरह भी सोच लेना है कि तुम जब किसी के लिए विस्फोट करते हो, तब वह भी निमित्त ही है। तुम ही अपनी शृंखला में जीते और चलते हो। इसे हम यदि ऐसा समझें तो शायद इसे समझना आसान पड़ जाये। दस आदमी एक ही मकान में हैं, एक आदमी बीमार पड़ जाता है। उसे फ्लू पकड़ लेती है। चिकित्सक उसे कहता है, वायरस है। लेकिन घर में दस आदमी हैं, उनमें से नौ को नहीं पकड़ती है। तो चिकित्सक की कहीं बुनियादी भूल तो मालूम पड़ती है। वायरस इसी आदमी को खोजता है। मतलब केवल इतना है कि वायरस निमित्त बन सके, लेकिन इस आदमी के भीतर बीमारी संग्रहीत है। नहीं तो बाकी लोगों को वायरस क्यों नहीं पकड़ता? कोई दोस्ती है, कोई दुश्मनी है! बाकी लोगों को नहीं, इस आदमी को ही पकड़ लिया? इस आदमी को इसलिए पकड़ लिया है कि इस आदमी के भीतर वह स्थिति है, जिसमें वायरस निमित्त बनकर फ्लू को पैदा कर सकता है। बाकी लोगों के भीतर वह स्थिति नहीं है। तो वायरस आता है, चला जाता है। वह उनके भीतर फ्लू पैदा नहीं कर पाता।

(२४) क्रोध और अहंकार : चोर-चोर मौसेरे भाई

तो अब सवाल यह है कि क्या फ्लू वायरस पैदा करती है। अगर ऐसा आप देखते हैं तो आप महावीर को कभी न समझ पायेंगे। महावीर कहते हैं फ्लू

की तैयारी आप करते हैं, वायरस केवल मेनिफैस्ट करता है, प्रकट करता है। तैयारी आप करते हैं, जिम्मेदार आप हैं। जिम्मेदारी सदा आपकी है। आस-पास जो घटित होकर प्रकट होता है, वह सिर्फ निमित्त है, तो उस पर क्रोध का कोई कारण नहीं रह जाता। धन्यवाद दिया भी जा सकता है। क्रोध का कोई कारण नहीं रह जाता। और तब, तब आपमें अहंकार के खड़े होने की कोई जगह नहीं रह जाती। ध्यान रहे, जहाँ क्रोध है, वहाँ भीतर अहंकार है। और जहाँ क्रोध नहीं है, वहाँ भीतर अहंकार नहीं। क्योंकि क्रोध सिर्फ अहंकार के बीच जारी रही बाधाओं से पैदा होता है, और किसी कारण से पैदा नहीं होता। अगर आपके अहंकार की तृप्ति होती जाये, तो आप कभी क्रोधित नहीं होंगे। अगर सारी दुनिया आपके अहंकार को तृप्त करने को राजी हो जाये तो आप कभी क्रोधी न होंगे। आपको पता भी नहीं चलेगा कि क्रोध भी कोई चीज थी। लेकिन अभी कोई आपके मार्ग में बाधा डालने को तैयार हो जाये तो आपका क्रोध प्रकट होने लगेगा। जब अहंकार अवरुद्ध होता है, तब क्रोध पैदा होता है। लेकिन अगर मैं यह मानता हूँ कि आप अपने कर्मों से चलते हैं, मैं अपने कर्मों से चलता हूँ, तब तो क्रोध का कोई कारण ही न रहा। हम राह पर कहीं-कहीं मिलते हैं, किसी चौरस्ते पर मुलाकात हो जाती है, लेकिन फिर भी आप अपने से ही बोलते हैं, मैं अपने से ही बोलता हूँ। मैं अपने से ही व्यवहार करता हूँ, आप अपने से ही व्यवहार करते हैं। कहीं प्रकट जगत् में हमारे व्यवहार एक-दूसरे से तालमेल खा जाते हैं। तब वह सिर्फ निमित्त है। उसके लिए किसी को जिम्मेदार ठहराने का कोई कारण नहीं। तो फिर क्रोध का भी कोई कारण नहीं। और क्रोध का कोई कारण न हो तो अहंकार बिखर जाता है, सघन नहीं रह पाता।

(२५) आपकी छाती में छुरा भोंके जाने पर विनय क्या कहती है?

विनय बड़ी वैज्ञानिक प्रक्रिया है। उस प्रक्रिया में दोष दूसरे में नहीं होता है। दूसरा मेरे दुःख का कारण नहीं है। दूसरा श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ नहीं है। दूसरे से मैं कोई तुलना नहीं करता। दूसरे पर मैं कोई शर्त नहीं बांधता कि इस शर्त को पूरा करोगे तो मेरा आदर, तो मेरा प्रेम तुम्हें मिलेगा, सम्मान मिलेगा। मैं बेशर्त जीवन को सम्मान देता हूँ। और प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म से चल रहा है। अगर मुझसे कोई भूल होती है तो मैं उसे अपने भीतर अपने

कर्म की शृंखला में खोजूं। अगर दूसरे कोई भूल होती है तो यह उसका काम है। इससे मेरा कोई संबंध नहीं। अगर एक आदमी मेरी छाती में छुरा भोंक जाता है, तो भी यह कर्म उसका है। मेरा कोई भी संबंध नहीं। छाती में छुरा मेरे जरूर भुंक जाता है, लेकिन इससे फिर भी मेरा कोई सबंध नहीं है। यह काम उसका ही है। वही जाने। वही इसके फल पायेगा। नहीं पायेगा यह उसकी बात है। यह मेरा काम नहीं है, इससे मेरा कोई संबंध नहीं है।

महावीर इतना जरूर कहते हैं कि अगर मेरी छाती में छुरा भुंकता है, तो इससे मेरा इतना संबंध हो सकता है कि अपनी पिछली यात्रा में मैंने यह तैयारी करवायी हो कि मेरी छाती में छुरा भोंके। इसका मेरी छाती में जाना मेरे पिछले कर्मों की कुछ तैयारी होगी। बस उससे मेरा सम्बन्ध है। लेकिन उस आदमी के मेरी छाती में छुरा भोंकने से मेरा कोई संबंध नहीं। इससे उसकी अपनी अंतर्यात्रा का संबंध है। यह बात साफ-साफ दिखायी पड़ जाये कि हम पैरेलल अन्तर-धाराएँ हैं कर्मों की, हम समानान्तर दौड़ रहे हैं और प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर से जी रहा है, लेकिन जब-जब हम जोड़ लेते हैं अपने से दूसरे की धारा को, तभी कष्ट शुरू होता है, तो अविनय आकार ले लेती है। विनय केवल इस बात की सूचना है कि अब मैं अपने से किसी को जोड़ता नहीं। इसलिए महावीर ने विनय को अंतर्-तप कहा है। क्योंकि वह स्वयं को दूसरे से तोड़ लेना है। बिना पता चले चीजें टूट जाती हैं। और जब आपके और मेरे बीच कोई संबंध नहीं रह जाता, न प्रेम का, न घृणा का——संबंध ही नहीं रह जाता, सिर्फ निमित्त के संबंध रह जाते हैं; तब न कोई श्रेष्ठ होता है, न कोई अश्रेष्ठ है, न कोई मित्र है, न कोई शत्रु है, न कोई मेरा बुरा करने की कोशिश कर रहा है, न कोई मेरा भला करने की कोशिश कर रहा है। महावीर कहते हैं जो मैं अपने लिए कर रहा हूं, मैं ही कर रहा हूं। भला तो भला, बुरा तो बुरा। मैं ही अपना नर्क हूं, मैं ही अपना स्वर्ग हूं और मैं ही अपनी मुक्ति हूं। मेरे अतिरिक्त कोई निर्णायक नहीं है मेरे लिए। तब एक ह्म्बलनेस, एक विनम्र भाव पैदा होता है जो अहंकार का रूप नहीं, अहंकार का अभाव है। यह अहंकार का डायल्यूट फॉर्म भी, अहंकार का तरल, बिखरा हुआ, फैला हुआ आकार भी नहीं है। अहंकार का अभाव है।

(२६) यह विनम्रता का गेम !

इसलिए यह आखिरी बात ख्याल में ले लें। विनम्रता यदि साधी जायेगी (जैसा हम साधते हैं कि इसको आदर दो, उसको आदर दो, उसको मत दो,

इसको मत दो। आदर का भाव जन्माओ, विनम्र रहो, अहंकारी मत बनो, निरअहंकारी रहो) तो जो विनम्रता पैदा होगी इट बिल बी एक फॉर्म ऑफ इगो, वह अहंकार का ही एक रूप होगी। उससे समाज को थोड़ा फायदा होगा। क्योंकि आपका अहंकार कम प्रकट होगा, दबा हुआ प्रकट होगा। ढंग से प्रकट होगा, सुसंस्कृत होगा, कल्चर्ड होगा। लेकिन आपको कोई फायदा नहीं होगा, इसलिए समाज की उत्सुकता इतनी ही है कि आप विनम्रता का आवरण ओढ़े रहें। लेकिन धर्म को इससे कोई प्रयोजन नहीं है कि आप बाहर क्या ओढ़े हुए हैं। धर्म का प्रयोजन है कि आप भीतर क्या हैं, ह्वाट आर यू विदिन? तो महावीर की जो विनय है वह समाज की व्यवस्था की विनय नहीं है कि पिता को, गुरु को, शिक्षक को, वृद्ध को आदर दो। महावीर यह भी नहीं कहते कि मत दो। मैं भी नहीं कह रहा हूं कि आप मत दो। बराबर दो। वही समाज का खेल है, जस्ट ए गेम। और जो जितना ही समझदार आदमी है, उसको उतना ही खेल है।

(२७) लड़के का यज्ञोपवीत होना है

एक मित्र अभी परसों ही आये हैं। और कहने लगे कि लड़के का यज्ञोपवीत होना है। और जब से आपको सुना, तो लगता है कि यह सब तो बिल्कुल बेकार है। लेकिन पत्नी जिद पर है, पिता जिद पर है, पूरा परिवार जिद पर है कि यह होकर रहेगा। तो मैं बाधा डालूं कि न डालूं? मैंने कहा कि अगर बिल्कुल बेकार है तो बाधा क्या डालनी! अगर थोड़ा कुछ सार्थक लगता हो, तो बाधा डालो। अगर तुम्हें लगता है कि यज्ञोपवीत की यह जो संस्कार-विधि होगी, वह बिल्कुल बेकार है, और इतनी बेकार अगर लगने लगी है तो जैसे घर के लोग सिनेमा देखने चले जाते हैं वैसे ही यज्ञोपवीत का समारोह हो जाने दो। जस्ट मेक ऐ गेम। है भी यह खेल। अगर पिता को मजा आ रहा है, पत्नी मजा ले रही, तो हर्ज क्या है इस खेल के चलने में? चलने दो। इस खेल को खेलो। अगर तुम जिद करते हो कि नहीं चलने देंगे, तो तुम भी इसे खेल नहीं मानते, तुम भी समझते हो कि यह बड़ी कीमती चीज है। तुम भी सीरियस हो। तुम गम्भीर हो कि अगर नहीं होगा तो कोई फायदा होगा। जिस चीज के होने से फायदा नहीं होगा, उसके न होने से क्या खास फायदा होगा? जिसके होने से कुछ फायदा नहीं हुआ उसके होने से क्या फायदा हो सकता है? मैंने उनसे कहा कि यह चीज

इतनी बेकार है कि तुम इसमें बाधा मत डालना। बोले, आप यह कहते हैं! मैंने तो यह समझा था कि टूट पड़ो, बिल्कुल होने मत देना।

मैंने कहा अगर ऐसा फिजूल काम है और इतना रस आ रहा घर के लोगों को, (सो जस्ट एन इनोसेंट गेम। इतना सीधा और सरल खेल कि एक लड़के ने गले में माला-वाला डाल ली है, सिर घुटाया है) तो खेलने दो। इसमें क्या हर्ज है? असल में सभी आदमी बच्चों जैसे हैं। उनको खेल चाहिए। अगर खेल न हो तो जिन्दगी उदास हो जाती है। इसलिए हम जन्म को भी खेल बनाते हैं, फिर यज्ञोपवीत का खेल खेलते हैं, फिर शादी आती है, उसका खेल खेलते है। मर जाता है आदमी, तब भी हम खेल बन्द नहीं करते। अर्थी निकालते हैं, वह भी उत्सव है। समारोह है। बैंडबाजा आदमी को आखिर तक पहुँचा आता है। बस एक लम्बा खेल है। पर आदमी बिना खेल के नहीं जी सकता है। इसलिए जिन समाजों में खेल कम हो गये हैं उनमें जीना मुश्किल हो गया है, क्योंकि आदमी तो वही का वही है। लेकिन महावीर जैसा आदमी बिना खेल के जी सकता है। लेकिन बिना खेल के तभी कोई जी सकता है, जब उसको वास्तविक जीवन का पता चल जाये। वास्तविक जीवन का पता न हो, तो इस जीवन को, जिसे हम जीवन कह रहे हैं, बिना खेल के नहीं जिया जा सकता है। इसमें खेल रखने ही पड़ेंगे।

(२८) शादी का खेल : प्राचीन और अर्वाचीन

पश्चिम में एक दिक्कत खड़ी हो गयी तीन सौ साल में। पश्चिम के विचारक लोगों ने, जिनको मैं बहुत विचारशील नहीं कहूँगा चाहे वह फेरर हों, चाहे वह बर्ट्रेंड रसेल हों, उन सब ने पश्चिम के सब खेल मृत कर दिये। उन्होंने कहा, ये सब खेल बेकार हैं। यह क्या कर रहे हो? यह सब गड़बड़ है। इसमें क्या फायदा है? फायदा कोई बता न सका। अगर आप बच्चों से पूछें कि तुम यह जो खेल खेल रहे हो, इसमें क्या फायदा है, यह गेंद तुम इस कोने से उस कोने पर फेंकते हो, इस कोने से उस कोने में फेंकने से क्या फायदा है? तो बच्चे मुश्किल में पड़ जायेंगे। फायदा तो न बता सकेंगे। और फायदा नहीं बता सकेंगे तो आप कहेंगे कि बन्द करो। जब कोई फायदा ही नहीं तो फिर क्यों खेलना? बच्चे बन्द कर देंगे, लेकिन मुश्किल में पड़ जायेंगे। क्योंकि बच्चे क्या करेंगे? वह जो शक्ति बचेगी, उसका क्या होगा?

वह जो खेलने में निकल जाता था, वह अब उपद्रव में निकलेगा। सारी दुनिया में सब स्कूलों ने बच्चों के खेल छीन लिये। अब बच्चों ने नये खेल निकाले हैं। आप समझते हैं कि वह उपद्रव है, नहीं, वह सब खेल है। वे गेंद फेंककर मजा लेते थे, आप वह नहीं फेंकने देते तो वे पत्थर फेंककर चीजें तोड़ रहे हैं। मामला वही है। आपने सब खेल छीन लिये तो उनको नये खेल ईजाद करने पड़ रहे हैं। लेकिन वे नये खेल महँगे पड़ रहे हैं। इससे बच्चों के खेल अच्छे हैं। बच्चे खेल में एक दूसरे को मार डालते थे। मुकदमा चला देते थे, तो कोई न्यायाधीश बन जाता था। वे सब खेल हमने छीन लिये। हमारे सब बच्चे बचपन के समय में ही गम्भीर और बूढ़े होने लगे। लेकिन उनकी जो खेल की ऊर्जा है, वह खेल मांगेगी।

पश्चिम में यह दिक्कत खड़ी हुई कि सारी फेस्टिविटी नष्ट कर दी गयी। फेरर से लेकर बर्टेंड रसेल के बीच पश्चिम से सारे उत्सव का भाव चला गया। सब चीज बेकार हैं तो कुछ भी नहीं हो सकता। और जिन्दगी वही की वही। अब बड़ी मुश्किल हो गई। शादी का उत्सव अब बेकार! क्या फायदा है, यह तो रजिस्ट्री के आफिस में हो सकता है। बैंड बाजा क्यों बजाना? लेकिन आपको पता नहीं कि वह आदमी जो बाजा बजा रहा था, उसे खेल में रस था। अब यह आदमी रजिस्ट्री आफिस में शादी करवा आयेगा, तो घर आकर पायेगा कि कुछ भी न हुआ, बिल्कुल बेकार निकल गया मामला। सिर्फ दस्तखत करके ही आ गये रजिस्टर पर। यही शादी है तो जो शादी सिर्फ दस्तखत करने से बन सकती है, वह दस्तखत करने से किसी दिन टूट जायेगी। उसमें कोई मूल्य नहीं है। वह शादी एक खेल था, जिसमें हम बच्चों को दिखाते थे कि भारी-मामला है, कोई छोटा मामला नहीं है, तोड़ा नहीं जा सकता। इतना बड़ा मामला है। उसमें इतना शोरगुल मचाते थे। उसको घोड़े पर बिठाकर राजा बनाते थे, बैंड बाजा बजाते थे, भारी उत्सव मचता था। तब उसको भी लगता कि कुछ हो रहा है, कुछ ऐसा हो रहा है जिसको वापस लौटाना मुश्किल है। उसकी जिंदगी में यह याद रहता। शादी चाहे दुख भी बन जाये याद में, लेकिन वह जो शादी के पहले हुआ था वह उसको याद है। वह बार-बार उसके सपने देखता है। वही घोड़े सजाये राजा की पोशाक! और अब आज कहता है इससे क्या होगा? यह पगड़ी क्यों बांधे हो? मत बांधो। लेकिन पत्नी

जो हाथ लगेगी, वह छोटी लगेगी, क्योंकि उसके पहले का खेल पूरा नहीं हो रहा, बिना खेल के पत्नी मिल गयी।

(२९) नसरुद्दीन की पहली सुहागरात

नसरुद्दीन की पहली दफा शादी हुई। वह सुहागरात को गया। रात आ गयी, चाँद निकल आया। पूर्णिमा का चाँद। नसरुद्दीन खिड़की पर बैठा है। दस बज गये, ग्यारह बज गये, बारह बज गये। पत्नी बिस्तर पर लेट गयी। उसने एक दफे कहा, अब सो भी जाओ, सो भी जाओ। नसरुद्दीन ने बारह बजे कहा, बकवास बन्द! मेरी मां कहा करती थी कि सुहागरात की रात इतनी आनन्द की रात है कि चूकना मत, तो मैं इधर इस खिड़की पर बैठकर एक क्षण भी चूकना नहीं चाहता हूँ। तू सो जा। कहीं नींद लग गयी और चूक गये तो? तो मैं तो पूरी रात जागूंगा इस खिड़की पर बैठा हुआ। मुझे तो वह पता लगाना है जो मां ने कहा है कि सुहाग की रात बड़ी आनन्द की होती है, वह क्या होती है। तो मैं आज की रात फालतू की बातों में नहीं खो सकता। ज्यादा बातचीत करनी हो तो कल। तो उसके मन में सुहागरात की एक धारणा थी। आज उल्टी हालत है। आज सुहागरात जैसी कोई चीज हो ही नहीं सकती।

मैंने सुना है, एक युवक अपनी सुहागरात (हनीमून) से वापस लौटा। मित्रों ने पूछा, कैसी थी सुहागरात? उसने कहा, जस्ट लाइक बिफोर। अब तो सुहागरात का अनुभव पहले ही उपलब्ध है। जस्ट लाइक बिफोर, नथिंग न्यू। कुछ नया नहीं। पुरानी बुद्धिमत्ता महत्वपूर्ण थी। वहां बच्चों जैसे आदमियों के खेलों का इंतजाम था। उन खेलों के बीच आदमी जी लेता था। मैं नहीं कहता कि खेल तोड़ दें। खेल जारी रखें। बड़े गुरुओं को आदर देना जारी रखें, बड़े जनों को आदर दें, साधुओं को आदर दें। खेल जारी रखें। उससे कुछ नुकसान नहीं हो रहा है किसी का। लेकिन उसको विनय न समझ लें। वह विनय नहीं है। मैं नहीं कहता नसरुद्दीन से कि तू खिड़की पर मत बैठ और चांद को मत देख। लेकिन मैं उससे कह रहा हूँ कि उसे सुहागरात मत समझ। वह सुहागरात नहीं है। तू चांद देख। विनय बहुत और बात है।

वह जो खेलने में निकल जाता था, वह अब उपद्रव में निकलेगा। सारी दुनिया में सब स्कूलों ने बच्चों के खेल छीन लिये। अब बच्चों ने नये खेल निकाले हैं। आप समझते हैं कि वह उपद्रव है, नहीं, वह सब खेल है। वे गेंद फेंककर मजा लेते थे, आप वह नहीं फेंकने देते तो वे पत्थर फेंककर चीजें तोड़ रहे हैं। मामला वही है। आपने सब खेल छीन लिये तो उनको नये खेल ईजाद करने पड़ रहे हैं। लेकिन वे नये खेल महँगे पड़ रहे हैं। इससे बच्चों के खेल अच्छे हैं। बच्चे खेल में एक दूसरे को मार डालते थे। मुकदमा चला देते थे, तो कोई न्यायाधीश बन जाता था। वे सब खेल हमने छीन लिये। हमारे सब बच्चे बचपन के समय में ही गम्भीर और बूढ़े होने लगे। लेकिन उनकी जो खेल की ऊर्जा है, वह खेल मांगेगी।

पश्चिम में यह दिक्कत खड़ी हुई कि सारी फेस्टिविटी नष्ट कर दी गयी। फेरर से लेकर बर्टेंड रसेल के बीच पश्चिम से सारे उत्सव का भाव चला गया। सब चीज बेकार हैं तो कुछ भी नहीं हो सकता। और जिन्दगी वही की वही। अब बड़ी मुश्किल हो गई। शादी का उत्सव अब बेकार! क्या फायदा है, यह तो रजिस्ट्री के आफिस में हो सकता है। बैंड बाजा क्यों बजाना? लेकिन आपको पता नहीं कि वह आदमी जो बाजा बजा रहा था, उसे खेल में रस था। अब यह आदमी रजिस्ट्री आफिस में शादी करवा आयेगा, तो घर आकर पायेगा कि कुछ भी न हुआ, बिल्कुल बेकार निकल गया मामला। सिर्फ दस्तखत करके ही आ गये रजिस्टर पर। यही शादी है तो जो शादी सिर्फ दस्तखत करने से बन सकती है, वह दस्तखत करने से किसी दिन टूट जायेगी। उसमें कोई मूल्य नहीं है। वह शादी एक खेल था, जिसमें हम बच्चों को दिखाते थे कि भारी-मामला है, कोई छोटा मामला नहीं है, तोड़ा नहीं जा सकता। इतना बड़ा मामला है। उसमें इतना शोरगुल मचाते थे। उसको घोड़े पर बिठाकर राजा बनाते थे, बैंड बाजा बजाते थे, भारी उत्सव मचता था। तब उसको भी लगता कि कुछ हो रहा है, कुछ ऐसा हो रहा है जिसको वापस लौटाना मुश्किल है। उसकी जिंदगी में यह याद रहता। शादी चाहे दुख भी बन जाये बाद में, लेकिन वह जो शादी के पहले हुआ था वह उसको याद है। वह बार-बार उसके सपने देखता है। वही घोड़े सजाये राजा की पोशाक! और अब आज कहता है इससे क्या होगा? यह पगड़ी क्यों बांधे हो? मत बांधो। लेकिन पत्नी

जो हाथ लगेगी, वह छोटी लगेगी, क्योंकि उसके पहले का खेल पूरा नहीं हो रहा, बिना खेल के पत्नी मिल गयी।

(२९) नसरुद्दीन की पहली सुहागरात

नसरुद्दीन की पहली दफा शादी हुई। वह सुहागरात को गया। रात आ गयी, चाँद निकल आया। पूर्णिमा का चाँद। नसरुद्दीन खिड़की पर बैठा है। दस बज गये, ग्यारह बज गये, बारह बज गये। पत्नी बिस्तर पर लेट गयी। उसने एक दफे कहा, अब सो भी जाओ, सो भी जाओ। नसरुद्दीन ने बारह बजे कहा, बकवास बन्द ! मेरी मां कहा करती थी कि सुहागरात की रात इतनी आनन्द की रात है कि चूकना मत, तो मैं इधर इस खिड़की पर बैठकर एक क्षण भी चूकना नहीं चाहता हूँ। तू सो जा। कहीं नींद लग गयी और चूक गये तो ? तो मैं तो पूरी रात जागूंगा इस खिड़की पर बैठा हुआ। मुझे तो वह पता लगाना है जो मां ने कहा है कि सुहाग की रात बड़ी आनन्द की होती है, वह क्या होती है। तो मैं आज की रात फालतू की बातों में नहीं खो सकता। ज्यादा बातचीत करनी हो तो कल। तो उसके मन में सुहागरात की एक धारणा थी। आज उल्टी हालत है। आज सुहागरात जैसी कोई चीज हो ही नहीं सकती।

मैंने सुना है, एक युवक अपनी सुहागरात (हनीमून) से वापस लौटा। मित्रों ने पूछा, कैसी थी सुहागरात ? उसने कहा, जस्ट लाइक बिफोर। अब तो सुहागरात का अनुभव पहले ही उपलब्ध है। जस्ट लाइक बिफोर, नथिंग न्यू। कुछ नया नहीं। पुरानी बुद्धिमत्ता महत्वपूर्ण थी। वहाँ बच्चों जैसे आदमियों के खेलों का इंतजाम था। उन खेलों के बीच आदमी जी लेता था। मैं नहीं कहता कि खेल तोड़ दें। खेल जारी रखें। बड़े गुरुओं को आदर देना जारी रखें, बड़े जनों को आदर दें, साधुओं को आदर दें। खेल जारी रखें। उससे कुछ नुकसान नहीं हो रहा है किसी का। लेकिन उसको विनय न समझ लें। वह विनय नहीं है। मैं नहीं कहता नसरुद्दीन से कि तू खिड़की पर मत बैठ और चाँद को मत देख। लेकिन मैं उससे कह रहा हूँ कि उसे सुहागरात मत समझ। वह सुहागरात नहीं है। तू चाँद देख। विनय बहुत और बात है।

(३०) नसरुद्दीन की दूसरी सुहागरात बनाम विनय

लेकिन हम ऐसे जिद्दी हैं जिसका कोई हिसाब नहीं। जैसा नसरुद्दीन था। दूसरी शादी की उसने। गया सुहागरात पर। बड़ा इठलाकर, अकड़ कर चल रहा है। फिर पूर्णिमा है। बड़ा आनंदित है। रास्ते पर कोई मित्र मिल गया। उसने कहा, बड़े आनंदित हो। नसरुद्दीन ने कहा, मेरी सुहागरात है। उसने चाँद तक देखा फिर कहा, लेकिन तुम्हारी पत्नी दिखायी नहीं पड़ती। उसने कहा; आर यू मैड, ? पहली दफे उसको लेकर आया, उसने सब रात खराब कर दी। इस बार उसे घर ही छोड़ आया हूँ। रात भर बकवास करती रही—सो जाओ, यह करो, वह करो। पता नहीं रात कब चुक गयी। और मेरी माँ कहती थी कि सुहागरात आनन्द की रात है। इस बार तो उसको घर ही छोड़ आया हूँ। अकेले आया हूँ। सुहागरात चूकनी नहीं है।

माँ ने जरूर कहा था और ठीक ही कहा था। लेकिन नसरुद्दीन जो समझे हैं, वह नहीं कहा था। परंपरा जो समझती है, उसके शब्द वही हैं जो महावीर ने कहे, लेकिन परंपरा जो समझ लेती है, वह नहीं कहा। विनय आविर्भाव होता है अन्तर का। और उसकी मैंने यह वैज्ञानिक प्रक्रिया आपसे कही। यह पूरी हो तो ही आविर्भाव होता है। हाँ, आप जो अपने को विनीत करने की कोशिश कर रहे हैं, वह जारी रखें। वह एक खेल है। वह अच्छा खेल है। उससे जिन्दगी सुविधा से चलती है, कन्वीनियंटली चलती है; बाकी उससे आप कभी जीवन के सत्य को उपलब्ध नहीं होते!



सोलहवां प्रवचन

पर्युषण व्याख्यान-माला, बम्बई, दिनांक २ सितंबर, १९७१

सेवा की मेवा और स्वाध्याय का सरगम

धम्मो मंगलमुक्किट्ठम्, अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसन्ति, जस्स धम्मे सया मणो ॥१॥

अर्थ :–

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म ?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

तीसरा अन्तर्-तप महावीर ने कहा है वैयावृत्य। वैयावृत्य का अर्थ होता है—सेवा। लेकिन महावीर सेवा से बहुत दूसरे अर्थ लेते हैं। सेवा का एक अर्थ मसीही क्रिश्चियन अर्थ है। शायद पृथ्वी पर अकेले ईसाइयत ने धर्म में सेवा को प्रार्थना और साधना के रूप में विकसित किया। लेकिन महावीर का सेवा से वैसा अर्थ नहीं है। ईसाइयत का जो अर्थ है, वही हम सबको ज्ञात है। महावीर का जो अर्थ है, वह हमें ज्ञात नहीं है। और महावीर के अनुयायियों ने जो अर्थ कर रखा है वह अति सीमित, अति संकीर्ण है। परम्परा वैयावृत्य से जो अर्थ लेती रही है, वह सुविधापूर्ण है इसलिए। वृद्ध साधुओं की सेवा, रुग्ण साधुओं की सेवा—ऐसा परम्परा अर्थ लेती रही है। ऐसा अर्थ लेने के कारण हैं, क्योंकि एक साधु ऐसा सोच ही नहीं सकता कि वह असाधु की सेवा करे। जो साधु नहीं हैं, वे ही साधु की सेवा करने आते हैं। जैनियों में प्रचलित है कि जब साधु का दर्शन करने जाते हैं तो उनसे आप पूछें कि कहाँ जा रहे हैं, तो वे कहते हैं—सेवा के लिए। धीरे-धीरे साधु का दर्शन करना ही सेवा के लिए जाना हो गया। इसलिए गृहस्थ साधु से जाकर पूछेगा, कुशल तो हैं, मंगल तो हैं, कोई तकलीफ तो नहीं? वह इसलिए पूछ रहा है कि कोई सेवा का अवसर मुझे दें, तो मैं सेवा करूँ। साधु की सेवा से ही वैयावृत्य का अर्थ ले लिया गया है। किसी तथाकथित साधु का इस अर्थ में हाथ है। क्योंकि महावीर तो किसी की सेवा में नहीं रहे हैं। तो यह तो अर्थ महावीर का नहीं है। जो अर्थ है उसमें वृद्ध साधु और रुग्ण साधु और साधु की सेवा भी आ जायेगी। लेकिन यही उसका अर्थ नहीं है। दूसरा सेवा का विकृत रूप है आज, वह ईसाइयत के द्वारा दिया गया अर्थ है और भारत ने विवेकानन्द से लेकर गांधी तक जो भी सेवा-कार्य किया है, वह ईसाइयत की सेवा है।

और अब जो थोड़े लोग अपने को नयी समझ का मानते हैं वे भी महावीर की सेवा से वैसा ही अर्थ निकालने की कोशिश करते हैं।

(१) सेवा के अर्थ में ईसाइयत का प्रभाव

पंडित बेचरदास दोषी ने महावीर वाणी पर जो टिप्पणियाँ की हैं, उनमें उन्होंने सेवा से वही अर्थ निकालने की कोशिश की, जो ईसाइयत का है। असल में ईसाइयत अकेला धर्म है जिसने सेवा को केंद्रीय स्थान दिया। और इसलिए सारी दुनिया में सेवा के सब अर्थ ईसायत के अर्थ हो गये। विवेकानन्द पश्चिम को कितना प्रभावित कर पाये इसमें सन्देह हो सकता है, लेकिन विवेकानन्द ईसाइयत से अत्यधिक प्रभावित हुए, असंदिग्ध है। वे एक सेंसेशन की तरह अमरीका में उठे और खो गये, लेकिन विवेकानन्द स्थायी रूप से ईसाइयत से प्रभावित होकर भारत वापस लौटे। और उन्होंने रामकृष्ण मिशन को जो गति दी, वह ठीक ईसाई मिशनरी की नकल थी। उसमें हिन्दू विचार नहीं है और फिर विवेकानन्द से गाँधी तक या विनोबा तक जिन लोगों ने सेवा का विचार किया है, वे सब ईसाइयत से प्रभावित हैं। असल में गाँधी हिन्दू धर्म में पैदा हुए, लेकिन उनके सारे नब्बे प्रतिशत संस्कार जैनियों से मिले थे। इसलिए मानने को मन होता है कि वे मूलतः जैन थे। लेकिन उनके मस्तिष्क का सारा परिष्कार ईसाइयत ने किया। गाँधी जब पश्चिम से लौटे तो यह सोचते हुए लौटे कि क्या उन्हें हिन्दू धर्म बदलकर ईसाई हो जाना चाहिए ? और उनपर जिन लोगों का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है वे हैं इमर्सन, थोरो, या रस्किन। ईसाइयत की धारा से प्रभावित सेवा का विचार उन सबका केंद्र था। तो इसलिए वैयावृत्य पर थोड़ा ठीक से सोच लेना जरूरी है क्योंकि ईसाइयत की सेवा की धारणा ने सेवा की और सब धारणाओं को डुबा दिया है।

(२) पैशनेट सेवा

एक तो ईसाइयत की जो सेवा की धारणा है, वही इस वक्त सारी दुनिया में सबकी धारणा है। वह धारणा 'फ्यूचर ओरिएंटेड' है, वह भविष्य उन्मुख है। ईसाइयत मानती है कि सेवा के द्वारा ही परमात्मा को पाया जा सकता है। सेवा के द्वारा ही मुक्ति होती है। सेवा एक साधन है, साथ ही मुक्ति है। तो सेवा का जो ऐसा अर्थ है वह सब प्रयोजन से है, विद परपज है। वह

परपजलेस नहीं है, वह प्रयोजनहीन नहीं है। चाहे मैं सेवा कर रहा हूँ धन पाने के लिए, चाहे यश पाने के लिए और चाहे मोक्ष पाने के लिए इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं कुछ पाने के लिए सेवा कर रहा हूँ। वह पाना बुरा भी हो सकता है, अच्छा भी हो सकता है यह दूसरी बात है। नैतिक हो सकता हैं, अनैतिक हो सकता है यह दूसरी बात है। एक बात निश्चित है कि वैसी सेवा की धारणा वासना-प्रेरित है। इसलिए जो ईसाइयत की सेवा है, वह बहुत ही पैशनेट है। इसलिए ईसाइयत के प्रचारक के सामने दुनिया के धर्म का कोई प्रचारक टिक नहीं सकता। नहीं टिक सकता इसलिए कि ईसाई प्रचारक एक पैशन, एक तीव्र वासना से भरा हुआ होता है। उसने सारी वासना को सेवा बना दिया है। इसलिए नकल करने की कोशिश चलती है। दूसरे धर्मों के लोग ईसाइयत की नकल करते हैं। लेकिन कम से कम कोई भारतीय धर्म ईसाइयत की धारणा को नहीं पकड़ सकता। उसका कारण यह है कि भारतीय मन सोचता ही ऐसा है कि जिस सेवा में प्रयोजन है वह सेवा ही नहीं रही। महावीर भी कहते हैं जिस सेवा में प्रयोजन है, वह सेवा ही नहीं है। सेवा होनी चाहिए निष्प्रयोजन। उससे कुछ पाना नहीं है।

(२) तब फिर सेवा किसलिए?

लेकिन अगर कुछ भी न पाना हो, तो करने की सारी प्रेरणा खो जाती है। नहीं, महावीर बहुत उल्टी बात कहते हैं। महावीर कहते हैं जो सेवा है, वह 'पास्ट ओरिएंटेड' है, अतीत से चलती है, भविष्य के लिए नहीं-है। महावीर कहते हैं अतीत में जो हमने कर्म किये हैं, उनके विसर्जन के लिए सेवा है। इसका कोई प्रयोजन नहीं है आगे। उससे कुछ मिलेगा नहीं। बल्कि जो कुछ गलत इकट्ठा हो गया है उसकी निर्जरा होगी, उसका विसर्जन होगा। यह दृष्टि बहुत उल्टी है। महावीर कहते हैं कि अगर मैं आपके पैर दाब रहा हूं या गांधी परचुरे शास्त्री, कोढ़ी के पैर दाब रहे हैं, तो गांधी भले सोच रहे हैं कि वे बड़ी सेवा कर रहे हैं, पर महावीर सोचते हैं कि वे अपने पाप का प्रक्षालन कर रहे हैं। बड़ी उल्टी बात है। गांधी भले सोचते हों कि वे कोई पुण्य कार्य कर रहे हैं, महावीर सोचते हैं कि वे अपने किये पाप का प्रायश्चित कर रहे हैं। परचुरे शास्त्री को कभी उन्होंने सताया होगा किसी जन्म में, किसी यात्रा में, यह उसका प्रतिफल है। सिर्फ किये को अनकिया कर रहे हैं, 'अनडन' कर रहे हैं। इसमें कोई गौरव नहीं हो सकता। ध्यान रहे, ईसाइयत की सेवा

गौरव बन जाती है, इसलिए वह अहंकार को पुष्ट करती है। महावीर की सेवा गौरव नहीं है। क्योंकि गौरव का क्या ताल्लुक? वह तो पाप का प्रायश्चित है, इसलिए अहंकार को तृप्त नहीं करती, अहंकार को भर नहीं सकती। सच तो यह है कि महावीर ने सेवा की जो धारणा दी है, वह बहुत अनूठी है। उसमें अहंकार को खड़े होने का कोई उपाय ही नहीं है। नहीं तो लगता है, मैं कोढ़ी के पैर दाब रहा हूं तो मैं विशेष कार्य कर रहा हूं। इससे भीतर अकड़ पैदा होती है। लगता है मैं बीमार को कंधे पर टांगकर अस्पताल ले जा रहा हूं, तो कुछ विशेष कार्य कर रहा हूं, कुछ पुण्य अर्जन कर रहा हूं। महावीर कहते हैं, कुछ पुण्य अर्जन नहीं कर रहे हो। इस आदमी को तुमने किसी दिन किसी गड्ढे में गिराया होगा, सिर्फ उसे पूरा कर रहे हो अस्पताल पहुंचा कर। इसे कभी तुमने चोट पहुँचायी होगी, सो अब तुम मरहमपट्टी कर रहे हो। यह पास्ट ओरिएंटेड है। यह तुम्हारा किया हुआ ही है, जिसका तुम पश्चात्ताप कर रहे हो, प्रायश्चित कर रहे हो, उसे पोंछ रहे हो। लेकिन वह जो पोंछ रहे हो, वह नया नहीं है। इसमें कुछ गौरव का कारण नहीं है। ऐसी सेवा करनेवाला अपने को सेवक न मान पायेगा। और महावीर कहते हैं जिस सेवा में सेवक आ जाये, वह सेवा ही नहीं है। बिना सेवक बने अगर सेवा हो जाये, तो ही सेवा है। यह जरा कठिन पड़ेगा हमें समझना। क्योंकि रस तो सेवक का है, सेवा का नहीं है। अग कोढ़ी के पैर दाबते वक्त आस-पास के लोग कहेंगे अच्छा, तो किसी पाप का प्रक्षालन कर रहे हो! तो फिर कोढ़ी के पैर दाबने का सब मजा चला जायेगा। क्योंकि हम चाहते हैं कि लोग तस्वीर निकालें, अखबारों में छापें कि महासेवक है यह आदमी, कोढ़ियों के पैर दाब रहा है।

(४) चूमने के लिए कोढ़ी के होंठ!

नीत्से ने सन्त फ्रांसिस की एक जगह बहुत गहरी मजाक की है। सन्त फ्रांसिस ईसाई सेवा के साकार रूप थे। सन्त फ्रांसिस को कोई कोढ़ी मिल जाता तो न केवल उसे गले लगाते बल्कि उसके कोढ़ों से भरे होंठों को चूमते भी। नीत्से ने कहा है कि संत फ्रांसिस, अगर मेरे वश में होता तो मैं तुमसे पूछता कि कोढ़ी के होंठ चूमते वक्त तुम्हारे मन को क्या हो रहा होता है? और मैं कोढ़ियों से कहता कि बजाय संत फ्रांसिस को मौका देने के कि वे तुम्हें चूमें, जहां तुम्हें वे मिल जायें तुम उन्हें चूमो। कोढ़ियों से कहता कि जहां भी

संत फ्रांसिस मिल जायें छोड़ो मत। उन्हें पकड़ो, गले लगाओ और चूमो। और तब देखो सन्त फ्रांसिस के चेहरे पर क्या परिणाम होते हैं। जरूरी नहीं है कि नीत्से जैसा सोचता है वैसा संत फ्रांसिस के चेहरे पर परिणाम हों, लेकिन यह बात बहुत दूर तक सच है कि जो आदमी कोढ़ी के पास उसको चूमने जाता है, वह किसी बहुत गरिमा के भाव से भरकर जा रहा होता है। वह कोई ऐसा काम कर रहा होता है, जो बड़ा कठिन है, असंभव है। असल में वह वासना के विपरीत काम करके दिखा रहा होता है। कोढ़ी के होंठ से दूर हटने का मन होगा, चूमने का मन नहीं होगा जबकि वह चूमकर दिखला रहा है। वह कुछ कर रहा है, कोई कृत्य है जो गरिमापूर्ण है। महावीर कहेंगे कि अगर इस करने में थोड़ी-सी भी वासना है, इतना भी मजा आ रहा है कि मैं कोई विशेष कार्य कर रहा हूँ, कोई असाधारण कार्य कर रहा हूँ, तो फिर मैं नये कर्मों का संग्रह करता हूँ। फिर सेवा भी पाप बन जायेगी। क्योंकि वह भी कर्म-बन्धन लायेगी। अगर मैं कुछ कर रहा हूँ, किये हुये को अनकिया कर रहा हूँ, तो फिर भविष्य में कोई कर्म-बन्धन नहीं है। अगर मैं कोई फ्रेश ऐक्ट, कोई नया कृत्य कर रहा हूँ, कोढ़ी को चूम रहा हूँ तो फिर मैं भविष्य के लिए पुनः आयोजन कर रहा हूँ कर्मों की शृंखला का।

(५) महावीर का मेटा मैथमेटिक्स

महावीर कहते हैं पुण्य भी अगर भविष्य-उन्मुख है वो पाप बन जाता है। यह बड़ा मुश्किल होगा समझना। पुण्य भी अगर भविष्य-उन्मुख है तो पाप बन जाता है, क्यों? क्योंकि वह भी बन्धन बन जाता है। महावीर कहते हैं कि पुण्य भी पिछले किये गये पापों का विसर्जन है। तो महावीर एक मेटा-मैथमेटिक्स की बात कर रहे हैं, परा-गणित की। वे यह कह रहे हैं कि जो मैंने किया है, उसे मुझे सम्पूर्ण करना पड़ेगा। मैंने एक चांटा आपको मार दिया है तो मुझे आपके पैर दबा देने पड़ेंगे। इससे वह जो जागतिक गणित है, उसमें सन्तुलन हो जायेगा। ऐसा नहीं कि पैर दबाने से मुझे कुछ नया मिलेगा, बल्कि सिर्फ पुराना कट जायेगा। और जब मेरा सब पुराना कट जाये, मैं शून्यवत हो जाऊँ, कोई जोड़ मेरे हिसाब में न रहे, मेरे खाते में दोनों तरफ आँकड़े बराबर हो जायें, जो मैंने किया वह सब अनकिया हो जाये, जो मैंने लिया, वह सब दिया हो जाये, ऋण और धन दोनों बराबर हो जायें और मेरे हाथ में शून्य बच रहे, तो महावीर कहते हैं वह शून्य अवस्था

गौरव बन जाती है, इसलिए वह अहंकार को पुष्ट करती है। महावीर की सेवा गौरव नहीं है। क्योंकि गौरव का क्या ताल्लुक? वह तो पाप का प्रायश्चित है, इसलिए अहंकार को तृप्त नहीं करती, अहंकार को भर नहीं सकती। सच तो यह है कि महावीर ने सेवा की जो धारणा दी है, वह बहुत अनूठी है। उसमें अहंकार को खड़े होने का कोई उपाय ही नहीं है। नहीं तो लगता है, मैं कोढ़ी के पैर दाब रहा हूँ तो मैं विशेष कार्य कर रहा हूँ। इससे भीतर अकड़ पैदा होती है। लगता है मैं बीमार को कंधे पर टांगकर अस्पताल ले जा रहा हूँ, तो कुछ विशेष कार्य कर रहा हूँ, कुछ पुण्य अर्जन कर रहा हूँ। महावीर कहते हैं, कुछ पुण्य अर्जन नहीं कर रहे हो। इस आदमी को तुमने किसी दिन किसी गड्ढे में गिराया होगा, सिर्फ उसे पूरा कर रहे हो अस्पताल पहुंचा कर। इसे कभी तुमने चोट पहुँचायी होगी, सो अब तुम मरहमपट्टी कर रहे हो। यह पास्ट ओरिएंटेड है। यह तुम्हारा किया हुआ ही है, जिसका तुम पश्चात्ताप कर रहे हो, प्रायश्चित कर रहे हो, उसे पोंछ रहे हो। लेकिन वह जो पोंछ रहे हो, वह नया नहीं है। इसमें कुछ गौरव का कारण नहीं है। ऐसी सेवा करनेवाला अपने को सेवक न मान पायेगा। और महावीर कहते हैं जिस सेवा में सेवक आ जाये, वह सेवा ही नहीं है। बिना सेवक बने अगर सेवा हो जाये, तो ही सेवा है। यह जरा कठिन पड़ेगा हमें समझना। क्योंकि रस तो सेवक का है, सेवा का नहीं है। अग कोढ़ी के पैर दाबते वक्त आस-पास के लोग कहेंगे अच्छा, तो किसी पाप का प्रक्षालन कर रहे हो! तो फिर कोढ़ी के पैर दाबने का सब मजा चला जायेगा। क्योंकि हम चाहते हैं कि लोग तस्वीर निकालें, अखबारों में छापें कि महासेवक है यह आदमी, कोढ़ियों के पैर दाब रहा है।

(४) चूमने के लिए कोढ़ी के होंठ!

नीत्से ने सन्त फ्रांसिस की एक जगह बहुत गहरी मजाक की है। सन्त फ्रांसिस ईसाई सेवा के साकार रूप थे। सन्त फ्रांसिस को कोई कोढ़ी मिल जाता तो न केवल उसे गले लगाते बल्कि उसके कोढ़ों से भरे होंठों को चूमते भी। नीत्से ने कहा है कि संत फ्रांसिस, अगर मेरे वश में होता तो मैं तुमसे पूछता कि कोढ़ी के होंठ चूमते वक्त तुम्हारे मन को क्या हो रहा होता है? और मैं कोढ़ियों से कहता कि बजाय संत फ्रांसिस को मौका देने के कि वे तुम्हें चूमे, जहां तुम्हें वे मिल जायें तुम उन्हें चूमो। कोढ़ियों से कहता कि जहां भी

संत फ्रांसिस मिल जायें छोड़ो मत। उन्हें पकड़ो, गले लगाओ और चूमो। और तब देखो सन्त फ्रांसिस के चेहरे पर क्या परिणाम होते हैं। जरूरी नहीं है कि नीत्से जैसा सोचता है वैसा संत फ्रांसिस के चेहरे पर परिणाम हों, लेकिन यह बात बहुत दूर तक सच है कि जो आदमी कोढ़ी के पास उसको चूमने जाता है, वह किसी बहुत गरिमा के भाव से भरकर जा रहा होता है। वह कोई ऐसा काम कर रहा होता है, जो बड़ा कठिन है, असंभव है। असल में वह वासना के विपरीत काम करके दिखा रहा होता है। कोढ़ी के होंठ से दूर हटने का मन होगा, चूमने का मन नहीं होगा जबकि वह चूमकर दिखला रहा है। वह कुछ कर रहा है, कोई कृत्य है जो गरिमापूर्ण है। महावीर कहेंगे कि अगर इस करने में थोड़ी-सी भी वासना है, इतना भी मजा आ रहा है कि मैं कोई विशेष कार्य कर रहा हूँ, कोई असाधारण कार्य कर रहा हूँ, तो फिर मैं नये कर्मों का संग्रह करता हूँ। फिर सेवा भी पाप बन जायेगी। क्योंकि वह भी कर्म-बन्धन लायेगी। अगर मैं कुछ कर रहा हूँ, किये हुये को अनकिया कर रहा हूँ, तो फिर भविष्य में कोई कर्म-बन्धन नहीं है। अगर मैं कोई फ्रेश ऐक्ट, कोई नया कृत्य कर रहा हूँ, कोढ़ी को चूम रहा हूँ तो फिर मैं भविष्य के लिए पुनः आयोजन कर रहा हूँ कर्मों की शृंखला का।

(५) महावीर का मेटा मैथमेटिक्स

महावीर कहते हैं पुण्य भी अगर भविष्य-उन्मुख है तो पाप बन जाता है। यह बड़ा मुश्किल होगा समझना। पुण्य भी अगर भविष्य-उन्मुख है तो पाप बन जाता है, क्यों ? क्योंकि वह भी बन्धन बन जाता है। महावीर कहते हैं कि पुण्य भी पिछले किये गये पापों का विसर्जन है। तो महावीर एक मेटा-मैथमेटिक्स की बात कर रहे हैं, परा-गणित की। वे यह कह रहे हैं कि जो मैंने किया है, उसे मुझे सम्पूर्ण करना पड़ेगा। मैंने एक चांटा आपको मार दिया है तो मुझे आपके पैर दबा देने पड़ेंगे। इससे वह जो जागतिक गणित है, उसमें सन्तुलन हो जायेगा। ऐसा नहीं कि पैर दबाने से मुझे कुछ नया मिलेगा, बल्कि सिर्फ पुराना कट जायेगा। और जब मेरा सब पुराना कट जाये, मैं शून्यवत हो जाऊँ, कोई जोड़ मेरे हिसाब में न रहे, मेरे खाते में दोनों तरफ आँकड़े बराबर हो जायें, जो मैंने किया वह सब अनकिया हो जाये, जो मैंने लिया, वह सब दिया हो जाये, ऋण और धन दोनों बराबर हो जायें और मेरे हाथ में शून्य बच रहे, तो महावीर कहते हैं वह शून्य अवस्था

ही मुक्ति है। अगर ईसाइयत की धारणा हम समझें तो सेवा शून्य में नहीं ले जाती, धन में ले जाती है, 'प्लस' में। आपका प्लस बढ़ता चला जाता है। आपका धन बढ़ता चला जाता है। आप जितनी सेवा करते हैं, उतने धनी होते चले जाते हैं, उतना आपके पास पुण्य संग्रहीत होता है। और इस पुण्य का प्रतिफल आपको स्वर्ग में, मुक्ति में ईश्वर के द्वारा मिलेगा। जितना आप पाप करते हैं, आपके पास ऋण इकट्ठा होता है और इसका प्रतिफल आपको नर्क में, दुख में, पीड़ा में मिलेगा। महावीर कहते हैं मोक्ष तो तब तक नहीं हो सकता, जब तक धन या ऋण कोई भी ज्यादा है। जब दोनों बराबर हैं और शून्य हो गये, एक-दूसरे को काट गये, तभी आदमी मुक्त होता है। क्योंकि मुक्ति का अर्थ ही यही है कि न अब मुझे कुछ लेना है और न कुछ देना है। इसको महावीर ने निर्जरा कहा है।

निर्जरा के सूत्रों में वैयावृत्य बहुत कीमती है। तो महावीर इसलिए नहीं कहते कि दया करके सेवा करो, क्योंकि दया ही बन्धन बनेगा। कुछ भी किया हुआ बन्धन बनता है। महावीर यह नहीं कहते कि करुणा करके सेवा करो। कि देखो यह आदमी कितना दुखी है, इसकी सेवा करो। महावीर यह नहीं कहते कि इतना दुखी है, सेवा करो। महावीर कहते हैं कि अगर तुम्हारा कोई पिछला कर्म तुम्हारा पीछा कर रहा हो, तो सेवा करो और छुटकारा पा लो। इसका मतलब ? इसका मतलब यह हुआ कि तुम अपने को सेवा के लिए खुला रखो, 'पैशनेट' सेवा नहीं। झंडा लेकर निकलो मत कि मैं सुबह से सेवा करके लौटूंगा। घोषणा करके मत निकलो कि सेवा करनी ही है। जिद मत करो। राह चलते हो, कोई अवसर आ जाय तो खुला रखो। अगर सेवा हो सकती हो तो अपने को रोको मत। इसमें दोनों में फर्क है। एक तो सेवा करने जाओ प्रयोजन से, सक्रिय हो जाओ, सेवक बनो, धर्म समझो सेवा को। दूसरे, महावीर कहते हैं खुला रखो अपने को, कोई कहीं सेवा का अवसर हो और सेवा भीतर उठती हो तो रोको मत, हो जाने दो और चुपचाप विदा हो जाओ। पता भी न चले किसी को कि तुमने सेवा की। तुमको स्वयं भी पता न चले कि तुमने सेवा की, यह वैयावृत्य है।

(६) सेवा उत्तम कीजिए

वैयावृत्य का अर्थ है—उत्तम सेवा। साधारण सेवा नहीं। ऐसी सेवा, जिसमें पता भी नहीं चलता कि मैंने कुछ किया। ऐसी सेवा, जिसमें बोध है

कि मैंने कुछ किया हुआ अनकिया अर्थात् अनडन किया; कुछ था जो बांधे था, उसे मैंने छोड़ा; इस आदमी से कुछ संबंध थे जो मैंने तोड़ लिये। लेकिन अगर इसमें रस ले लिया तो फिर संबंध निर्मित होंगे। ऐसे में फिर संबंध होते हैं। और यह भी समझ लेना चाहिए कि रस एक तरह का शोषण है महावीर की दृष्टि में। अगर एक आदमी दुःखी है और पीड़ित है और मैं उसकी सेवा करके स्वर्ग जाने की चेष्टा कर रहा हूं, तो मैं उसके दुःख का शोषण कर रहा हूं। मैं उसके दुःख को साधन बना रहा हूं। अगर वह दुःखी न होता तो मैं स्वर्ग न जा पाता। यह तो बहुत मजेदार मामला है। इस गणित में थोड़ा गहरे उतरना जरूरी है।

(७) सेवा नहीं, स्वर्ग-संचय

एक आदमी दुःखी है और आप सेवा करके अपना सुख खोज रहे हैं, तो आप उसके दुःख को साधन बना रहे हैं। यही तो सारी दुनिया कर रही है। एक धनपति अगर धन चूस रहा है तो आप उससे कहते हैं कि दूसरे लोग दुःखी हो रहे हैं और आप उनके दुःख पर सुख इकट्ठा कर रहे हैं। लेकिन जब एक पुण्यात्मा दीन की, दुःखी की सेवा कर रहा है और अपना स्वर्ग खोज रहा है, तब आपको ख्याल नहीं आता कि वह भी किसी गहरे अर्थों में यही कर रहा है। बस, सिक्के अलग हैं, इस जमीन के नहीं, परलोक के हैं, पुण्य के। बैंक बैलेंस वह यहां नहीं खोल पायेगा, लेकिन कहीं तो खोल रहा है। कहीं किसी बैंक में जमा होता चला जायेगा।

लेकिन नहीं, महावीर कहते हैं कि यह दूसरे के दुख का शोषण है। क्योंकि शोषण सेवा कैसे हो सकता है? दूसरा दुखी है। उसके दुख में मेरा हाथ हो सकता है। उस हाथ को मुझे खींच लेना है, उसी का नाम सेवा है। वह मेरे कारण दुखी न हो, इतना हाथ मुझे खींच लेना है। इसके दो अर्थ हुए। मेरे कारण कोई दुखी न हो ऐसा मैं जीऊं। दूसरे, अगर मुझे कोई दुखी मिल जाता है तो कहीं मेरे कारण अतीत में वह दुख पैदा न हुआ हो, इसलिए ऐसा मैं व्यवहार करूँ कि अगर उसमें मेरा कोई भी हाथ हो, तो हट जाये। इसमें कोई 'पैशन' नहीं हो सकता, इसमें कोई त्वरा और तीव्रता नहीं हो सकती, इसमें कोई रस नहीं हो सकता करने का; क्योंकि यह सिर्फ न-करना है, यह सिर्फ मिटाना और पोंछना है। नहीं, महावीर की सेवा समझी न जा

सकी, क्योंकि हम सब पैशनेट हैं। अगर धर्म हमको पागलपन न बन जाये तो हम धर्म नहीं कर सकते। अगर मोक्ष हमारी इज्जत न बन जाये तो हम मोक्ष में भी नहीं जा सकते। अगर पुण्य भी किसी अर्थ में शोषण न हो तो हम पुण्य भी नहीं कर सकते, क्योंकि शोषण हमारी आदत है, शोषण हमारे जीवन का ढंग है। वह व्यवस्था है हमारी। और वासना हमारा व्यवहार है। जिस चीज में हम वासना जोड़ देते हैं वही हम करते हैं, अन्यथा नहीं कर सकते। अगर सेवा धन-वासना हो जाये तो हम सेवा भी कर सकते हैं। सेवा के लिए आपको तत्पर करने वाले लोग कहते हैं कि सेवा से क्या-क्या मिलेगा, दान से क्या-क्या मिलेगा। सवाल यह नहीं है कि दान क्या है, सेवा क्या है। सवाल यह है कि आपको क्या-क्या मिलेगा, आप क्या-क्या पा सकोगे। यानी आपसे कुछ करवाना हो तो आपकी वासना को प्रज्वलित करना पड़ता है। आपकी वासना प्रज्वलित न हो तो आप कुछ भी करने को राजी न होंगे।

(८) जीसस की मौत से पहले का सवाल

जीसस के मरने के पहले जीसस के एक शिष्य ने पूछा कि घड़ी आ गयी पास, सुनते हैं हम कि आप नहीं बच सकेंगे। तो एक बात तो बता दें। यह तो पक्का है कि आप ईश्वर के हाथ के पास सिंहासन पर बैठेंगे, हम लोगों की जगहें क्या होंगी? हम कहाँ बैठेंगे? वह तो ईश्वर का राज्य होगा, सिंहासन होगा। आप तो पड़ोस में बैठेंगे, यह पक्का है, लेकिन हम लोगों की क्रमसंख्या क्या होगी? कौन कहाँ बैठेगा? किस नम्बर से बैठेगा? जब भी आदमी कोई त्याग करता है तो पहले पूछ लेता है कि फल क्या होगा? इतना छोड़ता हूँ, मिलेगा कितना? और ध्यान रहे जब छोड़ने में मिलने का ख्याल हो, तो वह छोड़ना नहीं है, जब बारगेनिंग है, वह एक सौदा है।

महावीर कहते हैं सेवा से मिलेगा कुछ भी नहीं। कुछ कटेगा। कुछ मिलेगा नहीं, कुछ कटेगा। कुछ छूटेगा। कुछ हटेगा। सेवा को अगर महावीर की तरह समझें तो वह मेडीशनल है, दवाई की तरह है। दवाई से कुछ मिलेगा नहीं, सिर्फ बीमारी कटेगी। ईसाइयत की सेवा टानिक की तरह है उससे कुछ मिलेगा। उसका भविष्य है। महावीर की सेवा मेडिसिन की तरह है। उससे कुछ बीमारी कटेगी, मिलेगा कुछ नहीं। यह भेद इतना गहरा है और इस भेद के कारण ही जैन परम्परा सेवा को जन्म न दे पायी। वरना जीसस के पाँच सौ वर्ष पहले महावीर ने सेवा की बात की थी और

उसे अन्तर-तप कहा था। लेकिन जैन-परम्परा उसे जगा न पायी, जरा भी जगा न पायी। क्योंकि कोई पैशन न था उसमें। उसमें कोई त्वरा नहीं पैदा होती थी। फिर कुछ कटेगा, कुछ मिटेगा, कुछ छूटेगा। कुछ कमी ही हो जायेगी उनकी। पापी के पाप का ढेर थोड़ा कम हो, तो उसको भी लगता है कुछ कम हो रहा है, समथिंग इज मिसिंग। बीमारी भी लम्बे दिनों की हो और बीमारी के बाद जब कोई स्वस्थ होता है, तो उसे लगता है कि समथिंग मिसिंग। इसलिए जो लम्बे दिनों तक बीमार रह जाये और बीमारी में रस ले ले तो वह कितना ही स्वस्थ होना चाहता हो, भीतर कहीं कोई हिस्सा कहता है कि मत होओ।

(९) बीमारी के सुख

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि सत्तर प्रतिशत बीमार इसलिए बीमार बने रहते हैं कि बीमारी में उन्हें रस पैदा हो गया, वे बीमारी को बचाना चाहते हैं। आप कहते हैं कि बीमारी को बचाना चाहते हैं तो चिकित्सक के पास क्यों जाते हैं, दवा क्यों लेते हैं? यही तो मनुष्य का द्वन्द्व है, जो दोहरे काम एक साथ कर सकता है। फिर बीमारी के भी रस हैं और कई बार लगता है, स्वास्थ्य से ज्यादा रस होंगे। देखा होगा कि जब आप बीमार पड़ते हैं, तो सारा जगत् आपके प्रति सहानुभूतिपूर्ण हो जाता है। कितना चाहा कि जब आप स्वस्थ होते हैं, तब जगत् सहानुभूतिपूर्ण हो जाये, लेकिन तब जगत् सहानुभूतिपूर्ण नहीं होता। जब आप बीमार होते हैं तो घर के लोग प्रेम का व्यवहार करते हुए मालूम पड़ते हैं। जब आप बीमार नहीं होते हैं तब वैसा व्यवहार करते नहीं मालूम पड़ते। जब आप बीमार होते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि आप सेंटर हो गये और सारी दुनिया परिधि पर है। आपके आस-पास नर्सें घूम रही हैं, डाक्टर चक्कर लगा रहे हैं, परिवार आपके ईर्द-गिर्द घूम रहा है, मित्र आ रहे हैं। देखनेवाले आ रहे हैं। आप ध्यान रखते हैं कि कौन देखने नहीं आया।

(१०) लड़का मर गया तो क्या, तारों का ढेर तो बढ़ा

मेरे एक मित्र का लड़का मर गया। जवान लड़का मर गया। उनकी उम्र तो ७० वर्ष है। छाती पीटकर रो रहे थे। जब मैं पहुंचा तो पास में उन्होंने टेलिग्राम्स का ढेर लगा रखा था। जल्दी से मैंने उनसे दो एक मिनट

बात की, लेकिन मैंने देखा उनकी उत्सुकता बात में नहीं, इसमें है कि वे टेलिग्राम्स मैं देख जाऊं। उन्होंने टेलिग्राम्स मेरी तरफ सरकाये और कहा कि प्रधानमंत्री ने भेजा, राष्ट्रपति ने भेजा। जब तक मैंने टेलिग्राम्स न देख लिये तब तक उनको तृप्ति न थी, बड़े दुःख में थे। लेकिन दुःख में भी रस लिया जाता है। ये टेलिग्राम्स वे फाड़कर न फेंक सके, ये टेलिग्राम्स वे भूल न सके, इनका वे ढेर लगाये रहे। पंद्रह दिन बाद जब मैं गया, तब ढेर और बड़ा हो गया था। ढेर लगाये हुए अपने पास ही रखे रहते थे। कहते थे, आत्महत्या कर लूंगा। क्योंकि अब क्या जीना। जवान लड़का मर गया। मरना मुझे चाहिए था। यानी कहते थे आत्महत्या कर लूंगा और तारों का ढेर बढ़ाते जाते थे। मैंने कहा, कब करियेगा, पंद्रह दिन तो हो गये? जितने ही दिन बीतते जायेंगे, उतना ही मुश्किल होगा करना। इसपर उन्होंने मुझे ऐसे देखा, जैसे कोई दुश्मन को देखे। उन्होंने कहा, आप क्या कहते हैं? आप और ऐसी बात कर रहे हैं! लेकिन वे आत्महत्या करने के लिए इसलिए कह रहे थे पंद्रह दिन से निरंतर, कि जब आत्महत्या की बात कोई भी सुनता था, तो सहानुभूति प्रकट करता था। मैंने कहा, मैं सहानुभूति प्रकट न करूँगा। इसमें आप रस ले रहे हैं। बस, उसी दिन से वे मेरे दुश्मन हो गये।

इस दुनिया में सच कहना दुश्मन बनाना है। दुनिया में किसी से भी सच कहना दुश्मन बनाना है। झूठ बड़ी मित्रताएं स्थापित करता है। कभी एक दफा देखें, चौबीस घंटे तय कर लें कि सच ही बोलेंगे तो आप पायेंगे सब मित्र विदा हो गये। बस, चौबीस घण्टा, इससे ज्यादा नहीं। देखेंगे कि पत्नी अपना सामान बांध रही है, लड़के-बच्चे कह रहे हैं नमस्कार, मित्र कह रहे हैं तुम ऐसे आदमी थे! बहरहाल सारा जगत् शत्रु हो जायेगा।

(११) वाणी मधुर है, मगर बकवास बन्द कर

मुल्ला नसरुद्दीन एक सुबह बैठकर अखबार पढ़ रहा था। और जैसा कि अखबार से सभी पत्नियां नाराज होती हैं, उसकी पत्नी भी नाराज हो रही थी कि क्या तुम सुबह से अखबार लेकर बैठ जाते हो! एक जमाना था कि सुबह से तुम मेरी सूरत की बातें करते थे और अब तुम कुछ बात नहीं करते। एक वक्त था तुम कहते थे कि तेरी वाणी कोयल जैसी मधुर है और अब कुछ भी नहीं कहते। मुल्ला ने कहा, है तेरी वाणी मधुर, मगर बकवास बन्द

कर। मुझे अखबार पढ़ना है। मुझे अखबार पढ़ने दे। तो दोहरा है आदमी। मजबूरी है उसकी। क्योंकि सीधा और सच्चा होने नहीं देता समाज। महँगा पड़ जायेगा। इसलिए झूठ को पोंछता चला जाता है।

मुल्ला ने जब तीसरी शादी की, तो तीसरे दिन रात को पत्नी ने कहा कि अगर तुम बुरा न मानो तो मैं अपने नकली दाँत निकाल कर रख दूं, क्योंकि रात में मुझे नींद नहीं आती। मुल्ला ने कहा, तो मैं अपनी लकड़ी की टाँग अलग कर सकता हूं और अपने झूठे बाल अलग कर सकता हूं। तथा काँच की आँख रख सकता हूं और विश्राम कर सकता हूं। धन्यवाद, हे परमात्मा ! तूने अच्छा बता दिया; नहीं तो तीन दिन से हम भी कहाँ सो पा रहे हैं। और वह भी नहीं सो पा रही, क्योंकि वे झूठे दाँत सोने कैसे देंगे ?

(१२) झूठे चेहरे ओढ़े हुए

हम सब एक दूसरे के सामने चेहरे बनाये हुए हैं, जो झूठे हैं। लेकिन रिलैक्स कैसे करें ? सत्य रिलैक्स कर जाता है। लेकिन सत्य में जीना कठिन पड़ता है इसलिए हम दोहरा जीते हैं। एक कोने में कुछ, एक कोने में कुछ और सब चलाते हैं। बीमारी में रस है, यह कोई बीमार स्वीकार करने को राजी नहीं होता, लेकिन बीमारी में रस है। इतना रस स्वास्थ्य में भी नहीं आता जितना बीमारी में आता है। इसलिए स्वास्थ्य को कोई बढ़ा चढ़ाकर नहीं बताता। बीमारी को सब लोग बढ़ा चढ़ाकर बताते हैं। यह जो हमारा चित्त है यह द्वन्द्व से भरा है। इसलिए हम कहते कुछ मालूम पड़ते हैं, कर कुछ और रहे होते हैं। कहते हैं गरीब पर बड़ी दया आ रही है, लेकिन उस दया में भी रस लेते मालूम पड़ते हैं। अगर दुनिया में कोई गरीब न रह जाये, तो सबसे ज्यादा तकलीफ उन लोगों को होगी, जो गरीबों की सेवा करने में पैशनेट रस ले रहे हैं। वे क्या करेंगे ? अगर दुनिया नैतिक हो जाये तो जो साधु दुनिया को नैतिकता समझाते फिरते हैं, ऐसे उदास हो जायेंगे कि जिसका हिसाब लगाना मुश्किल हो जायेगा। ऐसा कभी होता नहीं है, कभी मौका नहीं आता। लेकिन एक दफा आप मौका दें और नैतिक हो जायें और जब साधु कहें कि आप चोरी मत करो, तो आप कहें हम करते ही नहीं। वह कहे झूठ मत बोलो, आप कहें हम बोलते ही नहीं; बेईमानी मत करो, आप कहें कि हम करते ही नहीं। वह कहे दूसरे की स्त्री की तरफ मत देखो, आप कहें हम

बिलकुल अन्धे हैं, देखने का कोई सवाल ही नहीं है। यदि ऐसा हो तो आप साधु के हाथ से उसका सारा काम ही छीन ले रहे हैं, पूरी जड़ ही उखाड़े ले रहे है। साधु क्या करेगा ?

(१२) अगर असाधु नहीं होंगे तो साधु कहाँ से जी पायेगा !

यह कठिन होगा समझना, लेकिन साधु असाधु के रोगों पर जीता है, पैरासाइट है। ये जो असाधु चारों तरफ दिखायी पड़ते हैं, उनके ऊपर ही साधु जीता है। अगर दुनिया सच में साधु हो जाये तो साधु एकदम काम से बाहर हो जायें। फिर तो उसको कोई काम नहीं बचता। जो साधु आपको समझा रहे थे, (समझाते वक्त आदमी गुरू हो जाता है। ऊपर हो जाता है, सुपीरियर हो जाता उससे, जिसे समझाता है। इसलिए समझाने में रस आता है) अगर समझाने में रस था, अगर समझाने में आपके अज्ञान का शोषण था, अगर समझाने में आप सीढ़ी थे उनके ज्ञान की तरफ बढ़ने में, तो इसमें कोई हैरानी न होगी कि जिस दिन सारे लोग साधु हो जायें, उस दिन वह जो साधुता समझा रहा था, ईमानदारी समझा रहा था, वह आपको बेईमानी के राज बताने लगेगा कि बेईमानी के बिना जीना मुश्किल है, चोरी करनी ही पड़ेगी, असत्य बोलना ही पड़ेगा, नहीं तो मर जाओगे, जीवन में रस ही खो जायेगा।

लेकिन अगर वह सचमुच में ही साधु था, समझाना उसका रस न था, शोषण न था, तो वह प्रसन्न होगा, आनन्दित होगा और कहेगा कि समझाने की झंझट मिटी। लोग साधु हो गये, बात ही खतम हो गयी। अब मुझे समझाने का उपद्रव भी न रहा। अगर सेवा में आपको रस आ रहा है जिससे कि आपको लगता है कि आप कहीं स्वर्ग में जा रहे थे, सुख में, आदर में, प्रतिष्ठा में, सम्मान में प्रविष्ट हो रहे थे और तब अगर सेवा करवाने को कोई भी न मिले, तो आप बड़े उदास और दुखी हो जायेंगे। लेकिन अगर सेवा वैयावृत्य है, जैसा महावीर मानते हैं, तो आप प्रसन्न होंगे कि अब आपका कोई ऐसा कर्म नहीं बचा, जिसके कारण आपको किसी की सेवा करनी पड़े। आप प्रसन्न होंगे, प्रफुल्लित होंगे, प्रमुदित होंगे, आनन्दित होंगे। आप कहेंगे धन्यवाद। निर्जरा वही है।

सेवा में कोई रस नहीं है। सेवा केवल मेडिसिनल है। जो किया है, उसे पोंछ डालना है। ध्यान रहे जो व्यक्ति सेवा करेगा दूसरे की और कहेगा वह

बीमार है इसलिए सेवा करता हूँ, वृद्ध है इसलिए सेवा करता हूँ; वह बीमार होने पर सेवा माँगेगा, वृद्ध होने पर सेवा माँगेगा, क्योंकि ये एक ही तर्क के दो हिस्से हैं। लेकिन महावीर की सेवा करने की जो धारणा है, उसमें सेवा माँगी नहीं जायेगी। क्योंकि सेवा कभी इस दृष्टि से की नहीं गयी, इसलिए माँगी भी नहीं जायेगी। माँगने का कोई कारण नहीं है। और अगर कोई सेवा न करेगा तो उससे क्रोध पैदा न होगा, उससे कष्ट भी मन में न आयेगा। उससे ऐसा भी न लगेगा कि इस आदमी ने सेवा क्यों नहीं की। अगर आप सेवकों के आश्रमों में जाकर देखें जो कि सेवा करते हैं, तो आप एक और मजेदार बात देखेंगे कि वे सेवा लेते भी हैं उतनी ही मात्रा में, और उतनी ही सख्ती से। सख्ती उनकी भयंकर होती है। वे जरा सी बात चूक नहीं सकते। और कभी-कभी अत्यन्त हिंसात्मक हो जाती है वह सख्ती। यह बहुत मजे की बात है कि जितने सख्त आप अपने पर होते हैं उससे कम सख्त आप किसी पर नहीं हो सकते, बल्कि ज्यादा ही सख्त होंगे। कभी-कभी बहुत छोटी-छोटी बातों में बहुत अजीब घटना घटती है।

(१४) अनुशासन का शासन

गांधीजी नोआखाली में यात्रा पर थे। बड़ा कठिन था वह हिस्सा, एक-एक गांव खून और लाशों से पटा था। एक युवती उनकी सेवा में थी। वह उनके साथ चल रही थी। एक गाँव से अड्डा उखड़ा। दोपहर वहाँ से चले, सांझ दूसरे गाँव पहुँचे। गाँधीजी स्नान करने बैठे, तो देखा उनका पत्थर, जिससे वे पैर घिसते थे, पीछे छूट गया है पिछले गाँव में। रात उतर रही है, अँधेरा उतर रहा है। उन्होंने उस लड़की को बुलाया और कहा कि यह भूल कैसे हुई? क्योंकि गांधी कभी भूल नहीं करते, सलिए किसी की भूल बर्दाश्त नहीं कर सकते। बोले, वापस जाओ और वह पत्थर लेकर आओ। सोचिये, नोआखाली में चारों तरफ आग जल रही है, लाशें बिछी हैं, और वह अकेली लड़की रोती, घबड़ाती, छाती धड़कती वापस लौटी। उस पत्थर में कुछ भी न था। वैसे पचास पत्थर उस गाँव से भी उठाये जा सकते थे, लेकिन अनुशासन! जो आदमी अपने पर पक्का अनुशासन रखता है, वह आदमी दूसरों की गर्दन दबा लेता है। क्योंकि खुद नहीं भूलते कोई चीज, तो दूसरा कैसे भूल जाता है? तब ऊपर से दिखने वाला अनुशासन गहरे में हिंसा हो जाता है। सोचिए, वह भी कोई बात थी! आदमी भूल सकता है, भूलना स्वाभाविक है। और

कोई बड़ा कोहिनूर हीरा नहीं भूल गया है। पैर घिसने का पत्थर भूल गया है। लेकिन वहाँ सवाल पत्थर का नहीं है, सवाल सख्ती का है, सवाल नियम का है। नियम का पालन होना चाहिये। अगर आप अनुशासन, सेवा, नियम, मर्यादा इस तरह की बातें माननेवाले लोगों के पास जाकर देखें, तो आपको दूसरा पहलू भी बहुत शीघ्र दिखायी पड़ना शुरू हो जायेगा। जितने सख्त वे अपने पर हैं उससे कम सख्त वे दूसरों पर नहीं हैं। जब आप किसी के पैर दाब रहे हैं तब आप किसी से पैर दबाये जाने का इन्तजाम भी कर रहे हैं मन के किसी कोने में। और अगर आपके पैर न दाबे गये उस दिन, तब आपकी पीड़ा का अन्त न होगा।

(१५) सेवा नहीं, पाप-प्रक्षालन

लेकिन महावीर की सेवा का इससे कोई संबंध नहीं है। महावीर तो कहते हैं कि अगर कोई मेरी सेवा करता है तो वह इसलिए करता है कि उसके किसी पाप का प्रक्षालन होना है। अगर नहीं है पाप का प्रक्षालन, तो बात समाप्त हो गयी, तो कोई मेरी सेवा नहीं कर रहा है। इसमें दूसरे को गौरव दिया जाये, तो फिर दूसरे को निन्दा भी दी जा सकती है। लेकिन न कोई निन्दा है न कोई गौरव है। वैयावृत्य का ऐसा ही अर्थ है। इसलिए आप जब भी सेवा कर रहे हों तब ध्यान रखें कि वह भविष्य-उन्मुख न हो। तभी आप अंतर्-तप कर रहे हैं। जब आप सेवा कर रहे हों तो वह निष्प्रयोजन हो, अन्यथा समझ लें, आप अंतर्-तप नहीं कर रहे हैं। सेवा से किसी तरह के गौरव-गरिमा की कोई भावना भीतर गहन न हो, अन्यथा आप सेवा नहीं कर रहे हैं, वैयावृत्य नहीं कर रहे हैं।

और क्यों इसको अंतर्-तप कहते हैं महावीर ! इसलिए अंतर्-तप कहते हैं कि इसका करना कठिन है। वह सेवा सरल है जिसमें कोई रस आ रहा हो। इस सेवा में कोई भी रस नहीं है। यह सिर्फ लेन-देना ठीक करना है। इसलिए यह तप और बड़ा आंतरिक तप है। क्योंकि हम कुछ करें और कर्ता न बनें, इससे बड़ा तप क्या होगा ? सेवा जैसी चीज करें जो कोई करने को राजी नहीं है, कोढ़ी के पैर दबायें और फिर भी मन में कर्ता न बनें, तो तप हो जायेगा और बहुत बड़ा आंतरिक तप हो जायेगा। आंतरिक क्यों कहते हैं ? आंतरिक इसलिए कहते हैं कि सिवाय आपके और कोई न पहचान सकेगा। बात भीतरी है, आप ही जान सकेंगे; लेकिन आप बिल्कुल जांच लेंगे। कठिनाई नहीं होगी। जो भी आदमी भीतर की जाँच में संलग्न हो जाता है वह ऐसे ही

जान लेता है जैसे आपके पैर में कांटा गड़ता है तब आप जान लेते हैं कि दुःख रहा है। जब आलिंगन में आपको कोई गले लगा ले तो आप कैसे जानते हैं कि हृदय प्रफुल्लित हो रहा है ? जब कोई आपके चरण में सिर रख देता है तो आपके भीतर जो लहर दौड़ जाती है, वह आप कैसे जान लेते हैं ? उसके लिए कहीं बाहर खोजने की जरूरत नहीं पड़ती है, आंतरिक मापदण्ड आपके पास है। तो जब सेवा करते वक्त आपको किसी भी तरह की भविष्य-उन्मुखता मालूम पड़े तो समझना कि महावीर ने उस सेवा के लिए नहीं कहा है। अगर कोई पुण्य का भाव पैदा हो तो जानना कि महावीर ने उस सेवा के लिए नहीं कहा है। अगर ऐसा लगे कि मैं कुछ कर रहा हूँ, कुछ विशिष्ट, तो समझना महावीर ने उस सेवा के लिए नहीं कहा है। अगर यह कुछ भी पैदा न हो और फिर सेवा ऐसे हो जैसे तख्ते पर लिखी हुई कोई चीज हो जिसे किसी ने पोंछकर मिटा दिया और तख्ता खाली हो गया, आप भीतर खाली हो गये, तो समझना आप अंतर्-तप में प्रवेश कर रहे हैं।

(१६) स्वाध्यायान् मा प्रमदः

महावीर ने वैयावृत्य के बाद ही जो तप कहा है, वह है स्वाध्याय। यह चौथा तप है। निश्चित ही अगर सेवा का आप ऐसा प्रयोग करें तो आप स्वाध्याय में उतर जायेंगे, स्वयं के अध्ययन में उतर जायेंगे। लेकिन स्वाध्याय से बड़ा गौण अर्थ लिया जाता रहा है। वह है शास्त्रों का अध्ययन, पठन, मनन। महावीर अध्ययन भी कह सकते थे, स्वाध्याय कहने की क्या जरूरत ? उसमें 'स्व' जोड़ने का क्या प्रयोजन था ? अध्ययन काफी था। स्वाध्याय का अर्थ होता है स्वयं का अध्ययन, शास्त्र का अध्ययन नहीं। लेकिन साधु शास्त्र खोले बैठे हैं। उनसे पूछिये सुबह से क्या कर रहे हैं, वे कहते हैं स्वाध्याय कर रहा हूं। शास्त्र निश्चित ही किसी और का होगा। स्व का शास्त्र नहीं बन सकता। और अगर खुद के ही शास्त्र पढ़ रहे हैं तो बिल्कुल बेकार पढ़ रहे हैं। क्योंकि खुद का लिखा हुआ है, अब उसमें पढ़ने को क्या बचा होगा ? उसमें जानने को क्या रह गया होगा ?

(१७) क्या आप जानते हैं कि आप क्या हैं ?

स्वाध्याय का अर्थ है स्वयं का अध्ययन। यह बड़ा कठिन है, जब कि शास्त्र पढ़ना बड़ा सरल है। जो भी पढ़ सकता है वह शास्त्र पढ़ सकता है।

पठित होना काफी है। लेकिन स्वाध्याय के लिए पठित होना काफी नहीं है, क्योंकि स्वाध्याय बड़ा जटिल मामला है। आप बहुत कॉम्प्लेक्स हैं। आप बहुत उलझन में हैं। आप एक ग्रंथियों का जाल हैं। आप एक पूरी दुनिया हैं। हजार तरह के उपद्रव हैं वहाँ। उन सबके अध्ययन का नाम स्वाध्याय है। तो अगर आप अपने क्रोध का अध्ययन कर रहे हैं, तो भी स्वाध्याय कर रहे हैं। हाँ, क्रोध के संबंध में शास्त्र में क्या लिखा है, अगर उसका अध्ययन कर रहे हैं, तो स्वाध्याय नहीं कर रहे हैं। आपके भीतर सब मौजूद है। जो भी किसी शास्त्र में लिखा है, वह सब आपके भीतर मौजूद है। इस जगत् में जितना भी जाना गया है, वह प्रत्येक आदमी के भीतर मौजूद है। और इस जगत् में जो भी जाना जायेगा, वह प्रत्येक आदमी के भीतर आज भी मौजूद है। आदमी एक शास्त्र है, परम शास्त्र, द अल्टीमेट स्क्रिप्चर। इस बात को समझें तो महावीर का स्वाध्याय समझ में आयेगा।

मनुष्य परम शास्त्र है। क्योंकि जो भी जाना गया है, वह मनुष्य ने जाना। जो भी जाना जायेगा, वह मनुष्य जानेगा। काश ! मनुष्य स्वयं को ही जान ले, तो जो भी जाना गया है और जो भी जाना जा सकता है, वह सब जान लिया जाता है। इसलिए महावीर से कहा है कि एक को जान लेने से सबको जान लिया जाता है। स्वयं को जान लेने से सर्व जान लिया जाता है। इसके कई आयाम हैं। पहली तो बात यह कि जानने योग्य जो भी है, उसके हम दो हिस्से कर सकते हैं—एक तो आब्जेक्टिव, वस्तुगत; दूसरा सब्जक्टिव, आत्मगत। जानने में दो घटनाएँ घटती हैं। एक जाननेवाला होता है और जानी जानेवाली चीज होती है। विषय होता है जिसे हम जानते हैं और जाननेवाला होता है जो जानता है। विज्ञान का सम्बन्ध विषय से है, आब्जेक्ट से है, वस्तु से है, जिसे हम जानते हैं उसे जानने से है। धर्म का सम्बन्ध उसे जानने से है, जिससे हम जानते हैं। जो जानता है उसे जानने से है। ज्ञाता को जानना धर्म है और ज्ञेय को जानना विज्ञान है। ज्ञेय को हम कितना ही जान लें तो ज्ञाता के सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं चलता। कितना ही हम जानें चाँद, तारों, सूरज के सम्बन्ध में, तो भी अपने सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं चलता। बल्कि एक बड़े मजे की बात है कि हम जितना ही वस्तुओं के संबंध में ज्यादा जान लेते हैं उतना ही वह हमें भूल जाता है जो जानता है। क्योंकि जानकारी बहुत इकट्ठी हो जाये तो ज्ञाता छिप जाता है। आप इतनी चीजों

के सम्बन्ध में जानते हैं कि आपको ख्याल ही नहीं रहता कि अभी जानने को शेष बच रहा। इसलिए विज्ञान बढ़ता जाता है रोज, जानता जाता है रोज। कितने प्रकार के मच्छर हैं, विज्ञान जानता है। प्रत्येक प्रकार के मच्छर की क्या खूबियाँ हैं, विज्ञान जानता है। कितने प्रकार की वनस्पतियाँ हैं, विज्ञान जानता है। प्रत्येक वनस्पति में क्या-क्या छिपा है, विज्ञान जानता है। कितने सूरज हैं, कितने तारे हैं, कितने चाँद हैं, सब विज्ञान जानता है।

(१८) महावीरः मिथ्या ज्ञानी किसे कहते हैं ?

आइन्स्टीन ने मरते वक्त कहा था, कि अगर मुझे दुबारा जीवन मिले, तो मैं एक संत होना चाहूँगा। जो खाट के आस-पास इकट्ठे थे, उन्होंने पूछा, क्यों ? तो आइन्स्टीन ने कहा, जानने योग्य तो अब एक ही बात मालूम पड़ती है कि वह जो जान रहा था, वह कौन है ? यह सब जान लिया कि चाँद तारे कितने है, लेकिन होगा क्या ? दस हैं कि दस हजार हैं कि दस करोड़ हैं कि दस अरब हैं, इससे होगा क्या ? दस हैं ऐसा जानने वाला भी वहीं खड़ा रहता है, दस करोड़ हैं ऐसा जानने वाला भी वहीं खड़ा रहता है, दस अरब हैं, ऐसा जानने वाला भी वहीं खड़ा रहता है। जानकारी से जानने वाले में कोई भी परिवर्तन नहीं होता। लेकिन एक भ्रम जरूर पैदा होता है कि मैं जानने वाला हूँ। महावीर ऐसे जानने वाले को मिथ्या ज्ञानी कहते हैं। जाननेवाला जरूर कहते हैं, लेकिन मिथ्या जानने वाला है। ऐसी चीजें जानने वाला है जिसके बिना जाने भी चल सकता था और ऐसी चीजें छोड़ देने वाला है जिनके बिना जाने नहीं चल सकता। जो कीमती है वह छोड़ देते हैं हम और जो गैरकीमती है, वह जान लेते हैं। आखिर में जानना इकट्ठा हो जाता है और जानने वाला खो जाता है। मरते वक्त हम बहुत कुछ जानते है, सिर्फ उसे ही नहीं जानते हैं जो मर रहा है। अद्भुत है यह बात कि आदमी अपने आप को नहीं जानता। इसलिए महावीर ने स्वाध्याय को कीमती अंतर तपों में गिना है।

(१९) शास्त्र पढ़े का होय ?

स्वाध्याय चौथा अन्तर्-तप है। इसके बाद दो ही तप बच जायेंगे। और उन दो तपों के बाद एक्सप्लोज़न, विस्फोट घटित होता है। स्वाध्याय तो उस विस्फोट के निकट की सीढ़ी है। जहाँ क्रान्ति घटित होती है, जहाँ जीवन

नया हो जाता है, जहाँ आपका पुनर्जन्म होता है, नया आदमी आपके भीतर पैदा होता है, पुराना समाप्त होता है। स्वाध्याय अब बहुत करीब ले आया है। अब दो ही और सीढ़ी बचती हैं। इसलिए स्वाध्याय का अर्थ शास्त्र का अध्ययन नहीं है। शास्त्र का अध्ययन कितना कर रहे हैं लोग, लेकिन कहीं कोई क्रान्ति घटित होती नहीं मालूम होती, कहीं कोई विस्फोट नहीं होता। सच तो यह है कि जितना ही आदमी शास्त्र को जानता है, उतना ही स्वयं को जानने की जरूरत कम मालूम पड़ती है। क्योंकि लगता है कि जो भी जाना जा सकता है, वह सब मुझे मालूम है। महावीर क्या कहते हैं, बुद्ध क्या कहते हैं, क्राइस्ट क्या कहते हैं, वह जानता है। आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है, वह जानता है। बिना जाने जानता है। यह मिरैकल है। बिना जाने जानता है। उसे कुछ भी पता नहीं है कि आत्मा क्या है। उसे कोई स्वाद नहीं मिला आत्मा का। उसने परमात्मा की कभी कोई झलक नहीं पायी। उसने मुक्ति के आकाश में कभी एक पंख भी नहीं मारा। उसके जीवन में कोई ऐसी किरण नहीं उतरी, जिससे वह कह सके कि यह ज्ञान है, जिससे प्रकाश हो गया। सब अन्धेरा भरा है। और फिर भी वह जानता है कि सब जानता हूँ। इसे महावीर मिथ्या ज्ञान कहते हैं।

शास्त्र से जो मिलता है वह सत्य नहीं हो सकता। स्वयं से जो मिलता है, वही सत्य होता है। यह स्वयं से मिला सत्य शास्त्र में लिखा जाता है। लेकिन शास्त्र से जो मिलता है, वह स्वयं का नहीं होता। शास्त्र कोई और लिखता है। वह किसी और की खबर है जो आकाश में उड़ा है। वह किसी और की खबर है, जिसने प्रकाश के दर्शन किये हैं। वह किसी और की खबर है, जिसने सागर में डुबकी लगायी। लेकिन आप किनारे पर बैठकर पढ़ रहे हैं। इसको मत भूल जाना कि किनारे पर बैठकर आप कितना ही पढ़ें, सागर में डुबकी लगाने वाले का वक्तव्य, आपकी डुबकी नहीं हो सकता। मगर डर यह है कि शास्त्र में भी डुबकी लगा लेते हैं लोग! और जो शास्त्र में डुबकी लगा लेते हैं वे भूल ही जाते हैं कि सागर अभी बाकी है। और कभी-कभी शास्त्र में ऐसी डुबकी लग जाती है कि भूल ही जाता है कि सागर आगे है। तो शास्त्र सागर की तरफ ले जानेवाला कम ही सिद्ध होता है सागर की तरफ जाने में रुकावट ज्यादा सिद्ध होता है। इसलिए महावीर शास्त्र के अध्ययन को स्वाध्याय नहीं कहते हैं।

(२०) ये तथाकथित ज्ञानी

इसका यह मतलब नहीं है कि महावीर शास्त्र के अध्ययन को इन्कार कर रहे हैं, लेकिन वह स्वाध्याय नहीं है। इसको अगर ख्याल में रखा जाये, तो शास्त्र का अध्ययन भी उपयोगी हो सकता है। हाँ, उपयोगी हो सकता है अगर यह ख्याल में रहे कि शास्त्र का सागर सागर नहीं; और शास्त्र का प्रकाश, प्रकाश नहीं; और शास्त्र का आकाश, आकाश नहीं; और शास्त्र का परमात्मा, परमात्मा नहीं; और शास्त्र का मोक्ष, मोक्ष नहीं। और इसके साथ यह भी स्मरण रहे कि किसी ने जाना होगा, उसने शब्दों में कहा है। लेकिन शब्दों में कहते ही सत्य खो जाता है। केवल छाया रह जाती है। यह सब स्मरण रहे, तो शास्त्र को फेंककर किसी दिन सागर में छलांग लगाने का मन आ जायेगा। लेकिन अगर यह स्मरण न रहे, सागर ही बन जाये शास्त्र, सत्य ही बन जाये शास्त्र, शास्त्र में ही सब भटकाव हो जाये तो शास्त्र सागर को छिपा लेगा। इसलिए कई बार अज्ञानी कूद जाते हैं परमात्मा में और ज्ञानी वंचित रह जाते हैं। तथाकथित ज्ञानी दि सो-काल्ड नोमर्स, वंचित रह जाते हैं। इसलिए उपनिषद् कहते हैं कि अज्ञानी तो अन्धकार में भटकता है, लेकिन ज्ञानी महा अन्धकार में भटकता है। स्वाध्याय का अर्थ है—स्वयं में उतरो और स्वयं का अध्ययन करो। पूरा जगत् भीतर है। वह सब्जेक्ट है। आत्मा का वह जगत् पूरा भीतर है। उसे जानने चलो। लेकिन इसके लिए रुख बदलना पड़ेगा। तो स्वाध्याय का पहला सूत्र है—रुख। वस्तु के अध्ययन को छोड़ो, अध्ययन करनेवाले का अध्ययन करो।

जैसे उदाहरण के लिए आप मुझे सुन रहे हैं। जब आप मुझे सुन रहे हैं तो आपने कभी ख्याल किया है कि जितनी तल्लीनता से आप मुझे सुनेंगे, उतना ही आपको भूल जायेगा कि आप सुनने वाले हैं? जितनी तल्लीनता से आप मुझे सुनेंगे, उतना ही आपके स्मरण के बाहर हो जायेगा कि आप भी यहाँ मौजूद हैं, जो सुन रहा है। बोलने वाला प्रगाढ़ हो जायगा, सुनने वाला भूल जायेगा। हालांकि आप बोलने वाले नहीं, सुनने वाले हैं। जब आप सुन रहे हैं, तब दो घटनाएँ घट रही हैं। शब्द जो आपके पास आ रहे हैं जो आपसे बाहर हैं और आप जो भीतर हैं। शब्द महत्वपूर्ण हो जायेंगे सुनते वक्त और सुनने वाला गौण हो जायेगा। और अगर आप पूरी तरह तल्लीन हो गये, तो बिल्कुल भूल जायेगा। आत्म-विस्मरण हो जायेगा।

(२१) अच्छा बोले कि ठीक बोले

मेरे पास लोग आते हैं। जब कोई मेरे पास आता है और वह कहता कि आज आप बहुत अच्छा बोले, तो मैं जान जाता हूं कि आज क्या हुआ? आज यह हुआ कि वे अपने को भूल गये और कुछ नहीं हुआ। आत्म-विस्मरण हुआ। आज घंटे भर उनको अपनी याद नहीं रही, इसलिए वे कह रहे हैं कि बहुत अच्छा बोले। घंटे भर उनका मनोरंजन इतना हुआ कि उनको अपना पता भी नहीं न रहा। पंद्रह वर्ष से निरन्तर सुबह साँझ मैं बोलता रहा हूं। एक भी आदमी नहीं है, जो आकर यह कहता हो कि आज आप बहुत ठीक बोले। वह कहता है, बहुत अच्छा बोले। क्योंकि अगर कुछ ठीक बोले, तो कुछ करना पड़ेगा। अच्छा बोले, तो हो चुकी बात। कोई आदमी नहीं कहता मुझसे कि सत्य बोले। सुखद बोले कहता है। सत्य बोले, तो बेचैनी पैदा होगी। सुखद बोले, बात खतम हो गयी, सुख मिल चुका है। लेकिन सुख आपको कब मिलता है, वह मैं जानता हूं। जब भी आप अपने को भूलते हैं, तब ही सुख मिलता है चाहे सिनेमा में भूलते हों, चाहे संगीत में भूलते हों, चाहे कहीं सुनकर भूलते हों, चाहे पढ़कर भूलते हों, चाहे सेक्स में भूलते हों, चाहे शराब में भूलते हों। मुझे भलीभाँति पता है कि आपको सुख कब मिलता है? जब आप अपने को भूलते हैं, तब ही मिलता है।

(२२) ध्यान में लगे हुए दोहरे तीर

लेकिन जब अपने को भूलते हैं, तभी स्वाध्याय बन्द होता है। जब आप अपने को स्मरण करते हैं, तब स्वाध्याय शुरू होता है। तो जब मैं बोल रहा हूँ, एक प्रयोग करें, यहीं और अभी। सिर्फ बोलने पर ही ध्यान मत रखें। ध्यान को दोहरा कर दें; डबल ऐरोड, दोहरे तीर लगा दें ध्यान में। एक मेरी तरफ और एक अपनी तरफ। अब सुनने वाले का भी स्मरण है, वह जो कुर्सी पर बैठा है, वह जो आपकी हड्डी-मांस-मज्जा के भीतर छिपा है, जो कान के पीछे खड़ा है, जो आँख के पीछे देख रहा है, उसका भी स्मरण रहे। रिमेम्बर, उसको स्मरण रखें। कोई फिकर नहीं, उसके स्मरण में अगर मेरी कोई बात चूक भी जाय, क्योंकि मेरी इतनी बातें सुन लीं उससे कुछ भी न हुआ, और चूक जायेगा

तो कोई हर्ज होनेवाला नहीं है। लेकिन उसका स्मरण रखें, वह जो भीतर बैठा है, सुन रहा है, देख रहा है, मौजूद है। उसकी प्रेजेंस अनुभव करें। ध्यान उस पर जाये तो आप हैरान होंगे जानकर कि तब जो मैं कह रहा हूँ आपको सुखद नहीं, सत्य मालूम पड़ना शुरू होगा। और तब वह आपके लिए मनोरंजन नहीं, आत्म-क्रांति बन जायेगा। और तब जो मैं कह रहा हूँ, वह सब आप सुनेंगे ही नहीं, जियेंगे भी, जानेंगे भी। क्योंकि जब आप भीतर की तरफ उन्मुख होकर खड़े होंगे, तो आपको पता लगेगा कि जो मैं कह रहा हूँ, वह आपके भीतर छिपा पड़ा है। उससे तालमेल बैठना शुरू हो जायेगा। जो मैं कह रहा हूँ, वह आपको दिखायी पड़ने लगेगा कि ऐसा है। अगर मैं कह रहा हूँ कि क्रोध जहर है, तो मुझे सुनने से वह जहर नहीं हो जायेगा। लेकिन अगर आप अपने प्रति उसी क्षण जाग गये और आपने भीतर झांका तो आपके भीतर जो क्रोध का रिजरवायर है, जहर काफी इकट्ठा है, वह दिखायी पड़ेगा। अगर वह दिख जाये मेरे बोलते वक्त तो मैंने जो कहा, वह सत्य हो गया। क्योंकि वास्तविक सत्य मेरे शब्द के पास जो होना चाहिए था, वह आपके अनुभव में आ गया। तब आपके भीतर सत्य की प्रतीति हो गयी।

(२३) म्यूचुअल नॉनसेंस

सुनते वक्त बोलनेवाले पर कम ध्यान रखें, सुनने वाले पर ज्यादा ध्यान रखें। सुननेवालों पर नहीं, सुननेवाले पर। सुनने वालों पर भी लोग ध्यान रख लेते हैं। देख लेते हैं आस-पास कि किस-किस को जँच रहा है। मुझसे वैसे लोग भी आकर कहते हैं कि आज बहुत ठीक हुआ। उनसे पूछता हूँ, क्या बात है? वे कहते हैं, कई लोगों को जँचा। यानी वे आस-पास देख रहे हैं कि किस-किस को जँच रहा है। और कई लोग ऐसे हैं कि जब तक दूसरों को न जँचे, उनको नहीं जँचता। बड़ा म्यूचुअल है नॉनसेंस। पारस्परिक मूर्खता चलती है। देख लेते हैं आस-पास कि जँचा, तो उनको भी जँचता है। और उनको पता नहीं कि बगल वाले को भी उनको देखकर ही जँचता है। हिटलर अपनी सभाओं में दस आदमी बिठा देता था जो वक्त पर ताली बजाते थे। जब हिटलर ने पहली दफे अपने दस मित्रों को कहा कि तुम भीड़ में दूर-दूर खड़े होकर ताली बजाना तो उन्होंने कहा, हम बजायेंगे तो बड़े बेहूदे लगेंगे। दस आदमी ताली बजायेंगे दस हजार में, और कोई नहीं बजायेगा! कैसे बेहूदे लगेंगे? हिटलर

ने कहा कि मैं आदमियों को जानता हूं। पड़ोस के आदमी को देखकर वे भी बजाते हैं। तुम फिक्र छोड़ो। जस्ट स्टार्ट, तुम सिर्फ ताली बजा देना। तो हिटलर के इशारे पर वे ताली बजाते थे। वे चकित हुए कि दस हजार आदमी साथ ताली बजा रहे हैं। क्यों? क्या हो गया है? इन्फेक्शन है। जब आप बजाते हैं तो आपका पड़ोस वाला सोचता है जरूर कोई बात कीमती हो गयी, हम भी बजा दें। इस तरह दस आदमी दस हजार लोगों से ताली बजवा देते हैं।

कभी ख्याल नहीं आता कि क्या कर रहे हैं? आप ये कपड़े पहने हुए हैं किसी दूसरे आदमी ने आपको पहनवा दिये हैं, क्योंकि दूसरे पहने हुए हैं। इसलिए सुनने वालों पर ध्यान नहीं, सुननेवाले पर ध्यान। स्वयं पर ध्यान। भूल जायें सुनने वालों को। उनकी कोई जरूरत नहीं है बीच में आपके खड़े होने की। रास्ते पर चल रहे हैं तो भीड़ दिखायी पड़ती है, दूकानें दिखायी पड़ती हैं। एक आदमी भर दिखायी नहीं पड़ता है, वह जो चल रहा है, वही भर नहीं होता मौजूद। उसका आपको पता नहीं होता, जो चल रहा है, बाकी और सब होते हैं। बड़ी अद्भुत अनुपस्थिति है! हम अपने से अनुपस्थित हैं। इस अनुपस्थिति को तोड़ने का नाम स्वाध्याय है।

(२४) शराब भी तभी बेहोश करती है जब...

गुरजिएफ ने इसे सेल्फ रिमेम्बरिंग कहा है, स्व-स्मृति कहा है—स्वयं का स्मरण। कोई काम ऐसा न हो पाये, कोई भी बात ऐसी न हो पाये, कोई भी घटना ऐसी न घटे जिसमें मेरे भीतर जो चेतना है, वह विस्मृत हो जाये। उसका होश मुझे बना रहे। तो फिर शराब भी कोई पी रहा हो और अगर होश बनाये हुए है अपने भीतर कि मैं शराब पी रहा हूं और मैं मौजूद हूं, तो शराब भी बेहोश नहीं कर पायेगी। अन्यथा पानी भी बेहोश कर सकता है। अगर यह स्मरण बना रहे कि मैं हूं तो शराब एक तरफ पड़ी रह जायेगी और चेतना निरंतर अलग खड़ी रहेगी। यह अलग खड़ा रहना चेतना का, हम पानी के साथ भी नहीं कर पाते, शराब की बात तो बहुत दूर है। जब हम पीते हैं पानी, तो प्यास होती है, पानी होता है, पीनेवाला नहीं होता है। होना चाहिए पीने वाला पहले, प्यास बाद में, पानी और भी बाद में। तो स्वाध्याय शुरू हो गया। स्वाध्याय का अर्थ है मेरे जीवन का कोई कृत्य, कोई विचार, कोई

घटना, मेरी अनुपस्थिति में न घट जाये, मैं मौजूद रहूँ, क्रोध हो तो मैं मौजूद रहूँ, घृणा हो तो मैं मौजूद रहूँ, काम हो तो मैं मौजूद रहूँ, कुछ भी हो तो मैं मौजूद रहूँ, सब कुछ मेरी मौजूदगी में घटे।

और महावीर कहते हैं कि जब तुम मौजूद होते हो तो वह जो गलत है, नहीं घटता। स्वाध्याय में गलत घटता ही नहीं। जब मैंने कहा कि शराब पीते वक्त आप अगर मौजूद हों, तो आप यह मत समझना कि आपको शराब पीने की सलाह दे रहा हूं कि मजे से पियो और मौजूद रहो। मौजूद तो किसको रहना है, लेकिन पीना तो जारी रख सकते है! मैं आप से यह कह रहा हूँ कि अगर शराब पीते वक्त आप मौजूद रहें तो हाथ से गिलास छूटकर गिर जायेगा। तब शराब पीना असंभव है। क्योंकि जहर सिर्फ बेहोशी में ही पिय जा सकते हैं। जब मैं आपसे कहता हूँ कि क्रोध करते वक्त मौजूद रहो तो मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि मजे से करो क्रोध और मौजूद रहो; बस, शर्त इतनी है कि मौजूद रहो और क्रोध करो, फिर कोई हर्ज नहीं है! नहीं, मैं आपसे यह कह रहा हूँ कि आप क्रोध करते वक्त अगर मौजूद रहे, तो इन दो में से एक ही हो सकता है या तो क्रोध होगा या फिर आप होंगे। दोनों साथ मौजूद नहीं हो सकते। जब आप क्रोध करते वक्त मौजूद होंगे तो क्रोध खो जायेगा, आप होंगे; क्योंकि आपकी मौजूदगी में क्रोध जैसी रद्दी चीजें नहीं आ सकतीं। जब घर का मालिक जगा हो, तो चोर प्रवेश नहीं करते। जब आप जगे हों तब क्रोध घुस जाये यह हिम्मत भला क्रोध कैसे कर सकता है! आप जब सोये हुए होते हैं, तभी क्रोध प्रवेश कर सकता है। वह आपके उस कमजोर क्षण का ही उपयोग कर सकता है, जब आप बेहोश हैं। जब आप होश में हों, तब क्रोध नहीं होता। इसलिए महावीर जब कहते हैं कि होशपूर्वक जियो, अप्रमाद से जियो, जागते हुए जियो, तो मतलब केवल इतना ही है कि जागते हुए जीने में जो-जो गलत है, वह अपने आप गिर जायेगा। और यह अनुभव आपको होगा स्वाध्याय से कि गलत इसलिए हो रहा था कि मैं सोया हुआ था।

गलत होने का और कोई कारण नहीं है। नो रीज़न ऐट आल। सिर्फ एक ही कारण है कि आप सोये हुए हैं। इसलिए महावीर ने कहा है कि एक क्षण में भी मुक्ति हो सकती है। इसी क्षण भी मुक्ति हो सकती है। अगर कोई पूरा जाग जाये, तो गलत उसी वक्त गिर जाता है। और महावीर यह भी नहीं कहते कि कल के लिए भी रुकना जरूरी है। यह दूसरी बात है कि

आप न जाग पायें तो कल के लिए रुकना पड़े। अगर कोई समग्रता से इसी क्षण में जाग जाये, तो सब गिर जायेगा कचरा, जिससे हमें लगता था कि हम बँधे हैं, जिससे लगता था कि जन्मों-जन्मों का कर्म और पाप जुड़ा है। स्वाध्याय से यह पता चलेगा कि एक ही पाप है मूर्छा, और एक ही पुण्य है जागरण।

स्वाध्याय से यह पता चलेगा कि जब भी हम सोये होते हैं, तो जो भी हम करते हैं, वह गलत होता है। ऐसा नहीं कि कुछ गलत होता है, कुछ ठीक होता है; जो भी हम करते हैं, वह गलत होता है। और जब हम जागे होते हैं तब भी ऐसा नहीं कि कुछ गलत, कुछ सही हो सकता हैं। तब जो भी होता है, वह सही होता है। तो महावीर ने यह नहीं कहा कि तुम सही करो। महावीर ने कहा है कि जाग कर करो, होशपूर्वक करो, स्मृतिपूर्वक करो। क्योंकि स्मृतिपूर्वक किया हुआ गलत होता ही नहीं। ऐसे ही जैसे अन्धेरे में मैं टटोलूं और दीवाल से सिर टकरा जाये और दरवाजा न मिले; लेकिन प्रकाश हो जाय तो दरवाजा मिल जाये, दीवाल से टकराना न पड़े।

(२५) अन्धेरे में मोक्ष भी खोजोगे तो टकराओगे

तो महावीर यह नहीं कहते कि बिना टकराये हुए निकलो। महावीर कहते हैं कि रोशनी कर लो और निकल जाओ। क्योंकि अन्धेरे में टकराओगे ही, मोक्ष भी खोजोगे तो टकराओगे। परमात्मा को भी खोजोगे तो टकराओगे। अन्धेरे में कुछ भी करोगे, टकराओगे। क्योंकि अन्धेरा है। और अन्धेरे का कोई और कारण नहीं है, बस क्योंकि हम 'आब्जेक्ट फोकस्ड' हैं, हम वस्तुओं पर सारा ध्यान लगाये हुए हैं। वह ध्यान ही रोशनी है। वस्तुओं पर पड़ती है तो वस्तुएँ चमकने लगती हैं।

कभी आपने ख्याल किया है? रोज रास्ते से निकलते हैं आपके पास साइकिल भी नहीं है, तो कार को देखकर आपके मन में ऐसा ख्याल नहीं आता कि कार खरीद लें। इसलिए कार पर आपका बहुत ध्यान नहीं पड़ता। हाँ, कभी-कभी-पड़ता है जब कार कीचड़ उछाल देती है आपके ऊपर निकलते वक्त, तब ध्यान जाता है। ऐसे ध्यान नहीं जाता, ऐसे आपका फोकस कार पर नहीं बैठता। और जब तक कार पर आपका फोकस नहीं बैठता, तब तक कार को लेने की वासना नहीं उठती। लेकिन आज आपको लॉटरी मिल गयी, लाख रुपये मिल गये, अब जरा आप उसी सड़क से

गुजरिए। आप हैरान होंगे, आपका फोकस बदल गया। आज आप वे चीज देखते हैं, जो कल आपने देखी नहीं। कल आपके पास साइकिल भी नहीं थी, तो कभी-कभी साइकिल पर फोकस लगता था कि कभी दो सौ रुपये इकट्ठे हो जायें तो एक साइकिल खरीद लें। कभी-कभी रात सपने में भी साइकिल पर बैठकर निकल जाते थे। कभी-कभी साइकिल पर बैठा हुआ आदमी ऐसा लगता था कि पता नहीं कैसा आनन्द ले रहा होगा। लेकिन फोकस की सीमा है। कार वाले आदमी से प्रतिस्पर्धा नहीं जगती थी, सिर्फ क्रोध जगता था। साइकिल वाले आदमी से प्रतिस्पर्धा जगती थी, क्रोध नहीं जगता था। एप्रोचेबल था। सीमा के भीतर था। हम भी हो सकते थे साइकिल पर। जरा वश की बात थी। लेकिन आज आपको लाख रुपये मिल गये हैं। आज साइकिल पर आपका ध्यान ही नहीं जमता। आज साइकिल ख्याल में नहीं आती कि साइकिल भी चल रही है। आज आपको कारें ही दिखायी पड़ती हैं। आज कारों में पहली दफे फर्क मालूम पड़ते हैं कि कौन-सी कार बीस हजार की है, कौन-सी पचास हजार की, कौन-सी लाख की। यह फर्क कभी नहीं दिखायी पड़ा था। यह फर्क आज दिखायी पड़ेगा फोकस में। क्योंकि आज चेतना उस तरफ बह रही है। आज लाख रुपये जेब में हैं। आज वे लाख रुपये उछलना चाहते हैं। आज वे लाख रुपये कहते हैं लगाओ ध्यान में। लाख रुपये कैसे बैठे रहेंगे? वे कहीं जाना चाहते हैं। वे गति करना चाहते हैं। तो आज आप का ध्यान दूसरी ही चीजों को पकड़ेगा। आज मकान भी दिखायी पड़ेगा तो लाख रुपये में खरीदने जा सकते हैं। कार दिखायी पड़ेगी। दूकान में वे चीजें दिखायी पड़ेंगी जो आपको कभी नहीं दिखायी पड़ी थीं। सदा थीं, पर आपको कभी दिखायी नहीं पड़ी थीं। बात क्या है?

आपको वही दिखायी पड़ता है, जिस तरफ आपका ध्यान होता है। वह नहीं दिखायी पड़ता जिस तरफ आपका ध्यान नहीं होता। हमारा सारा ध्यान बाहर की तरफ है, इसलिए भीतर अँधेरा है। आता है भीतर से ही यह ध्यान, लेकिन भीतर अंधेरा है, क्योंकि ध्यान वस्तुओं की तरफ है। स्वाध्याय का अर्थ है इस रोशनी को भीतर की तरफ मोड़ना, भीतर देखना शुरू करना। कैसे देखेंगे? इसके लिए एक दो उदाहरण ख्याल में ले लें। एक आदमी आता है और आपको गाली देता है।

जब वह गाली देता है तब दो घटनाएँ घट रही हैं। वह आदमी गाली दे रहा है, एक तो यह घट रही है, जो आब्जेक्टिव है, बाहर है। वह आदमी बाहर है, उसकी गाली बाहर है। आपके भीतर क्रोध उठ रहा है, यह दूसरी घटना है, जो घट रही है। यह भीतर है। यह सब्जेक्टिव है। आप कहाँ ध्यान देते हैं? उसकी गाली पर ध्यान देते हैं, तो स्वाध्याय नहीं हो पायेगा। अपने क्रोध पर ध्यान देते हैं, तो स्वाध्याय हो जायेगा।

(२६) स्त्री : वासना : स्वाध्याय

एक सुन्दर स्त्री रास्ते पर दिखायी पड़ी। काम-वासना भीतर उठ गयी। आप उस स्त्री का पीछा करते हैं। उस पर ध्यान है, तो स्वाध्याय नहीं हो पायेगा। आप उस स्त्री को छोड़ते हैं और भीतर जाते हैं और देखते हैं कि काम-वासना किस तरह भीतर उठ रही हैं, तो स्वाध्याय शुरू हो जायेगा। जब भी कोई घटना घटती है तो उसके दो पहलू होते हैं—आब्जेक्टिव और सब्जेक्टिव, वस्तुगत और आत्मगत। जो आत्मगत पहलू है, उस पर ध्यान को ले जाने का नाम स्वाध्याय है। जो वस्तुगत पहलू है उस पर ध्यान को ले जाने का नाम मूर्च्छा है। लेकिन हम सदा बाहर ध्यान ले जाते हैं। जब कोई हमें गाली देता है, तो हम उसकी गाली को कई बार दोहराते हैं कि किस तरह दी, उसके चेहरे का ढंग क्या था, क्यों दी, वह आदमी कैसा है? हम उसका पूरा इतिहास खोजते हैं। जो बातें हमने उस आदमी में पहले कभी नहीं देखी थीं, वे सब हम देखते हैं कि वह आदमी ऐसा था ही, पहले से ही पता था। अपनी भूल थी कि ख्याल न किया। वह गाली कभी भी देता। फलां आदमी ने यह कहा था कि वह आदमी गाली देता है। यानी आप उस आदमी पर सारी चेतना को दौड़ा देंगे और जरा भी ख्याल न करेंगे कि आप आदमी कैसे हैं भीतर, भीतर क्या हो रहा है? उसकी छोटी-सी गाली आपके भीतर क्या कर गयी है? हो सकता है, वह आदमी गाली देकर घर जाकर सो गया हो मजे में। आप रात भर जग रहे हैं और सोच रहे हैं। हो सकता है उसने गाली यूं ही दी हो, मजाक ही किया हो। कुछ लोग गाली मजाक तक में भी दे रहे होते हैं। तो हो सकता है कि उसे ख्याल ही न हो कि उसने गाली दी है।

(२७) प्रसंग 'कौन साला कहता है'

मेरे गांव में मेरे घर के सामने एक बूढ़ा मिठाई वाला था। वह बहरा था और गाली तकिया-कलाम थी। मतलब चीजें भी खरीदे तो गाली दिये बिना नहीं खरीद सकता था किसी से। तो अक्सर यह हो जाता था कि वह घास वाली से घास खरीद रहा है और गाली दे रहा है। वह घास वाली कहेगी कि लेना हो तो ले लो, मगर गाली तो मत दो। तो वह अपने को गाली दे देता कि कौन साला गाली दे रहा है। उसको पता ही नही है अपनी गाली का कि वह गाली दे रहा है। वह कह रहा है कि कौन साला गाली दे रहा है। और गाली दे रहा है इसमें भी। अब वह अपने को गाली दे रहा है। उसकी कोई भूल नहीं है, गाली इतनी सहज हो गयी है उसे। ऐसे ही जो आदमी आपको गाली दे गया, हो सकता है, उसे पता ही न हो। आप जो व्याख्याएँ निकाल रहे हैं, वे आप ही निकाल रहे हैं इसलिए भीतर जायें कृपा करके। उस आदमी की फिक्र छोड़ दें। भीतर देखें कि उस आदमी ने गाली दी, तो मेरे भीतर क्या-क्या व्याख्या पैदा होती है उसकी गाली की!

(२८) गाली की व्याख्या और आपका अंतर

वह व्याख्या उस आदमी के संबंध में कुछ भी नहीं कह सकती, सिर्फ आपके संबंध में कुछ कहती है कि आप आदमी कैसे हैं? अगर आपको गाली दी जाये तो आपके भीतर क्या-क्या होगा, उसको देखें। आप क्या-क्या व्याख्या करते हैं? आपके भीतर क्रोध कैसे उठता है? आप उससे क्या प्रतिकार लेना चाहते हैं? हत्या करना चाहते हैं, गाली देना चाहते हैं, गर्दन दबाना चाहते हैं, क्या करना चाहते हैं? इस पूरे को देखने उतर जायें, तो आप अनुभवी होकर बाहर लौटेंगे। आप इस स्वाध्याय से ज्ञानी होकर बाहर लौटेंगे। इसके दो मजे होंगे। एक तो आपकी अपने संबंध में जानकारी बढ़ गयी होगी। और साथ ही आप को यह भी पता चल गया होगा कि महत्वपूर्ण यह नहीं है कि उसने गाली दी; महत्वपूर्ण यह है कि मैंने कैसा अनुभव किया। और मजा यह है कि आप उस गाली का उत्तर देने अब कभी न जायेंगे। क्योंकि आप बदल गये होंगे। इस ज्ञान से, इस स्वाध्याय से आप वही आदमी नहीं रह गये जिसको गाली दी गयी थी। समथिंग हैज बीन एडेड, समथिंग हैज बीन रिलीव्ड। नया कुछ जुड़ गया। सुबह आप दूसरे आदमी होंगे। हो सकता है, आप उससे क्षमा माँग आयें। हो सकता है कि आप पायें कि उसने गाली ठीक

जब वह गाली देता है तब दो घटनाएँ घट रही हैं। वह आदमी गाली दे रहा है, एक तो यह घट रही है, जो आब्जेक्टिव है, बाहर है। वह आदमी बाहर है, उसकी गाली बाहर है। आपके भीतर क्रोध उठ रहा है, यह दूसरी घटना है, जो घट रही है। यह भीतर है। यह सब्जेक्टिव है। आप कहाँ ध्यान देते हैं ? उसकी गाली पर ध्यान देते हैं, तो स्वाध्याय नहीं हो पायेगा। अपने क्रोध पर ध्यान देते हैं, तो स्वाध्याय हो जायेगा।

(२६) स्त्री : वासना : स्वाध्याय

एक सुन्दर स्त्री रास्ते पर दिखायी पड़ी। काम-वासना भीतर उठ गयी। आप उस स्त्री का पीछा करते हैं। उस पर ध्यान है, तो स्वाध्याय नहीं हो पायेगा। आप उस स्त्री को छोड़ते हैं और भीतर जाते हैं और देखते हैं कि काम-वासना किस तरह भीतर उठ रही है, तो स्वाध्याय शुरू हो जायेगा। जब भी कोई घटना घटती है तो उसके दो पहलू होते हैं—आब्जेक्टिव और सब्जेक्टिव, वस्तुगत और आत्मगत। जो आत्मगत पहलू है, उस पर ध्यान को ले जाने का नाम स्वाध्याय है। जो वस्तुगत पहलू है उस पर ध्यान को ले जाने का नाम मूर्च्छा है। लेकिन हम सदा बाहर ध्यान ले जाते हैं। जब कोई हमें गाली देता है, तो हम उसकी गाली को कई बार दोहराते हैं कि किस तरह दी, उसके चेहरे का ढंग क्या था, क्यों दी, वह आदमी कैसा है ? हम उसका पूरा इतिहास खोजते हैं। जो बातें हमने उस आदमी में पहले कभी नहीं देखी थीं, वे सब हम देखते हैं कि वह आदमी ऐसा था ही, पहले से ही पता था। अपनी भूल थी कि ख्याल न किया। वह गाली कभी भी देता। फलाँ आदमी ने यह कहा था कि वह आदमी गाली देता है। यानी आप उस आदमी पर सारी चेतना को दौड़ा देंगे और जरा भी ख्याल न करेंगे कि आप आदमी कैसे हैं भीतर, भीतर क्या हो रहा है ? उसकी छोटी-सी गाली आपके भीतर क्या कर गयी है ? हो सकता है, वह आदमी गाली देकर घर जाकर सो गया हो मजे में। आप रात भर जग रहे हैं और सोच रहे हैं। हो सकता है उसने गाली यूं ही दी हो, मजाक ही किया हो। कुछ लोग गाली मजाक तक में भी दे रहे होते हैं। तो हो सकता है कि उसे ख्याल ही न हो कि उसने गाली दी है।

(२७) प्रसंग 'कौन साला कहता है'

मेरे गांव में मेरे घर के सामने एक बूढ़ा मिठाई वाला था। वह बहरा था और गाली तकिया-कलाम थी। मतलब चीजें भी खरीदे तो गाली दिये बिना नहीं खरीद सकता था किसी से। तो अक्सर यह हो जाता था कि वह घास वाली से घास खरीद रहा है और गाली दे रहा है। वह घास वाली कहेगी कि लेना हो तो ले लो, मगर गाली तो मत दो। तो वह अपने को गाली दे देता कि कौन साला गाली दे रहा है। उसको पता ही नहीं है अपनी गाली का कि वह गाली दे रहा है। वह कह रहा है कि कौन साला गाली दे रहा है। और गाली दे रहा है इसमें भी। अब वह अपने को गाली दे रहा है। उसकी कोई भूल नहीं है, गाली इतनी सहज हो गयी है उसे। ऐसे ही जो आदमी आपको गाली दे गया, हो सकता है, उसे पता ही न हो। आप जो व्याख्याएँ निकाल रहे हैं, वे आप ही निकाल रहे हैं इसलिए भीतर जायें कृपा करके। उस आदमी की फिक्र छोड़ दें। भीतर देखें कि उस आदमी ने गाली दी, तो मेरे भीतर क्या-क्या व्याख्या पैदा होती है उसकी गाली की!

(२८) गाली की व्याख्या और आपका अंतर

वह व्याख्या उस आदमी के संबंध में कुछ भी नहीं कह सकती, सिर्फ आपके संबंध में कुछ कहती है कि आप आदमी कैसे हैं? अगर आपको गाली दी जाये तो आपके भीतर क्या-क्या होगा, उसको देखें। आप क्या-क्या व्याख्या करते हैं? आपके भीतर क्रोध कैसे उठता है? आप उससे क्या प्रतिकार लेना चाहते हैं? हत्या करना चाहते हैं, गाली देना चाहते हैं, गर्दन दबाना चाहते हैं, क्या करना चाहते हैं? इस पूरे को देखने उतर जायें, तो आप अनुभवी होकर बाहर लौटेंगे। आप इस स्वाध्याय से ज्ञानी होकर बाहर लौटेंगे। इसके दो मजे होंगे। एक तो आपकी अपने संबंध में जानकारी बढ़ गयी होगी। और साथ ही आप को यह भी पता चल गया होगा कि महत्वपूर्ण यह नहीं है कि उसने गाली दी; महत्वपूर्ण यह है कि मैंने कैसा अनुभव किया। और मजा यह है कि आप उस गाली का उत्तर देने अब कभी न जायेंगे। क्योंकि आप बदल गये होंगे। इस ज्ञान से, इस स्वाध्याय से आप वही आदमी नहीं रह गये जिसको गाली दी गयी थी। समथिंग हैज बीन एडेड, समथिंग हैज बीन रिलीव्ड। नया कुछ जुड़ गया। सुबह आप दूसरे आदमी होंगे। हो सकता है, आप उससे क्षमा मांग आयें। हो सकता है कि आप पायें कि उसने गाली ठीक

ही दी थी। हो सकता है कि आप पायें कि उसकी गाली उतनी मजबूत न थी जितनी होनी चाहिए थी, जितना बुरा मैं आदमी हूं। हो सकता है कि आप उससे जाकर कहें कि गाली बिल्कुल ठीक थी और 'अंडरएस्टिमेटेड' थी, क्योंकि मैं आदमी जरा ज्यादा बुरा हूं। यह सब हो सकता हैं। या हो सकता हैं कि आप सुबह पायें कि उसकी गाली पर आपको सिर्फ हँसी आ रही है और कुछ भी नहीं हो रहा। यही स्वाध्याय है। यह मैंने उदाहरण के लिए कहा। आप जीवन की छोटी-सी वृत्ति में, छोटी-सी लहर में भी इसका उपयोग करें। आपके भीतर का यह शास्त्र खुलना शुरू हो जाये तो पहले उस शास्त्र में गंदगी ही गंदगी मिलेगी, क्योंकि वही हमने इकट्ठी की है, वही हमारे संग है। लेकिन जितनी ही वह गंदगी मिलेगी, उतने ही आप स्वच्छ होते चले जायेंगे। क्योंकि गंदगी को बचाना हो तो गंदगी को न जानना जरूरी है और गंदगी को मिटाना हो तो जानना ही एकमात्र सूत्र है।

(२९) गंदगी का विपर्यास

जितना आप छिपाये रखते हैं अपनी गंदगी को, वह उतनी ही गहरी बनती चली जाती है, मजबूत होती चली जाती है। जब आप खुद ही उसको उखाड़ने लगते हैं और देखने लगते हैं, तो उसकी परतें टूटने लगती हैं, उसकी जड़ें उखड़ने लगती है। जायें भीतर और पायेंगे आप कि बहुत गंदगी है, लेकिन जितनी गंदगी आपको दिखायी पड़ेगी, आपको लगेगा कि आप उतने ही स्वस्छ होते जा रहे हैं। जितने ही भीतर जायेंगे, उतनी ही गंदगी कम होती जायेगी। और इसलिए एक मजा और आने लगेगा कि भीतर गंदगी कम होती जाती है तो और भी भीतर जाने का रस आने लगेगा। भीतर कंकड़-पत्थर नहीं, हीरे जवाहरात दिखायी पड़ने लगते हैं, तो दौड़ तेज हो जाती है। और एक घड़ी आयेगी कि जब आप सच में भीतर पहुँचेंगे; सच में भीतर, क्योंकि यह जो भी है यह भी बाहर और भीतर के बीच में है, इसलिए हम भीतर कह रहे हैं और स्वाध्याय के लिए सिर्फ। भीतर को समझना जरूरी है। जब आप भीतर सेंटर पर पहुँचेंगे, केंद्र पर पहुंचेंगे, उस दिन कोई गन्दगी नहीं रह जायेगी। उस दिन आप पायेंगे कि जीवन में उस स्वच्छता का अनुभव हुआ है, जिसका अब कोई अन्त नहीं है। आपने वह ताजगी पा ली, जो अब बूढ़ी नहीं होगी। आपने उस निर्दोषिता के तल को छू लिया, जिसको कोई

कालिमा स्पर्श नहीं कर सकती। आपने उस प्रकाश को पा लिया, जहां कोई अन्धकार प्रवेश नहीं करता है।

(३०) भीतर जाइए मगर क्रम से

लेकिन यह भीतर उतरना क्रमशः हो। इसलिए स्वाध्याय को महावीर ने अन्तिम नहीं कहा। चौथा तप कहा है। अभी और भी कुछ भीतर करने का शेप रह जाता है। उन दो तपों के संबंध में हम आगे आनेवाले दो अध्यायों में बात करेंगे। पाँचवां तप है ध्यान। छठां तप है कायोत्सर्ग। पर स्वाध्याय के बिना कोई ध्यान में नहीं जा सकता। महावीर ने जो सीढ़ियां कहीं हैं, वे अति वैज्ञानिक हैं। लोग मेरे पास आते हैं, कहते हैं ध्यान में जाना है। मैं लोगों की कठिनाई जानता हूं। वे स्वाध्याय में नहीं जाना चाहते। क्योंकि स्वाध्याय बहुत पीड़ादायी है। और ध्यान में क्यों जाना चाहते हैं? क्योंकि किताबों में पढ़ लिया है, गुरुओं को कहते सुन लिया है कि ध्यान में बड़ा आनन्द आता है। लेकिन जो अपने अर्जित दुःख में जाने को तैयार नहीं है, वह अपने स्वभाव के आनन्द में जा नहीं सकता है। पहले तो दुःख से गुजरना पड़ेगा, तभी सुख की झलक मिलेगी। नर्क गुजरे बिना कोई स्वर्ग नहीं मिलता है। क्योंकि नर्क हमने निर्मित कर लिया है। हम उसमें खड़े हैं। प्रत्येक आदमी चाहता है कि इस नर्क में से एकदम स्वर्ग मिल जाये, यहीं। इस नर्क को मिटाना न पड़े और स्वर्ग मिल जाये। यह नहीं हो सकता। क्योंकि स्वर्ग तो यहीं मौजूद है, लेकिन हमारे बनाये हुए नर्क में छिप गया है, ढँक गया है। ध्यान रहे, स्वर्ग स्वभाव है और नर्क हमारा एचीवमेण्ट है, हमारी उपलब्धि है। बड़ी मेहनत करके हमने नर्क को बनाया हैं, बड़ा श्रम उठाया है। अब उसे गिराना पड़ेगा! तो स्वाध्याय इसे गिराने के लिए कुदाली का काम करता है। जैसे कोई मकान को खोदना शुरू कर दे।

***

सत्रहवाँ प्रवचन

पर्युषण व्याख्यान-माला, बंबई, दिनांक ३ सितम्बर, १९७१

ध्यान : तीसरे बिन्दु पर बने रहने की प्रक्रिया

धम्मो मंगलमुक्किट्ठम्, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति, जस्स धम्मे सया मणो ॥१॥

अर्थ—

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

ग्यारहवाँ तप या पाँचवाँ अन्तर्-तप है ध्यान। जो दस तपों से गुजरते हैं, उन्हें तो ध्यान को समझना कठिन नहीं होता। लेकिन जो केवल दस तपों को समझ से समझते हैं, उन्हें ध्यान को समझने में बहुत कठिनाई होती है। फिर भी संकेत ध्यान के सम्बन्ध में समझे जा सकते हैं। यों ध्यान को तो करके ही समझा जा सकता है। ध्यान प्रेम जैसा है। उसे जो करता है वही जानता है; या तैरने जैसा है, जो तैरता है वही जानता है। तैरने के सम्बन्ध में कुछ बातें कही जा सकती हैं और प्रेम के सम्बन्ध में बहुत बातें कही जा सकती हैं। फिर भी प्रेम के सम्बन्ध में कितना भी समझ लिया जाये तो प्रेम समझ में नहीं आता। क्योंकि प्रेम एक स्वाद है, एक अनुभव, एक अस्तित्वगत प्रतीति है। तैरना भी एक एक्जिस्टेंशियल, एक सत्तागत प्रतीति है। आप दूसरे व्यक्ति को तैरते हुए देखकर भी नहीं जान सकते कि वह अनुभव कैसा होता है। आप दूसरे को प्रेम में डूबा हुआ देखकर भी नहीं जान सकते हैं कि प्रेम उसे किन सीमाओं के पार ले जाता है। ध्यान में खड़े महावीर को देखकर आप नहीं जान सकते कि ध्यान क्या है? ध्यान के सम्बन्ध में महावीर स्वयं कुछ भी कहें तो भी नहीं समझा पाते ठीक से कि ध्यान क्या है। कठिनाई और भी बढ़ जाती है, प्रेम से भी ज्यादा। क्योंकि चाहे कितना भी कम जानते हों, प्रेम का थोड़ा न थोड़ा स्वाद हम सबको मालूम है; गलत ही सही, गलत प्रेम का ही सही तो भी प्रेम का स्वाद है। लेकिन ठीक ध्यान की बात तो बहुत दूर है, गलत ध्यान का भी हमें कोई स्वाद नहीं है जिसके आधार पर समझाया जा सके कि ठीक क्या है। गलत ध्यान में भी हम अपने को रोक लेते हैं।

(१) लूकवार्म क्रोध

महावीर ने दो तरह के गलत ध्यान भी बताये। उन्होंने कहा है कि जो व्यक्ति तीव्र क्रोध में आ जाता है वह एक तरह के गलत ध्यान में आ जाता है। अगर आप कभी तीव्र क्रोध में आये हैं तो गलत प्रकार के ध्यान में आपने प्रवेश किया है। लेकिन हम तीव्र क्रोध में भी कभी नहीं आते हैं। हम कुनकुने जीते हैं, लूकवार्म, कभी उबलती हालत में नहीं आते। अगर आप गहरे क्रोध में आ जायें, इतने गहरे क्रोध में आ जायें कि क्रोध ही शेष रह जाये, क्रोध ही एकाग्र हो जाये, जीवन की सारी ऊर्जा क्रोध के बिन्दु पर दौड़ने लगे, जीवन की सारी किरणें, शक्ति की सारी किरणें क्रोध पर ही ठहर जायें, तो आपको गलत ध्यान का अनुभव होगा।

महावीर ने कहा है कि अगर कोई गलत ध्यान में उतरे तो उसे ठीक ध्यान में लाना आसान है। इसलिए अक्सर ऐसा हुआ है कि आप परम क्रोध से क्षण भर में परम क्षमा की मूर्ति बन गये। धीमे-धीमे जागते हुए जो क्रोधी हैं उन्हें गलत ध्यान का भी पता नहीं है। अगर राग पूरी तरह हो, वासना पूरी तरह हो, पैशन पूरी तरह हो जैसा कि कोई मजनू या कोई फरियाद अपने पूरे राग से पागल हो जाता है, तो वह भी एक तरह के गलत ध्यान में प्रवेश कर जाता है, तब लैला के सिवाय मजनू को कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता है। राह चलते दूसरे लोगों में भी उसे वही दिखायी पड़ती है। खड़े हुए वृक्षों में भी वही दिखाई पड़ती है, इसीलिए तो हम उसे पागल कहते हैं। और लैला उसको जैसी दिखायी पड़ती है, वैसी हमको किसी को भी दिखायी नहीं पड़ती। उसके गाँव के लोग उसे बहुत समझाते रहे कि यह बहुत साधारण सी औरत है, तू पागल हो गया है। गाँव के राजा ने मजनू को बुलाया और अपने परिचित मित्रों की बारह लड़कियों को सामने खड़ा किया जो कि सुन्दरतम थीं उस राज्य में। राजा ने कहा कि तू पागल न बन, तुझपर दया आती है। तुझको सड़कों पर रोते देखकर पूरा गाँव पीड़ित है। तू इन बारह सुन्दर लड़कियों में से जिसे चुन लेगा, उसका विवाह मैं तुझसे करवा दूंगा, लेकिन मजनू ने कहा कि मुझे सिवाय लैला के कोई यहाँ दिखायी ही नहीं पड़ता। राजा ने कहा कि तू पागल हो गया है क्या? लैला बहुत साधारण लड़की है। तो मजनू ने कहा कि लैला को देखने को तो मजनू की आँख चाहिए, आपको लैला दिखायी नहीं पड़ सकती। और जिसे आप देख रहे हैं वह वह लैला नहीं है, जिसे मैं देखता हूँ।

यह मजनू जो कहता है कि मजनू की आंख चाहिए, यह गलत ध्यान का एक रूप है। वह इतना ज्यादा कामासक्त है, इतना राग से भर गया है कि 'नैरोडाउन' होकर सारी चेतना एक बिन्दु पर सिकुड़ कर खड़ी हो गयी है। वह चेतना का बिन्दु लैला बन गयी है। महावीर ने इसे गलत ध्यान कहा है।

(२) शीर्षासन करता हुआ ध्यान

यह बहुत मजे की बात है कि महावीर इस जमीन पर अकेले आदमी हैं, जिन्होंने गलत ध्यान की भी चर्चा की। ठीक ध्यान की चर्चा तो बहुत लोगों ने की है। यह बड़ी विशिष्ट बात है कि महावीर कहते हैं कि यह भी ध्यान का उल्टा है, शीर्षासन करता हुआ ध्यान है। जितना ध्यान मजनू का लैला पर लगा है, उतना मजनू का मजनू पर लग जाये, तो ठीक ध्यान हो जाये। यह शीर्षासन करती हुई चेतना है। 'पर' पर लगी है, दूसरे पर लगी है। दूसरे पर जब इतनी सिकुड़ जाती है चेतना, तब भी ध्यान ही फलित होता है; लेकिन उल्टा फलित होता है, सिर के बल फलित होता है। अपनी ओर लग जाये, इतनी चेतना, तो ध्यान पैर पर खड़ा हो जाये। सिर के बल खड़े हुए ध्यान में कोई गति नहीं हो सकती। इसलिए सिर के बल खड़े सभी ध्यान सड़ जाते हैं। क्योंकि वे गत्यात्मक नहीं हो सकते। सिर के बल चलिएगा कैसे? पैर के बल चला जा सकता है। यात्रा करनी हो तो पैर के बल होगी। चेतना जब पैर के बल खड़ी होती है, तो अपनी तरफ उन्मुख होती है, तब गति करती है। और ध्यान जो है वह डायनेमिक फोर्स है। उसे सिर के बल खड़े करने का मतलब है उसकी हत्या कर देना। इसलिए जो लोग भी गलत ध्यान करते हैं, वे आत्मघात में लगते हैं, रुक जाते हैं, ठहर जाते हैं। मजनू ठहरा हुआ है लैला पर और इस बुरी तरह ठहरा है कि जैसे तालाब बन गया है। अब वह एक सरिता नहीं रहा, जो सागर तक पहुँच जाये। और इसे लैला कभी मिल नहीं सकती।

यह दूसरी कठिनाई है गलत ध्यान की कि जिस पर आप लगाते हैं, उसकी उपलब्धि नहीं हो सकती। क्योंकि उसमें दूसरे को पाने का कोई उपाय ही नहीं है। इस अस्तित्व में सिर्फ एक ही चीज पायी जा सकती है, और वह है मोक्ष। वह मैं स्वयं हूँ। उसको ही मैं पा सकता हूँ। शेष सारी चीजों को मैं पाने की कितनी ही कोशिश करूँ, वह सारी कोशिश असफल होगी। क्योंकि

जो मेरा स्वभाव है वही केवल मेरा हो सकता है। जो मेरा स्वभाव नहीं है वह कभी भी मेरा नहीं हो सकता। मेरे होने की भ्रांतियाँ हो सकती हैं। लेकिन भ्रांतियाँ टूटेंगी, पीड़ा और दुःख लायेंगी। इसलिए गलत ध्यान नर्क में ले जाता है। सिर के खड़ी हुई चेतना अपने ही हाथ से अपना नर्क खड़ा कर लेती है। और बड़े मजेदार लोग हैं। हम जब नर्क में होते हैं तब हम ध्यान वगैरह की बाबत सोचने लगते हैं। आदमी दुःख में होता है, तो पूछता है शान्ति कैसे मिले? अशान्ति में होता है और पूछता है शान्ति कैसे मिलेगी? मेरे पास लोग आते हैं और कहते हैं कि सुनते हैं ध्यान से बड़ी शान्ति मिलती है तो हमें ध्यान का रास्ता बता दीजिए। और मजा यह है कि जो अशान्ति उन्होंने पैदा की है उसमें से कुछ भी वे छोड़ने को तैयार नहीं हैं। अशान्ति उन्होंने पदा की है, उसके लिए पूरी मेहनत उठायी है, श्रम किया है।

(३) जब होश में हूँ तो ईश्वर की चिंता कौन करे!

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने गाँव के फकीर के दरवाजे को रात दो बजे खटखटा रहा था। वह फकीर उठा, उसने कहा, भई इतनी रात को! और नीचे देखा तो नसरुद्दीन खड़ा है। तो उसने कहा, नसरुद्दीन कभी तुझे मस्जिद में नहीं देखा। कभी तू मुझे सुनने-समझने नहीं आया। आज दो बजे रात यहाँ! फिर भी फकीर नीचे आया, पास गया तो देखा कि शराब में डोल रहा है, नशे में खड़ा है। नसरुद्दीन ने कहा कि जरा ईश्वर के संबंध में कुछ पूछने आया हूँ। उस फकीर ने कहा कि सुबह आना। व्हेन यू आर सोबर कम देन ओनली। जब होश में रहो, तब आना। नसरुद्दीन ने कहा, बट द डिफिकल्टी इज व्हेन आइ एम सोबर देन आइ डाउट एबाउट योर गॉड। जब मैं होश आता हूँ तो तुम्हारे ईश्वर की मुझे चिन्ता नहीं होती। यह तो मैं नशे में हूँ इसीलिए आया हूँ जानने कि ईश्वर है या नहीं?

हम सुबह ऐसी ही हालत में पहुँचते हैं। जब हम सुख में होते हैं, तो हमें ध्यान की जरा भी चिन्ता पैदा नहीं होती और जब हम दुःख में होते हैं तब हमें ध्यान की चिन्ता पैदा होती है। और कठिनाई यह है कि दुःखी चित्त को ध्यान में ले जाना बहुत कठिन है। क्योंकि दुखी चित्त गलत ध्यान में लगा हुआ होता है। दुःख का मतलब ही गलत ध्यान है। जब आप पैर के बल खड़े होते हैं, तब आपकी चलने की कोई इच्छा नहीं होती। जब आप सिर के बल खड़े

होते हैं तब आप मुझसे पूछते है आकर कि चलने का कोई रास्ता है ? और अगर मैं आपसे कहूँ कि जब आप पैर के बल खड़े हों तब ही चलने का रास्ता काम कर सकता है, तो आप कहते हैं जब हम पैर के बल खड़े होते हैं तो हमें चलने की इच्छा ही नहीं होती।

(४) अशांति की चेष्टा छूटती नहीं, तो शांति कैसे आयेगी!

इसलिए महावीर ने पहले गलत ध्यान की बात की है, ताकि आपको साफ हो जाये कि आप गलत ध्यान में तो नहीं हैं। क्योंकि गलत ध्यान में जो है, उसे ध्यान में ले जाना अति कठिन हो जाता है। अति कठिन इसलिए नहीं कि वह नहीं जायेगा, अति कठिन इसलिए है कि वह गलत का प्रयास जारी रखता है। जब आप कहते हैं कि मैं शान्त होना चाहता हूँ, तब आप अशान्त होने की सारी चेष्टा जारी रखते हैं और शान्त होना चाहते हैं। और अगर आपसे कहा जाये कि अशान्त होने की चेष्टा छोड़ दीजिए, तो आप कहते हैं वह तो हम समझते हैं, लेकिन शान्त होने का उपाय बताइये। आपको पता ही नहीं है कि शान्त होने के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ता है। सिर्फ अशान्त होने की चेष्टा जो छोड़ देता है, वह शान्त हो जाता है। शान्ति कोई उपलब्धि नहीं है, अशान्ति उपलब्धि है, शान्ति को पाना नहीं है, अशान्ति को पा लिया है। अशान्ति का अभाव शान्ति बन जाता है। गलत ध्यान का अभाव ध्यान की शुरुआत हो जाती है। तो गलत ध्यान का अर्थ है अपने से बाहर किसी भी चीज पर एकाग्र हो जाना। दि अदर ओरिएन्टेड कान्ससनेस, दूसरे की तरफ बहती हुई चेतना गलत ध्यान है। इसलिए महावीर ने परमात्मा की तरफ बहती हुई चेतना को भी गलत ध्यान कहा है। क्योंकि परमात्मा को आप दूसरे की तरह ही सोच सकते हैं और अगर स्वयं की तरह सोचेंगे तो तो बड़ी हिम्मत की जरूरत होगी। अगर आप यह सोचेंगे कि मैं परमात्मा हूँ, तो बड़ा साहस चाहिए। एक तो आप न सोच पायेंगे और आप के आस-पास के लोग भी न सोचने देंगे कि आप परमात्मा हैं। और जब कोई सोचेगा कि मैं परमात्मा हूँ तो परमात्मा की तरह जीना पड़ेगा। क्योंकि सोचना खड़ा नहीं हो सकता है जब तक आप जियें नहीं। सोचने में खून नहीं आयेगा जब तक आप जियेंगे नहीं। हड्डी, माँस, मज्जा नहीं बनेगी जब तक आप जियेंगे नहीं। तो अगर परमात्मा की तरह जीना हो, तब तो ध्यान की कोई जरूरत ही नहीं रह जाती। इसलिए महावीर कहते हैं कि परमात्मा को आप

सदा दूसरे की तरह सोचेंगे। इसीलिए जितने धर्म परमात्मा को मानकर शुरू होते हैं, उनमें ध्यान विकसित नहीं होता, प्रार्थना विकसित होती है।

(५) प्रार्थना और ध्यान

प्रार्थना और ध्यान के मार्ग बिल्कुल अलग-अलग हैं। प्रार्थना का अर्थ है दूसरे के प्रति निवेदन। ध्यान में कोई निवेदन नहीं है। प्रार्थना का अर्थ है दूसरे की सहायता की माँग। ध्यान में कोई सहायता की माँग नहीं है। क्योंकि महावीर कहते हैं, दूसरे से जो मिलेगा वह मेरा कभी भी नहीं हो सकता है। मिल भी जाये तो भी पहले तो वह मिलेगा ही नहीं, लेकिन मैं मान लूंगा कि मिला। और दूसरे से मिला हुआ 'माना हुआ' मिला हुआ है। वह आज नहीं कल छूटेगा, दुःख लायेगा और पीड़ा होगी। इसलिए महावीर कहते हैं कि अगर पीड़ा के बिल्कुल पार हो जाना है, तो दूसरे से ही छूट जाना पड़ेगा। दूसरे के साथ जो भी सम्बन्ध है वह टूट सकता है। परमात्मा के साथ भी सम्बन्ध टूट सकता है। सम्बन्ध का अर्थ ही यह होता है कि जो टूट भी सकता है। रिलेशन का मतलब ही यह होता है जो कि बन सकता है। महावीर कहते हैं कि जो बन सकता है, वह बिगड़ सकता है। इसलिए बनाने की कोशिश ही मत करो। तुम तो उसे जान लो जो कि अनबना है, अनिक्रिएटेड है। जो तुम्हारे भीतर कभी बना नहीं, इसलिए उसके मिटने का कोई भय नहीं। वही तुम्हारा हो सकता है, वही शाश्वत सम्पदा है।

इसलिए आस-पास जो लोग महावीर को नहीं समझ सके, उन्होंने कहा कि नास्तिक हैं वे। और उन्हें ऐसा भी लगा कि अब तक जो नास्तिक हुए हैं, उनसे भी गहन नास्तिक हैं वे, क्योंकि वे नास्तिक कम से कम इतना तो कहते हैं कि ईश्वर के लिए प्रमाण हो तो हम मान लें। महावीर तो कहते हैं कि ईश्वर हो या न हो, इससे धर्म का कोई संबंध नहीं है। क्योंकि दूसरे को जब भी मैं ध्यान में लाता हूँ, तो गलत ध्यान हो जाता है। इसलिए महावीर इसकी भी चिन्ता नहीं करते कि ईश्वर है या नहीं, ताकि इसके लिए कोई प्रमाण जुटायें। निश्चित ही ईश्वरवादियों को महावीर गहन नास्तिक मालूम पड़े, नास्तिकों से भी ज्यादा। इसलिए तथाकथित आस्तिकों ने चारवाक् से भी ज्यादा निन्दा महावीर की की है। और यह खतरा था। क्योंकि चारवाक् की निन्दा करनी आसान थी। क्योंकि वह कह रहा था खाओ, पियो, मजा करो। महावीर की

निन्दा और मुश्किल पड़ गयी । क्योंकि वे जो नास्तिक थे वे खाओ, पियो, मौज करो, ऐसा कह रहे थे । महावीर तो बिल्कुल ही नास्तिक जैसे नहीं थे । ये तो भोग में जरा भी रस नहीं लेते थे । इसलिए इनकी निन्दा और कठिन और भी मुश्किल पड़ गयी । आदमी तो ये इतने बेहतर थे कि वैसा बड़े से बड़ा आस्तिक न हो पाये । शायद उससे भी ज्यादा बेहतर । क्योंकि बड़े से बड़ा आस्तिक भी दूसरे पर निर्भर रहता है । ऐसी स्वतंत्रता, जैसी महावीर की है, आस्तिक की नहीं हो पाती । यह उस दिन हो पाती है, जिस दिन या तो भक्त बिल्कुल मिट जाता है और भगवान् रह जाता है या भगवान् बिल्कुल मिट जाता है और भक्त रह जाता है । जिस दिन एक ही बचता है, उस दिन हो पाता है । महावीर प्रार्थना के पक्षपाती नहीं हैं, महावीर दूसरे का ध्यान करने के पक्षपाती नहीं हैं । तब फिर महावीर का ध्यान से क्या अर्थ है ? वह अर्थ हम समझ लें और महावीर उस ध्यान तक कैसे आपको पहुँचा सकते हैं, उसे भी समझ लें ।

(६) सामायिक बनाम ध्यान और स्पेसिओटाइम

महावीर का ध्यान से अर्थ है स्वभाव में ठहर जाना, टु बी इन वनसेल्फ । ध्यान का अर्थ है जो मैं हूं, जैसा मैं हूँ वहीं ठहर जाना । उसी में जीना, उससे बाहर नहीं जाना । इसलिए महावीर ने ध्यान शब्द का प्रयोग नहीं किया है, क्योंकि ध्यान शब्द मात्र ही दूसरे का इशारा करता है । जब भी हम कहते हैं टु बी अटेंटिव, तब यह मतलब होता है किसी और पर । जब भी हम कहते हैं ध्यान, तो उसका मतलब होता है कहाँ ? किस पर ? लोग आते हैं पूछने— वे कहते हैं, हम ध्यान करना चाहते हैं, किस पर करें ? ध्यान शब्द में ही आब्जेक्ट का ख्याल, विषय का ख्याल छिपा हुआ है । इसलिए महावीर ने ध्यान शब्द का उतना प्रयोग नहीं किया है । ध्यान की जगह ज्यादा उन्होंने प्रयोग किया है सामायिक । वह महावीर का अपना शब्द है । जब कोई व्यक्ति अपनी आत्मा में ही होता है तब उसे सामायिक कहते हैं ।

इधर एक बहुत अद्भुत काम चल रहा है वैज्ञानिकों के द्वारा । अगर वह काम ठीक-ठीक हो सका, तो शायद महावीर का शब्द सामायिक पुनरुज्जीवित हो जाये । वह काम यह चल रहा है कि आइन्स्टीन ने, प्लांक ने और अन्य पिछले ५० वर्षों के वैज्ञानिकों ने यह अनुभव किया है कि इस जगत् में जो

स्पेस है, जो स्थान है, अवकाश है, आकाश है, वह तीन आयामों में बँटा है। हम किसी भी चीज को तीन आयामों में देखते हैं। वह थ्री डायमेन्शंस में रहती है। लम्बाई है, चौड़ाई है, मोटाई है, इन तीन आयामों में स्थान और टाइम के जुड़ने का सवाल था। बड़ी कठिनाई थी कि इस समय को कैसे तीन आयामों से जोड़ा जाये। क्योंकि जोड़ तो कहीं-न-कहीं होना चाहिए। समय और क्षेत्र, टाइम और स्पेश कहीं जुड़े तो होने चाहिए, अन्यथा इस जगत् का अस्तित्व नहीं बन सकता है। इसलिए आइन्स्टीन ने टाइम और स्पेस की अलग-अलग बात करनी बन्द कर दी और 'स्पेसिओटाइम' एक शब्द बनाया, कि समय और क्षेत्र एक ही है। आइन्स्टीन ने कहा कि समय जो है, वह स्पेस का ही फोर्थ डायमेन्शन है, वह क्षेत्र का ही चौथा आयाम है, अलग चीज नहीं है। और आइन्स्टीन के मरने के बाद इस पर और काम हुआ और पाया गया कि टाइम भी एक तरह की ऊर्जा, एनर्जी है, शक्ति है। और अब वैज्ञानिक ऐसा सोचते हैं कि मनुष्य का शरीर तो तीन आयामों से बना है और मनुष्य की आत्मा चौथे आयाम से बनी है। अगर यह बात सही हो गयी, तो चौथे आयाम का नाम होगा टाइम।

महावीर ने २५०० साल पहले आत्मा को समय यानी टाइम कहा। कई बार विज्ञान जिन अनुभूतियों से बहुत बड़ी उपलब्धि कर पाता है, रहस्य में डूबे हुए सन्त उसे हजारों साल पहले देख लेते हैं। १०-१५ वर्षों से इस बीच काम और जोर से चल रहा है। बड़ा काम रूस के वैज्ञानिक कर रहे हैं। वे निरंतर इस बात के निकट पहुंचते जा रहे हैं कि समय ही मनुष्य की चेतना है। इसे ऐसा समझें तो थोड़ा ख्याल में आ जायेगा और फिर स्थान की धारणा में, महावीर की धारणा में उतरना आसान हो जायेगा। यों समझें कि पदार्थ की बिना समय के भी कल्पना की जा सकती है, कंसीवेबल है, लेकिन चेतना की बिना समय के कल्पना भी नहीं की जा सकती। सोच लें, समय नहीं है जगत् में, तो पदार्थ तो हो सकता है, पत्थर हो सकता है, लेकिन चेतना न हो सकेगी। क्योंकि चेतना की जो गति है, वह स्थान में नहीं है, समय में है। वह स्पेस में नहीं है, वह टाइम में है, वह समय में है। जब आप यहाँ उठकर आते हैं अपने घर से, तो आपका शरीर यात्रा करता है, वह यात्रा होती है स्थान में। आप घर से निकले, कार में बैठे, बस में बैठे, ट्रेन में बैठे, चले। यह यात्रा स्थान में है। आपकी जगह अगर पत्थर भी रख दिया जाता तो वह भी कार में बैठकर यहाँ तक आ जाता। लेकिन कार में बैठे हुए आपका मन एक और

गति भी करता है, जिसका दूरी से कोई संबंध नहीं है। वह गति समय में है। हो सकता है, आप जब घर में हों और जब कार में बैठे हों, तभी आप समय में, इस हाल में आ गये हों, मन में इस हाल में आ बैठे हों। लेकिन कार अभी घर के सामने खड़ी है। सच तो यह है कि आप कार में बैठे ही इसलिए हैं कि आपका मन कार के पहले इस हाल की तरफ गति करता है। इसीलिए आप कार में बैठे हैं, नहीं तो आप कार में नहीं बैठेंगे। पत्थर खुद कार में नहीं बैठेगा, उसे किसी को बिठाना पड़ेगा। बैठकर भी वह वैसा ही रहेगा, जैसा अनबैठा था। बैठकर उसे आप यहाँ उतार लेंगे। लेकिन उस पत्थर के भीतर कुछ भी न होगा। जब आप कार में बैठे हैं तो दो गति हो रही हैं। एक तो आपका शरीर स्थान में यात्रा कर रहा है और एक आपका मन समय में यात्रा कर रहा है। चेतना की गति समय में है।

महावीर ने चेतना को समय ही कहा है और ध्यान को सामायिक कहा है। अगर चेतना की गति समय में है, तो चेतना की गति के ठहर जाने का नाम सामायिक है। शरीर की सारी गति ठहर जाये, उसका नाम आसन है। और चित्त की सारी गति ठहर जाये, उसका नाम ध्यान है। अगर कार में ऐसे बैठकर आ जायें जैसे पत्थर आता है, तो आप ध्यान में थे। आपके भीतर कोई गति न हो, स्वयं शरीर गति करे और आप कार में बैठकर ऐसे आ जायें जैसे पत्थर आया हो, तो आप ध्यान में थे। ध्यान का अर्थ है चेतना जब गति-शून्य हो जाती है, मूवमेण्ट शून्य हो जाता है। यह ध्यान का अर्थ है महावीर का। अब इस ध्यान की तरफ जाने के लिए महावीर आपको क्या सलाह देते हैं, इसे हम दो-तीन हिस्सों में समझने की कोशिश करें।

(७) प्रकाश की वल्लरी में धूल-कण अर्थात् चेतना का अंश-दर्शन

कभी आपने खप्पर छाये हुए मकान के नीचे देखा होगा कि कई रंगों में प्रकाश की किरणें भीतर घुसती हैं। प्रकाश की एक वल्लरी, एक धारा कमरे में गिरने लगती है। सारा कमरा अन्धेरा है। छप्पर से एक धारा प्रकाश की नीचे तक उतर रही है। तब आपने एक बात और भी देखी होगी कि उस प्रकाश की धारा के भीतर धूल के हजारों कण उड़ते हुए दिखायी पड़ते हैं। अन्धेरे में वे दिखायी नहीं पड़ते। जबकि सभी जगह उड़ रहे हैं, लेकिन उस प्रकाश की वल्ल ी में दिखायी पड़ते हैं। क्योंकि दिखायी पड़ने के लिए भी

प्रकाश होना जरूरी है। शायद आपको ख्याल आता होगा कि प्रकाश ·
वल्लरी में ही वे उड़ रहे हैं, तो आप गलती में हैं। वे तो पूरे कमरे में उ
रहे हैं लेकिन प्रकाश की वल्लरी में ही दिखायी उड़ते हैं। आपकी चेतना कं
ऐसी ही स्थिति है। जितने हिस्से में ध्यान पड़ता है, उतने हिस्से में विचा
के कण दिखायी पड़ते हैं। बाकी में भी विचार उड़ते रहते हैं, पर वे आपकं
दिखायी नहीं पड़ते। इसलिए मनोवैज्ञानिक मन को दो हिस्सों में तोड़ देता
है। एक को वह कान्सस कहता है, एक को अनकान्सस। चेतना उस हिस्से को
कहें जिसमें प्रकाश की किरण पड़ रही है और धूल-कण दिखायी पड़ रहे
हैं। और अचेतन उसको, बाकी कमरे को कहें, जहाँ अन्धेरा है, जहाँ प्रकाश
नहीं पड़ रहा है। धूल-कण तो वहाँ भी उड़ रहे हैं, पर उनका कोई पता
नहीं चलता है।

(८) विचार बनाम प्रकाश वल्लरी के धूल-कण

तो आपके चेतन मन में आपको विचारों का उड़ना दिखायी पड़ता है। चौबीस घण्टे विचार चलते रहते हैं। कभी आपने ख्याल नहीं किया है कि जब प्रकाश की किरण उतरती है अन्धेरे कमरे में, तो जो धूल का कण उसमें उड़ता हुआ आता है, वह आस-पास के अन्धेरे से उड़ता हुआ आता है। फिर प्रकाश की किरण में प्रवेश करता है, और थोड़ी देर में फिर अन्धेरे में चला जाता है। शायद आपको यह भ्रांति हो कि वह जब प्रकाश में होता है, तभी उसका अस्तित्व है, तो आप गलती में हैं। वह आने के पहले भी होता है, जाने के बाद भी होता है। आपने कभी अपने विचारों का अध्ययन किया है कि वे कहाँ से आते हैं और कैसे चले जाते हैं? शायद आप सोचते होंगे कि इधर से प्रवेश करते हैं और नष्ट हो जाते हैं, पैदा होते हैं और नष्ट हो जाते हैं। पैदा और नष्ट नहीं होते हैं। आपके अंधेरे चित्त से आते हैं, आपके प्रकाश चित्त में दिखायी पड़ते हैं, फिर अन्धेरे चित्त में चले जाते हैं। अगर आप अपने विचारों को उड़ता देखने की कोशिश करें कि कहाँ से उठते हैं, तो धीरे-धीरे आप पायेंगे कि वे आपके ही भीतर के अन्धेरे से ही आते हैं। और आप अगर उनके जन्म-स्रोत का ध्यान रखें, तो धीरे-धीरे आप पायेंगे कि वे आपको अन्धेरे में भी दिखायी पड़ने लगे हैं, और जब वे चले जाते हैं तब तक भी आपके सामने से आ-जा रहे हैं, मिट नहीं रहे हैं। अगर आप उनका पीछा कर रहे हैं तो धीरे-धीरे वे आपको अन्धेरे में जाते हुए दिखायी पड़ेंगे। आप उनका अन्धेरे में भी पीछा कर सकते हैं।

चेतना विचार से भरी है। जैसे आकाश वायु से भरा है, वैसे चेतना विचार से भरी है। जब वायु का धक्का लगता है आपको, तब वायु का पता चलता है। जब धक्का नहीं लगता है तो पता नहीं चलता है। जब कोई विचार आपको धक्का देता है तब आपको पता चलता है अन्यथा आपको पता नहीं चलता, विचार बहते रहते हैं। आप अपने सौ विचारों में से एक का भी मुश्किल से पता रखते हैं, बाकी निन्यानवे ऐसे ही बहते रहते हैं। और भी मजे की बात है कि हवा तो धक्का देती है तब पता भी चलता है, लेकिन आकाश का आपको कोई पता नहीं चलता। क्योंकि वह धक्का भी नहीं देता। तो आपकी चेतना में जो विचार उड़ते रहते हैं उनका पता चलता है और चेतना का कोई पता नहीं चलता, क्योंकि उसका कोई धक्का नहीं है। दो उपाय हैं। या तो आप इन विचारों से बचना चाहें तो इस खपड़े के बीच से जो छेद हो गया है इसे बन्द कर दें, आपको विचार दिखाई नहीं पड़ेगा। नींद में यही होता है। चेतना की जो थोड़ी-सी धारा आपको दिखाई पड़ती थी जागने में, आप उसको भी बन्द करके सो जाते हैं। फिर आपको कुछ नहीं दिखाई पड़ता। सब बन्द हो जाता है।

गहरी बेहोशी में भी यही होता है। हिप्नोसिस, सम्मोहन में भी यही होता है। इसलिए विचार से जो लोग पीड़ित रहते हैं, वे लोग अनेक बार आत्म-सम्मोहन की क्रियाएँ करने लगते हैं और आत्म-सम्मोहन को ध्यान समझ लेते हैं। वह ध्यान नहीं है, वह स्वयं अपनी चेतना को बुझा देना है, अँधेरे में डूब जाना है। उसका भी सुख है। शराब में उसी तरह का सुख मिलता है, गाँजा में, अफीम में उसी तरह का सुख मिलता है। चेतना की जो छोटी-सी धारा बह रही थी वह भी बन्द हो गयी, घुप्प अँधेरे में खो गये। बड़ी शान्ति दिखाई पड़ती है। प्रकाश की किरण में अशान्ति मालूम पड़ती थी। महावीर का ध्यान ऐसा नहीं है, जिसमें प्रकाश की किरण को बुझा देना है। महावीर का ध्यान ऐसा है जिसमें सारे खपड़ों को अलग कर देना है, पूरे छप्पर को खुला छोड़ देना है, ताकि पूरे कमरे में प्रकाश भर आये।

(६) पृष्ठभूमि की जरूरत क्यों?

यह भी बड़े मजे की बात है, जब पूरे कमरे में प्रकाश भर जाता है, तब भी धूल-कण दिखायी पड़ना बन्द हो जाते हैं। जब पूरे कमरे में प्रकाश

भर जाता है, तब भी धूल-कण नहीं दिखायी पड़ते। जब पूरे कमरे में अँधेरा हो जाता है तब भी धूल-कण नहीं दिखायी पड़ते। जब पूरे कमरे में अँधेरा होता है और जरा से स्थान में रोशनी होती है तब धूल-कण दिखायी पड़ते हैं। असल में धूल-कणों को दिखायी पड़ने के लिए प्रकाश की धारा भी चाहिए और अँधेरे की पृष्ठ-भूमि भी चाहिए। दो उपाय हैं इन कणों को भूल जाने के। एक उपाय तो है कि पूरा अंधेरा हो जाये तो इसलिए नहीं दिखायी पड़ते हैं, क्योंकि प्रकाश ही नहीं है। दिखायी कैसे पड़ेगा ? या पूरा प्रकाश हो जाये तो भी नहीं दिखायी पड़ते। क्योंकि इतना ज्यादा प्रकाश है कि इतने छोटे से धूल-कण दिखायी नहीं पड़ सकते। पृष्ठ-भूमि नहीं होने से धूल-कण खो जाते हैं। तो पहले तो यह फर्क समझ लें कि बहुत से प्रयोग हैं ध्यान के, जो वस्तुतः मूर्च्छा के प्रयोग हैं, ध्यान के प्रयोग नहीं हैं। उनमें आदमी अपनी चेतना को डुबा देता है और वह गहरी नींद में चला जाता है। उठने के बाद उसे शांति भी मालूम पड़ेगी, स्वच्छ भी मालूम पड़ेगा, ताजा भी मालूम पड़ेगा। लेकिन वे उपाय सिर्फ चेतना को डुबाने के थे। उनसे कोई क्रान्ति घटित नहीं होती।

(१०) ट्रांसेंडेण्टल मेडिटेशन या पुनरुक्ति की ऊब !

महेश योगी जिस ध्यान की बात सारी दुनिया में करते हैं, वह सिर्फ मूर्च्छा का प्रयोग है। जिसे वे ट्रांसेंडेण्टल मेडिटेशन कहते हैं, भावातीत ध्यान कहते हैं, वह ध्यान भी नहीं है और भावातीत तो बिल्कुल नहीं है। न तो ट्रांसेंडेण्टल है, न मेडिटेशन है। ध्यान इसलिए नहीं है कि वह केवल एक मन्त्र के जप से स्वयं को सुला लेने का प्रयोग है। और किसी भी शब्द की पुनरुक्ति अगर आप करते जायें तो तन्द्रा आ जाती है, हाँ किसी भी शब्द की पुनरुक्ति से तन्द्रा पैदा होती है, हिप्नोसिस पैदा होती है। असल में किसी भी शब्द की पुनरुक्ति से बोर्डम पैदा होती है, ऊब पैदा होती है। ऊब नींद ले आती है। तो किसी भी मन्त्र का अगर आप इस तरह प्रयोग करें कि वह आपको ऊब दे जाय, उबा दे, घबड़ा दे, नवीनता न रह जाय उसमें, तो मन ऊब कर पुराने से परेशान होकर तन्द्रा में और निद्रा में खो जाता है। जिन लोगों को नींद की तकलीफ है उन लोगों के लिए यह प्रयोग फायदे का है। लेकिन न तो यह ध्यान है, न भावातीत है। नींद की बहुत लोगों को तकलीफ है। उनके लिए यह प्रयोग फायदा करता है।

लेकिन उस फायदे से ध्यान का कोई सम्बन्ध नहीं है। वह फायदा गहरी नींद का ही फायदा है। गहरी नींद अच्छी चीज है, बुरी चीज नहीं है। इसलिए मैं यह नहीं कह रहा हूं कि महेश योगी जो कहते हैं, वह बुरी चीज है। बड़ी अच्छी चीज है, लेकिन उसका उपयोग उतना ही है जितना किसी भी ट्रैंक्विलाइजर का होता है। यह ट्रैंक्विलाइजर फिर भी अच्छा है, क्योंकि किसी दवा पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है। भीतरी तरकीब है। इसलिए पूरब में महेश योगी का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, पश्चिम में बहुत पड़ा। क्योंकि पश्चिम अनिद्रा से पीड़ित है, पूरब अभी पीड़ित नहीं है। उसका बुनियादी कारण वही है। पश्चिम अनिद्रा रोग से परेशान है। नींद बड़ी मुश्किल हो गयी है। इसलिए उस प्रयोग से पश्चिम में एक सुख का अनुभव हो रहा है। क्योंकि उसे पाना मुश्किल हो गया है। पूरब में नींद कोई सवाल नहीं है अभी भी। हां, पूरब जितना ही पश्चिम होता जायेगा, उतना ही नींद का सवाल उठता जायेगा। तो पश्चिम में जो लोग महेशयोगी के पास आये, वे असल में नींद की तकलीफ से परेशान लोग हैं, सो भी नहीं सकते। वे वह तरकीब भी भूल गये कि जो प्राकृतिक तरकीब थी, नेचरल प्रासेस थी सोने की। उनको आर्टिफीशियल टेकनिक की जरूरत थी ताकि वे सो सकें। लेकिन दो-तीन महीने से ज्यादा कोई उनके पास नहीं रहेगा। भाग जायेगा। क्योंकि जहां उसे नींद आने लगी तो बात खत्म हो गयी। तब वह कहेगा, ध्यान चाहिए। नींद तो हो गयी, ठीक है। लेकिन अब? आगे? वही आगे खींचना मुश्किल है, क्योंकि वह प्रयोग कुल जमा नींद का है।

(११) ध्यान की दो पद्धतियां

महावीर मूर्च्छा-विरोधी थे। इसलिए महावीर ने ऐसी किसी भी पद्धति की सलाह नहीं दी, जिससे मूर्च्छा आने की जरा भी संभावना हो। यह महावीर की और भारत की दूसरी पद्धतियों का भेद है। भारत में दो पद्धतियां रही हैं। कहना चाहिये सारे जगत् में दो ही पद्धतियां हैं ध्यान की। मूलतः दो तरह की पद्धतियां हैं। एक पद्धति को हम ब्राह्मण पद्धति कहें और एक पद्धति को हम श्रवण पद्धति कहें। महावीर की जो पद्धति है उसका नाम श्रवण पद्धति है। दूसरी जो पद्धति है वह ब्राह्मण पद्धति है। ब्राह्मण पद्धति विश्राम की पद्धति है। वह इस बात की पद्धति है जिसे हम कहें—रिलैक्सेशन। महावीर ने किसी ब्राह्मण पद्धति की सलाह नहीं दी। उन्होंने कहा है कि विश्राम में

बहुत तो डर यही है, बल्कि सौ में निन्यानबे मौके पर डर यही है कि आप नींद में चले जाते हैं। क्योंकि विश्राम और नींद का गहरा अन्तर-संबंध है। आपके जन्मों-जन्मों का एक ही अनुभव है कि जब भी आप विश्राम किये होते हैं, आप नींद में गये होते हैं। तो आपके चित्त की एक संस्कारित व्यवस्था है कि जब भी आप विश्राम करेंगे, नींद आ जायेगी। इसलिए जिनको नींद नहीं आती है, उनको डॉक्टर सलाह देते हैं रिलैक्सेशन की, शिथिलीकरण की, शवासन की कि तुम विश्राम करो, शिथिल हो जाओ तो नींद आ जायेगी। इससे उल्टा भी सही है कि अगर कोई विश्राम में जाये तो बहुत डर यह है कि वह नींद में चला जाये। इसलिए जिसे ध्यान में जाना है, उसे बहुत दूसरी और प्रक्रियाओं का सहारा लेना पड़ेगा, जिनसे नींद रुकती हो; अन्यथा विश्राम नींद बन जाती है।

(१२) महावीर का ध्यान श्रम पर आधारित है

महावीर ने उन पद्धतियों का उपयोग नहीं किया है। महावीर ने जिन पद्धतियों का उपयोग किया है, वे विश्राम से उल्टी हैं। इसलिए उनकी पद्धति का नाम है श्रम, श्रवण। वे कहते हैं कि श्रमपूर्वक ध्यान में जाना है, विश्राम-पूर्वक नहीं। और श्रमपूर्वक ध्यान में जाना बिल्कुल उल्टा है विश्रामपूर्वक ध्यान में जाने के। अगर किसी आदमी से हम कहते हैं कि विश्राम करो तो हम कहते हैं हाथ पैर ढीले छोड़ दो, सुस्त हो जाओ, शिथिल हो जाओ, ऐसे हो जाओ जैसे मुर्दा हो गये। श्रम की जो पद्धति है वह कहेगा इतना तनाव पैदा करो, इतना टेंशन पैदा करो जितना कि तुम कर सकते हो। जितना तनाव पैदा कर सको, उतना अच्छा है। अपने को इतना खींचो, इतना खींचो जैसे कि कोई वीणा के तार को खींचता चला जाये और टंकार पर छोड़ दे। तो खींचते चले जाओ, खींचते चले जाओ, तीव्रतम स्वर तक अपने तनाव को खींच दो। निश्चित ही एक सीमा आती है कि अगर आप सितार के तार को खींचते जायें तो तार टूट जायेगा। लेकिन चेतना के टूटने का कोई उपाय नहीं है। वह टूटती ही नहीं। इसलिए महावीर कहते हैं, खींचते चले जाओ। एक सीमा आयेगी जहाँ तार टूट जाता, लेकिन चेतना नहीं टूटती। लेकिन चेतना भी अपनी अति पर आ जाती है, क्लाइमेक्स पर आ जाती है, चरम पर आ जाती है और अनजाने, तुम्हारे बिना जाने विश्राम को उपलब्ध हो जाती है। मैं अपने हाथ की मुट्ठी को बन्द करता जाऊँ, बन्द करता जाऊँ, जितनी मेरी

ताकत है सारी ताकत लगाकर बन्द करता जाऊँ, तो एक घड़ी आयेगी कि मेरी ताकत चरम पर पहुँच जायेगी। अचानक मैं पाऊँगा कि मुट्ठी ने खुलना शुरू कर दिया है, क्योंकि मेरे पास अब बन्द करने की और ताकत नहीं है। मुट्ठी को बन्द करके भी खोलने का उपाय है। और ध्यान रहे कि अगर मुट्ठी को बन्द करके खोला जाये, तब जो विश्राम उपलब्ध होता है, वह बहुत अनूठा होता है। वह नींद में कभी नहीं ले जाता। वह सीधा विश्राम में ले जाता है। इसलिए कहा कि सौ में निन्यानवे संभावना विश्राम में जाने की है। नींद में जाने की नहीं है। क्योंकि आदमी ने इतना श्रम किया है, इतना खींचा है, इतना ताना है कि इस तनाव के लिए उसे इतने जागरण में जाना पड़ेगा कि वह उस जागरण से एकदम नींद में नहीं जा सकता है, विश्राम में चला जाता है।

(१३) पागल हो जाने का खतरा न लें!

महावीर की पद्धति श्रम की पद्धति है, चित्त को तनाव पर ले जाना है। तनाव दो तरह का हो सकता है। तनाव के लिए महावीर कहते हैं कि वह गलत ध्यान है। ठीक ध्यान के लिए कुछ प्रारंभिक बातें है। उनके बिना इस ध्यान में नहीं उतरा जा सकता है। उसके बिना उतरियेगा तो विक्षिप्त हो सकते हैं। एक तो ये दस सूत्र जो मैंने कल तक कहे हैं, अनिवार्य हैं। उनके बिना इस प्रयोग को नहीं किया जा सकता। क्योंकि उन दस सूत्रों के प्रयोग से आपके व्यक्तित्व में वह स्थिति, वह ऊर्जा और वह शक्ति आ जाती है, जिनसे आप चरम तक अपने को तनाव में ले जाते हैं। इतनी सामर्थ्य और क्षमता आ जाती है कि आप विक्षिप्त नहीं हो सकते। अन्यथा अगर कोई महावीर के ध्यान को सीधा शुरू करे, तो वह विक्षिप्त हो सकता है, पागल वह हो सकता है। इसलिए भूलकर भी इस प्रयोग को सीधा नहीं करना। वे पहले के दस हिस्से अनिवार्य हैं और प्राथमिक भूमिकाएँ हैं ध्यान की, वह मैं आपसे स्पष्ट कह रहा हूँ।

(१४) रान हुब्बार्ड की सायन्टोलाजी और ध्यान-प्रक्रिया

पश्चिम में एक बहुत विचारशील वैज्ञानिक ध्यान पर काम करता रहा है। उसका नाम है रान हुब्बार्ड। उसने एक नये विज्ञान का जन्म दिया है। उसका नाम है सायंटोलाजी। ध्यान की उसने जो-जो बातें खोजी हैं, वे महावीर

से बड़ी मेल खाती हैं। इस समय पृथ्वी पर महावीर के ध्यान को निकटतम कोई आदमी समझ सका है, तो आदमी हुब्बार्ड है। जैनों को तो उसके नाम का भी पता नहीं होगा। जैन साधुओं में तो, मैंने पूरे मुल्क में घूमकर देखा है, एक आदमी भी नहीं है, जो महावीर के ध्यान को समझ सकता हो, करने की बात तो बहुत दूर है। प्रवचन वे करते हैं रोज, लेकिन मैं चकित हुआ कि पाँच-पाँच सौ, सात-सात सौ साधुओं के गण का जो गणी हो, प्रमुख हो, आचार्य हो, वह भी एकान्त में पूछता है कि ध्यान कैसे करूँ? तब उन सात सौ साधुओं को क्या करवाया जा रहा होगा, जबकि उनका गुरु पूछता है कि ध्यान कैसे करें? निश्चित ही यह गुरु एकान्त में पूछता है। उतना भी साहस नहीं है कि चार लोगों के सामने पूछ सके।

हुब्बार्ड ने तीन शब्दों का प्रयोग किया है ध्यान की प्राथमिक प्रक्रिया में प्रवेश के लिए। वे तीनों शब्द महावीर के हैं। हुब्बार्ड को महावीर के शब्दों का कोई पता नहीं है। उसने तो अंग्रेजी में प्रयोग किया है। उसका एक शब्द है रिमेम्बरिंग, दूसरा शब्द है रिटर्निंग और तीसरा शब्द है रि-लिविंग। ये तीनों शब्द महावीर के हैं। रिटर्निंग से आप अच्छी तरह परिचित हैं—प्रतिक्रमण। रि-लिविंग से आप उतने परिचित नहीं हैं। महावीर का शब्द है जाति-स्मरण, पुनः जीना, उसको जो जिया जा चुका है। और रिमेम्बरिंग जिसे महावीर और बुद्ध दोनों ने स्मृति कहा है। वही शब्द बिगड़-बिगड़ कर कबीर और नानक के पास आते-आते सुरति हो गया। शब्द वही है—स्मृति।

रिमेम्बरिंग से, स्मृति से हम सब परिचित हैं। सुबह आपने भोजन किया था। आपको याद है। लेकिन स्मृति सदा आन्शिक होती है। क्योंकि जब आप भोजन की याद करते हैं साँझ को, कि सुबह आपने भोजन किया था, तो आप पूरी घटना को याद नहीं कर पाते। क्योंकि भोजन करते वक्त बहुत कुछ घट रहा था। चौके में बर्तन की आवाज आ रही थी, भोजन की सुगंध आ रही थी, पत्नी आस-पास घूम रही थी, उसकी दुश्मनी आपके आस-पास घूम रही थी। बच्चे उपद्रव कर रहे थे, उनका उपद्रव आपको मालूम पड़ रहा था, गर्मी थी कि सर्दी थी वह आपको छू रही थी, हवाओं के झोंके आ रहे थे या नहीं आ रहे थे—वह सारी स्थिति थी। भीतर भी आपको भूख कितनी लगी थी, मन में कौन से विचार चल रहे थे, कहाँ भागने के लिए आप तैयारी कर रहे थे, यहाँ खाना खा रहे थे लेकिन मन कहाँ जा चुका था, यह टोटल सिचुएशन थी।

(१५) आप प्याज और सेव का फर्क कैसे जानते हैं ?

जब आप शाम को याद करते हैं तो सिर्फ इतनी ही करते हैं कि सुबह बारह बजे भोजन किया है। यह आंशिक है। जब आप भोजन करते होते हैं तो भोजन की सुगन्ध भी होती है, स्वाद भी होता है। आपको पता नहीं होगा कि अगर आपकी नाक और आँख बिल्कुल बन्द कर दी जायें तो आप प्याज में और सेव में कोई फर्क नहीं बता सकेंगे कि स्वाद क्या है। आँख पर पट्टी बांध दी जाये और नाक पर पट्टी बांध दी जाये और बन्द कर दिया जाये और कहा जाये कि आपके ओंठ पर क्या रखा है इसे आप चखकर बताइये, तो आप प्याज में और सेव में फर्क न बता सकेंगे। क्योंकि प्याज और सेव का असली फर्क आपको स्वाद से नहीं पता चलता है, गन्ध से चलता है और आँख से चलता है। स्वाद से पता नहीं चलता आपको। बहुत सी घटनाएँ भोजन की टोटल सिचुएशन में हैं, वे आपको याद नहीं आतीं। आन्शिक याद हैं कि बारह बजे भोजन किया। जिसे रिटनिंग कहते हैं, जो दूसरा प्रतिक्रमण है, उसका अर्थ है पूरी की पूरी स्थिति को याद कर लें। लेकिन पूरी स्थिति को भी याद करने में आप बाहर बने रहते हैं। रिटर्निग का अर्थ है पूरी स्थिति को पुनः जीना।

(१६) रात सोते समय प्रयोग करें

अगर महावीर के ध्यान में जाना है, तो रात सोते समय एक प्राथमिक प्रयोग अनिवार्य है। सोते समय करीब-करीब वैसी ही घटना घटती है जैसा बहुत बड़े पैमाने पर मृत्यु के समय घटती है। आपने सुना होगा कि कभी पानी में डूब जाने वाले लोग एक क्षण में अपने पूरे जीवन को रि-लिव कर लेते हैं। कभी-कभी पानी में डूबा हुआ कोई आदमी बच जाता है तो वह कहता है कि जब मैं डूब रहा था और मरना बिल्कुल निश्चित हो गया, तो एक क्षण में जैसे पूरी जिन्दगी की फिल्म मेरे सामने से गुजर गयी, पूरी जिन्दगी की फिल्म एक क्षण में मैंने देख डाली। और ऐसी नहीं कि स्मरण हो, बल्कि इस तरह देखी जैसे कि मैंने फिर से जी लिया। मृत्यु के क्षण में, आकस्मिक मृत्यु के क्षण में, जबकि मृत्यु आसन्न मालूम पड़ती है, आ गयी मालूम पड़ती है, बचने का कोई उपाय नहीं रह जाता है और मृत्यु साथ होती है, तब ऐसी घटना घटती है। महावीर के ध्यान में अगर

उतरना हो तो ऐसी घटना नींद के पहले नित्य घटनी चाहिए। जब रात सोने लगें और नींद करीब आने लगे तो—रि-लीव। स्मृति से शुरू करना पड़ेगा। सुबह से लेकर साँझ सोने तक का स्मरण करें।

(१७) स्मरण से प्रतिक्रमण की ओर

एक महीने गहरा प्रयोग किया जाये तो आपको पता चलेगा कि स्मृति धीरे-धीरे प्रतिक्रमण बन गयी। अब पूरी स्थिति याद आने लगी। और भी तीन महीने प्रयोग किया जाये प्रतिक्रमण पर, तो आप पायेंगे कि अब प्रतिक्रमण पुनर्जीवन बन गया। अब आप रि-लिविंग करने लगे। कोई नौ महीने के प्रयोग में आप पायेंगे कि सुबह से लेकर शाम तक को फिर से जी सकते हैं, दुबारा। जरा भी फर्क नहीं होगा। और बड़े मजे की बात यह है कि एक बार जब आप जियेंगे तो यह ज्यादा जीवन हो जायेगा, बजाय उसके कि जो आप दिन में जिये थे। क्योंकि उस वक्त और भी पच्चीस उलझाव थे। अब कोई उलझाव नहीं है। हुब्बार्ड कहता है कि यह ट्रैक पर वापस लौटकर फिर से यात्रा करनी है, उल्टी ट्रैक (दिशा) पर। जैसे कि टेप रिकार्ड को आपने सुन लिया दस मिनट, उल्टा लौटा कर फिर दस मिनट वही सुना। या फिल्म आपने देखी, फिर से फिल्म देखी और मन की ट्रैक पर कुछ भी खोता नहीं। मन के पथ पर सब सुरक्षित है, खोता नहीं है।

अगर महावीर के ध्यान में, सामायिक में प्रवेश करना हो, तो कोई नौ महीने का समय—तीन-तीन महीने एक-एक प्रयोग पर—बिताना जरूरी है। आप स्मरण करना शुरू करें, पूरी तरह स्मरण करें कि सुबह से शाम तक क्या हुआ, फिर प्रतिक्रमण करें। पूरी स्थिति को याद करें कि किस-किस घटना में कौन-कौन सी पूरी स्थिति थी। आप बहुत हैरान होंगे और आपकी सम्वेदनशीलता बहुत बढ़ जायेगी। आप बहुत सेंसिटिव हो जायेंगे। और दूसरे दिन आपके जीने का रस भी बहुत बढ़ जायेगा। क्योंकि दूसरे दिन धीरे-धीरे आप बहुत-सी चीजों के प्रति जागरूक हो जायेंगे, जिनके प्रति आप कभी जागरूक न थे। जब आप भोजन कर रहे थे, तब बाहर वर्षा भी हो रही थी, उसकी बूंदों की टाप भी आती थी। कान सुन रहे थे, लेकिन आप इतने सम्वेदनहीन हैं कि आपके भोजन में वह बूंदों का स्वर जुड़ नहीं पाता है। तब बाहर की जमीन पर पड़ी हुई नयी बूंदों की गन्ध भी आ रही थी, लेकिन आप

इतने सम्वेदनहीन हैं कि वह गन्ध आपके भोजन में मिल-जुल नहीं पाती है। तव खिड़की में फूल भी खिले थे, लेकिन फूलों का सौन्दर्य आपके भोजन में संयुक्त नहीं हो पाता है। आप सम्वेदनहीन हैं, इन्सेंसिटिव हो गये हैं। अगर आप प्रतिक्रमण की पूरी यात्रा करते हैं तो आपके जीवन में सौन्दर्य के और रस के अनुभव का एक नया आयाम खुलना शुरू हो जायेगा। पूरी घटना आपको जीने में मिलेगी। और जब भी पूरी घटना जी जाती है, जब भी पूरी घटना होती है, तो आप इस घटना को दोवारा जीने की आकांक्षा से मुक्त होने लगते हैं और वासना क्षीण होती है।

अगर कोई व्यक्ति एक वार भी किसी घटना से परिपूर्णतया वीत जाये, गुजर जाये तो उसकी इच्छा उसे रिपीट करने की, दोहराने की फिर नहीं होती। तो अतीत से छुटकारा होता है और भविष्य से भी छुटकारा होता है। प्रतिक्रमण भविष्य और अतीत से छुटकारे की विधि है। फिर इस प्रतिक्रमण को इतना गहरा करते जायें कि एक घड़ी ऐसी आ जाये कि अव आप याद न करें, रि-लिव करें, पुनर्जीवित करें, उस घटना को फिर से जियें और आप हैरान होंगे यह पाकर कि वह घटना फिर से जियी जा सकती है।

(१८) पूरे दिन का पुनर्जीवन

और जिस दिन आप उस घटना को फिर से जीने में समर्थ हो जायेंगे उस दिन रात सपने बन्द हो जायेंगे। क्योंकि सपने में आप वही घटनाएँ फिर से जीने की कोशिश करते हैं, और तो कुछ नहीं करते। अगर आपने रात सोने से पहले होशपूर्वक पूरे दिन को पूरा जी लिया है, तो आपने निपटारा कर दिया है, क्लोज्ड हो गया है चैप्टर। अव कुछ याद करने की जरूरत न रही, पुनः जीने की जरूरत न रही। जो-जो छूट गया था, वह-वह फिर से जी लिया गया। जो-जो रस अधूरा रह गया था, वह पूरा कर लिया। जिस दिन आदमी रि-लिव कर लेता है, उस दिन रात सपने विदा हो जाते हैं। और निद्रा जितनी गहरी हो जाती है, सुवह जागरण उतना अगाढ़ हो जाता है। स्वप्न जो विदा हो जाते हैं नींद में, तो दिन में विचार कम हो जाते हैं। ये सव संयुक्त घटनाएं हैं। जव रात स्वप्न-रहित हो जाती है तो दिन विचार-शून्य होने लगता है, विचाररिक्त होने लगता है। इसका यह मतलव नहीं है कि आप फिर विचार नहीं कर सकते। इसका यह मतलव होता है कि फिर आप विचार कर सकते हैं। लेकिन करना जरूरी नहीं रह जाता है कि करें ही। अभी

तो आपको मजबूरी में करना पड़ता है। आप चाहें भी कि नहीं करें, तो भी करना पड़ता है। और जिस विचार को आप चाहते हैं कि न करें, उसे और भी करना पड़ता है। अभी आ बिल्कुल गुलाम है। अभी मन आपकी मानता नहीं।

(१६) विक्षिप्तता की मात्राएँ

महावीर से अगर पूछो तो कहेंगे विक्षिप्त का यही लक्षण है, जिसका मन उसकी नहीं मानता। तो हम सब में उस पागलपन की मात्राएँ हैं। किसी का मन जरा कम मानता है, किसी का जरा ज्यादा मानता है। किसी का थोड़ा और ज्यादा मानता है। कोई वही काम अपने भीतर ही भीतर करता रहता है, कोई जरा बाहर करने लगता है। बस इतनी ही, मात्राओं के फर्क हैं, डिग्रीज़ आफ मैडनेस हैं। क्योंकि जब तक ध्यान न उपलब्ध हो तब तक आप विक्षिप्त होंगे ही। ध्यान का अभाव विक्षिप्तता है। ध्यान को उपलब्ध व्यक्ति के सपने शून्य हो जाते हैं। ऐसी हो जाती है उसकी रात, जैसे प्रकाश की वल्लरी में धूल के कण न रह गये। वह सुबह उठता है·····सच पूछिए तो वही आदमी सुबह उठता है, जिसने रात स्वप्न नहीं देखे। नहीं तो सिर्फ नींद की एक पर्त टूटती है और सपने भीतर दिन भर चलते रहते हैं। कभी भी आंख बन्द करिए, स्वप्न शुरू हो जाते हैं। सपना भीतर चलता ही रहता है। सिर्फ ऊपर की एक पर्त जाग जाती है। काम चलाऊ है वह पर्त। उसमें आप सड़क पर बचकर निकल जाते हैं, उसमें आप अपने दफ्तर पहुंच जाते, उसमें अपने आप काम कर लेते हैं आपकी आदत या आपका रोबोट यानी आपके भीतर जो यंत्र बन गया है, वह कर लेता है। इतना होश है बस। इसे महावीर होश नहीं कहते हैं।

रात जब स्वप्न पूरी तरह समाप्त हो जाते हैं, तब सुबह आप ऐसे उठते हैं कि उस उठने का आपको भी पता नहीं है कि उस उठने में कितना फर्क है। जैसे किसी ने एक मिट्टी के तेल में जलती हुई बाती देखी हो—पीला, धुंधले धुएँ से भरा हुआ प्रकाश। और फिर उस आदमी ने पहली दफे सूरज का जागना देखा हो, सूरज का ऊगना देखा हो; इतना ही फर्क है। अभी जिसे आप जागना कहते हैं वह ऐसी ही मद्दी-सी, मैली-सी, धीमी-सी लौ है। लेकिन जब रात स्वप्न समाप्त हो जाते हैं, तब आप सुबह ऐसे उठते हैं, जैसे सूरज जगा है। उस जागी हुई चेतना में विचार आपके गुलाम हो जाते हैं, मालिक

नहीं होते। महावीर कहते हैं, जब तक विचार मालिक है तब तक ध्यान कैसे हो पायेगा? विचार की मालकियत आपकी होनी चाहिए, तब ध्यान हो सकता है। तब आप जब चाहें तब विचार करें, जब चाहें तब न करें।

(२०) जागने के समय का प्रयोग

तो नींद के साथ दूसरा प्रयोग सुबह जागने के समय है। जैसे ही जागें, वैसे ही प्रतीक्षा करें उठकर कि जब पहला विचार आता है, उस पहले विचार को पकड़ें कि कब आता है। धीरे-धीरे आप हैरान होंगे, बहुत हैरान होंगे कि जितना आप जागकर पहले विचार को पकड़ने की कोशिश करते हैं, वह उतनी ही देर से आता है। कभी घंटों लग जायेंगे और पहला विचार नहीं आयेगा। और यह एक घण्टा विचार-रहित आपकी चेतना को शीर्षासन से सीधा खड़ा करने में सहयोगी बनेगा। आप पैर के बल खड़े हो सकेंगे। क्योंकि घंटा भर बहुत दूर की बात है, अगर एक मिनट के लिए भी कोई विचार नहीं आये तो आपको यह अनुभव होना शुरू हो जायेगा कि विचार नर्क है, और निर्विचार होना आनन्द है, स्वर्ग है। एक मिनट को भी विचार न आये, तो आपको अपने भीतर विचार के अतिरिक्त जो है, उसका दर्शन शुरू हो जायेगा। तब धूल नहीं दिखायी पड़ेगी, प्रकाश की बल्लरी दिखायी पड़ेगी। तब आपका गेस्टाल्ट बदल जायेगा।

(२१) गेस्टाल्ट के चित्र और ध्यान का प्रयोग

अगर आपने कभी कोई गेस्टाल्ट चित्र देखे हैं, तो इसे आप समझ पायेंगे। मनोविज्ञान की किताबों में गेस्टाल्ट के चित्र दिये होते हैं। एक चित्र आप में से बहुत लोगों ने देखा होगा। नहीं देखा होगा तो देखना चाहिए। एक बूढ़ी स्त्री का चित्र बना होता है। बहुत से गेस्टाल्ट चित्र होते हैं, उनमें एक बूढ़ी का चित्र बना होता है। आप उसको गौर से देखें तो बूढ़ी दिखायी पड़ती है। फिर आप देखते ही रहें। देखते ही रहें, देखते ही रहें। अचानक आप पाते हैं कि चित्र बदल गया। और एक जवान स्त्री दिखायी पड़नी शुरू हो गयी। वह भी उन्हीं रेखाओं में छिपी हुई है। लेकिन एक बड़े मजे की बात होगी, जब तक आपको बूढ़ी का चित्र दिखायी पड़ेगा, तब तक जवान स्त्री का चित्र नहीं दिखायी पड़ेगा। दोनों आप एक साथ नहीं देख सकते। यह गेस्टाल्ट का मतलब है।

गेस्टाल्ट का मतलब है कि पैटर्न हैं देखने के, लेकिन विपरीत पैटर्न एक साथ नहीं देखे जा सकते। एक जवान स्त्री दिखायी पड़ेगी, तो बूढ़ी खो जायेगी। चित्र वही है, रेखाएँ वही हैं, आप वही हैं, कुछ बदला नहीं है, लेकिन आपका ध्यान बदल गया है। आप बूढ़ी को देखते-देखते ऊब गये, परेशान हो गये। ध्यान ने एक परिवर्तन ले लिया, उसने कुछ नया देखना शुरू किया। क्योंकि ध्यान सदा नया देखना चाहता है। अब वह जवान स्त्री, जो अभी तक आपको नहीं दिखायी पड़ती थी, वह दिखायी पड़ गयी। अब मजा यह होगा कि आप दोनों को एक साथ नहीं देख सकते हैं, साइमल्टेनियसली, युगपत् नहीं देख सकते हैं। पहले तो आपको पता भी नहीं था कि इसमें एक जवान चेहरा भी छिपा हुआ है। अब आपको पता है कि दोनों चेहरे छिपे हैं; लेकिन अब भी आप दोनों नहीं देख सकते। अब भी जब तक आप जवान चेहरा देखते रहेंगे, बूढ़ी का कोई पता नहीं चलेगा। जब आप बूढ़ी को देखना शुरू करेंगे, जवान चेहरा खो जायेगा। गेस्टाल्ट है यह।

चेतना विपरीत को एक साथ नहीं देख सकती। जब तक आप धूल के कण देख रहे हैं, तब तक आप प्रकाश की वल्लरी नहीं देख सकते। और जब प्रकाश की वल्लरी देखने लगेंगे तब धूल के कण नहीं देख सकते। जब तक आप विचार को देख रहे हैं, तब तक आप चेतना को नहीं देख सकते। जब आप विचार को नहीं देखेंगे, तब आप चेतना को देखेंगे। और चेतना को एक दफा जो देख ले, उसके जीवन की सारी की सारी रूप-रेखा बदल जाती है। अभी हमारी सारी रूप-रेखा विचार से निर्धारित होती है, धूल-कण से। फिर हमारी सारी चेतना प्रकाश से निर्धारित होती है। फिर भी आप दोनों चीजों को एक साथ नहीं देख सकेंगे। जब आप विचार देखेंगे, तब चेतना भूल जायेगी। जब आप चेतना देखेंगे तब विचार भूल जायेंगे। लेकिन फिर आपको चाहे जवान चेहरा दिखायी पड़ रहा हो, किन्तु आपको याद तो रहेगा ही कि बूढ़ा चेहरा छिपा हुआ है। आप बूढ़ा चेहरा देख रहे हों, तब भी आपको याद रहेगा कि जवान चेहरा भी कहीं मौजूद है, सोया हुआ है, छिपा हुआ है, अप्रकट है। जिस दिन कोई व्यक्ति निर्विचार हो जाता है, उस दिन चेतना पर उसका ध्यान जाता है। और एक बार चेतना पर ध्यान चला जाये तो फिर चेतना का विस्मरण नहीं होगा। चाहे आप विचार में लगे रहें, दूकान पर लगे रहें, बाजार में काम करते रहें, कुछ भी करते रहें; भीतर चेतना है—इसकी स्पष्ट प्रतीति बनी रहती है। बीमार हो जायें, रुग्ण हो जायें, दुखी हो जायें,

हाथ-पैर कट जायें, फिर भी चेतना है—इसकी स्पष्ट स्मृति बनी रहती है। और जब चाहें तब गेस्टाल्ट बदल सकते हैं। ऐक्सिडेन्ट हो रहा है और शरीर टूट कर गिर पड़ा है, पैर अलग हो गये हैं। जरूरी नहीं है कि आप पैर को देखकर दुखी हों। आप गेस्टाल्ट बदल सकते हैं। आप चेतना को देखने लगें, शरीर गया। तब शरीर को कोई दुःख नहीं होता। आप शरीर नहीं रहे। जब महावीर के कान में कीलियां ठोंकी जा रही थीं तो आप यह मत समझना कि महावीर आप ही जैसे शरीर थे। आप ही जैसे शरीर होते तो कीलियों का दर्द होता। महावीर का गेस्टाल्ट बदल जाता है। अब महावीर शरीर को नहीं देख रहे होते हैं, वे चेतना को देख रहे हैं। तब शरीर में कीलियाँ ठोंकी जा रही हों, तो भी वे ऐसी ही मालूम पड़ती हैं जैसे किसी और के शरीर में कीलियाँ ठोंकी जा रही हैं। जैसे कहीं और दूर, डिस्टेन्स पर कीलियाँ ठोंकी जा रही हैं। महावीर वहाँ से दूर हो गये। महावीर मर रहे हैं तो आप ही जैसे नहीं मर गये हैं, उनका गेस्टाल्ट और है। तब महावीर चेतना को देखते हैं, जो नहीं मरती।

(२२) जीसस और मंसूर के बदले हुए गेस्टाल्ट

जब जीसस सूली पर लटकाये जा रहे हैं तो उनका गेस्टाल्ट और है। जीसस उस शरीर को नहीं देख रहे हैं जो सूली पर लटकाया जा रहा है। जब मंसूर को काटा जा रहा है, तो उनका गेस्टाल्ट और है। मंसूर उस शरीर को नहीं देख रहा है जो काटा जा रहा। मंसूर हँस रहा है। जब कोई पूछता है कि मंसूर तुम काटे जा रहे हो और हँस रहे हो? तो मंसूर कहता है, मैं इसलिए हँसता हूं कि जिसे तुम काट रहे हो, वह मैं नहीं हूँ। और जो मैं हूँ तुम उसे छू भी नहीं पा रहे हो, तो मुझे हँसी आ रही है। तुम्हारी तलवारें मेरे आस-पास से गुजरती जा रही हैं, लेकिन तुम मुझे स्पर्श नहीं कर पाते हो। यह गेस्टाल्ट का परिवर्तन है। ध्यान का फोकस बदल गया हैं, वह कुछ और देख रहा है। तो रात्रि-विचार के लिए तीन प्रक्रियाएँ—सुबह पहले विचार की प्रतीक्षा की प्रक्रिया है और शेष सारे दिन साक्षी का भाव है, विटनेस है। जो भी हो रहा है मैं उसका साक्षी हूँ, कर्ता नहीं। भोजन कर रहे हैं तो दो चीजें रह जाती हैं। दो भी नहीं रह जाती हैं, भोजन रह जाता है।

अगर बुद्धिमान आदमी है तो दो चीजें होती हैं—भोजन होता है और भोजन करनेवाला होता है। बुद्धिमान से मेरा मतलब जो थोड़ा सोच समझकर

जीता है। जो बिल्कुल ही गैर सोचे-समझे जीता है उसके लिए भोजन ही रह जाता है। इसलिए वह ज्यादा भोजन कर जाता है, क्योंकि भोजन करनेवाला तो मौजूद नहीं था। कल उसने तय किया कि इतना भोजन नहीं करना है। पच्चीस दफे तय कर चुका है कि इतना ज्यादा भोजन नहीं करना है। इससे बीमारी पकड़ती है, रोग आ जाता है। रोग से दुखी होता है, तब कहता है भोजन इतना नहीं करना है। तय कर लिया। लेकिन कल जब भोजन करने बैठता है, तो ज्यादा भोजन कर जाता है। वही चीजें खा लेता है जो नहीं खानी थीं। क्यों? इसलिए कि करने वाला मौजूद ही नहीं रह जाता, सिर्फ भोजन ही रह जाता है। इसलिए भोजन को जितना करवाना है, करवा देता है।

(२३) तीसरे बिंदु पर बने रहने की कोशिश

जिसको हम थोड़ा बुद्धिमान आदमी कहेंगे, वह दोनों का होश रखता है। भोजन का भी, भोजन करने वाले का भी। लेकिन महावीर जिसे साक्षी कहते हैं वह तीसरे का होश है। वह होश इस बात का है कि न तो मैं भोजन हूँ और न मैं भोजन करने वाला हूँ। भोजन है, और भोजन करने वाला शरीर है। मैं दोनों से अलग हूँ। एक ट्रांएंगल का निर्माण है, एक त्रिकोण का, एक त्रिभुज का। तीसरे कोण पर मैं हूँ। इस तीसरे कोण पर, इस तीसरे बिंदु पर २४ घण्टे रहने की कोशिश साक्षी भाव है। कुछ भी हो रहा है तो तीन हिस्से सदा मौजूद हैं। और मैं तीसरा हूँ। मैं दो नहीं हूँ। ज्यादा भोजन कर लेने वाला एक ही कोण देखता है। अगर कहीं प्राकृतिक चिकित्सा के सम्बन्ध में जानकारी बढ़ गयी, तो दूसरा कोण भी देखने लगता है कि मैं ज्यादा करने वाला हूँ, न कर लूं। पहले भोजन से एकात्म हो जाता था, अब करने वाला शरीर से एकात्म हो जाता है। लेकिन साक्षी नहीं हो जाता। साक्षी तो तब होता है जब दोनों के पार तीसरा हो जाता है। और जब वह देखता है कि यह रहा भोजन, यह रहा शरीर, यह रहा मैं—और मैं सदा अलग हूँ।

इसलिए महावीर ने पृथकत्व या साक्षी भाव का प्रयोग किया है। उन्होंने पृथकत्व शब्द का प्रयोग किया है, अलगपन का। इसको महावीर ने कहा है भेद विज्ञान। दि साइंस आफ डिवीजन। महावीर का अपना शब्द है भेद विज्ञान। चीजों को अपने-अपने हिस्सों में तोड़ देना। भोजन वहाँ है, शरीर यहाँ है, मैं दोनों के पार हूँ—इतना भेद स्पष्ट हो जाये तो साक्षी भाव हो जाता है। तो

तीन बातें स्मरण रख। रात नींद के समय—स्मरण, प्रतिक्रमण, पुनर्जीवन। सुबह पहले विचार की प्रतीक्षा ताकि अन्तराल दिखयी पड़े और अन्तराल में गेस्टाल्ट बदल जाये। धूल-कण नहीं दिखाई पड़ें, प्रकाश की धारा स्मरण में आ जाये। और पूरे समय, २४ घण्टे उठते, बैठते, सोते तीसरे बिन्दु पर ध्यान में खड़े रहना—ये तीन बातें अगर पूरी हो जायें तो महावीर जिसे सामायिक कहते हैं वह फलित होती है। तब हम आत्मा में स्थिर होते हैं।

यह जो आत्मस्थिरता है यह कोई जड़, स्टैगनेन्ट बात नहीं है। असल में उसके लिए शब्द हमारे पास नहीं हैं। शब्द हमारे पास दो हैं—चलना और ठहर जाना। गति और अगति, डायनेमिक और स्टैगनेन्ट। तीसरा शब्द हमारे पास नहीं है। लेकिन महावीर जैसे लोग सदा ही जो बोलते हैं, वह तीसरे की बात है, 'दि थर्ड' की। और हमारी भाषा दो तरह के शब्द जानती है, तीसरे तरह का शब्द नहीं जानती। इसलिए महावीर जैसे लोगों के अनुभव को प्रकट करने के लिए दोनों शब्दों का एक साथ उपयोग करने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं है। यह पैराडॉक्सिकल हो जाता है। अगर हम ऐसा कह सकें, जिससे कोई अर्थ साफ होता हो—ऐसी अगति जो पूर्ण गति है, ऐसा ठहराव जहाँ कोई ठहराव नहीं है, मूवमेन्ट विदाउट मूवमेन्ट, तो शायद हम खबर दें पायें। हमारे शब्द दो के लिए हैं और महावीर जैसे व्यक्ति तीसरे बिन्दु से जीते हैं। और तीसरे बिन्दु की अब तक कोई भाषा नहीं पैदा हो सकी। शायद कभी हो भी नहीं सकेगी।

(२४) भाषा का द्वन्द्व और परिभाषा

नहीं हो सकेगी, इसलिए कि भाषा के लिए द्वन्द्व जरूरी है। आपको कभी ख्याल नहीं आता कि अगर आप डिक्शनरी में देखने जायें, तो वहाँ लिखा हुआ है—पदार्थ क्या है? जो मन नहीं है। और जब आप मन देखने जायें तो वहाँ लिखा है—मन क्या है? जो पदार्थ नहीं है। कैसा पागलपन है! न पदार्थ का कोई पता है, न मन का कोई पता है, लेकिन व्याख्या बन जाती है। दूसरे के इंकार करने से व्याख्या बना लेते हैं। अब यह कोई बात है कि पुरुष कौन है? जो स्त्री नहीं! स्त्री कौन है? जो पुरुष नहीं! यह कोई बात है? यह कोई डेफिनीशन हुई? यह कोई परिभाषा हुई? अन्धेरा वह है, जो प्रकाश नहीं! प्रकाश वह है, जो अन्धेरा नहीं! समझ में आता है कि बिल्कुल ठीक है,

जीता है। जो बिल्कुल ही गैर सोचे-समझे जीता है उसके लिए भोजन ही रह जाता है। इसलिए वह ज्यादा भोजन कर जाता है, क्योंकि भोजन करनेवाला तो मौजूद नहीं था। कल उसने तय किया कि इतना भोजन नहीं करना है। पच्चीस दफे तय कर चुका है कि इतना ज्यादा भोजन नहीं करना है। इससे बीमारी पकड़ती है, रोग आ जाता है। रोग से दुखी होता है, तब कहता है भोजन इतना नहीं करना है। तय कर लिया। लेकिन कल जब भोजन करने बैठता है, तो ज्यादा भोजन कर जाता है। वही चीजें खा लेता है जो नहीं खानी थीं। क्यों? इसलिए कि करने वाला मौजूद ही नहीं रह जाता, सिर्फ भोजन ही रह जाता है। इसलिए भोजन को जितना करवाना हैं, करवा देता है।

(२३) तीसरे बिंदु पर बने रहने की कोशिश

जिसको हम थोड़ा बुद्धिमान आदमी कहेंगे, वह दोनों का होश रखता है। भोजन का भी, भोजन करने वाले का भी। लेकिन महावीर जिसे साक्षी कहते हैं वह तीसरे का होश है। वह होश इस बात का है कि न तो मैं भोजन हूँ और न मैं भोजन करने वाला हूँ। भोजन है, और भोजन करने वाला शरीर है। मैं दोनों से अलग हूँ। एक ट्रांएंगल का निर्माण है, एक त्रिकोण का, एक त्रिभुज का। तीसरे कोण पर मैं हूं। इस तीसरे कोण पर, इस तीसरे बिंदु पर २४ घण्टे रहने की कोशिश साक्षी भाव है। कुछ भी हो रहा है तो तीन हिस्से सदा मौजूद हैं। और मैं तीसरा हूं। मैं दो नहीं हूं। ज्यादा भोजन कर लेने वाला एक ही कोण देखता है। अगर कहीं प्राकृतिक चिकित्सा के सम्बन्ध में जानकारी बढ़ गयी, तो दूसरा कोण भी देखने लगता है कि मैं ज्यादा करने वाला हूं, न कर लूं। पहले भोजन से एकात्म हो जाता था, अब करने वाला शरीर से एकात्म हो जाता है। लेकिन साक्षी नहीं हो जाता। साक्षी तो तब होता है जब दोनों के पार तीसरा हो जाता है। और जब वह देखता है कि यह रहा भोजन, यह रहा शरीर, यह रहा मैं—और मैं सदा अलग हूं।

इसलिए महावीर ने पृथकत्व या साक्षी भाव का प्रयोग किया है। उन्होंने पृथकत्व शब्द का प्रयोग किया है, अलगपन का। इसको महावीर ने कहा है भेद विज्ञान। दि साइंस आफ डिवीजन। महावीर का अपना शब्द है भेद विज्ञान। चीजों को अपने-अपने हिस्सों में तोड़ देना। भोजन वहां है, शरीर यहां है, मैं दोनों के पार हूं—इतना भेद स्पष्ट हो जाये तो साक्षी भाव हो जाता है। तो

तीन बातें स्मरण रख। रात नींद के समय—स्मरण, प्रतिक्रमण, पुनर्जीवन। सुबह पहले विचार की प्रतीक्षा ताकि अन्तराल दिखयी पड़े और अन्तराल में गेस्टाल्ट बदल जाये। धूल-कण नहीं दिखाई पड़ें, प्रकाश की धारा स्मरण में आ जाये। और पूरे समय, २४ घण्टे उठते, बैठते, सोते तीसरे बिन्दु पर ध्यान में खड़े रहना—ये तीन बातें अगर पूरी हो जायें तो महावीर जिसे सामायिक कहते हैं वह फलित होती है। तब हम आत्मा में स्थिर होते हैं।

यह जो आत्मस्थिरता है यह कोई जड़, स्टैगनेन्ट बात नहीं है। असल में उसके लिए शब्द हमारे पास नहीं हैं। शब्द हमारे पास दो हैं—चलना और ठहर जाना। गति और अगति, डायनेमिक और स्टैगनेन्ट। तीसरा शब्द हमारे पास नहीं है। लेकिन महावीर जैसे लोग सदा ही जो बोलते हैं, वह तीसरे की बात है, 'दि थर्ड' की। और हमारी भाषा दो तरह के शब्द जानती है, तीसरे तरह का शब्द नहीं जानती। इसलिए महावीर जैसे लोगों के अनुभव को प्रकट करने के लिए दोनों शब्दों का एक साथ उपयोग करने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं है। यह पैराडॉक्सिकल हो जाता है। अगर हम ऐसा कह सकें, जिससे कोई अर्थ साफ होता हो—ऐसी अगति जो पूर्ण गति है, ऐसा ठहराव जहाँ कोई ठहराव नहीं है, मूवमेन्ट विदाउट मूवमेन्ट, तो शायद हम खबर दें पायें। हमारे शब्द दो के लिए हैं और महावीर जैसे व्यक्ति तीसरे बिन्दु से जीते हैं। और तीसरे बिन्दु की अब तक कोई भाषा नहीं पैदा हो सकी। शायद कभी हो भी नहीं सकेगी।

(२४) भाषा का द्वन्द्व और परिभाषा

नहीं हो सकेगी, इसलिए कि भाषा के लिए द्वन्द्व जरूरी है। आपको कभी ख्याल नहीं आता कि अगर आप डिक्शनरी में देखने जायें, तो वहाँ लिखा हुआ है—पदार्थ क्या है? जो मन नहीं है। और जब आप मन देखने जायें तो वहाँ लिखा है—मन क्या है? जो पदार्थ नहीं है। कैसा पागलपन है! न पदार्थ का कोई पता है, न मन का कोई पता है, लेकिन व्याख्या बन जाती है। दूसरे के इंकार करने से व्याख्या बना लेते हैं। अब यह कोई बात है कि पुरुष कौन है? जो स्त्री नहीं! स्त्री कौन है? जो पुरुष नहीं! यह कोई बात है? यह कोई डेफिनीशन हुई? यह कोई परिभाषा हुई? अन्धेरा वह है, जो प्रकाश नहीं! प्रकाश वह है, जो अन्धेरा नहीं! समझ में आता है कि बिल्कुल ठीक है,

लेकिन बिल्कुल बेमानी है। इसका कोई मतलब ही न हुआ। अगर मैं पूछूं, दायाँ क्या है ? आप कहते हैं जो बायाँ नहीं। मैं पूछूं बायाँ क्या है ? तो आप उसी दायें से व्याख्या करते हैं, जिसकी व्याख्या बायें से की थी। यह वीसियस है, सर्कुलर है। लेकिन आदमी का काम चल जाता है। सारी भाषा ऐसी ही हैं। इसलिए डिक्शनरी से ज्यादा व्यर्थ की चीज जमीन पर खोजनी बहुत मुश्किल है क्योंकि शब्दकोष वाला कर क्या रहा है ? वह पाँचवें पेज पर कहता है कि दसवाँ पेज देखो और दसवें पेज पर कहता है कि पाँचवाँ देखो। अगर मैं आपके गांव आऊँ और आपसे पूछूं, कि रहमान कहाँ रहते हैं ? आप कहें कि राम के पड़ोस में। मैं पूछूं राम कहाँ रहते हैं ? आप कहें रहमान के पड़ोस में। इससे क्या अर्थ होता है ? हमें अज्ञात की परिभाषा उससे करनी चाहिए जो ज्ञात हो, तब तो कोई मतलब होता है। हम ज्यादा अज्ञात की परिभाषा दूसरे अज्ञात से करते हैं। वन अननोन इज डिफाइन्ड बाई ऐनॉदर अननोन। हमें कुछ भी पता नहीं है। एक अज्ञात की हम दूसरे अज्ञात से व्याख्या कर देते हैं। और इस तरह ज्ञान का भ्रम पैदा कर लेते हैं।

नॉलेज का, ज्ञान का जो हमारा भ्रम है, वह उसी तरह खड़ा हुआ है। मगर इससे काम चल जाता है। काम चलाऊ है यह ज्ञान। पर इससे कभी सत्य का अनुभव नहीं होता। महावीर जैसे व्यक्ति की तकलीफ यह है कि वह तीसरे बिन्दु पर खड़ा होता है। जहाँ चीजें तोड़ी नहीं जा सकतीं। जहाँ द्वन्द्व नहीं रह जाता, वहाँ अनुभूति एक बनती है। और उस अनुभूति की किससे व्याख्या करें, क्योंकि हमारी सारी भाषा यह कहती है कि यह नहीं। तो किससे व्याख्या करें ? ज्यादा से ज्यादा कहा जा सकता है निषेधात्मक ढंग से। लेकिन यह ठीक नहीं है। यह कहा जा सकता है कि वहाँ दुःख नहीं है, अशान्ति नहीं है। लेकिन जब हम मतलब समझते हैं, तो हमारा क्या मतलब होता है ?

अशान्ति और शान्ति मेरे लिए द्वन्द्व है, महावीर के लिए द्वन्द्व से मुक्ति है। हमारे लिए शान्ति का वही मतलब है, जहां अशान्ति नहीं है। महावीर के लिए मतलब है कि जहाँ शान्ति भी नहीं, अशान्ति भी नहीं। क्योंकि जब तक शान्ति है, तब तक थोड़ी बहुत अशान्ति मौजूद रहती है, नहीं तो शान्ति का पता नहीं चलता है। अगर आप परिपूर्ण स्वस्थ हो जायें, तो आपको स्वास्थ्य का पता नहीं चलेगा। थोड़ी-बहुत बीमारी चाहिए स्वास्थ्य के पता

होने को। या आप पूरे बीमार हो जायें तो भी बीमारी का पता नहीं चलेगा। क्योंकि बीमारी के लिए भी थोड़ा स्वास्थ्य जरूरी है, नहीं तो पता नहीं चलेगा। तो बीमार से बीमार आदमी में भी स्वास्थ्य होता है, इसलिए पता चलता है। और स्वस्थ से स्वस्थ आदमी में भी बीमारी होती है, इसलिए स्वास्थ्य का पता चलता है। लेकिन हमारे पास कोई उपाय नहीं है। हम बाहर से ही खोजते रहते हैं। और बाहर सब द्वन्द्व है। लक्षण बाहर से हम पकड़ लेते हैं। भीतर कोई लक्षण नहीं पकड़े जा सकते, क्योंकि कोई द्वन्द्व नहीं है। वह व्यक्ति जो तीसरे बिन्दु पर खड़ा हो जायेगा ध्यान में, उसे क्या होगा, इसे समझने की कोशिश महावीर ने बारहवें तप में की है। वह कोशिश बिल्कुल बाहर से है। बाहर से ही हो सकती है। फिर भी बहुत ही आन्तरिक घटना है, इसलिए उसे अन्तर्-तप कहा है और अन्तिम तप रखा है।

(२५) कायोत्सर्ग और गेस्टाल्ट का सिद्धान्त

ध्यान के बाद महावीर का तप कायोत्सर्ग है। उसका अर्थ है, जहाँ काया का उत्सर्ग हो जाता है, जहाँ शरीर नहीं बचता है, गेस्टाल्ट बदल जाता है पूरा। कायोत्सर्ग का मतलब काया को सताना नहीं है। कायोत्सर्ग का मतलब ऐसा नहीं है कि हाथ-पैर काट-काट कर चढ़ाते जाना। कायोत्सर्ग का मतलब है, ध्यान जब परिपूर्ण शिखर पर पहुंचता है, तो गेस्टाल्ट बदल जाता है, काया का उत्सर्ग हो जाता है, काया रह नहीं जाती। उसका कहीं कोई पता नहीं रह जाता। निर्वाण या मोक्ष क्या है? संसार का खो जाना है, 'जस्ट डिस-ऐपियरेन्स'। उसी तरह आत्म-अनुभव काया का खो जाना है। आप कहेंगे महावीर तो चालीस वर्ष जिये। ध्यान के अनुभव के बाद भी काया थी। असल में वह आपको दिखायी पड़ रही थी। महावीर के लिए अब कोई काया नहीं थी। अब कोई शरीर नहीं था। महावीर का कायोत्सर्ग हो गया था, जबकि हमें वह दिखायी पड़ रही थी।

बुद्ध के जीवन में बड़ी अद्भुत घटना है। जब बुद्ध मरने लगे, तो शिष्यों को बहुत दुःख हुआ। रोते हुए सभी इकट्ठे हो गये। लाखों लोग इकट्ठे हुए। उन्होंने कहा कि अब हमारा क्या होगा? लेकिन बुद्ध ने कहा पागलो, मैं चालीस साल पहले मर चुका। वे कहने लगे कि माना कि यह शरीर है। लेकिन इस शरीर से भी हमें प्रेम हो गया है। लेकिन बुद्ध ने कहा कि यह शरीर तो चालीस साल पहले विसर्जित हो चुका है।

जापान में एक फकीर हुआ है लिन्ची। एक दिन अपने उपदेश में उसने कहा, बुद्ध से ज्यादा झूठा आदमी जमीन पर कभी नहीं हुआ। क्योंकि जब तक वह बुद्ध नहीं था, तब तक था। और जिस दिन से वह बुद्ध हुआ, उस दिन से वह है ही नहीं। तो लिन्ची ने कहा, बुद्ध हैं, बुद्ध हुए हैं—ये सब भाषा की भूलें हैं। बुद्ध कभी नहीं हुए हैं। निश्चित ही लोग घबरा गये। क्योंकि यह फकीर तो बुद्ध का ही अनुयायी था। पीछे बुद्ध की प्रतिमा रखी थी। अभी-अभी उसने इस पर दीप चढ़ाया था। एक आदमी ने खड़े होकर आश्चर्य से पूछा कि ऐसे शब्द तुम बोल रहे हो! तुम कह रहे हो कि बुद्ध कभी हुए ही नहीं! ऐसी अधार्मिक बात! लिन्ची ने कहा, जिस दिन से मेरे भीतर काया खो गयी, उस दिन मुझे पता चला। तुम्हारे लिए मैं अभी भी हूँ, लेकिन जिस दिन से सच में न हुआ, उस दिन से मैं बिल्कुल नहीं हो गया। यह नहीं हो जाने का अन्तिम चरण है। यह एक्सप्लोजन है। उसके बाद कुछ भी नहीं है। या सब कुछ है, या शून्य है या पूर्ण है। कल हम आखिरी अंतर्-तप की बात करेंगे।

❀

अठारहवां प्रवचन

पर्युषण व्याख्यान-माला, बम्बई, दिनांक ३ सितंबर, १९७१

कायोत्सर्ग : शरीर को विदा देने की क्षमता का तप

धम्मो मंगलमुक्किट्ठम्, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति, जस्स धम्मे सया मणो ॥१॥

अर्थ :–

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म ?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

(१) शरीर को विदा देने की क्षमता

महावीर के साधना सूत्रों में आज बारहवें और अन्तिम तप पर बात करेंगे। अंतिम तप को महावीर ने कहा है कायोत्सर्ग—शरीर का छूट जाना। मृत्यु में तो सभी का शरीर छूट जाता है। शरीर तो छूट जाता है मृत्यु में, लेकिन मन की शरीर को पकड़े रखने की आकांक्षा नहीं छूटती। इसलिए जिसे हम मृत्यु कहते हैं, वह वास्तविक मृत्यु नहीं है, केवल नये जन्म का सूत्रपात है। मरते क्षण भी महावीर को पकड़ रखना चाहते हैं। मरने की पीड़ा ही यही है कि जिसे हम नहीं छोड़ना चाहते हैं। वह छूट रहा है। बेचैनी यही है कि जिसे हम पकड़ रखना चाहते हैं, उसे नहीं पकड़ रख पा रहे हैं। दुःख भी यही है, जिसे समझा था कि मैं हूं, वही नष्ट हो रहा है। मृत्यु में जो घटना सभी को घटती है, वही घटना ध्यान में उनको घटती है, जो ग्यारहवें चरण तक यात्रा कर लिये होते हैं। ठीक मृत्यु जैसी ही घटना घटती। कायोत्सर्ग का अर्थ है उस मृत्यु के लिए सहज स्वीकृति का भाव। वह घटेगी। जब ध्यान प्रगाढ़ होगा तो ठीक मृत्यु जैसी ही घटना घटेगी। लगेगा साधक को कि मिटा, समाप्त हुआ। उस क्षण में शरीर को पकड़ने का भाव न उठे, इसी की साधना का नाम कायोत्सर्ग है। ध्यान के क्षण में जब मृत्यु जैसा प्रतीत होने लगे, तब शरीर को पकड़ने की आकांक्षा, आसीप्सा नहीं उठे, यह शरीर का छूटता हुआ रूप स्वीकृत हो जाये; सहर्ष, शान्ति से, आहोभाव से, शरीर को विदा देने की क्षमता आ जाये, उस तप का नाम कायोत्सर्ग है।

मृत्यु और ध्यान की समानता को समझ लेना जरूरी है, तभी कायोत्सर्ग समझ में आयेगा। मृत्यु में यही होता है कि शरीर आपका चुक गया, अब

और जीने और काम करने में असमर्थ हुआ। तो आपकी चेतना शरीर को छोड़कर हटती है, अपने श्रोत में सिकुड़ती है। चेतना सिकुड़ती है श्रोत में, फिर भी चित्त पकड़े रखना चाहता है। जैसे कोई किनारा आपके हाथ से खिसकता जाता हो, जैसे कोई नाव आपसे दूर हटी जाती हो, उस तरह शरीर को हम जोर से पकड़ रखना चाहते हैं। और शरीर व्यर्थ हो गया, चुक गया है, तो तनाव पैदा हो जाता है। जो जा रहा है, उसे रखने की कोशिश से तनाव पैदा होता है। उसी तनाव के कारण मृत्यु में मूर्छा आ जाती है, क्योंकि नियम है, एक सीमा तक हम तनाव को सह सकते हैं, एक सीमा के बाद तनाव बढ़ जाये, तो चित्त मूर्छित हो जाता है। मृत्यु में इसलिए हम हर बार बेहोश मरते हैं। और इसलिए अनेक बार मर जाने के बाद हमें याद नहीं रहता कि हम पीछे भी मर चुके हैं। और इसलिए हर जन्म नया जन्म मालूम होता है, यद्यपि कोई जन्म, नया जन्म नहीं है। सभी जन्मों के पीछे मौत की घटना छिपी है। लेकिन हम इतने बेहोश हो गये होते हैं कि हमारी स्मृति में उनका कोई निशान नहीं छूट जाता है। और यही कारण है कि हमें पिछले जन्म की स्मृति भी नहीं रह जाती, क्योंकि मृत्यु की घटना में हम बिल्कुल बेहोश हो जाते हैं। वही बेहोशी की पर्त हमारे पिछले जन्म की स्मृतियों को हमसे अलग कर देती है। एक दीवाल खड़ी हो जाती है। हमें कुछ भी याद नहीं रह जाता। फिर हम वही शुरू कर देते हैं, जो बार-बार कर चुके होते हैं।

(२) जब मृत्यु घटित होती मालूम होती है

ध्यान में भी यही घटना घटती है, लेकिन शरीर के चुक जाने के कारण नहीं घटती, मन की आकांक्षा के चुक जाने के कारण घटती है, यह फर्क होता है। शरीर तो अभी भी ठीक है। लेकिन मन की शरीर को पकड़ने की जो वासना है, वह चुक गई। अब पकड़ने का कोई मन न रहा। तो शरीर और चेतना अलग हो जाती है, बीच का सेतु टूट जाता है। और जोड़ने वाला हिस्सा है मन, आकांक्षा, वासना—वह टूट जाती है। जैसे कोई सेतु गिर जाये और नदी के दोनों किनारे अलग हो जायें, वैसे ही ध्यान में विचार और वासना के गिरते ही चेतना और शरीर अलग हो जाते हैं। उस क्षण तत्काल हमें लगता है कि मृत्यु घटित हो रही है। और साधक का मन होता है कि वापस लौट चलूं। यह तो मौत आ गई है। और अगर साधक वापस लौट जाये, तो बारहवां चरण घटित नहीं हो पाता है। अगर साधक वापस लौट जाये तो ध्यान अपनी पूरी

परिणित पर नहीं पहुँच पाता। अगर साधक वापस लौट जाये भयभीत होकर इस बारहवें चरण से, तो सारी साधना व्यर्थ हो जाती है। इसलिए महावीर ने ध्यान के बाद कायोत्सर्ग को अन्तिम तप कहा है।

जब यह सेतु टूटे तो इसे खड़े हुए देखते रहना कि सेतु टूट रहा है। और जब शरीर और चेतना अलग हो जाये ध्यान में, तो भयभीत न हों। अभय से साक्षी बने रहें। एक क्षण की बात है। एक क्षण ही अगर कोई ठहर गया कायोत्सर्ग में, तो फिर कोई भय नहीं रह जाता। फिर मृत्यु नहीं डरा पाती। जैसे ही शरीर और चेतना एक क्षण को भी अलग होकर दिखाई पड़े, उसी दिन से समझ लो मृत्यु का सारा भय समाप्त हो गया। क्योंकि अब आप जानते हैं, आप शरीर नहीं हैं। आप कोई और हैं। और जो आप हैं, वह शरीर नष्ट हो जाये तो भी नष्ट नहीं होता। यह प्रतीति, यह अमृत का अनुभव, यह मृत्यु के जो अतीत है उस जगत में प्रवेश कायोत्सर्ग के बिना नहीं होता।

(३) कायोत्सर्ग क्या है और क्या नहीं है?

लेकिन परम्परा कायोत्सर्ग का कुछ और ही अर्थ करती रही। परम्परा अर्थ करती रही है कि काया पर जो दुःख आयें, पीड़ायें आयें, उन्हें सहज भाव से सहें। कोई सताये तो उसे सहज भाव से सहें। बीमारी आये तो उसे सहज भाव से सहें। कष्ट आये, कर्मों के फल आयें, तो उन्हें सहज भाव से सहें। यह कायोत्सर्ग का असली अर्थ नहीं है। क्योंकि यह तो काया-क्लेश में ही समाविष्ट हो जाता है। यह तो बाह्य-तप है। अगर यही कायोत्सर्ग का अर्थ है, तो महावीर पुनरुक्ति कर रहे हैं। क्योंकि काया-क्लेश में, बाह्य-तप में इसकी बात हो गयी है। महावीर जैसे व्यक्ति पुनरुक्ति नहीं करते हैं। वे तभी कुछ कहते हैं, जब कुछ कहना चाहते हैं। अकारण कुछ भी नहीं कहते हैं। कायोत्सर्ग का तो अर्थ है काया को चढ़ा देने की तैयारी, काया को छोड़ देने की तैयारी, काया से दूर हो जाने की तैयारी, तुम काया से भिन्न हो—ऐसा जान लेने की तैयारी, काया मरती हो तो भी देखता रहूँगा—ऐसा हो जाने की तैयारी।

बुद्ध अपने भिक्षुओं को चाहते थे कि वे मरघट पर रहें और लोगों की लाशों को देखें: जलते, गाड़े जाते, पक्षियों द्वारा चीरे-फाड़े जाते, मिट्टी में मिल जाते। भिक्षु बुद्ध से पूछते हैं कि यह किसलिए? तो बुद्ध कहते, ताकि तुम जान सको कि काया में क्या-क्या घटित हो सकता है। और यह जो एक

की काया में घटित हो सकता है, वही-वही तुम्हारी काया में घटित होगा। इसे देखकर तुम तैयार हो सको, मृत्यु को देखकर तुम तैयार हो सको कि मृत्यु घटित होगी। लेकिन कोई भिक्षु कहता है कि अभी तो मृत्यु में देर है, मैं युवा हूँ; तो बुद्ध कहते कि मैं उस मृत्यु की बात नहीं कर रहा हूँ। मैं तो उस मृत्यु की तैयारी करवा रहा हूँ, जो ध्यान में घटित होती है। ध्यान महामृत्यु है। मृत्यु ही नहीं, महामृत्यु। क्योंकि ध्यान में अगर मृत्यु घटित हो जाती है तो फिर कोई जन्म नहीं होता। साधारण मृत्यु के बाद जन्म की शृंखला जारी रहती है। ध्यान की मृत्यु के बाद जन्म की शृंखला नहीं रहती। इसलिए महावीर इसे कायोत्सर्ग कहते हैं। इसमें काया से सदा के लिए बिछुड़ना हो जाता है। यानी फिर दोबारा काया नहीं है, फिर दुबारा काया में लौटना नहीं है, फिर शरीर में पुनरागमन नहीं है, फिर संसार में वापसी नहीं है। कायोत्सर्ग 'प्वाइंट आफ नो रिटर्न' है उसके बाद लौटना नहीं है।

(४) आप किसी भ्रष्ट योगी को जानते हैं ?

लेकिन कायोत्सर्ग तक से हम लौट सकते हैं। जैसे पानी को हम गर्म करते हों १०० डिग्री पर तो ९९वीं डिग्री से भी पानी लौट सकता है भाप बने बिना। साढ़े ९९वीं डिग्री से भी लौट सकता है। १०० डिग्री के पहले जरा-सा फासला रह जाये तो पानी वापस लौट सकता है, गर्मी खो जायेगी, थोड़ी देर में पानी ठंडा हो जायेगा। ध्यान से भी वापस लौटा जा सकता है, जब तक कि कायोत्सर्ग घटित न हो जाये। आपने एक शब्द सुना होगा 'भ्रष्ट योगी'। पर कभी ख्याल न किया होगा कि भ्रष्ट योगी का क्या अर्थ होता है। शायद आप सोचते होंगे कि कोई भ्रष्ट काम करता है, ऐसा योगी। भ्रष्ट योगी का अर्थ होता है, जो कायोत्सर्ग से पहले ध्यान से वापस लौट आया। ध्यान में तो चला गया, लेकिन ध्यान के बाद जो मौत की घबड़ाहट बढ़ी, तो वापस लौट आया, फिर उसका जन्म होगा। इसे भ्रष्ट योगी कहेंगे। भ्रष्ट योगी का अर्थ यह है कि ९९वीं डिग्री तक पहुँचकर जो वापस लौट आये। १०० डिग्री तक पहुंच जाता है तो भाप बन जाता है, तो रूपान्तरण हो जाता है, तो नया जीवन शुरू हो जाता है, तो नयी यात्रा प्रारंभ हो जाती है। ध्यान ९९ डिग्री तक ले जाता है। १००वीं डिग्री पर तो आपको छलांग पूरी करनी पड़ती है। वह है शरीर को उत्सर्ग कर देने की छलांग।

लेकिन हम अपनी तरफ से समझें, जहाँ हम खड़े हैं, वहाँ शरीर मालूम पड़ता है कि मेरा है। सच में तो ऐसा मालूम पड़ता है कि मैं शरीर हूँ। हमें कभी कोई एहसास नहीं होता है कि शरीर से अलग भी हमारा कोई होना होता है। और जब शरीर ही मैं हूं, तो शरीर पर पीड़ा आती है, तो मुझ पर पीड़ा आती है, शरीर को भूख लगती है तो मुझे भूख लगती है, शरीर को थकान होती है तो मैं थक जाता हूँ। शरीर और मेरे बीच में तादात्म्य है, एक आइडेन्टिटी है। हम जुड़े हैं, संयुक्त हैं। यह भूल ही गये हैं कि हम शरीर से पृथक् कुछ भी हैं। एक इंच भी हमारे भीतर ऐसा कोई हिस्सा नहीं है, जिसे मैंने शरीर से अन्य जाना हो। इसलिए शरीर के सारे दुःख हमारे दुःख हो जाते हैं, शरीर के सारे सन्ताप हमारे सन्ताप हो जाते हैं, शरीर का जन्म हमारा जन्म बन जाता है और शरीर का बुढ़ापा हमारा बुढ़ापा बन जाता है, शरीर की मृत्यु हमारी मृत्यु बन जाती है। शरीर पर जो घटित होता है, लगता है वह मुझ पर घटित हो रहा है। इससे बड़ी कोई भ्रान्ति नहीं हो सकती। लेकिन हम दूर से ही देखने के आदी हैं, शरीर से ही पहचानने के आदी हैं।

(५) और मुल्ला बाहरी लक्षण ही देखते रह गये

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन का पिता अपने जमाने का अच्छा वैद्य था। बूढ़ा हो गया बाप। तो नसरुद्दीन ने कहा कि अपनी कुछ कला मुझे भी सिखा जाओ। कई दफे तो मैं चकित होता हूँ देखकर कि नाड़ी तुम बीमार की देखते हो और ऐसी बातें कहते हो जिनका नाड़ी से कोई संबंध मालूम नहीं पड़ता। यह कला थोड़ी मुझे भी बता जाओ। बाप को कोई आशा न थी कि नसरुद्दीन यह सीख पायेगा, लेकिन वह नसरुद्दीन को लेकर अपने मरीजों को देखने गया। एक मरीज को उसने नाड़ी पर हाथ रखकर देखा और फिर कहा कि देखो, केले खाने बन्द कर दो। उसी से तुम्हें तकलीफ हो गयी है। नसरुद्दीन बहुत हैरान हुआ। नाड़ी से केले की कोई खबर नहीं मिल सकती है। बाहर निकलते ही उसने बाप से पूछा। बाप ने कहा, तुमने ख्याल नहीं किया। मरीज को ही नहीं देखना पड़ता, आस-पास भी देखना पड़ता है। खाट के पास नीचे केले के छिलके पड़े थे। उससे अन्दाज लगाया।

दूसरी बार नसरुद्दीन गया। बाप ने नाड़ी पकड़ी मरीज़ की और कहा कि देखो बहुत ज्यादा श्रम मत उठाओ। मालूम होता है, पैरों से ज़्यादा चलते हो,

उसी की थकान है। अब तुम्हारी उम्र इतनी चलने लायक नहीं रही। थोड़ा कम चलो। नसरुद्दीन हैरान हुआ। चारों तरफ देखा। इस बार कहीं कोई छिलका भी नहीं है। बाहर आकर पूछा कि हद हो गयी, नाड़ी से चलते आदमी का पता ! बाप ने कहा, तुमने देखा नहीं, उसके जूते के तल्ले बिल्कुल घिसे हुए थे, उन्हीं को देखकर।

नसरुद्दीन ने कहा कि अब अगली बार तीसरे मरीज को मैं ही देखूंगा। अगर ऐसे ही पता लगाया जा रहा है तो हम भी पता लगायेंगे। तीसरे घर पहुंचने पर बीमार स्त्री का हाथ नसरुद्दीन ने अपने हाथ में लिया। चारों तरफ नजर डाली। कुछ दिखायी नहीं पड़ा। खाट के नीचे नजर डाली, फिर मुस्कराया। फिर स्त्री से कहा, देखो तुम्हारी बेचैनी का कुल कारण इतना है कि तुम जरा धार्मिक हो गयी हो। चर्च जाना थोड़ा कम करो। बन्द कर सको तो बहुत अच्छा है। वह स्त्री बहुत घबरायी। बाप भी बड़ा हैरान हुआ। लेकिन स्त्री राजी हुई। उसने कहा कि क्षमा करें। हद हो गयी कि आप नाड़ी से पहचान गये ! क्षमा करें, यह भूल अब दोबारा नहीं होगी। तो बाप और हैरान हुआ। बाहर निकल कर बेटे से पूछा कि हद कर दी तुमने। तुम मुझसे आगे हो गये। थोड़ा धर्म में कम रुचि लो, चर्च जाना कम करो या बन्द कर दो तो अच्छा हो, और स्त्री राजी भी हो गयी ! बात क्या थी ? नसरुद्दीन ने कहा मैंने चारों तरफ देखा, कहीं कुछ नजर नहीं आया। खाट के नीचे देखा तो पादरी को छिपा पाया। इस स्त्री की यही बीमारी है। और देखा आपने कि आपके मरीज तो सुनते रहे, मेरा मरीज एकदम बोला कि क्षमा करो, अब ऐसी भूल कभी नहीं होगी।

लेकिन नसरुद्दीन वैद्य नहीं बन पाया। बाप के मर जाने के बाद नसरुद्दीन दो चार मरीजों के पास गया तो मुसीबत में पड़ा। जो भी मरीज उससे चिकित्सा करवाये, वह जल्द ही मर गये। निदान तो उसने बहुत किये, लेकिन कोई निदान किसी मरीज को ठीक नहीं कर पाया। तो नसरुद्दीन बुढ़ापे में कहता हुआ सुना गया है कि मेरा बाप मुझे धोखा दे गया। जरूर कोई भीतरी तरकीब रही होगी। वह सिर्फ मुझे बाहर के लक्षण बता गया।

(६) भीतर की पकड़ के लिए

बाप ने बाहर के लक्षण सिर्फ भीतरी लक्षणों के खोज के लिए कहे। और सदा ऐसा होता है। महावीर ने बाहर के लक्षण कहे हैं भीतर के पकड़ कि

लिए। परम्परा बाहर के लक्षण पकड़ लेती है। और फिर धीरे-धीरे बाहर के लक्षण ही हाथ में रह जाते हैं और भीतर के सब सूत्र खो जाते हैं। नाड़ी से कोई मतलब नहीं रह जाता। फिर नसरुद्दीन को यह भी पक्का पता नहीं रहता था कि नाड़ी उंगलियों के नीचे है या नहीं। वह तो आस-पास देखकर निदान कर लेता था। सारी परम्पराएँ धीरे-धीरे बाह्य हो जाती हैं और नाड़ी से उनका हाथ छूट जाता हैं। तो कायोत्सर्ग का अर्थ भी केवल इतना रह गया कि अपनी काया पर भी कष्ट आये, तो उसे सह लेना। लेकिन ध्यान रहे, काया अपनी है, यह कायोत्सर्ग की परम्परा में स्वीकृत है। यह जो झूठी बाह्य-परम्परा है, वह भी कहती है कि अपनी काया पर कोई कष्ट आये, तो सह लेना। यह भी कहती है कि अपनी काया को उत्सर्ग रखने की तैयारी रखना। लेकिन अपनी काया है, यह बात नहीं छूटती।

(७) तो क्या आत्महत्या भी कायोत्सर्ग मान ली जावे ?

महावीर का यह मतलब नहीं है कि काया को उत्सर्ग कर देना। क्योंकि महावीर कहते हैं, जो अपनी नहीं है उसे तुम कैसे उत्सर्ग करोगे? तुम कैसे चढ़ाओगे? अपने को उत्सर्ग किया जा सकता है, अपने को चढ़ाया जा सकता है, लेकिन जो मेरा नहीं है उसे मैं कैसे चढ़ाऊँगा? महावीर का कायोत्सर्ग से भीतरी अर्थ है कि काया तुम्हारी नहीं है, ऐसा जानना कायोत्सर्ग है। मैं काया चढ़ा दूंगा, ऐसा भाव कायोत्सर्ग नहीं है। क्योंकि तब तो इस उत्सर्ग में भी मेरे की, ममत्व की धारणा मौजूद है। और जब तक काया मेरी है, तब तक मैं चाहे उत्सर्ग करूँ, चाहे भोग करूँ, चाहे बचाऊँ और चाहे मिटाऊँ। आत्म-हत्या करने वाला भी काया को मिटा देता है, लेकिन वह कायोत्सर्ग नहीं है। क्योंकि वह मानता है कि शरीर मेरा नहीं है। इसीलिए मिटाता है। एक शहीद सूली पर चढ़ जाता है, लेकिन वह कायोत्सर्ग नहीं है। क्योंकि वह मानता है, शरीर मेरा है। एक तपस्वी आपके शरीर को नहीं सताता, अपने शरीर को सता लेता है। लेकिन मानता है कि शरीर मेरा है। तपस्वी आपके प्रति कठोर न हो, लेकिन अपने प्रति बहुत कठोर होता है। क्योंकि वह मानता है कि यह शरीर मेरा है। आपको भूखा भले नहीं मार सके, अपने को भूखा मार सकता है। क्योंकि मानता है कि यह शरीर मेरा है। लेकिन जहाँ तक शरीर मेरा है, वहाँ तक महावीर की कायोत्सर्ग की जो आन्तरिक नाड़ी है, उस पर आपका हाथ

नहीं है। महावीर कहते हैं कि यह जानना कि शरीर मेरा नहीं है, कायोत्सर्ग है। लेकिन यह जानना बहुत कठिन है।

इस कठिनाई से बचने के लिए आस्तिकों ने एक उपाय निकाला है। वे कहते हैं कि शरीर मेरा नहीं है, लेकिन परमात्मा का है। महावीर के लिए तो वह भी उपाय नहीं है, क्योंकि परमात्मा की कोई जगह नहीं है उनकी धारणा में। यह बहुत चक्करदार बात है। आस्तिक, तथाकथित आस्तिक कहता है कि शरीर मेरा नहीं है, परमात्मा का है, और परमात्मा मेरा है। ऐसे सब घूम फिरकर सब अपना ही हो जाता है। महावीर के लिए परमात्मा भी नहीं है। महावीर की धारणा बहुत अद्भुत है। वे कहते हैं कि तुम तुम्हारे हो, शरीर शरीर का है। इसको समझ लें। शरीर परमात्मा का भी नहीं है, शरीर शरीर का है। महावीर कहते हैं प्रत्येक वस्तु अपनी है, अपने स्वभाव की है, किसी की नहीं है। मालकियत झूठ है इस जगत् में। परमात्मा की भी मालकियत हो, तो झूठ है। ओनरशिप झूठ है। शरीर शरीर का है, इसका अगर हम विश्लेषण करें तो बात पूरी ख्याल में आ जायगी।

(८) स्टेशन और आदमी : कौन किसका ?

शरीर में आप प्रतिपल स्वांस ले रहे हैं। जो स्वांस एक क्षण पहले आपकी थी, एक क्षण बाद बाहर हो गई। किसी और की हो गयी होगी। जो स्वांस अभी आपकी है, आपको पक्का विश्वास है कि आपकी है, क्षण भर पहले आपके पड़ोसी की थी। और अगर हम स्वांस से पूछ सकें कि तुम किसकी है, तो स्वांस क्या कहेगी ? स्वांस कहेगी, मैं नहीं हूं। इस मेरे शरीर में, जिसे हम कहते हैं, मेरा शरीर है, इसमें मिट्टी के कण हैं। कभी वे किसी और के शरीर में रहे होंगे। कभी किसी वृक्ष में रहे होंगे। कभी किसी फल में रहे होंगे। न मालूम कितनी उनकी यात्रा है। अगर हम कणों से पूछें कि तुम किसके हो, तो वे कहेंगे कि हम अपने हैं। हम यात्रा करते हैं। तुम स्टेशन हो, जिनसे हम गुजरते हैं। हम बहुत-से स्टेशनों से गुजरते हैं। जब हम कहते हैं कि शरीर मेरा है, तो हम वैसी ही भूल करते हैं जैसा कि आप स्टेशन से उतरें और स्टेशन कहे कि यह आदमी मेरा है। आप उससे कहेंगे कि तुझसे क्या लेना-देना है ? हम बहुत स्टेशनों से गुजर गये हैं और गुजरते रहेंगे। स्टेशन आती है और चली जाती है। शरीर जिन भूतों से मिलकर बना है प्रत्येक भूत उसी भूत का है।

शरीर जिन पदार्थों से बना है, प्रत्येक पदार्थ उसी पदार्थ का है। मेरे भीतर जो आकाश है, वह आकाश का है। मेरे भीतर जो वायु है, वह वायु की है। मेरे भीतर जो पृथ्वी है, वह पृथ्वी की है। मेरे भीतर जो अग्नि है, वह अग्नि की है। मेरे भीतर जो जल है, वह जल का है। यह जानना कायोत्सर्ग है।

अगर मेरे भीतर जल न रह जाये, वायु न रह जाये, अग्नि न रह जाये तब जो शेष रह जाता है, वही मैं हूं। तब जो शून्य शेष रह जाता है, जो अतिरिक्त शेष रह जाता है, वही मैं हूं। फिर क्या शेष रह जाता है? अगर वायु भी मैं नहीं हूं, अग्नि भी नहीं हूं, आकाश भी नहीं हूं, जल भी नहीं, पृथ्वी भी भी नहीं, तो फिर मेरे भीतर शेष क्या रह जाता है? तो महावीर कहते हैं सिर्फ जानने की क्षमता शेष रह जाती है, 'दि कैपेसिटी टु नो'। सारा शरीर शून्य हो जाता है, नोइंग शेष रह जाती है। तो महावीर कहते हैं, मैं तो सिर्फ जानना हूं, जानना मात्र। इस स्थिति को महावीर ने 'केवल ज्ञान' कहा है, जस्ट नोइंग, सिर्फ जाना मात्र। मैं सिर्फ ज्ञाता ही रह जाता हूं, द्रष्टा ही रह जाता हूं, दृष्टि ही रह जाता हूं, ज्ञान रह जाता हूं, अस्तित्व का बोध, अवेयरनेस रह जाता हूं। और तो सब खो जाता है। कायोत्सर्ग का अर्थ है, जो जिसका है वह उसी का है, ऐसा जानना, अनधिकृत मालकियत न करना। लेकिन हम सब अनधिकृत मालकियत किये हुए हैं। और जब हम भीतर अनधिकृत मालकियत करते हैं, तो हम बाहर भी करते हैं। जो आदमी अपने शरीर को मानता है कि मेरा है, वह अपने मकान को कैसे नहीं मानेगा कि मेरा है!

(६) बन्दूकें हमारे नाखूनों का ही विस्तार है

पश्चिम में इस समय एक बहुत प्रख्यात विचारक है मार्शल मैकलुहान। वह कहता है मकान हमारे शरीर का ही विस्तार है—एक्सटेंशन आफ आवर बॉडीज है। मकान हमारे शरीर का ही विस्तार है, दूरबीन हमारी आंख का ही विस्तार है, बन्दूक हमारे नाखूनों का ही विस्तार है। इसलिए जितना युग वैज्ञानिक होता जाता है, उतना आपका शरीर बड़ा होता जाता है। अगर आज से पाँच हजार साल पहले किसी आदमी को मारना होता, तो बिल्कुल उसकी छाती के पास छुरा लेकर जाना पड़ता। अब जरूरत नहीं है। अब एक आदमी को यहीं से बैठकर वाशिंगटन में भी सारे लोगों की हत्या कर देनी हो, तो एक बम चला जायेगा, सबको नष्ट कर देगा। आपका शरीर अब बहुत

बड़ा है। अगर मुझे आपको मारना है, तो पास आने की जरूरत नहीं है। पाँच सौ फुट दूर से बन्दूक की गोली से आपको मार दूंगा। लेकिन वह गोली सिर्फ एक्सटेंशन है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी के नाखून दूसरे जानवरों से कमजोर हैं। इसलिए उसने अस्त्र-शस्त्रों का आविष्कार किया। वे सब्स्टीट्यूट हैं, नहीं तो आदमी जीत नहीं सकता है जानवरों से। आपके नाखून बहुत कमजोर हैं, जानवरों के मुकाबले। आपके दाँत भी बहुत कमजोर हैं, जानवरों के मुकाबले। अगर आप जानवर से टक्कर लें तो आप गये। इसलिए आपको जानवर से टक्कर लेने के लिए सब्स्टीट्यूट खोजना पड़ेगा। जानवर से ज्यादा मजबूत नाखून बनाने पड़ेंगे। वही नाखून आपके छुरे, तलवारें, खंजर, भाले हैं।

आदमियों ने जो भी विकास किया है, जिसे आज हम प्रगति कहते हैं, वह उसके शरीर का विस्तार है। इसलिए जितना वैज्ञानिक युग सघन होता जाता है, उतना आत्म-भाव कम होता जाता है। क्योंकि बड़ा शरीर हमारे पास है जिससे हम अपने को एक कर लेते हैं। आपका मकान, आपके मकान की दीवालें आपके शरीर के हिस्से हैं; आपकी कारें आपके बढ़े हुए पैर हैं। आपके हवाई जहाज आपके बढ़े पैर हैं। आपको पता हो या न पता हो, आपका रेडियो आपका बढ़ा हुआ कान है। आपका टेलिविजन आपकी बढ़ी हुई आँख है। आज हमारे पास जितना बड़ा शरीर है, उतना महावीर के वक्त में किसी के पास नहीं था। इसलिए आज हमारी मुसीबत भी ज्यादा है। तो जो आदमी अपने शरीर को अपना मानता है, वह अपने मकान को भी अपना मानेगा। दुःख बढ़ जायेंगे। जितना बड़ा शरीर होगा हमारा, उतने बड़े हमारे दुःख बढ़ जायेंगे, क्योंकि उतनी मुसीबतें बढ़ जायेंगी।

(१०) शरीर की मालकियत का सवाल

कभी आपने ख्याल किया है कि आपकी कार को खरोंच लग जाये तो लगता है कि करीब-करीब आपकी चमड़ी को लग गयी। शायद एक दफे चमड़ी को भी लग जाये, तो उतनी तकलीफ नहीं होगी, जितनी कार को लग जाने पर होती है। कार आपकी चमकदार चमड़ी बन गयी। वह आपका आवरण है, आपके बाहर। महावीर कहते हैं कि शरीर की जरा सी भी मालकियत अगर हुई, तो मालकियत बढ़ जायेगी और फिर मालकियत का कोई अन्त नहीं है।

आज नहीं कल चाँद पर झगड़ा खड़ा होने वाला है कि वह किसका है। अभी तो वहाँ पहुंचते भर हैं हम, इसलिए इतनी दिक्कत नहीं है। लेकिन आज नहीं कल झगड़ा खड़ा होने वाला है कि वह किसका है। अगर रूस और अमरीका में इतना संघर्ष था चाँद पर पहले पहुँचने के लिए, तो वह सिर्फ वैज्ञानिक प्रतियोगिता ही नहीं थी। उसमें गहरी मालकियत भी है। पहला झण्डा अमरीका का गड़ गया है वहाँ। आज नहीं कल किसी दिन अन्तर्राष्ट्रीय अदालत में यह मुकमा होगा कि चाँद किसका है? पहले कौन मालिक बना? इसलिए रूस के वैज्ञानिक चांद की चिन्ता कम कर रहे हैं और वे मंगल तक पहुंचने की कोशिश में लग गये हैं। क्योंकि चाँद पर किसी भी दिन झगड़ा खड़ा होने ही वाला है मालकियत का।

इस मालकियत का अब अन्त क्या है? इसका प्रारम्भ कहाँ से होता है? इसका प्रारम्भ होता है, शरीर के पास हम जब मालकियत खड़ी करते हैं, तभी विस्तार शुरू हो जाता है। विस्तार का कोई अन्त नहीं है। और जितना विस्तार होता है, उतने हमारे दुःख बढ़ जाते हैं। क्योंकि महावीर कहते हैं, आनंद तो वहाँ उपलब्ध होता है, जहाँ कोई अपने शरीर का भी मालिक नहीं है। जो मालकियत करता ही नहीं। कायोत्सर्ग का अर्थ है—मैं उतने पर ही हूँ, जितने पर मेरी जानने की क्षमता का फैलाव हो, वहाँ मैं हूँ, जानने की क्षमता में हूँ। ध्यान के बाद इस चरण को रखने का प्रयोजन है, क्योंकि ध्यान आपके जानने की क्षमता का अनुभव है। ध्यान का अर्थ ही है, वह जो मेरे भीतर ज्ञान है, उसको जानना। जितना मैं परिचित होता हूँ कान्सेसनेस से, चेतना से, उतना ही मेरा जड़ पदार्थों के साथ जो संबंध है वह विच्छिन्न होता जाता है। और एक घड़ी आती है कि भीतर मैं सिर्फ ज्ञान की ज्योति रह जाता हूँ। लेकिन अभी हमारा जोड़ दिये से है, मिट्टी के दिये से। उस ज्ञान की ज्योति से नहीं, जो दिये में जलती है। अभी हम समझते हैं कि मैं मिट्टी का दिया हूँ। मिट्टी का दिया फूट जाता है तो हम सोचते हैं कि मैं मर गया। ऐसे ही घर में अगर एक मिट्टी का दिया फूट जाये तो हम कहते हैं, ज्योति नष्ट हो गयी। लेकिन ज्योति नष्ट नहीं होती, सिर्फ विराट आकाश में लीन हो जाती है।

(११) ज्योति की नयी यात्रा

कुछ भी नष्ट तो होता नहीं इस जगत् में। जिस दिन हमारे शरीर का दिया फूट जाता है, उस दिन भी जो चेतना की ज्योति है, वह फिर अपनी

यात्रा पर निकल जाती है। निश्चित ही वह अदृश्य हो जाती है। क्योंकि उसके दृश्य होने के लिए माध्यम चाहिए। जैसे रेडियो आप अपने घर में लगाये हुए हैं। जब आप बन्द कर देते हैं तब आप सोचते हैं क्या कि रेडियो में जो आवाजें आ रही थीं, उनका आना बन्द हो गया? वे अब भी आपके कमरे से गुजर रही हैं। वे बन्द नहीं हो गयीं। जब आप रेडियो ऑन करते हैं तभी वे आना शुरू नहीं हो जातीं, जब आप रेडियो ऑन करते हैं तब आप उनको पकड़ना शुरू करते हैं, वे दृश्य होती हैं। वे मौजूद हैं। जब आपका रेडियो बन्द पड़ा है, तब आपके कमरे से उनकी ध्वनियाँ गुजर रही हैं। लेकिन आपके पास उन्हें पकड़ने का, दृश्य बनाने का कोई उपाय नहीं है। रेडियो आप जैसे ही चालू कर देते हैं, रेडियो का यंत्र उन्हें दृश्य कर देता है। श्रवण में वे आपके पकड़ में आ जाती हैं। जैसे ही किसी व्यक्ति का शरीर छूटता है, चेतना हमारी पकड़ के बाहर हो जाती है। लेकिन नष्ट नहीं हो जाती। अगर हम फिर से उसे शरीर दे सकें, तो वह फिर प्रकट हो सकती है। इसलिए इसमें कोई हैरानी की बात नहीं है कि वैज्ञानिक आज नहीं कल मरे हुए आदमियों को पुनरुज्जीवित कर सकेंगे। इसलिए नहीं कि उन्होंने आत्मा को बनाने की कला पा ली, बल्कि इसलिए कि वे रेडियो को सुधारने की तरकीब सीख गये। इसलिए नहीं कि उन्होंने आदमी की आत्मा को पकड़ लिया, बल्कि इसलिए कि जो यंत्र बिगड़ गया था उसे उन्होंने फिर इस योग्य बना दिया कि आत्मा उससे प्रकट हो सके। इसमें बहुत कठिनाई नहीं मालूम होती, यह जल्दी ही सम्भव हो जायेगा।

(१२) साधन से दुख होत हैं

लेकिन जैसे-जैसे ये चीजें सम्भव होती जाती हैं वैसे-वैसे हमारी काया का मोह बढ़ता चला जाता है। अगर आपको मरने से भी बचाया जा सकता है, तब तो आप और जोर से मानने लगेंगे कि मैं शरीर हूँ। क्योंकि शरीर बच जाता है तो मैं बच जाता हूँ। मनुष्य की प्रगति एक तरफ से है, दूसरी तरफ से ह्रास है और बड़ा पतन है। एक तरफ हमारी समझ बढ़ती जाती है, दूसरी तरफ हमारी समझ बहुत कम होती चली जाती है। करीब-करीब ऐसा लगता है कि हमारी समझ बढ़ रही है, वह केवल शरीर को आधार मानकर बढ़ती चली जाती है। उसमें चेतना का कोई आधार नहीं है। इसलिए आदमी आज दुनिया में सर्वाधिक जानकर मालूम पड़ता है, फिर भी इससे ज्यादा अज्ञानी

समाज खोजना कठिन है। महावीर जैसे व्यक्ति तो इसको पतन ही कहेंगे, इसको विकास नहीं कहेंगे। वे कहेंगे कि पतन है। क्योंकि इससे दुःख बढ़ा है, आनन्द नहीं बढ़ा है। कसौटी क्या है प्रगति की? कि आनन्द बढ़ जाये। लेकिन होता यह है कि साधन बढ़ जाते हैं, तो दुःख बढ़ जाता है। हमारा फैलाव बढ़ गया, मालकियत बढ़ गयी और दुःख बढ़ गया। अब हम ज्यादा चीजों की चिन्ता करते हैं। महावीर के जमाने में इतनी चीजों पर लोग चिन्ता नहीं करते थे। अब हमारी चिन्ताएँ बहुत ज्यादा हैं। चिन्ताएँ हमारी बहुत दूर निकल गई हैं। चाँद तक के लिए हमारी चिन्ता है। चिन्ता बढ़ जरूर गई है, लेकिन निश्चिन्त चेतना का कोई अनुभव नहीं रहा। कायोत्सर्ग का अर्थ है शिष्टता के जगत से संबंध तोड़ लेना। कैसे तोड़ेंगे? जब तक आप ध्यान में नहीं उतारेंगे, तब तक कायोत्सर्ग की बात जो मैं समझा रहा हूँ, वह ठीक-ठीक ख्याल में नहीं आ सकेगी। लेकिन समझाता हूँ ताकि शायद कभी ध्यान में उतारें तो ख्याल में आ जाये कि शरीर से कैसे छूटेंगे? इसके लिए एक तो निरन्तर स्मरण रखें कि शरीर मैं नहीं हूँ, निरन्तर स्मरण कि शरीर मैं नहीं हूँ; चलते, उठते, बैठते, निरन्तर स्मरण कि मैं शरीर नहीं हूँ। यह निषेधात्मक है, निगेटिव है। लेकिन किसी भी प्रतीति को तोड़ना हो तो यह जरूरी है। और हम जो भी मानकर बैठते हैं, वह हमें प्रतीति होने लगता है। तो दो में से एक हमें छोड़ना पड़ेगा। या तो आत्मा मैं नहीं हूँ, इस प्रतीति में हमें उतर जाना पड़ेगा, यदि शरीर मैं हूँ, इसको हम गहरा करते हैं। या शरीर मैं नहीं हूं, इसको हम प्रगाढ़ करते हैं, तो 'मैं आत्मा हूँ' इसका बोध धीरे-धीरे जागना शुरू हो जायेगा।

(१३) मुल्ला शराब छोड़ें कि पत्नी!

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने शराब घर में बहुत उदास बैठा था। मित्रों ने पूछा कि तुम परेशान क्यों हो? मुल्ला ने कहा कि परेशानी यह है कि पत्नी ने आज अल्टीमेटम दे दिया है आखिरी और कह दिया है कि अगर आज रात तक शराब पीना बन्द नहीं किया तो वह मुझे छोड़कर अपनी माँ के घर चली जायेगी। तो मित्रों ने कहा, यह तो बड़ी कठिनाई है, बड़ी मुश्किल है। इससे तो तुम बड़ी कठिनाई में पड़ोगे। क्योंकि मित्रों ने सोचा कि शराब छोड़ने में मुल्ला नसरुद्दीन को भारी कठिनाई होगी। मुल्ला ने कहा कि तुम समझ नहीं पा रहे हो। कठिनाई तो होगी, आई विल मिस हर व्हेरी मच, मैं पत्नी की बहुत ज्यादा कमी अनुभव करूँगा उसके जाने से। मित्र ने कहा, लेकिन मैं तो

समझता था कि तुम शराब छोड़ दोगे और कठिनाई अनुभव करोगे। नसरुद्दीन ने कहा, मैंने बहुत सोचा। दो में से तो एक ही हो सकता है। या तो शराब छोड़कर मैं कठिनाई अनुभव करूँ या पत्नी को छोड़कर कठिनाई अनुभव करूँ। फिर मैंने तय किया कि पत्नी को छोड़कर ही कठिनाई अनुभव करना ठीक है। क्योंकि पत्नी को छोड़कर कठिनाई शराब में भुलाई जा सकती है, लेकिन शराब छोड़कर पत्नी के साथ कुछ भूला नहीं जा सकता, बल्कि और शराब की ही याद आती है। दो में से एक तय करना ही है।

और एक घटना उसके जीवन में है कि अन्ततः एक बार पत्नी उसे छोड़कर ही चली गयी। मुल्ला सामने शराब अपने घर में बैठा है अकेला। एक मित्र आया। मुल्ला शराब पीता नहीं है। डालकर गिलास में रखी है, और वह बैठा है। मित्र ने कहा, क्या पत्नी के चले जाने का दुःख भुलाने की कोशिश कर रहे हो? मुल्ला ने कहा, मैं बड़ी परेशानी में हूँ। दुःख ही नहीं बचा, भुलाऊँ क्या? इसलिए शराब सामने रखकर बैठा हूँ, सोच रहा हूँ कि दुःख ही न बचा तो भुलाऊँ क्या? इसी परेशानी में हूँ। शराब एक विकल्प है, आल्टरनेट है। जिन्दगी में प्रतिपल, प्रति कदम विकल्प हैं। क्योंकि जिन्दगी द्वन्द्व है। हमने एक विकल्प चुना हुआ है कि शरीर मैं हूँ। तो आत्मा को भुलाना ही पड़ेगा। अगर आत्मा को स्मरण करना हो तो शरीर मैं हूँ, यह विकल्प तोड़ना जरूरी है। और तोड़ने में जरा भी कठिनाई नहीं है, सिर्फ स्मृति को गहरा करने की बात है। आप वही सोचते हैं जो आप मानते हैं। बुद्ध ने कहा है, विचार ही वस्तु बन जाता है। विचार ही सघन होकर वस्तु बन जाते हैं। शायद आपको कई बार ऐसा अनुभव हुआ हो कि जरा से विचार के परिवंतन से आपके भीतर सब परिवंतन हो जाता है।

(१४) अमरीकी अभिनेत्री जब सैलून में लोगों की दाढ़ी पर साबुन लगाती थी

अमरीका की एक बड़ी अभिनेत्री थी ग्रेटा गारबो। उसने अपने जीवन संस्मरणों में लिखा है कि एक छोटे से विचार ने मेरी इमेज को तोड़ दिया। ग्रेटा गारबो एक छोटे से नाई-बाड़े में, सैलून में लोगों की दाढ़ी पर साबुन लगाने का काम करती थी, जब तक वह २२ साल की नहीं हो गयी तब तक। उसे पता ही नहीं था कि वह कुछ और भी हो सकती है और यह तो वह सोच

भी नहीं सकती थी कि वह अमरीका की श्रेष्ठतम अभिनेत्री हो सकती है। और २२ साल की उम्र तक जिस लड़की को अपने सौंदर्य का पता न चला हो तो माना जा सकता है कि कभी पता न चलेगा। उसने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि एक दिन क्रान्ति घटित हो गयी। एक आदमी आया और मैं उसकी दाढ़ी पर साबुन लगा रही थी। उसे दो चार पैसे दाढ़ी पर साबुन लगाने के मिल जाते थे। उस आदमी ने कहा, तुम कितनी सुन्दर हो। और मैंने पहली दफे जिन्दगी में किसी को कहते सुना कि मैं कितनी सुन्दर हूँ। और ग्रेटा गारबो ने लिखा है कि मैंने पहली दफे आईन में गौर से देखा और मेरे भीतर सब बदल गया। मैंने उस आदमी से कहा कि तुम्हारा धन्यवाद। क्योंकि मुझे मेरे सौन्दर्य का कोई पता ही न था, तुमने स्मृति दिला दी। उस आदमी ने दोबारा आईने में देखा और उस ग्रेटा गारबो की तरफ देखा और कहा कि लेकिन यह हुआ क्या? जब मैंने कहा था, तो तू इतनी सुन्दर न थी। मैंने तो सिर्फ एक औपचारिक, शिष्टाचार के वश कहा था। लेकिन अब मैं देखता हूं कि तू सचमुच सुन्दर हो गयी। वह आदमी एक फिलम डायरेक्टर था। और ग्रेटा गारबो को अपने साथ ले गया। ग्रेटा गारबो श्रेष्ठतम सुन्दरियों में एक बन गयी। हो सकता था कि वह जिन्दगी भर दाढ़ी पर साबुन लगाने का काम करती रहती। लेकिन एक छोटा-सा विचार और प्रतिमा, इमेज जो उसके अपने मन मन में थी, वह बदल गयी। तो असली सवाल आपके भीतर आपका तादात्म्य और आपकी प्रतिमा के बदलने का है। आप जन्मों-जन्मों से मानकर बैठे हैं कि मैं शरीर हूँ। बचपन से आपको सिखाया जा रहा है कि आप शरीर हैं। सब तरह से आपको भरोसा दिलाया जा रहा है कि आप शरीर हैं। यह आटो-हिप्नोसिस है। यह आत्म-सम्मोहन है। आप कहेंगे कि सम्मोहन से कहीं इतनी बड़ी घटना घट सकती है? तो मैं आपको दो-एक घटनाएँ बताऊँ तो शायद ख्याल में आ जाये।

(१५) पत्नी को बच्चा और पति को प्रसव-पीड़ा

अमेजान नदी के किनारे एक कबीला है आदिवासियों का। यह बहुत अनूठा है। मैंने आपसे पीछे कहा है कि फ्रेंच डाक्टर लोरेन्जो स्त्रियों को बिना दर्द के प्रसव करवा देता है सिर्फ धारणा बदलने से, सिर्फ यह कहने कि दर्द तुम्हारा पैदा किया हुआ है। तुम शिथिल हो जाओ और बच्चा पैदा हो जायेगा बिना पीड़ा के। हम यह मान भी सकते हैं कि शायद समझाने-बुझाने से स्त्री के मन

पर ऐसा भाव पड़ जाता होगा। लेकिन दर्द तो होता है। लेकिन क्या आपको कभी कल्पना हो सकती है कि पत्नी को जब बच्चा पैदा होता हो, तो पति के पेट में भी दर्द होता है। उस कबीले में होता है। और वहाँ जब पत्नी को बच्चा होता है तो एक कोठरी में पत्नी बन्द होती है, दूसरी कोठरी में पति बन्द होता है। पत्नी नहीं रोती चिल्लाती, पति रोता चिल्लाता है। पत्नी को बच्चा होता है, पति को दर्द होता है। यह हजारों साल से हो रहा है। और अब पहली दफा उस कबीले में दूसरे जाति के लोग पहुंचे, तो वे चकित हो गये कि यह क्या हो रहा है? यह हो क्या रहा है? यह तो भरोसे की बात ही नहीं मालूम पड़ती है! लेकिन पता चला कि उनके कबीलों में स्त्रियों को कभी दर्द हुआ ही नहीं, जब दर्द होता है तो पति को ही होता है। डाक्टरों ने भी परीक्षा की और पाया कि वह काल्पनिक नहीं है। दर्द पेट में हो रहा है, सारी अंतड़ियां सिकुड़ी जा रही हैं। जैसा पत्नी के पेट में होता है बच्चा के पैदा होते वक्त, वैसा पति को हो रहा है।

(१६) स्त्री सबला : पुरुष अबला

यह सब सम्मोहन है, जाति का सम्मोहन। जाति हजारों साल से ऐसा मानती रही है, वही हो रहा है। वही हो रहा है। और वही हो जाता है जो हम मानते हैं। पति को दर्द हो सकता है, अगर जाति की यह धारणा हो। इसमें कोई अड़चन नहीं है। क्योंकि हम जीते सम्मोहन में हैं। हम जो मानकर जीते हैं वही सक्रिय हो जाता है। और हमारी चेतना की मानने की क्षमता अनंत है। यह हमारी स्वतन्त्रता है, यही मनुष्य की गरिमा है। यही उसका गौरव है कि उसकी चेतना की क्षमता इतनी है कि वह जो मान ले, वही घटित हो जाता है। अगर आपने मान लिया है कि आप शरीर हैं, तो आप शरीर हो गये। और यह सिर्फ आपकी मान्यता है, यह सिर्फ आपका भरोसा है, यह सिर्फ आपका विश्वास है। क्या आपको पता है कि ऐसे कबीले हैं, जिनमें स्त्रियां ताकतवर हैं और पुरुष कमजोर हैं? क्योंकि वे कबीले सदा से ऐसा मानते रहे हैं कि स्त्री ताकतवर है, और पुरुष कमजोर है। जैसे अगर कोई आदमी यहाँ कमजोरी दिखाये, तो आप कहते हैं कैसा नामर्द है! कबीले में कोई पुरुष ऐसा नहीं कह सकता। क्योंकि वहाँ मर्द का लक्षण यही है कि वह कमजोरी दिखाये। उस कबीले में अगर स्त्रियां कभी कमजोरी दिखाती हैं तो लोग कहते हैं, कैसा मर्दों जैसा व्यवहार कर रही है। आदमी मान्यता से जीने वाला

प्राणी है और हमारी मान्यता गहरी है कि हम शरीर हैं। यह इतनी गहरी है कि नींद में भी हमें ख्याल रहता है कि हम शरीर हैं। बेहोशी में भी हमें पता रहता है कि हम शरीर हैं। इस मान्यता को तोड़ना कायोत्सर्ग की साधना का पहला चरण है। जो लोग ध्यान तक आये हैं, उन्हें तो कठिनाई नहीं पड़ेगी। लेकिन आपको तो बिना ध्यान के समझना पड़ रहा है, इसलिए थोड़ी कठिनाई पड़ सकती है। लेकिन फिर भी पहला सूत्र यह है कि 'मैं शरीर नहीं हूँ'। इस सूत्र को अगर गहरा कर लें तो अद्भुत परिणाम होने शुरू हो जाते हैं।

(१७) काशी नरेश का आपरेशन और गीता का अनेस्थीसिया

१९०८ में काशी के नरेश की अपेन्डिक्स का ऑपरेशन हुआ। नरेश ने कह दिया कि मैं किसी तरह की बेहोशी की दवा नहीं लूंगा, क्योंकि मैं होश की साधना कर रहा हूँ। ऑपरेशन जरूरी था। उसके बिना नरेश बच नहीं सकता था। चिकित्सक मुश्किल में थे। बिना बेहोशी के इतना बड़ा ऑपरेशन करना उचित नहीं था। लेकिन किसी भी हालत में मौत होनी थी। नरेश मरेगा अगर ऑपरेशन नहीं होगा। इसलिए एक जोखिम उठाना ठीक है कि होश में ही ऑपरेशन किया जाये। नरेश ने कहा कि सिर्फ मुझे आज्ञा दी जाये कि जब आप ऑपरेशन करें, तब मैं गीता का पाठ करता रहूँ। नरेश गीता का पाठ करता रहा। बड़ा ऑपरेशन था। ऑपरेशन पूरा हो गया। नरेश हिला भी नहीं। दर्द का तो उसके चेहरे पर पता ही न चला। जिन छः डॉक्टरों ने वह ऑपरेशन किया, वे चकित हो गये। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि हम हैरान हो गये। और हमने नरेश से पूछा कि हुआ क्या ? तुम्हें दर्द का पता नहीं चला ? नरेश ने कहा, जब मैं गीता पढ़ता हूँ और उसमें पढ़ता हूँ कि शरीर के मरने से तू नहीं मरता…नैनं छिदंति शस्त्राणि…जब शस्त्र से तुझे छेद दिया जाये तो तू नहीं छिदता…तब मेरे भीतर ऐसा भाव जाग जाता है कि मैं शरीर नहीं हूँ। बस इतना काफी है। जब मैं गीता नहीं पढ़ रहा होता हूँ, तब मुझे शक पैदा होने लगता है और मेरी यह मान्यता कि मैं शरीर हूँ, पीछे से लौटने लगती है। लेकिन जब मैं गीता पढ़ता होता हूँ, तब मुझे पक्का भरोसा हो जाता है कि शरीर नहीं हूँ। उस वक्त तुम मुझे काट डालो, पीट डालो, मुझे पता भी नहीं चलेगा कि तुमने क्या किया है ? पता इसलिए नहीं चलता, क्योंकि मैं उस भाव में डूबा होता हूँ, जहाँ मैं जानता हूँ कि शरीर छेद डाला जाये तो भी मैं नहीं छिदता, शरीर जला डाला जाये तो भी मैं नहीं जलता।

आपके भीतर भी भाव की स्थिति है। आपका मन कोई एक फिक्स्ड, एक थिर चीज नहीं है। उसमें फ्लक्चुएशन्स हैं, उसमें नीचे-ऊपर ज्योति होती रहती है। किसी क्षण में आप बहुत ज्यादा शरीर होते हैं, किसी क्षण में बहुत कम शरीर होते हैं। चौबीस घण्टे आपके मन की भाव-दशा एक नहीं रहती। जब आप किसी एक सुन्दर स्त्री को या सुन्दर पुरुष को देखकर उसके उसके पीछे चलने लगते हैं, तब आप बहुत ज्यादा शरीर होते हैं। तब आपका फ्लक्चुएशन भारी होता है। आप बिल्कुल नीचे उतर आते हैं, जहाँ 'मैं शरीर हूँ' रहता है। लेकिन जब आप मरघट पर किसी की लाश जलते देखते हैं, तब आपका फ्लक्चुएशन बदल जाता है। अचानक मन के किसी कोने में, शरीर को जलते देखकर, शरीर की प्रतिमा खंडित होती है, उन क्षणों को पकड़ना जरूरी होता है। जब आप बहुत कम शरीर होते हैं, उन क्षणों में यह स्मरण करना बहुत जरूरी है कि मैं शरीर नहीं हूँ। क्योंकि जब आप बहुत ज्यादा शरीर होते हैं, तब यह स्मरण करना बहुत काम नहीं करेगा, क्योंकि पर्त इतनी मोटी होता है कि आपके भीतर प्रवेश नहीं कर पायेगी। यह आपको ही जाँचना पड़ेगा कि किन क्षणों में आप सबसे कम शरीर हैं। यद्यपि कुछ निश्चित क्षण ही हैं, जिनमें सभी कम शरीर होते हैं। वह क्षण कायोत्सर्ग में आपके लिए उपयोगी होगा।

(१८) संधिकाल का रूपांतरण

जब भी सूर्य डूबता है या ऊगता है, तब आपके भीतर भी रूपांतरण होते हैं। अब तो वैज्ञानिक इस पर बहुत ज्यादा राजी हो गये हैं कि सुबह जब सूर्य ऊगता है, तब सारी प्रकृति में ही रूपांतरण नहीं होता, आपके शरीर में भी होता है। क्योंकि आपका शरीर प्रकृति का एक हिस्सा है। तब आकाश ही नहीं बदलता, आपके भीतर का आकाश भी बदलता है। तब पक्षी ही गीत नहीं गाते हैं, तब पृथ्वी ही प्रफुल्लित नहीं हो जाती है, तब वृक्ष ही फूलों से नहीं लद जाते, आपके भीतर भी वह जो मिट्टी है वह भी प्रफुल्लित हो जाती है। क्योंकि वह उसी मिट्टी का हिस्सा है, वह कोई अलग चीज नहीं है। तब सागर में ही आन्दोलन के फर्क नहीं पड़ते, आपके भीतर भी जो जल है उसमें भी फर्क पड़ते हैं। और आप जानकर हैरान होंगे कि आपके भीतर जो जल है, वह ठीक वैसा है जैसा सागर में। उसमें नमक की उतनी ही मात्रा है जितनी सागर के जल में। आपके शरीर में थोड़ा-बहुत जल नहीं है, कोई ८५ प्रतिशत

पानी है। वैज्ञानिक अब कहते हैं कि जब सागर के पास आपको अच्छा लगता है, तो अच्छा लगने का कारण आपके भीतर ८५ प्रतिशत सागर का होना है। और वह जो ८५ प्रतिशत सागर है आपके भीतर, वह-बाहर के विराट सागर से आन्दोलित हो जाता है। एक हार्मनी, एक रिजोनेंस, एक प्रतिध्वनि उसमें होनी शुरू हो जाती है।

(१६) आपको जंगल में अच्छा क्यों लगता है ?

जब आपको जंगल में जाकर हरियाली को देखकर बहुत अच्छा लगता है, तो उसका कारण आप नहीं हैं। आपके शरीर का कण-कण जंगल की हरियाली रह चुका है। वह रिजोनेंट होता है। वह हरे वृक्ष के नीचे जाकर कंपित होने लगता है। वह उससे संबंधित है, उसका हिस्सा है। इसलिए प्रकृति के पास जाकर आपको जितना अच्छा लगता है उतना आदमी की बनायी हुई चीजों के पास जाकर अच्छा नहीं लगता है। क्योंकि वहाँ कोई रिजोनेन्स पैदा नहीं होती। बम्बई की सीमेण्ट की सड़क पर उतना अच्छा नहीं लग सकता, जितना तब जब सोंधी मिट्टी की गंध आ रही हो और आप मिट्टी पर चल रहे हों और आपके पैर धूल को छू रहे हों। तब आपके शरीर और मिट्टी के बीच एक संगीत प्रवाहित होना शुरू हो जाता है।

जब सुबह सूरज निकलता है तब आपके भीतर भी बहुत कुछ घटित होता है। वह संक्रमण की वेला है, उसको भारत के लोगों ने संध्या कहा। संध्या का अर्थ होता है, 'द पीरियड आफ ट्रांजीशन' बदलाहट का वक्त। बदलाहट के वक्त में आपके भीतर आपकी जो व्यवस्थित धारणाएँ हैं, उनको बदलना आसान है। बदलाहट के वक्त में व्यवस्थित धारणाओं को बदलना आसान है। क्योंकि तब सारे तत्व अराजक हो जाते हैं, भीतर बदलाहट हो गयी होती है, सब अस्त-व्यस्त हो गया होता है। इसलिए हमने संध्या को स्मरण का क्षण बनाया। संध्या प्रार्थना, भजन, धुन, स्मरण, ध्यान का क्षण है। उस क्षण में आसानी से आप स्मरण कर सकते हैं। सुबह और साँझ कीमती वक्त हैं। रात्रि १२ बजे, जब रात्रि पूरी तरह सघन हो जाती है और सूर्य हमसे सर्वाधिक दूर होता है, तब भी एक बहुत उपयोगी क्षण है। तांत्रिकों ने उसका बहुत उपयोग किया है। महावीर रात-रात भर जागते खड़े रहे। महावीर ने उसका बहुत उपयोग किया है। आधी रात जब सूर्य आपसे सर्वाधिक दूर होता है तब भी आपकी स्थिति बहुत अनूठी होती है। आपके भीतर सब शांत हो गया होता है। जैसे प्रकृति में सब शांत हो गया होता है। वृक्ष झुककर सो गये होते हैं, जमीन भी

सो गयी होती है। सब सो गया होता है। आपके शरीर में भी सब सो गया होता है। इस सोये हुए क्षण का आप उपयोग कर सकते हैं। शरीर जिद नहीं करेगा आपके विरोध में, राजी हो जायेगा। जैसे कहेंगे कि मैं शरीर हूँ, तो शरीर नहीं कहेगा कि नहीं हूँ। शरीर सोया हुआ है। इस क्षण में आप कहेंगे कि मैं शरीर नहीं हूँ तो शरीर कोई रेसिस्टेंस, कोई प्रतिरोध खड़ा नहीं करेगा। इसलिए आधी रात का क्षण कीमती रहा है।

(२०) चेतना के बदलते हुए गियर

या फिर जब आप रात सोने जाते हैं, जागने से जब आप सोने में जाते हैं, तब आपके भीतर गियर बदलता है। आपने कभी ख्याल किया है कार में गियर बदलते हुए ? जब आप एक गियर से दूसरे गियर में गाड़ी को डालते हैं, तो बीच में न्यूट्रल से गुजरते हैं। उस जगह से गुजरते हैं, जहाँ कोई गियर नहीं होता। क्योंकि उसके बिना गुजरे आप दूसरे गियर में गाड़ी को डाल नहीं सकते। तो जब रात आप सोते हैं और जागने से नींद में जाते हैं तो आपकी चेतना का पूरा गियर बदलता है और एक क्षण को आप न्यूट्रल में, तटस्थ गियर में होते हैं, जहाँ न आप शरीर होते हैं, न आत्मा। जहाँ आपकी कोई मान्यता काम नहीं करती। उस क्षण में आप जो भी मान्यता दोहरा देंगे वह आपमें गहरा परिवर्तन कर जायेगी। इसलिए रात सोते हुए यह दोहराते हुए सोना कि मैं शरीर नहीं हूँ। आप दोहराते रहें और आपको पता न चले कि कब नींद आ गयी। आपका दोहराना तभी बन्द हो, जब अपने से बन्द हो जाये, तो शायद उस क्षण के साथ सम्बन्ध बैठ जाये। उस क्षण में अगर यह भाव प्रवेश कर जाये कि मैं शरीर नहीं हूँ, जब आप चेतना रूपान्तरित कर रहे हैं तो वह भाव आपके गहरे अचेतन में चला जाता है।

(२१) नींद में दी जाने वाली शिक्षा

अभी रूस में एक शिक्षा की नयी पद्धति ईजाद हुई है हिप्नोपीडिया—नींद में शिक्षा देना। उसमें वे इसी बात का प्रयोग कर रहे हैं। इसलिए बहुत पुराने दिनों से लोग प्रभु स्मरण करते हुए, आत्म स्मरण करते हुए सोते थे। मैं सोचता हूँ कि आप जो फिल्म देखकर आते हैं, उसकी कहानी को दोहराते हुए सोते हैं। उस क्षण जो भी आप दोहरा रहे हैं, वह आपके भीतर गहरा चला जायेगा। अगर आप गलत दोहराते हैं, तो आप आत्महत्या कर रहे हैं। आपको पता नहीं है कि आप क्या कर रहे हैं। हिप्नोपीडिया में रूस में आज कई लाख विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं। रेडियो स्टेशन से ठीक वक्त पर उन

सबको सूचना मिलती है कि वे दस बजे सो जायें। जैसे ही १० बजे, वे सो जाते हैं। १० बजकर १५ मिनट पर उनके कान के पास तकिये में लगा हुआ यन्त्र उन्हें सूचनाएँ देनी शुरू कर देता है, जो भी उन्हें सीखना है। अगर फ्रेंच भाषा सीखनी है, तो फ्रेंच भाषा की सूचनाएं शुरू हो जाती हैं। और वैज्ञानिक चकित हुए हैं कि जागने में हम जो चीज तीन साल में सीख सकते हैं, सोने में हम तीन सप्ताह में सीख जाते हैं।

इससे बहुत जल्दी दुनिया में क्रांति घटित हो जायेगी और स्कूल में बच्चे दिन में न पढ़कर रात में ही जाकर सो जाया करेंगे। दिन भर खेल सकते हैं। एक अर्थ में अच्छा होगा, क्योंकि बच्चों के खेल छिन जाने से भारी नुकसान हुए हैं, वे खेल उनको वापस मिल जायेंगे। या रात घर में भी वे सो सकते हैं, स्कूल जाने की कोई जरूरत नहीं होगी। उनको वहाँ भी शिक्षा दी जा सकती है। वे कभी-कभी परीक्षा देने स्कूल जा सकते हैं। अभी तो नींद में परीक्षा लेने का कोई उपाय नहीं है। परीक्षा जागने में लेनी पड़ेगी। लेकिन नींद के क्षण बहुत ज्यादा सूक्ष्म रूप से ग्राहक और रिसेप्टिव हैं, इस बात को वैज्ञानिकों ने स्वीकार कर लिया है।

(२२) सर्वाधिक ग्राहक क्षण

इसमें भी सर्वाधिक ग्राहक क्षण वह है, जब आप सुबह सोने से जागरण में बदल जाते हैं, तब फिर एक ग्राहक क्षण आता है। उस क्षण भी आप स्मरण करते हुए होते हैं। जब सुबह नींद खुले तब आप पहले स्मरण यह करें कि मैं शरीर नहीं हूं, आँख बाद में खोलें, कुछ और बाद में सोचें। जैसे ही पता चले कि नींद टूट गयी, पहला स्मरण करें कि मैं शरीर नहीं हूं। और ध्यान रहे, अगर आप रात आखिरी स्मरण यही किये हैं कि मैं शरीर नहीं हूं, तो सुबह अपने आप यह पहला स्मरण बन जायेगा, क्योंकि जो लोग अध्ययन करते हैं वे कहते हैं कि रात का आखिरी विचार, सुबह का पहला विचार होता है। आप अपनी जाँच करेंगे तो आपको पक्का पता चल जायेगा कि रात का आखिरी विचार सुबह का पहला विचार होता है। क्योंकि जहाँ पर आप विचार को छोड़कर सो जाते हैं, विचार वहीं प्रतीक्षा करता है। सुबह जब आप जागते हैं, वह फिर आप पर सवारी कर लेता है। जिस विचार को आप रात छोड़कर सो गये हैं, वह सुबह आपका पहला विचार बनेगा। अक्सर आप क्रोध, काम, लोभ के किसी विचार को रात छोड़कर सो जाते हैं, सुबह से वह फिर आप पर सवारी कर लेता है। वह बहुत ज्यादा सेन्सिटिव, सम्वेदनशील क्षण

है—सूर्य की बदलाहट या आपकी चेतना की बदलाहट का क्षण। बीमारी से जब आप स्वस्थ हो रहे हों या स्वस्थ से अचानक आप बीमार हो गये हों अथवा अगर रास्ते पर आप जा रहे हों और कार का एकदम से एक्सिडेन्ट हो जाये तो उस क्षण का उपयोग कर सकते हैं। अगर कार आपकी एकदम टकरा गयी हो, तो उस वक्त आपके भीतर इतना परिवर्तन होता है, चेतना इतने जोर से झटके से बदलती है कि अगर आप उस वक्त स्मरण कर लें कि मैं शरीर नहीं हूँ तो बरसों स्मरण करने से जो नहीं होगा, वह एक स्मरण करने से हो जायेगा। जब आपकी कार टकराती है तब आपको एकदम ख्याल आता है कि मरा, मैं शरीर हूँ, अब मरा, गया। इसलिए एक्सिडेन्ट का, दुर्घटना का उपयोग किया जा सकता है। 'मैं शरीर नहीं हूँ' यह आपके भीतर गहरा जिस भाँति बैठ सके, वे सब प्रयोग करने जैसे हैं। तो कायोत्सर्ग की यह पहली घटना घटती है। लेकिन वह नकारात्मक है।

(२३) सम्भोग के बाद के क्षणों में

दूसरा विधायक अनुभव भी जरूरी है कि मैं आत्मा हूँ। इस विधायक अनुभव को भी स्मरण रखना कीमती है। इसको स्मरण रखने का भी क्षण है। इस स्मरण को रखने का भी संक्रमण काल है। इस स्मरण को गहरा करने का भी आपके भीतर अवसर और मौका है। कब? जैसे आप सम्भोग के बाद वापस लौट रहे हैं। जब आप सम्भोग के बाद वापस लौट रहे होते हैं, तो आप जानकर हैरान होंगे कि उस वक्त आप सबसे ज्यादा कम शरीर हो जाते हैं। काम-वासना के बाद आप जब वापस लौटते हैं, तब आप सिर्फ फ्रस्ट्रेशन और विषाद में होते हैं। ऐसा लगता है कि व्यर्थ भूल, गलती और अपराध में गये। न जाते तो बेहतर था। यह ज्यादा देर नहीं टिकेगी बात। घड़ी दो घड़ी में आप अपनी जगह वापस लौट आयेंगे। लेकिन सम्भोग के क्षण के बाद शरीर में इतने झटके लगते हैं कि उसके बाद आपको 'शरीर नहीं' की प्रतीति और 'मैं आत्मा हूँ' की प्रतीति करने का अद्भुत मौका होता है। तन्त्र ने इसका पूरा उपयोग किया है। इसलिए आप में से कोई अगर तंत्र से थोड़ा भी परिचित रहा है तो यह जानकर हैरानी होगी कि तंत्र ने संभोग का भी उपयोग किया है ध्यान के लिए। क्योंकि सम्भोग के बाद जितने गहरे में यह बात मन में उठायी जा सकती है कि मैं आत्मा हूँ, उतनी किसी और क्षण में उठानी बहुत मुश्किल है। क्योंकि उस वक्त शरीर टूट गया होता है। शरीर की आकांक्षा बुझ गयी होती है। शरीर के साथ तादात्म्य जोड़ने का भाव मर गया होता है। यद्यपि यह ज्यादा देर नहीं टिकेगा। और अगर आपकी आदत मजबूत

हो गयी है, है तो आपको पता ही नहीं चलेगा। अक्सर लोग सम्भोग के बाद चुपचाप सो जायेंगे। सोने के सिवाय उन्हें कुछ भी नहीं सूझेगा। लेकिन सम्भोग के बाद का क्षण बहुत कीमती हो सकता है। लेकिन हमें तो ख्याल भी नहीं रहता है कि हम भूल करते हैं, अपराध करते हैं।

(२४) वेटिकन के पोप और पापों की सूची

मैंने सुना है कि वेटिकन के पोप ने अपने एक वक्तव्य में कहा कि ईसाइयत में १४३ पाप हैं, निन्दित पाप। हजारों पत्र वेटिकन के पोप के पास पहुँचे कि हमें पता ही नहीं था कि इतने पाप हैं, कृपा करके पूरी सूची भेजें। वेटिकन का पोप बहुत हैरान हुआ। इतने लोग क्यों उत्सुक हैं सूची के लिए। मुल्ला नसरुद्दीन ने भी उसको पत्र भेजा। उसने सच्ची बात लिख दी। उसने लिखा कि जब से तुम्हारा वक्तव्य पढ़ा है, तब से मुझे ऐसा लग रहा है कि हम कितना चूकते रहे। इतने पाप हमने किये ही नहीं। दो-चार पाप ही करके अपनी जिन्दगी गुजार रहे हैं। जल्दी से भेजें सूची। जिन्दगी बिल्कुल अर्थहीन मालूम पड़ रही है। जब से यह सुना कि १४३ पाप हैं, तब से लग रहा है कि कितना हम मिस पर गये, कितना हम चूक गये। और जिन्दगी थोड़ी बची है।

आदमी का जो मन है, वह ऐसा ही है। आपको खबर लगे कि १४३ पाप हैं, तो आप भी घर जाकर सोचेंगे और गिनती करेंगे। दो-चार-पाँच ही गिनती में आते हैं। बहुत ज्यादा पाप हुए तो गिनने के लिए दस उँगलियाँ काफी हैं। बाप रे, १४३ ? चूक गये, जिन्दगी बेकार गयी, खो गये मौके। इतने हो सकते थे और नहीं किये ! मुल्ला जिस दिन मर रहा था, पुरोहित ने उससे कहा कि अब क्षमा माँग लो परमात्मा से। पश्चात्ताप कर लो। मुल्ला ने कहा, क्या खाक पश्चात्ताप करूँ। मैं पश्चात्ताप यह कर रहा हूँ कि जो पाप मैंने नहीं किये, वे कर ही लिये होते तो अच्छा था। क्योंकि जब माफी ही माँगनी थी, तो एक के लिए माँगा कि दस के लिए माँगा, क्या फर्क ! पर तुम कह रहे हो कि परमात्मा दयालु है, अगर वह दयालु है, एक भी माफ कर देता है, दस भी माफ कर देता, तो हम नाहक चूके। पूरे ही कर लेते तो ठीक था। मैं पछता रहा हूं। मुल्ला ने कहा, जरूर पछता रहा हूँ लेकिन उन पापों के लिये जो मैंने नहीं किये हैं।

(२५) हाय ! हमने जम कर पाप न किये

मरते वक्त आदमी पछताता है उन पापों के लिए, जो उसने नहीं किये हैं। लेकिन किसी भी पाप के करने के बाद का जो क्षण है, वह बड़ा उपयोगी

है। अगर आपने क्रोध किया है, तो क्रोध के बाद का जो क्षण है उसका उपयोग करें—कायोत्सर्ग के लिए। उस वक्त आसान होगा आपको मानना कि मैं आत्मा हूँ। उस क्षण शरीर से हटना आसान होगा। अगर शराब पी ली हो और सुबह 'हैंगोवर' चल रहा हो, उस वक्त आसान होगा मानना कि मैं आत्मा हूँ। उस वक्त शरीर के प्रति एक तरह की ग्लानि का भाव होता है और इस तरह का भाव सहज, सरलता से पैदा होता है। जब बीमारी से उठ रहे हैं, तब आसान होगा मानना। अस्पताल में जाकर खड़े हो जायें, वहाँ मानना बहुत आसान होगा कि मैं शरीर नहीं हूँ। जायें वहाँ, विचित्र-विचित्र प्रकार से लोग लटके हुए हैं। किसी की टाँगें बँधी हुई हैं, किसी की गर्दन बँधी हुई है। वहाँ खड़े होकर पूछें कि मैं शरीर हूं, तो वे जो सामने लटके हुए रूप दिखायी पड़ेंगे, वही काफी हैं उत्तर के लिए। वहाँ आसान होगा। मरघट पर जाकर सोचना आसान होगा कि मैं शरीर नहीं हूँ। जिन क्षणों में भी आसानी लगे स्मरण करने की कि मैं आत्मा हूँ, उनको चूकें मत, स्मरण करें। दो स्मरण जारी रखें। निषेध रूप से कि 'मैं शरीर नहीं हूँ', विधायक रूप से कि 'मैं आत्मा हूँ'।

और तीसरी, आखिरी बात। शरीर का जो तत्त्व है वह उसी तत्त्व से संबंधित है, जो हमारे बाहर फैला हुआ है। मेरी आँख में जो प्रकाश है, वह सूरज का है। मेरे हाथों में जो मिट्टी है, वह पृथ्वी की है; मेरे शरीर में जो पानी है, वह पानी का है, इसको स्मरण करें और निरंतर स्मरण करते रहें। जो जिसका है, उसी का है। धीरे-धीरे आपके भीतर वह चेतना अलग खड़ी होने लगेगी, जो शरीर नहीं है। और वह चेतना खड़ी हो जाये और ध्यान के साथ उस चेतना का प्रयोग हो, तो आप कायोत्सर्ग कर पायेंगे। जब ध्यान अपनी प्रगाढ़ता में आयेगा, परिपूर्णता में और शरीर लगेगा कि छूटता है, तब आपका मन उसे पकड़ने का नहीं होगा। आप कहेंगे, छूटता है तो धन्यवाद, जाता है तो धन्यवाद। जाये तो जाये, धन्यवाद। इतनी सरलता से जब आप ध्यान में शरीर से अपने को अलग करने में समर्थ हो जायेंगे उसी दिन आप मृत्यु के पार अमृत के अनुभव को उपलब्ध हो जायेंगे। उसके बाद फिर कोई

मृत्यु नहीं है। मृत्यु शरीर-मोह का परिणाम है। अमरत्व का बोध शरीर-मुक्ति का परिणाम है। इसे महावीर ने बाहवाँ तप कहा है और अन्तिम। क्योंकि इसके बाद कुछ करने को शेष नहीं रह जाता। इसके बाद वह पा लिया, जिसे पाने के लिए दौड़ थी, वह जान लिया जिसे जानने के लिए प्राण प्यासे थे। वह जगह मिल गया जिसके लिए इतने रास्तों पर यात्रा की थी। वह फूल खिल गया, वह सुगन्ध बिखर गयी, वह प्रकाश जल गया जिसके लिए अनन्त-अनन्त जन्मों तक भटकाव है।

कायोत्सर्ग विस्फोट है, एक्सप्लोजन है। लेकिन उसके लिए भी तैयारियां करनी पड़ेंगी। उसके लिए यही तैयारी करनी पड़ेगी और ध्यान के साथ उस तैयारी को जोड़ देना पड़ेगा। ध्यान और कायोत्सर्ग जहां मिल जाते हैं, वही व्यक्ति अमरत्व को पा लेता है।

(२६) तब आदमी को देवता नमस्कार करते हैं!

ये महावीर के १२ तप मैंने कहे। सूत्र का एक ही अंश पूरा हो पाया। अभी एक ही पंक्ति पूरी हो पायी। उसकी दूसरी पंक्ति बाकी है। लेकिन उसमें ज्यादा कहने को नहीं है। दूसरी पंक्ति पूरी बाकी है। महावीर ने कहा है: "धर्म मंगल है। कौन-सा धर्म? अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म। और जो इस धर्म को उपलब्ध हो जाता है, जो इस धर्म में लीन हो जाता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।" यह दूसरा हिस्सा इस सूत्र का है। सुनते वक्त आपको ख्याल में भी नहीं आया होगा कि महावीर जब यह कह रहे हैं कि उसे देवता भी नमस्कार करते हैं, तो बहुत बड़ी क्रान्तिकारी बात कह रहे हैं। महावीर के वक्तव्य के पहले आदमी देवताओं को नमस्कार करते हैं। इसके पहले कभी किसी देवता ने आदमी को नमस्कार नहीं किया। यह पहला वक्तव्य है संग्रहीत, जिसमें महावीर ने कहा है कि ऐसे मनुष्य को देवता भी नमस्कार करते हैं। सिर्फ वैदिक धर्म देवताओं को नमस्कार करनेवाला है। आपने सुनते वक्त, रोज ही दोहराया है। आपको ख्याल में नहीं आया होगा कि इसमें कोई खास बात है, कोई बड़ी क्रान्ति का सूत्र है। महावीर जिस समाज में पैदा हुए थे, वह सब

देवताओं को नमस्कार करनेवाला समाज था। उस समाज में महावीर का यह कहना कि ऐसे मनुष्य को देवता भी नमस्कार करते हैं, बड़ा क्रान्तिकारी वक्तव्य है। हम भी सोचेंगे कि देवता क्यों नमस्कार करेंगे मनुष्य को।

देवता तो मनुष्य से ऊपर हैं। लेकिन महावीर नहीं कहते। महावीर कहते हैं, मनुष्य से ऊपर कोई भी नहीं है। मनुष्य की डिगनिटी और मनुष्य की गरिमा और गौरव का ऐसा वक्तव्य दूसरा नहीं है। महावीर कहते हैं मनुष्य से ऊपर कुछ भी नहीं है, लेकिन साथ ही वे यह भी कहते हैं कि मनुष्य से नीचे जानेवाला भी और कोई नहीं है। मनुष्य इतना नीचे जा सकता है कि पशु उससे ऊपर पड़ जायेंगे और मनुष्य इतना ऊपर जा सकता है कि देवता उससे नीचे पड़ जायें। मनुष्य इतना गहरा उतर सकता है पाप में कि कोई पशु वैसा नहीं कर सके। सच तो यह है कि पशु कम पाप करते हैं। आदमियों को देखकर पशुओं के पाप का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। तो मनुष्य नर्क तक नीचे उतर सकता है, स्वर्ग तक ऊपर जा सकता है। देवता पीछे पड़ जायें, वहां वह खड़ा हो सकता है। पशु आगे निकल जायें, वहां वह उतर सकता है। मनुष्य की यह जो सम्भावना है, यह सम्भावना विराट है। इस सम्भावना में पाप भी आ जाता है।

(२७) पुण्य पाप दोउ बंधन कीन्हा

लेकिन देवताओं के ऊपर क्या स्थिति बनती होगी ? यह तो महावीर ने कहा है कि नर्क मनुष्य के दुःख का फल है, स्वर्ग मनुष्य के पुण्यों का फल है। लेकिन नर्क भी चुक जाता है, पाप का फल भी समाप्त हो जाता है, सिर्फ एक जगह कभी समाप्त नहीं होती—जब कोई आदमी पाप और पुण्य दोनों के पार उठ जाता है। पुण्य भी कर्म है, पाप भी कर्म है। पाप से भी बंधन लगता है—पुण्य से भी। महावीर ने कहा, पाप का बंधन लोहे की जंजीरों जैसा है। पुण्य से भी बंधन लगता है, वह सोने के आभूषणों जैसा है। लेकिन दोनों में बंधन है। महावीर कहते हैं : वह मनुष्य जो पाप और पुण्य दोनों के पार उठ जाता है, जो कर्म के ही पार उठ जाता है, और स्वभाव में ठहर जाता है, वह देवताओं के भी ऊपर उठ जाता है, वह स्वर्ग के भी ऊपर उठ जाता है।

आपने दो शब्द सुने हैं, महावीर और अनेक धर्म उन दो शब्दों का उपयोग करते हैं—स्वर्ग और नर्क। महावीर एक नये शब्द का भी उपयोग करते हैं—मोक्ष। तीन शब्द उपयोग करते हैं महावीर। नर्क, वे कहते हैं उस चित्त दशा को, जहाँ पाप का फल मिलता है। स्वर्ग, वे कहते हैं उस चित्त दशा को, जहाँ पुण्य का फल मिलता है। मोक्ष, वे कहते हैं उस चेतना की अवस्था को, जहाँ सब कर्म समाप्त हो जाते हैं और चेतना अपने स्वभाव में लीन हो हो जाती है। निश्चित हो वैसी चित्त दशा में देवता भी प्रणाम करें मनुष्य को तो आश्चर्य नहीं। अभी तो पशु भी हँसते हैं।

(२८) डार्विन के बन्दर और उनकी औलादें

मैंने एक मजाक सुना है। मैंने सुना है कि दूसरा महायुद्ध हो गया और सब समाप्त हो गया, कहीं कोई आवाज नहीं सुनायी पड़ती थी, तो एक घाटी में एक गुफा से एक बन्दर बाहर निकला। उसके पीछे उसकी प्रेयसी बाहर निकली। वह बन्दर उदास बैठ गया और उसने अपनी प्रेयसी से कहा, क्या सोचती हो? 'शैल वी स्टार्ट इट आल ओवर अगेन?' क्या हम आदमी को फिर पैदा करें? फिर से दुनिया शुरू करें? डार्विन कहता है कि आदमी बन्दरों से आया है। कभी तीसरा महायुद्ध हो जाये तो बन्दरों को चिन्ता फिर होगी कि क्या करें। लेकिन वह बन्दर कहता है, 'शैल वी स्टार्ट इट आल ओवर अगेन?' क्या फिर करने जैसा भी है या अब रहने दें?

सुना है मैंने कि जब डार्विन ने कहा कि आदमी बन्दरों से पैदा हुआ है, तो आदमी ही नाराज नहीं हुए, बन्दर भी नाराज हुए। क्योंकि बन्दर आदमी को सदा अपने एक अन्श की तरह देखते रहे हैं, जो रास्ते से भटक गया। लेकिन जब डार्विन ने कहा, यह 'इव्होल्यूशन, है, विकाश है, तो बन्दर नाराज हुए। उन्होंने कहा, इसको हम विकास नहीं मानते। यह आदमी हमारा पतन है। लेकिन बन्दरों की यह खबर हम तक नहीं पहुँची। इधर आदमी बहुत नाराज हुए, क्योंकि आदमी मानते थे कि हम ईश्वर से पैदा हुए हैं और डार्विन ने कहा बन्दर से, तो आदमी को बहुत दुःख लगा। उसने कहा, यह कैसे हो

सकता है ? हम ईश्वर के बेटे हैं । यह सुनकर बन्दरों को हँसी आ गयी कि आदमी जैसा है, वैसी हालत में तो पशु भी उसको प्रणाम नहीं करेंगे ।

महावीर तो आदमी की उस स्थिति की बात कर रहे हैं, जैसा वह हो सकता है, जो उसकी अन्तिम संभावना है, जो उसमें प्रकट हो सकता है । जब उसका बीज पूरा खिल जाये और फूल बन जाये तो निश्चित ही देवता भी उसे नमस्कार करते हैं ।

ऐसे ३१४ सूत्र हैं । अब एक सूत्र पूरा हुआ । लेकिन इस सूत्र की मैंने इस भांति बात की है कि अगर यह एक सूत्र भी आपकी जिन्दगी में पूरा हो जाये, तो बाकी ३१३ की कोई जरूरत नहीं है । सागर की एक बूंद भी हाथ में आ जाये, तो सागर का सब राज हाथ में जाता है और एक बूंद के रहस्य को भी कोई समझ ले तो पूरे सागर का भी रहस्य समझ में आ जाता है । दूसरी बूंद को इसीलिए समझना पड़ता है कि एक बूंद से नहीं समझ पड़ा। दूसरी बूंद को समझना पड़ता है, फिर तीसरी बूंद को समझना पड़ता है । लेकिन एक बूंद भी अगर पूरी समझ में आ जाये, तो सागर में जो भी है वह समझ में आ जाता है ।

इस एक सूत्र में मैंने कोशिश की कि धर्म की पूरी बात आपके ख्याल में आ जाये । ख्याल में शायद आ भी जाये, लेकिन ख्याल कितनी देर टिकता है ! धुएँ की तरह खो जाता है । ख्याल से काम नहीं चलेगा । जब बात ख्याल में हो, तभी जल्दी करना कि किसी तरह वह कृत्य बन जाये, जीवन बन जाये । इसके लिए जल्दी करना । कहते हैं कि जब लोहा गर्म हो, तभी चोट करना चाहिए । अगर थोड़ा भी लोहा गर्म हुआ हो, तो उस पर चोट करना शुरू करना चाहिए । समझने से कुछ समझ में न आयेगा । इतना ही समझ में आ जाये कि उस समझ से करने की कोई दिशा खुलती है, तो पर्याप्त है ।

* समाप्त *

भगवान् श्री रजनीश हिन्दी साहित्य

१	महावीर मेरी दृष्टि में	१०.००
२	महावीर-वाणी	३०.००
३	जिन खोजा तिन पाइयाँ	२०.००
४	ईशावास्योपनिषद्	१२.००
५	प्रेम है द्वार प्रभु का	८.००
६	समुन्द समाना बुन्द में	७.००
७	घाट भुलाना बाट बिनु	७.००
८	सूली ऊपर सेज पिया की	७.००
९	सत्य की पहली किरण	६.००
१०	संभावनाओं की आहट	६.००
११	अन्तर्वीणा	६.००
१२	ढाई आखर प्रेम का	६.००
१३	मैं कहता आँखन देखी	६.००
१४	साधना-पथ	५.००
१५	मिट्टी के दिये	५.००
१६	संभोग से समाधि की ओर	५.००
१७	अन्तर्यात्रा	५.००
१८	अस्वीकृति में उठा हाथ (भारत, गाँधी और मेरी चिन्ता)	५.००
१९	प्रेम के फूल	५.००
२०	गीता, दर्शन (पुष्प-५)	६.००
२१	गहरे पानी पैठ	५.००
२२	क्रांति-बीज	४.००
२३	पथ के प्रदीप	४.००
२४	सत्य की खोज	४.००
*२५	प्रभु की पगडण्डियाँ	४.००
२६	समाजवाद से सावधान	४.००
*२७	ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया	४.००
*२८	गीता-दर्शन (पुष्प-२)	४.००
२९	मैं कौन हूँ ?	३.००
३०	शून्य की नाव	३.००
*३१	अज्ञात की ओर	२.००
*३२	नये संकेत	२.००
३३	सिंहनाद	१.५०
३४	प्रेम और विवाह	१.५०
३५	प्रगतिशील कौन ?	१.५०
३६	विद्रोह क्या है ?	१.५०
३७	ज्योतिष : अद्वैत का विज्ञान	१.५०
३८	ज्योतिष अर्थात् अध्यात्म	१.५०
*३९	जन-संख्या विस्फोट : समस्या और समाधान (परिवार नियोजन का परिवर्धित संस्करण)	१.५०
*४०	सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	१.५०
*४१	सारे फासले मिट गये	१.२५
*४२	कुछ ज्योतिर्मय क्षण	१.००
*४३	सूर्य की ओर उड़ान	१.००
*४४	मन के पार	१.००
४५	युवक और यौन	१.००
*४६	नये मनुष्य के जन्म की दिशा	०.७५
*४७	प्रेम के पंख	०.७५
*४८	अमृत-कण	०.६०
*४९	अहिंसा-दर्शन	०.५०
*५०	पूर्व का धर्म : पश्चिम का विज्ञान	०.५०
५१	क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार	०.३५

*५२ बिखरे फूल ०.३५
५३ क्रांति की नयी दिशा : नई बात ०.३०
*५४ युवक कौन ? ०.३०
५५ संस्कृति के निर्माण में सहयोग (जीवन जागृति केन्द्र : क्या, क्यों, कैसे ?) ०.३०
५६ अवधिगत संन्यास ०.३०
५७ व्यस्त जीवन में ईश्वर की खोज ०.२५

प्रेस के लिए बड़ी पुस्तकें

५८ मैं मृत्यु सिखाता हूँ
५९ निर्वाण उपनिषद्
६० ताओ उपनिषद् (दो खण्डों में, प्रथम १९ सूत्र)
६१ कृष्ण : विराट की सारभूत अभिव्यक्ति
६२ गीता-दर्शन (४ खण्डों में प्रथम दस अध्याय)
६३ नव-संन्यास क्या ?
६४ मुल्ला नसरुद्दीन
६५ शून्य के पार
६६ बूंद-बूंद से घट भरे (६ अंग्रेजी वार्ताओं का अनुवाद)

छोटी पुस्तिकाएँ प्रेस में

६७ क्रांति की वैज्ञानिक प्रक्रिया
६८ धर्म और राजनीति
६९ ध्यान : नये आयाम (सक्रिय ध्यान और कीर्तन ध्यान)
७० ध्यान : एक वैज्ञानिक दृष्टि

सूचना—*चिह्न अंकित पुस्तकें पुनर्मुद्रण के लिए प्रेस में लम्बित हैं।

गुजराती में अनुवादित साहित्य

१ अन्तर्यात्रा ५.००
२ संभोगथी समाधि तरफ ४.००
३ साधना-पथ ३.००
४ पन्थना प्रदीप ३.००
५ माटीना दिवा ३.००
६ हूँ कोण छूं ? ३.००
७ क्रान्ति-बीज २.५०
८ अज्ञात प्रति २.००
९ नवो संकेत १.७५
१० सत्यना अज्ञात सागरनुं आमंत्रण १.५०
११ मननी पार १.५०
१२ सूर्य तरफनुं उड्डयन १.००
१३ जीवन अने मृत्यु १.००
१४ केटलीक ज्योतिर्मय क्षण ०.७५
१५ नवा मनुष्यना जन्मनी दिशा ०.७५
१६ प्रेमनी पांखे ०.७५
१७ अमृत-कण ०.५०
१८ अहिन्सा-दर्शन ०.५०
१९ तरुण-विद्रोह ०.५०
२० भ्रान्त समाजवाद ०.३०
२१ अतीतनी आलोचना, भावीन् चिन्तन ०.३५

२२	गांधीमां डोकियुं अने समाजवाद	०·३५
२३	अभिनव संन्यास	०·५०
२४	ध्यान	०·७५
२५	प्रेम	०·७५
२६	परिवार	०·७५
२७	संकल्प	०·७५
२८	परिवार नियोजन	०·७५
२९	प्रेमनी प्राप्ति	०·४०
३०	तीर्थ	२·००
३१	सहज योग	१·००
३२	अकाम	१·००
३३	संन्यास अने संसार	१·००
३४	प्रेमनां फूलो	५·००
३५	व्यस्त जीवनमां ईश्वरनी शोध	०·६०
३६	धर्म—विचार नहि उपचार	०·६०
३७	क्रान्ति ी वैज्ञानिक प्रक्रिया	०·६०
३८	उठ जाग जुवान	०·५०
३९	प्रेम, परमात्मा अने परिवार	०·७५
४०	परमात्मा क्यां छे ?	०·७५
४१	गाँधीवाद वैज्ञानिक दृष्टिअे	०·५०
४२	गाँधोजीनी अहिन्सा	०·५०
४३	धर्म अने राजकारण	०·४०
४४	समाजवादथी सावधान	०·७५
४५	सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्	०·६०
४६	सन्त, ईश्वर अने अनुभूति	०·७५
४७	बन्धन अने मुक्ति	०·७५
४८	ताओ	०·६०
४९	पूर्णावतार कृष्ण	०·६०
५०	गांधीवादी क्यां छे ?	०·५०
५१	मृत्यु पर विजय	१·५०
५२	अन्तर्द्रष्टा आचार्य रजनीश जी (जीवन चरित्र)	०·७५
५३	अन्तर्द्रष्टा आचार्य रजनीश जी (जीवन प्रसंगो)	०·५०
५४	अन्तर्द्रष्टा आचार्य रजनीश जीनी ज्ञानवाणी	१·५०
५५	जीवनना मन्दिरमां द्वार छे मृत्युनुं	१·००
५६	दिव्य लोकनी चावी (महावीर-वाणी-१)	१·००
५७	भाव जगतना रहस्य (महावीर-वाणी-२)	१·००
५८	शरण स्वीकारूँ छूं हुं तमारू (महावीर-वाणी-३)	१·००

मराठी में अनुवादित साहित्य

१	पथ-प्रदीप	८·००
२	संभोगातून समाधि कडे	४·००
३	प्रेम-पुष्प	३·५०
४	साधना-पथ	३·००
५	क्रांति-बीज	२·५०
६	सिंहनाद	२·००
७	अभिनव सक्रिय ध्यान	१·००
८	प्रेमाचे पंख	०·७५
९	अहिंसा-दर्शन	०·५०
१०	अमृत-कण	०·५०
१५	समाजवाद पासून सावध रहा	०·५०
१६	पाण्यात बुडी घे खोल	२·००

गुरमुखी (पंजाबी) साहित्य

१ साधना-पथ ३.००

२ अहिंसा दर्शन ०.४०

*३ जीवन जो राज
(सिंघी भाषा में) ०.५०

ग्रीक भाषा में साहित्य

१ एरन एपो टु एपेरपेरन
(बियोन्ड एण्ड बियोन्ड)

२ योग सान एना अफ्ओमितो सिमवान (योग : एज स्पॉन्टे-नियस हेपनिंग)

पत्रिकाओं के वार्षिक शुल्क

१ ज्योति-शिखा
(हिन्दी त्रैमासिक) ८.००

२ युक्रान्द (हिन्दी मासिक) १२.००

३ ॐ (गुजराती साप्ताहिक) १२.००

४ योग-दीप (मराठी पाक्षिक) ५.००

५ संन्यास (अंग्रेजी द्वैमासिक) १८.००

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

जीवन जागृति केन्द्र

● ३१, इजरायल मोहल्ला
भगवान भुवन, मस्जिद बन्दर रोड,
बम्बई - ९
●
फोन : ३२७६१८
३२१०८५

● ए - १, वुडलेण्ड्स,
पेडर रोड, (कैम्प्स कार्नर के पास)
बम्बई - २६
●
फोन : ३८११५९

AVAILABLE ENGLISH BOOKS OF

BHAGWAN SHREE RAJNEESH

I. Translated from the Original Hindi version :

(Postage extra)

		Pages	Price In India
1.	Path to Self-Realization	151	5·00
2.	Seeds of Revolution	232	4·50
3.	Philosophy of Non-Violence	34	0·80
4.	Who Am I?	145	3·00
5.	Earthen Lamps	247	4·50
6.	Wings of Love and Random Thoughts	166	3·50
7.	Towards the Unknown	54	1·50
8.	From Sex to Superconsciousness	180	6·00
9.	The Mysteries of Life and Death	70	4·00
10.	Lead Kindly Light	36	1·50
*11.	What is Rebellion !		

II. Original English Books :

12.	Meditation : A New Dimension	36	2·00
13.	Beyond and Beyond	32	2·00
14.	Flight of the Alone to the Alone	36	2·50
15.	LSD : A Shortcut to False Samadhi	25	2·00
16.	Yoga : A Spontaneous Happening	27	2·00
17.	The Vital Balance	26	1·50
18.	The Gateless Gate	48	2·00
19.	The Silent Music	41	2·00
20.	Turning In	36	2·00
*21.	The Eternal Message	35	2·00
22.	What is Meditation ?	58	3·00
*23.	The Dimensionless Dimension	47	2·00

24.	Wisdom of Folly	213 (New Mulla jokes)	6·00
*25.	Two Hundred Two		
*26.	Meet Mulla Nasrudin		
*27.	Thus Spake Mulla Nasrudin		
*28.	Let Go		
*29.	Beyond Laughter		
*30.	The Inward Revolution		
*31.	I Am the Gate		
32.	Seriousness	41	2·00
*33.	Secrets of Discipleship		
*34.	Dynamics of Meditation		
*35.	The Ultimate Alchemy (2 vols.)		

III. Critical Studies on Bhagwan Shree Rajneesh :

36.	Acharya Rajneesh : a Glimpse	24	1·25
37.	Acharya Rajneesh : The Mystic of Feeling	240	20·00
38.	Lifting the Veil	110	10·00

Note : Star (*) marked books are in press.

For enquiries and books please contact :

JEEVAN JAGRITI KENDRA
(Life Awakening Centre)

Israil Mohalla
31, Bhagwan Bhuvan
Masjid Bunder Road
BOMBAY-9.
Phones : 327618, / 321085

A-1, Woodlands
Peddar Road
BOMBAY-26.
Tel. 381159